श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

ŚRĪVIDYĀRṆAVATANTRAM

भाषाभाष्योपेतम्

भाषाभाष्यकारः

श्रीकपिलदेवनारायण

'स्वरूपावस्थित'

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

496

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

भाषाभाष्योपेतम्

उत्तरार्द्धम् ✲ प्रथमो भागः

(एकोनविंशतिश्चतुर्विंशश्वासात्मकः)

भाषाभाष्यकारः

श्री कपिलदेव नारायण

'स्वरूपावस्थित'

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA
496

ŚRĪVIDYĀRṆAVATANTRAM

of

ŚRĪ VIDYĀRAṆYAYATI

Sanskrit Text with Hindi Commentary

Uttarārdha ❋ Part One

(19-24 Śvāsas)

Commented by

Sri Kapildev Narayan

Svarūpāvasthita

Chaukhamba Surbharati Prakashan

Varanasi (India)

द्वित्राः शब्दाः

श्री विद्यारण्य यति-प्रणीत महनीय ग्रन्थ श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् के उन्नीसवें से चौबीसवें श्वास-पर्यन्त प्रकृत तृतीय भाग में 'कलौ देवो महेश्वरः' इस उक्ति के परिप्रेक्ष्य में शिवपूजन की विस्तृत विधि विवेचित करने के पश्चात् षोडशी विद्या, नित्या-पूजन, नानाविध यन्त्र-मन्त्र एवं काली आदि मन्त्रों के साथ-साथ उनकी पूजन विधियाँ भी निरूपित की गई हैं।

प्रकृत उन्नीसवें श्वास में सर्वप्रथम षडङ्ग मन्त्रों की वासना स्पष्ट की गई है। तदनन्तर अपने शरीर में योगपीठ न्यास, पीठशक्ति न्यास, मूल मन्त्र-न्यास की विधि प्रदर्शित करते हुये विविध न्यासों के फल का कथन किया गया है। तत्पश्चात् मुद्राओं को बनाने एवं उनके त्याग करने का बीज मन्त्र, तारा बीज, ध्यान का द्वैविध्यत्व, अन्तर्यजन का प्रकार एवं पूजा चक्र के स्थापन आदि की विधि निरूपित करने के पश्चात् कादि मत की रीति से पूजा यन्त्र के प्रतिष्ठा की विधि विशद् रूप से विवेचित की गई है। अनन्तर पूजा-द्रव्यों का शोधन, अन्तरग्नि कार्य एवं उसके मन्त्ररूप श्लोक बताये गये हैं। आगे अन्तर्याग-सम्बन्धी द्रव्यों का परिगठन करते हुये पीठपूजा का प्रकार, उस पर आधार शक्ति आदि का ध्यान, रत्नसिंहासन के पादरूप धर्म आदि का ध्यान, पर्यङ्कस्थित पद्म का वर्णन करते हुये मूर्ति की कल्पना करने की विधि स्पष्ट करने के साथ-साथ अर्चन मन्त्र को भी उद्घाटित किया गया है। तदनन्तर अपने इष्टदेव की पूजा के अङ्गरूप में पार्थिव लिङ्ग का विधान बताने के उपरान्त कामनानुसार लिङ्गार्चन की संख्या, विशेष फलों की प्राप्ति के लिये विशेष द्रव्यों से लिङ्ग-निर्माण का विधान, ऋतु के अनुसार पुष्प से निर्मित लिङ्ग के अर्चन का फल, रत्ननिर्मित लिङ्गों में एक-दूसरे की अपेक्षा उत्तमत्त्व, उत्तम-मध्यम-अधम के भेद से लिङ्ग के तीन प्रकार बताते हुए लिङ्ग की आराधना का सर्वश्रेष्ठत्व निरूपित किया गया है। इसके पश्चात् अपने-अपने मार्ग से पूजा का विधान बताते हुये युग के अनुसार लिङ्ग की विशालता-न्यूनता का निरूपण करने के पश्चात् हुये कलियुग में पार्थिव पूजन का महत्त्व बताते हुये उसका श्रेष्ठत्व निरूपित किया गया है। तदनन्तर वेदोक्त रीति से पार्थिव-पूजन, पार्थिव पूजन हेतु उचित स्थान एवं मृत्तिका को निर्देशित करते हुये नवाक्षर शैव मन्त्र का उसके ऋषि-ध्यान आदि के साथ उद्धार बताया गया है। तत्पश्चात् कामदुघा मन्त्र को बताते हुये वैदिक रीति से शिवपूजन की विधि निर्दिष्ट करने के उपरान्त पारद लिङ्ग का निर्माण एवं उसके पूजन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला फल, जया विद्या, आद्य मूर्ति को बारह भेद, चौबीस प्रकार की मूर्तियों का वर्णन, शूद्र आदि द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति के प्रणाम करने का निषेध, शालिग्राम शिला के लक्षण एवं उसके वर्णो की भिन्नता के अनुसार उसके गुण एवं दोष, शालिग्राम शिला के निष्काम अर्चन में दोषों का अभाव, लक्षण के अनुसार उसकी विविध संज्ञायें, शालिग्राम शिला में विष्णु की पूजा का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये शालिग्राम की बहुलता होने पर प्राप्त होने वाले विशेष फलों का कथन किया गया है। तदनन्तर अर्चन में आवाहन आदि की आवश्यकता, आवाहन का स्वरूप, सकलीकरण का स्वरूप, देवशुद्धि, दीपिनी मन्त्र का उद्धार बताते हुये 'मुद्रा' शब्द का अर्थ निरूपित किया गया है। इसके उपरान्त उपचारों का भेद, उनके निवेदन का प्रकार, द्विजों के लिये वैदिक पूजा से पूर्व तान्त्रिक पूजा की करणीयता, गणेश आदि पाँच देवताओं के वैदिक मन्त्र, आसन आदि उपचार, पाद्य एवं आचमन का समय, शिव को शंखस्नान कराने में मतभिन्नता, देव को प्रदेय वस्त्रादि का निर्णय, गन्ध आदि के देवता, गन्ध के भेद, पुष्पों के भेद एवं उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता, विशेष देवताओं के अर्चन में विशेष प्रकार के पुष्पों का निषेध, पुष्प अर्पित करने की विधि, पुष्पों के बासी होने के दोषादोष का निरूपण करते हुये पुष्पोपचार प्रदान करने के पश्चात् लयाङ्ग पूजन का विधान निरूपित किया गया है। तत्पश्चात् देवता का षडङ्ग ध्यान, षडङ्ग पूजा का स्थान, आवरण पूजन में पूर्व आदि दिशा की कल्पना, अङ्ग मन्त्रों द्वारा होम एवं पूजन

में नम: एवं स्वाहा लगाने का विधान, प्रत्येक आवरण पूजन के अन्त में पुष्प अर्पित करने का मन्त्र, लोकपाल एवं उनके अस्त्रों का ध्यान बताने के साथ-साथ आवरण पूजन के अन्त में देवी के अर्चन का मन्त्र बताया गया है। इसके पश्चात् धूप में मिलाये जाने वाले विविध द्रव्यों का भाग, घण्टा बजाने का समय एवं उसका मन्त्र, धूप-दीप का निवेदन एवं उनके रखने का स्थान, पुरुष द्वारा दीप बुझाने से होने वाला दोष, नैवेद्य द्रव्य का संस्कार एवं उसके निवेदन का प्रकार, नित्य होम का विधान, पूजास्थान में भूतबलि की अनिवार्यता, नित्य होम में अग्न्याधान का अनावश्यकत्व, उत्तरापोशन, ताम्बूल-समर्पण एवं देवता को की जाने वाली आरती की विधि प्रदर्शित की गई है। अनन्तर मन्त्र-जप का प्रकार, मन्त्रशुद्धि का लक्षण, जप की संख्या, उसके नियम, जप के उपरान्त स्तुतिपाठ, शूद्रों द्वारा वैदिक के साथ-साथ पौराणिक स्तुतिपाठ का भी निषेध, आराधान एवं उद्वासन का प्रकार, निर्माल्य निवेदित करने की विधि, किसी प्रकार की त्रुटि के विना पूजा-समापन के लिये सूर्य को अर्घ्यदान बताते हुये निर्माल्य-धारण एवं देवता के प्रसाद को ग्रहण करने की विधि निरूपित की गई है। इसके पश्चात् यह बताया गया है कि शिव-विष्णु आदि में अन्तर मानने से दोष लगता है। तदनन्तर नित्य पूजा में आवश्यक क्रिया की विधि प्रदर्शित करते हुये प्राणायाम-न्यास आदि न करने पर लोक में प्राप्त होने वाली निन्दा, देश-काल के अनुसार मानसिक पूजन की विधि, प्रतिदिन के प्रति प्रहर में किये जाने वाले कार्य, आतुर-सूतक आदि अवस्थाओं में करणीय विधियाँ, पूजा का त्रिविधत्व, पूजा में समर्थता-असमर्थता, समर्थ होते हुये भी विस्तार से पूजा न करने पर होने वाले दोष एवं कामना के अनुसार पूजा के स्थान का निरूपण किया गया है।

बीसवें श्वास में नित्य पूजन की विधि निरूपित करते हुये साधकों के लिये प्रात:कृत्य की विधि, तान्त्रिक स्नान, तीर्थशक्तियों का ध्यान, गंगामन्त्र, स्वयं को अभ्युक्षित आदि करने का मन्त्र, भस्म-धारण की विधि, तान्त्रिक सन्ध्या, दीक्षितों के लिये प्रात:-मध्याह्न एवं सायं सन्ध्या की अवश्यकरणीयता, सूर्य को अर्घ्यदान आदि की विधियाँ निरूपित की गई हैं। तदनन्तर पूजामण्डप के द्वार की पूजा, विघ्नोत्सारण, दीपनाथ के अर्चन के पूर्व आधार शक्ति का पूजन, आश्रमानुसार सृष्टि आदि न्यास, ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त, कालीमत में चक्रप्रतिष्ठा की विधि एवं उसके प्रयोग, प्रतिष्ठित यन्त्र में शिवपूजा की पद्धति को स्पष्ट करते हुये संक्षिप्त रूप से नित्य पूजा की विधि प्रतिपादित की गई है। तत्पश्चात् कालीमत में देवता के मन्त्र एवं यन्त्रों के पार्थिव स्वरूप के ज्ञान का प्रकार, कादि मत में उसको जानने के लिये छ: प्रकार की रश्मियों का वर्णन, षट्कर्मानुसार षोडश नित्याओं का स्थूल-सूक्ष्म आदि सामान्य-विशेष ध्यान, कालीमत में देवता आदि के स्वरूप-ज्ञान हेतु रश्मिक्रम, विद्या अथवा मन्त्र के छन्दज्ञान का क्रम, षोडशी विद्या के रश्मिवृन्द, पराप्रासाद मन्त्र की रश्मियों एवं उसके छन्दज्ञान का क्रम तथा काली विद्या के छन्दज्ञान की विधि प्रदर्शित की गई है। इसके आगे कादिमत में कामेश्वरी नित्या का प्रयोग एवं उसके यन्त्र-निर्माण की विधि, समय यन्त्र के उद्धार का क्रम एवं यन्त्रों के विविध फल बताते गये हैं। इसी प्रकार भगमालिनी, कामेश्वरी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महावज्रेश्वरी एवं शिवदूती नित्याओं के प्रयोग की विधियाँ स्पष्ट करते हुये उनके विविध यन्त्र तथा उन यन्त्रों के फल भी बताये गये हैं। साथ ही इसी श्वास में अमृतपञ्चक को भी स्पष्ट किया गया है।

इक्कीसवें श्वास के प्रारम्भ में त्वरिता नित्या के प्रयोग की विधि को स्पष्ट करते हुये काम्य होम विधि, उसके यन्त्रोद्धार एवं यन्त्र-निर्माण की विधि निरूपित की गई है। तदनन्तर निग्रह यन्त्र-निर्माण की विधि, कुलसुन्दरी नित्या के प्रयोग की विधि, विद्या का त्रयीमयत्व, त्रैपुरकन्दा विद्या के भेद, सम्पत्करी विद्या एवं उसके ध्यान-विधान आदि, यन्त्र-विनियोग, नित्यानित्या की विधि-यन्त्र एवं उसके फल, वज्रयन्त्र एवं उसका फल, साधक के शरीर में डाकिनी आदि का स्थान, नीलपताका नित्या के प्रयोग की विधि, सिद्धिकौतुक विद्या के दश भेद, छत्तीस योगिनी विद्यायें, चौंसठ चेटक विद्यायें एवं उनके यन्त्रों का उद्धार बताया गया है। साथ ही यक्षिणी एवं चेटक के साधन का प्रयोग भी बताया गया है। आगे विजया नित्या के प्रयोग एवं उससे सम्बद्ध यन्त्र, सर्वमङ्गला-प्रयोग, मन्त्र के पुरश्चरण का विधान, मातृकाक्षरों की

शक्तियों के नाम, मूल विद्या के स्वरूप की विविधता, एक सौ चौवालीस यन्त्र, उनके विनियोग का प्रकार, लघु मन्त्र-पूजा का विधान, द्वादशार चक्र का निर्माण, द्वारशार चक्र में लघुपूजा, षोडश नित्याओं के नाम-रूप-विद्या द्वारा द्वादशार चक्र में पूजा, द्वादशार चक्र में ही ललिता पूजा, षोडश नित्याओं के नाम-विद्या के भेद से कोष्ठवज्र यन्त्र का निर्माण, यन्त्रप्रयोग एवं फल तथा सर्वमंगला विद्या के जप के फल बताये गये हैं। इसके पश्चात् ज्वालामालिनी नित्या की प्रयोग-विधि बताते हुये उसका पुरश्चरणक्रम, सम्बद्ध दश यन्त्रों का निर्माण एवं उनके विशेष प्रयोग, रोगावेश-हेतु यन्त्र-निर्माण, आकर्षण-वशीकरण आदि के यन्त्र, यामलवेध, वश्य आदि प्रयोग, वैरिनिग्रह यन्त्र, द्यूत आदि में जय-प्रदायक यन्त्र, शत्रुस्तम्भन यन्त्र, लक्ष्मी-वस्त्र एवं आभूषण की प्राप्ति, लोक एवं स्त्री-वशीकरण-सिद्धि आदि विषय गुम्फित किये गये हैं। तदनन्तर यन्त्रों पर अभिषेक करने से ग्रहदोष की शान्ति, नवग्रह-शान्ति, यन्त्र-रचित स्वर्णपत्र आदि के दान का फल, जठराग्नि की वृद्धि के उपाय, यन्त्रों में सूर्य आदि के अर्चन का फल, समस्त ग्रहों के पूजन का फल, शत्रु-मर्दन की विधि, समस्त विद्याओं की अक्षरौषधि के भस्म से स्नान, आग्नेयाक्षर-युक्त यन्त्र से जठराग्नि-वृद्धि एवं यन्त्र-निर्माण की विधि वर्णित है। विचित्रा नित्या के प्रयोग का विवेचन करते हुये काम्य होम एवं निग्रह होम की विधि, अभिचार कर्म-कर्त्ता द्वारा स्वयं के रक्षा की विधि, तर्पण-प्रक्रिया, छब्बीस प्रकार के यन्त्रों की निर्माण-प्रक्रिया, कोष्ठवज्र यन्त्र-रचना, नक्षर-वार-तिथियों में अर्चन का क्रम, तिथियों के वृक्ष-देवता-नक्षत्र एवं योनियाँ, रोगशान्ति के समय को जानने की विधि, छ: आधारों में यन्त्रों की भावना का फल, पचास मिथुनों को बलि प्रदान करने का फल आदि विषय विवेचित किये गये हैं। कुरुकुल्ला नित्या के प्रयोगक्रम में मूल विद्या के पुरश्चरण का प्रकार, बहुविध होम से बहुविध फल की प्राप्ति, कुरुकुल्ला के यन्त्र का निर्माण एवं उसका प्रयोग, द्वितीय विद्या से कोष्ठवज्र यन्त्र का निर्माण एवं उसके चार प्रयोग, प्रथम मूल विद्या से यन्त्र-निर्माण, सप्ताक्षरी विद्या से यन्त्र-निर्माण, त्रयोदशाक्षरी विद्या से आठ यन्त्रों का निर्माण, दो सौ इक्कीस कोष्ठवज्र यन्त्र का निर्माण, मन्त्रदेवता की भावना आदि विषय स्पष्ट किये गये हैं।

इसी प्रकार वाराही नित्या के प्रयोग के क्रम में मूल देवता का पुरश्चरण, विविध प्रयोगों के अनुसार नित्या का ध्यान, स्तम्भन का प्रयोग, मार्ग में रक्षा की विधि, युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु विहित ध्यान, रिपुमारण-क्रोधस्तम्भन-सैन्य-विदारण आदि की विधियाँ एवं तत्सम्बद्ध ध्यान, शत्रुवश्यकर प्रयोग, मारण प्रयोग, लक्ष्मी-प्राप्ति योग, होम द्रव्यों के भेद से फल में वैभिन्त्र्य, मारण-ऐश्वर्यप्राप्ति-वश्यादि प्रयोगों में किया जाने वाला होम, शत्रुसेना को स्तम्भित करने का यन्त्र, सर्वस्तम्भन यन्त्र, स्तम्भकर कोष्ठ यन्त्र, अभीष्ट प्रदान करने वाला महावज्र यन्त्र, वज्रवज्र यन्त्र, समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला यन्त्र आदि बनाने की विधियाँ प्रदर्शित की गई हैं। तदनन्तर कौतुक प्रकरण में सिद्धसारस्वत विद्या एवं उसके साधन की विधि, मृत्युञ्जय विद्या, त्रिपुरा विद्या, प्रयोग-ध्यानादिसहित गारुड़ मन्त्र, सर्पविष को नष्ट करने वाला औषध, अश्वारूढ़ा विद्या, अन्नपूर्णा विद्या, नवात्म विद्या, देवीहृदय विद्या, गौरी विद्या, लक्षसुवर्णदा विद्या, निष्कत्रयप्रदा विद्या, अभीष्टवादिनी विद्या, मातङ्गिनी विद्या, राज्यलक्ष्मी विद्या, सिद्धलक्ष्मी विद्या आदि का उनके ध्यान एवं साधन-प्रकार सहित विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् नित्या के अर्चन चक्र का निर्माण, ललिता विद्या का गोपालस्वरूपत्व, सिद्धगोपाल यन्त्र, छ: प्रकार के गोपाल मन्त्र एवं उनके यन्त्रों का ध्यान, षोडश नित्याओं की अपने में वासना, ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय-अंकुश आदि, ललिता विद्या का अक्षरार्थ, ब्रह्मविद्या धारण का लक्षण, दश प्रकार के यम-नियम, प्रत्याहार-लक्षण, जालन्धर बन्ध-लक्षण, मर्मस्थानों की संख्या, उड्याण बन्ध-मूल-शक्ति-चालन आदि, ब्रह्मार्गल में प्रवेश का फल, उत्क्रान्ति विधि, बुद्धि के पचास भेदों का निर्णय, वेधमयी दीक्षा आदि विषयों का विवेचन करते हुये श्वास का समापन किया गया है।

बाईसवें श्वास में सर्वप्रथम रमा मन्त्र का उद्धार, उसके ध्यान, यन्त्र एवं अर्चन आदि के प्रयोग की विधि बताई गई है। तदनन्तर लक्ष्मी के अन्य मन्त्रों का उद्धार, समस्त मण्डपादि देवी का ध्यान, यजन आदि की विधि, कामनानुसार

होम द्रव्य, अभिषेक, महालक्ष्मी के अन्य यन्त्र, मन्त्रराज का ध्यान एवं प्रयोग, चतुर्दशाक्षर-एकादशाक्षर मन्त्र, साम्राज्य-लक्ष्मीप्रद यन्त्र एवं उनके प्रयोग, सप्ताक्षर मन्त्र, श्रीसूक्त-विधान, लक्ष्मी मन्त्र का जप करने वालों के लिये नियम, श्रीसूक्त यन्त्र की विधि, नवरात्र में महालक्ष्मी की पूजा एवं प्रयोग, महालक्ष्मी शतनामस्तोत्र, लक्ष्मीहृदय स्तोत्र आदि की विधियों का विशद् विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् दुर्गा के मन्त्र एवं ध्यान, सिंहमन्त्र एवं पूजा तथा प्रयोग, दौर्ग यन्त्र-निर्माण, महिषमर्दिनी मन्त्र एवं उसके प्रयोग, जयदुर्गा मन्त्र एवं उसके प्रयोग, शूलिनी तथा वनदुर्गा मन्त्र एवं उसके प्रयोग और प्रयोगों की विविधता के अनुसार अलग-अलग ध्यान, काम्य द्रव्य यजन, वनदुर्गा यन्त्र, दुर्गास्तुति, महालक्ष्मी आदि का ध्यान, आग्नेय मन्त्र का प्रयोग एवं आग्नेयास्त्र के प्रयोग की विधि का विवेचन करते हुये श्वास का समापन किया गया है।

तेईसवें श्वास में दिनास्त्र एवं कृत्यास्त्र का विधान, विनियोगादि सहित लवणदुर्गा के मन्त्र, देव प्रतिमा का प्रमाण, लवण मन्त्र, मन्त्रदेवता का ध्यान, साध्य नक्षत्रवृक्ष, प्रयोगसहित अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्र का विधान, अन्नपूर्णा स्तोत्र, प्रयोग-विधि-सहित अन्नप्रदा मन्त्र का विधान, यन्त्रविधिसहित अश्वारूढ़ा मन्त्र, प्रयोगसहित गौरी मन्त्र, वशीकरण मन्त्र, यन्त्रसहित पद्मावती मन्त्र, प्रयोगसहित ज्येष्ठ लक्ष्मी मन्त्र, प्रयोगसहित त्रिपुरा के विविध मन्त्रों को उद्घाटित किया गया है। इसके अनन्तर नित्यक्लिन्ना मन्त्र, उसके प्रयोग एवं होम की विधि; प्रयोग-विधिसहित वाग्वादिनी क्लिन्ना मन्त्र, प्रयोग-होमसहित वह्निवासिनी मन्त्र, वज्रप्रस्तारिणी मन्त्र, शिवदूती मन्त्र, त्वरिता मन्त्र को स्पष्ट किया गया है। तदनन्तर नक्षत्रयोनियाँ, अनुग्रह यन्त्र, निग्रह यन्त्र, कालीमन्त्र, यम मन्त्र, निग्रह यन्त्र की रचना एवं उसके प्रयोग, त्रिकण्टकी विद्या, महामाया वैष्णवी विद्या, वैष्णवी एवं महामाया के अन्य मन्त्र, बगलामुखी के ब्रह्मास्त्र विद्या का विधान आदि विषय सरल रूप में पूर्णतया स्पष्टता से विवेचित किये गये हैं। अन्त में स्थिरमाया बीज को स्पष्ट करते हुये उसके पूजन की विधि, बगलामुखी का प्रयोग एवं साधना आदि के साथ बगलामुखी यन्त्र एवं बगलामुखी स्तोत्र को गुम्फित करते हुये श्वास की समाप्ति की गई है।

अन्तिम चौबीसवें श्वास में सर्वप्रथम काली के विविध मन्त्रों का निरूपण किया गया है। इसमें श्यामा मन्त्र, गुह्यकाली मन्त्र, भद्रकाली मन्त्र, श्मशान काली मन्त्र, महाकाली मन्त्र एवं उनके पूजन की विधि आदि मन्त्रभेदसहित वर्णित हैं। तदनन्तर तारा के विवेचन क्रम में तारामन्त्र के विविध भेद, शापोद्धार विद्या एवं वधूबीज को बताते हुये इन विद्याओं के साधना का स्थान एवं पूजन प्रयोग भी स्पष्ट किये गये हैं। इसके पश्चात् कोमल आसन का लक्षण एवं आसन का परिमाण बताया गया है। आगे तारागुरुपंक्ति, बलिमन्त्र, मन्त्र का ध्यान एवं होम, कुल्लुका के ज्ञान की आवश्यकता, तारा के भेद, एकजटा विद्या के भेद, नीलसरस्वती विद्या के भेद, वागीश्वरी चित्रेश्वरी-कुलजा-कीर्तीश्वरी-अन्तरिक्ष सरस्वती-घटसरस्वती-नीला सरस्वती-किणि सरस्वती के मन्त्र, तारा के बलिदान हेतु द्रव्य, तारा के राजस-तामस-सात्त्विक ध्यान, पद्मावती मन्त्र, श्यामा मन्त्र, तारामन्त्र, पञ्चदशी मन्त्र के भेद, पञ्चमी के भेद, सुन्दरी के भेद बताते हुये श्रीविद्या-पूजन की सामान्य एवं विशेष पद्धतियाँ तथा सामान्य एवं विशेष अर्घ्य की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुये श्वास का समापन किया गया है।

स्वरूपावस्थित कपिलदेव नारायण

विषयानुक्रमणी

विषयाः पृष्ठाङ्काः विषयाः पृष्ठाङ्काः

एकोनविंश श्वासः

विंशः श्वासः

एकविंशः श्वासः

द्वाविंशः श्वासः

त्रयोविंशः श्वासः

चतुर्विंशः श्वासः

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

(श्रीविद्या का सम्पूर्ण ग्रन्थ)

उत्तरार्द्धम् : प्रथमो भागः

(१९-२४ श्वासात्मकः)

▼

यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इस ग्रन्थ में पठित किसी भी मन्त्र अथवा यन्त्र का सद्गुरु से आज्ञा प्राप्त किये विना प्रयोग नहीं करना चाहिये; अन्यथा करने पर होने वाले किसी भी प्रकार के अनिष्ट के लिए स्वयम्भू उपासक स्वयं उत्तरदायी होगा।

॥ श्रीः ॥

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

भाषाभाष्योपेतम्

* उत्तरार्द्धम् : प्रथमो भागः *

अथैकोनविंशः श्वासः

नारदपञ्चरात्रे—

मन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योः पल्लवेऽङ्गानि विन्यसेत्। मूलाद्युगपदग्रान्तं व्यापकत्वेन नारद ॥१॥

अङ्गुष्ठेनाचरेन्न्यासमन्त्याङ्गुलिसमाश्रयम् । अङ्गुष्ठविषयन्यासं तर्जनीशिरसैव हि ॥२॥ इति।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि हे नारद! मन्त्राभिमृष्ट हाथों की अंगुलियों से अपने शिर से पैरों तक व्यापक न्यास करना चाहिये। अंगूठे और अन्तिम अंगुलि को मिलाकर न्यास करना चाहिये एवं अंगूठे में तर्जनी से न्यास किया जाता है। यही करन्यास होता है।

षडङ्गमन्त्राणां वासना

षडङ्गमन्त्राणां वासना तु प्रथमतन्त्रे—

...............बुद्धिगम्यं च हृन्मतम्। नत्या प्रणाम उक्तो हि हृदासौ क्रियतेऽधुना ॥१॥

नमस्क्रिया बुद्धिगम्या ह्युच्चैरर्थः शिरो मतम्। स्वाहया च ततः स्वस्य विषयाहरणं मतम् ॥२॥

ततः शिरोऽणुना सम्यक् प्रोक्तोच्चैर्विषयाहृतिः। शिखा महो वषट् चाङ्गं शिखयात्मतनुर्महः ॥३॥

प्रोक्तः कवः स्याद्ग्रहणे तद्युतं कवचं पदम्। हुं महः कवचेनास्य महसा गृह्यते ततः ॥४॥

शरीरं मन्त्रिणस्तद्वन्नेत्रं दृष्टिश्च दर्शनम्। वौषट्वाच्यं तच्च दृशि तेन स्यात्तन्महः स्मृतम् ॥५॥

नेत्रं ह्यसुः क्षेपवाची तद्वत्त्रः सुखनार्थकः। फट्कोऽग्निस्तेन चानिष्टमाक्षिप्य परिपालयेत् ॥६॥ इति।

गौतमीये—

इज्यमानो हृदात्मायं हृदये स्याच्चिदात्मनः। क्रियते तत्परत्वं तु हृन्मन्त्रेण ततः परम् ॥१॥

सर्वज्ञादिगुणोपेतं संविद्रूपे चिदात्मनि। क्रियते विषयाहारः शिरोमन्त्रेण धीमता ॥२॥

हृच्छिरोरूपचिद्धाममयताभावना दृढा। क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण सादरम् ॥३॥

मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा। सर्वतो वर्ममन्त्रेण क्रियतेऽनन्यसंवृतिः ॥४॥

यद्ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि। हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्नेत्रसंज्ञकम् ॥५॥

आध्यात्मिकादिरूपं यत्साधकस्य विनाशयेत्। अविद्यामस्त्रजातं तत्परं धाम समीरितम् ॥६॥ इति।

षडङ्ग न्यास—हृदय में नमः से न्यास करे। शिर में स्वाहा से करे। शिखा में वषट् से न्यास करे। कवच में हुं से न्यास करे। नेत्रों में वौषट् से न्यास करे। फट् से अस्त्र न्यास करे।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि हृदय में आत्मा का वास होता है; इसलिये नम: बोलकर वहाँ न्यास किया जाता है। शिर में सर्वज्ञतादि गुणों से युक्त चिदात्मा विषयाहरण करता है, इसलिये स्वाहा से वहाँ न्यास किया जाता है। हृदय एवं शिर चित्त का निवास स्थान है, इस भावना को शिखा दृढ़ करती है, इसलिये यहाँ वषट् से न्यास किया जाता है। मन्त्र वाचन से मन्त्रात्मक देह में तेज उत्पन्न होता है, इसलिये उसकी रक्षा के लिये कवच न्यास हुं बोलकर किया जाता है। संविद् रूप परमात्मा का परम तेजमय ज्ञान हृदय में नेत्र देते हैं, इसलिये वौषट् बोलकर नेत्रों में न्यास किया जाता है। साधक के आध्यात्मिक ज्ञान का विनाश अविद्या करती है; जोकि अस्त्र के प्रयोग से परम धाम में चली जाती है; इसीलिये 'फट्' बोलकर अस्त्रन्यास किया जाता है।

नेत्रमन्त्रस्यैकवचनान्तत्वव्यवस्था

अत्र केचित् षडङ्गन्यासे 'नेत्रत्रयाय वौषट्' इति प्रयोगं वदन्ति, तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु—'हृदय-शिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सह चतुर्थीभिः' इति प्रपञ्चसारवचनात्। 'षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री हृच्छिरश्च शिखा ततः। कवचं नेत्रमस्त्रं च' इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। 'हृदयं च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः। नेत्रमस्त्रं न्यसेत् ङेन्त'मिति ज्ञानार्णववचनाच्च चतुर्थ्येकवचनस्यैव दर्शनात् नेत्रायेति तत्त्वम्। अत एव—

पवित्रमनलारूढं कमलं गोपनाङ्कितम्। केवलः शङ्करश्चान्ते सरुकं (सरेफं) पश्चिमामुखम्॥१॥
अजितं वामृताधारसंस्थितं प्रोद्धरेत्ततः। धरेशं केवलं दत्त्वा नेत्राय त्र्यक्षरं पदम्॥२॥
तदन्ते वौषडित्युक्तं नेत्रमन्त्रोऽप्ययं स्मृतः।

इति नारदपञ्चरात्रे स्पष्ट एवोक्तः। अन्यथा द्विनेत्रदैवतपक्षे 'नेत्राभ्यां' इत्यादिपदान्तरप्रक्षेपापत्तिः।

दोनों नेत्रों के लिये न्यास करने के क्रम में द्विवचन का प्रयोग न कर एकवचन का ही प्रयोग किया जाता है; क्योंकि प्रपञ्चसार, दक्षिणामूर्तिसंहिता एवं ज्ञानार्णव का ऐसा ही निर्देश है। इसीलिये नारदपञ्चराज में भी कहा गया है कि बीजों के बाद त्र्यक्षर नेत्राय और 'वौषट्' कहकर दो नेत्रों में ही न्यास करना चाहिये; अन्यथा दो नेत्रों के लिये 'नेत्राभ्यां' यह द्विवचनान्त प्रयोग करना पड़ता।

स्वदेहे योगपीठकल्पनम्

प्रपञ्चसारे—

संदीक्षितो मनुमिमं प्रतिजप्तुमिच्छन् कुर्यान्निजेन वपुषैव सुयोगपीठम्।
अंसोरुयुग्मपदसाननाभिमूलपार्श्वद्वयैर्विहितगात्रसमुज्ज्वलं च॥१॥

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि इस मन्त्र में दीक्षित साधक जप करने की इच्छा होने पर अपने देह का योगपीठ के रूप में चिन्तन करे। अंसों, ऊरुओं, पैरों, मुख, नाभिमूल एवं पार्श्वों में मूल मन्त्र से न्यास करके अपने शरीर को दीप्तिमान बनाये।

तच्छक्तिन्यासः

मध्येऽनन्ताद्यैरपि सज्ञानात्मान्तिकैर्यजेन्मन्त्री। पीठाख्यमन्त्रपश्चिम'मिति पद्मपादाचार्यः। ईशानशिवः—'आधाराख्यां यजेच्छक्तिं हृदयेंऽसे च दक्षिणे। धर्मं ज्ञानं च सव्यांसे ऊर्वोर्वामान्ययोरपि। वैराग्यसंज्ञमैश्वर्य'मिति। अनन्ताद्यैरित्याद्यपदेन पद्मसूर्यसोमवह्निसत्त्वरजस्तमआत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मज्ञानतत्त्वमायातत्त्वकलातत्त्व-विद्यातत्त्वपरतत्त्वानां ग्रहणम्। उत्तरतन्त्रे—

मूलाधारे तु मण्डूकं रुद्रं कालाग्निसंज्ञकम्। स्वाधिष्ठानेऽथ नाभ्यब्जे प्रकृतिं मूलपूर्विकाम्॥१॥
आधारशक्तिं हृदये विन्यस्य साधकोत्तमः। कूर्मानन्तौ वराहं च धरणीं च सुधार्णवम्॥२॥
रत्नद्वीपं च विन्यस्य तत्र स्वर्णमहीधरः। तदूर्ध्वे नन्दनोद्यानं तन्मध्ये मणिमण्डपम्॥३॥
कोटिसूर्यप्रभं हेमप्राकारपरिवेष्टितम्। रत्नमण्डपमध्यस्थां वेदिकां हेमनिर्मिताम्॥४॥

विन्यस्य तस्य मध्यस्थं रत्नसिंहासनं शुभम्। शरीरे स्वस्य धर्माद्यैः पीठकल्पनमाचरेत्॥५॥
दक्षिणांसे न्यसेद्धर्मं ज्ञानं वामांसके न्यसेत्। वामोरुमूले वैराग्यमैश्वर्यं दक्षिणे न्यसेत्॥६॥
मुखेऽधर्मं वामपार्श्वे चाज्ञानं नाभिमण्डले। अवैराग्यं दक्षपार्श्वे चानैश्वर्यं न्यसेत्क्रमात्॥७॥
धर्मादीन् पीठपादांश्च गात्राण्यन्यान् प्रकल्पयेत्। हृद्यनन्तं न्यसेत्तस्मिन् पद्मं तत्कर्णिकोपरि॥८॥
अर्कं च केसरे सोमं पत्रे वह्निं ततो न्यसेत्। तेषां कला न्यसेत्तत्तन्मण्डले तत्र तत्र वै॥९॥ इति।

तत्र तत्र तन्मण्डलन्याससमय एवेत्यर्थः। वैशब्दस्त्वेवकारार्थवाचकः।

न्यसेद्गुणत्रयं पश्चात्सत्त्वादिकमतः परम्। आत्मान्तरात्मपरमात्मविज्ञानात्मकान् न्यसेत्॥१०॥
ज्ञानमायाकलाविद्यापरतत्त्वानि च क्रमात्। पीठमन्त्रं प्रविन्यसेत्ततो देशिकसत्तमः॥११॥
देहात्मके ततः पीठे ध्यायेदिष्टां च देवताम्। इति।

अथ पीठाख्यपश्चिममिति, पीठमन्त्रमनन्तरमिति, पीठमन्त्रं प्रविन्यसेदिति च प्रपञ्चसार-शारदातिलकादिग्रन्थवचनैः पीठशक्तिन्यासो नास्तीति प्रतीयते।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मूलाधार में मण्डूक कालाग्निरुद्र, स्वाधिष्ठान नाभि पद्म में मूलमन्त्र के साथ प्रकृति और हृदय में आधार शक्ति का न्यास करे। वहीं पर कूर्म, अनन्त, वराह, धरणी, सुधासागर, रत्नद्वीप एवं स्वर्ण मेरु का न्यास करे। उसके ऊपर नन्दन वन में करोड़ों सूर्य के समान प्रभायुक्त एवं स्वर्ण प्राकार से वेष्टित मणिमण्डप का न्यास करे। उस रत्नमण्डप के मध्य में सोने की वेदी का न्यास करे। उसके मध्य में रत्नसिंहासन का न्यास करे। अपने शरीर में धर्मादि पीठ की कल्पना करे। दाँयें कन्धे में धर्म, बाँयें कन्धे में ज्ञान, वामोरु मूल में वैराग्य एवं दक्षोरु मूल में ऐश्वर्य का न्यास करे। मुख में अधर्म, वाम पार्श्व में अज्ञान, नाभिमण्डल में अवैराग्य एवं दक्ष पार्श्व में अनैश्वर्य का न्यास करे। इस प्रकार धर्मादि पीठों, पैरों आदि की कल्पना अपने शरीर में करे एवं हृदय की कमल कर्णिका में अनन्त, केसर में सूर्य और पत्र में चन्द्र का न्यास करने के बाद अग्नि का न्यास करके उनके साथ ही उनकी कलाओं का न्यास करे। उसके बाद सत्वादि गुणत्रय का न्यास करे। आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, विज्ञानात्मा का न्यास करे। ज्ञान, माया, कला, विद्या, परतत्त्वों का न्यास करे। तब पीठ मन्त्रों का न्यास करे। इस प्रकार के देहात्मक पीठ में इष्ट देवता का ध्यान करे।

मूलमन्त्रन्यासः

अथ मूलमन्त्रन्यासः। तत्र श्रीरुद्रयामले—

प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रेण साधकः। विन्यसेत्तदृषिच्छन्दोदैवतानि यथाविधि॥१॥
कराङ्गन्यासमुख्यांस्तु न्यासानन्यान् समाचरेत्। तत्तत्कल्पोदितान् मन्त्री ततो मुद्राः प्रदर्शयेत्॥२॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—

एवं न्यासं पुरा कृत्वा करयोर्विहरेत्ततः। मूलमन्त्रादिसर्वस्य न्यस्तमन्त्रगणस्य च॥१॥
यस्य मन्त्रस्य ये न्यासाः कर्तव्याः सिद्धिमिच्छता। ततो मन्त्रपुटैर्वर्णैर्मातृकायाः सबिन्दुभिः॥२॥
विन्यसेन्मन्त्रवित्सम्यक् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना। अथ वाङ्करन्यासांस्ततो मुद्राः प्रदर्शयेत्॥३॥ इति।

मूल मन्त्र-न्यास—रुद्रयामल में कहा गया है कि मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करने के बाद साधक उस मूल मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता का न्यास करे। तदनन्तर करन्यास, अंग न्यास करते हुये अन्यान्य न्यास करे। इस प्रकार अपने कल्पोक्त न्यासों को करने के बाद मुद्रा दिखाये। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि पहले न्यास करके मूल मन्त्रादि सभी मन्त्रों से न्यास करे। सिद्धि की इच्छा से जिस मन्त्र से न्यास करे, उसी मन्त्र को मातृका वर्णों से पुटित करके शास्त्रोक्त रीति से सम्यक् रूप से न्यास करे। अथवा अंगन्यास एवं करन्यास करके मुद्राओं को प्रदर्शित करे।

न्यासफलाभिधानम्

श्रीकुलार्णवे—

आगमोक्तेन मार्गेण न्यासान्नित्यं करोति यः। देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥१॥
यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये। दृष्ट्वा विघ्नाः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥२॥
अकृत्वा न्यासजातं यो मूढात्मा कुरुते जपम्। विघ्नैः स बाध्यते नूनं व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा ॥३॥ इति।

कालिकापुराणे—

न्यासानां प्रचुरत्वे हि फलानामपि भूरिता। उक्तन्यासो न हि त्याज्यस्त्वधिकं तु समाचरेत् ॥१॥ इति।

श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि आगमोक्त मार्ग से जो नित्य न्यास करता है, उसे देवताभाव प्राप्त होकर मन्त्रसिद्धि मिलती है। न्यास और कवच से युक्त होकर जो साधक मन्त्र का जप करता है, उसे देखकर विघ्न वैसे ही दूर भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाते हैं एवं बिना न्यास किये जो जप करता है, उस मूर्ख को विघ्न वैसे ही बाधा उत्पन्न करते हैं, जैसे व्याघ्र मृगशावक को बाधा करते हैं। कालिकापुराण में कहा गया है कि न्यासों की प्रचुरता से फलों की प्राप्ति भी भरपूर मात्रा में होती है। अत: उक्त न्यासों का परित्याग कभी नहीं करना चाहिये, अपितु उससे अधिक ही न्यास करना चाहिये।

मुद्रायाः बन्धनपरित्यागयोः बीजमन्त्रकथनम्

उत्तरतन्त्रे—

वाग्भवस्य द्वितीयेन कामराजेन भैरव। मुद्राया बन्धनं कार्यं मूलमन्त्रेण दर्शितम् ॥१॥
परित्यागस्तु मुद्रायास्ताराबीजेन वाचरेत्। प्रान्तादिचन्द्रबिन्दुभ्यां षष्ठस्वरसमन्वितम् ॥२॥
ताराबीजमिति प्रोक्तम्……………… । इति।

प्रान्तादिर्हकारः। अन्यत्सुगमम्।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि वाग्भव के बाद कथित कामराज मन्त्र से मुद्रा का निर्माण करे एवं मूल मन्त्र के द्वारा उसका प्रदर्शन करे। मुद्रा का परित्याग करने पर 'स्त्रीं हूं'—इस ताराबीज का जप करे।

ध्यानस्य द्वैविध्येन निरूपणम्

तथा—

ध्यानं कुर्यात्ततो मन्त्री तत्तत्कल्पोक्तवर्त्मना। ध्यानमात्मेष्टदेवस्य वेदनं मनसा मतम् ॥१॥
तदेव द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा। आत्मनो हृदयाम्भोजं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥२॥
प्रफुल्लं सोमसूर्याग्निमण्डलेन विराजितम्। स्वीयेष्टदेवतां तत्र ध्यायेदागमबोधिताम् ॥३॥
एवं यद्वेदनं तद्धि सगुणं ध्यानमुच्यते। यज्जीवब्रह्मणोरैक्यं सोऽहं स्यादिति वेदनम् ॥४॥
तदेव निर्गुणं ध्यानमिति ब्रह्मविदो विदुः। इति।

ध्यानं तु तत्तत्कल्पेषु वक्ष्यते।

तदनन्तर साधक कल्पोक्त मार्ग से ध्यान करे। इष्टदेव का मानसिक चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है, एक सगुण और दूसरा निर्गुण। अपने हृदयकमल के उज्ज्वल कर्णिका केसर में प्रफुल्ल सूर्य, सोम एवं अग्नि-मण्डल में विराजित इष्टदेवता का ध्यान आगमोक्त रूप में करे। इस प्रकार के ध्यान को सगुण ध्यान कहते हैं। जिस ध्यान में जीव और ब्रह्म में ऐक्य की भावना करते हुये सोऽहं की भावना की जाती है, उसे ब्रह्मविद् निर्गुण ध्यान कहते हैं।

अन्तर्यजनप्रदर्शनम्

योगिनीतन्त्रे—

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये यथावदवधारय। वामनाडीं समाकृष्य किञ्चिदाकुञ्चयेद्धृदम् ॥१॥

अन्तर्यागमिदं देवि कथितं गुरुभाषितम्। इति।

फेत्कारिणीतन्त्रे—'आराध्य मनसा भक्त्या बाह्यपूजामथाचरेत्' इति। गौतमीये—'पूजां च मानसीं कुर्यात्ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत्' इति। उत्तरतन्त्रे—

ध्यात्वा ह्यन्तर्यजेत्पीठं न्यासमार्गेण मन्त्रवित्। तस्मिन् पीठे स्थितामिष्टदेवतामुक्तविग्रहाम्॥१॥
ध्यात्वा यजेच्चन्दनाद्यैर्मानसैर्भोजनान्तिगैः। भोजनावसरे चान्तर्वैश्वदेवं समाचरेत्॥२॥
मूलाधारे स्मरेत्कुण्डं कुण्डल्यग्निसमुद्भवम्। आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मचतुरस्रकम्॥३॥
धर्माधर्मान्विते तत्र मूलमन्त्रपुरःसरम्। अमुं जुहोमि स्वाहेति प्रत्येकं जुहुयात्ततः॥४॥
अहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधादिकं हविः। मन एव स्रुवः प्रोक्तः सुषुम्णा स्रुगुदीरिता॥५॥
तदन्ते तन्मयो भूत्वा यथाशक्ति जपेन्मनुम्। तज्जपं सर्वसम्पत्त्यै देवतायै समर्पयेत्॥६॥ इति।

जपनिवेदनमन्त्रस्तु 'गुह्याती'ति प्रागेवोक्तः। लक्षसागरे—

इत्थं जपं यथाशक्ति कृत्वा देवि समर्पयेत्। गुरुं प्रणम्य विधिवत्पूजाचक्रं समुद्धरेत्॥१॥ इति।

अन्तर्यजन को बताते हुये योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि अब अन्तर्यजन को कहता हूँ, उसे यथावत् धारण करो। वाम नाड़ी से श्वास लेकर कुछ देर तक हृदय को सिकोड़ने को ही गुरुओं ने अन्तर्याग कहा है। फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है कि मानसिक पूजा के बाद भक्तिसहित बाह्य पूजा करे। गौतमीय तन्त्र के अनुसार मानसिक पूजन के बाद अर्घ्य स्थापन करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि ध्यान करने के बाद साधक को न्यास के समान ही पीठ पर अन्तर्याग करना चाहिये। उस पीठ पर अवस्थित इष्ट देवता का ध्यान करके उनकी पूजा गन्धादि नैवेद्य मानसिक उपचारों से करे। भोजन के समय और बाद में वैश्वदेव करे। मूलाधार में कुण्ड कल्पित करे उसमें कुण्डलिनी से उत्पन्न अग्नि है। उसमें आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा के चतुरस्र कुण्ड में मन्त्र से 'जुहोमि स्वाहा' कहकर प्रत्येक का हवन करे। अहंकार, असत्य, पैशुन्य, काम, क्रोध आदि की आहुति मनरूपी स्रुव से सुषुम्ना मार्ग में प्रक्षिप्त करे। इसके बाद तन्मय होकर यथाशक्ति मन्त्र जप करे। उस जप को सभी सम्पत्तियों के आकरस्वरूप देवता को समर्पित करे। लक्षसागर में कहा गया है कि इस प्रकार यथाशक्ति जप करके देवी को समर्पित करे। तदनन्तर गुरु को प्रणाम करके चक्र का विधिवत् उद्धार करे।

पूजाचक्रस्थापनादिप्रकारः

सिद्धीश्वरतन्त्रे—

प्रणम्य श्रीगुरुं भक्त्या साधकः कुङ्कुमादिभिः। स्वर्णादिरचिते पीठे पूजाचक्रं समुद्धरेत्॥१॥
संस्थाप्य पुरतो देवि शुभे पीठे सुरेश्वरि। दद्यात् पुष्पाञ्जलिं तत्र मूलमन्त्रेण साधकः॥२॥ इति।

अत्र पूजाचक्रविधिस्तु प्रागेव प्रदर्शितः।

सिद्धीश्वर यामल में कहा गया है कि भक्ति से गुरु को प्रणाम करके साधक कुङ्कुमादि से स्वर्णादि से निर्मित पीठ पर पूजाचक्र बनावे। अपने सामने स्थापित उस पीठ पर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।

कादिमतरीत्या पूजायन्त्रप्रतिष्ठाविधिः

अथ कादिमतरीत्या पूजायन्त्रप्रतिष्ठाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे—

चक्रे देव्यां तथा शिष्ये प्रतिष्ठा त्रिविधोच्यते। सा च तत्त्वविदा कार्या संप्रदायानुरोधिना॥ इति।

चक्रे पूजाचक्रे। देव्यां देवीमूर्तौ। देवीत्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवतामूर्तौ। तत्त्वविदा चन्द्रसूर्यनाडीपथपृथिव्यादिपञ्चतत्त्वोदयकालतत्फलविदा, अथवा आत्मज्ञानविदा। संप्रदायानुरोधिना गुरुपारम्पर्यक्रमवेत्तृत्वगुरुमण्डलपूजकत्वनित्यनिमित्तकोपास्तिनिरतत्वविशिष्टेनेत्यर्थः। तथा—

स्थिरे शुभग्रहोपेतेऽनुकूले गुणशालिनि। मुहूर्ते कारयेद्विद्वान् पूर्णायां वा शुभे दिने॥ इति।

स्थिरे स्थिरलग्ने। दुष्टग्रहाक्रान्तस्य निषेधत्वादाह—शुभग्रहोपेते इति। तथाप्येतादृशगुणविशिष्टस्याष्टमचतुर्थद्वादशस्थप्रतिकूलतादोषदुष्टत्वादाह—अनुकूले इति। तथापि निर्दिष्टमुहूर्तप्राप्त्यर्थवादादाह—गुणशालिनीति। तथा च स्वल्पदोषेऽधिकगुणे इत्यर्थः। मुहूर्ते कारयेदिति। तथा—

क्षौद्राज्यदुग्धैः प्रथमं नारिकेलाम्भसा ततः। अभिषिच्याथ तोयेन क्वथितेनाक्षरौषधैः ॥१॥
आवाह्याभ्यर्च्य तल्लग्ने चक्रे संस्थाप्य पूजयेत्। नित्यातत्त्वाप्तिकालोत्थविद्ययाभ्यर्च्य ताः क्रमात् ॥२॥
स्पृशञ्जपेत् कराग्रेण श्रीचक्रं पूजयेदपि। एवं दिनत्रयं कृत्वा ततो नित्यक्रमं भजेत् ॥३॥
गन्धैः पुष्पैर्नवैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यतर्पणैः। त्रिरात्रं पूजयेद्देवीं योगिनीयोगिभिः समम् ॥४॥
एवं देवीप्रतिष्ठायां क्रमः सान्निध्यकारकः। इति।

लक्षसागरे—

आदौ वेदोदितैर्मन्त्रैरग्न्युत्तारणमाचरेत्। धातुनिर्मितचक्राणां मूर्तीनां च विशेषतः ॥१॥ इति।

अग्न्युत्तारणप्रकारस्तु प्रयोगे वक्ष्यते।

अथ पात्रासाधनं, तत्प्रकारस्तु प्रागेव प्रपञ्चितः।

कादिमतरीति से पूजायन्त्र-प्रतिष्ठा—तन्त्रराज में कहा गया है कि पूजायन्त्र की प्रतिष्ठा तीन प्रकार से की जाती है—चक्र में, देवी की मूर्ति में एवं शिष्य में। उसे अपने सम्प्रदाय के अनुसरण करने वाले तत्त्वज्ञ को करना चाहिये। तत्त्वज्ञ का तात्पर्य आत्मज्ञानी से है। सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाले का तात्पर्य यह है कि वह साधक गुरुपरम्परा को जानने वाला, गुरुमण्डल का पूजक एवं नित्य-नैमित्तिक पूजा को करने वाला हो। यह भी कहा गया है कि स्थिर लग्न में, शुभ ग्रह-समन्वित एवं अनुकूल गुणयुक्त मुहूर्त में पूर्णिमा तिथि में चक्र की प्रतिष्ठा करे या किसी दिवस में करे। प्रतिष्ठा क्रम में पहले मधु-गोघृत-दूध से यन्त्र को धोकर उसे नारियल जल से धोये। तब मन्त्राक्षर औषध के क्वाथ से धोकर उसे पोंछे। लग्न में चक्र को स्थापित करके उसका आवाहन-पूजन करे। नित्या तत्त्व से प्राप्त कालोत्थ विद्या से क्रम से उसका अर्चन करे। कराग्र से स्पर्श करके श्रीचक्र का पूजन एवं जप करे। इस प्रकार तीन दिनों तक करने के बाद नित्य क्रम का आश्रयण करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तर्पण से तीन रातों तक देवी का पूजन योगिनियों एवं योगियों के साथ करे। देवी-प्रतिष्ठा का यह क्रम सान्निध्य प्रदान करने वाला होता है। लक्षसागर में कहा गया है कि धातुनिर्मित चक्रों और मूर्तियों का पहले वैदिक मन्त्रों से अग्न्युत्तारण करे। अग्न्युत्तारण की विधि प्रयोग में द्रष्टव्य है।

पूजाद्रव्यशोधनम्

शारदातिलके—

आत्मानं यागवस्तूनि मण्डलं प्रोक्षयेद्गुरुः। प्रोक्षणीपात्रतोयेन मनुनान्यानपि क्रमात् ॥१॥ इति।

श्रीकुलार्णवे—

पूजाद्रव्याणि संप्रोक्ष्य मूलास्त्राभ्यां विधानवित्। दर्शयेद्धेनुमुद्रां च द्रव्यशुद्धिः प्रकीर्तिता ॥१॥ इति।

रुद्रयामले—'अप्रोक्षितं नैव दद्यान्नाप्रोक्षितः समर्चयेत्।' इति। शारदातिलके—

न्यासक्रमेण देहे स्वे धर्मादीन् पूजयेत्ततः। पुष्पाद्यैः पीठमन्वन्तं तस्मिन्पद्मे च देवताम् ॥१॥
पञ्चकृत्वः पुनः कुर्यात्पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः। उत्तमाङ्गे हृदाधारे पादे सर्वाङ्गके क्रमात् ॥२॥
विना निवेद्यं गन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत्। गुरूपदिष्टविधिना शेषमन्यत् समापयेत् ॥३॥
सर्वमेतत् प्रयुञ्जीत प्रोक्षण्यद्भिः समाहितः। इति।

धर्मादीनित्युपलक्षणम्। तेन मण्डूकादिपीठमन्वन्ता योगपीठदेवता योगपीठन्यासस्थानेषु पूज्या इत्यर्थः।

शेषं जपादिकम्। उत्तरतन्त्रे—

मूलाधारगते कुण्डे पूर्वोक्ते चतुरस्रके। पूर्ववज्जुहुयान्मन्त्री धर्माधर्मादिकं हवि: ।।१।। इति।

शारदातिलक में कहा गया है कि गुरु स्वयं अपना, यागवस्तु का और मण्डल का प्रोक्षण प्रोक्षणीपात्रस्थ जल से मन्त्र द्वारा करे। श्री कुलार्णव में कहा गया है कि विधि के ज्ञाता को मूल मन्त्र एवं अस्त्रमन्त्र से पूजाद्रव्यों का शोधन करके धेनुमुद्रा दिखाने से द्रव्यों की शुद्धि होती है। रुद्रयामल में कहा गया है कि अप्रोक्षित द्रव्यों का कभी भी अर्पण नहीं करना चाहिये और न ही अप्रोक्षित द्रव्यों से अर्चन करना चाहिये।

शारदातिलक में कहा गया है कि न्यासक्रम से अपने देह को योग्य बनाकर उसमें धर्मादि का पूजन करने के बाद उस पीठ में मन्त्रसहित पुष्पादि से देवता का पूजन करे। पुन: देवता के पञ्च कृत्यों को करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। उत्तमांग हृदय आधार पैर सभी अंगों में पूजा बिना नैवेद्य के गन्धादि उपचारों से करे। गुरु के उपदेशानुसार शेष अन्य जपादि कार्यों को करके पूजा समाप्त करे। इन सभी उपचारों का प्रयोग प्रोक्षण के बाद ही करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मूलाधारगत पूर्वोक्त चतुरस्र कुण्ड में धर्म-अधर्म आदि की आहुति पूर्ववत् निक्षिप्त करे।

अन्तरग्निकार्यवर्णनम्

प्रकाशोदये—

अथवाभ्यन्तरे कार्यमग्निकार्यं ब्रवीमि तत्। चिदग्निमण्डले दण्डमूले कुण्डलिरूपिणि ।।१।।
त्र्यस्रकुण्डे हुनेदुद्यत्सूर्यमण्डलवर्चषि ।

अत्र त्र्यस्रचतुरस्रयो: कुण्डयोर्विकल्प: ।

वासनेन्धनसंदीप्ते पञ्चभिश्च समीरणै: ।।२।।
सन्धुक्षिते प्रजुहुयादक्षवृत्तीरनन्तरम्। मूलविद्यां समुच्चार्य हुनेत्सप्ताहुतीस्तत: ।।३।।
मन्त्ररूपं पठेच्श्लोकं परं गुरुतरं परात्। धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।।४।।
सुषुम्णावर्त्मणा नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्। स्वाहान्तेनाहुतिं दत्त्वा हुनेत् पूर्णाहुतिं गुरु: ।।५।।
मूलविद्यां समुच्चार्य श्लोकमन्यं पठेदमुम्। प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम् ।।६।।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहम्। स्वाहान्तेनाहुतिं हुत्वा प्राणायामनिरोधत: ।।७।।
निरस्तनिखिलोपाधिमात्मानं चिन्मयं स्मरेत्। इति।

ज्ञानार्णवे—

पुण्यपापे हविर्देवि कृत्याकृत्ये हवि: प्रिये। सङ्कल्पश्च विकल्पश्च धर्माधर्मौ हवि: प्रिये ।।१।। इति।

हवनप्रकारस्तु प्रयोगे वक्ष्यते। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—'अष्टोत्तरसहस्रं तु कृत्वान्तर्यागमादरात्। जपेत् प्रतिदिनं मन्त्री' इति। अन्तर्देहे, याग: पूजा। उत्तरतन्त्रे—

आत्मपूजां विधायेत्थं यथाशक्ति जपं चरेत्। स्वेष्टदैवतमात्मानं भावयन् यतमानस: ।।१।।

एतेनाष्टोत्तरसहस्रं तु शक्तपरम्।

प्रकाशोदय में कहा गया है कि अथवा मध्य में अग्निकार्य (हवन) करना चाहिये। एतदर्थ दण्डमूल में कुण्डलिनी-रूप त्रिकोण कुण्ड में नवेदित सूर्यमण्डल की आभा के समान अग्निमण्डल में हवन करे। अग्निमण्डल को पाँच प्राणों से वासना रूपी इंधन से प्रज्वलित करे। तदनन्तर अक्षवृत्ति से हवन करे। मूल विद्या से सात आहुति डाले। परम गुरु के मन्त्ररूप श्लोकों का पाठ करे। तब आत्माग्नि में मन की स्रुचा और धर्म-अधर्म के हवि से हवन करे। सुषुम्ना मार्ग से 'नित्यमक्षवृत्ती: जुहोम्यहम् स्वाहा' कहकर हवन करे। गुरु से प्राप्त मूल विद्या से पूर्णाहुति प्रदान करे। तब इस मन्त्र का पाठ करे—

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा।।

तदनन्तर प्राणायाम से श्वास को निरुद्ध करके अपनी सभी उपाधियों को निरस्त करके आत्मा को चिन्मयरूप में समरण करे। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प, धर्म-अधर्म की हवि से आहुति डाले। मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि अन्तर्याग में एक हजार आठ आहुतियों से हवन करके इतना ही जप प्रतिदिन करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार आत्मपूजा करके मन को नियन्त्रित कर आत्मा और इष्टदेवता में ऐक्य की भावना करते हुये यथाशक्ति एक सौ आठ या एक हजार आठ जप करे।

पीठपूजार्चनप्रकार:

तथा—

अर्घ्योदकेन संप्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। पूजाचक्रं ततस्तत्र पीठपूजां समाचरेत्॥१॥
देवस्योत्तरतः पूजा गुरुपङ्क्तेस्ततः परम्। महागणपतिः पूज्यो दक्षिणे चन्दनादिभिः॥२॥

उत्तरतः उत्तरदिशि। तेन देवस्य दक्षिणभुजसमीप इति। आवाहनमुत्तरत्र तथा वक्ष्यते। रुद्रयामले—

सर्वाधो मण्डुकाधारे रुद्रः कालानलो विभुः। रक्षां करोतु या नित्यं मे मूलप्रकृतिस्तथा॥१॥
ततश्चाधारशक्तिर्या मम रक्षां करोतु सा। कूर्मस्तु सततं पायादनन्तो रक्षयेत्सदा॥२॥
तस्य मूर्ध्नि स्थितश्चक्री वराहः परिरक्षतु। दन्ते तस्य स्थिता पृथ्वी पातु नित्यं वसुन्धरा॥३॥
समुद्रः सर्वदा पातु सुरत्नैरमृतैर्जलैः। रत्नद्वीपस्तु मे रक्षां करोतु स्वर्णपर्वतः॥४॥
पातु मां नन्दनोद्यानं रक्षन्तु कल्पपादपाः। अधस्तेषां सदा पातु विचित्रा रत्नभूमिका॥५॥
श्रीरत्नमन्दिरं पातु सततं पातु वेदिका। इति।

भैरवयामले—

रक्तवर्णं महाकायं मण्डूकं प्रथमं यजेत्। तत्र कालाग्निरुद्रं च दशबाहुसमन्वितम्॥१॥
पञ्चवक्त्रं रक्तकृष्णवर्णदक्षापराङ्गकम्। तदूर्ध्वं मूलप्रकृतिं बन्धूकाभां वराभयाम्॥२॥ इति।

तदनन्तर अर्घ्योदक से पूजाचक्र को प्रोक्षण करे। तब पीठपूजा करे—देव से उत्तर तरफ अर्थात् देवता की दक्ष भुजा के समीप गुरुपंक्ति की पूजा करे। देवता के दक्ष भाग में महागणपति की पूजा करे। तदनन्तर निम्न रक्षास्तोत्र का पाठ करे—

सर्वाधो मण्डुकाधारे रुद्र: कालानलो विभु:। रक्षां करोतु या नित्यं मे मूलप्रकृतिस्तथा।।
ततश्चाधारशक्तिर्या मम रक्षां करोतु सा। कूर्मस्तु सततं पायादनन्तो रक्षयेत्सदा।।
तस्य मूर्ध्नि स्थितश्चक्री वराह: परिरक्षतु। दन्ते तस्य स्थिता पृथ्वी पातु नित्यं वसुन्धरा।।
समुद्र: सर्वदा पातु सुरत्नैरमृतैर्जलै:। रत्नद्वीपस्तु मे रक्षां करोतु स्वर्णपर्वत:।।
पातु मां नन्दनोद्यानं रक्षन्तु कल्पपादपा:। अधस्तेषां सदा पातु विचित्रा रत्नभूमिका।।
श्रीरत्नमन्दिरं पातु सततं पातु वेदिका।

भैरवयामल में कहा गया है कि लालवर्ण विशाल शरीर मण्डूक की पूजा पहले करे। तब दश बाहुओं से युक्त, पाँच मुखों वाले, लाल एवं काले वर्ण के दक्ष ऊपर अंगों वाले कालाग्नि रुद्र की पूजा करे। उसके ऊपर बन्धूक पुष्प की आभा वाली, वर-अभय मुद्रायुक्त हाथों वाली मूल प्रकृति की पूजा करे।

पीठे आधारशक्त्यादिध्यानानि

उत्तरतन्त्रे—

अधः पीठस्य रक्ताभां पाशाङ्कुशवराभयान्। हस्ताब्जैर्दधतीं सम्यग्यजेदाधारशक्तिकाम्॥१॥
तस्या उपरि संपूज्य कूर्मः स्वर्णरुचिर्दृढः। सहस्रशिरसं तत्र शुक्लवर्णमलंकृतम्॥२॥
नीलवस्त्रं महाकायमनन्तं सम्यगर्चयेत्। पीताम्बरधरं तत्र नीलवर्णं सुभूषणम्॥३॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पोत्रिणं यजेत्। व्रीह्यग्रशुकहस्ताब्जां वराभयधरां शुभाम्॥४॥
तद्दंष्ट्रोपरि नीलाभां धरां धीरः समर्चयेत्। इति।

रत्नद्वीपो नवरत्नमयद्वीपः। उक्तं श्रीतन्त्रराजे—'नवरत्नमयं द्वीपं नवखण्डविराजितम्। पुष्यं नीलं च वैडूर्यम्' इति विलोमेन नव रत्नमयानि खण्डानि ध्येयानीत्यर्थः। तत्रैव कुरुकुल्लापटले—'पश्चिमं पुष्परागं तु संप्राप्यावतरेत् ततः' इति उक्तत्वात्। रत्नमन्दिरं नवरत्नमयं माणिक्यमयं वा 'स्वर्णप्राकारवेष्टितं विचित्रमण्डप'मिति उत्तरतन्त्रवचनात्। 'अमृताब्धौ मणिद्वीपे कल्पवृक्षवनोज्ज्वले। स्वर्णप्राकारसंवीतं स्मरेन्माणिक्यमण्डपम्।' इति देवीयामलवचनाच्च। वेदिका स्वर्णमयी। 'विचित्रमण्डपं तत्र पूजयेत् स्वर्णवेदिकम्' इत्युत्तरतन्त्रात्। उत्तरतन्त्रे—'रत्नसिंहासनं तत्र पूजयेन्मण्डलान्वितम्' इति। मण्डलान्वितं तत्तत्पूजाचक्ररूपमण्डलसमन्वितमित्यर्थः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है पीठ के नीचे लाल वर्ण की पाश-अंकुश-वर-अभययुक्त हाथों वाली आधारशक्ति की पूजा सम्यक् रूप से करे। उसके ऊपर स्वर्णाभ दृढ़ कूर्म की पूजा करे। तब हजार शिर वाले, शुक्ल वर्ण, अलंकृत, नील वस्त्रधारी महाकाय अनन्त की पूजा करे। वहीं पर पीताम्बरधारी, नीलवर्ण, सुन्दर भूषण से भूषित, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वराह की पूजा करे। उसी वराह के कर-कमल में धान्य एवं सस्य तथा वर-अभय मुद्राधारीणी पृथ्वी का अर्चन करे।

रत्नसिंहासनपादरूपधर्मादिध्यानानि

तत्पादेषु यजेत्सम्यगाग्नेयादिशिवान्तकम्। धर्मं वृषतनुं रक्तवर्णमादौ समर्चयेत्॥१॥
सिंहाकारं ततो ज्ञानं श्यामवर्णं समाहितः। भूताकारं च वैराग्यं पीतवर्णं यजेत्ततः॥२॥
कृष्णवर्णं गजाकारमैश्वर्यं साधु पूजयेत्। अग्रदेशं समारभ्य चतुर्दिक्षु समर्चयेत्॥३॥
अधर्मादींश्च पीठस्य चित्रगात्रधिया पुनः। इति।

वामकेश्वरतन्त्रे—'मध्ये मायां तथा विद्यां पूजयेत् साधकोत्तमः।'

उसके पैरों में अग्नि से ईशान तक वृषभरूप लाल वर्ण के धर्म का पूजन पहले करे। तब सिंहाकार, श्यामवर्ण ज्ञान की सावधानी पूर्वक पूजा करे। तदनन्तर भूत के आकार वाले, पीले वर्ण के वैराग्य की पूजा करे। तब कृष्ण वर्ण हाथी के समान ऐश्वर्य की पूजा करे। देवी के आगे से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में अधर्मादि का पूजन पीठ में करे। वामकेश्वरतन्त्र में कहा गया है कि मध्य में माया और विद्या की पूजा करे।

तल्पोपरिस्थपद्मवर्णनम्

उत्तरतन्त्रे—
तल्पाकारं ततोऽनन्तं पीठमध्ये समर्चयेत्। तस्य मूर्ध्नि यजेत् पद्मं सर्वलक्षणसंयुतम्॥१॥
आनन्दकन्दमभ्यर्च्य संविन्नालमनन्तरम्। प्रकृत्यात्मकपत्राणि विकारात्मककेसरान्॥२॥
तत्त्वरूपां कर्णिकां च मातृकावर्णविग्रहाम्। इति।

लिङ्गपुराणे—
तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम्। लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा॥१॥
प्राप्तिश्चैवोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु। ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरम्॥२॥
सर्वज्ञत्वं तथैशानं कर्णिका सोम उच्यते। सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकः स्वयम्॥३॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि तब तल्पाकार अनन्त की पूजापीठ मध्य में करे। उसके मूर्धा पर सभी लक्षणों से युक्त कमल की पूजा करे। आनन्दकन्द की पूजा करके संविन्नाल की पूजा करे। उस कमल के दल प्रकृत्यात्मक हैं और केसर विकारात्मक हैं। तत्त्वरूपा कर्णिका मातृका वर्णों के स्वरूप वाली है।

लिङ्गपुराण में कहा गया है कि श्रीचक्र का पूर्वदल साक्षात् अणिमामय अक्षर है। उसके दक्षिण में लघिमा, पश्चिम में महिमा, उत्तर में प्राप्ति, आग्नेय में प्राकाम्य, नैर्ऋत्य में ईशित्व, वायव्य में वशित्व एवं ईशान में सोम की स्थिति है। चन्द्र और सूर्य के नीचे स्वयं अग्नि का वास है।

तत्तच्छक्तिपूजनप्रकार:

उत्तरतन्त्रे—

पत्रकोशेषु पद्मस्य सत्त्वादीन् क्रमतो यजेत्। सत्त्वपूर्वान् गुणान् सूर्येन्द्वग्नीनां मण्डलानि च ॥१॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यानाद्यादींस्त्रीन् यथाक्रमम्। इति।

सम्मोहनतन्त्रे—

विधिरूप: सत्त्वगुणो रज: प्रकृतिरूपकम्। तमोगुणो मोहरूप: प्रोक्तास्त्वेवं गुणास्त्रय: ॥१॥ इति।

वामकेश्वरतन्त्रे—

...................ज्ञानतत्त्वात्मकं यजेत्। कालतत्त्वात्मकं चैव विद्यातत्त्वात्मकं तथा ॥१॥
परतत्त्वात्मकं चैव क्रमेण परिपूजयेत्। चतुर्दिक्षु च मध्ये च.......................॥२॥ इति।

प्रपञ्चसारे—

मध्येऽनन्तं पद्ममस्मिंश्च सूर्यं सोमं वह्निं तारवर्णैर्विभक्तै:।
सत्त्वादींश्च त्रीन् गुणानात्मयुक्तान् शक्ती: किञ्जल्केषु मध्ये यजेच्च ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

केसरेषु ततो मध्ये पूर्वादिषु यथाक्रमम्। तत्तन्मन्त्रोक्तपीठस्य नव शक्ती: प्रपूजयेत् ॥१॥
पीठमन्त्रेण गन्धाद्यै: पीठमध्ये ततो यजेत्। इति।

सनत्कुमारसंहितायाम्—

प्रागाद्यष्टसु पत्रेषु कर्णिकायां यजेन्मुने। चतुर्थ्या नमसा युक्तै: स्वै: स्वैरेव च नामभि: ॥१॥
मध्ये पुष्पाञ्जलिं दद्यात् पीठमन्त्रेण मन्त्रवित्। इति।

यजेत् प्रादक्षिण्येन। 'एता: प्रदक्षिणं पूज्या:' इति मन्त्रतन्त्रप्रकाशवचनात्। पूर्वादिष्वित्यत्र पश्चिमस्यैव पूर्वत्वम्। 'स्वरा: षोडश देवेशि युग्मयुग्मप्रभेदत:। दलाष्टकेषु संलेख्या: पश्चिमादिप्रदक्षिणम्' इति ज्ञानार्णवे यन्त्रे वर्णविन्यासदर्शनात्। आवरणार्चनायां देवाग्रे प्राच्यभिधानाच्च अत्रापि तथा कल्पनात्। 'दक्षिणे च तथा गुरुम्' इति सङ्कर्षणवचनाच्च। नारदपञ्चरात्रे, गुर्वर्चायां—'मण्डले देवदेवस्य दक्षिणे मण्डलोपरि। गुरून्समर्चये' दिति। अत एव देवदेवस्योत्तरत इति पूर्वोक्तस्यापि पूजामण्डलस्योपरि पूजा ज्ञेया। धर्मादिपूजायामप्येवमेव देवाग्रे कल्पितप्राच्य-नुसारेणैवाग्नेयादि कल्पयेत्। अत्र भाविनि भूतवदुपचार:। 'आवाह्य मन्त्रेण मुने' इत्यनन्तरमावाहनोक्ते:। भूताकारमिति—भूता देवयोनि: 'भूतोऽमी देवयोनय:' इति कोशात्। तत्स्वरूपं तु—'रक्तवस्त्रधरा: कृष्णा नखदंष्टासुदंष्ट्रिका (?)। कर्त्रीखट्वाङ्गहस्ताश्च राक्षसा घोररूपिण:। भूतास्तथैव दीनास्या:।' इति भूतडामरोक्तस्वरूपा पीठशक्तय: पीठमन्त्रा-स्तत्तत्कल्पे वक्ष्यन्ते।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि पद्म के पत्रकोशों में क्रमश: सत्त्वादि गुणों की पूजा करे। सूर्य, चन्द्र, अग्निमण्डल में ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि का पूजन यथाक्रम करे। सम्मोहनतन्त्र में कहा गया है कि सतोगुण विधिरूप, रजोगुण प्रकृतिरूप एवं तमोगुण मोहरूप होता है। वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि चारो दिशाओं और मध्य में ज्ञान, काल, विद्या, परतत्त्व का क्रमश: पूजन करे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि इस पद्म के मध्य में अनन्त, सूर्य, चन्द्र, अग्नि का का पूजन प्रणव से करे। सत्त्वादि तीन गुणों से युक्त आत्मशक्ति का पूजन मध्य किंजल्क में करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि केसर के

मध्य में पूर्वादि क्रम से उनके मन्त्रोक्त पीठ में नव शक्तियों की पूजा करे। तदनन्तर पीठमन्त्र से गन्धादि से पीठमध्य में पूजन करे। सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है कि पूर्वादि आठ पत्रों की कर्णिका में उनके चतुर्थ्यन्त नामों के साथ नमः लगाकर पूजा करे एवं मध्य में पीठमन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। यह पूजा प्रदक्षिणक्रम से करे—ऐसा मन्त्रतन्त्रप्रकाश का वचन है।

मूर्तिकल्पनार्चनमन्त्रोद्धारः

उत्तरतन्त्रे—

पीठशक्तीर्नवाभ्यर्च्य केसरेषु च मध्यतः। वरदाभयधारिण्यः पीठं पीठाणुना यजेत् ॥१॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य षष्ठ्यन्तं देवनाम च। मूर्तिं च कल्पयामीति मूर्तिं मध्ये विनिक्षिपेत् ॥२॥
पुनर्मूलं समुच्चार्य देवनाम च पूर्ववत्। मूर्तिं च पूजयामीति तां पुष्पेण समर्चयेत् ॥३॥
पूजामूर्तेः शिरः कुर्यात्कुसुमोपहितं सदा। पूजाकालं विना तस्या नोपरि भ्रामयेत्करम् ॥४॥
अथेष्टदेवताप्रीत्यै यजेदायतनान्यपि। इति।

आयतनानि प्रागेवोक्तानि। प्रागेव शिवलिङ्गप्रमाणविधिरपि प्रदर्शितः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि नव पीठशक्तियों का अर्चन केसर के मध्य में करे। वर-अभय मुद्राधारिणी की पूजा पीठमन्त्र से करे। मूल मन्त्र के बाद षष्ठ्यन्त देवनाम से मूर्ति कल्पित करके मध्य में उसकी पूजा करे। जैसे—'मूर्तिं कल्पयामि'। 'मूर्तिं पूजयामि' कहकर फूल चढ़ावे। मूर्ति के शिर पर फूल चढ़ाते हुये पूजा करे। पूजाकाल के अलावा उसके ऊपर हाथ न घुमावे। इष्टदेवता की प्रीति के लिये आयतन पूजा भी करे। आयतन-पूजा का कथन पहले हो चुका है।

इष्टदेवतायाः पूजाङ्गत्वेन पार्थिवलिङ्गविधानम्

अथेष्टदेवताया पूजाङ्गत्वेन पार्थिवविधानम्।

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं हितम्। तत्सर्वं कथयस्व त्वमनुग्राह्योऽस्मि ते विभो ॥१॥
सर्वपापक्षयकरं सर्वारिष्टनिवारणम्। सर्ववश्यकरं चैव कलौ सर्वत्र सिद्धिदम् ॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि शिवपूजाविधानकम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥३॥
अकृत्वा पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत्। वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकं वृथा ॥४॥
शुद्धां मृदं समानीय पुनः शोध्य विशेषतः। लिङ्गाकारं ततः कुर्याद्यथोक्तविधिना पुमान् ॥५॥
पूजयेत् सविधानेन पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्। अखण्डं कारयेद्यत्नाद्वक्ष्यमाणैश्च नामभिः ॥६॥
मृदाहरणसङ्घट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च। स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम् ॥७॥
हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्। पशुपतिः शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् ॥८॥
द्विखण्डं यः करोत्येवं तस्य पूजापि निष्फला। पक्वजम्बूफलाकारं सर्वकामप्रदं शिवम् ॥९॥
विवरं यः करोत्येवं हानिपीडाकरं भवेत्। कुर्यात्साक्षात्स्वबीजेन मूलमन्त्रेण पूजनम् ॥१०॥
चतुर्दशस्वरोपेतो हकारो बिन्दुसंयुतः। शिवप्रसादजनकः शिवप्रणवसंज्ञकः ॥११॥
शर्वो भवश्च रुद्रोग्रौ भीम ईशानसंज्ञकः। महादेवः पशुपतिर्मूर्तिभिश्चैव पूजयेत् ॥१२॥
क्षितिरापोऽनलो वायुराकाशः सोमसूर्यकौ। यजमान इति ह्यष्टौ मूर्तयः परिकीर्तिताः ॥१३॥

नारद उवाच

देव केन विधानेन कर्तव्यं सर्वकामदम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१४॥

इष्टदेवता के पूजाङ्गत्व रूप से पार्थिव विधान—नारद ने ईश्वर से कहा कि हे प्रभो! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

के परम हितसाधन को कृपा करके बतलाइये, जो सभी पापों का विनाशक, सभी अरिष्टों का निवारक, सर्ववश्यकर और कलियुग में सर्वत्र सिद्धिदायक है। ईश्वर ने कहा—हे नारद! सुनो, अब उस शिवपूजन विधान को कहता हूँ, जिसके अनुष्ठानमात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थिव लिङ्ग का पूजन किये बिना जो अन्य देवताओं का पूजन करता है, उसकी वह पूजा व्यर्थ होती है। उसके स्नान, दान भी व्यर्थ होते हैं। पार्थिव-पूजन के लिये शुद्ध मिट्टी लाकर उसे विशेष प्रकार से शोधित करे। उससे यथोक्त विधि से लिङ्गाकृति बनावे। इस उत्तम पार्थिव लिङ्ग का पूजन विधि-विधान से करे। तत्तत् नामों से अखण्ड रूप से उसकी पूजा करे। मन्त्र से मिट्टी लावे। उस मिट्टी से आकृति बनावे, उसे प्रतिष्ठित करे, उसमें देवता का आवाह्न करके उसे स्नान कराकर उसका पूजन कर उससे क्षमा माँग कर विसर्जन करे। हर, महादेव, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधृक, पशुपति, शिव, महादेव—इन नामों से क्रम से पूजन एवं विसर्जन करे। पार्थिव लिङ्ग को दो खण्ड में बनाकर पूजा करने से वह पूजा निष्फल होती है। पके जामुन के फल के बराबर लिङ्ग सर्वार्थसिद्धिदायक होता है। चिपटा लिङ्ग हानि एवं पीड़ाकारक होता है। स्वबीज के साथ मूल मन्त्र से पूजा करे। बिन्दु सहित चौदहवाँ स्वर औ एवं ह अर्थात् 'हौं' शिव की कृपा प्रदान करने वाला शिव का प्रणव है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेव, पशुपति नामक आठ मूर्तियों की पूजा करें। ये आठों भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सोम, सूर्य, यजमान मूर्तिस्वरूप होते हैं। नारद ने कहा कि हे देव! सर्वकामद कौन सा विधान है, जिसके अनुष्ठान से मनुष्य कृतकृत्य होता है।

यथाकामं लिङ्गार्चनसङ्ख्या

ईश्वर उवाच

मुने सर्वप्रयत्नेन पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्। कर्तव्यं हि नृभिर्नित्यं कामुद्दिश्य यत्नतः ॥१५॥
अखण्डं पार्थिवं लिङ्गं द्विखण्डं स्थावरं मतम्। पूर्वोक्तेन विधानेन पूज्यं लिङ्गं तु पार्थिवम् ॥१६॥
संख्या पार्थिवलिङ्गानां यथाकामं निगद्यते। विद्यार्थी लिङ्गसाहस्रं धनार्थी शतपञ्चकम् ॥१७॥
पुत्रार्थी सार्धसाहस्रं कान्तार्थी शतपञ्चकम्। मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामस्तु सहस्रकम् ॥१८॥
रूपार्थी त्रिसहस्रं च तीर्थार्थी द्विसहस्रकम्। सुहृत्कामी त्रिसाहस्रं वस्त्रार्थी च शताष्टकम् ॥१९॥
मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम्। उच्चाटनपरश्चैव सहस्रं च यथोक्तितः ॥२०॥
स्तम्भनं तु सहस्रेण मारणं शतपञ्चकम्। निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं सार्धमीरितम् ॥२१॥
महाराजभये पञ्चशतं चोरादिसङ्कटे। शतद्वयं तु डाकिन्या भये पञ्चशतं तु वा ॥२२॥
दारिद्र्ये पञ्चसाहस्रमयुतं सर्वकामदम्। एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिदम् ॥२३॥
त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमीरितम्। उत्तरोत्तरमेव स्यात् पूर्वोक्तगणनावधि ॥२४॥ इति।

ईश्वर ने कहा—हे मुने! मनुष्यों को कामना के उद्देश्य से नित्य उत्तम पार्थिव लिङ्ग बनाना चाहिये। पार्थिव लिङ्ग अखण्ड बनता है एवं स्थावर लिङ्ग दो खण्डों में बनता है। पूर्वोक्त विधान से पार्थिव लिङ्ग का पूजन करना चाहिये। कामना के अनुसार पूजन में लिङ्गों की संख्या होती है। विद्यार्थी एक हजार लिङ्ग बनावे। धनार्थी पाँच सौ लिङ्ग बनावे। पुत्रार्थी पन्द्रह सौ लिङ्ग बनावे। मोक्षार्थी एक करोड़ लिङ्ग बनावे। भूमि की कामना से एक हजार लिङ्ग बनाना चाहिये। रूपार्थी तीन हजार, तीर्थार्थी दो हजार, सुहृत्कामी तीन हजार, वस्त्रार्थी एक सौ आठ, मारणार्थी सात सौ, मोहनार्थी आठ सौ एवं उच्चाटन के लिये एक हजार लिङ्ग बनावे। स्तम्भन के लिये एक हजार, मारण के लिये पाँच सौ, जेल से छुटकारे के लिये डेढ़ हजार, महाराजभय में पाँच सौ, चोरादि संकट में दो सौ, डाकिनी के भय में पाँच सौ, दरिद्रता-निवारण में पाँच हजार और सर्वार्थ-सिद्धि के लिये दश हजार लिङ्ग बनावे। एक लिङ्ग पापविनाशक, दो लिङ्ग धनदायक एवं तीन लिङ्ग सभी कामनाओं का पूरक है। इस प्रकार कामनानुसार पूजन में लिङ्गों की संख्या कही गई है।

ग्रन्थान्तरे—

लिङ्गानामयुतं कृत्वा महाराजभयं हरेत्। सहस्राणि तथा पञ्च निगडान्मुक्तये ध्रुवम् ॥१॥

कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेद्बुध: । डाकिन्यादिभये सप्तसहस्रं कारयेत्तत: ॥२॥
सहस्रं पञ्चपञ्चाशदपुत्रो हि प्रकारयेत् । लिङ्गानामयुतेनैव कन्यकां सततं लभेत् ॥३॥
एवं लिङ्गार्चनेनैवमतुलां श्रियमाप्नुयात् । लक्षमेकं तु लिङ्गानां य: करोति नरो भुवि ॥४॥
शिव एव भवेत्सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ।

ग्रन्थान्तर में कहा गया है कि दश हजार लिङ्ग बनाने से महाराजभय का हरण होता है। डेढ़ हजार लिङ्ग से बन्धन से छुटकारा होता है। दश हजार लिङ्ग बनाने से मनुष्य कारागृह से छूटता है। डाकिनी आदि के भय होने पर सात हजार लिङ्ग बनावे। पुत्रप्राप्ति के लिये एक हजार पाँच सौ पचपन लिङ्ग बनावे। दश हजार लिङ्ग बनाने से कन्या प्राप्त होती है। इस प्रकार लिङ्गार्चन से अतुल सम्पत्ति मिलती है। पृथ्वी पर एक लाख लिङ्गार्चन करने वाला साक्षात् शिव के समान हो जाता है।

फलविशेषार्थं लिङ्गनिर्माणद्रव्यविशेषनिर्णय:

अर्चा पार्थिवलिङ्गानां कोटियज्ञफलप्रदा ॥५॥
भुक्तिदा मुक्तिदा नित्यं तत्तत्कामार्थदा नृणाम् । ब्रह्मस्वपरिहारार्थं सौवर्णं लिङ्गमर्चयेत् ॥६॥
लवणेन च सौभाग्यं पार्थिवं सार्वकामिकम् । अनेकगुणसम्भूतं रेतोत्थं परिकीर्तितम् ॥७॥
ग्रामदं तिलपिष्टोत्थं तुषोत्थं मारणे स्मृतम् । अन्नोत्थमन्नदं प्रोक्तं गुडोत्थं प्रीतिवर्धनम् ॥८॥
गन्धोत्थं भोगदं चैव शर्करोत्थं सुखप्रदम् । यवपिष्टोद्भवं लिङ्गं वंशकामोऽर्चयेत्पुमान् ॥९॥
तण्डुलानां च पिष्टेन पुत्रबाहुल्यमाप्नुयात् । सर्वरोगविनाशाय गोमयोत्थं प्रपूजयेत् ॥१०॥
केशास्थिसम्भवं लिङ्गं सर्वशत्रुविनाशनम् । आसुरं लवणोत्थं च सर्वलोकवशङ्करम् ॥११॥
स्तम्भने रजनीपिष्टसम्भवं लिङ्गमुत्तमम् । तण्डुलोद्भवपिष्टानां लिङ्गं विद्याप्रदं स्मृतम् ॥१२॥
दधिदुग्धोद्भवं लिङ्गं कीर्तिलक्ष्मीसुखप्रदम् । धान्यदं धान्यजं लिङ्गं फलोत्थं फलदं भवेत् ॥१३॥
पुण्यार्थं सर्वसौभाग्यमुक्ताधात्रीफलोद्भवम् । नवनीतोद्भवं लिङ्गं कीर्तिसाम्राज्यदायकम् ॥१४॥
दूर्वागुडूचीसम्भूतमपमृत्युनिवारणम् । इक्षुदण्डोद्भवं लिङ्गं स्फुटमुच्चाटयेत्परम् ॥१५॥
इन्द्रनीलमयं लिङ्गं बहुपोषणकामकृत् । स्फाटिकं बहुस्वामित्वफलदं मुनिभि: स्मृतम् ॥१६॥
पितृणां मुक्तये पूज्यं लिङ्गं रजतसम्भवम् । हेमजं सत्यलोकस्य प्राप्तये पूजयेत्पुमान् ॥१७॥
पूजयेत्ताम्रजं लिङ्गं पुष्टिकामो हि मानव: । कृषिकामस्तु सततं लिङ्गं पित्तलसम्भवम् ॥१८॥
कीर्तिकामोऽर्चयेल्लिङ्गं सदा कांस्यसमुद्भवम् । शत्रुमारणकामस्तु लिङ्गं लोहमयं सदा ॥१९॥
ज्वरशान्त्यै चन्दनजमर्चयेद्विधिवत् सदा । कर्पूरसम्भवं लिङ्गं शान्तिकामोऽर्चयेत्सदा ॥२०॥
कस्तूरीसम्भवं लिङ्गं गन्धकामो हि पूजयेत् । लिङ्गं गोरोचनोत्थं च रूपकामस्तु पूजयेत् ॥२१॥
कान्तिकामस्तु सततं लिङ्गं कुङ्कुमकेसरम् । श्वेतागरुसमुद्भूतं महाबुद्धिविवर्धनम् ॥२२॥
धारणाशक्तिदं लिङ्गं कृष्णागरुसमुद्भवम् । यक्षकर्दमसम्भूतं लिङ्गं प्रीतिविवर्धनम् ॥२३॥
गोधूमपिष्टजं लिङ्गं गोकामो हि प्रपूजयेत् । मुद्गपिष्टमयं लिङ्गं पूजयन्मुक्तिमाप्नुयात् ॥२४॥
माषपिष्टमयं लिङ्गं नित्यमिष्टार्थसिद्धिदम् । चणकोद्भवपिष्टेन लिङ्गं बुद्धिविवर्धनम् ॥२५॥
लिङ्गं व्रीहिमयं पूज्यं धान्यकामेन नित्यश: । यवधान्यमयं लिङ्गं सर्वारिष्टनिवारणम् ॥२६॥
य: करोति तिलै: श्वेतैस्तद्द्वीपे च महीयते । य: कृष्णैश्च तिलै: सम्यग्लिङ्गं कृत्वार्चयेन्नर: ॥२७॥
कामेशश्च प्रियो नित्यं भवेत्स्त्रीणां हि मानव: ।

पार्थिव लिङ्ग पूजन से करोड़ों यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं। मनुष्यों को भोग, मोक्ष, काम, अर्थ होते हैं। ब्रह्मस्व-हरण के पाप से छुटकारे के लिये सोने के लिङ्ग की पूजा करे। नमक के लिंग की पूजा से सौभाग्य प्राप्त होता है। पार्थिव

लिंग समस्त कामनाओं को देने वाला होता है। बालू से निर्मित लिंग अनेक गुणों से युक्त होता है। तिल-पिष्ट से बने लिंग के पूजन से ग्राम का लाभ होता है। भूसे से निर्मित लिंग का पूजन मारण कर्म में किया जाता है। अन्न से निर्मित लिङ्ग अन्न प्रदान करने वाला होता है। गुड़ से बना लिंग प्रीति बढ़ाने वाला होता है। गन्धनिर्मित लिंग से भोग प्राप्त होता है। शक्कर से निर्मित लिङ्ग से सुख प्राप्त होता है। यवपिष्ट से निर्मित लिङ्ग वंशवृद्धि करता है। चावल के आँटे से निर्मित लिंग बहुत पुत्र देने वाला होता है। समस्त रोगों के नाश के लिये गोबर से निर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये। केश एवं अस्थि से निर्मित लिंग समस्त शत्रुओं का विनाशक होता है। आसुरी लवण से निर्मित लिंग समस्त लोकों को वश में करने वाला होता है। हल्दी-चूर्ण से निर्मित लिंग से स्तम्भन होता है। तण्डुलचूर्ण से निर्मित लिंग विद्या देने वाला होता है। दही एवं दुग्ध से निर्मित लिङ्ग कीर्ति, लक्ष्मी एवं सुख देने वाला होता है। धान्यनिर्मित लिंग धान्य देने वाला एवं फलनिर्मित लिंग फल देने वाला होता है। मुक्ताफल (कोंहड़ा) या आँवलाफल से निर्मित लिङ्ग समस्त सौभाग्य एवं पुण्य देने वाला होता है। मक्खन से निर्मित लिंग कीर्ति एवं साम्राज्य देने वाला होता है। दूर्वा एवं गुडूची से निर्मित लिंग अपमृत्यु का निवारक होता है। ईख से निर्मित लिंग उच्चाटनकारक होता है। इन्द्रनील (नीलम) से बना लिंग सम्पन्नता देने वाला होता है। स्फटिक से निर्मित लिंग असंख्य लोगों का स्वामित्व प्रदान करता है। रजत-निर्मित लिंग के पूजन से पितरों की मुक्ति होती है। स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये सुवर्णनिर्मित लिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। ताम्र-निर्मित लिंग से पुष्टि प्राप्त होती है। पीतल-निर्मित लिंग का पूजन कृषि कार्य हेतु किया जाता है। कीर्ति चाहने वाले को काँसे से निर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये एवं शत्रुमृत्यु की कामना वाले को सदा लौहनिर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये। ज्वरशान्ति के लिये सदा चन्दन-निर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये एवं शान्ति चाहने वालों को कर्पूर-निर्मित लिंग का अर्चन करना चाहिये। गन्ध की कामना वाले कस्तूरी से बने लिंग का अर्चन करना चाहिये एवं गोरोचन से बने लिंग की पूजा रूप चाहने वाले को करना चाहिये। कान्ति चाहने वाले को बराबर कुङ्कुम एवं केशरनिर्मित लिङ्ग का अर्चन करना चाहिये। श्वेत अगर से बने लिङ्ग की पूजा से महाबुद्धि की वृद्धि होती हैं। काले अगर से निर्मित लिङ्ग के पूजन से धारणा शक्ति बढ़ती है। यक्षकर्दम के लिङ्ग से प्रीति की वृद्धि होती है। गाय की कामना से गेहूँ के चूर्ण से बने लिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। मूंग के चूर्ण से बने लिङ्ग के पूजन से मुक्ति मिलती है। उड़दचूर्ण लिङ्ग से नित्य इष्ट अर्थ की सिद्ध होती है। चने के वेसन से निर्मित लिङ्ग के पूजन से बुद्धि बढ़ती है। धान्यनिर्मित लिङ्ग की पूजा से धान्य प्राप्त होते हैं। यव धान्यमिश्रित लिङ्ग से सभी अरिष्टों का निवारण होता है। उजले तिल से निर्मित लिङ्ग के पूजन से श्वेत द्वीप में वास प्राप्त होता है। जो मनुष्य काले तिल से सम्यक् रूप से लिङ्ग बनाकर पूजन करता है, वह कामदेव के समान स्त्रियों का प्रिय होता है।

यथर्तुपौष्पलिङ्गार्चनफलानि

ग्रीष्मे च मल्लिकापुष्पसम्भवं लिङ्गमुत्तमम् ॥२८॥

पूजयित्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति महतीं कृषिम् । वर्षासु पूजयेद्भक्त्या लिङ्गं कनकपुष्पजम् ॥२९॥
इह चामुष्मिके लोके सुखीभवति चात्मनः । नीलोत्पलमयं लिङ्गं कृत्वा शरदि मानवः ॥३०॥
पूजयेत्परमां सिद्धिं भक्त्या प्राप्नोति नित्यशः । हैमन्तीयैश्च कुसुमैर्लिङ्गं कृत्वा मनोरमम् ॥३१॥
भक्त्या चाभ्यर्च्य मतिमान् शिवेन सह मोदते । शिशिरे सर्वपुष्पोत्थं लिङ्गमभ्यर्च्य मानवः ॥३२॥
सर्वपापं विहायाशु ब्रह्मणा सह मोदते । येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि वस्तुनः ॥३३॥
कृत्वा लिङ्गं समभ्यर्च्य प्राजापत्यमवाप्नुयात् । विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः ॥३४॥
महाहानिर्भवेत्तस्य सर्वत्रास्य दुरात्मनः । कृत्वा सर्वाणि दानानि व्रतानि विविधानि च ॥३५॥
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गार्चातः कृताः स्मृताः । कलौ लिङ्गार्चनं श्रेष्ठं यथा लोके प्रदृश्यते ॥३६॥
ततोऽन्यन्नास्ति नास्तीति शास्त्राणामेष निश्चयः । भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापन्निवारणम् ॥३७॥

पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।

गर्मी में बेलाफूल से निर्मित लिङ्ग की पूजा करने से खेतीबारी में सफलता होती है। वर्षा ऋतु में धत्तूर के फूल से बने लिङ्ग की पूजा करने से इस लोक में और परलोक में सुख प्राप्त होता है। शरत् काल में नीलोत्पल के लिङ्ग की पूजा भक्तिपूर्वक करने से दुर्लभ सिद्धि प्राप्त होती है। हेमन्त ऋतु में फूलने वाले मनोरम पुष्पों से निर्मित लिङ्ग की पूजा से शिव सान्निध्य प्राप्त होता है। शिशिर में होने वाले पुष्पों से निर्मित लिङ्ग का पूजन करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में जाता है। जिस किसी भी प्रकार से किसी भी वस्तु से लिङ्ग बनाकर पूजन करने से प्राजापत्य की सिद्धि होती है। जिस दुरात्माका समय बिना लिङ्गपूजन के व्यतीत होता है, उसकी सर्वत्र महाहानि होती है। सभी दान, व्रत, तीर्थ, नियम, यज्ञों के फल लिङ्गार्चन से ही प्राप्त होते हैं। कलियुग में संसार में लिङ्गार्चन जैसा श्रेष्ठ है, वैसा दूसरा कोई अर्चन नहीं है। यह शास्त्रों का निर्णय है। लिङ्ग भुक्ति-मुक्ति का प्रदायक और सभी विपत्तियों का निवारक होता है। इसके नित्य पूजन से मनुष्य शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।

रत्नमयलिङ्गेष्वन्योन्यापेक्षया श्रेष्ठतानिरूपणम्

लिङ्गानामपि सर्वेषां पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ॥३८॥

कृत्वा सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात्। पाषाणसम्भवं लिङ्गं संपूज्य परया मुदा ॥३९॥
इह कामानवाप्नोति सदा चानुत्तमं सुखम्। पाषाणात्स्फाटिकं श्रेष्ठं स्फाटिकात्पद्मरागजम् ॥४०॥
पद्मरागाच्च काश्मीरं काश्मीरात्पुष्परागजम्। पुष्परागादिन्द्रनीलमिन्द्रनीलाच्च गोमदम् ॥४१॥
ततो गारुत्मतं श्रेष्ठं तस्मान्माणिक्यसम्भवम्। माणिक्याद्विद्रुमं श्रेष्ठं विद्रुमान्मौक्तिकं परम् ॥४२॥
मौक्तिकाद्राजतं श्रेष्ठं सौवर्णं राजतात्परम्। सौवर्णाद्धीरकं श्रेष्ठं हीरकात्पारदं स्मृतम् ॥४३॥
पारदाद्बाणजं श्रेष्ठं ततः श्रेष्ठं न विद्यते। नर्मदाजलमध्यस्थं बाणलिङ्गमिति स्मृतम् ॥४४॥
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गदानव्रतानि च। त्रिसन्ध्यं योगसिद्ध्यादि बाणलिङ्गे च संस्थितम् ॥४५॥
बाणासुरार्चितं लिङ्गं बाणलिङ्गं तदुच्यते। अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या शिवलोके महीयते ॥४६॥
बाणलिङ्गेन चण्डेशे न च निर्माल्यकल्पना। सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं शक्त्या भक्त्या नचान्यथा ॥४७॥
बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते। चान्द्रायणशतं ज्ञेयं शम्भुनैवेद्यभक्षणम् ॥४८॥
ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयं बाणलिङ्गे विधीयते। तदर्पितं तिलं चिह्नं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया ॥४९॥
बाणे च रजते रत्ने स्फाटिके हेमनिर्मिते। काश्मीरे चन्द्रकान्ते च लिङ्गे स्वायंभुवे तथा ॥५०॥
सदा सन्निहितो देवः सत्यं सत्यं न संशयः। शिवनाभिमयं लिङ्गं नित्यं पूज्यं महात्मभिः ॥५१॥
एतच्च सर्वलिङ्गेभ्यः शस्तं पूजाविधानकैः।

सभी लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग उत्तम होता है। इस लिङ्ग की विधिवत् पूजा से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। पत्थर से बने लिङ्ग के पूजन से इहलोक में परम प्रसन्नता सहित सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है और सदैव उत्तम सुख मिलता है। पत्थर से निर्मित लिङ्ग से श्रेष्ठ स्फटिक-निर्मित लिङ्ग होता है। स्फटिक से श्रेष्ठ पद्मराग का लिङ्ग होता है। पद्मराग से श्रेष्ठ काश्मीर होता है। काश्मीर से श्रेष्ठ पुष्पराग का लिङ्ग होता है। पुष्पराग लिङ्ग से श्रेष्ठ नीलम का लिङ्ग होता है। नीलम से श्रेष्ठ गोमेद का लिङ्ग होता है और इससे श्रेष्ठ गारुत्मत लिङ्ग होता है। गारुत्मत से श्रेष्ठ माणिक्य लिङ्ग होता है। माणिक्य से श्रेष्ठ मूंगा का लिङ्ग होता है। मूंगे से श्रेष्ठ मोती का लिङ्ग होता है। मोती के लिङ्ग के श्रेष्ठ चाँदी का लिङ्ग और चाँदी से श्रेष्ठ सोने का लिङ्ग होता है। स्वर्णलिङ्ग से श्रेष्ठ हीरे का लिङ्ग और हीरे से श्रेष्ठ पारे का लिङ्ग होता है। पारद लिङ्ग से श्रेष्ठ बाणलिङ्ग होता है। इससे श्रेष्ठ कोई लिङ्ग नहीं होता। नर्मदा जल के मध्य में स्थित लिङ्ग को बाण लिङ्ग कहते हैं। सभी तीर्थ, यज्ञ, सांग दान, व्रत, त्रिकाल सन्ध्या, योगसिद्धि का बाण लिङ्ग में वास रहता है। बाणासुर द्वारा अर्चित लिङ्ग को बाणलिङ्ग कहते हैं। इसका विधिवत् अर्चन भक्तिपूर्वक करने पर शिवलोक का वास मिलता है। बाणलिङ्ग के निर्माल्य में चण्डेश्वर का अधिकार नहीं है। शिव स्वयं बाणलिङ्ग होकर चन्द्रकान्त के हृदय में रहते हैं। इस पर चढ़े नैवेद्य के भक्षण से

सौ चान्द्रायण व्रत का फल मिलता है। बाणलिङ्ग में ग्राह्य-अग्राह्य दो पक्ष हैं। बाणलिङ्ग में तिल का चिह्न होने पर वह प्रसाद लिङ्ग के रूप में ग्राह्य है। बाण, चाँदी, रत्न, स्फटिक, सोना, काश्मीर का चन्द्रकान्त और स्वायंभुव लिङ्ग में शिव जी सदैव सन्निहित रहते हैं, यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है। शिव के नाभिस्वरूप लिङ्ग का पूजन महात्माओं को नित्य करना चाहिये। यह लिंग पूजा के लिये अन्य सभी लिंगों से श्रेष्ठ कहा गया है।

उत्तमादिना लिङ्गे त्रैविध्यम्

उत्तमं मध्यमं नीचं त्रिविधं लिङ्गमीरितम् ॥५२॥
चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं रम्यं वेदिकया शिवम्। उत्तमं लिङ्गमाख्यातं मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ॥५३॥
तदर्धं मध्यमं प्रोक्तं तस्यार्धं वाधमं स्मृतम्। एवं लिङ्गं समासाद्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥५४॥
पूजयित्वा लभेत्कामान्मनसा चाभिलाषितान्।

उत्तम मध्यम निकृष्ट—तीन प्रकार के लिङ्ग होते हैं। मुनियों और तन्त्रज्ञों के अनुसार वेदी से चार अंगुल ऊपर स्थित लिङ्ग उत्तम होता है। दो अंगुल उच्च लिङ्ग मध्यम होता है एवं एक अंगुल उच्च लिङ्ग अधम होता है। इस प्रकार स्थापित लिङ्ग का पूजन श्रद्धा-भक्ति से करने पर सभी इच्छित काम और अभिलाषाओं की पूर्ति होती है।

लिङ्गाराधनमेव परं साधनम्

शास्त्राण्यालोड्य सर्वाणि तदर्थान्परिभाव्य च ॥५५॥
पुरुषार्थप्रदं तत्त्वं निश्चितं लिङ्गपूजनम्। सर्वमूर्तीः परित्यज्य कर्मजालं विशेषतः ॥५६॥
भक्त्या परमया विद्वाँल्लिङ्गमेवं प्रपूजयेत्। लिङ्गार्चनेऽर्चितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥५७॥
संसारार्णवमग्नानां नान्यत्तारणसाधनम्। अज्ञानतिमिरान्धानां विषयासक्तचेतसाम् ॥५८॥
प्लवो नान्योऽस्ति जगतो लिङ्गाराधनमन्तरा। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे मुनयो यक्षराक्षसाः ॥५९॥
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा दैतेया दानवास्तथा। पूजयित्वा महाभक्त्या लिङ्गं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥६०॥
अचिराल्लेभिरे नूनं सर्वान् कामान् समीहितान्।

सभी शास्त्रों का आलोडन करके, उनके अर्थों को जानकर यह निश्चित किया गया है कि लिङ्गपूजन से पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। सभी मूर्तियों को छोड़कर विशेषतः कर्मजाल को त्यागकर विद्वान् परम भक्ति से शिवलिङ्ग का पूजन करे। भवसागर में डूबते सभी स्थावर-जंगमों को तरने का साधन लिङ्गार्चन ही है। इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा साधन नहीं है। अज्ञान तिमिर से अन्धों एवं विषयासक्त चेतना वालों के लिये संसार में लिङ्गार्चन के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं है। इस सर्वार्थ सिद्धिदायक लिङ्ग की पूजा महाभक्ति से ब्रह्मादि सभी देवता, सभी मुनि, यक्ष-राक्षस-गन्धर्व-चारण-सिद्ध-दैत्यदानव करते हैं। वे सभी थोड़े ही दिनों में अपने सभी अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं।

स्व-स्वमार्गेणैव पूजाविधानम्

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो शूद्रो वाप्यनुलोमजः ॥६१॥
पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण साधकः। द्विजानां वैदिकेनापि मार्गेणाराधनं परम् ॥६२॥
अन्येषामपि जन्तूनां वैदिकेनापि मन्त्रतः। तन्त्रोक्तदीक्षितानां च तन्त्रेणापि विधानतः ॥६३॥
स्मृतमाराधनं शम्भोर्नैव वैदिकवर्त्मना। वैदिकानां च सर्वेषां पूजा वैदिकमार्गतः ॥६४॥
कर्तव्या नान्यमार्गेण चेत्याह भगवाञ्छिवः। दधीचिगौतमादीनां शतसम्बद्धचेतसाम् ॥६५॥
न जायतेऽन्यवर्त्मापि शर्मवैदिकवर्त्मना। यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा ॥६६॥
अन्यत्समाचरन्मर्त्यो न स कर्मफलं लभेत्। तत्रापि पार्थिवं लिङ्गं क्षिप्रसिद्धिप्रदं भवेत् ॥६७॥
पार्थिवेन तु लिङ्गेन बहुसिद्धिमवाप्नुयात्।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अनुलोमज सभी को लिङ्गपूजन तत्तत् मन्त्रों से करते हैं। द्विजों के लिये वैदिक मार्ग से आराधना श्रेष्ठ कही गई है। अन्य लोग भी वैदिक मन्त्र से आराधना करते हैं। तान्त्रिक मत में दीक्षित साधक को तान्त्रिक मन्त्रों से विधानपूर्वक आराधना करनी चाहिये। स्मार्तों को शिव-आराधना वैदिक मार्ग से नहीं करनी चाहिये। वैदिकों को सभी पूजन वैदिक मार्ग से ही करना चाहिये। वैदिकों को अन्य मार्ग से भगवान् शिव की आराधना नहीं करनी चाहिये। दधीचि गौतम आदि सैकड़ों सम्बद्ध चित्त वाले दूसरे मार्ग पर नहीं जाते हैं, केवल वैदिक मार्ग से ही पूजा करते हैं। जो वैदिक मार्ग का अनादर करके एवं स्मार्त मार्ग को भी छोड़कर अन्य मार्ग से आराधना करते हैं, उन्हें कर्मफल नहीं मिलता। इनमें भी पार्थिव लिङ्ग शीघ्र सिद्धिदायक है। पार्थिव लिङ्ग से बहुत सिद्धियाँ मिलती हैं।

यथायुगं लिङ्गविशेषप्राशस्त्यं कलौ पार्थिवार्चाप्रशंसा च

कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम् ॥६८॥
द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे। अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिर्वै पार्थिवी परा ॥६९॥
एवं पार्थिवलिङ्गे तु नित्यं सन्निहितः शिवः। यथा सर्वेषु देवेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठो महेश्वरः ॥७०॥
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते। यथा सर्वेषु वेदेषु प्रणवश्च महान् स्मृतः ॥७१॥
तथैव पार्थिवं श्रेष्ठं प्राराध्यं पूज्यमेव हि। पार्थिवाराधनं पुण्यमायुर्धनविवर्धनम् ॥७२॥
प्रसन्नं तुष्टिदं श्रीदं कार्यसाधनसिद्धिदम्। यथासर्वोपचारैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥७३॥
पूजयेत्पार्थिवं लिङ्गं शास्त्रोक्तविधिना नरः। पञ्चसूत्रविभागं च पार्थिवं न विचारयेत् ॥७४॥
आकारमात्रं रचयेत्सर्वसिद्धिप्रदायकम्। द्विखण्डमत्र कुर्वाणो नैव पूजाफलं लभेत् ॥७५॥
रत्नजं हेमजं लिङ्गं पारदं स्फाटिकं तथा। पार्थिवं पिष्टजं पौष्पं माषजं तु प्रकारयेत् ॥७६॥

सत्ययुग में रत्नमय लिङ्ग का, त्रेता में स्वर्ण लिङ्ग का, द्वापर में पारद लिङ्ग का और कलियुग में पार्थिव लिङ्ग का पूजन श्रेष्ठ होता है। सभी आठ मूर्तियों में पार्थिव मूर्ति परा है। इस प्रकार पार्थिव लिङ्ग में शिव सदैव सन्निहित रहते हैं। जैसे सभी देवों में बड़े शिव हैं वैसे ही सभी लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग श्रेष्ठ है। जैसे सभी वेदों में प्रणव श्रेष्ठ है, वैसे ही पार्थिवलिङ्ग श्रेष्ठ आराध्य और पूज्य है। पार्थिव लिङ्ग का आराधन पुण्य, आयु एवं धन का विवर्द्धक होता है। यह प्रसन्नता, तुष्टि, लक्ष्मी एवं कार्यसाधन में सिद्धिप्रद है। यथोपलब्ध सभी उपचारों से भक्ति-श्रद्धा से पार्थिक लिङ्ग का पूजन शास्त्रोक्त विधि से करना चाहिये। पार्थिव लिङ्ग में पञ्चसूत्र विभाग का विचार नहीं होता। आकारमात्र बनाने से ही सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। इसका निर्माण खण्डों में नहीं करना चाहिये। करने से पूजा फल नहीं मिलता। रत्नज, स्वर्णज, स्फाटिक, पारद, पार्थिव, पिष्टज, पौष्प और माषज लिङ्ग अखण्ड बनाना चाहिये।

खण्डाखण्डविभागविषयः

अखण्डं तु चरं लिङ्गं द्विखण्डमचरं स्मृतम्। खण्डाखण्डविभागोऽयं चराचरतया स्मृतः ॥७७॥
वेदिका तु महाविष्णुर्लिङ्गं देवो महेश्वरः। अतोऽपि स्थावरं लिङ्गं स्मृतं शेषे द्विखण्डता ॥७८॥
वेदिका तु महादेवी गिरिजा शिववल्लभा। पिण्डिका तु महेशानो द्वयोर्योगो द्विखण्डता ॥७९॥
द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं हि विधानतः। अखण्डं जङ्गमं प्रोक्तं शैवसिद्धान्तवेदिभिः ॥८०॥
द्विखण्डं तु चरं लिङ्गं कुर्वन्नज्ञानमोहितः। नैव सिद्धान्तवेत्तारो मुनयः शास्त्रपारगाः (?)॥८१॥
अखण्डं स्थावरं लिङ्गं द्विखण्डं चरमेव च। ये कुर्वन्ति नरा मूढा न पूजाफलमाप्नुयुः ॥८२॥
तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना द्विखण्डं चरसंज्ञितम्। विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं परया मुदा ॥८३॥
अखण्डे तु चरे पूजा सम्पूर्णफलदा स्मृता। द्विखण्डे स्थावरे पूजा सम्पूर्णफलदायिनी ॥८४॥
द्विखण्डे तु चरे पूजा महाहानिः प्रजायते। अखण्डे स्थावरे पूजा न पूजाफलदायिनी ॥८५॥

अखण्ड को चर लिङ्ग कहते हैं एवं द्विखण्ड को अचर लिङ्ग कहते हैं। खण्ड अखण्ड-विभाग का यह चर-अचर कहा गया है। वेदिका विष्णु है और लिङ्ग महेश्वर है। इसी से द्विखण्ड लिङ्ग को स्थावर लिंग कहते हैं। शिववल्लभा महादेवी गिरिजा वेदी एवं पिण्डी साक्षात् महादेव होते हैं; अत: दोनों के योग से द्विखण्डता होती है। स्थावर लिङ्ग को द्विखण्ड विधान से बनाना चाहिये। शैव-सिद्धान्तज्ञानियों ने अखण्ड को जंगम लिङ्ग कहा है। अज्ञान से मोहित होकर चर लिङ्ग को जो दो खण्डों में बनाते हैं, उन मूढ़ों को पूजाफल नहीं मिलता। इसलिये शास्त्रोक्त विधि से द्विखण्ड चर लिङ्ग और अखण्ड स्थावर लिङ्ग बनावे। अखण्ड चर लिङ्ग का पूजन सम्पूर्ण फलदायक होता है। द्विखण्ड स्थावर लिङ्ग पूजा से भी सम्पूर्ण फल मिलता है। द्विखण्ड चर लिङ्ग की पूजा से महाहानि होती है। अखण्ड स्थावर लिङ्ग में पूजा से फल नहीं मिलता।

वेदोक्तविधिना पार्थिवार्चाकथनम्

अथ वैदिकभावानां पार्थिवार्चा निगद्यते। वेदोक्तविधिना सम्यक्सम्पूर्णफलसिद्धये ॥८६॥
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा संध्यां कृत्वा यथाविधि। ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमेव च ॥८७॥
नैमित्तं सकलं कर्म विधायानन्तरं पुमान्। पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ॥८८॥

वैदिकों के लिये पार्थिव पूजन का विधान कहता हूँ; क्योंकि सम्पूर्ण फल-प्राप्ति के लिये वैदिक विधि से ही उन्हें पूजा करनी चाहिये। सूक्तोक्त विधि से स्नान करके यथाविधि सन्ध्या करके ब्रह्मयज्ञ करके तर्पण करे। इसके बाद सभी नैमित्तिक कर्मों को करे। तब परम भक्ति से उत्तम पार्थिव लिङ्ग का पूजन करे।

पार्थिवार्चास्थान-मृद्वर्णनम्

नदीतीरे तडागादौ पर्वते काननेऽपि वा। शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ॥८९॥
शुद्धप्रदेशसम्भूतां मृदमाहृत्य यत्नतः। विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे वैश्यजातिके ॥९०॥
पीता शूद्रे तु कृष्णा स्यादथवा यत्र या भवेत्। संग्राह्या मृत्तिका लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः ॥९१॥
आनीय शुद्धदेशे तु संस्थाप्य मृदमुत्तमाम्। संशोध्य च जलैः शुद्धैः पिण्डीकृत्य शनैः शनैः ॥९२॥
पश्चाल्लिङ्गं विधायाशु क्रमेणानेन भक्तिमान्। प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैः पूर्वोक्तैर्नामभिः क्रमात् ॥९३॥
कर्तव्या मत्प्रिया पूजा भक्त्या परमया मुदा। प्राणायामत्रयं कुर्यात् मूलमन्त्रेण देशिकः ॥९४॥
भूतशुद्धिं विधायादौ विन्यसेन्मातृकामयम्। पञ्चब्रह्ममयं न्यासमष्टात्रिंशत्कलात्मकम् ॥९५॥ इति।

अत्र दशविधमातृकान्यासकरणाशक्तौ अन्तर्मातृकाबहिर्मातृकाश्रीकण्ठादिमातृकाष्टात्रिंशत्कलान्यासा इति न्यासचतुष्टयमावश्यकम्।

नदीतट पर या तालाब के किनारे या पर्वत पर या जंगल में या शिवालय में या पवित्र स्थान में पार्थिव अर्चन करना चाहिये। पार्थिव लिंग-निर्माण हेतु शुद्ध प्रदेश से मिट्टी लाकर उसे स्थापित करे। विप्र को गोरी मिट्टी, क्षत्रियों को लाल, वैश्यजाति को पीली मिट्टी और शूद्रों को काली मिट्टी लेनी चाहिये या जहाँ जैसी मिट्टी उपलब्ध हो, लिङ्ग बनाने के लिये ले आये। मिट्टी लाकर उसे शुद्ध देश में स्थापित करके उस मिट्टी का शोधन करे; फिर शुद्ध जल से सानकर धीरे-धीरे पिण्डी बनावे। तब भक्तिसहित क्रमशः लिङ्ग बनावे। फिर पूर्वोक्त चतुर्थ्यन्त नाम के पहले ॐ लगावे तब भक्ति से प्रसन्नतापूर्वक पूजा करे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। भूतशुद्धि करके मातृका न्यास करे। पञ्च ब्रह्ममय न्यास और अड़तीस कलात्मक न्यास करे।

दशविध मातृका न्यास करने में अशक्त होने पर अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका, श्रीकण्ठादि मातृका, अड़तीस कला न्यास—यह न्यासचतुष्टय अवश्य करना चाहिये।

नवाक्षरशैवमन्त्र-तदृष्यादिषडङ्गध्यानादिक्रमः
कामदुघामन्त्रश्च

तथा—
अर्घ्यादिपात्राण्यासाद्य शैवे पीठे शिवं यजेत्। उपचारैः प्रयत्नेन शैवमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥९६॥

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्राणायामत्रयं चरेत्। प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य महाप्रासादमुद्धरेत् ॥९७॥
चिन्तारत्नं समुद्धृत्य भुवनेशीमनन्तरम्। पञ्चाक्षरो महेशस्य मूलमन्त्रो नवाक्षरः ॥९८॥

'ॐ ह्रौं क्ष्म्र्यूं ह्रीं नमः शिवाय:' इति नवाक्षरः।

वामदेव ऋषिश्छन्दो गायत्रं निचृदन्वितम्। पार्थिवेश्वरनामादिचिन्तामणिरितीरिता ॥९९॥
देवता कथिता बीजं महाप्रासादसंज्ञितम्। शक्तिस्तु भुवनेशानी नतिः कीलकमुच्यते ॥१००॥
विनियोगः समाख्यातः पुरुषार्थचतुष्टये। चत्वारि बीजान्युच्चार्य सर्वज्ञाय हृदीरितम् ॥१०१॥
तथैव नित्यतृप्ताय शिरसे वह्निवल्लभा। वदेदनादिबोधाय शिखायै वषडित्यथ ॥१०२॥
स्वतन्त्रशक्तये प्रोक्त्वा कवचाय हुमीरितम्। अलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषडुच्चरेत् ॥१०३॥
अनन्तशक्तये प्रोक्त्वा अस्त्राय फडिति क्रमात्। एवं षडङ्गं विन्यस्य ध्यायेद्देवमतन्द्रितः ॥१०४॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा रमन्तं हृदयारबिन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥१०५॥
वन्दे महेशं सुरसिद्धसेवितं भक्तैः सदा पूजितपादपद्मम्।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुप्रमुखैश्च वन्दितं ध्यायेत्सदा कामदुघं प्रसन्नम् ॥१०६॥
ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥१०७॥

एवं ध्यात्वा महामन्त्रं जपेन्नियतमानसः। यथाशक्ति ततः कुर्यात्प्राणायामषडङ्गकम् ॥१०८॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ॥१०९॥
इत्युच्चार्य जपं हस्ते दक्षे देवस्य चार्पयेत्। प्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य मुहुर्मुहुः ॥११०॥
प्रार्थयेत् परया भक्त्या देवदेवं जगद्गुरुम्। जय देव जगन्नाथ जय शाश्वत शङ्कर ॥१११॥
जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित। जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ॥११२॥
जय नित्यनिराधार जय विश्वम्बराव्यय। जय विश्वैकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण ॥११३॥
जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर। जय कोट्यर्कसङ्काश जयानन्तगुणालय ॥११४॥
जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन। जय नाथ कृपासिन्धो जय दुःखार्तिभञ्जन ॥११५॥
जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो। प्रसीद मम देवेश संसारार्तस्य बिभ्यतः ॥११६॥
सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर। महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतौजसः ॥११७॥
महाशोकनिमग्नस्य महारोगातुरस्य च। ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ॥११८॥
ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर। दीर्घमायुः सदारोग्यं यशोवृद्धिर्बलोन्नतिः ॥११९॥
ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर। शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु नवग्रहाः ॥१२०॥
नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः। दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ॥१२१॥
वसुसस्यसमृद्धिं च ममानन्दं सदा दिश। प्रदोषे वापि पूजान्ते प्रार्थयेद्भक्तितत्परः ॥१२२॥
प्रसन्नोऽभीप्सितं देवो ददाति गिरिजापतिः। एवं संप्रार्थ्य तत्तेजो वहन्नासापुटाध्वना ॥१२३॥
समानीय स्वहृदये महासंहारमुद्रया। शिवलिङ्गं तु नद्यादौ संस्थाप्य विहरेत्सुखी ॥१२४॥ इति।

अत्र प्रागुक्तपार्थिवेश्वरचिन्तामणिमन्त्रो वा जप्तव्यः, कामदुघामन्त्रो वा, कामदुघामन्त्रस्तु—

षडक्षरं समुच्चार्य प्रपन्नेति पदं तथा। पारिजाताय चोच्चार्य वह्निजायां समुद्धरेत् ॥१२५॥
षोडशार्णो महेशस्य मन्त्रः कामदुघाह्वयः ।
'ॐ नमः शिवाय प्रपन्नपारिजाताय स्वाहा'। एतस्य न्यासध्यानादिकं प्राग्वत्।

अर्घ्यादि पात्रासादन करके शैव पीठ में शिव की पूजा उपचारों से करे। तदनन्तर शैव मुद्रा दिखावे। तीन पुष्पाञ्जलि देकर तीन प्राणायाम करे। प्राणायाम मन्त्र नवाक्षर है—ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं नमः शिवाय। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, छन्द गायत्री निचृत्, देवता पार्थिवेश्वर चिन्तामणि, बीज महाप्रासाद ह्रौं, शक्ति भुवनेशी एवं नमः कीलक है। पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं सर्वज्ञाय हृदयाय नमः।
ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं नित्यतृप्ताय शिरसे स्वाहा।
ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं अनादिबोधाय शिखायै वषट्।
ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं स्वतन्त्रशक्तये कवचाय हुम्।
ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं अलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ ह्रौं क्ष्म्यूं ह्रीं अनन्तशक्तये अस्त्राय फट्।

इस प्रकार षडङ्ग न्यास करके देव का इस प्रकार ध्यान करे—

कर्पूर-सदृश गौर वर्ण वाले, करुणा के सागर, ससार के मूलस्वरूप, सर्पों की माला धारण करने वाले, हृदय में सदा रमन करने वाले भवानी-सहित भव को मैं प्रणाम करता हूँ। सुरों एवं सिद्धों से सदा सेव्यमान, भक्तों से सदा पूजित चरणों वाले, ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवताओं द्वारा सदा स्तूयमान प्रसन्न कामदुघा का मैं सदा ध्यान करता हूँ। चाँदी के पर्वत के समान, मनोरम चन्द्रमा का मुकुट धारण किये, रत्नों के समान शोभायमान अंगों वाले, परशु-मृग-वर-अभय हाथों में धारण किये, प्रसन्नतापूर्वक पद्मासन पर विराजमान, देवताओं द्वारा बराबर स्तूयमान, व्याघ्रचर्म धारण करने वाले, विश्व के आदिभूत, विश्व के कारणस्वरूप समस्त भय को दूर करने वाले, पाँच मुख वाले एवं तीन नेत्र वाले महेश का मैं ध्यान करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करने के बाद एकाग्र मन से महामन्त्र का यथाशक्ति जप करे तब षडङ्ग न्यास करके प्राणायाम करके इस मन्त्र को बोलते हुये जप का समर्पण करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर।।

प्रदक्षिणा एवं नमस्कार से बार-बार देवता को परितुष्ट करे। तब इस प्रकार प्रार्थना करे—

जय देव जगन्नाथ जय शाश्वत शङ्कर।
जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित। जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद।।
जय नित्यनिराधार जय विश्वम्बराव्यय। जय विश्वैकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण।।
जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर। जय कोट्यर्कसङ्काश जयानन्तगुणालय।।
जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन। जय नाथ कृपासिन्धो जय दुःखार्तिभञ्जन।।
जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो। प्रसीद मम देवेश संसारार्तस्य बिभ्यतः।।
सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर। महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतौजसः।।
महाशोकनिमग्नस्य महारोगातुरस्य च। ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः।।
ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर। दीर्घमायुः सदारोग्यं यशोवृद्धिर्बलोन्नतिः।।
ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर। शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु नवग्रहाः।।
नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः। दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शमं यान्तु महीतले।।
वसुसस्यसमृद्धिं च ममानन्दं सदा दिश।

प्रदोष काल में या पूजा के अन्त में भक्तितत्पर होकर प्रार्थना करे। इससे गिरिजापति शंकर प्रसन्न होकर अभीप्सित फल प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रार्थना के बाद प्रवहमान नासापुट से अपने हृदय में देव को संहार मुद्रा से ले आये एवं शिवलिङ्ग को नदी आदि जलाशय में डालकर सुखी होकर विहार करे। यहाँ पर पूर्वोक्त पार्थिवेश्वर चिन्तामणि मन्त्र या कामदुघा मन्त्र का जप करना चाहिये। कामदुघा षोडशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमः शिवाय प्रपन्नपारिजाताय स्वाहा। इसके न्यास-ध्यान आदि नवाक्षर शैव मन्त्र के समान ही किये जाते हैं।

वैदिकमार्गेण शिवपूजा

अथ वैदिकमार्गेण पूजां वक्ष्ये शिवस्य वै। सद्योजातेति मन्त्रेण मृत्तिकाग्रहणं भवेत् ॥१२६॥
वामदेवेति मन्त्रेण जलैः संशोध्य यत्नतः। अघोरेण च मन्त्रेण लिङ्गीकरणमुत्तमम् ॥१२७॥
ततस्तत्पुरुषायेति बाणं कुर्याद्विचक्षणः। ईशान इति मन्त्रेण वेदीबाणं समाचरेत् ॥१२८॥
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण उपचारैः समर्चयेत्। भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि ॥१२९॥
उग्राय चोग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने। एभिर्मन्त्रैश्च वा पूजा कर्तव्या शुभमिच्छता ॥१३०॥
यः कृत्वा पार्थिवं लिङ्गं पूजयेच्छुभवेदिकाम्। इहैव पुत्रवाञ्छ्रीमांस्ततो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥१३१॥
त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वाभिज्ञस्तु पार्थिवम्। दशैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१३२॥
अनेनैव स्वदेहेन रुद्रतुल्यो भवेन्नरः।

अब शिव के वैदिक मार्ग से पूजन-विधान को कहता हूँ। सद्योजात मन्त्र से मिट्टी लावे। वामदेव मन्त्र से जल मिलाकर उसे साने। अघोरमन्त्र से उत्तम लिङ्ग बनावे। तत्पुरुष मन्त्र से बाण बनावे। ईशान मन्त्र से वेदीबाण का समाचरण करे। पञ्चाक्षर मन्त्र से उपचारों से उसकी पूजा करे। अथवा कल्याण चाहने वालों को निम्नलिखित मन्त्र से पूजा करनी चाहिये—

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय चोग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने।।

पार्थिव लिङ्ग बनाकर शुभ वेदी पर उसे आसीन कराकर जो उसकी पूजा करता है, वह इस लोक में पुत्र प्राप्त करके अन्त में रुद्रलोक को प्राप्त होता है। जो तीनों सन्ध्याओं में दश या ग्यारह पार्थिव लिङ्गों की पूजा करता है, वह इसी देह में रुद्रतुल्य हो जाता है।

पारदलिङ्गविधानं तदर्चनफलञ्च

अथ पारदलिङ्गस्य विधानं वच्मि नारद ॥१३३॥
नित्यसंपादनाशक्तौ प्रकारान्तरमुच्यते। निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम् ॥१३४॥
अम्लेन मर्दयेद्यामं तेन लिङ्गं तु कारयेत्। दोलायन्त्रे सारनाले जम्बीरस्थं दिनं पचेत् ॥१३५॥
तल्लिङ्गं पूजयेन्नित्यं सुशुभैरुपचारकैः। लिङ्गकोटिसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात् ॥१३६॥
तत्फलात्कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत्। ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्यानियुतानि च ॥१३७॥
तत्क्षणाद्विलयं यान्ति रसलिङ्गस्य दर्शनात्। स्पर्शनात्प्राप्यते मुक्तिरिति सत्यं शिवोदितम् ॥१३८॥
वाङ्मायाश्रीअघोरेण मन्त्रराजेन चार्चयेत्। अष्टादशभुजं शुभ्रं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥१३९॥
प्रेतारूढं नीलकण्ठं रसलिङ्गं विचिन्तयेत्। तस्योत्सङ्गे महादेवीमेकवक्त्रां चतुर्भुजाम् ॥१४०॥
अक्षमालाङ्कुशौ दक्षे वामे पाशाभये शुभे। दधतीं तप्तहेमाभां पीतवस्त्रां विभावयेत् ॥१४१॥

अब पारदलिङ्ग का विधान कहता हूँ। ऐसा नित्य करने में अशक्त होने पर इसका विकल्प कहता हूँ। तीन निष्क = ४८ ग्राम हेमपत्र एवं नव निष्क = १४४ ग्राम रसेन्द्र (पारा) को अम्ल में एक प्रहर तक घोंटे और उससे लिङ्ग बनावे। दोलायन्त्र में जम्वीरी नीबू के रस में दिन भर पकावे। उससे लिङ्ग बनाकर उत्तम उपचारों से उसकी नित्य पूजा करे। एक हजार करोड़ लिङ्गार्चन का जो फल मिलता है, उससे करोड़गुणा अधिक फल इस पारद लिङ्ग के अर्चन से मिलता है। इस लिङ्ग

के दर्शन मात्र से ही हजार ब्रह्महत्या एवं दश हजार गोहत्या के पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके स्पर्श से मोक्ष मिलता है, ऐसा सत्य शिव ने कहा है। 'ऐं ह्रीं श्रीं अघोर ॐ ह्रौं क्ष्म्र्यूं ह्रीं नमः शिवाय' से अर्चन करे। अर्चन के बाद अट्ठारह भुजाओं वाले, शुभ्र, पञ्चमुख, त्रिलोचन, प्रेत पर सवार, नीलकण्ठ पारदलिंग का चिन्तन करे। उनकी गोद में एक मुख वाली, चतुर्भुजा, बाँयें हाथ में पाश एवं अभय तथा दाहिने हाथ में अक्षमाला एवं अंकुश धारण करने वाली, स्वर्ण सदृश कान्ति वाली एवं पीले वस्त्रों वाली महादेवी का स्मरण करे।

जयाविद्योद्धारः

वाङ्मायाश्रीकामराजशक्तिबीजरसाङ्कुशा । यै नमो द्वादशार्णैषा जयाविद्या रसाङ्कुशी ॥१४२॥
अनया पूजयेद्देवीं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । नन्दिभृङ्गिमहाकालान् कुमारान्सर्वदिक्क्रमात् ॥१४३॥
पूजयेन्नाममन्त्रैस्तु प्रणवादिनमोऽन्तकैः । सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रवान्धनवान् भवेत् ॥१४४॥
पराप्रासाददीक्षा च पारदेश्वरपूजनम् । महिम्नःस्तुतिपाठश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥१४५॥
पराप्रासादमन्त्रेण रसलिङ्गं समर्चयेत् । षण्मासाभ्यन्तरेणैव सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥१४६॥ इति।

द्वादशवर्णा रसांकुशी विद्या—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं रसांकुशायै नमः—इस द्वादशाक्षरी जया विद्या से देवी का पूजन गन्धाक्षत पुष्पों से करे। नन्दी भृंगी महाकाल कुमार की पूजा चारो दिशाओं में उनके नाम के पहले ॐ और अन्त में नमः लगाकर करे; जैस—ॐ नन्द्यै नमः। ॐ महाकालाय नमः आदि। इस प्रकार की पूजा से पूजक की सभी कामनाएँ पूरी होती हैं एवं वह पुत्रवान् और धनवान होता है। पराप्रासाद दीक्षा, पारदेश्वर पूजन, महिम्न स्तोत्र का पाठ अल्प तपस्या से नहीं प्राप्त होते। परा प्रासाद मन्त्र—स्हौं ह्सौं से रसलिङ्ग का अर्चन निरन्तर छः महीनों तक करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

आदिमूर्तेर्मूर्तिद्वादशकभेदः

हयशीर्षपञ्चरात्रे—
आदिमूर्तिर्वासुदेवः सङ्कर्षणमथासृजत् । प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च स्वयमेवासृजत्प्रभुः ॥१॥ इति।

तथा—
चतुर्मूर्तिः परः प्रोक्त एकैको भिद्यते त्रिधा । केशवादिप्रभेदेन मूर्तिद्वादशकं स्मृतम् ॥१॥
पङ्कजं दक्षिणे दद्यात्पाञ्चजन्यं तथोपरि । वामोपरि गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम् ॥२॥
आदिमूर्तेस्तु भेदोऽयं केशवेति प्रकीर्त्यते । अधरोत्तरभावेन कृतमेतत्तु यत्र वै ॥३॥
नारायणाख्या सा मूर्तिः स्थापिता भुक्तिमुक्तिदा । सव्याधः पङ्कजं यस्य पाञ्चजन्यं तथोपरि ॥४॥
दक्षिणोर्ध्वे गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम् । आदिमूर्तेस्तु भेदोऽयं माधवेति प्रकीर्तितः ॥५॥
दक्षिणाधः स्थितं चक्रं गदा यस्योपरि स्थिता । वामोर्ध्वे संस्थितं पद्मं शङ्खं चाधो व्यवस्थितम् ॥६॥
सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं गोविन्देति प्रकीर्तितः । दक्षिणोपरि पद्मं तु गदा चाधो व्यवस्थिता ॥७॥
वामोर्ध्वे पाञ्चजन्यं च चक्रं चाधो व्यवस्थितम् । सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं विष्णुरित्यभिधीयते ॥८॥
दक्षिणोपरि शङ्खं च चक्रं चाधः प्रदर्श्यते। वामोर्ध्वे पङ्कजं यस्य गदा चाधो व्यवस्थिता ॥९॥
मधुसूदननामायं भेदः सङ्कर्षणस्य तु । दक्षिणोर्ध्वे गदा यस्य पङ्कजं चाप्यधः स्थितम् ॥१०॥
वामोर्ध्वे संस्थितं चक्रमधः शंखः प्रदर्श्यते । ब्राह्मण्डगं वामपादं दक्षिणं शेषपृष्ठगम् ॥११॥
बलिबन्धनसंसक्तं वामनं चाप्यधः स्थितम् । वामोर्ध्वे कौमुदी यस्य पुण्डरीकमधः स्थितम् ॥१२॥
दक्षिणोर्ध्वे सहस्रारं पाञ्चजन्यमधः स्थितम् । सप्ततालप्रमाणेन वामनं कारयेत्सदा ॥१३॥
ऊर्ध्वं दक्षिणतश्चक्रमधः पद्मं व्यवस्थितम् । वामोर्ध्वे कौमुदी यस्य पाञ्चजन्यमधः स्थितम् ॥१४॥

पद्मा पद्मकरा वामपार्श्वे यस्य व्यवस्थिता। स्थितो वाप्युपविष्टो वा सानुरागो विलासवान् ॥१५॥
प्रद्युम्नस्य तु भेदोऽयं श्रीधरेति प्रकीर्त्यते। दक्षिणोर्ध्वे महाचक्रं कौमुदी तदध: स्थिता ॥१६॥
वामोर्ध्वे नलिनं यस्य त्वध: शङ्खो विराजते। हृषीकेश इति ज्ञेय: स्थापित: सर्वकामद: ॥१७॥
दक्षिणोर्ध्वे पुण्डरीकं पाञ्चजन्यमधस्तथा। वामोर्ध्वे संस्थितं चक्रं कौमोदी तदध: स्थिता ॥१८॥
पद्मनाभेति सा मूर्ति: स्थापिता मोक्षदायिनी। दक्षिणोर्ध्वे पाञ्चजन्यमधस्तात्तु कुशेशयम् ॥१९॥
सव्योर्ध्वे कौमुदी यस्य हेतिराजमध: स्थितम्। अनिरुद्धस्य भेदोऽयं दामोदर इति स्थित: ॥२०॥
एतेषां तु स्त्रिय: कार्या: पद्मवीणाधरा: शुभा:। इति।

विष्णु आदि मूर्ति के बारह भेद—हयशीर्ष पञ्चरात्र में कहा गया है कि आदि मूर्ति वासुदेव ने अपने को संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप में सृजित किया। इन चारों मूर्तियों ने अपने को तीन-तीन रूपों में विभक्त किया। इससे केशव आदि बारह मूर्तियाँ प्रकट हुईं। आदिमूर्ति वासुदेव के प्रथम भेद केशव हैं। इनके दाहिने निचले हाथ में पद्म है, ऊपर वाले दाँयें हाथ में पाँचजन्य शङ्ख है। इनके ऊपर वाले बाँयें हाथ में गदा है एवं नीचे वाले बाँयें हाथ में चक्र है। भुक्ति-मुक्तिप्रदायक नारायण के नीचे वाले दाँयें हाथ में पाञ्चजन्य और ऊपर वाले दाँयें हाथ में पद्म है। ऊपर बाँयें हाथ में चक्र और नीचे वाले बाँयें हाथ में गदा है। जिनके निचले बाँयें हाथ में कमल, ऊपर वाले बाँयें हाथ में पाँचजन्य, ऊपर वाले दाँयें हाथ में गदा और निचले दाँयें हाथ चक्र हैं इन्हें माधव कहा जाता है। आदिमूर्ति वासुदेव, केशव, नारायण एवं माधव—ये चार हैं।

सङ्कर्षण के भेद गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन हैं। गोविन्द के निचले दाँयें हाथ में चक्र, ऊपर वाले दाँयें में गदा, ऊपरी बाँयें में कमल और निचले बाँयें में शङ्ख है। विष्णु के ऊपरी दाँयें में कमल, निचले दाँयें में गदा, ऊपरी बाँयें में पाँचजन्य एवं निचले बाँयें में चक्र है। मधुसूदन के ऊपरी दाँयें हाथ में शङ्ख, नीचे चक्र, वामोर्ध्व में पद्म एवं नीचे गदा है। प्रद्युम्न के भेद वामन, त्रिविक्रम और श्रीधर हैं। वामन के दक्षिणोर्ध्व में गदा, नीचे पंकज, वामोर्ध्व में चक्र और नीचे शंख है। त्रिविक्रम के वामोर्ध्व में कौमोदकी, नीचे पद्म, दक्षिणोर्ध्व में चक्र एवं नीचे पाँचजन्य है। श्रीधर के दक्षिणोर्ध्व में चक्र, नीचे पद्म, वामोर्ध्व में कौमोदकी और नीचे शङ्ख है। इनके बाँयें अंक में हाथ में कमल लिये पद्मा स्थित रहती हैं, जो सदैव अनुरागिनी रहती हैं। अनिरुद्ध के भेद हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर हैं। हृषीकेश के दक्षिणोर्ध्व में चक्र, नीचे गदा, वामोर्ध्व में पद्म एवं नीचे शङ्ख होता है। पद्मनाभ के दक्षिणोर्ध्व में पद्म, नीचे शङ्ख, वामोर्ध्व में चक्र और नीचे गदा होता है। दामोदर के दक्षिणोर्ध्व में शङ्ख, नीचे पद्म, वामोर्ध्व में गदा और नीचे चक्र रहता है।

चतुर्विंशतिमूर्तिवर्णनम्

सिद्धार्थसंहितायां तु चतुर्विंशतिमूर्तय: उक्ता:—

वासुदेवो गदाशङ्खचक्रपद्मधरो मत:। पद्मं शङ्खं तथा चक्रं गदां वहति केशव: ॥१॥
शङ्खं चक्रं गदापद्मं धत्ते नारायण: सदा। गदां चक्रं तथा शङ्खं पद्मं वहति माधव: ॥२॥
चक्रं पद्मं तथा शङ्खं गदां च पुरुषोत्तम:। पद्मं कौमोदकीं शङ्खं चक्रं धत्ते ह्यधोक्षज: ॥३॥
सङ्कर्षणो गदाशङ्खपद्मचक्रधर: स्मृत:। चक्रं गदां पद्मशङ्खौ गोविन्दो धरते भुजै: ॥४॥
गदां पद्मं तथा शङ्खं चक्रं विष्णुर्बिभर्ति य:। चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदां च मधुसूदन: ॥५॥
गदां सरोजं चक्रञ्च शङ्खं धत्तेऽच्युत: सदा। शङ्खं कोमोदकीं चक्रमुपेन्द्र: पद्ममुद्वहेत् ॥६॥
चक्रशङ्खगदापद्मधर: प्रद्युम्न उच्यते। पद्मं कौमोदकीं चक्रं शङ्खं धत्ते त्रिविक्रम: ॥७॥
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं वामनो वहते सदा। पद्मं चक्रं गदां शङ्खं श्रीधरो वहते भुजै: ॥८॥
चक्रं पद्मं गदां शङ्खं नरसिंहो बिभर्ति य:। पद्मं सुदर्शनं शङ्खं गदां धत्ते जनार्दन: ॥९॥
अनिरुद्धश्चक्रगदाशङ्खपद्मलसद्भुज:। हृषीकेशो गदां चक्रं पद्मं शङ्खं च धारयन् ॥१०॥

पद्मनाभो वहेच्छङ्खं पद्मं चक्रं गदां तथा। पद्मं चक्रं गदां शङ्खं धत्ते दामोदरः सदा॥११॥
शङ्खं चक्रं सरोजं च गदां वहति यो हरिः। शङ्खं कौमोदकीं पद्मं चक्रं कृष्णो बिभर्ति यः॥१२॥
एताश्च मूर्तयो ज्ञेया दक्षिणाधःकरक्रमात्। इति।

सिद्धार्थसंहिता में चौबीस मूर्तियों का उल्लेख मिलता है; जिनका विवेचन इस प्रकार है—

१. वासुदेव के हाथों में गदा, शङ्ख, चक्र, पद्म हैं।
२. केशव के हाथों में पद्म, शङ्ख, चक्र, गदा रहते हैं।
३. नारायण के हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म होते हैं।
४. माधव के हाथ में गदा, चक्र, शङ्ख, पद्म होते हैं।
५. पुरुषोत्तम के हाथों में चक्र, पद्म, शङ्ख, गदा होते हैं।
६. अधोक्षज के हाथों में पद्म, गदा, शङ्ख, चक्र होते हैं।
७. सङ्कर्षण के हाथों में गदा, शङ्ख, पद्म, चक्र होते हैं।
८. गोविन्द के हाथों में चक्र, गदा, पद्म, शङ्ख होते हैं।
९. विष्णु के हाथों में गदा, पद्म, शङ्ख, चक्र होते हैं।
१०. मधुसूदन के हाथों में चक्र, शङ्ख, पद्म, गदा रहते हैं।
११. अच्युत के हाथों में गदा, पद्म, चक्र, शङ्ख रहते हैं।
१२. उपेन्द्र के हाथों में शङ्ख, गदा, चक्र, पद्म रहते हैं।
१३. प्रद्युम्न के हाथों में पद्म, गदा, चक्र, शङ्ख रहते हैं।
१४. त्रिविक्रम के हाथों में पद्म, गदा, चक्र, शङ्ख होते हैं।
१५. वामन के हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म होते हैं।
१६. श्रीधर के हाथों में पद्म, चक्र, गदा, शङ्ख होते हैं।
१७. नरसिंह के हाथों में चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख होते हैं।
१८. जनार्दन के हाथों में पद्म, चक्र, शङ्ख, गदा होते हैं।
१९. अनिरुद्ध के हाथों में चक्र, गदा, शङ्ख, पद्म होते हैं।
२०. हृषीकेश के हाथों में गदा, चक्र, पद्म, शङ्ख होते हैं।
२१. पद्मनाभ के हाथों में शङ्ख, पद्म, चक्र, गदा रहते हैं।
२२. दामोदर के हाथों में पद्म, चक्र, गदा, शङ्ख रहते हैं।
२३. हरि के हाथों में शङ्ख, चक्र, पद्म, गदा रहते हैं।
२४. कृष्ण के हाथों में शङ्ख, गदा, पद्म, चक्र होते हैं।

निचले दाँयें हाथ से प्रारम्भ करके निचले बाँयें हाथ तक के क्रम से अस्त्र धारण करके ये चौबीस मूर्तियाँ अवस्थित रहती हैं।

शूद्रादिप्रतिष्ठितार्चितायां मूर्तौ नमस्यानिषेधः

एवमेता विष्णुमूर्तयः शिवलिङ्गं वा शूद्रैः पूजिता ब्राह्मणादिभिर्न पूज्या न नमस्याश्च इत्याहुः। बृहन्नारदीये धर्मभगीरथसंवादे धर्मवाक्यानि—

प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते। सर्वपापानि यान्यत्र तानि त्वं सर्वभूपते॥१॥
समस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च। यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेद्द्विजः॥२॥
न तस्य निष्कृतिर्हन्त प्रायश्चित्तशतैरपि। नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टलिङ्गं वा हरिमेव वा॥३॥

स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम्। पाखण्डपूजितं लिङ्गं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् ॥४॥
सर्ववेदविदो वापि सर्वशास्त्रविदोऽपि वा। आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते ॥५॥
योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः। स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं व्रजेत् ॥६॥
यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि। तदा प्रभृति शूद्रश्च योषितो वा न संस्पृशेत् ॥७॥
स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नरेश्वर। स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य च ॥८॥
अर्चितं राजशार्दूल स्वप्ने वापि न पूजयेत्। यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेद्द्विजः ॥९॥
इहैवात्यन्तदु:खानि पश्यत्यामुष्मिके किमु। शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा ॥१०॥
केशवं शङ्करं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते। बौद्धालयं विशेद्यस्तु महापद्यपि च द्विजः ॥११॥
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि। बौद्धाः पाखण्डिनः प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दकाः ॥१२॥
तस्माद्द्विजस्तान्नेक्षेत यदि देवेषु भक्तिमान्।

उपर्युक्त विष्णुमूर्तियाँ या शिवलिङ्ग यदि शूद्र द्वारा पूजित हों तो वे ब्राह्मणादि द्वारा पूज्य या नमस्कारयोग्य नहीं होते, जैसा कि बृहन्नारदीप में धर्म-भगीरथ संवाद में धर्म ने कहा है कि जो प्रायश्चित्त नहीं करते उनके पापों को सुनो। जो शूद्र से अर्चित लिङ्ग और विष्णु को बिना प्रायश्चित के प्रणाम करते है, उन्हें सभी पाप लगते हैं और वे नरकगामी होते हैं। सैकड़ों प्रायश्चित्त करने पर भी उनके पाप नष्ट नहीं होते, जो शूद्र से स्पृष्ट लिङ्ग या शालग्राम को प्रणाम करते हैं। जो पाखण्ड-पूजित लिङ्ग को प्रणाम करता है और पाखण्ड करता है, वह यातना का भोग तब तक करता है जब तक चन्द्र-तारा रहते हैं। सभी वेदों और शास्त्रों के ज्ञाता होने पर भी जो कोल-भील द्वारा पूजित लिङ्ग को प्रणाम करता है, वह नरक में जाता है। स्त्रियों से पूजित लिङ्ग या शालिग्राम को जो ब्राह्मण नमस्कार करता है, वह अपने करोड़ों कुल के साथ कल्पपर्यन्त रौरव नरक में रहता है। मन्त्रज्ञों के द्वारा विधिवत् स्थापित लिङ्ग का स्पर्श स्त्रियों और शूद्रों को नहीं करना चाहिये। स्त्रियों, अनुपनीतों और शूद्रों को शंकर या विष्णु की मूर्ति को स्थापित करने का अधिकार नहीं है। उनके द्वारा अर्चित लिङ्ग का पूजन स्वप्न में भी न करे। जो द्विज शूद्र द्वारा संस्कृत लिङ्ग या विष्णुमूर्ति को प्रणाम करता है, वह इस लोक में ही बहुत दु:ख प्राप्त करता है, तब अच्छे लोक उसे कैसे प्राप्त हो सकते हैं? शूद्र या अनुपनीत या स्त्री या पतित केशव या शंकर को छूने से नरकगामी होता है। महान् आपत्ति में भी जो द्विज बौद्धालय में बैठता है तो सैंकड़ों प्रायश्चित्त के बाद भी उसे पापों से छुटकारा नहीं होता। वेदनिन्दक होने के कारण बौद्ध पाखण्डी कहे गये है; अत: द्विज यदि देवभक्त हो तो उनकी ओर दृष्टिपात भी न करे।

ब्राह्मणस्य सन्तप्तचक्राद्यङ्कननिषेधः

यस्तु संतप्तशंखारिलिङ्गाङ्कितततनुं नरः ॥१३॥
सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। चक्राङ्कितततनुर्यत्र न तत्र दिवसं वसेत् ॥१४॥
यदि तिष्ठेन्महापापो सहस्रब्रह्महा भवेत्। गङ्गास्नानरतो वापि अश्वमेधरतोऽपि वा ॥१५॥
चक्राङ्कितततनुं दृष्ट्वा पश्येत्सूर्यं जपन्नरः। जपेत्स पौरुषं सूक्तमन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥१६॥
लिङ्गाङ्कितततनुं दृष्ट्वा पश्येत्सूर्यं नरेश्वर। जपेच्च शतरुद्रियमन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥१७॥
ब्राह्मणस्य तनुर्ज्ञेया सर्वदेवसमाश्रया। सा चेत्सन्तापिता राजन् किं वक्ष्यामि तदेनसः ॥१८॥
चक्राङ्कितततनुर्वापि राजंल्लिङ्गाङ्कितोऽपि वा। नाधिकारी परिज्ञेयः श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु ॥१९॥ इति।

जो देवभक्त संतप्त शङ्ख-लिङ्गाकित शरीर वाले हैं, उसे द्विज न देखे। उनके साथ बातचीत करने से जब तक चौदह इन्द्र होते हैं तबतक वह रौरव नरक में रहता है। जहाँ चक्रांकित शरीर वाला रहता है, वहाँ एक दिन भी न ठहरे। यदि वहाँ ठहरता है तो हजार ब्रह्महत्या का महापाप उसे लगता है। गंगास्नान में रत या अश्वमेधकर्ता भी यदि चक्रांकित शरीर को देखता है तो उसे सूर्य को देखते हुए पुरुषसूक्त का जप करना चाहिये; अन्यथा वह रौरव नरक में जाता है। लिङ्गाकित शरीर को देखने पर सूर्य को देखते हुए शतरुद्री का जप करना चाहिये; अन्यथा रौरव नरक में जाता है। ब्राह्मण के शरीर में सभी देवताओं

का वास होता है। वह यदि इस प्रकार संतापित होता है तो उसके पापों की गणना नहीं की जा सकती। चक्रांकित या लिङ्गाकित ब्राह्मण श्रौत-स्मार्त्त कर्मों का अधिकारी नहीं होता।

शालग्रामशिलालक्षणानि

अथ शालग्रामलक्षणानि स्कान्दे—

स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च। रक्ता रूक्षा च वक्रा च महास्थूलाप्यलाञ्छिता ॥१॥
कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका। बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथवा पुनः ॥२॥
मग्नचक्राथवा काचिद्भग्नचक्राप्यधोमुखी। इति।

शालग्राम शिला के लक्षण—स्कन्दपुराण में कहा गया है कि शालग्राम स्निग्ध, काला, पाण्डुर, पीला, नीला, लाल, रूक्ष, टेढ़ा, महास्थूल, अलांछित, कपिल, चित्र-विचित्र, भग्न, बहुत चक्रों वाला या एकचक्री, बड़े मुख वाला, बृहत् चक्र वाला अथवा लग्न चक्र, मग्नचक्र, थोड़ा भग्न चक्र अथवा अधोमुख होता है।

शालिग्रामशिलानां वर्णादिभेदेन गुणदोषवर्णनम्

अथैतासां वर्णादिभेदेन गुणदोषो तत्रैव—

स्निग्धा सिद्धिकरी मन्त्रे कृष्णा कीर्तिं ददाति च। पाण्डुरा पापदमनी पीता पुत्रफलप्रदा ॥१॥
नीला संदिशते लक्ष्मीं रक्ता राज्यप्रदायिनी। रूक्षा चोद्वेगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिनी ॥२॥
स्थूला निहन्ति चैवायुर्निष्फला तु अलाञ्छिता। कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका ॥३॥
बृहन्मुखी वृहच्चक्रा लग्नचक्राथवा पुनः। मग्नचक्राथवा या स्याद्भग्नचक्राप्यधोमुखी ॥४॥
पूजयेद्वा प्रमादेन दुःखमेव लभेत सः। इति।

अग्निपुराणे—

तथा व्यालमुखी भग्ना विषमा बद्धचक्रिका। विकारावर्तनाभिश्च नारसिंही तथैव च ॥१॥
कपिला च भ्रमावर्ता रेखावर्ता च या शिला। दुःखदा सा तु विज्ञेया सुखदा न कदाचन ॥२॥
स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला पीता वा समचक्रिका। घोणीमूर्तिरनन्ताख्या गम्भीरा सम्पुटा तथा ॥३॥
सूक्ष्मा मूर्तिश्च सुमुखी पूजिता सिद्धिदायिका। धात्रीफलप्रमाणा या करेणोभयसम्पुटा ॥४॥
पूजनीया प्रयत्नेन भक्त्या तां तु प्रपूजयेत्। पूजिते फलमाप्नोति इह लोके परत्र वै ॥५॥ इति।

इनके वर्णभेद से गुण-दोष स्कन्द पुराण में ही वर्णित निम्न प्रकार के प्राप्त होते हैं—स्निग्ध शालग्राम सिद्धिप्रद, काला कीर्तिप्रद, पाण्डुर पापनाशक, पीला पुत्रदाता, नीला लक्ष्मीदायक, लाल राज्यप्रदायक, रूक्ष उद्वेगप्रद, टेढ़ा दारिद्र्यप्रद, स्थूल प्राणान्तक, अलांच्छित निष्फल होता है। कपिल, कर्बूर, भग्न, बहुचक्री, एकचक्री, बृहन्मुख, बृहच्चक्र, लग्नचक्र, मग्नचक्र, भग्नचक्र या अधोमुख शालग्राम का यदि कोई प्रमादवश भी पूजन करता है तो उसे दुःख ही प्राप्त होता है।

अग्निपुराण में कहा गया है कि व्यालमुख, भग्न, विषम, बद्धचक्र, विकृत आवर्त नाभि वाला, नारसिंह, कपिल, भ्रमावर्त, रेखावर्त शालग्राम दुःखप्रद होता है। ये कभी सुखदायक नहीं होते। स्निग्ध, श्याम, शुक्ल, पीला, समचक्र, घोणीमूर्ति, अनन्ताख्य, गम्भीर, सम्पुट, सूक्ष्म, सुन्दर शालग्राम पूजित होने पर सिद्धिदायक होते हैं। आँवले के फल के बराबर अथवा करसम्पुट में समाहित होने वाला शालग्राम पूज्य होता है। यत्नपूर्वक भक्ति से इनकी पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा करने से ऐहिक और पारलौकिक दोनों फल प्राप्त होते हैं।

निष्कामार्चनविषये उक्तदोषाभावः

दोषाश्चैते सकामार्चनविषयाः। अत उक्तं श्रीभगवता स्कान्दे—

खण्डितं स्फुटितं भग्नं सालग्रामे न दोषभाक्। इष्टा तु यस्य या मूर्तिः स तां यत्नेन पूजयेत् ॥१॥

चक्रं वा केवलं तत्र पद्मेन सह संयुतम्। केवला वनमाला वा हरिर्लक्ष्म्या सह स्थिता ॥२॥
मुख्याः स्निग्धादयस्त्वत्र मुख्या रक्तादयो मताः। मुख्याभावे त्वमुख्या हि पूज्या इत्युच्यते परैः ॥३॥ इति।

शालग्राम के ये दोष सकाम अर्चन के विषय हैं; स्कन्दपुराण में भगवान् में कहा है—खण्डित, स्फुटित या भग्न शालग्राम में दोष नहीं होते। जिसे जो मूर्ति इष्ट हो, उसकी वह यत्नपूर्वक पूजा करे। जिस शालग्राम में केवल चक्र हो, या उसके साथ पद्म हो, केवल वनमाला हो या विष्णु-लक्ष्मी से युक्त हो, वह शालग्राम मुख्य माना जाता है। स्निग्ध और रक्त भी मुख्य माना जाता है। मुख्य के न होने पर अमुख्य का पूजन भी होता है, यह भी किसी का कहना है।

तासां लक्षणविशेषेण संज्ञाविशेषाः

अथैतासामेव लक्षणविशेषेण संज्ञाविशेषो ब्राह्मे श्रीभगवद्ब्रह्मसंवादे—

निवसामि सदा ब्रह्मन् सालग्रामाख्यवेश्मनि। तत्र च मुख्यचक्राङ्कभेदे नामानि मे शृणु ॥१॥
द्वारदेशे समे चक्रे दृश्येते नान्तरायके। वासुदेवः स विज्ञेयः शुक्लाभश्चातिशोभनः ॥२॥
प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतदीप्तिस्तथैव च। सुषिरं छिद्रबहुलं दीर्घाकारं तु तद्भवेत् ॥३॥
अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्तुलश्चातिशोभनः। रेखाद्वयं तु तद्द्वारि पृष्ठं पद्मेन लाञ्छितम् ॥४॥
सौभाग्यं केशवो दद्याच्चतुष्कोणो भवेत्तु यः। श्यामं नारायणं विद्यान्नाभिचक्रं तथोपरि ॥५॥
दीर्घरेखासमोपेतं दक्षिणे सुषिरं पृथु। ऊर्ध्वे मुखं विजानीयाद्द्वारे च हरिरूपिणम् ॥६॥
कामदं मोक्षदं चैव ह्यर्थदं च विशेषतः। परमेष्ठी च शुक्लाभः पद्मचक्रसमन्वितः ॥७॥
बिल्वाकृतिस्तथा पृष्ठे सुषिरं वापि पुष्कलम्। कृष्णवर्णस्तथा विष्णुः स्थूले चक्रे सुशोभने ॥८॥
द्वारोपरि तथा रेखा दृश्यते मध्यदेशतः। कपिलो नारसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः ॥९॥
ब्रह्मचार्यधिकारी स्यात्पूजनं नान्यथा भवेत्। ब्रह्मचर्य्येण पूज्योऽसावन्यथा विघ्नदो भवेत् ॥१०॥ इति।

क्वचिच्च—

कपिलोऽथत्रिबिन्दुः स्यात्कपिलः पञ्चबिन्दुकः। ब्रह्मचर्य्येण पूज्यः स्यादन्यथा सर्वविघ्नदः ॥१॥
स्थूलं चक्रद्वयं मध्ये गुडलाक्षासवर्णकम्। द्वारोपरि तथा रेखा पूजा कार्या सुशोभना ॥२॥
स्फुटितं विषमं चक्रं नारसिंहं तु कापिलम्। संपूज्य मुक्तिमाप्नोति संग्रामे विजयी भवेत् ॥३॥ इति।

लक्षणविशेष से शालिग्राम के नामविशेष—ब्रह्मपुराण में भगवान् एवं ब्रह्मा के संवाद में भगवान् ब्रह्मन्! मैं सालग्राम में सदैव रहता हूँ। मुख्य चक्रांक भेद से उनके नाम सुनिये। समद्वार देश में बिना अन्तराय के जिस शालग्राम में चक्र होता है और जो शुक्ल वर्ण का सुन्दर होता है, उसे वासुदेव कहते हैं। सुषिर, छिद्रबहुल, दीर्घाकार, पीले सालग्राम में सूक्ष्म चक्र होने पर उसे प्रद्युम्न कहते हैं। नीलाभ सुन्दर वर्तुल सालग्राम में द्वार पर दो रेखा और पीठ पर कमल का चिह्न होने पर उसे अनिरुद्ध कहते हैं। केशव चौकोर होता है और यह सौभाग्यप्रदायक होता है। काले रंग का जो सालग्राम नाभिचक्र के ऊपर विद्यमान हो, उसे नारायण कहते हैं। जिसमें दीर्घ रेखा हो, दक्षिण में बड़ा छेद हो, जिसका द्वार ऊपर की ओर हो, उसका नाम हरि है; यह कामद, मोक्षद और धनद होता है। परमेष्ठी शुक्लाभ पद्म, चक्र समन्वित होता है। बेल की आकृति, पीठ पर बड़ा छेद, काला रंग एवं स्थूल चक्र से सुशोभित सालग्राम को विष्णु कहते हैं। जिसके द्वार पर रेखा हो, मध्य देश में चक्र हो और वर्ण कपिल हो उसे नरसिंह कहते हैं। इसके पूजन का अधिकार केवल ब्रह्मचारियों को ही होता है, दूसरों को नहीं। ब्रह्मचारी से इतर द्वारा पूज्य होने पर ये विघ्नकारक होते हैं।

पद्मपुराणे, कार्तिकमाहात्म्ये—

यस्य दीर्घं मुखं पूर्वं कथितैर्लक्षणैर्युतम्। केसराकारिका रेखा नारसिंहो मतः स तु ॥१॥ इति।

ब्राह्मे—

वराहं शक्तिलिङ्गे च चक्रे च विषमे स्मृते। इन्द्रनीलनिभं स्थूलं विरेखालाञ्छितस्थलम् ॥१॥ इति।

पाद्मे च—

वराहाकृतिराभुग्नश्चक्ररेखास्वलङ्कृतः । वाराह इति संप्रोक्तः·························॥ इति।

ब्राह्मे—

दीर्घा काञ्चनवर्णाभा बिन्दुत्रयविभूषिता। मत्स्याख्या सा शिला ज्ञेया भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥१॥

कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलः परिपूरितः। हरितं वर्णमाधत्ते कौस्तुभेन च चिह्नितः ॥२॥

कूर्माकारा च चक्राङ्का शिला कूर्मः प्रकीर्तितः । इति।

ब्राह्मे—

हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखाः पञ्च भवन्ति हि। बहुबिन्दुसमाकीर्णो दृश्यते नीलरूपकः ॥१॥ इति।

पाद्मे—

हयग्रीवा यथा लम्बरेखा वा या शिला भवेत्। तथा सौम्यो हयग्रीवः पूजितो ज्ञानदो भवेत् ॥१॥

अश्वाकृति मुखं यस्य साक्षमालशिरस्तथा। पद्माकृतिर्भवेद्वापि हयशीर्षस्त्वसौ मतः ॥२॥

वैकुण्ठं नीलवर्णाभं चक्रमेकं तथा ध्वजा। द्वारोपरि तथा रेखा पूजा कार्या सुशोभना ॥३॥

श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो वनमालया। कदम्बकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ॥४॥

वर्तुलश्चातिचिह्नश्च वामनः परिकीर्तितः। अतसीकुसुमप्रख्यो बिन्दुना परिशोभितः ॥५॥ इति।

अन्यत्र च—

वामनाख्यो भवेद्देवो ह्रस्वो यः स्यान्महाद्युतिः। वामपार्श्वे गदाचक्रे रेखे चैव तु दक्षिणे ॥१॥ इति।

पाद्मे—

चक्राकारेण पङ्क्तिः सा यत्र रेखामयी भवेत्। स सुदर्शन इत्येवं ख्यातः पूजाफलप्रदः ॥१॥

दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम्। दूर्वाभं द्वारि सङ्कीर्णं पीता रेखा तथैव च ॥२॥

उपर्यधश्च चक्रे द्वे नातिदीर्घं मुखे बिलम्। मध्ये च रेखा लम्बैका सा च दामोदरः स्मृतः ॥३॥ इति।

अन्यत्र च—

स्थूलो दामोदरो ज्ञेयः सूक्ष्मरन्ध्रो भवेत्तु यः। चक्रे च मध्यदेशस्थे पूजितः सुमुखः सदा ॥१॥

नानावर्णो ह्यनन्ताख्यो नागभोगेन चिह्नितः। अनेकचक्रसम्भिन्नः सर्वकामफलप्रदः ॥२॥

अनेकचक्रो बहुभिश्चिह्नैरप्युपलक्षितः। अनन्तः स तु विज्ञेयः सर्वपूजाफलप्रदः ॥३॥

विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योर्ध्वे दृश्यते मुखम्। पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥४॥

दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामसमुद्भवम्। तस्य योगीश्वरो नाम ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥५॥

आराध्यं पद्मनाभाख्यं पङ्कजच्छत्रसंयुतम्। तुलस्या पूजयेन्नित्यं दरिद्रस्त्वीश्वरो भवेत् ॥६॥

चन्द्राकृति हिरण्याख्यं रश्मिजालं विनिर्दिशेत्। सुवर्णरेखाबहुलं स्फटिकद्युतिशोभितम् ॥७॥ इति।

कहीं पर यह भी कहा गया है कि कपिल वर्ण के सालग्राम में यदि नीचे तीन या पाँच बिन्दु हो तो उसे ब्रह्मचारी ही पूजे; अन्यथा बहुत विघ्न होते हैं। जो सालग्राम स्थूल हो, मध्य में दो चक्र हो, जिसका वर्ण गुड़ या लाह के समान हो, जिसके द्वार पर रेखा हो, उसका पूजन प्रशस्त होता है। जिसमें स्फुटित विषम चक्र हो, वर्ण कपिल हो उसे नारसिंह कहते हैं। इसके पूजन से मुक्ति मिलती है और युद्ध में विजय प्राप्त होता है।

पद्मपुराण में कार्तिक माहात्म्य में कहा गया है कि जिसका मुख दीर्घ हो और जो कथित लक्षण से युक्त हो, जिसमें

केसर के आकार की रेखा हो, उसे नारसिंह कहते हैं। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि वराह शक्तिलिङ्ग में विषम चक्र होते हैं इसका वर्ण नीलम के समान, स्थूल, बिना रेखा का एवं लांछनयुक्त होता है। पद्म पुराण में कहा गया है कि वाराह सालग्राम की आकृति वाराह मुख के समान होती है। यह चक्ररेखा से अलंकृत होता है। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि जिस दीर्घ सालग्राम का वर्ण सोने के समान हो, जिसमें तीन बिन्दु हों, उसे मत्स्य कहते हैं। यह भोगमोक्षप्रदायक होता है। जिसका पीठ उन्नत वर्तुल हो, वर्ण हरा हो, कौस्तुभ का चिह्न हो, आकार कछुए के समान हो, जिसमें चक्र अंकित हो, उसे कूर्म कहते हैं। ब्रह्मपुराण में ही कहा गया है कि हयग्रीव में अंकुशाकार पाँच रेखाएँ होती हैं। वह बिन्दुयुक्त नीले रंग का होता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि हयग्रीव शिला में लम्ब रेखा होती है। सौम्य हयग्रीव पूजित होने पर ज्ञान देते हैं। जिसका मुख अश्व के आकार का हो, शिर पर अक्षमाला हो या जो पद्माकार हो, उसे हयग्रीव कहते हैं। वैकुण्ठ का वर्ण नीला होता है, उसमें एक चक्र और ध्वजा तथा द्वार पर रेखा होती है; इसका पूजन करना चाहिये। श्रीधर नामक सालग्राम कदम्ब-कुसुमाकार होता है। वह वनमाला और पाँच रेखाओं से युक्त होता है। वामन नामक सालग्राम गोल, बहुत चिह्नयुक्त, अतसी-पुष्प के वर्ण वाला एवं बहुत बिन्दुओं से युक्त होता है। अन्यत्र भी कहा गया है कि वामन नामक सालग्राम छोटा होता है, इसमें महाद्युति होती है। इसके बाँयें पार्श्व में गदा, चक्र और दाँयें भाग में रेखाएँ होती हैं। पद्म पुराण में कहा गया है कि चक्राकार रेखा पंक्तियों से युक्त सालग्राम का नाम सुदर्शन है; यह पूजाफल देने में विख्यात है। दामोदर नामक सालग्राम स्थूल होता है। इसके मध्य में चक्र होता है। दूर्वा के समान इसकी आभा होती है। इसका द्वार संकीर्ण, पीला वर्ण एवं रेखा से यह युक्त होता है। इसके ऊपर-नीचे दो चक्र होते हैं, मुख में छोटा छेद होता है एवं मध्य में एक लम्बी रेखा होती है। अन्यत्र कहा गया है कि स्थूल दामोदर में सूक्ष्म छेद होता है। इसके मध्य देश में चक्र होता है। यह सुमुख सदा पूजनीय होता है। अनन्त नामक सालग्राम नाना वर्णों का होता है। यह नागभोग से चिह्नित होता है। इसमें अनेक चक्र होते हैं। यह सर्वकाम-फलप्रद होता है। अनेक चक्रों एवं बहुत से चिह्नों से युक्त अनन्त सर्व पूजाफल-प्रदायक होता है। सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में और ऊपर जिसमें मुख हों उसे पुरुषोत्तम कहते हैं, यह भोग-मोक्षदायक होता है। जिस सालग्राम के शिखर पर लिङ्ग अङ्कित हो, उसे योगीश्वर कहते हैं; यह ब्रह्महत्या का नाश करता है। कमल एवं छत्रयुक्त पद्मनाभ शालिग्राम की तुलसी से नित्य पूजा करने से दरिद्र भी ऐश्वर्य सम्पन्न हो जाता है। चन्द्राकृति स्वर्णिम किरणों से युक्त, सुवर्ण रेखाबहुल, स्फटिक द्युति से शोभित सालग्राम का पूजन करना चाहिये।

पाद्मे—

वज्रकीटोद्भवा रेखाः पंक्तिभूताश्च यत्र वै। सालग्रामशिला या सा विष्णुपञ्जरसंज्ञिता ॥१॥
नागवत् कुण्डलीभूतरेखापंक्तिः स शेषकः। पद्माकारे तु पंक्ती द्वे मध्ये लम्बा च रेखिका ॥२॥
गरुडः स तु विज्ञेयश्चतुश्चक्रो जनार्दनः। चतुश्चक्रः सूक्ष्मद्वारि वनमालाङ्कितोदरः ॥३॥
लक्ष्मीनारायणः श्रीमान् भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। अर्धचन्द्राकृतिर्देवो हृषीकेश उदाहृतः ॥४॥
तमभ्यर्च्य लभेत्स्वर्गं विषयांश्च समीहितान्। वामपार्श्वे समे चक्रे कृष्णवर्णः सबिन्दुकः ॥५॥
लक्ष्मीनृसिंहो विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। त्रिविक्रमस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ॥६॥
वामपार्श्वे तथा चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे। प्रदक्षिणावर्तकृतवनमालाविभूषितः ॥७॥
या शिला कृष्णसंज्ञा सा धनधान्यसमृद्धिदा। चतस्रो यस्य दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वे समीपगाः ॥८॥
द्वे चक्रे मध्यदेशे तु सा शिला तु चतुर्मुखा। इति।

तथा—

एतल्लक्षणयुक्तास्तु सालग्रामशिलाः शुभाः। याश्च तास्वपि सूक्ष्माः स्युस्ताः प्रशस्ततराः स्मृताः ॥१॥ इति।

तथा च श्रीभगवद्ब्रह्मसंवादे तत्रैव—

यथा यथा शिला सूक्ष्मा महत्पुण्यं तथा तथा। तस्मात्तां पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थसिद्धये ॥१॥

तत्राप्यामलकीतुल्या सूक्ष्मा चातीव या भवेत्। तस्यामेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम्॥२॥ इति।

पद्मपुराण में कहा गया है कि जिस शालग्राम शिला में वज्रकीटों से बनायी गयी रेखाओं की पंक्ति हो, उसे विष्णु-पञ्जर कहते हैं। नाग के समान कुण्डली की पंक्ति जिसमें हो उसे शेषनाग कहते हैं। जिसमें पद्माकार दो पंक्ति हो और एक लम्बी रेखा हो, उसे गरुड़ कहते हैं। चार चक्रों वाले को जनार्दन कहते हैं। चार चक्र, सूक्ष्म द्वार, वनमाला अंकित उदरयुक्त सालग्राम को लक्ष्मीनारायण कहते हैं। यह पूजक को श्रीमान् बनाकर भोग-मोक्ष फलप्रदायक होता है। अर्ध चन्द्राकृति को हृषीकेश कहते हैं। इनकी उपासना से स्वर्ग और विषयभोग मिलते हैं। जिसके वाम पार्श्व में चक्र हो, वर्ण काला हो, जो बिन्दुयुक्त हो उसे लक्ष्मीनृसिंह कहते हैं। यह भोग-मोक्षप्रदायक है। त्रिविक्रम श्याम वर्ण महाद्युतियुक्त होता है। इसके वाम पार्श्व में चक्र और दक्ष पार्श्व में रेखा होती है। प्रदक्षिणावर्त वनमाला से विभूषित शिला का नाम कृष्ण है; यह धन-धान्य-समृद्धिदायक होता है। जिसमें पार्श्वगामी चार रेखा हो और मध्य में चक्र हो, उसे चतुर्मुख ब्रह्म कहते हैं। इन लक्षणों से युक्त सालग्राम शिला शुभ होती है। उनमें भी जो छोटी होती हैं, वे अधिक शुभदायिनी होती हैं। पद्मपुराण में ही भगवान् एवं ब्रह्मा के संवाद में कहा गया है कि जैसे-जैसे शिला छोटी होती है, वैसे-वैसे यह महान् पुण्यदायक होती है। इसलिये उनकी पूजा धर्म-काम-अर्थ की सिद्धि के लिये करनी चाहिये। उनमें भी आमले के बराबर जो शिला होती है, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु का वास होता है।

सालग्रामशिलायां हरिपूजामाहात्म्यम्

अथ सालग्रामशिलायां हरिपूजामाहात्म्यं पाद्मे माघमाहात्म्ये—

यः पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे। राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम्॥१॥
यदामनन्ति वेदान्ता ब्रह्म निर्गुणमच्युतम्। तत्प्रसादो भवेन्नृणां शालग्रामशिलार्चनात्॥२॥
महाकाष्ठस्थितो वह्निर्मथ्यमानः प्रकाशते। अपि पापसमाचाराः कर्मण्यनधिकारिणः॥३॥
शालग्रामार्चका वैश्या नैव यान्ति यमालयम्। न तथा रमते लक्ष्म्या न तथा स्वपुरे हरिः॥४॥
शालग्रामशिलाचक्रे यथा स रमते सदा। अग्निहोत्रं हुतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा॥५॥
येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे। कामक्रोधमदलोभैर्व्याप्तो योऽत्र नराधमः॥६॥
सोऽपि याति हरेर्लोकं सालग्रामशिलार्चनात्। यः पूजयति गोविन्दं शालग्रामे सदा नरः॥७॥
आभूतसम्प्लवं यावन्न स प्रच्यवते दिवः। विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना मखैः॥८॥
मुक्तिं यान्ति नरा वैश्य शालग्रामशिलार्चनात्। नरकं गर्भवासं च न तिर्यक्कृमियोनिकम्॥९॥
न याति वैश्य पापोऽपि शालग्रामेऽच्युतार्चकः। दीक्षाविधानमन्त्रज्ञश्चक्रे यो बलिमाहरेत्॥१०॥
स याति वैष्णवं धाम सत्यं सत्यं मयोदितम्। नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैर्धूपदीपविलेपनैः॥११॥
गीतवादित्रस्तोत्राद्यैः शालग्रामशिलार्चनम्। कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः॥१२॥
कल्पकोटिसहस्राणि रमते सन्निधौ हरेः। लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैश्च तैः॥१३॥
सालग्रामशिलायास्तु एकेनापीह तत्फलम्। सालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः॥१४॥
तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश। सालग्रामशिलायां तु यः श्राद्धं कुरुते नरः॥१५॥
पितरस्तत्र तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पशतं दिवि। सालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः॥१६॥
कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठं किमु मानुषः। सालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम्॥१७॥
भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम्। इति।

शालग्राम में हरिपूजन का माहात्म्य—पद्मपुराण में माघ-माहात्म्य में कहा गया है कि शालग्राम शिला में जो विष्णु का पूजन करता है, उसे प्रतिदिन एक हजार राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। जिसे वेदादि निर्गुण ब्रह्म और अच्युत

के प्रसाद से शालग्राम शिला का पूजन करने वाला युक्त होता है। जैसे लकड़ी के मन्थन से अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही पापाचारी होने के कारण कर्मों के अनाधिकारी भी शालग्राम-पूजन से पवित्र हो जाते हैं। शालग्राम की पूजा करने वाले वैश्य यमलोक नहीं जाते। शालग्राम शिला के चक्र में अवस्थित लक्ष्मी और विष्णु जितना प्रसन्न होते हैं उतना प्रसन्न वे अपने लोकों में नहीं रहते। शालग्राम शिलास्थित चक्र में जो हरि की पूजा कर लेता है, उसे अग्निहोत्र करने एवं समस्त पृथ्वी दान करने का फल प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मद से व्याप्त पुरुष भी शालग्राम में विष्णु की पूजा करने से वैकुण्ठ में जाता है। जो मनुष्य नित्य गोविन्द की पूजा शालग्राम में करता है, वह जब तक प्रलय नहीं होता तब स्वर्ग से च्युत नहीं होता। विना तीर्थ, विना दान, विना यज्ञ, विना मख किये भी शालग्राम में अर्चन मात्र करने से वैश्य भी मोक्ष प्राप्त करता है। शालग्राम में अच्युत का अर्चन करने वाला पापी भी नरक, गर्भवास एवं तिर्यक कृमि योनि में नहीं जाता। दीक्षा विधान और मन्त्र ज्ञाता जो पूजक शालग्राम चक्र में बलि देता है, वह वैष्णव धाम में जाता है यह कथन सत्य है, कलियुग में जो भक्तिपरायण मनुष्य शालग्राम शिला की पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से करता है, उसके समक्ष गाना-बजाना के साथ स्तोत्र पाठ करता है, वह एक हजार करोड़ कल्प तक विष्णु की सन्निधि में रहता है। एक करोड़ शिवलिङ्ग पूजन का जो फल होता है, वह फल एक ही शालग्राम के पूजन से मिलता है। शालग्राम शिलारूपी केशव जहाँ रहते हैं, वहाँ सुर-असुर, यक्ष और चौदहों लोक रहते हैं। शालग्राम शिला में जो मनुष्य श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होकर सौ कल्पों तक स्वर्ग में रहते हैं। शालग्राम शिला के चारो ओर एक कोश के अन्दर यदि कीड़ा भी मरता है तो वह वैकुण्ठ जाता है, तब मनुष्यों के बारे में क्या कहा जाय। चक्रयुक्त शालग्राम शिला का जो दान करता है, वह जंगल-पहाड़-सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का दान कर देता है।

स्कान्दे शिवस्कन्दसंवादे—

सालग्रामशिलायां तु त्रैलोक्यं सचराचरम्। मया सह महासेन लीनं तिष्ठति सर्वदा ॥१॥
दृष्टा प्रणामिता येन स्नापिता पूजिता तथा। पुण्यकोटिसमं पुण्यं गवां कोटिफलं लभेत् ॥२॥
कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभावविवर्जितः। सालग्रामशिलां पुत्र सम्पूज्यैवाच्युतो भवेत् ॥३॥
सालग्रामशिलाबिम्बं हत्याकोटिविनाशनम्। स्मृतं संकीर्तितं ध्यातं पूजितं च नमस्कृतम् ॥४॥
सालग्रामशिलां दृष्ट्वा यान्ति पापान्यनेकशः। सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणा भयात् ॥५॥
मनः करोति मनुजः शालग्रामशिलार्चने। पापानि विलयं यान्ति तमः सूर्योदये यथा ॥६॥
कामासक्तोऽथवा क्रुद्धः सालग्रामशिलार्चनम्। भक्त्या वा यदि वाभक्त्या कृत्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥७॥
वैवस्वतभयं नास्ति तथा मरणजन्मनोः। यः कथां कुरुते विष्णोः सालग्रामशिलाग्रतः ॥८॥
गीतैर्वाद्यैस्तथा स्तोत्रैः सालग्रामशिलार्चनम्। कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः ॥९॥
कल्पकोटिसहस्राणि रमते विष्णुसद्मनि। सालग्रामे नमस्कारो भावेनापि नरैः कृतः ॥१०॥
भयं नैव करिष्यन्ति मद्भक्ता ये नरा भुवि। मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मत्प्रभुं न नमन्ति ये ॥११॥
वासुदेवं न ते ज्ञेया मद्भक्ताः पापिनो हि ते। सालग्रामशिलायां तु सदा पुत्र वसाम्यहम् ॥१२॥
दत्तं देवेन तुष्टेन स्वस्थानं नाम भक्तितः। पद्मकोटिसहस्रैस्तु पूजिते मयि यत्फलम् ॥१३॥
तत्फलं कोटिगुणितं सालग्रामशिलार्चने। पूजितोऽहं न तैर्मन्त्रैर्नमितोऽहं न तैर्नरैः ॥१४॥
न कृतं मर्त्यलोके यैः सालग्रामशिलार्चनम्। सालग्रामशिलाग्रे तु यः करोति ममार्चनम् ॥१५॥
तेनार्चितोऽहं सततं युगानामेकसप्ततिः। किमर्चितैर्लिङ्गशतैर्विष्णुभक्तिविवर्जितैः ॥१६॥
सालग्रामशिलाबिम्बं नार्चितं यदि पुत्रक। अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥१७॥
सालग्रामशिलालग्नं सर्वं याति पवित्रताम्। यो हि माहेश्वरो भूत्वा वैष्णवं लिङ्गमुत्तमम् ॥१८॥
द्वेष्टि वै याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सकृदभ्यर्चिते विष्णौ सालग्रामसमुद्भवे ॥१९॥
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं सांख्येन वर्जिताः। मल्लिङ्गैः कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैस्तु तैः ॥२०॥

सालग्रामशिलायां तु एकेनापीह तद्भवेत्। तस्माद्भक्त्या च मद्भक्तैः प्रीत्यर्थं मम पुत्रक ॥२१॥
कर्तव्यं सततं भक्त्या सालग्रामशिलार्चनम्। सालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥२२॥
तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश। सालग्रामशिलाग्रे तु सकृत्पिण्डेन तर्पिताः ॥२३॥
वसन्ति पितरस्तस्य न संख्या तत्र विद्यते। प्रमाणमस्ति सर्वस्य सुकृतस्य हि पुत्रक ॥२४॥
फलं प्रमाणहीनं तु सालग्रामशिलार्चने। यो ददाति शिलां विष्णोः सालग्रामसमुद्भवाम् ॥२५॥
विप्राय विष्णुभक्ताय तेनेष्टं बहुभिर्मखैः। मानुष्ये दुर्लभे लोके सालग्रामशिला नरैः ॥२६॥
प्राप्यते न विना पुण्यैः कलिकाले विशेषतः। स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥२७॥
सालग्रामशिला शुद्धा गृहे यस्य च पूजिता। सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सालग्रामशिलार्चनम् ॥२८॥
यः कुर्यान्मानवो भक्त्या स याति परमं पदम्। भक्त्या वा यदि वाभक्त्या यः करोति स पुण्यभाक् ॥२९॥
द्वेषेणापि च लोभेन दम्भेन कपटेन वा। सालग्रामोद्भवं देवं दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥३०॥
अशुचिर्वा दुराचारः सत्यशौचविवर्जितः। सालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत् ॥३१॥
तिलप्रस्थशतं भक्त्या यो ददाति दिने दिने। तत्फलं स समाप्नोति सालग्रामशिलार्चने ॥३२॥
पत्रं पुष्पं फलं मूलं तोयं दूर्वाक्षताः सुत। जायते मेरुणा तुल्यं सालग्रामशिलार्पितम् ॥३३॥
विधिहीनोऽपि यः कुर्यात्क्रियामन्त्रविवर्जितः। चक्रपूजामवाप्नोति सम्यक् शास्त्रोदितं फलम् ॥३४॥ इति।

स्कन्दपुराण में शिव-स्कन्द संवाद में भगवान् शिव ने कहा कि हे महासेन! मेरे सहित सचराचर तीनों लोक शालग्राम शिला में लीन रहते हैं। इसके दर्शन, प्रणाम, स्थापन और पूजन से करोड़ों गोदान के फल के समान पुण्य प्राप्त होता है। हे पुत्र! भक्ति-भावरहित कामासक्त भी सालग्राम शिला का पूजन कर अच्युत के समान हो जाता है। सालग्राम शिला मूर्ति के स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन एवं नमस्कार करने से करोड़ों हत्या के पापों का नाश होता है। शालग्राम शिला को देखते ही अनेक पाप वैसे ही भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर मृगगण भाग जाते हैं। शालग्राम के अर्चन में जिस मनुष्य का मन लगा रहता है, उसके पाप सूर्योदय के बाद अन्धकार के समान भाग जाते हैं। कामासक्त होकर या क्रुद्ध होकर भक्ति से या भक्ति के बिना भी सालग्राम का पूजन करने से मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है। शालग्राम शिला के आगे जो विष्णु की कथा सुनता है, उसे न तो यमराज का भय होता है और न ही जन्म-मृत्यु का भय होता है। कलियुग में भक्तिपरायण होकर जो मनुष्य गीत वाद्य स्तोत्र से सालग्राम का अर्चन करता है, वह एक हजार करोड़ कल्पों तक विष्णुलोक में रहता है। जो मनुष्य भाव से ही सालग्राम को नमस्कार करता है। वह मेरा भक्त संसार से किसी से भयभीत नहीं होता। मेरी भक्तिबल से गर्वित होकर जो मेरे प्रभु विष्णु को प्रणाम नहीं करता, जो वासुदेव को नहीं जानता, वह मेरा भक्त भी पापी होता है। हे पुत्र! मैं शालग्राम में सदा निवास करता हूँ; क्योंकि हरि ने तुष्ट होकर अपना नाम और स्थान मुझे दिया है। एक हजार करोड़ कमलों से मेरी पूजा करने का जो फल होता है, उससे करोड़ गुणा अधिक फल सालग्राम शिला के अर्चन से मिलता है। जो पृथ्वी पर सालग्राम की पूजा नहीं करता, उसके मन्त्र से पूजा के योग्य मैं नहीं हूँ और न ही उसके नमस्कार के योग्य हूँ। जो संसार में सालग्राम का पूजन नहीं करता और सालग्राम के सामने मेरी पूजा करता है, उसकी अर्चना मैं स्वीकार नहीं करता। इकहत्तर युगों तक लगातार लिङ्गार्चन का फल भी उसे नहीं मिलता, जो विष्णु की भक्ति से रहित होता है। जो सालग्राम का अर्चन नहीं करता, उसके नैवेद्य पत्र, पुष्प, फल मेरे पूजा के योग्य नहीं होते। सालग्राम शिला के स्पर्श से सब कुछ पवित्र हो जाता है। जो शिवभक्त होकर भी उत्तम वैष्णव लिङ्ग सालग्राम से द्वेष करता है, वह इन्द्र के मन्वन्तर अर्थात् एक कल्प तक नरक में रहता है, सालग्राम में जो विष्णु की पूजा करता है, उसे सांख्य से अप्राप्त मोक्ष भी प्राप्त होता है। मेरे एक करोड़ लिङ्गों के पूजन का जो फल है, वह फल एक ही सालग्राम के पूजा से मिल जाता है। इसलिये मेरे भक्तों को मेरी प्रसन्नता के लिये सदा-सर्वदा शालिग्राम का पूजन करना चाहिये। शालिग्राम स्वरूप केशव जहाँ रहते हैं, वहाँ सुर-असुर, यक्ष और चौदहों भुवनों का वास होता है। सालग्राम के आगे पिण्डदान और तर्पण करने से पितर असंख्य काल तक तृप्त रहते हैं। सभी कर्मों के प्रमाण होते हैं; किन्तु

सालग्राम-अर्चन प्रमाणहीन है। जो सालग्राम शिला को विष्णुभक्त विप्र को दान देता है, उसे बहुत से यज्ञों को करने का फल मिलता है। कलिकाल में दुर्लभ शालग्रामशिला मनुष्यों को बिना पुण्य के नहीं मिलती। संसार में वह पुरुष धन्य है, उसका जीवन सफल है, जिसके शुद्ध घर में सालग्राम की पूजा होती है। जो संयतेन्द्रिय मनुष्य भक्ति से सालग्राम का अर्चन करता है, वह परम पद प्राप्त करता है। भक्ति या बिना भक्ति के भी जो शालिग्राम की पूजा करता है, वह पुण्यवान होता है। द्वेष से, लोभ से, दम्भ से या कपट से जो सालग्राम देव को देखता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है। अपवित्र, दुराचारी, सत्य-शौच से रहित भी यदि सालग्राम को देखता है तो वह पवित्र हो जाता है। सौ प्रस्थ तिल का प्रतिदिन दान करने से जो फल मिलता है, वह फल सालग्राम के पूजन मात्र से ही मिल जाता है। शालग्राम शिला पर अर्पित पत्र, पुष्प, फल, मूल, जल, दूब, अक्षत मेरु गिरि के समान हो जाते हैं। क्रिया-मन्त्ररहित एवं विधिविहीन भी यदि सालग्राम का पूजन करता है, तो उसे शास्त्रकथित फल प्राप्त होते हैं।

तत्रैवान्यत्र—

स्कन्धे कृत्वा तु योऽध्वानं वहते शैलनायकम्। तेनोढं तु भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥१॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किञ्चित्कुरुते नरः। तत्सर्वं निर्दहत्याशु सालग्रामशिलार्चनम्॥२॥
न पूजनं न मन्त्राश्च न जपो न च भावना। न स्तुतिर्नोपस्कराश्च सालग्रामशिलार्चने॥३॥
सालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम्। तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥४॥
सालग्रामशिलायां तु यः श्राद्धं कुरुते नरः। पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पशतं दिवि॥५॥
सालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः। कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं नरः॥६॥
शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम्। भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम्॥७॥ इति।

गरुडपुराणे—

तिष्ठन्ति नित्यं पितरो मनुष्यास्तीर्थाग्निगङ्गागयपुष्कराणि।
यज्ञाश्वमेधाद्यपि पुण्यशैलाश्चक्राङ्किता यस्य वसन्ति गेहे॥१॥ इति।

पाद्मे—

सालग्रामशिलायां तु यैर्नरैः पूजितो हरिः। संशोध्य तेषां पापानि मुक्तये बुद्धिदा भवेत्॥१॥
कार्तिके मथुरायां तु सारूप्यं दृश्यते हरिः। सालग्रामशिलायां वै पितॄनुद्दिश्य पूजितः॥२॥
कृष्णः समुद्धरेत्तस्य पितॄनेतान् सलोकताम्। इति।

बृहन्नारदीये—

सालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः। न बाधन्तेऽसुरास्तत्र भूतवेतालकादयः॥१॥
सालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्तपोवनम्। शतं वा पूजितं भक्त्या तदा स्यादधिकं फलम्॥२॥ इति।

स्कन्दपुराण में ही कहा गया है कि जो सालग्राम को कन्धे पर चढ़ाकर ढोता है, वह सचराचर तीनों लोकों को ढोता है। ब्रह्महत्यादि जो भी पाप मनुष्य से होते हैं। वे सभी सालग्राम के अर्चन से नष्ट हो जाते हैं। सालग्राम के अर्चन में पूजा, मन्त्र, जप, भावना, स्तुति और उपचारों की आवश्यकता नहीं होती। सालग्राम शिला जहाँ रहती है, उसके चारो ओर तीन योजन तक तीर्थ होता है। वहाँ पर किये गये दान-हवन सभी कोटि गुणित हो जाते हैं। सालग्राम शिला में जो श्राद्ध करता है, उसके पितर सौ कल्पों तक तृप्त रहते हैं। सालग्राम के चारो ओर एक कोश तक के क्षेत्र में कीड़ा भी यदि मरता है तो वह वैकुण्ठ में जाता है। शालग्राम शिला का जो दान करता है, उसे पहाड़-वन-काननसहित भूखण्ड-दान का फल प्राप्त होता है। गरुड़पुराण में कहा गया है कि जिस घर में चक्रांकित सालग्राम रहता है, वहाँ पर नित्य पितर, मनुष्य-तीर्थ, अग्नि गङ्गागया, पुष्कर, यज्ञ, अवश्मेध यज्ञ और पवित्र पर्वतों का वास होता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि शालग्राम शिला में जो विष्णु का पूजन करता है, उसके पापों को सोखकर सालग्राम मुक्ति की बुद्धि देता है। कार्तिक में मथुरा में सालग्राम में हरि का सारूप्य

रहता है। वहाँ सालग्राम में पितरों के उदेश्य से पूजा करने पर कृष्ण उनका उद्धार करके अपने लोक में उन्हें वास देते हैं। वृहन्नारदीय में कहा गया है कि सालग्राम शिला के रूप में जहाँ केशव रहते हैं, वहाँ असुर-भूत-वेताल आदि की बाधा नहीं होती। सालग्राम शिला जहाँ होती है, वहीं तीर्थ है, वहीं तपोवन है। भक्ति से सौ शालिग्राम की पूजा करने पर उससे भी अधिक फल मिलता है।

सालग्रामबाहुल्ये फलविशेषः

अथ तासां बाहुल्ये फलविशेषः पाद्मे—

सालग्रामा युगाः पूज्या युगेषु द्वितयं न हि। अयुग्मा नैव पूज्यन्ते अयुग्मेष्वेक एव हि॥३॥
शिला द्वादश भो वैश्य सालग्रामसमुद्भवाः। विधिवत् पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामि ते॥४॥
कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्णपङ्कजैः। यत्स्याद्द्वादशकल्पैस्तु दिनेनैकेन तद्भवेत्॥५॥
यः पुनः पूजयेद्भक्त्या सालग्रामशिलाशतम्। तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं कल्पशतैरपि॥६॥
इत्याद्यास्तां विस्तरः।

शालग्राम की बहुलता में फलविशेष—पद्म पुराण के अनुसार एक जोड़ी सालग्राम की पूजा करनी चाहिये। दो जोड़ी का पूजन नहीं करना चाहिये। अयुग्म सालग्राम की पूजा नहीं करनी चाहिये। अयुग्मों में एक ही सालग्राम की पूजा करे। बारह सालग्रामों की विधिवत् पूजा से जो फल मिलता है, उसे कहता हूँ। बारह करोड़ लिङ्गों का स्वर्णकमल से बारह कल्पों तक पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है, वह एक ही दिन में बारह सालग्राम के पूजन से मिलता है। जो भक्तिपूर्वक एक सौ सालग्रामों की पूजा करता है, उसके फल का वर्णन मैं सौ कल्पों में भी नहीं कर सकता।

तत्रावाहनाद्यवश्यकार्यत्वम्

अत्र केचित् सालग्रामे विष्णोर्नावाहनं कार्यमिति वदन्ति, तत्र प्रमाणं चिन्त्यं वस्तुतस्तु स्कन्दपुराणादिदर्शनादावाहनमवश्यं कार्यमिति प्रतीयते। यथा स्कन्दपुराणे—

विप्रः पूर्वं निजे देहे स्मृत्युक्तेन न्यसेद्बुधः। ततस्तु प्रतिमायां च सालग्रामे विशेषतः॥१॥
क्रमेण च ततः पश्चात्कुर्यादावाहनादिकम्। आवाहयेच्च पुरतो ध्यानसेव्यं द्विजोत्तमः॥२॥ इति।

अत एवावाहनाद्युद्वासनान्तमभिधायोक्तं बौधायनेन—'सालग्रामे प्रतिमास्वग्नावप्यावाहनादिविसर्जन'मिति। त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—'सालग्राम' इत्युपक्रम्य विसर्जनान्ता पूजोक्ता। अत्र—'सालग्रामशिलायां तु प्रतिष्ठां नैव कारयेत्' इति प्रतिष्ठामात्रनिषेधादावाहनमावश्यकं विष्णोरन्यदेवतानां चाविरुद्धमिति। 'आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत्' इति भागवतेऽपि भगवता स्वयमभिधानात्। आदिपदेन मन्त्रादयो गृह्यन्ते। तथा मेरुतन्त्रेऽपि सालग्रामशिलालक्षणे—

विष्णोर्भेदा इमे प्रोक्ता अत्रैवावाहयेद्धरिम्। विसर्जयेत्तु पूजान्ते प्रतिष्ठा नात्र कारयेत्॥१॥ इति।

सालग्राम में विष्णु का आवाहन—कुछ लोगों के मत से शालिग्राम में विष्णु का आवाहन नहीं करना चाहिये; जबकि स्कन्दपुराण आदि के अनुसार आवाहन अवश्य करना चाहिये; जैसा कि कहा भी है कि विप्र पहले अपने देह में स्मृति के अनुसार न्यास करे। तब प्रतिमा में या विशेषतः सालग्राम में न्यास करके आवाहनादि कर्म करे। तदनन्तर अपने सामने आवाहन करके ध्यान करे। त्रैलोक्यमोहन तन्त्र में भी कहा गया है कि सालग्राम में आवाहन से विसर्जन तक की क्रिया करे; किन्तु प्रतिष्ठा न करे। भागवत में स्वयं भगवान् ने कहा है कि पूजन आदि में आवाहन, स्थापन एवं अंगन्यास करके मेरा पूजन करे। मेरुतन्त्र में भी कहा है कि शालग्राम विष्णु के ही भेद कहे गये हैं; इसमें विष्णु का आवाहन एवं पूजा के अन्त में विसर्जन अवश्य करना चाहिये। केवल प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये।

आवाहनस्वरूप-तत्पर्यायनिर्णयः

आवाहनस्वरूपमुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

स्वत एव प्रपूर्णस्य तत्त्वस्येवार्चनादिषु। सादरं सम्मुखीभावस्तदावाहनमिष्यते ॥१॥ इति।

तत्पर्यायमाह शारदातिलके—

मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुम्नावर्त्मना सुधीः। आनीय तेजः स्वस्थानान्नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ॥१॥
करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्यं पुष्पसञ्चये। संयोज्य ब्रह्मरन्ध्रेण मूर्तावावाहयेत्सुधीः ॥२॥ इति।

सुषुम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रेण दक्षिणनासारन्ध्रनिर्गतमिति। गरुडपुराणे—'आगच्छेति प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर'। आवाहनं प्रकर्तव्यमिति। नृसिंहपुराणे—'आगच्छ नरसिंहे'ति। तन्त्रान्तरे—

आवाहनं स्थापनं च सन्निधापनमेव च। सन्निरोधनमित्युक्तं सम्मुखीकरणं ततः ॥१॥
अथावगुण्ठनं प्रोक्तं सकलीकरणं ततः। अमृतीकरणं चैव परमीकरणं तथा ॥२॥
विधाय स्वस्वमुद्राभिः प्राणस्थापनमाचरेत्। इति।

आवाहन का स्वरूप—सिद्धान्तशेखर में कहा गया है कि अर्चनादि में तत्त्वों के समान सालग्राम स्वतः ही परिपूर्ण होते हैं। इनमें आदरसहित सम्मुखीभाव की भावना करना ही इनका आवाहन होता है।

शारदातिलक में आवाहन का पर्याय बताते हुये कहा गया है कि मूल मन्त्र का उच्चारण करके साधक सुषुम्ना मार्ग से प्रवहमान नासापुट से तेज को अपने हाथ के चैतन्य पुष्प संचय में नियुक्त करे। उसे ब्रह्मरन्ध्र से जोड़कर मूर्ति में आवाहन करे। गरुड़पुराण में कहा गया है कि मूल मन्त्र के साथ 'आगच्छ' का प्रयोग कर आवाहन करे। नृसिंह पुराण में भी इसी का अनुमोदन किया गया है।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि तत्तत् मुद्राओं को दिखाते हुये आवाहन, स्थापन, सन्निधापन, सन्निरोधन, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन, सकलीकरण, अमृतीकरण, परमीकरण करके प्राणप्रतिष्ठा करे।

सकलीकरणस्वरूपम्

सकलीकरणस्वरूपं च सिद्धान्तशेखरे—

अविभिन्नस्वभावानां यदभिन्नप्रयोजनम्। अङ्गानामङ्गिना सार्धं सकलीकरणं त्विदम् ॥१॥ इति।

सकलीकरण—सिद्धान्तशेखर में कहा गया है कि अविभिन्न स्वभावों का जो एक प्रयोजन हो उसका अङ्गों को अंगियों को साथ करना ही सकलीकरण कहलाता है।

देवशुद्धिः

श्रीकुलार्णवे—

पीठे देवं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित्। मूलमन्त्रेण दीपिन्या मालिन्यार्घ्योदकेन च ॥१॥
त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देवशुद्धिरियं प्रिये। पञ्चशुद्धिं विधायेत्थं पश्चाद्यजनमारभेत् ॥२॥
सा पूजा सफला देवि चान्यथा निष्फला भवेत्। इति।

श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि पीठ में देवता की प्रतिष्ठा करके मन्त्रज्ञ सकलीकरण करे। मूल मन्त्र दीपिनी मालिनी मन्त्र से अभिमन्त्रित अर्घ्यजल से तीन बार प्रोक्षण करे। इससे देवशुद्धि होती है। इस प्रकार पञ्चशुद्धि करके पूजन का प्रारम्भ करे। यही पूजा सफल होती है; अन्यथा निष्फल होती है।

तथा—

वाग्भवं वदयुग्मान्ते वाग्वादिनि च वाग्भवम्। कामराजं ततः क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदयेति च ॥१॥

महाक्षोभं कुरुयुगं कामराजमतः परम्। तार्तीयं मोक्षशब्दान्ते कुरुयुग्मं वदेत्ततः ॥२॥
स्यात् प्रासादपराम्बान्ते सप्तत्रिंशद्भिरक्षरैः। दीपिनीमनुरित्युक्तः सर्वसिद्धिकरः प्रिये ॥३॥ इति।

चकारात् कुरुयुग्मान्ते तार्तीयं तदनु पराप्रासादबीजमित्यर्थः। सप्तत्रिंशदक्षर इत्युक्तेः। वाग्भवकामराज-तार्तीया बालाविद्याया एव, सा त्वग्रे वक्ष्यते। पराप्रासादबीजं तु पुरस्तात्प्रयोगे अस्यैव मन्त्रस्यान्ते द्रष्टव्यम्। तथा—
सकलीकृत्य तत्प्राणांस्तदीयानीन्द्रियाणि च। प्रतिष्ठाप्यार्चयेद् देवमान्यथा निष्फलं भवेत् ॥१॥ इति।

अत्र केचित्—अस्मिन्प्राणप्रतिष्ठां तु प्रतिमापूजनादृते। न क्वचित्तु बुधः कुर्यात्कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात्।' इत्युत्तरतन्त्रवचनात्प्राणप्रतिष्ठा न कार्येत्याहुः। तन्न तस्य वचनस्यावाहनादिरहितस्य स्थण्डिलादेः पूजनविषयत्वात्। अत एवोक्तं तत्रैव—'प्रतिमापूजनादृते' इति। प्रतिमा मूर्तिस्तस्यां मन्त्रमय्यामपि तथात्वात्, अन्यथा कथं सकलीकरणमिति।

उपर्युक्त श्लोकों का उद्धार करने पर सर्वसिद्धिकारक सैंतीस अक्षरों का दीपिनी मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट है—ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौ मोक्षं कुरु कुरु ह्सौं स्हौं।

सकलीकरण के बाद उसमें प्राण और इन्द्रियों की प्रतिष्ठा करके देवता का अर्चन करने पर ही अर्चन सफल होता है; अन्यथा निष्फल होता है। कहीं-कहीं पर उत्तरतन्त्र के अनुसार प्राणप्रतिष्ठा का निषेध कहा गया है; किन्तु वह उचित नहीं है; क्योंकि वह वचन आवाहनादि से रहित स्थण्डिल आदि में पूजा के सन्दर्भ में है।

मुद्राशब्दनिरुक्तिः

उत्तरतन्त्रे—'मुद्रां प्रदर्श्य विधिवदुपचारान्प्रकल्पयेत्'। मुद्रास्तत्तत्कल्पोक्तास्तास्त्वग्रे वक्ष्यन्ते। कुलमूलावतारे—

मुदं स्वरूपलाभाख्यां देहद्वारेण वात्मनः। या ह्यर्पयन्त्ययत्नेन मुद्रास्ताः परिकीर्तिताः ॥१॥
मोचयन्ति ग्रहादिभ्यो पापौघं द्रावयन्ति च। मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रा शास्त्रेषु वर्णिता ॥२॥
इति मुद्राशब्दनिरुक्तिः।

मुद्रा—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि विधिवत् मुद्राओं को प्रदर्शित कर उपचारों को समर्पित करे। मुद्रा के विषय में कुलमूलावतार में कहा गया है कि आत्मा को स्वरूपलाभ के लिये शरीर के द्वारा जो सुगमता से अर्पित किया जाता है, उसे मुद्रा कहते हैं। प्रसन्नता देने से इसका नाम मुद्रा है। यह दुष्ट ग्रहों से छुटकारा दिलाती है और पापसमूह का नाश करती है; इस प्रकार मोचन और द्रावण करने से इसका नाम मुद्रा है।

प्रपञ्चसारे—

आसने स्वागते चार्घ्ये पाद्ये साचमनीयके। मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणान्यपि ॥१॥
सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यचन्दनम् । प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश ॥२॥
अर्घ्यपाद्ये साचमने मधुपर्काचमान्यपि। गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥३॥
गन्धादयो निवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका। सपर्यास्त्रिविधाः प्रोक्तास्तासामेकतमां श्रयेत् ॥४॥ इति।
अत्र पञ्चोपचारपूजापक्षे अर्घ्यादिस्थापनं नास्ति प्रयोजनाभावात्।

उपचारों के भेद—प्रपञ्चसार में कहा गया है कि आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, स्नान, वसन, आभूषण, गन्ध-पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य, चन्दन—ये सोलह पूजन के उपचार हैं। अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—ये दश भी उपचार हैं। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—ये पाँच भी उपचार है। इस प्रकार सपर्या तीन प्रकार की होती है—षोड़शोपचारिका, दशोपचारिका एवं पञ्चोपचारिका। उनमें से किसी एक का आश्रयण कर अर्चन करना चाहिये। पञ्चोपचार पूजा में निष्प्रयोजन होने अर्घ्यादि स्थापन नहीं किया जाता।

उपचारनिवेदनप्रकार:

भैरवीतन्त्रे—'एकैकस्यां ततो मन्त्री प्रणम्य तु निवेदयेत्'। तन्निवेदनप्रकारमाह नारदपञ्चरात्रे—

प्रणवान्ते त्रिधा कृत्वा प्राणं व्योमविभूषितम्। इदमिदमिदं पश्चात्पदं दद्यात्षडक्षरम्॥१॥
गृहाण च ततः स्वाहा मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः। योज्यः सर्वोपचारेषु पाद्यादिषु सदैव हि॥२॥ इति।

प्राणं हकारः। व्योम बिन्दुः। अत्र तृतीयहकारोपरिस्थितबिन्दोरिकारेण सह सन्धिः कार्यस्तदा तु भवति। उत्तरतन्त्रे—

मूलेनैवासनं दद्यात् तेन स्वागतमीरयेत्। ततोऽर्घ्यं मूर्ध्नि दद्याच्च स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित्॥१॥
पादाब्जे देवतायास्तु हृदा पाद्यं प्रकल्पयेत्। दद्यादाचमनं वक्त्रे देवतायाः सुधाणुना॥२॥
सुधामन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्कं मुखाम्बुजे। इति।

अत्रार्घ्याचमनीयमधुपर्कमुख्येष्वपि शूद्रैर्नमःपदमेव स्वाहादिस्थाने प्रयोक्तव्यं प्रागुक्तयुक्तेः।

उपचार-निवेदन प्रकार—भैरवी तन्त्र में कहा गया है कि देवता को प्रणाम करते हुये एक-एक उपचारों को उन्हें निवेदित करे। निवेदन मन्त्र नारद पञ्चरात्र के उपर्युक्त दो श्लोकों का उद्धार करने पर पन्द्रह अक्षर का इस प्रकार बनता है—'ॐ हं इदं अर्घ्यं समर्पयामि गृह्ण स्वाहा'। इसी मन्त्र से क्रमशः उपचारों को समर्पित करना चाहिये।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मूलमन्त्र से आसन प्रदान करे। तब स्वागत करे। तब स्वाहा मन्त्र से मूर्धा में अर्घ्य प्रदान करे। देवता के चरण-कमलों में पाद्य का समर्पण नमः से करे। मुख में सुधाबिन्दु से आचमन प्रदान करे। एवं मुखकमल में ही सुधामन्त्र से मधुपर्क प्रदान करे। शूद्र अर्घ्य, आचमनीय एवं मधुपर्क का समर्पण स्वाहा के बदले 'नमः' पद से करे।

द्विजानां वैदिकपूर्वकमेव तान्त्रिकपूजा

अथात्र—'वैदिको मिश्रितो वापि विप्रादीनां विधीयते। तन्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः।' इति पद्मपुराणवचनाद् ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैर्गणेशादिपञ्चदेवतानां तत्तद्वैदिकमन्त्रेण प्रथमं पूजां कृत्वा ततस्तत्तत्तान्त्रिकमन्त्रेण पूजा कार्या। केवलतान्त्रिकयजनस्य शूद्रविषयत्वादुक्तवचनात्।

कदाचिदपि न त्याज्यो वेदमार्गो द्विजैः सदा। वेदच्युतानां विप्रत्वं देवत्वं चापि दुर्लभम्॥१॥
वेदः कर्तुं तु नो शक्यस्तन्त्राणि तु युगे युगे। कल्मषं सम्भवैर्विप्रैर्यन्नाम्ना कीर्तिताः सदा॥२॥
कलिना प्रेरिता विप्रास्तत्तन्त्रपथगामिनः। कामलोभादिभिर्ग्रस्ता ब्राह्मण्येन विदारिताः॥३॥
म्लेच्छास्ते ते भविष्यन्ति क्षीणपुण्याश्च रौरवे। पतिष्यन्तीति विज्ञाय न वै वैदिकमुत्सृजेत्॥४॥ इति।

पद्मपुराण के अनुसार वैदिक अथवा मिश्रित पूजा ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को करनी चाहिये। तान्त्रिक पूजा विप्रभक्त शूद्र भी कर सकता है। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य गणेशादि पञ्च देवता का पूजन प्रथमतः वैदिक मन्त्रों से करे, तब तान्त्रिक मन्त्र से पूजा करे। केवल तान्त्रिक पूजन शूद्र के लिये कर्तव्य होता है।

द्विजों को वैदिक मार्ग का त्याग कभी नहीं करना चाहिये। वैदिक मार्ग के त्याग से विप्रत्व और देवत्व की प्राप्ति दुर्लभ होती है। वैदिक कर्म करने में असमर्थ होकर युग-युग से तान्त्रिक कर्म करने के कारण उत्पन्न पापों से विप्र प्रसिद्ध होते हैं। कलि से प्रेरित विप्र तान्त्रिक मार्ग का अनुसरण करते हैं और वे काम, लोभ से ग्रस्त होकर अपने ब्राह्मणत्व का नाश करते हैं। इस प्रकार वे म्लेच्छ होकर अपने पुण्य के नष्ट होने पर रौरव नरक में जाते हैं। अतः विप्र को वैदिक मार्ग का त्याग नहीं करना चाहिये।

गणेशादिपञ्चदेवतानां वैदिकमन्त्राः

तत्र वैदिकमन्त्रास्तु—'गणानां त्वा' इति गणपतेः। 'गौरीर्मिमाय' इति भुवनेश्वर्यादिगौरीभेदानाम्। 'यद्वाक्'

इति भारत्याः। श्रीसूक्तं लक्ष्म्याः। 'जातवेदसे सुनवाम' इति दुर्गायाः। विष्णोः पुरुषसूक्तम्। रवेः 'आकृष्णेन' इति। शिवस्य 'नमः शम्भवे' इति 'त्र्यम्बकं यजामहे' इति वा। गणानां त्वेति गृत्समदो गणपतिर्जगती। गौरीर्मिमायेति जगती दीर्घतमाः। आकृष्णेनेति हिरण्यस्तूपः सविता त्रिष्टुप्।

गणेश आदि देवताओं के वैदिक मन्त्र इस प्रकार हैं—गणपति—गणानां त्वा। भुवनेश्वरी आदि गौरीभेद—'गौर्मिमामाय'। भारती—यद्वाक्। लक्ष्मी—श्रीसूक्त। दुर्गा—जातवेदसे सुनवाम। विष्णु—पुरुषसूक्त। सूर्य—आकृष्णेन। शिव—'नमः शम्भवे' या 'त्र्यम्बकं यजामहे'। गणेश मन्त्र के ऋषि गृत्समद और छन्द जगती है। गौरी मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा और छन्द जगती है। सूर्य मन्त्र के ऋषि हिरण्यस्तूप और छन्द त्रिष्टुप् है।

आसनाद्युपचारनिर्णयः

अथोपचाराः, तत्रादावासनानि—

देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम्। पौष्पं दारुमयं वास्त्रं चार्मकौशेयतैजसम्॥१॥
षड्विधमासनं प्रोक्तम् ....। इति।

उत्तरतन्त्रे—

पौष्पं पुष्पादिरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम्। अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव॥१॥
यज्ञदारुसमुद्भूतमासनं चाव्रणं शुभम्। अन्यदारुभवं चापि दद्यादासनमुत्तमम्॥२॥
सकीटकक्षीरयुतं दारुसारविवर्जितम्। चैत्यश्मशानसम्भूतं वर्जयित्वा विभीतकम्॥३॥ इति।

चैत्यो ग्रामप्रसिद्धिहेतुभूतो महान् वृक्षः। दारुमयासने विशेषमाह रुद्रयामले—

शाण्डिल्यभद्रसारस्य चासनं हस्तमात्रकम्। सप्ताङ्गुलोच्छ्रितं दद्याद्विष्टरं वा विचक्षणः॥१॥

शाण्डिल्यो बिल्वः। 'बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि' इत्यमरः। भद्रसारश्चन्दनः। 'भद्रसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रिया'मित्यमरः। विष्टरो दर्भमुष्टिः। सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषितम्। विष्टरं सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्। इति। यद्वा विष्टरशब्दस्त्वासनमात्रवाची 'विष्टरे विटपे दर्भमुष्टौ पीठाद्यमासन'मिति हि कोशः। उत्तरतन्त्रे—

कोशजं बाल्कलं शाणवस्त्रमेतद्द्वयं स्मृतम्। रोमजं कम्बलं चैव बादरं च चतुष्टयम्॥१॥
वास्त्रेषु कम्बलं श्रेष्ठमासनं देवतुष्टये।

वास्त्रमासनचतुष्टयमित्यर्थः। बादरं कार्पासम्। 'कार्पासं बादरं च त'दिति विश्वप्रकाशकोशाच्च। तथा—

सिंहव्याघ्रतरक्षूणां छागस्य महिषस्य च। गजानां च तुरङ्गाणां कृष्णसारस्य चर्मणः॥१॥
राङ्कवं रोमजं श्रेष्ठं दारवं चन्दनोद्भवम्।

राङ्कवं रङ्कुनामा मृगः काश्मीरदेशे प्रसिद्धः तद्रोमजं 'पामरी' इति लोके प्रसिद्धा कम्बलविशेषः। तथा—

यच्चासनं कुशमयं तदासनमनुत्तमम्। योगपीठस्य सदृशमासनं कौशमुच्यते॥१॥ इति।

तथा—

सर्वेषां तैजसानां चाप्यासनं श्रेष्ठमुच्यते। वर्जयित्वा लोहमयं कांस्यं सीसकमेव च॥१॥ इति।

आसन आदि उपचार—देवता के वाम भाग में मूल मन्त्र से आसन प्रदान करे। यह आसन पुष्प का, लकड़ी का, वस्त्र का, चर्म का, कुश का या तैजस के भेद से छः प्रकार का होता है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि फूलों से निर्मित पौष्प आसन जो कि कुश-सूत्रादि संयुक्त होती है, देवी, शिव और अन्य देवताओं को अतिशय प्रीतिकर होता है। छिद्ररहित यज्ञीय लकड़ी का आसन शुभ होता है। अन्य काष्ठों से निर्मित उत्तम आसन भी प्रदान करना चाहिये। दूध वाले वृक्षों की लकड़ी

का अथवा जिसमें घुन लगा हो उस लकड़ी से निर्मित आसन वर्जित है। मन्दिर और श्मशान में उत्पन्न लिसोड़े का आसन भी वर्जित है।

लकड़ी के आसन के सन्दर्भ में रुद्रयामल में कहा गया है कि बेल एवं चन्दन का एक हाथ लम्बा-चौड़ा एवं सात अंगुल ऊँचा आसन देना चाहिये। अथवा एक मुट्ठी कुशा से निर्मित आसन प्रदान करना चाहिये।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि रेशम से बना या वल्कल-निर्मित लाल रंग का आसन, रोयें वाले कम्बल से निर्मित अथवा कार्पासूत्रों से निर्मित इस प्रकार चार प्रकार के वस्त्रनिर्मित आसन होते हैं। इनमें कम्बल का आसन देव तुष्टि के लिये श्रेष्ठ होता है।

सिंह, व्याघ्र, लकड़बग्घा, बकरा, भैंस, हाथी, घोड़ा, काला हरिण के चमड़े का आसन एवं पामरी कम्बल का आसन तथा चन्दन लकड़ी का आसन श्रेष्ठ होता है।

कुशनिर्मित आसन योगपीठ के लिये उत्तम होता है। लोहा, कांसा एवं सीसे को छोड़कर शेष समस्त तैजस आसन श्रेष्ठ होता है।

पाद्याचमनयो: समयाभिधानम्

अत: परमर्घ्यदानं, तच्च देवस्य शिरोर्हणायैव शिरसि देयम्। न चैवं पित्रर्घ्येणाव्याप्तिर्विप्रकरे दानादिति वाच्यं, तस्य पितॄणां शिरोर्हणायैव तत्र दानादिति सोमशम्भु:—

आगताय तथार्चायां स्नातुमासनगाय च। पूजितागन्तुकामाय दद्यादर्घ्यं विचक्षण: ॥१॥
आगते स्नानकाले च नैवेद्योपक्रमे तथा। पाद्यस्यापि समुद्दिष्ट: समयस्त्रिविधो बुधै: ॥२॥
पाद्ये च मधुपर्के च स्नाने वस्त्रोपवीतयो:। भोजने चाचमं दद्यात्.....................॥३॥ इति।

तूर्णायागे—

सुगन्धतैलैरभ्यर्च्य सुगन्धामलकादिभि:। उद्वर्तनं विधायाथ तर्पयित्वाथ वारिणा ॥१॥
गन्धोदकैश्च मूलेन यथाशक्त्याभिषेचयेत्। महाभिषेकं सर्वत्र शङ्खेनैव प्रकल्पयेत् ॥२॥
सर्वमन्त्रे प्रशस्तोऽब्ज: शिवसूर्याचमं विना। इति।

अब्ज: शङ्ख:। अगस्त्य:—

स्नानं पुरुषसूक्तेन शुद्धशङ्खोदकेन च। क्षीरदध्याज्यमधुभि: खण्डेन च पृथक्पृथक् ॥१॥
नारिकेलोदकेनापि तथा तालफलाम्बुना। गन्धद्रव्यैश्च मधुभिस्तथा गन्धोदकेन च ॥२॥
ऐक्षवेणोदकेनापि सकर्पूरादिगन्धिना। कदलीपनसाम्रोत्थजलेनापि सुगन्धिना ॥३॥
शतं सहस्रमयुतं शक्त्या वाप्यभिषेचयेत्। शङ्खं सम्पूज्य तेनैव सपुष्पेण रघूत्तम ॥४॥
सकृष्णागुरुधूपेन धूपयेदन्तरान्तरम्। तत: शुद्धजलेनैव स्नापयेत्तमनन्यधी: ॥५॥ इति।

अर्घ्यदान—अर्घ्य देवता के शिर पर देना चाहिये। उसके देने के समय निर्धारण करते हुये। सोम शम्भु में कहा गया है कि आगत के लिये अर्चा में, स्नान में, आगन्तुक के पूजन में अर्घ्य देना चाहिये। आने पर स्नानकाल में और नैवेद्य समर्पण के समय पाद्य प्रदान करना चाहिये। पाद्य, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, उपवीत और भोजन के समय आचमन प्रदान करना चाहिये।

तूर्णायाग में कहा गया है कि सुगन्धित तेल का मर्दन करे। सुगन्धित आमले को उबटन लगाकर जल से तर्पण करे। गन्धोदक से मूल मन्त्र से अभिषेक करे। महाभिषेक शङ्ख से करे। शिव एवं सूर्य के अतिरिक्त सभी के अर्चन में शङ्ख प्रशस्त है।

अगस्त्य ने कहा है कि देवता का स्नान पुरुषसूक्त से शुद्ध शङ्ख जल से, अलग-अलग दूध, दही, आज्य, मधु और शक्कर से करावे। नारियल जल से, ताड़फल के जल से, गन्धद्रव्य से, मधु से, गन्धोदक से, ईख के रस से, कपूरादि द्वारा सुगन्धित जल से, केला, कटहल एवं आम के रस से सुगन्धित जल से एक सौ, एक हजार या दश हजार बार यथाशक्ति पूजित शङ्ख से पुष्प सहित अभिषेक करे। इसके बाद काले अगर के धूप से धूपित करे। तब शुद्ध जल से एकाग्र मन से स्नान कराये।

शिवस्य शङ्खस्नापने मतभेदः

अत्र शिवस्य शङ्खेन स्नपनं निषिद्धं, पुराणे तु शङ्खेन स्नपनं प्रशस्तं श्रूयते। स्कान्दे—

सुप्रतिष्ठितशंखस्थतीर्थैः पञ्चामृतैरपि। अभिषिच्य महादेवं रुद्रसूक्तैः समाहितः ॥१॥ इति।

भगवान् शिव का शंखजल से अभिषेक निषिद्ध है; किन्तु पुराणों में शंखजल से शिव को स्नान कराने का निर्देश प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि सुप्रतिष्ठित शङ्खजल एवं पञ्चामृत से शिव का अभिषेक रुद्रसूक्त से सावधानीपूर्वक करे।

प्रदेयवस्त्रादिनिर्णयः

यामले—

पीतं कौशेयवसनं विष्णुप्रीत्यै प्रकीर्तितम्। रक्तं शक्त्यर्कविघ्नानां शिवस्य च सितं प्रिये ॥१॥
मलहीनं तथाछिद्रं क्षौमं कार्पासमेव च। इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

तैलादिदूषिताद्रोगः सच्छिद्राद्वाच्यता भवेत्। जीर्णाद्दरिद्रता कर्तुर्मलिनात् कान्तिहीनता ॥१॥ इति।

कालिकापुराणे—

निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलम्बितम्। परकीयं चाखुदष्टं सूचीविद्धं तथासितम् ॥१॥
उपकेशमधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम्। प्रदाने देवताभ्यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२॥
वर्जयेत् स्वोपयोग्यं च यज्ञादावुपयोजने। इति।

उत्तरतन्त्रे—

यज्ञोपवीतं दत्त्वाथ भूषणानि समर्पयेत्। तानि नानाविधानि स्युर्मुकुटादिप्रभेदतः ॥१॥
स्त्रीपुंस्प्रभेदतश्चापि विज्ञेयानि विचक्षणैः। इति।

रुद्रयामल में कहा गया है कि पीला कौशेय वस्त्र विष्णु को प्रिय है। शक्ति और गणेश को लाल वस्त्र और अन्य को श्वेत वस्त्र प्रिय है। इन वस्त्रों में मलहीन, छिद्ररहित, रेशम या कपास का वस्त्र प्रशस्त कहा गया है। मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि तैलादि से दूषित वस्त्र समर्पित करने से रोग होता है। सछिद्र वस्त्र के समर्पण से वाचालता होती है। जीर्ण वस्त्र देने से दरिद्रता होती है और मलिन वस्त्र के अर्पण से कान्तिहीनता होती है। कालिकापुराण में कहा गया है कि निर्दश, मलिन, जीर्ण, छिन्न, पहना हुआ, दूसरे का, चूहा से काटा हुआ, सूई से सिला हुआ, काला, बाल लगे, न धुला हुआ एवं श्लेष्म-मूत्रादि से दूषित वस्त्र देवता या पितरों को प्रदान करना वर्जित है। अपने उपयोग के योग्य वस्त्र यज्ञादि में देना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि देवता को यज्ञोपवीत देकर विविध प्रकार के आभूषण मुकुट आदि प्रदान करे। वे आभूषण स्त्रियों एवं पुरुषों को अलग-अलग प्रदान करने चाहिये।

गन्धादिकानां तत्तद्दैवतवर्णनम्

योगिनीतन्त्रे—

गन्धः पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च। यस्य यद्दीयते वस्त्रमलङ्कारादिकाञ्चनम् ॥१॥
तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने। उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ॥२॥

वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत्। अन्नस्य देवता लक्ष्मीरथवापि प्रजापतिः ॥३॥
सुवर्णं चाग्निदैवत्यं रजतं चन्द्रदैवतम्। हेरकं वारुणं ज्ञेयं रसानां पृथिवी तथा ॥४॥
जलस्य वरुणो देवः पेयानां वरुणस्तथा। कृसरस्य रमा देवी परमान्नस्य चैव हि ॥५॥
घृतप्रदीपके विष्णुस्तैलयोगे वनस्पतिः। गान्धर्वश्च तथा धूपो ह्याज्यं चैवाग्निदैवतम् ॥६॥
मधु वै वारुणं ज्ञेयं दधि क्षीरं च वैष्णवम्। वानस्पत्यं तथा पुष्पं वैष्णवो गन्ध ईरितः ॥७॥
मालायाश्च तथा दुर्गा सर्वं वा विष्णुदैवतम्। इति।

अत्र पूजन एव देवतोच्चारः 'तेषां दैवतमुच्चार्य पूजयेच्च विचक्षणः' इति स्वयमभिधानात्। उत्सर्गस्तु मूलमन्त्रेण 'तथोत्सर्गनिवेदने' इति स्वयमभिधानात्।

योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अलंकार, दक्षिणा का प्रोक्षण-पूजन करके जिस देवता को देना है, उस देवता के नाम के साथ मूल मन्त्र जोड़कर प्रत्येक वस्तु को निवेदित करे। वरुण बीज 'वं' से सबका प्रोक्षण करे; क्योंकि जल के देवता वरुण हैं। अन्न के देवता लक्ष्मी अथवा प्रजापति हैं। सोने के देवता अग्नि, चाँदी के चन्द्र, हीरे के देवता वरुण तथा रसों के देवता पृथ्वी हैं। जल और पेय पदार्थों के देवता वरुण हैं। खिचड़ी और परमान्न के देवता लक्ष्मी हैं। घी के दीपक के देवता विष्णु है। तैल के देवता वनस्पति हैं। धूप के देवता गन्धर्व और आज्य के देवता अग्नि हैं। मधु के देवता वरुण एवं दही, दूध के देवता विष्णु हैं। पुष्प के देवता वनस्पति हैं। गन्ध के देवता विष्णु हैं और माला के देवता दुर्गा हैं। अथवा सबों के देवता विष्णु हैं।

गन्धभेदलक्षणानि

कालिकापुराणे—

चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव च। रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव च ॥१॥
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिकारकः। गन्धचूर्णं गन्धपत्रचूर्णं सुमनसस्तथा ॥२॥
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि च। तानि गन्धाह्वयानि स्युश्चूर्णजः प्रथमः स्मृतः ॥३॥
घृष्टो मलयजो गन्धः सकलश्च नमेरुणा। अगरुप्रभृतिश्चैव यस्य पङ्कः प्रणीयते ॥४॥
घृष्टेन घृष्टो गन्धोऽयं द्वितीयः परिकीर्तितः। इति।

शारदातिलके—

गन्धश्चन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितः। देवदार्वगरुब्रह्मसारसारात् तु चन्दनात् ॥१॥
प्रियादीनां च यो दग्ध्वा गृह्यते दारुजो रसः। स दाहाकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः ॥२॥
सुगन्धकरवीराद्यं सुगन्धललिता तथा। सुगन्धात्परमो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते ॥३॥
स सम्मर्दोद्भवो गन्धः सम्मर्दज इतीष्यते। मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोशोद्भव एव च ॥४॥
गन्धः प्राण्यङ्गजो ज्ञेयो मोददः स्वर्गवासिनाम्। इति।

कालिका पुराण में कहा गया है कि देवता को प्रिय लगने वाले गन्ध पाँच प्रकार के हैं—चूर्ण, घृष्ट (रगड़ा हुआ), दाह से आकर्षित, रस या सम्मर्दज और प्राणी के अङ्ग से उत्पन्न; जैसे—कस्तूरी या गोरोचन। गन्धचूर्ण, गन्धपत्रचूर्ण, सुगन्धित पुष्प, पत्रचूर्णों में से चूर्ण का गन्ध सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। घृष्ट में चन्दन या अन्य गन्ध वाले नमेरु तथा अगर आदि के लेप आते हैं। चूर्ण गन्ध के बाद घृष्ट गन्ध एवं टुकड़ों में श्रेष्ठ होता है।

शारदा तिलक में कहा गया है कि गन्ध में चन्दन कपूर काला अगर देवदार अगर, ब्रह्मसार आदि चन्दन आते हैं दग्ध काष्ठ का रस दूसरा है। दाहाकर्षित गन्ध तीसरा है। जो करवीरादि सुगन्धित पुष्प की लता के निष्पीड़न से गन्ध प्राप्त होता है, उसे सम्मर्दित गन्ध कहते हैं। मृगनाभि से उत्पन्न गन्ध को प्राण्यंगज कहते हैं। ये सभी देवताओं को प्रसन्नता देते हैं

पुष्पभेदतदनुपयोगनिरूपणम्

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पुष्पं पञ्चविधं प्रोक्तं मुनिभिर्नारदादिभिः। परापरोत्तमं चैव मध्यमं च तथाधमम्॥१॥
सौवर्णं परमित्युक्तमपरं चित्रवस्त्रजम्। वृक्षगुल्मलतापुष्पमुत्तमं परिकीर्तितम्॥२॥
अधमं पत्रतोयादि मध्यमं तु फलात्मकम्। उत्सृष्टं न क्रियायोग्यं सदा योग्यं परापरे॥३॥ इति।

एषु यदुत्स्रष्टं देवेभ्यो दत्तं तत्पुनः क्रियायोग्यं न भवतीत्यर्थः। परापरे इति—परं सौवर्णम्, अपरं वास्त्रं, ते चानुत्सृष्टे चेत्सदा योग्ये भवेतां, देवतोपरि सदा धार्ये इत्यर्थः। तयोरेकतरमप्युत्सृष्टं यदि भवति तदा तत्पुनः क्रियायोग्यं देवपूजायोग्यं न भवतीत्यर्थः। ज्ञानार्णवे—

पुष्पैः पर्युषितैर्देवि नार्चयेत् स्वर्णजैरपि। निर्माल्यभूतैः कुसुमैरुत्सृष्टैः परमेश्वरि॥१॥ इति।

निर्माल्यभूतैरुत्सृष्टैर्दत्तैरिति यावत्। अथवोत्सृष्टैः पूजावशिष्टैः। उत्तमपुष्पाण्युत्तरतन्त्रे—

शुक्ला कृष्णा च तुलसी शुक्लं रक्तञ्च पङ्कजम्। केतकीयुगलं जातीद्वयं द्वन्द्वहयारिजम्॥१॥
पुष्पाणां दशकं ह्येतत्प्रशस्तं परिकीर्तितम्। रक्तनीलोत्पले शस्ते मल्लिकाकुमुदं तथा॥२॥
कुन्दं कह्लारकं चैव मन्दारं तगरं पुनः। अर्जुनं किंशुकं रक्तं मन्दारं नागचम्पकम्॥३॥
अशोकं बिल्वपुष्पाणि पाटला नवमल्लिका। चम्पकं कर्णिकारं च पारिजाततरूद्भवम्॥४॥
शतवर्गोद्भवं पुष्पं कोरण्टकुसुमानि च। इत्यादीनि सुपुष्पाणि गन्धवन्ति लसन्ति च॥५॥
तत्तन्मन्त्रविधानेषु विहितानि समर्पयेत्। म्लानानि चाम्बुगान्येव शीर्णानि क्ष्मागतानि च॥६॥
यानि पर्युषितानि स्युः क्रिमिभिर्भक्षितानि च। कोरकाणि च दुष्टानि समाघ्रातानि नार्पयेत्॥७॥ इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पत्रेषु तुलसी श्रेष्ठा बिल्वं दामनकं शुभम्। मरुवो देवकह्लारि विष्णुक्रान्ता तथैव च॥१॥
अपामार्गोऽथ गान्धारी पत्री सुरभिसंज्ञिता। नागवल्लीदलं दूर्वा कुशपुष्पं तथा मतम्॥२॥
पत्रं चागस्त्यवृक्षस्य पुण्यं धात्रीफलं तथा। इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में नारदादि मुनियों ने कहा है कि फूल पाँच प्रकार के होते हैं—परा, अपरा, उत्तम, मध्यम और अधम। सोने का फूल पर होता है। चित्रवस्त्र से निर्मित पुष्प अपर होता है। वृक्ष-गुल्म-लता से उत्पन्न पुष्प उत्तम होता है। फल वाले पुष्प मध्यम एवं अधम पत्र-जल आदि के फूल होते हैं उत्सृष्ट फूल क्रिया-योग्य नहीं होते। पर-अपर सर्वदा योग्य होते हैं।

उत्सृष्ट अर्थात् देवता पर चढ़ा हुआ फूल दुबारा देवता पर नहीं चढ़ाना चाहिये। सौवर्ण एवं वास्त्र पुष्प सदा धारण के योग्य होता है। शेष पुष्प एक बार देवता पर चढ़ाने के बाद दुबारे नहीं चढ़ाये जाते। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि वासी फूलों से देवता का पूजन नहीं करना चाहिये। सोने का फूल भी निर्माल्य होने पर दुबारा चढ़ाने के योग्य नहीं होता।

उत्तम पुष्प—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि उजली-काली तुलसी, उजला-लाल कमल, केतकीयुगल, जातीद्वय, पीला-लाल कनैल—इन दश प्रकार के फूलों को पूजा में प्रशस्त कहा गया है। अर्जुन, पलास, लाल मन्दार, नागचम्पा, अशोक, बिल्वपुष्प, गुलाब, बेला, चम्पा, कर्णिकार, पारिजात वृक्ष से उत्पन्न, शतवर्ग से उत्पन्न पुष्प, कोरण्टक कुसुम सुगन्धित और सुन्दर होते हैं। उपयुक्त मन्त्रों से इन्हें समर्पित करना चाहिये। म्लान, पानी में गिरे, कटे-फटे, भूमि पर गिरे, बासी, कीड़ों के खाये हुए, दूषित कुड्मल एवं सूंघा हुआ फूल को देवता को समर्पित नहीं करना चाहिये।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि पत्रों में तुलसी श्रेष्ठ है। बेल और अशोक शुभ है। मरुवक, कल्हार, विष्णुक्रान्ता, अपामार्ग, गान्धारी, पत्री, सुरभि, नागवल्ली, दूर्वा, कुशपुष्प, अगस्त्यपत्र एवं धात्रीफल पुण्यदायक है।

देवताविशेषे पुष्पविशेषनिषेधः

ज्ञानमालायाम्—

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम्। न दूर्वया यजेद् दुर्गां बिल्वपत्रैर्दिवाकरम्॥१॥
देवीनामर्कमन्दारावादित्ये तगरं तथा। गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्पमतिप्रियम्॥२॥
शिवे कुन्दं मदन्ती च यूथिं बन्धूककेतके। जपां रक्तां त्रिसन्ध्ये द्वे सिन्दूरं कुटकानि च॥३॥
मालतीं घुसृणं रक्तहयारिं बर्बरीं त्यजेत्। उग्रगन्धमगन्धं च केशक्रिम्यादिदूषितम्॥४॥
अशुद्धपात्रपाण्यङ्गवासोभिः कुत्सितात्मभिः। आनीतं नार्पयेच्छम्भोः प्रमादादपि दोषकृत्॥५॥
कलिकाभिस्तथा नेज्यं विना पङ्कजचम्पकैः। शुष्कैर्न पूजयेच्छम्भुं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥६॥
स्नात्वानीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः। स्वयं विकाशितैः पुष्पैः स्वयं च पतितैर्भुवि॥७॥
वर्जयेद् बृहतीपुष्पं काञ्चनारं कुरण्टकम्। सर्वपुष्पैः सदा पूजा विहिताविहितैरपि॥८॥
कर्तव्या सर्वदेवानां भक्तिरेवात्र कारणम्। इति।

अत्र स्नात्वानीतैर्मध्याह्नस्नानोत्तरमादृत्यानीतैरित्यर्थः। प्रातरुत्थानादिप्रातःकालीनपूजान्तं प्रथमप्रहरकृत्यमुक्त्वा 'ततः पुष्पफलादीनामुत्थायार्चनमाचरे'दिति द्वितीयप्रहरकृत्यत्वेन नारदपञ्चरात्रे पुष्पाहरणस्योक्तत्वात्।

ज्ञानमाला में कहा गया है कि विष्णु पर अक्षत न चढ़ाये। गणेश को तुलसी अर्पित न करे। दुर्गा का पूजन दूर्वा से न करे। सूर्य को बेलपत्र न चढ़ावे। शिव का पूजन कुन्द, मदन्ती, यूथिका, बन्धूक, केतकी, लाल अडहुल, मालती, घुसृण, लाल कनैल, वर्वरी से न करे। देवी पर अर्क मन्दार और सूर्य को तगर न चढ़ाये। गणेश और सूर्य को लाल फूल अतिप्रिय हैं। उग्र गन्ध, गन्धरहित, केश-क्रिमी आदि से दूषित; अशुद्ध पात्र हाथ अंग वस्त्र के द्वारा लाया गया फूल शिव को अर्पित न करे। इन सबो को प्रमाद से चढ़ाने पर भी दोष होता है। कालिका का पूजन बिना कमल और चम्पा के न करे। शिव का पूजन सूखे फूल, पत्र और फल से न करे। स्नान करके लाया हुआ बासी या याचित काले रंग का फूल शिव पर न चढ़ावे। अपने से विकाशित या भूमि पर पतित फूल का अर्पण न करे। बृहतीपुष्प, काचनार, कुरण्टक आदि सभी विहित-अविहित फूलों से सभी देवता का पूजन करे। भक्तों के लिये पूजा में भक्ति ही मुख्य होती है।

पुष्पार्पणनिर्णयः

तथा—

पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्। दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम्॥१॥
चित्रपूजासु सर्वासु न विरुद्धस्य दूषणम्। अधोमुखार्पणं नेष्टं पुष्पाञ्जलिविधौ न तत्॥२॥
लक्षपूजासु सर्वासु पुष्पमेकैकमर्पयेत्। समुदायेन चेत्पूजा लक्षपूजार्पणं न तत्॥३॥

पुष्पार्पण—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि देवता को पत्र-पुष्प-फल को अधोमुख करके अर्पण न करे; यह दुःखद होता है। अपितु वह जैसा उत्पन्न हो, वैसे ही अर्पण करना चाहिये। चित्र पूजा में विरुद्ध दूषण नहीं है। पुष्पाञ्जलि में अधोमुख पुष्प अर्पण में दोष नहीं है। सभी लक्ष पूजन में एक-एक फूल चढ़ावे। जो समुदाय पूजन है उसमें लक्षपूजार्पण नहीं होता।

पर्युषितदोषादोषविचारः

न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजोत्पलचम्पके। तुलस्यगस्त्यबकुले बिल्वे गङ्गाजले तथा॥४॥ इति।

अत्र केचिदुत्पलपददर्शनात् जलजपदेन कमलमात्रं ग्राह्यमिति वदन्ति। तन्न 'तुलस्यां बिल्वपत्रे च जलजेषु च सर्वशः। न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च'। इति भविष्यपुराणवचनात्। उत्तरतन्त्रे—

परारोपितवृक्षेभ्यः पुष्पाण्यानीय चार्चयेत्। अविज्ञाय च तैर्यस्तु निष्फलं तस्य पूजनम्॥१॥ इति।

ज्ञानमालायाम्—

फलेष्वामलकं श्रेष्ठं बादरं तिन्तिणीफलम्। दाडिमं मातुलिङ्गं च जम्बीरं पनसोद्भवम्॥१॥
कदलीचूतसम्भूतं श्रेष्ठं जम्बूफलं तथा। यजेदेतैः सदा विष्णुं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥२॥ इति।

विष्णुमित्युपलक्षणम्।

दिवसे दिवसोत्फुल्लैः पुष्पैः पूजा तथा निशि। पुष्पाभावे प्रवालैर्वा कारयेच्चूतकोरकैः॥१॥ इति।

जलज, उत्पल और चम्पा में पर्युषित दोष नहीं होता। तुलसी, अगस्त्य, बकुल, विल्वपत्र और गंगाजल में भी पर्युषित दोष नहीं लगता है। दूसरे के द्वारा लगाये गये वृक्ष से अज्ञानतावश फूल लाकर जो देवता का अर्चन करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है।

ज्ञानमाला में कहा गया है कि फल में आमला, इमली, अनार, विजौरा, जम्बीरी, कटहल, केला, आम, जामुन— ये सभी श्रेष्ठ हैं। इनके पत्रों, पुष्पों और फलों से विष्णु का पूजन सर्वदा करना चाहिये। दिन में तोड़े गये फूलों से पूजा दिन तथा रात दोनों में करे। फूलों के न होने पर प्रवाल से पूजा करे।

पुष्पोपचारान्ते लयाङ्गार्चनम्

अतः परमावरणपूजा। तत्र पुष्पोपचारान्ते उत्तरतन्त्रे—

मन्त्रसम्पुटितैर्वर्णैर्मातृकायाः सबिन्दुकैः। क्रमेण गन्धपुष्पाद्यैर्देवस्याङ्गे समर्चयेत्॥१॥
लयाङ्गमर्चयेद् देहे देवस्य मनुवित्तमः। इति।

ज्ञानार्णवेऽपि—'लयाङ्गमर्चयेद् देहे न्यासस्थानेषु मन्त्रवित्' इति। शारदातिलके—

अङ्गादिलोकपालान्तं यजेदावरणान्यपि। केसरेष्वग्निकोणादि हृदयादीनि पूजयेत्॥१॥
नेत्रमग्रे दिशास्वस्त्रं ध्यातव्याश्चाङ्गदेवताः। तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः॥२॥
वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः।

अङ्गादीति विशेषानभिधाने लोकपालशब्देन तदस्त्राणामप्यादानम्। तत्राग्निकोणादीत्यादिपदस्य क्रमग्राहित्वादग्निराक्षसवायव्येशानकोणेष्वङ्गचतुष्टयं यजेदिति वदन्ति। तन्न 'अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजन'मिति ज्ञानार्णवदक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। 'हृदयं चाग्निदिग्भागे ऐशान्यां च शिरो यजेत्। शिखां निर्ऋतिदिग्भागे वायव्ये कवचं तथा। अस्त्रमन्त्रं तथा दिक्षु नेत्रमग्रे प्रपूजयेत्' इति दक्षिणामूर्तिकल्पवचनात्।

वह्नौ हृदयमैशान्यां शिरो रात्रिचरे शिखाम्। वायौ वर्म पुरो नेत्रमस्त्रं दिक्षु चतुर्ष्वपि॥१॥

इति कपिलपञ्चरात्रवचनात् चतुर्ष्वपीति दिव्यत्वाच्चतसृष्वित्यर्थः। 'इष्ट्वा हृदयमाग्नेय्यामैशान्यां च शिरो यजेत्। शिखा च नैर्ऋत्यां पूज्या वायव्यां कवचं यजेत्। अभ्यर्च्य पुरतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु समर्चयेत्' इति सोमशम्भुवचनात्।

पुष्पोपचार के बाद लयाङ्ग पूजन—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि सानुस्वार मातृकाओं से सम्पुटित मन्त्र से गन्ध-पुष्प आदि को क्रमशः देवता के अंग में निवेदित करे। इस प्रकार देवता के देह में लयांग पूजा करे। ज्ञानार्णव में भी कहा गया है कि देवता के देह में न्यास स्थानों में लयाङ्ग पूजन करे।

शारदातिलक में कहा गया है कि षडङ्ग पूजन से प्रारम्भ लोकपालों का पूजन करके आवरण पूजन करे। केसर के आग्नेयादि कोनों में हृदयादि का पूजन करे। अग्र में नेत्र का और दिशाओं में अस्त्र का पूजन करे। अङ्गशक्तियों का ध्यान इस प्रकार करे—

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः। वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः।।

अंगपूजन के सम्बन्ध में दक्षिणामूर्तिकल्प में कहा गया है कि हृदय का पूजन आग्नेय में, शिर का पूजन ईशान में, शिखा का नैर्ऋत्य में, कवच का वायव्य में अस्त्र मन्त्र का पूजन सभी दिशाओं में और नेत्र का पूजन अग्रभाग में करना चाहिये। कपिलपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि आग्नेय में हृदय, ईशान में शिर, नैर्ऋत्य में शिखा, वायव्य में कवच, अग्रभाग में नेत्र और चारो दिशाओं में अस्त्र का पूजन करे। इसी का समर्थन सोमशम्भु में भी किया गया है।

आवरणार्चायां प्राचीकल्पना

पूर्वयाम्यान्तरे विष्णोर्हृदयं विनिवेशयेत्। शिरः पूर्वोत्तरे दद्याच्छिखां पश्चिमदक्षिणे ॥१॥
पश्चिमोत्तरदिङ्मध्ये कवचं विन्यसेद्धरेः। अग्रतः केसरोद्देशे नेत्रं दिक्ष्वस्त्रराट् तथा ॥२॥

इति नारदपञ्चरात्रवचनाच्चेति अत्र 'अथावरणपूजा स्यात्पुरः प्राचीं प्रकल्पयेत्। तदादि परिवाराणां प्रादक्षिण्येन पूजनम्' इति नृसिंहकल्पवचनात्।

'यष्टुरभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश। प्राच्यादिहरितो ज्ञेयाः पूजाहोमादिकर्मसु' इत्युत्तरतन्त्रवचनात्। 'यत्रैव भास्वानुदयं प्रयाति प्राचीमिमां वेदविदो वदन्ति। मध्ये तु सा पूजकपूज्ययोश्च सदागमज्ञैः सततं विचिन्त्या' इति भैरवीतन्त्रवचनात्। देवाग्रं प्राचीं परिकल्प्य तदनुसारेणाग्नेय्यादिकं कल्पयित्वाङ्गानि पूजयेत्। आवरणदेवताश्चैवमेव प्रपूजयेदिति।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि विष्णु के हृदय का पूजन पूर्व-दक्षिण कोण में, पूर्वोत्तर में शिर का, शिखा का पश्चिम-दक्षिण कोण में पश्चिम-उत्तर कोण में कवच का, विष्णु के आगे केसर में नेत्र का एवं दिशाओं में अस्त्र का पूजन करे। स्पष्ट है कि आवरण-पूजन के पहले अपने आगे पूर्व दिशा कल्पित करे। वहाँ से प्रारम्भ करके परिवार का पूजन प्रदक्षिणक्रम से करे। उत्तरतन्त्र में कहा है कि पूजा होम कर्म में देवता के सामने से प्राची आदि दशों दिशाओं को कल्पित करे। भैरवीतन्त्र में कहा गया है कि जिस ओर सूर्य उदित होता है, उसे विद्वान् लोग प्राची दिशा कहते हैं।

इस प्रकार देव के अग्रभाग में प्राची दिशा को कल्पित करके उसी के अनुसार आग्नेयादि कोणों को कल्पित करके अंगों की पूजा करे। आवरणदेवताओं का पूजन भी इसी प्रकार करे।

अङ्गपूजायां होमपूजनयोर्नमःस्वाहान्ततानिर्णयः

महाकपिलपञ्चरात्रे—
शिरःप्रभृतिमन्त्रेषु पूजायां च नमोन्तता। शिरोभिन्नेषु मन्त्रेषु होमे स्वाहान्तता भवेत् ॥१॥ इति।

आवरणदेवतास्तत्तत्कल्पेषु द्रष्टव्याः। मालिनीतन्त्रे—'स्वे स्वे स्थाने चाभिमुखान् पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः।' अभिमुखान् देवस्य। श्रीविद्यावरणपूजायां दक्षिणामूर्तिसंहितायां—'श्रीविद्यासम्मुखीः स्मरे'दित्युक्तेः। तथा सिद्धीश्वरीतन्त्रे—
अधृष्यश्च समर्थश्च मार्तण्डः स्वमरीचिभिः। तद्वदङ्गैर्निजैर्देव्यो ध्यातव्याः स्वमरीचिभिः ॥१॥ इति।

महाकपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि शिरः प्रभृति पूजा में मन्त्र के अन्त में नमः जोड़े। शिर से भिन्न मन्त्रों में होम में मन्त्र के अन्त में स्वाहा जोड़े। मालिनी तन्त्र में कहा गया है कि अपने-अपने स्थान में अभिमुख रूप में देवता को प्रोक्षणादि से पूजन करे। श्रीविद्या आवरण पूजन के क्रम में दक्षिणमूर्ति संहिता में कहा गया है कि श्रीविद्या का अपने सामने स्मरण करे। सिद्धीश्वर तन्त्र में कहा गया है कि अधृष्य समर्थ सूर्यकिरणों के समान देवी के अंग के किरण रूप में आवरण-देवियों का ध्यान करे।

प्रत्यावरणार्चान्ते पुष्पार्पणमन्त्रः

तूर्णायागे—
देवीं ध्यात्वा तच्छरीरान्मयूखनिकरं बहिः। विनिःसृत्य स्थिरीभूतं परिवारं विचिन्तयेत् ॥१॥

अभ्यर्च्यावरणं त्वाद्यं मूलमुच्चार्य मन्त्रवित्। सम्पूज्य देवीं संबोध्य वदेन्मन्त्रमिमं ततः ॥२॥
अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥३॥
इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणमेदतिभक्तितः। प्रत्यावरणमेवं तु तत्तन्नाम्ना समर्पयेत् ॥४॥
इत्थमावरणं सम्यगभ्यर्च्य मनुवित्तमः।

तूर्णायाग में कहा गया है कि देवी का ध्यान करके उनके शरीर से मयूखनिकर के रूप में निकल कर स्थिरीभूत परिवार का चिन्तन करे। पहले आवरण का पूजन करके मूल मन्त्र से देवी को सम्बोधित करके यह मन्त्र पढ़े—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर भक्ति से प्रणाम करे। प्रत्येक आवरण को नामसहित समर्पित करे। इस प्रकार सम्यक् रूप से आवरण पूजन करे।

लोकपालतदस्त्राणां ध्यानानि

अन्ते यजेल्लोकपालांस्तत्तदस्त्राणि च क्रमात् ॥५॥
इन्द्रं सुराधिपं पीतं वज्रहस्तं सवाहनम्। अग्निं तेजोऽधिपं रक्तं शक्तिहस्तं सुभूषणम् ॥६॥
यमं प्रेताधिपं कृष्णं दण्डहस्तं समर्चयेत्। रक्षोऽधिपं निर्ऋतिं च खड्गहस्तं सुधूम्रकम् ॥७॥
पाशहस्तं सुशुभ्राङ्गं वरुणं यादसांपतिम्। वायुं प्राणाधिपं धूम्रमङ्कुशाढ्यकरं यजेत् ॥८॥
यक्षाधिपं कुवेरं च गदाहस्तं सितं यजेत्। विद्याधिपं शूलहस्तं स्फटिकाभं शिवं यजेत् ॥९॥
नागाधिपमनन्तं च गौरं चक्रायुधं यजेत्। लोकाधिपं विधातारं रक्तं पद्मकरं यजेत् ॥१०॥
ऐरावतं तथा मेषं महिषं मृगपूरुषम्। मकरं मृगमत्यौं च वृषं च विपहंसकौ ॥११॥
इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि विदुर्बुधाः। वज्रं पीतं सितां शक्तिं दण्डं कृष्णं समर्चयेत् ॥१२॥
खड्गमाकाशसंकाशं पाशं विद्युन्निभं यजेत्। अङ्कुशं रक्तवर्णं च शुक्लवर्णां गदां यजेत् ॥१३॥
त्रिशूलं नीलवर्णं च यजेन्मन्त्री ततः परम्। रथाङ्गं कुरुविन्दाभं पद्मं रक्तं समर्चयेत् ॥१४॥
लोकपालायुधान्येवं क्रमेण परिपूजयेत्। इति।

अत्र केचित्—'अन्ते यजेल्लोकपालान् भूत(मूल)पारिषदान्वितान्। हेतिजात्यधिपोपेतान् दिक्षु पूर्वादितः क्रमात्' इति शारदातिलकवचनाद्यथास्थितपूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिपूजनमिति वदन्ति, तन्न चतुरायतनदेवतास्थापन-प्रकारेणोक्तयुक्तेः सर्वेषामावरणानां देवाग्रत आरम्भाल्लोकपालावरणस्याप्यावरणत्वाच्च कल्पितप्राच्यनुसारेणैव पूजनं युक्तमिति विचारतः प्रतिभातीति।

आवरणपूजन के बाद लोकपालों और उनके अस्त्रों का क्रमशः पूजन करे। लोकपालों एवं उनके आयुधों का ध्यान निम्नवत् है—

इन्द्रं सुराधिपं पीतं वज्रहस्तं सवाहनम्। अग्निं तेजोऽधिपं रक्तं शक्तिहस्तं सुभूषणम्।।
यमं प्रेताधिपं कृष्णं दण्डहस्तं समर्चयेत्। रक्षोऽधिपं निर्ऋतिं च खड्गहस्तं सुधूम्रकम्।।
पाशहस्तं सुशुभ्राङ्गं वरुणं यादसांपतिम्। वायुं प्राणाधिपं धूम्रमङ्कुशाढ्यकरं यजेत्।।
यक्षाधिपं कुवेरं च गदाहस्तं सितं यजेत्। विद्याधिपं शूलहस्तं स्फटिकाभं शिवं यजेत्।।
नागाधिपमनन्तं च गौरं चक्रायुधं यजेत्। लोकाधिपं विधातारं रक्तं पद्मकरं यजेत्।।
ऐरावतं तथा मेषं महिषं मृगपूरुषम्। मकरं मृगमत्यौं च वृषं च विपहंसकौ।।
इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि विदुर्बुधाः। वज्रं पीतं सितां शक्तिं दण्डं कृष्णं समर्चयेत्।।
खड्गमाकाशसंकाशं पाशं विद्युन्निभं यजेत्। अङ्कुशं रक्तवर्णं च शुक्लवर्णां गदां यजेत्।।
त्रिशूलं नीलवर्णं च यजेन्मन्त्री ततः परम्। रथाङ्गं कुरुविन्दाभं पद्मं रक्तं समर्चयेत्।।

शारदातिलक के अनुसार यथास्थित पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि का पूजन करे। यह समीचीन नहीं है; क्योंकि सभी आवरणों का पूजन देवाग्र से आरम्भ करके लोकपालों के आवरण का पूजन भी कल्पित पूर्वादि दिशा के अनुसार ही करना युक्तियुक्त है।

आवरणार्चान्ते देव्यर्चनमन्त्रः

पुनर्मूलं समुच्चार्य साङ्गायै सपरीति च। वारायै नाम देव्याश्च चतुर्थ्यन्तमुदीर्य च ॥१॥
नम इत्यर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः साधकस्त्रिधा। ततो यजेद् धूपदीपनैवेद्यैः सुमनोहरैः ॥२॥ इति।

पुनः मूल मन्त्र का उच्चारण कर सांगायै सपरिवारायै कहने के बाद देवी का चतुर्थ्यन्त नाम कहकर नमः लगाकर गन्ध-पुष्पादि से तीन बार देवी का अर्चन करे। तब धूप, दीप एवं मनोहर नैवेद्य से अर्चन करे।

धूपद्रव्यभागनिरूपणम्

प्रपञ्चसारे—
सगुग्गुल्वगरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः। साराङ्गारविनिक्षिप्तैर्मन्त्री नीचैः प्रधूपयेत् ॥१॥ इति।

कुलमूलावतारे—

प्रालेयं मलयोद्भवं जतुनखं सर्जं च कुष्टं समं
सिल्हाख्यागुरुयुग् जटा द्विगुणिता प्रत्येकसञ्चूर्णिता।
षड्भागा वरमाक्षिकस्य सुसिता चार्धाष्टभागान्विता
धूपोऽयं भुवि शंकरेण कथितः श्रीसुन्दरीवल्लभः ॥१॥ इति।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गुग्गुल, अगर, खश, कपूर, मधु, चन्दन, केसर को अग्नि में डालकर नीचे रखकर साधक धूप दिखावे।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि मलय, चन्दन, जतुनख, सर्ज कुष्ट का चूर्ण बराबर-बराबर चूर्णित कर श्वेत कृष्ण एवं अगर दो भाग, मधु छः भाग, कपूर आठ भाग को मिलाने से श्रीसुन्दरी का प्रिय धूप बनता है—ऐसा शंकर जी का कथन है।

घण्टाचालनसमयतन्मन्त्रकथनम्

शैवागमे—
धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य हृदाणुना। अस्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् गुग्गुलुं दहेत् ॥१॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—
आवाहनेऽर्घ्ये धूपे च स्नाने नैवेद्ययोजने। नित्यमेवं प्रयुञ्जीत तन्मन्त्रामन्त्रितामपि ॥१॥

चकाराद्दीपेऽपि। तथा—
पूजाकालं विनान्यत्र हितं नास्याः प्रचालनम्। नानया च विना पूजां कारयेत्सिद्धिलालसः ॥१॥
दद्यात् तारावसाने च गजध्वनिपदं ततः। मन्त्रमातःपदं चैव स्वाहाक्षरसमन्वितम् ॥२॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो घण्टायाः सर्वसिद्धिदः। इति।

उद्धारः सुगमः।

शैवागम में कहा गया है कि धूपदानी को अस्त्रमन्त्र से पोंछकर हृदय में नमः से अर्चन करके अस्त्र मन्त्र से पूजित घंटी बजाते हुए गुग्गुल जलावे। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि आवाहन, अर्घ्य, धूप, दीप, स्नान एवं नैवेद्य समर्पण के समय मन्त्राभिमन्त्रित घण्टा का प्रयोग करना चाहिये। साथ ही यह भी कहा गया है कि पूजाकाल के अतिरिक्त इसे नहीं बजाना चाहिये। सिद्धि की लालसा से इसके बिना पूजा नहीं करनी चाहिये। घंटी पूजन मन्त्र ग्यारह अक्षरों का इस प्रकार है—'ॐ गजध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा।' घंटी का यह मन्त्र सर्वसिद्धिदायक है।

धूपदीपनिवेदनतत्स्थापनादि

कालिकापुराणे—

वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे। न धूपं वितरेद्भूमौ नासने न घटे तथा॥१॥
यथा तथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत्। मेदोमज्जासमायुक्तान्न धूपान् विनिवेदयेत्॥२॥
न यक्षधूपं वितरेत् साधकस्तु कदाचन। इति।

यक्षधूपस्तु रालेति लोके प्रसिद्धः। विष्णुः—धूपार्थे न जीवतानमिति। प्रपञ्चसारे—

गोसर्पिषा वा तैलेन वर्त्या च लघुगर्भया। दीपितं सुरभिं शुभ्रं दीपमुच्चैः प्रदर्शयेत्॥१॥ इति।

वाशब्देनोभयोरमिश्रणमुक्तम्। 'न मिश्रीकृत्य दद्याच्च दीपस्नेहान् घृतादिकान्। कृत्वा मिश्रीकृतं स्नेहं तामिस्त्रं नरकं नयेत्' इति कालिकापुराणवचनात्। तूर्णायागे—

पारावतभ्रमाकारं दीपं नेत्रादि दर्शयेत्। दक्षिणे सर्पिषा दीपं तिलतैलेन वामतः॥१॥
सिता वर्तिर्दक्षिणतो रक्ता वर्तिस्तु वामतः। इति।

कालिकापुराणे—

वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन। कुर्वंस्तु पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः॥१॥
स ताम्रतापं नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः। इति।

कालिकापुराण में कहा गया है कि देवी के वाम भाग में अथवा आगे धूपपात्र रखे। न कि दक्षिण भाग में। धूप को भूमि पर न विखेरे, न तो आसन पर रखे और न ही घट के भीतर रखे। यथायोग्य आधार पर रखकर उसे निवेदित करे। मेद-मज्जायुक्त धूप को निवेदित न करे। साधक कभी भी यक्ष धूप (राल) न दिखावे। विष्णु को यह धूप नहीं देना चाहिये।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गाय के घी या तिलतैल को दीपक में भरकर लघु गर्भ की बत्ती डालकर जलाकर शुभ्र सुरभित दीपक को ऊँचा करके दिखावे। घी और तेल दोनों को मिलाकर दीपक नहीं दिखाना चाहिये; क्योंकि कालिकापुराण में कहा गया है कि घी और तेल मिलाकर दीपक दिखाने से साधक को नरकगामी होना पड़ता है।

तूर्णायाग में कहा गया है कि कबूतर के भ्रमण के समान दीप को घुमाकर आँखों के सामने दिखावे। देवता के दक्षिण भाग में गोघृत में उजली बत्ती का दीप जलाकर रखे एवं तिल तेल में लाल बत्ती डालकर जलते दीपक को वाम भाग में रखे।

कालिका पुराण में कहा गया है कि वृक्षों पर दीपदान करना चाहिये, भूमि पर दीपदान कभी नहीं करना चाहिये। भूमि पर दीपदान कर पृथिवी को जो तप्त करता है, वह सौ वर्ष तक ताम्र ताप नरक में वास करता है।

पुंसो दीपनिर्वापणदोषः

रुद्रयामले—

नैव निर्वापयेद् दीपं साधकस्तु कदाचन। यस्तु निर्वापयेद् दीपं तस्य लक्ष्मीर्विनश्यति॥१॥
कूष्माण्डच्छेदिका नारी दीपनिर्वापकः पुमान्। विधवा च दरिद्रश्च भवेत् सप्तसु जन्मसु॥२॥ इति।

रुद्रयामल में कहा गया है कि साधक देवता को अर्पित दीपक को कभी भी स्वयं न बुझावे। जो दीपक को बुझाता है, उसकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। कुष्माण्ड में छेद करने वाली नारी सात जन्मों तक विधवा होती है और देवार्पित जलते दीपक को बुझाने वाला मनुष्य सात जन्मों तक दरिद्र होता है।

नैवेद्यद्रव्यसंस्कारतन्निवेदनप्रकारः

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—पाद्यमाचमनीयं च दत्त्वा नैवेद्यमर्पयेत्' इति। सनत्कुमारकल्पे—

इत्थं कृष्णं समभ्यर्च्य पञ्चावरणसंयुतम्। कदलीफलसंयुक्तं पायसं विनिवेदयेत्॥१॥ इति।

ज्ञानार्णवे—

शुद्धस्फटिकसङ्काशं चन्द्ररश्मिसमप्रभम्। लसत्सुवर्णजे पात्रे चारु मृद्वोदनं प्रिये॥१॥
हिङ्गुजीरमरीचाद्यैरार्द्रकै रचितः शुभः। वटकः कुङ्कुमाकारः पायसं हिमसन्निभम्॥२॥
दुग्धमावर्तितं सम्यक् शर्करासारपूरितम्। कपिलाघृतसंयुक्तं भूर्जवच्छोभिमण्डकाः॥३॥
शर्करा फाणिताश्चैव सूपं मुद्गोद्भवं तथा। नानाविधानि पेयानि व्यञ्जनानि बहूनि च॥४॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

निधाय स्वर्णजे पात्रे साधारं तच्च मण्डले। संस्थाप्य चतुरस्रे च संस्कुर्याच्छास्त्रमार्गतः॥१॥
अस्त्रमन्त्रेण संप्रोक्ष्य चक्रमुद्राभिरक्षितम्। वायुबीजेन संशोष्य वह्निबीजेन संदहेत्॥२॥
स्पृशन् दक्षकराग्रेण सुधाबीजेन मन्त्रवित्। अमृतीकृत्य तत्सर्वं मूलमन्त्रेण तत्पुनः॥३॥
स्पृशन् कराभ्यां विधिवदष्टधा चाभिमन्त्रयेत्। धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ गन्धपुष्पैः समर्चयेत्॥४॥
देवमभ्यर्च्य कुर्याच्च पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः। हेमपात्रस्थितं द्रव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्॥५॥
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण मम सिद्धये। मूलमन्त्रं समुच्चार्य स्वाहान्तं जलमर्पयेत्॥६॥
कराभ्यां तत्समुद्धृत्य पूजितं च सुधात्मकम्। निवेदयामि भवते सानुगाय जुषाण तत्॥७॥
सर्वपूजासु तन्नाम्ना नैवेद्यस्य मनुस्त्वयम्। प्राणसंज्ञस्तथापानो व्यानोदानमनू ततः॥८॥
समानो ङेयुताः सर्वे प्रणवाद्या द्विठान्तकाः। पञ्चमन्त्रा भवन्तीह क्रमेण परिकीर्तिताः॥९॥ इति।

प्राणादीनां मुद्रास्त्वग्रे वक्ष्यन्ते। नैवेद्यसंस्कारस्तन्निवेदनप्रकारश्च प्रयोगे वक्ष्यते। स्मृतिसमुच्चये—

त्रिषु वर्णेषु दातव्यं विष्णवे पाकभोजनम्। खण्डाज्यादिकृतं पाकं न दुष्येच्छूद्रजन्मनः॥१॥ इति।

श्राद्धकल्पे—शूद्रैस्त्वामान्नेनैव दशाहादिकं पिण्डं देयमित्युक्तं, तेन देवतानैवेद्यमप्यामान्नेनैव देयं तुल्यन्यायादिति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा है कि पाद्य एवं आचमनीय देकर नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। सनत्कुमारकल्प में कहा गया है कि इस प्रकार पाँच आवरणों सहित कृष्ण का अर्चन करके केला फल के साथ पायस निवेदित करना चाहिये। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि शुद्ध स्फटिक के समान एवं चन्द्ररश्मि के समान प्रभा वाला मृदुल भात सोने के पात्र में रखकर, हिंग जीरा मरीच आदि से रचित कुङ्कुमाकार बड़ा, बर्फ के समान पायस, शक्करमिश्रित दूध, कपिला घृत संयुक्त, भोजपत्र के समान शोभित मण्डक, शक्कर फाणित सूप, सुन्दर गोदुग्ध निर्मित नानाविध पेय, बहुत से व्यञ्जनों का भोग लगाना चाहिये।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि चतुरस्र मण्डल में आधार रखकर उस पर सोने का पात्र रखे। शास्त्र मार्ग से उसे शुद्ध करे। अस्त्र मन्त्र से पात्र का प्रोक्षण करे। चक्र मुद्रा से रक्षण करे। वायुबीज 'यं' से सुखावे। अग्निबीज 'रं' से तपावे। दाँयें हाथ से पकड़कर सुधाबीज 'वं' से अमृतीकरण करे। फिर उसका स्पर्श हाथों से करके मूलमन्त्र के आठ जप से उसे अभिमन्त्रित करे। धेनुमुद्रा दिखाकर गन्ध-पुष्प से अर्चन करे। देव का अर्चन करके अनन्य मन से पुष्पाञ्जलि निवेदित करते हुये यह मन्त्र पढ़े—

हेमपात्रस्थितं द्रव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्। पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण मम सिद्धये।।

तदनन्तर मूलमन्त्र बोलकर स्वाहा कहते हुये जल अर्पित करे। तब इस मन्त्र का पाठ करे—

कराभ्यां तत्समुद्धृत्य पूजितं च सुधात्मकम्। निवेदयामि भवते सानुगाय जुषाण तत्।।

सभी पूजा में देवता के नाम से नैवेद्य अर्पित करे। तब भावना करे कि देवता भोजन कर रहे हैं, उस समय इन पञ्चप्राणों के मन्त्र पढ़े—ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा।

इन मन्त्रों को कहते हुये देवता के आगे प्राण आदि मुद्राओं को दिखावे। स्मृतिसमुच्चय में कहा गया है कि विष्णु को पका हुआ भोजन निवेदित करने का तीनों वर्णों को अधिकार है। शक्कर एवं गोघृत से बने पक्वान्न शूद्र अर्पित न करे।

नित्यहोमविधि:

ज्ञानार्णवे—'सङ्कल्प्य परमेशान्यै नित्यहोमविधिं चरेत्' इति सङ्कल्प्य नैवेद्यम्। उत्तरतन्त्रे—

इत्थं तु संस्कृते वह्नौ देवमावाह्य मन्त्रवित्। सम्पूज्य मूलमनुना पञ्चविंशतिमाहुती: ॥१॥
हुनेदाज्येन हविषा तिलैर्वा पायसैः शुभैः। तण्डुलैस्तिलमिश्रैर्वा केवलैर्वाथ पुष्पकैः ॥२॥
अङ्गावरणदेवानामेकैकामाहुतिं हुनेत्। उद्वास्य वह्निदेवं तु पूजास्थानं व्रजेत्ततः ॥३॥

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि देवी को सङ्कल्पपूर्वक नैवेय निवेदित करके नित्य होम विधि का अनुष्ठान करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार संस्कृत अग्नि में मन्त्रज्ञानी देवता का आवाहन करे। मूल मन्त्र से उनका पूजन कर पच्चीस आहुति आज्य से या हवि से या तिल से या पायस से या तिल-चावल से अथवा केवल फूलों से प्रदान करे। आवरण देवताओं को एक-एक आहुति देवे। तदनन्तर अग्नि देवता का उद्वासन करके पूजा स्थान में बैठे।

पूजास्थाने भूतबलि:

उपविश्यासने मन्त्री दद्याद्भूतबलिं ततः। ईशाने मण्डलं कृत्वा साधारं तत्र निक्षिपेत् ॥४॥
अन्नव्यञ्जनतोयाद्यं पात्रे पुष्पादिपूजिते। ध्यात्वा भूतानि संपूज्य ततस्तेभ्यो बलिं हरेत् ॥५॥ इति।

भूतानां ध्यानं पीठपूजाप्रकरणे प्रोक्तम्। बलिमन्त्रो बल्युत्सर्गप्रकारश्च प्रागेवोक्तः। उद्वास्य पूजाचक्रे देवं स्वात्मनि वह्नौ चेति अग्निसंस्कारः प्रागेवाभिहितः।

पूजास्थान में आसन पर बैठ कर भूतबलि प्रदान करे। ईशान में मण्डल बनाकर आधार स्थापित करे। उस पर पात्र को पूजकर अन्न व्यञ्जन जल को उस पात्र में रखे और भूतों का ध्यान करके बलि प्रदान करे।

नित्यहोमेऽग्न्याधानाभाव:

संक्षेपप्रकारेऽपि वसिष्ठः—'अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमे न विद्यते' इति।

संक्षेपप्रकार में वसिष्ठ ने कहा है कि अग्न्याधानादि कर्म नित्य हवन में नहीं होता।

उत्तरापोशानताम्बूलारात्रिकवर्णनम्

नारदीये—'पुनराचमनं दद्यात्करोद्वर्तनमेव च'। पुनराचमनीयमुत्तरापोशानं चकाराद् गण्डूषदन्तधावनादीन्युक्तानि। प्रपञ्चसारे—'पुनर्नैवेद्यमुद्धृत्य पुरोवत्परिपूज्य च। मुखवासादिकं दत्त्वा' इति। नारायणीये—

सकर्पूरं च ताम्बूलं दद्यान्नीराजनं तथा। समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः ॥१॥
आदर्शयेत् तथादर्शं कल्पयेच्छत्रचामरे। इति।

अगस्त्यः—

कर्पूरशकलोन्मिश्रं नागवल्लीदलैर्युतम्। सुधाबिन्दुसमायुक्तं पूगीफलमनोहरम् ॥१॥
ताम्बूलं रघुनाथाय दत्त्वा कामानवाप्नुयात्। इति।

सुधाबिन्दुश्चूर्णम्। नीराजनमाह सोमशम्भुः—'शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम्' इति। नीराजन-शब्देनारात्रिकमुच्यते। तत्र ज्ञानार्णवे—

आरात्रिकं ततः कुर्यात्सर्वकामार्थसिद्धये। सौवर्णे राजते कांस्ये लोकनेत्रमनोहरम् ॥१॥
कुङ्कुमेन लिखेत्पद्मं वसुपत्रं वरानने। दीपमेकं कर्णिकायां वसुपत्रेऽष्टदीपकान् ॥२॥
यवगोधूमरचितान् शर्करादुग्धसंयुतान्। वलयाङ्कितशोभाभिः शोभितान् घृतपूरितान् ॥३॥
अभिमन्त्र्य ततो मन्त्री रत्नेश्वर्या ततः परम्। मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य ततश्चारात्रिकं चरेत् ॥४॥
तत्पात्रं तु समुद्धृत्य मस्तकान्तं पुनः पुनः। नववारं महादेव्यास्ततो नीराजनं चरेत् ॥५॥

आरात्रिकं महादेव्याश्चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति।

रत्नेश्वरीमन्त्रः प्रागेवोद्धृतः।

नारदीय में कहा गया है कि पुनराचमन और करोद्वर्तन प्रदान करे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि पुनः नैवेद्य देकर पूर्ववत् पूजन करके मुखवास आदि देवे। नारायणीय में कहा गया है कि कपूरसहित ताम्बूल प्रदान करे। तदनन्तर आरती करके मुकुटादि भूषण अर्पित करे। दर्पण दिखाकर छत्र चामर समर्पित करे। अगस्त्य ने कहा है कि कपूरखण्ड से सुवासित नागवल्ली दल (ताम्बू), सुधाबिन्दु से युक्त मनोहर पूगीफल से समन्वित ताम्बूल रघुनाथ को देने से सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। सुधाबिन्दु चूर्ण को कहते हैं। सोमशम्भु के अनुसार नीराजन शब्द का अर्थ आरती है। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि तब सभी काम एवं अर्थ की सिद्धि के लिये आरती करे। एतदर्थ सोना, चाँदी, काँसा के सुन्दर पात्र में कुङ्कुम से अष्टदल कमल बनाकर एक दीपक उसकी कर्णिका में एवं आठ दीपक आठों दलों में रखे। सभी दीपक, गेहूँ के आटे में शक्कर-दूध मिलाकर वलययुक्त सुन्दर बनाकर घी से भरे। उन्हें रत्नेश्वरी मन्त्र से मन्त्रित करे। मूल मन्त्र से अर्चन करे। तब आरती करे। उस पात्र को माथे तक ले जाकर नव बार घुमाकर महादेवी की आरती करे। महादेवी को चक्रमुद्रा दिखावे।

जपप्रकारः

कात्यायनीतन्त्रे—

इत्थमारात्रिकं कृत्वा प्रणम्य परदेवताम्। प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ॥१॥
न्यासं कृत्वा यथापूर्वं देवीं ध्यात्वा हृदम्बुजे। मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपेत्तद्गतमानसः ॥२॥ इति।

कात्यायनी तन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार आरती करके परदेवता को प्रणाम करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके यथापूर्व न्यास करके हृदयकमल में देवी का ध्यान करे। तदनन्तर देवमय होकर यथाशक्ति मूल मन्त्र का मानसिक जप करे।

मन्त्रशुद्धिलक्षणम्

कुलार्णवे—

ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च। क्रमोत्क्रमात् त्रिरावृत्त्या मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥१॥ इति।

कुलार्णव में कहा गया है कि मूल मन्त्र के अक्षरों को मातृका वर्णों से ग्रथित करके क्रम-उत्क्रम से तीन बार जप करने से मन्त्र शुद्धि होती है।

जपसङ्ख्यानियमस्तवपाठादि

शारदातिलके—

सहस्रकृत्वः सञ्जप्य मूलमन्त्रमनन्यधीः। तं जपं सर्वसम्पत्त्यै देवतायै समर्पयेत् ॥१॥ इति।

नित्यहोमे कालान्तरमाह दक्षिणामूर्तिः—'यथाशक्ति जपं कृत्वा नित्यहोमं समाचरेत्' इति। शैवागमे—
अष्टोत्तरसहस्रं तु तदर्धं त्रिशतं तु वा। अष्टोत्तरशतं वापि जपेन्नित्यमतन्द्रितः ॥१॥
जपो जपसमर्पणप्रकारश्च प्रयोगे वक्ष्यते।

इत्थं जपं समर्प्याथ घण्टावादनपूर्वकम्। स्तुवीत स्तुतिभिः सम्यक्साधको भक्तिसंयुतः ॥१॥ इति।

शारदा तिलक में कहा गया है कि एकाग्र बुद्धि से मूल मन्त्र का एक हजार जप करके सभी सम्पत्तियों के लिये उस कृत जप को देवता को समर्पित करे। प्रसंग में नित्यहोम में कालान्तर के बारे में दक्षिणामूर्ति का वचन है कि यथाशक्ति जप करके नित्य हवन करे। शैवागम में कहा गया है कि एक हजार आठ या पाँच सौ या तीन सौ या एक सौ आठ बार नित्य जप तन्द्रारहित होकर करे। जप समर्पण के विषय में कहा गया है कि इस प्रकार जप समर्पण करके घण्टा बजाते हुए भक्तिसहित स्तुतियों से स्तुति करे।

शूद्राणां पौराणिकस्तवपाठेऽपि निषेधतत्फलवचनम्

उत्तरतन्त्रे—

पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि। प्रदक्षिणं प्रणामं च कुर्याद्धर्मार्थसाधनम् ॥१॥
ततः क्षमापयेन्मन्त्रैर्वक्ष्यमाणैर्महेश्वरि। इति।

क्षमापणमन्त्राः प्रयोगे वक्ष्यन्ते। अत्र पौराणिकैर्वैदिकैरिति त्रैवर्णिकपरम्। मूलमन्त्रेणेति शूद्रपरं ज्ञेयम्, शूद्राणां पौराणिकस्तवपाठेऽपि निषेधात्। यदुक्तं कालिकापुराणे—

मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम्। पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत् ॥१॥ इति।

पञ्चरात्राणां तु श्रवणेऽपि नाधिकारः। यदुक्तं नारदपञ्चरात्रे—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां पञ्चरात्रं विधीयते। शूद्रादीनां न तच्छ्रोत्रपदवीमधिरोहति ॥१॥ इति।

तदुक्तं मेरुतन्त्रे—

ब्राह्मणो वेदमन्त्राद्यैः क्षत्रियः संहितादिभिः। पौराणिकाद्यैर्वैश्यस्तु शूद्रस्तु प्राकृतादिभिः ॥१॥
मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम्। पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत् ॥२॥
यः शूद्रो बुद्धिपूर्वं तु शृणुयाच्छ्रावयेद् द्विजः। वदन्तौ द्वौ दुःखितौ स्तोऽस्मिन् भवेऽन्ते च नारकौ ॥३॥
अधिकारमदाद्यस्तु धनस्य मदतोऽपि वा। शूद्रश्च शृणुयाद्वेदं स निर्वंशश्च निर्धनः ॥४॥
अज्ञानाच्चेच्छ्रुतो वेदः श्रावितो वा द्विजन्मना। प्राजापत्यत्रयं कृत्वा तौ द्वौ शुद्धौ भविष्यतः ॥५॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि धर्म-अर्थ के साधन के लिये द्विज वैदिक या पौराणिक मन्त्रों से तथा शूद्र मूल मन्त्र से देवता की प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे। तब विहित मन्त्र से क्षमापन करे। कालिका पुराण में कहा भी गया है कि मोह से अथवा कामना से शूद्र यदि पुराण, संहिता, स्मृति का पाठ करता है तो इस पाप से वह पितरों के साथ नरक में जाता है। पञ्चरात्रों को श्रवण करने का भी शूद्रों को अधिकार नहीं है।

जैसा कि नारदपञ्चरात्र में कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये ही पञ्चरात्र का विधान है। शूद्रों को इसे सुनने का भी अधिकार नहीं है।

मेरुतन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण वैदिक मन्त्र से, क्षत्रिय संहितामन्त्र से, वैश्य पौराणिक मन्त्र से और शूद्र प्राकृत मन्त्र से पूजा का समापन करे। मोहवश या कामनावश भी शूद्र यदि पुराण, संहिता, स्मृति का पाठ करता है तो इस पाप से वह अपने पितरों के साथ नरक में जाता है। जो शूद्र बुद्धिपूर्वक इन्हें सुनता है और जो द्विज उन्हें सुनाता है, वे दोनों नरकगामी होते हैं। अधिकार के मद से या धन के मद से जो शूद्र वेद का श्रवण करता है, वह निर्वंश और निर्धन होता है। अज्ञानतावश भी जो शूद्र वेद को सुनता है और जो द्विज उसे सुनाता है, वे दोनों ही तीन प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान करके शुद्ध होते हैं।

आराधनोद्वासनप्रकारः

शैवागमे—

अर्घ्यपात्रं समुद्धृत्य मूलमुच्चार्य मन्त्रवित्। साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ॥१॥
तत्सर्वं भगवञ्छम्भो गृहाणाराधनं परम्। इत्यर्घ्योदकमुत्सृज्य किञ्चिद्देवस्य दक्षिणे ॥२॥
करे समर्पयेद्विद्वान् कृतमाराधनं शिवे। इति।

कुलार्णवे—

कृतार्चनादिकं सर्वं समन्त्रोदपुरःसरम्। इतः पूर्वादिमनुना देवतायै समर्पयेत् ॥१॥ इति।

इतः पूर्वमिति मन्त्रः प्रागेव प्रदर्शितः। सनत्कुमारः—'उद्वासयेत्ततो देवं परिवारगणैः सह' इति। प्रपञ्चसारे—

'स्तुत्वेन्दुखण्डपरिमण्डितमौलिमेवमुद्वासयेत्पुनरमुं हृदयाम्बुजे स्वे' इति। शिवरहस्ये—

रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्च देवताः। श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ताः सन्तु सर्वाः शुभावहाः ॥१॥
इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणम्य परिभावयेत्। देवस्याङ्गे विलीनं तद्रश्मिवृन्दमशेषतः ॥२॥
तेजोरूपं शिवं ध्यात्वा क्षमस्वेति पुनः पुनः। क्षमाप्यारोपयेत् स्वीयहृदम्भोजे महेश्वरम् ॥३॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥४॥
विसृज्यानेन मन्त्रेण ततः पूरकवायुना। ध्यायंस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा तं स्थापयेद्धृदि ॥५॥
तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥६॥
विसृजेत्संहारमुद्रया।

संहारमुद्रां बद्ध्वा च तेजोरूपां महेश्वरीम्। विभाव्य पुष्पेणोद्धृत्य वहन्नासाध्वना शिवे ॥१॥
प्रवेश्य द्वादशान्तस्थसहस्रारसरोरुहे। विश्राम्य मध्यनाड्या तामानीय हृदयाम्बुजे ॥२॥
संस्थाप्य सम्यक् संपूज्य स्वात्मानं तन्मयं स्मरेत्।

इति हंसपारमेश्वरवचनात्।

शैवागम में कहा गया है कि मन्त्रवित् अर्घ्यपात्र लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये—

साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्वं भगवञ्छम्भो गृहाणाराधनं परम्।।

यह कहकर अर्घ्योदक देकर उसमें से कुछ देवता के दाँयें हाथ में समर्पित करे। कुलार्णव में कहा गया है कि सभी मन्त्रों से अर्चनादि करके 'इतः पूर्वम्' मन्त्र से कृत पूजा देवता को समर्पित करे।

सनत्कुमार ने कहा है कि तदनन्तर परिवारसहित देवता का उद्वासन करे। प्रपञ्चसार में भी कहा गया है कि देवता की विधिवत् स्तुति करके अपने हृदयकमल में उनका उद्वासन करे। शिवरहस्य में कहा गया है कि महेश के रश्मिरूप जिन देवताओं का पूजन हुआ, उनके श्री शिव के अंग में विलीन होने की भावना करे। वे सभी मेरे लिये कल्याणकारी हों—ऐसी भावना करते हुये पुष्पाञ्जलि देकर उन्हें प्रणाम करे। तेजोरूप शिव का ध्यान करके बार-बार क्षमा माँगे और क्षमापन के बाद महेश्वर को अपने हृदय कमल में स्थापित करे। तदनन्तर यह मन्त्र पढे—

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्।।

इस मन्त्र से विसर्जन करके पूरब वायु से ध्यान करके निम्न मन्त्र से अपने हृदय में स्थापित करे—

तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयः सर्वो सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि।।

हंसपारमेश्वर में कहा गया है कि तदनन्तर संहार मुद्रा बाँधकर तेजोरूपा महेश्वरी की भावना करके चक्र से पुष्प लेकर प्रवहमान नासापुट से द्वादशान्तस्थ सहस्त्रदल कमल में प्रवेश कराकर विश्राम कराये। तब सुषुम्ना मार्ग से उसे अपने हृदयकमल में लाकर स्थापित करके उनका पूजा करे। तब अपने को देवीरूप में समझे।

निर्माल्यनिवेदनविधिः

कुलमूलावतारे—

ऐशान्यां मण्डलं कुर्याद्द्वारपद्मविवर्जितम्। विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्याः पूजनाय वै ॥१॥
निक्षिप्य तस्मिन्निर्माल्यं मन्त्रेण तु समर्चयेत्। चण्डेश्वरि महादेवि निर्माल्यैश्चन्दनादिभिः ॥२॥
लेह्यचोष्यान्नपानादिनिर्माल्यस्रग्विलेपनम्। निर्माल्यभोजिन्यै तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया ॥३॥
इति नैवेद्यशेषं तु दत्त्वा नत्वा विसर्जयेत्। इति।

गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—'लम्बोदराय निर्माल्यमैशान्यां मण्डले न्यसेत्' इति। संमोहनपञ्चरात्रे—'विश्वक्सेनाय निर्माल्यं नैवेद्यं च निवेदयेत्'। शैवागमे—

पूर्वोत्तरदिशि प्रान्ते चण्डेशं मण्डलेऽर्चयेत्। देवदेवस्य निर्माल्यैर्ध्यायन्तं चन्द्रशेखरम्॥१॥ इति।

वामदेवतन्त्रे—

तेजश्चण्डोऽस्य निर्माल्यभोक्ता देवेशि यत्नतः। तस्मै समर्पयेन्नित्यं नाजिघ्रेन्नाक्रमेच्च तत्॥१॥ इति।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि ईशान दिशा में विना द्वार और पद्म के निर्माल्यधारिणी के पूजन एवं विसर्जन के लिये एक मण्डल बनावे। उस पर निर्माल्य रखकर मन्त्र से चण्डेश्वरी महादेवी का निर्माल्य-चन्दनादि से अर्चन करे; तदनन्तर निम्न मन्त्र से शेष नैवेय प्रदान करते हुये प्रणाम करके उनका विसर्जन करे—

लेह्यचोष्यान्नपानादिनिर्माल्यस्रग्विलेपनम्। निर्माल्यभोजिन्यै तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया।।

गणेश्वरपरामर्शिनी में कहा गया है कि गणेश के लिये निर्माल्य को ईशान मण्डल में रखे। सम्मोहनपञ्चरात्र में कहा गया है कि विश्वक्सेन के लिये निर्माल्य एवं नैवेद्य निवेदित करे। शैवागम में कहा गया है कि पूर्वोत्तर दिशा में अन्तिम मण्डल में चण्डेश्वर का निर्माल्य से अर्चन करे एवं देवदेव चन्द्रशेखर का ध्यान करे। वामदेवतन्त्र में कहा गया है कि निर्माल्य के भोक्ता तेजश्चण्ड है। इसलिये उन्हें नित्य निर्माल्य समर्पित करे। इसे स्वयं न तो सूँघे और न ही लाँघे।

अच्छिद्रार्थं भास्करार्घ्यदानम्

उत्तरतन्त्रे—

ततो भास्करबीजेन सहितेनामुना ततः। मन्त्रेण भास्करायार्घ्यमच्छिद्रार्थं निवेदयेत्॥१॥
ॐनमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने॥२॥
ततः कृत्वाञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम्। एकाग्रमनसा वाग्नेरच्छिद्रमवधारयेत्॥३॥
ॐयज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः॥४॥
भास्करबीजं त्र्यक्षरमन्त्रः, स मन्त्रस्तत्प्रकरणे बोद्धव्यः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि तदनन्तर भास्कर बीजसहित उनके मन्त्र से अच्छिद्रार्थ अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य मन्त्र है—

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने।।

तत्पश्चात् हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र पढ़कर एकाग्र मन से अच्छिद्रावधारण करे—

ॐ यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः।।

भास्करबीज त्र्यक्षर है—ह्रां ह्रीं सः।

निर्माल्यधारण-प्रसादस्वीकारास्वीकारव्यवस्था

विजयमालिनीतन्त्रे—

अर्घ्यतोयेन देवेशि गन्धं पूजावशेषितम्। आलोड्य किञ्चिन्मूलेन मन्त्रयेदष्टधा शिवे॥१॥
प्रोक्षयेत्तेन तोयेन स्वात्मानं मूलमन्त्रतः। निर्माल्यं मस्तके धार्यं मूलमन्त्रेण मन्त्रिणा॥२॥
प्राश्य पादोदकं देवि नैवेद्यं विभजेत्प्रिये। तद्भक्तेभ्यः स्वयं भुक्त्वा तन्मयो विहरेत्सुखम्॥३॥

न तु शिवादिप्रसादस्वीकारनिन्दावचनविरोधः, तस्याशुचिपरत्वात्। स्कन्दपुराणे तन्निर्माल्यस्वीकारस्योक्तत्वात्। यथा—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्। तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥१॥
स्नपयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्। त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहापि प्रणश्यति॥२॥
लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्धाभिषेचनम्। गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः॥३॥ इति।

तथा—

निर्माल्यं हि तु यो भक्त्या शिरसा धारयिष्यति। अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः॥१॥
नरके पतते घोरे तिर्यग्योनौ प्रजायते। इति।

कालिकापुराणे—
फलं पुष्पं च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत्। अदत्त्वा तन्महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन॥१॥
पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः। तथा तस्यै निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेत्॥२॥ इति।

विजयमालिनी तन्त्र अर्घ्यजल में पूजावशिष्ट कुछ गन्ध मिलाकर मूल मन्त्र के आठ जप से उसे मन्त्रित करे। उस जल से मूल मन्त्र से अपना प्रोक्षण करे एवं मूल मन्त्र से निर्माल्य को अपने शिर पर धारण करे। पादोदक का पान करे। नैवेद्य को भक्तों में बाँटकर स्वयं भी ग्रहण करे और तन्मय होकर सुख से विहार करे। स्कन्दपुराण में शिवनिर्माल्य को ग्रहणीय बताते हुये कहा गया है कि ब्रह्महत्यारा भी पवित्र होकर यदि शिव-निर्माल्य को धारण करता है तो उसके महापाप को भी मैं शिव शीघ्र ही नष्ट कर देता हूँ। जो विधिवत् स्नान करके लिङ्ग स्नपन जल को तीन बार पीता है, उसके तीनों पापों का नाश हो जाता है। लिङ्ग स्नपन जल से अपने शिर पर जो अभिषेक करता है, उसे गंगास्नान का फल मिलता है और वह निष्पाप हो जाता है। अपवित्र साथ ही यह भी कहा गया है कि मर्यादाहीन, पापी मनुष्य यदि भक्ति से निर्माल्य को शिर पर धारण करता है, वह घोर नरक में गिरने के बाद भी पुन: तिर्यक् योनि में जन्म लेता है।

कालिकापुराण में कहा गया है कि फल-फूल-ताम्बूल-अन्न-पानादि कुछ भी महादेवी को समर्पित किये बिना स्वयं ग्रहण न करे। रास्ते में या पर्वत के आगे या सभा में भी साधक देवी को निवेदित करके ही अपने लिये उन्हें ग्रहण करे।

शिवविष्ण्वादीनामन्तरकरणे दोषः

वराहपुराणे—
विष्णुरुद्रान्तरं ब्रूयाच्छ्रीगौर्योरन्तरं तथा। नास्तिकानां तु मूर्खाणां वाक्यं शास्त्रविगर्हितम्॥१॥ इति।

भविष्यपुराणे—
यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा लक्ष्मीस्तथा ह्युमा। उमा यथा तथा गङ्गा चतूरूपं न विद्यते॥१॥ इति।

तत्रैव—
विष्णुरुद्रान्तरं यस्तु श्रीगौर्योरन्तरं तथा। गङ्गागौर्योरन्तरं च यो ब्रूते मूढधीस्तु सः॥१॥
रौरवादिषु घोरेषु नरकेषु पतत्यधः। इति।

भविष्योत्तरे—
यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः। महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते॥१॥
पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः। गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्तिताः॥२॥
देवं देवीं समुद्दिश्य यः करोति व्रतं नरः। न भेदस्तत्र मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥३॥ इति।

पद्मपुराणे—
सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवाः शक्तियाजकाः। मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षापः सागरं यथा॥१॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल। देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः॥२॥ इति।

विष्णुवचनं गीतासु—'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च' इति। प्रभुः फलदाता। विष्णुपुराणे—
यजन् यज्ञान् यजत्येनं जपत्येनं जपन् नृप। घ्नंस्तथान्यं हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः॥१॥ इति।

इत्थं सर्वत्र सर्वरूपेण श्रीविष्णोरेव क्रीडितत्वात् स्वेष्टदेवतास्वोपहारस्वीकारो न दोषावह इति प्रतिभाति विचारकाणामिति। अत्रादत्त्वा तदित्यनेन निवेद्यैवेत्यनेन च किञ्चिद्देयं किञ्चिद्भोक्तव्यमिति वा, यद्देयं तदथ भोक्तव्यमिति

वा विधीयते। अत्र केचिद्विनियुक्तविनियोगदोषाद्दत्तापहारप्रसङ्गाच्च पूर्वः पक्षः श्लाघीयान् इति वदन्ति। वस्तुतस्तु किञ्चिदग्रशेषादिवादाभावात् कर्मान्तराश्रुतेर्निवेदनभोजनयोरेककर्मकत्वाच्छ्रुतिसंवादात् तन्त्रदेशितत्वाच्चोत्तरपक्ष एव श्रेयानिति। श्रुतिः—'तस्माद्विद्वांसो विष्णोर्यद्भूतं भक्षयेयुः' इति। नारदपञ्चरात्रे—

यत्किञ्चित्स्वीयमश्नीयात्पुरो विप्र निवेदितम्। विष्णोर्वाक्कायमनसा मूलं साष्टशतं जपेत् ॥१॥

इति प्रायश्चित्तमप्युक्तम्। विप्रेति नारदसम्बोधनम्। नित्यपूजायां संक्षेपप्रकारः प्रयोगे वक्ष्यते।

वराहपुराण में कहा गया है कि जो विष्णु और शिव में या लक्ष्मी और गौरी में भेद मानता है, उन नास्तिकों मूर्खों का कथन शास्त्र द्वारा निन्दित कहा गया है।

भविष्य पुराण में कहा गया है कि जैसे शिव हैं, वैसे ही विष्णु हैं। जैसी लक्ष्मी हैं, वैसी ही उमा हैं। जैसी उमा हैं, वैसी ही गंगा है। ये चार रूप नहीं है। जो मूर्ख व्यक्ति विष्णु और शिव में, लक्ष्मी और गौरी में एवं गंगा और गौरी में भेद मानता है, वह घोर रौरव नरक में जाता है।

भविष्योत्तर पुराण में कहा गया है कि जो ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं। जो विष्णु हैं, वे ही महेश्वर हैं। महेश्वर ही सूर्य हैं और सूर्य ही अग्नि है। अग्नि ही कार्तिकेय हैं और कार्तिकेय ही गणेश हैं। गौरी, लक्ष्मी और सावित्री शक्ति के भेद हैं। देव-देवी के उद्देश्य से जो मनुष्य व्रत करता है, उसमें भेद नहीं मानना चाहिये; क्योंकि संसार शिव-शक्तिमय है।

पद्मपुराण में कहा गया है कि सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव और शाक्त—सभी एकमात्र मुझ विष्णु की ही पूजा करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे कि वर्षा का जल अन्ततः सागर में ही जाता है। मैं एक ही क्रीड़ा के लिये पाँच नामों में रहता हूँ। जैसे कि पुकारने के लिये देवदत्त अपने पुत्रों को अनेक नाम देता है। गीता में भी विष्णु ने कहा है कि मैं ही सभी यज्ञों का भोक्ता एवं फल प्रदान करने वाला है। विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि मनुष्य यज्ञ करते हुये इन्हीं का यजन करता है, जप करते हुये इन्हीं का जप करता है एवं हत्या करते हुये इन्हीं की हत्या करता है; क्योंकि सभी भूतों में विष्णु ही रहते हैं। सर्वत्र सर्व रूप में श्री विष्णु ही क्रीड़ारत हैं, इसलिये स्वेष्ट देवता के उपहार को स्वीकार करना दोषावह नहीं होता। नारदपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि पहले विप्रों को निवेदित करने के पूर्व जो स्वयं भोजन करता है, उसे प्रायश्चित्तस्वरूप वचन तन मन से विष्णु के मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करना चाहिये।

नित्यपूजायामावश्यकक्रियाविधानम्

अथ नित्यपूजायामपि यावत्यावश्यकी क्रिया तामाह, प्रपञ्चसारे—

अथ पुनराचम्य गुरुः प्राग्वदनो विष्टरोपविष्टः सन्।
प्राणायामं सलिपिन्यासं कृत्वा न्यसेत्तदृष्यादीन् ॥१॥ इति।

अत एव प्राणायाम-मातृकान्यास-ऋष्यादिकराङ्गन्यासानभिधायोक्तं तत्रैव—'जपारम्भे मनूनां तु सामान्येयं प्रकल्पना' इतीयं प्राणायामादिक्रिया प्रकर्षेण कल्प्यते समर्प्यते अधिकार्यते इति प्रकल्पना, अधिकारसम्पादना सामान्या सर्ववर्णाश्रमसाधारणा, तेन तैरेव सर्वेषां पूजाधिकारः। अत एवैतेषामकरणे निन्दा श्रूयते।

नित्य पूजा में जो आवश्यक क्रियायें हैं, उनका निरूपण करते हुये प्रपञ्चसार में कहा गया है कि पुनः आचमन करके गुरु के सामने आसन पर बैठकर प्राणायाम और मातृका न्यास करके ऋष्यादि न्यास करे। प्राणायाम-मातृका न्यास-ऋष्यादि कर अंगन्यास मन्त्रजप के आरम्भ में सामान्य प्रकल्पनायें है। इनको करने पर ही समस्त वर्णाश्रमियों को पूजा का अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिये इनके न करने पर निन्दा प्राप्त होती है।

प्राणायामन्यासाद्यकरणे निन्दाश्रवणम्

यथागस्त्यसंहितायाम्—

प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्म निरर्थकम्। अतो यत्नेन कर्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभिः ॥१॥ इति।

दक्षिणामूर्तिकल्पे—

उपार्थं सर्वमन्त्राणां विन्यासेन लिपेर्विना। कृते तन्निष्फलं विन्द्यात्तस्मादादौ लिपिं न्यसेत् ॥२॥ इति।

कपिलपञ्चरात्रे—

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा। जप्यते साधितोऽप्येष तत्र तुच्छफलं भवेत् ॥१॥ इति।

गौतमीये—

ध्यानं जपार्चना होमः सिद्धमन्त्रकृता अपि। अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलं त्वमी ॥१॥

अत एव विहिताननुष्ठाने दोषमाह याज्ञवल्क्यः—

विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना नरः। फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत् ॥१॥ इति।

अगस्त्यसंहिता में कहा गया है कि प्राणायाम के बिना जो भी कर्म किया जाता है, वह निरर्थक होता है। इसलिये कल्याण चाहने वालों को यत्नपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये। कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि ऋषि, छन्द, देवता का विन्यास किये बिना जो जप किया जाता है, वह साधित होने पर भी तुच्छ फल देने वाला होता है।

गौतमीय में कहा गया है कि अंगन्यास के बिना ध्यान-जप-अर्चन-हवन से सिद्ध मन्त्र फल नहीं प्रदान करते। इसलिये निहित कर्तव्य के अनुष्ठान न करने में दोष बताते हुये। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि विधिदृष्ट कर्म को जो मनुष्य विधि-रहित करता है; उसे कुछ भी फल नहीं मिलता; बल्कि केवल क्लेशमात्र ही प्राप्त होता है।

देशकालविशेषे मानसपूजनम्

उत्तरतन्त्रे—

प्रवासे पथि दुर्गे वा स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि वा। कारागारनिबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि वा ॥१॥
मनोभये समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले। परचक्रागमे चैव कुर्यान्मानसपूजनम् ॥२॥
मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीठकम्। तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां तत्र समाचरेत् ॥३॥
मैत्रप्रसादनं स्नानं दन्तधावनकर्म वै। अन्यच्च सर्वं मनसा ध्यात्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥४॥
यथा पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देशे विधीयते। तथा हृद्यपि कर्तव्याः सर्वाश्च प्रतिपत्तयः ॥५॥ इति।

जले प्रवहणादौ। प्रायोवेशगतो गृहीतानशनव्रतः। अन्यच्च सर्वमिति। मैत्रप्रसादनं दन्तधावनव्यतिरिक्तमित्यर्थः। मैत्रादीनां मानसासम्भवात्। मैत्रम्—'यः शौचनिरतो विप्रः स वै मैत्र उदाहृतः' इति भागुरिकृतसमुच्चयलिखित-ब्रह्माण्डपुराणवचनात्।

उत्तरतन्त्र कहा गया है कि प्रवास में, रास्ते में, किला में, अस्थान में जल में, कारागार के बन्धन में, अनशन व्रत में, मनोभय उत्पन्न होने पर, सिंह-व्याघ्र से आक्रान्त होने पर, परचक्रागम में मानसिक पूजन करना चाहिये। मन से हृदय में योगपीठ का ध्यान करके उसी में पृथ्वी के मध्य में पूजा करे। मैत्रप्रसादन, स्नान, दन्तधावन आदि अन्य कर्म मानसिक रूप से करके पूजन करे। जैसे बारह प्रत्यक्ष में पुष्पादि से पूजन किया जाता है, वैसे ही हृदय में सभी उपचारों से पूजन करना चाहिये।

दिने प्रतियामं कर्तव्यताविभागः

नारदपञ्चरात्रे—

ब्राह्म्यान्मुहूर्तादारभ्य प्रागंशं विप्र वासरात्। जपध्यानार्चनास्तोत्रैः कायवाङ्मनसा युतैः ॥१॥
अभिगच्छेज्जगद्योनिं तच्चाभिगमनं स्मृतम्। ततः पुष्पफलादीनामुत्थायार्चनमाचरेत् ॥२॥
भगवद्यागनिष्पत्तिकरणं प्रहरं परम्। ततोऽप्यङ्गेन यागेन पूजयेत्परमेश्वरम् ॥३॥

साधकः प्रहरं विप्र इज्याकालो हि स स्मृतः। श्रवणं चिन्तनं व्याख्या ततः पाठसमन्विता ॥४॥
स्वाध्यायकालं तद्विद्धि कालं तं मुनिसत्तम। दिनावसाने संप्राप्ते पूजां कृत्वा समभ्यसेत् ॥५॥
योगो निशावसानेऽथ विश्रामैरन्तरैः कृतम्। इति।

विप्रेति नारदसंबोधनम्। आदिपदेन समिदाद्याहरणम्। 'समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः' इति वचनात्। अङ्गेन यागेनेति स्वयमेव विवृणोति। 'मध्वाज्येन च दध्ना च पूजा च पशुना च या। त्रितयं तच्च यागाङ्गं तुर्यं मन्ये च पूजनम्'।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि ब्राह्म मुहूर्त से आरम्भ करके दिन के पहले अंश में जप-ध्यान-अर्चन-स्तोत्र-तन-वचन-मन से करके जगत् योनि में जाने को अभिगमन कहते हैं। तदनन्तर पुष्प-फल को उठाकर अर्चन प्रारम्भ करे। यह भगवद् यागनिष्पतिकरण एक प्रहर तक किया जाता है। तब अंग याग से परमेश्वर की पूजा करे। साधक के इस प्रहर को इज्याकाल कहते हैं। श्रवण-चिन्तन-व्याख्या-पाठ को स्वाध्याय काल कहते हैं। दिन के अन्त में पूजा करके योगाभ्यास करे। तब निशावसान तक विश्राम करे।

मधुपर्कप्रतिविधिः

मध्वाज्येनेत्यनेन मधुपर्क उक्तः, पशुस्तदङ्गम्, विष्णुधर्मोत्तरे—
मधुपार्किकपश्वर्थे ततो मात्रां निवेदयेत्। सहिरण्यं बीजपात्रं द्रविणेन सदैव तु ॥
पशुः कलौ न कर्तव्य इत्याह भगवान् भृगुः। इति।
द्रविणं दक्षिणा, एतन्मध्याह्नपूजानन्तरं सति सम्भवे कार्यम्।

विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि पशु के बदले मधुपर्क निवेदित करे। मधुपर्क को बराबर दक्षिणासहित सुवर्णपात्र में निवेदित करना चाहिये। कलियुग में पशु-निवेदन नहीं करना चाहिये—ऐसा भगवान् भृगु का वचन है।

आतुरसूतकाद्यवस्थायां किङ्कर्तव्यता

तथा तत्त्वसारसंहितायाम्—
आतुरी सौतिकी चैव त्रासी दौर्बोधकी तथा। साधना भाविनी चेति पञ्चधा भिद्यते पुनः ॥१॥
यदि लङ्घनपर्यन्तो व्याधिरात्मनि दृश्यते। तदा पूजा न कर्तव्या स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥२॥
न स्नानं दन्तकाष्ठं वा कुर्याद्धोममथापि वा। रविमण्डलमालोक्य प्रतिमामथ वा पुनः ॥३॥
मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा पुष्पं साक्षतमुत्क्षिपेत्। अन्ते व्याधिभिरत्युग्रैः क्लान्तश्चैवोपवासकैः ॥४॥
न दोषोऽस्त्विति संप्रार्थ्य पुनः पूर्ववदाचरेत्।
इति संप्रार्थ्य जपहोमादिकं कार्यम्।

यस्तु रोगवशान्मोहवशाद्दोष उपागतः। जपेन क्षालनीयः स्याद् दानेन हवनेन च ॥१॥
ध्यानेनापि मुनिश्रेष्ठ ज्ञात्वा कर्म बलाबलम्।

इति नारदपञ्चरात्रवचनात्। तथा—
अथ सूतकिनः पूजां वदाम्यागमबोधिताम्। स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ॥१॥
बाह्यपूजाक्रमेणैव स्थानयोगेन पूजयेत्। यदि कामी न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥२॥
त्रासिनो वक्ष्यते पूजा यथैवागमबोधिता। लब्धं वा यदि वालब्धमर्घ्यपात्रादि साधनम् ॥३॥
पूजोदकेन कर्तव्या तच्चेत्तोयं न विद्यते। तदा संपूजयेद् देवं भावनाकुसुमादिभिः ॥४॥
दौर्बोधकीं प्रवक्ष्यामि पूजामागमबोधिताम्। मूर्खस्त्रीबालवृद्धाश्च दुर्बोधा इति भाविताः ॥५॥

रत्नमण्डपधर्मादिचतुष्कमुरगाम्बुजम् । मूलमूर्तिः षडङ्गानि तेषां पूजा विधीयते ॥६॥
अन्येषामपि सर्वेषां प्रोक्ता संक्षेपकर्मणि । सर्वेषामेव वस्तूनां अलाभे भावनैव हि ॥७॥
निर्मलेनोदकेनाथ पूर्णतेत्याह नारदः ।

तत्त्वसारसंहिता में कहा गया है कि साधना पाँच प्रकार की होती है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, दौर्बोधकी और भाविनी। यदि उपवास काल में शरीर में तकलीफ हो तो स्थण्डिल और प्रतिमा में पूजा न करे। न स्नान, न दतुवन, न हवन करे। सूर्यमण्डल या प्रतिमा को देखकर मूल मन्त्र का जप करके पुष्प और अक्षत उत्क्षिप्त करे। उग्र व्याधि के समाप्त होने पर उपवास से क्लान्त होने पर कुछ दोष नहीं रहता; अतः प्रार्थना करके पूर्ववत् जप-होमादि करे। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि रोग से और मोह से दोष उत्पन्न होने पर उसका मार्जन कर्म के बलाबल को जानकर जप, दान, हवन और ध्यान करना चाहिये।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि सूतक वालों के लिये आगम में कथित पूजा को कहता हूँ। स्नानोपरान्त मानसिक रूप से नित्य कर्म करके बाह्य पूजा क्रम से स्थानयोग से पूजा करे। सकामी या निष्कामी पूर्ववत् नित्य पूजा करे। भयभीतों के लिये आगम बोधित पूजा यह है कि अर्घ्य पात्रादि के लब्ध या अलब्ध होने पर जल से ही पूजा करे। यदि जल भी न मिले तो भावना-कुसुमादि से पूजा करे। दौर्बोधिकी पूजा यह है कि मूर्ख, स्त्री, बालक बृद्ध को दुर्बोध कहते हैं, वे अपने हृदयकमल में रत्नमण्डप धर्मादि चतुष्क का निर्माण कर मूलमूर्ति षडङ्ग का पूजन करें। अन्य सबों के लिये संक्षेप कर्म को कहता हूँ। सभी वस्तुओं के अभाव में भावना के जल से ही पूजा पूर्ण होती है—ऐसा नारद ने कहा है।

पूजायाः त्रेधालक्षणम्

तथा पुनस्त्रिधा पूजा उत्तमाधममध्यमा ॥८॥
पत्रपुष्पाम्बुनिष्पाद्या पूजा चाधमसंज्ञिका ॥९॥
विदिताखिलवेदार्थैर्ब्रह्मविद्भिरकल्मषैः । क्रियमाणा तु या पूजा सात्त्विकी सा विमुक्तिदा ॥१०॥
राजर्षिभिस्तपोनिष्ठैर्भगवत्तत्त्ववेदिभिः । या पूजा क्रियते सम्यक् राजसी सा सुखप्रदा ॥११॥
स्त्रीबालवृद्धमूर्खाद्यैर्भक्तैरक्षुद्रमानसैः । या पूजा क्रियते नित्यं तामसी सा प्रकीर्तिता ॥१२॥ इति।

उत्तम मध्यम अधम के भेद से पूजा तीन प्रकार की होती है। पत्र-पुष्प-जल से की गई पूजा अधम होती है। अखिल वेदार्थ ज्ञानी, निष्पाप द्वारा की गई पूजा सात्त्विकी होती है, जो मुक्ति के लिये होती है। तपोनिष्ठ भगवत्तत्त्व के ज्ञाता द्वारा की गई पूजा राजसी पूजा होती है, जो सुखदायिनी होती है। स्त्री बाल वृद्ध मूर्खादि भक्त अक्षुद्रमानस जो पूजा करते हैं, उसे तामसी पूजा कहते हैं।

आराधने समर्थासमर्थविधिः

उत्तरतन्त्रे—

आराधनासमर्थश्चेद् दद्यादर्चनसाधनम् । यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चनदर्शनम् ॥१॥
नैकं तु यस्य विद्येत सोऽधो यात्येव नान्यथा । यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं संपाद्य चाखिलम् ॥२॥
साधनं चार्जयेद्विद्वान् स समग्रफलं लभेत् । इति।

कुम्भसम्भवः—

स्वस्थः समर्थः कुर्वीत चोत्तमैरेव साधनैः । मध्यमो मध्यमेनैव न्यूनैर्न्यूनस्तपोधनैः ॥१॥
आपन्नश्चेत्समर्थोऽपि न्यूनैरेव समाचरेत् । पूजाकर्म विशेषेण देशकालानुसारतः ॥२॥ इति।

तथा मेरुतन्त्रे—

अथ सूतकिनो नित्यं वैदिकं तु स्मृतीरितम् । कृत्वा तान्त्रिकपूजादि मनसैव समाचरेत् ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि आराधना में असमर्थ होने पर अर्चन का साधन प्रदान करे। यदि यह देने में भी असमर्थ हो तो पूजा का दर्शन करे। दोनों में से एक भी जो नहीं करता है, वह अधोगामी होता है। जो भक्ति से यत्नपूर्वक स्वयं सभी साधनों से पूजा करता है, वह विद्वान् सभी फलों को प्राप्त करता है। अगस्त्य ने कहा है कि स्वस्थ समर्थ को उत्तम साधनों से पूजा करनी चाहिये। मध्यम को मध्यम साधन से पूजा करनी चाहिये एवं तपस्वी को कम से कम साधनों से पूजा करनी चाहिये। आपत्तिग्रस्त होने पर समर्थ भी कम साधनों से पूजा कर सकता है। इस प्रकार पूजा देश काल के अनुसार सम्पन्न करनी चाहिये। मेरुतन्त्र में कहा गया है कि सूतक लगने पर वैदिक पूजन सम्पन्न करके तान्त्रिक पूजन मन में ही करना चाहिये।

समर्थस्य विस्ताराकरणे दोषः

भविष्यपुराणे—

विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम्। न तत्फलमवाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥१॥ इति।

भविष्यपुराण में कहा गया है कि धन होने पर भी मोहवश जो विस्तार से पूजा नहीं करता, उस प्रलोभाक्रान्त को पूजा का फल नहीं मिलता।

कामनाभेदेन पूजास्थानम्

शिवयामले—

शिवपितृवनमेकलिङ्गवृक्षोद्भवजलसङ्गमचत्वरे सुदेशे।
अपि शिवगदितं विमुच्य शस्तं निजगृह एव तु पूजनं मुमुक्षोः ॥१॥
अरण्ये स्वल्पकामानां सिद्ध्यर्थे पूजनं हितम्। निष्कामानां मुमुक्षूणां गृहे शस्तं सदार्चनम् ॥२॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे एकोनविंशः श्वासः॥१९॥

●

शिवयामल में कहा गया है कि शिववन, पितृवन, एकलिङ्ग के वृक्ष के नीचे, जलसंगम, चारो सुदेशों में या अन्य भी जो शिव के स्थान कहे गये हैं, उन्हें छोड़कर मुमुक्षु को अपने ही घर में पूजन करना चाहिये। जंगल में पूजा अल्प कामना की सिद्धि के लिये हितकारी होता है। निष्काम और मुमुक्षुओं को अपने घर में ही पूजन करना श्रेष्ठ होता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में एकोनविंश श्वास पूर्ण हुआ

●

अथ विंशः श्वासः

नित्यपूजाप्रयोगे साधकस्य प्रातःकृत्यविधिः

अथ नित्यपूजाप्रयोगः। तत्र श्रीमान् साधकेन्द्रो रजनीतुर्ययामे शयनाद्दक्षिणाङ्गेन समुत्थाय, स्वेष्टदेवतां स्मृत्वा वामपादं भुवि विन्यस्योत्थांय गृहाद्बहिर्निर्गत्यावश्यकं कृत्वा हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य, रात्रिवासः परित्यज्य धौते वाससी परिधायाचम्य देवतायागमन्दिरं संमार्ज्य गोमयेनोपलिप्य वितानादिभिरलंकृत्य, तत्र स्वासने उपविश्य पूजामूर्तेर्निर्माल्यमपकृष्य प्रक्षाल्य संस्थाप्य प्राणायामादित्रयर्ष्यादिन्यासपूर्वकं पूर्वदिनपूजावशिष्टपत्रादिना मूर्तिं त्रिरभ्यर्च्य पाद्याचमनीये दत्त्वा, देवाय कर्पूरशकलैर्दन्तधावनं कारयित्वा सुगन्धिजलैर्गण्डूषमुखप्रक्षालनादि दत्त्वा पुनराचमनीयं निवेद्य करास्यप्रोञ्छनाय सूक्ष्मनिर्मलवस्त्रं दत्त्वा, शिरसि श्वेतसहस्रदलकमलकर्णिकायां श्रीगुरुं श्वेतवस्त्राभरणभूषितं वराभयज्ञानमुद्रापुस्तककरं चन्द्रकान्तनिभं सुप्रसन्नं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतमाल्यविभूषितं वामाङ्कगतया रक्तवर्णया रक्तवस्त्राभरणगन्धमाल्यविभूषितया वामकरधृतलीलाकमलया देव्या दक्षिणभुजेनालिङ्गितं त्रिनेत्रं शान्तमन्तर्मुखं शिवरूपिणं ध्यात्वा, तच्चरणारबिन्दयुगलनिःसृतपीयूषधारया स्वदेहमभिषिक्तं सञ्चिन्त्य 'श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि' इति तद्गुरुणा तत्सङ्केतकृतनाम्ना, तदज्ञाने 'श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीगुरुपादुकाभ्यो नमः' इति मन्त्रेण वा गन्धादिभिरुपचारैर्मनसा वा संपूज्य।

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवदुःखवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि॥

इति प्रणम्य स्वहृदि लयं भावयेत्। ततो मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तमुद्यत्सूर्यसहस्रप्रभं सुषुम्नान्तस्तेजोदण्डनिभं मूलमन्त्रं ध्यात्वा तत्तेजसा व्याप्तं स्वशरीरं सञ्चिन्त्य वक्ष्यमाणविधिना मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा वक्ष्यमाण-र्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य हृदयकमले वक्ष्यमाणरूपं देवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य,

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीशङ्कर त्वच्चरणाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये॥
संसारयात्रामनुवर्तमानं त्वदाज्ञया शङ्कर देवदेव।
स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माभिभवन्तु नाथ॥
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वयेन्द्रियाणामधिदैवतेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

एते प्रार्थनाश्लोका गणेशाद्युपासकैर्यथायोग्यमूह्याः, इति प्रार्थ्य

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

इति भूमिं प्रार्थ्य, श्वासानुसारेण तस्यां पादं निधायेष्टदेवतानामोदीर्योत्थाय पदे पदेऽस्त्रमन्त्रं स्मरन् ग्रामाद्बहिर्याम्यां नैर्ऋत्यां वा दिशि शरप्रक्षेपदूरमतीत्य दूरं गत्वा प्रमाणोक्तप्रकारेण स्थानादृष्यादीनुद्वास्य यथाविधि मलमूत्रोत्सर्गं प्रमाणोक्तविधिना शौचाचमनादिकं च विधायानिषिद्धदिनेषु विहितं दन्तकाष्ठमादाय 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' इति मन्त्रेण दन्तधावनं विधाय, दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरतः शुद्धदेशे परित्यज्य, मूलमन्त्रेण मुखं प्रक्षाल्य कुश-तिलगन्धाक्षतकुसुमधौतवस्त्राण्यादायास्त्रादिमन्त्रितशङ्कुनोद्धृतां शुचिस्थानान्मृत्तिकां च गृहीत्वा जलाशयं गत्वास्त्र-

मन्त्रादिमन्त्रितजलेन तीरं प्रक्षाल्य, तत्राभिमन्त्रितं कुशादिकं निधायोद्धृतजलेन तीर्थाद्बहिः कटिशौचं कृत्वा स्वशाखोक्तविधिना वैदिकस्नानं विधाय तदङ्गतर्पणं कृत्वा तीरं गत्वास्त्रमन्त्रेण मृत्तिकया मूर्धादिपादान्तं विलिप्य,

आधारः सर्वभूतस्य विष्णोरतुलतेजसः। तद्रूपाश्च ततो जातास्ता अपः प्रणमाम्यहम्॥

इति तीर्थजलं प्रणम्य सन्मुखीकरणमुद्रां बद्ध्वा प्राणवायुं निरुन्धन् जलान्तः प्रविश्य, तूष्णीं निमज्ज्योन्मज्ज्य नाभिमात्रे जले स्थित्वा 'अद्येहेत्यादि अमुकोऽहमिष्टदेवताप्रीत्यर्थं तान्त्रिकस्नानं करिष्ये' इति संकल्प्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च कृत्वा, स्वपुरतो जले हस्तमात्रं चतुरस्रं तीर्थं परिकल्प्य,

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर॥

इति सूर्यात्तीर्थं प्रार्थ्य क्रोमित्यङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलं भित्त्वा,

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

इति सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य पुरः कल्पिततीर्थमण्डले संयोज्य वक्ष्यमाणतीर्थशक्तिमन्त्रेण तीर्थशक्तिमावाह्य तत्र तां ध्यायेत्। यथा—

सर्वानन्दमयीमशेषदुरितध्वंसां मृगाङ्कप्रभां त्र्यक्षीं चोर्ध्वकरद्वयेन दधतीं पाशं सृणिं च क्रमात्।
दोर्भ्यां चामृतपूर्णहेमकलशं मुक्ताक्षमालां वरं गङ्गासिन्धुसरिद्द्वयादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे॥

इति ध्यात्वा, 'ॐह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एह्येहि स्वाहा तीर्थशक्त्यै नमः' इति तीर्थशक्तिं संपूज्य, 'ॐनमो भगवति अम्बे अम्बालिके अम्बिके महामालिन्यै एह्येहि भगवति अशेषतीर्थालवाले ह्रींश्रीं शिवजटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा' इति मन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य तज्जलं ह्रींकारेणावलोड्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, कवचमन्त्रेणावगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्यास्त्रमन्त्रेण छोटिकाभिः संरक्ष्य, तत्र सचक्रं सावरणं देवं ध्यात्वा जलमयैः पञ्चोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य, तत्र मूलमन्त्रं जपन् हृदि देवं स्मरन् त्रिर्निमज्ज्योन्मज्ज्य कुम्भमुद्रां बद्ध्वा मूलमन्त्रेण स्वशिरसि त्रिरभिषिच्य,

ॐ सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते। मातरः सर्वदेवानामापो देव्यः पुनन्तु माम्॥

इति मन्त्रेण चात्मानमभ्युक्ष्य

यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तु घ्नन्तु वो नमः॥

इति प्रणम्य स्वाहान्तेन मूलमन्त्रेण त्रिराचम्य मूलेन च त्रिः सन्तर्प्य देवं विसृज्य तीरमागत्य, धौते वाससी परिधायोरुकरौ मृदाद्भिश्च प्रक्षाल्याचम्य, प्रमाणोक्तस्ववर्णविहितं तिलकमादौ विधाय शिवभक्ताङ्गभूतं भस्मत्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यात्। तत्र ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रं वैश्यस्यार्धचन्द्राकारं शूद्रस्य वृत्ताकारम्।

नित्य पूजा प्रयोग—रात के चौथे प्रहर में साधक शयन से दक्षिणांग से उठे। अपने इष्ट देवता का स्मरण करे। वाम पैर भूमि पर रखकर शैय्या पर से उतरे। घर से बाहर जाकर आवश्यक कर्म करके हाथ-पैर धोये। रात में पहने वस्त्र को उतार कर धुला वस्त्र पहन कर आचमन करे। देवता याग मन्दिर को साफ करे, गोबर से लीपे। चन्दोवा आदि से अलंकृत करे। आसन पर बैठकर पूजा-मूर्ति पर से निर्माल्य हटाकर मूर्ति को धोये, स्थापित करे। तीन प्राणायाम करे। अर्घ्यादि न्यासपूर्वक पूर्वदिवस के पूजा के अवशिष्ट पत्रादि से मूर्ति का तीन बार पूजन करे। पाद्य-आचमनीय देकर देवता को कपूर के टुकड़ों से दतुवन करावे। सुगन्धित जल से कुल्ला कराकर मुख धुलावे। पुनः आचमनीय देकर हाथ-मुँह पोंछने के लिये सूक्ष्म निर्मल वस्त्र दे। अपने शिर के श्वेत सहस्रदल कमल की कर्णिका में अपने गुरु का ध्यान करे। गुरु श्वेत वस्त्र एवं आभूषण भूषित हैं। उनके चारो हाथों में वर-अभय-ज्ञान मुद्रा और पुस्तक हैं। उनकी कान्ति चन्द्रमा जैसी है, वे प्रसन्न हैं। श्वेत गन्ध का उनका

अनुलेपन है। गले में श्वेत माला है। उनके बाएँ अंक में लाल वर्ण की लाल वस्त्र-आभरण-गन्ध-माला से भूषित शक्ति विराजमान है। शक्ति के बाँयें हाथ में लीला कमल है। वे अपने दाँयें हाथ से गुरु को आलिङ्गित की हुई हैं। गुरु के तीन नेत्र हैं। वे शान्त अन्तर्मुख हैं। शिवरूप में उनका ध्यान करे। उनके चरणकमल से निकलती अमृतधारा से अपने देह के अभिषिक्त होने का चिन्तन करे। तब 'श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि' द्वारा गुरु के संकेतकृत नाम से या ज्ञात न होने पर 'श्रीगुरुभ्यो नमः' 'श्रीगुरुपादुकाभ्यो नमः' मन्त्र से गन्धादि उपचारों से उनका मानसिक पूजन करे। तदनन्तर—

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्। योगीन्द्रमीड्यं भवदुःखवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि।।

इस मन्त्र से प्रणाम करके भावना करे कि गुरु उसके हृदय में लीन हो गये। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक उगते हुए हजार सूर्य की प्रभा के सदृश सुषुम्ना में तेजदण्ड के समान मूल मन्त्र का ध्यान करे। उसके तेज से व्याप्त अपने शरीर को देखे। विहित विधि से मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके यथाविहित क्रम से ऋष्यादि, कर, षडङ्ग न्यास करे। हृदय कमल में यथाविहित रूप में देवता का ध्यान करके मानस उपचारों से उनकी पूजा करे। यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करके जप समर्पण करे। स्तुति कर प्रणाम करते हुये निम्न श्लोकों का पाठ करे—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीशङ्कर त्वच्चरणाज्ञयैव। प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये।।
संसारयात्रामनुवर्तमानं त्वदाज्ञया शङ्कर देवदेव। स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माभिभवन्तु नाथ।।
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः। त्वयेन्द्रियाणामधिदैवतेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

इस प्रार्थना श्लोकों का पाठ करके 'समुद्रमेखले.........क्षमस्व मे' मन्त्र से भूमि की प्रार्थना करके चलते हुए श्वास के अनुसार भूमि पर पाँव रखे। इष्ट देवता का नाम लेकर उठे। पग-पग पर अस्त्र मन्त्र का स्मरण करते हुए गाँव के बाहर नैर्ऋत्य दिशा में बाणप्रक्षेप से अधिक दूर जाकर प्रमाणोक्त प्रकार से स्थान को देखकर वहाँ से ऋषि आदि को उद्वासित करके यथाविधि मल-मूत्र का त्याग करे। प्रमाणोक्त विधि से शौच-आचमनादि करे। निषिद्ध दिनों में विहित दतुवन लेकर 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' मन्त्र से दतुवन करे। तब दतुवन को धोकर अपने सामने शुद्ध स्थान में फेंक दे। मूल मन्त्र से मुखशोधन करे। कुश-तिल-गन्ध-अक्षत-फूल-साफ वस्त्र लेकर शुद्ध स्थान से अभिमन्त्रित खन्ती से मिट्टी खोदकर उस मिट्टी को लेकर जलाशय तट पर जाय। अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित जल से तट को धोकर उस पर अभिमन्त्रित कुशादि रखे। जलाशय से जल लेकर तट पर आकर कटि शौच करे। तदनन्तर अपने शास्त्र की विधि से वैदिक स्नान करे, तर्पण करे। तट पर जाकर अस्त्रमन्त्र से शिर से पैर तक मिट्टी का लेप लगाते हुये यह मन्त्र पढ़े—

आधारः सर्वभूतस्य विष्णोरतुलतेजसः। तद्रूपाश्च ततो जातास्ता अपः प्रणमाम्यहम्।।

इस मन्त्र से जल को प्रणाम करके सम्मुखी मुद्रा बाँधकर प्राणवायु को निरुद्ध करके जल में प्रवेश करे। डुबकी लगा-लगाकर स्नान करे। नाभि तक जल में खड़े होकर तान्त्रिक स्नान के लिये यथाविधि संकल्प करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि करके षडङ्ग न्यास करे। अपने आगे जल में एक हाथ लम्बा-चौड़ा चतुरस्र तीर्थ कल्पित करके 'ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर।।' का पाठ करे। सूर्य से तीर्थ की प्रार्थना करके 'क्रों' इस अंकुश मुद्रा से सूर्यमण्डल को भेद कर 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।' कहकर सूर्य मण्डल से तीर्थ को लाकर अपने आगे कल्पित तीर्थ मण्डल में मिला दे। यथाविधि तीर्थशक्तिमन्त्र से तीर्थशक्ति का आवाहन करके इस प्रकार ध्यान करे—

सर्वानन्दमयीमशेषदुरितध्वंसां मृगाङ्कप्रभां त्र्यक्षीं चोर्ध्वकरद्वयेन दधतीं पाशं सृणिं च क्रमात्।
दोर्भ्यां चामृतपूर्णहेमकलशं मुक्ताक्षमालां वरं गङ्गासिन्धुसरिद्द्वयादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे।।

इस प्रकार ध्यान करके 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एह्येहि स्वाहा तीर्थशक्त्यै नमः' इस मन्त्र से तीर्थशक्ति की पूजा करे। 'ॐनमो भगवति अम्बे अम्बालिके अम्बिके महामालिन्यै एह्येहि भगवति अशेषतीर्थालवाले ह्रींश्रीं शिवजटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा' के आठ जप से जल को मन्त्रित करे। उसका आलोडन 'ह्रीं' बोलकर करे। 'वं' से

धेनुमुद्रा से उसे अमृतमय बनावे। 'हुं' से कवचमुद्रा से अवगुण्ठन करे। अस्त्रमन्त्र 'फट्' से चुटकी बजाकर रक्षण करे। उसमें चक्रसहित आवरण देवताओं का ध्यान करे। जलमय पञ्चोपचार से पूजन करे। मूल मन्त्र के आठ जप से मन्त्रित करे। तब मूल मन्त्र का जप कर हृदय में देवता का स्मरण करते हुए तीन डुबकी लगावे। कुम्भमुद्रा बनाकर मूल मन्त्र से अपने शिर का तीन बार अभिसिञ्चन करके 'ॐ सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते। मातरः सर्वदेवानामापो देव्यः पुनन्तु माम्।।' इस मन्त्र से अपना अभ्युक्षण करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करे 'यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तु घ्नन्तु वो नमः।।'

तदनन्तर स्वाहान्त मूल मन्त्र से तीन आचमन करे। तर्पण करे। तब तट पर आये। धुले वस्त्र पहनकर हाथ-पैर से मिट्टी को साफ करे। प्रमाणोक्त अपने वर्ण के अनुसार तिलक लगावे। शिवभक्त अंगभूत भस्म का त्रिपुण्ड्र लगावे। ब्राह्मण ऊर्ध्व पुण्ड्र, क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र, वैश्य अर्द्धचन्द्राकार और शूद्र वृत्ताकार तिलक लगावे।

भस्मधारणविधिः

अथ भस्मधारणविधिः—तत्राग्निहोत्रोद्भवं वैवाह्याग्न्युद्भवं वा पूर्वोक्तविधिना वक्ष्यमाणविधिना वा संस्कृतशिवाग्नौ प्रमाणोक्तविधिनान्तरिक्षे गृहीतगोमयपिण्डं शुष्कं मूलमन्त्रेण दग्धं देवोद्वासनात् पूर्वमेव गृहीतमपक्वातिपक्वरहितं वस्त्रेण शोधितं कर्पूरादिसुवासितं भस्म संगृह्य संस्थाप्य तेन वा त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यात्। तत्र प्रकारस्तु—मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि पिप्पलादऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि श्रीरुद्राय देवतायै नमः, गुह्ये अग्निबीजाय नमः, पादयोः भस्मशक्तये नमः, मम मोक्षार्थे भस्मधारणे विनियोगः। इति ऋष्यादिन्यासं विधाय, अङ्गुष्ठयोः कालाय नमो हृदयाय नमः, तर्जन्योः कलविकरणाय नमः शिरसे स्वाहा, मध्यमयोः बलविकरणाय नमः शिखायै वषट्, अनामिकयोः बलप्रमथनाय नमः कवचाय हुं, कनिष्ठिकयोः सर्वभूतदमनाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, करतलकरपृष्ठयोः मनोन्मनाय नमः अस्त्राय फट्, इति विन्यस्य, हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रेषु प्रागुक्तपञ्चमन्त्रान् विन्यस्य अस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं दशदिग्बन्धनं च कृत्वा

विभूते भूतिमानासीद्वामदेवः सदाशिवः। रक्षाबन्धस्तया देवि रक्ष मामनघे सदा ॥

इति विभूतिं प्रणम्य, 'सद्योजात'मित्यादिपञ्चानुवाकानां सांहितिकी देवतौपनिषदाः ऋषयः प्रथमद्वितीयचतुर्थानुवाकानां अनुष्टुप् 'अघोरेभ्य' इत्यस्य स्वराडनुष्टुप् अन्त्या गायत्री, सर्वेषां रुद्रो देवता इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य, 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥१॥ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥२॥ 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥३॥ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥४॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्॥५॥ इतिं मन्त्रान् पठित्वा विभूतिमादाय वामकरे निधाय, भस्माभिमन्त्रणमन्त्रस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि अथर्वशिरसे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीरुद्रदेवतायै नमः। इति विन्यस्य 'अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन इत्येतानि चक्षूंषि भस्मानि' इत्यभिमन्त्र्य, 'आपो वा' इत्यस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुरापो देवता इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य 'आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राण वा आपः पशव आपोऽन्नमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापः छन्दांस्यापो ज्योतींष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवःस्वरापः ओ'मिति मन्त्रेणाद्भिः संसिच्य। 'मा नस्तोके' इत्यस्य भगवानृषिः जगती छन्दो हिरण्यगर्भो देवता इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य, 'ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते।' इति मन्त्रेण संमर्द्य, 'तस्माद् ब्रह्ममृदेतत्पाशुपतं

पशुपाशविमोक्षाय' इति मन्त्रेणैकादशवारमभिमन्त्र्य द्विधा कृत्वैकेन भागेन 'ईशानः सर्वविद्यानां' इति प्रागुक्तमन्त्रेण शिरसि। 'तत्पुरुषाय' इति मुखे। 'अघोरेभ्य' इति बाह्वोः। 'वामदेवाय' इति कण्ठादिनाभ्यन्तम्। 'सद्योजात'मिति ऊरुमूलादिपादद्वयपर्यन्तम्। इति सर्वाङ्गे भस्मोद्धूलनं कृत्वा हस्तौ प्रक्षाल्य द्वितीयभागमादाय, शिरसि ॐह्रींहरहर ॐ नमः शिवाय। ललाटे ब्रह्मणे नमः। हृदये हव्यवाहनाय नमः। नाभौ स्कन्दाय नमः। कण्ठे पूष्णे नमः। दक्षबाहुमूले रुद्राय नमः। दक्षबाहुमध्ये आदित्याय नमः। दक्षमणिबन्धे चन्द्राय नमः। वामबाहुमूले वामदेवाय नमः। वामबाहुमध्ये प्रभञ्जनाय नमः। वाममणिबन्धे वसुभ्यो नमः। ककुदि शम्भवे नमः। पृष्ठे हराय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे परमात्मने नमः। इति त्रिपुण्ड्रधारणं कृत्वा वैदिकसंध्यां कृत्वा तान्त्रिकसंध्यां कुर्यात्। अयं भस्मधारणविधिस्त्रैवर्णिकानामेव। अन्यैस्तु पञ्चाक्षरेण मूलमन्त्रेण वा त्रिपुण्ड्रधारणं कार्यमिति। शाक्तैस्तु कुङ्कुमयुक्तचन्दनादिनैव मूलमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रधारणं कार्यमिति।

भस्म धारण-विधि—अग्निहोत्र से उत्पन्न या विवाहाग्नि से उत्पन्न या पूर्वोक्त विधि से उत्पन्न अथवा संस्कृत शिवाग्नि में प्रमाणोक्त विधि से अन्तरिक्ष में गृहीत गोबर पिण्ड को सुखाकर जलावे। देवोद्वासन के पहले अपक्व-अतिपक्वरहित भस्म को लेकर कपड़े से छानकर कपूरादि से सुवासित भस्म को लेकर उससे त्रिपुण्ड्र धारण करे। उसकी विधि यह है—मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि पिप्पलादऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि रुद्राय नमः। गुह्ये अग्निबीजाय नमः। पादयोः भस्मशक्तये नमः। मम मोक्षार्थे भस्मधारणे विनियोगः।

कर न्यास—अंगुष्ठयोः कालाय नमः। तर्जन्योः कलविकरणाय नमः। मध्यमयोः बलविकरणाय नमः। अनामिकयोः बलप्रमथनाय नमः। कनिष्ठयोः सर्वभूतदमनाय नमः। करतलकरपृष्ठयोः मनोन्मनाय नमः।

हृदयादि न्यास—कालाय हृदयाय नमः। कलविकरणाय शिरसे स्वाहा। बलविकरणाय शिखायै वषट्। बल-प्रमथनाय कवचाय हुं। सर्वभूतदमनाय नेत्रत्रयाय वौषट्। मनोन्मनाय अस्त्राय फट्। इस प्रकार हृदय-शिखा-कवच-नेत्रों में उक्त पाँच मन्त्रों से न्यास करके अस्त्रमन्त्र से तीन ताली बजाकर दशो दिशाओं का बन्धन करे। 'विभूते भूतिमानासीद्वामदेवः सदाशिवः। रक्षाबन्धस्तया देवि रक्ष मामनघे सदा' मन्त्र से भस्म को प्रणाम करे।

'सद्योजातादि' पाँच अनुवाकों के ऋष्यादि का स्मरण करते हुये न्यास करके निम्न मन्त्रों का पाठ करे—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः।।१।।

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।।२।।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।३।।

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।४।।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।।५।।

इन पाँचों मन्त्रों को पढ़कर विभूति को बाँयें हाथ में लेकर भस्माभिमन्त्रण मन्त्र का ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि अथर्वशिरसे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीरुद्रदेवतायै नमः। इस प्रकार न्यास करके भस्म को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे—'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं ह वा इदं भस्म, मन इत्येतानि चक्षूंषि भस्मानि'।

तदनन्तर 'आपो वा' मन्त्र के ऋषि आदि का स्मरण करके न्यास करके इस मन्त्र से भस्म को सिञ्चित करे—'आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राण वा आपः पशव आपः, अन्नमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापः छन्दांस्यापो ज्योतींष्यापः, सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवःस्वरापः ॐ'। 'मा नस्तोके' मन्त्र के ऋष्यादिकों का स्मरण करते हुये न्यास करके भस्म को इस मन्त्र से मले—'ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते।' तदनन्तर 'तस्मात् बह्ममृदेतत्याशुपतं पशुपाशविमोक्षाय' मन्त्र को ग्यारह बार जपकर उसे

मन्त्रित करे। भस्म का दो भाग करे। एक भाग से 'ईशान: सर्वविद्यानां' से शिर में, 'तत्पुरुषाय' से मुख में, 'अघोरेभ्य:' से बाँह में, 'वामदेवाय' से कण्ठ से नाभि तक, 'सद्योजात' से ऊरुमूल से दोनों पैरों के अन्त तक के सभी अंगों में भस्म लगावे। तदनन्तर हाथ धोकर भस्म के दूसरे भाग को लेकर शिर में—ॐ ह्रीं हर हर ॐ नम: शिवाय, ललाट में—ब्रह्मणे नम:, हृदय में—हव्यवाहनाय नम:, नाभि में—स्कन्दाय नम:, कण्ठ में—पूष्णे नम:, दक्ष बाहु मूल में—रुद्राय नम:, दक्ष बाहुमध्य में—आदित्याय नम:, दक्ष मणिबन्ध में—चन्द्राय नम:, वाम बाहुमूल में—वामदेवाय नम:, वाम बाहुमध्य में—प्रभंजनाय नम:, वाम मणिबन्ध में—वसुभ्यो नम:, ककुद में—शम्भवे नम:, पीठ में—हराय नम:, ब्रह्मरन्ध्र में—परमात्मने नम: मन्त्रों को कहते हुये त्रिपुण्ड्र धारण करे। तदनन्तर वैदिक सन्ध्या करके तान्त्रिक सन्ध्या करे। भस्म धारण करने की यह विधि तीन वर्णों के लिये ही है। दूसरे लोग पञ्चाक्षर मन्त्र या मूल मन्त्र से त्रिपुण्ड्र धारण करें। शाक्त लोग कुङ्कुमयुक्त चन्दनादि से मूलमन्त्र के द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करें।

तान्त्रिकसन्ध्या

अथ तान्त्रिकसंध्या—तत्र मूलमन्त्रेणाचम्य शिखां बद्ध्वा मूलेनैव प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रस्यर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, स्वपुरतो वमिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य मूलमन्त्रेण अष्टवारमभिमन्त्र्य, तज्जलबिन्दुभि: कुशैरकारादिक्षकारान्तैरेकपञ्चाशदक्षरै: सबिन्दुभि: प्रत्यक्षरं शिर: प्रोक्ष्य, मूलेन च त्रि: प्रोक्ष्य, सूर्यमण्डले यथोक्तरूपं ध्यात्वा देवं, दक्षिणकरेण जलमादाय वामकराग्रेण त्रि: प्रोक्ष्यावशिष्टं वामकरस्थं जलं वामनासासमीपं नीत्वा तेजोमयं वामनासारन्ध्रेण स्वदेहान्त:प्रविष्टं ध्यात्वा, तेन जलेन स्वदेहान्त:स्थं सकलकलुषं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं दक्षिणनासारन्ध्रेण विनिर्गतं ध्यात्वा दक्षिणकरेणादाय स्ववामभागे वज्रशिलां ध्यात्वा 'ॐश्लींपशुहुंफट्' इति पाशुपतास्त्रेण तस्यामास्फाल्य, हस्तौ प्रक्षाल्य मूलमन्त्रेण त्रिराचम्याञ्जलिना जलमादायोत्थाय स्वेष्टदेवतागायत्रीमुच्चार्य 'श्रीमहादेव एष तेऽर्घ्य: स्वाहा'। महादेवेत्युपलक्षणम्। इति त्रिरर्घ्याञ्जलिं सूर्याभिमुखमुत्क्षिप्य मूलमुच्चार्य 'श्रीमहादेवं तर्पयामि नम:' इति त्रि: संतर्प्य, प्राग्वत् प्राणायामादिकं कृत्वा सूर्यमण्डले देवं ध्यायन् 'ॐ तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्न: शिव: प्रचोदयात्' इति शिवगायत्रीं तत्तद्देवतागायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा मूलमन्त्रं वाष्टोत्तरशतं जपित्वा जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य सूर्यमण्डलाद् देवं हृदि विसृज्य श्रीगुरुं प्रणमेदिति त्रिषु कालेषु तान्त्रिकसन्ध्याविधि:।

तान्त्रिक सन्ध्या—मूल मन्त्र से आचमन करके शिखा बाँधे। मूल से तीन प्राणायाम करे। मूल मन्त्र से ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। अपने आगे 'वं' धेनुमुद्रा से जल को अमृत बनावे। मूल मन्त्र के आठ जप से उसे मन्त्रित करे। उन जलबिन्दुओं से अ से क्ष तक की इक्यावन मातृकाओं से प्रत्येक से अलग-अलग शिर का प्रोक्षण कुश से करे। मूल मन्त्र से तीन बार प्रोक्षण करे। सूर्यमण्डल में पूर्वोक्त रूप से देवता का ध्यान करे। दाँयें हाथ में जल लेकर वाम कराग्र से तीन बार प्रोक्षण करे। शेष जल को बाँयें हाथ में लेकर बाँई नासा के समीप लाकर उसे तेजोमय मानकर वाम नासाछिद्र को अपने देह के अन्दर प्रविष्ट होने का ध्यान करे। उस जल से अपने देह के सभी कलुषों को धो दे। काले रंग के उस जल को दाँयें नासाछिद्र से नि:सृत जानकर दाँयें हाथ में लेकर अपने वाम भाग में वज्रशिला का ध्यान करके 'ॐ श्लीं पशु हुं फट्' इस पाशुपतास्त्र से शिला पर पटक दे। हाथों को धोकर तीन आचमन करे। अञ्जलि में जल लेकर उठकर इष्टदेवता के गायत्री का उच्चारण करके 'श्रीमहादेव एष तेऽर्घ्य: स्वाहा' कहकर तीन अर्घ्याञ्जलि सूर्य की ओर अर्पित करे। मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीमहादेवं तर्पयामि नम:' कहकर तीन बार तर्पण करे।

पूर्ववत् प्राणायाम करके सूर्यमण्डल में देवता का ध्यान करते हुये 'ॐ तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्न: शिव: प्रचोदयात्' इस शिवगायत्री एवं अन्य देवता की गायत्री का जप यथाशक्ति करे। मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। कृत जप का समर्पण करके स्तुति करते हुये प्रणाम कर सूर्यमण्डल से देवता को अपने हृदय में विसर्जित करे। श्री गुरु को प्रणाम करे। तीनों कालों में तान्त्रिक सन्ध्या की यही विधि है।

दीक्षितसन्ध्यात्रयावश्यकता

गणेशाद्युपासकैरप्युक्तयुक्त्या तत्तत्संध्या कार्या, तत्तद्गायत्र्यार्घ्यदानजपतत्तन्मूलमन्त्रजपश्च विशेष:। तत्तद्गायत्री तत्तत्कल्पे द्रष्टव्या। अत्र—

सन्ध्यालोपो न कर्तव्य: शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षित: संध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते॥

इति शिवरहस्यवचनात् संध्यात्रयमावश्यकमिति। स्वसमये न कृता चेत् संध्या तदाष्टोत्तरशतजपं प्रायश्चित्तार्थं कृत्वा पूर्वसंध्यां कृत्वा तत्तत्कालसंध्यां कुर्यात्।

गणेशादि के उपासकों को भी उक्त प्रकार से ही तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये। उपास्य देवता की गायत्री से अर्घ्यदान करके मूल मन्त्र का जप करना चाहिये। देवताओं की गायत्री उनके कल्प में देखनी चाहिये। इस सन्दर्भ में शिवरहस्य में कहा गया है कि भगवान् शिव की आज्ञा है कि सन्ध्या का लोप नहीं करना चाहिये। सन्ध्याहीन दीक्षित को दीक्षाफल नहीं मिलता।

शिवरहस्य के इस कथन के अनुसार तीनों सन्ध्या करना आवश्यक है। अपने समय पर सन्ध्या न कर सकने पर प्रायश्चित्त रूप में एक सौ आठ जप करके पूर्व में न की गई सन्ध्या को करके उस समय की सन्ध्या को करना चाहिये।

पापनि:सारणकर्मसाक्षिनिरूपणम्, सूर्यायार्घ्यदानविधि:, पूजामण्डपद्वारपूजा-विघ्नोत्सारणादि-दीपनाथार्चापूर्वमाधारशक्ति पूजा च

तत्र प्रकृते प्रात: संध्यावन्दनानन्तरं वैदिकतर्पणं निर्वर्त्य मूलेन प्राणायामत्रयर्ष्यादिन्यासपूर्वकं स्वपुरतो वमिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य, तत्र देवं सचक्रं साङ्गावरणं ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्री अमुकदेवतां तर्पयामि नम:' इत्यष्टोत्तरशतवारं तदर्धमष्टाविंशतिवारं वा देवस्य मुखकमले परमामृतबुद्ध्या तत्तीर्थजलै: संतर्प्यावरणदेवताश्च 'अमुकं तर्पयामि नम:' इति प्रत्येकमेकैकाञ्जलिना सन्तर्प्य देवं स्वहृदि विसृज्य तीर्थं च सूर्ये विसृज्य गुरुदिक्पतिग्रहान् प्रणम्य, शुद्धोदकपूर्णपात्रमादाय हृदि स्वेष्टदेवतां स्मरन् मौनी स्वपदमात्रदृष्टि: स्तोत्रादिकं पठन् स्वगृहं गच्छेत्। ततो द्वारि स्थित: स्वपापं मनसा सञ्चिन्त्य,

देव त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम। तन्नि:सारय चित्तान्मे पापं फट्फट्फट् ते नम:॥
सूर्य: सोमो यम: कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिण:॥

इति पठित्वा 'हुंफट्' इति क्रोधदृष्ट्या पार्श्वद्वयमूर्ध्वमधश्चावलोक्य सुमना भूत्वा गृहान्त: प्रविश्याङ्गणे स्थित्वा पादौ प्रक्षाल्याचम्याङ्गणभूमौ गोमयोपलिप्तायां सिन्दूरादिना रचितवृत्तमण्डलमध्ये स्वासनमास्तीर्य 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम:' इत्यासनं सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुख उपविश्य वक्ष्यमाणसूर्यमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अजाय ऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये श्रीसूर्यदेवतायै नम:। इति विन्यस्य सूर्यार्घ्यदाने विनियोग: इति कृताञ्जलिर्वदेत्। तत: अङ्गुष्ठयो: ह्रां हृदयाय नम:। तर्जन्यो: ह्रीं शिरसे स्वाहा। मध्यमयो: ह्रूं शिखायै वषट्। अनामिकयो: ह्रैं कवचाय हुं। कनिष्ठिकयो: ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। करतलकरपृष्ठयो: ह्र: अस्त्राय फट्। इति करयोर्विन्यस्यैतानेव पञ्चमन्त्रान् हृदयशिर:शिखाकवचनेत्रेषु विन्यस्यास्त्रमन्त्रेण तालत्रयदशदिग्बन्धनं च कृत्वा,

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं नमामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥

इति सूर्यं ध्यात्वा स्वपुरत: पुरस्तात्प्रयोगप्रकरणे वक्ष्यमाणप्रयोजनतिलकाख्यत्र्यक्षरमन्त्रोक्तविधिना साङ्गं सावरणं संपूज्य, तदशक्तौ तन्मण्डले साङ्गावरणं ध्यात्वा संपूज्य, स्वपुरतश्चतुरस्रवृत्तत्रिकोणात्मकं मण्डलं कृत्वा 'श्रीसूर्याधारमण्डलाय नम:' इति मण्डलं संपूज्य, तत्र साधारं प्रस्थजलग्राहि ताम्रपात्रं निधाय सूर्यमन्त्रेण शुद्धोदकेनापूर्य तिलयवसर्षपश्यामाककुशाग्रगन्धाक्षतरक्तपुष्पाणि रक्तचन्दनं च निक्षिप्य कुशैराच्छाद्य तत्पात्रं कराभ्यामाच्छाद्य

सूर्यमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा जानुभ्यामवनीं गतस्तत्पात्रं कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य पूर्वोक्तरूपं सूर्यं निजेष्टदेवताभेदेन ध्यायन् 'ॐह्रांह्रींसः सग्रहराशिनक्षत्रयोगकरणपरिवृत श्रीसूर्य एष तेऽर्घ्यः स्वाहा' इति सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा, तदर्घ्याम्बुपूतं सूर्यं ध्यायन् तन्मन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा सूर्यं स्तुत्वा प्रणम्य स्वपुरः पूजापक्षे तं विसृज्य, पूजामण्डपद्वारं गत्वा तत्र वक्ष्यमाणविधिना सामान्यार्घ्यं संस्थाप्य, तदशक्तौ ताम्रादिपात्रस्थं जलं धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तेन जलेन वा पूजामण्डपस्य द्वारं प्रोक्ष्य द्वारस्योर्ध्वशाखाया मध्ये विघ्नाय नमः। तद्दक्षिणे महालक्ष्म्यै नमः। वामे सरस्वत्यै नमः। पुनर्मध्ये द्वारश्रियै नमः। द्वारस्य वामदक्षिणशाखयोः गं गणपतये नमः। क्षं क्षेत्रपालाय नमः। शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः। पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः। मं मायाशक्त्यै नमः। चिं चिच्छक्त्यै नमः। गं गङ्गायै नमः। यं यमुनायै नमः। धं धात्र्यै नमः। विं विधात्र्यै नमः। इति द्वन्द्वक्रमेणाधोऽधः संपूज्य, अधो देहल्यै नमः। वामदक्षिणयोः नन्दिने नमः। महाकालाय नमः। इति द्वारपालौ संपूज्य, उत्तरद्वारं गत्वा तदर्घ्याम्बुना प्रोक्ष्य प्राग्वद्विघ्नादिदेहल्यन्तं प्रोक्तक्रमेण संपूज्य, द्वारपार्श्वयोः गणेशाय नमः। वृषभाय नमः। इति द्वारपालौ संपूज्य, पूर्वद्वारं गत्वा तथैवाभ्युक्ष्य विघ्नादि देहल्यन्तमभ्यर्च्य द्वारपार्श्वयोः भृङ्गिरिटये नमः स्कन्दाय नमः इति द्वारपालौ सम्पूज्य दक्षिणद्वारं गत्वा तथैवाभ्युक्ष्य विघ्नादिदेहल्यन्तमभ्यर्च्य, द्वारपार्श्वयोः उमायै नमः। चण्डेश्वराय नमः। इति द्वारपालौ संपूजयेत्। वैष्णवे तु नन्द-सुनन्द-चण्ड-प्रचण्ड-बल-प्रबल-भद्र-सुभद्राः प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण पूजयेत्। गाणेशे वक्रतुण्डैकदंष्ट्रमहोदरगजानन-लम्बोदरविकटविघ्नराजधूम्रवर्णास्तथैव पूज्याः। शाक्तसौरैस्तु ब्राह्म्याद्यष्टमातरस्तु प्राग्वत्पूज्याः। पुनः पश्चिमद्वारं गत्वास्त्रमन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्रय्य,

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुह्यकाः। ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भुवि संस्थिताः॥
अपसर्पन्तु ये भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इत्यन्तेऽस्त्रमन्त्रं जपन् नाराचमुद्रया मण्डपान्तः प्रक्षिप्य, तस्मान्निर्गच्छतां विघ्नानां स्ववामाङ्गसङ्कोचेन मार्गं दत्त्वास्त्रमन्त्रं पठन् वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान्, ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रयेणान्तरिक्षगान्, तिग्मदृष्ट्यावलोकनेन दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य, दक्षिणपादपुरःसरं शाक्ते वामपादपुरःसरं देहलीमुल्लङ्घ्यान्तः प्रविश्य वाससा द्वारमाच्छाद्य पञ्च-गव्यार्घ्यतोयाभ्यां घण्टावादनपूर्वकं मण्डपाभ्यन्तरं प्रोक्ष्य, मण्डपस्य नैर्ऋतकोणे वास्तुपुरुषाय नमः। तत्रैव वास्त्वधीशाय ब्रह्मणे नमः। इति सम्पूज्य, मण्डपस्येशानकोणे रक्तद्वादशशक्तिसहिताय श्रीदीपनाथाय नमः। इति दीपनाथं संपूज्य,

अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम। भैरवाय नमस्तुभ्यं ममाज्ञां दातुमर्हसि॥

इति भैरवाज्ञां प्रार्थ्य 'अः फट्' इति मण्डपमध्यस्थां पूजावेदीं गत्वा, शिरसि मेरुपृष्ठाय ऋषये नमः। मुखे सुतलाय छन्दसे नमः। हृदि पृथिव्यै देवतायै नमः। इति विन्यस्य पृथिवीप्रार्थने विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्त्वा,

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

इति पृथिवीं प्रार्थ्य, स्वासनस्थानं मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य तेनैव मन्त्रेण कुशैः सन्ताड्य कवचमन्त्रेणाभ्युक्ष्य, तत्र मण्डूकादिवेदिकान्ताः पीठदेवताः सम्पूज्य तत्र चेलाजिनकुशोत्तरं हस्तद्वयमात्रं चतुरस्रं चतुरङ्गुलोच्छ्रितं स्वासनमास्तीर्य मूलमन्त्रेण द्वादशाभिमन्त्रितेन जलेनाभ्युक्ष्य 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इति संपूज्य, तत्र प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा स्वस्तिकवीरसिद्धान्यतमेनोपविश्य, आसनस्य स्वदक्षिणाग्रकोणादिच-तुष्कोणेषु प्रादक्षिण्येन गं गणपतये नमः। दुं दुर्गायै नमः। सं सरस्वत्यै नमः। क्षं क्षेत्रपालाय नमः। इति संपूज्य गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि स्वदक्षिणभागे निधाय 'ह्रांहूंफट्' इति मन्त्रं स्मरन् दिव्यदृष्ट्या विलोक्य कर्पूरा-दिवासितशुद्धोदकपूर्णं वामभागस्थं कुम्भं श्रीमिति वामपाणिना संस्पृशन् दक्षिणकराङ्गुल्यग्रेण क्ष्रौं इति कुम्भस्थं जलं संस्पृश्य, रमिति दीपशिखां स्पृष्ट्वा करं प्रक्षाल्य कृताञ्जलिर्वामे गुरुभ्यो नमः। दक्षिणे गणपतये नमः। अग्रे

महादेवाय नमः। इति प्रणम्य, चन्दनसुगन्धपुष्पाणि ह्स्त्रैं इति मन्त्रेणादायास्त्रमन्त्रेण मर्दयित्वा करौ सुरभीकृत्य तत्पुष्पं वामकरेण स्वमूर्धानं परितो रोमिति भ्रामयित्वाघ्राय, ओं हों

ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः। मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके ॥

इति पठित्वास्त्रमन्त्रेण नाराचमुद्रया ईशान्यां दिशि दूरे प्रक्षिप्य, अस्त्रमन्त्रेण पुनः करावन्योन्यमार्जनेन संशोध्यास्त्रमन्त्रेणोर्ध्वोर्ध्वतालत्रयमङ्गुष्ठतर्जन्युत्थशब्देन दशदिग्बन्धनं कृत्वा त्रिशूलमुद्रामुद्रितौ व्यस्तौ मणिबन्धेनान्योन्यसंपृक्तौ करौ स्वमूर्धानं परितोऽस्त्रमन्त्रं स्मरन् प्रादक्षिण्येन त्रिर्भ्रामयन् अग्निप्राकारत्रयं विधाय तन्मध्यगतमात्मानं सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा भूतशुद्धिं कुर्यात्।

अत्र प्रागुक्तपरिपाट्या भूतशुद्ध्यादिकं तु, प्रथमतो भूतशुद्धिः, ततः प्राणप्रतिष्ठा, ततोऽन्तर्मातृकान्यासः। अत्रान्तर्मातृकान्यासो मनसैव कार्यः। 'पुष्पैरनामया वापि मनसा वा न्यसेदणून्' इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। 'एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसा नो बहिर्न्यसेत्' इति कुम्भसंभववचनाच्च। अत्र वाशब्दः समुच्चये। अणून् मन्त्रान्। अत्रैवं व्यवस्था—पुष्पैर्देवतामूर्तौ, अनामया स्वदेहे, मनसा मूलाधारादिचक्रेषु, तत्र करस्पर्शासंभवात्। अनामया साङ्गुष्ठया 'अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु न्यासः सर्वत्र संमतः' इति पद्मवाहिनीवचनात्। ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासव्यतिरिक्तेष्वियं व्यवस्या ज्ञेया। तत्रानङ्गुष्ठानां सर्वाङ्गुलीनां विहितत्वात् तथैव संप्रदायात्। षडङ्गमन्त्राणामपि पृथक्पृथक्प्रतिपादनाच्चेति।

इसी क्रम में प्रात: सन्ध्यावन्दन के बाद वैदिक तर्पण करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। अपने आगे 'वं' धेनुमुद्रा से जल को अमृत बनावे। उसमें देवता का चक्र-आवरणसहित ध्यान करे। मूल मन्त्र के बाद 'श्रीअमुक देवतां तर्पयामि नम:' कहकर एक सौ आठ या चौवन या अट्ठाईस बार देवता के मुख में परमामृत बुद्धि से उस तीर्थजल से तर्पण करे। आवरणदेवताओं को भी प्रत्येक के नाम से 'तर्पयामि नम:' कहकर एक-एक अञ्जलि जल से तर्पित करे। देवता का विसर्जन अपने हृदय से करे। तीर्थ को सूर्य में विसर्जित करे। गुरु, दिक्पाल और ग्रहों को प्रणाम करे। शुद्ध जल से पूर्ण पात्र को लेकर हृदय में इष्टदेवता का स्मरण करते हुए मौन होकर अपने पैरों पर दृष्टि रखते हुए स्तोत्रादि पढ़ते हुए अपने घर आये। घर के द्वार पर खड़े होकर अपने पापों का मानसिक चिन्तन करके—

देव त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम। तन्नि:सारय चित्तान्मे पापं फट्फट्फट् ते नम:।।

सूर्य: सोमो यम: कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिण:।।

श्लोक का पाठ करके 'हुं फट्' कहकर क्रूर दृष्टि से द्वार के दोनों ओर और ऊपर-नीचे देखकर सुन्दर मन से घर में प्रवेश करे। आंगन में पैरों को धोकर आचमन करके गोबर से लिपी आंगन-भूमि पर सिन्दूरादि से रचित गोल मण्डल के मध्य में अपने आसन को बिछाकर 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम:' से आसन की पूजा करके उस पर पूर्वमुख बैठे। विहित सूर्य मन्त्र से तीन प्राणायाम करके न्यास करे। शिरसि अजाय ऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये श्रीसूर्यदेवतायै नम:। सूर्यार्घ्य दान विनियोग हेतु करे। तब अंगुष्ठयो: ह्रां हृदयाय नम:। तर्जन्यो: ह्रीं शिरसे स्वाहा। मध्यमयो: ह्रूं शिखायै वषट्। अनामिकयो: ह्रैं कवचाय हुं। कनिष्ठयो: ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। करतलकरपृष्ठयो: ह्र: अस्त्राय फट्—इस प्रकार कर न्यास षडङ्ग न्यास करके अस्त्र मन्त्र से तीन ताली बजाकर दश दिग्बन्ध करके निम्नवत् ध्यान करे—

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं नमामि।

पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्।।

तदनन्तर अपने आगे पूर्वोक्त प्रयोग प्रकरण में उक्त प्रयोजन तिलकाख्य त्र्यक्षर मन्त्रोक्त विधि से सांग सावरण पूजन करे। ऐसा न कर सकने पर उस मण्डल में सांग सावरण का ध्यान करके पूजा करे। अपने आगे चतुरस्र वृत्त त्रिकोणात्मक मण्डल बनाकर उसका पूजन 'श्रीसूर्य आधारमण्डलाय नम:' से करे। उस पर आधार रखकर आधार पर प्रस्थ जलग्राही ताम्र पात्र रखे। सूर्य मन्त्र से शुद्ध जल उसमें भरे। तिल, यव, सरसों, साँवाँ, कुशाग्र, गन्ध, अक्षत, लाल फूल, लाल चन्दन उसमें डाले। कुश से ढक दे। उस पात्र को हाथों से ढक कर सूर्यमन्त्र का एक सौ आठ जप करे। घुटनों को पृथ्वी पर रखकर उस

पात्र को शिर तक ले जाकर पूर्वोक्त रूप सूर्य का इष्टदेव के रूप में ध्यान करते हुये 'ॐ ह्रां ह्रीं स: सग्रहराशिनक्षत्रयोगकरण परिवृत्त श्रीसूर्य एष तेऽर्घ्यः स्वाहा' कहकर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे। उस अर्घ्य जल से पूत सूर्य का ध्यान करते हुये उसके मन्त्र का यथाशक्ति जप करे। सूर्य की स्तुति करके प्रणाम करे। अपने आगे पूजा पक्ष में उसे विसर्जित करे।

पूजा मण्डप के द्वार पर जाकर वहाँ यथाविधि सामान्यार्घ्य स्थापित करे। इसमें अशक्त होने पर ताम्रादि पात्रस्थ जल को धेनुमुद्रा से अमृत बनावे। उस जल से पूजामण्डप के द्वार का प्रोक्षण करे। द्वार के ऊपरी शाखा के मध्य में 'विघ्नाय नमः' दक्षिण में, 'महालक्ष्म्यै नमः' बाँयें 'सरस्वत्यै नमः' फिर मध्य में 'द्वारश्रियै नमः' द्वार के वाम दक्षिण शाखाओं में 'गं गणपतये नमः' क्षं क्षेत्रपालाय नमः, 'शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः, पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः, मं मायाशक्त्यै नमः, चिं चिच्छक्त्यै नमः, गं गंगायै नमः, यं यमुनायै नमः, धं धात्र्यै नमः, विं विधात्र्यै नमः—इस प्रकार द्वन्द्व क्रम से अधो अधः पूजकर नीचे की शाखा में 'देहल्यै नमः' से पूजा करे। वाम-दक्षिण में नन्दिने नमः, महाकालाय नमः से द्वारपालों की पूजा करे। उत्तर द्वार पर जाकर अर्घ्य जल से प्रोक्षण करके पूर्ववत् विघ्नादि से देहली तक की पूजा क्रम से करने के बाद द्वारपार्श्वों में गणेशाय नमः, वृषभाय नमः से द्वारपालों की पूजा करे। पूर्व द्वार पर जाकर उसी प्रकार अभ्युक्षण करके विघ्नादि से देहली तक की पूजा करने के बाद द्वारपार्श्वों में भृगिरिटये नमः, स्कन्दाय नमः से द्वारपालों की पूजा करे। दक्षिण द्वार पर जाकर उसी प्रकार प्रोक्षण करके विघ्नादि से देहली तक की पूजा करने के बाद द्वारपार्श्वों में उमायै नमः, चण्डेश्वराय नमः से द्वारपालों की पूजा करे।

वैष्णव हो तो नन्द-सुनन्द, चण्ड-प्रचण्ड, बल-प्रबल, भद्र-सुभद्र का पूजन प्रतिद्वार पर दो-दो के क्रम से करे। गणेश का उपासक हो तो वक्रतुण्ड-एकदन्त, महोदर-गजानन, लम्बोदर-विकट, विघ्नराज-धूम्रवर्ण का पूजन उसी प्रकार करे। शाक्तों और सौरो को ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं की भी पूर्ववत् पूजा करनी चाहिये। पुनः पश्चिम द्वार पर जाकर अस्त्र मन्त्र से सात बार मन्त्रित करके—

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुह्यकाः। ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भुवि संस्थिताः।।
अपसर्पन्तु ये भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

श्लोकों को पढ़ने के बाद अस्त्र मन्त्र का जप कर नाराच मुद्रा से मण्डप के के भीतर अर्घ्यजल का प्रक्षेप करे। इससे सभी भागते हुए विघ्नों को अपना बाँयाँ अंग सिकोड़कर रास्ता प्रदान करे। अस्त्र मन्त्र पढ़कर बाँयीं ऐड़ी को तीन बार पटककर भूमि स्थित विघ्नों को, ऊपर-ऊपर तीन ताली बजाकर अन्तरिक्षगत विघ्नों को एवं तिरछी दृष्टि से जहाँ तक हो सके देखकर दिव्य विघ्नों को उत्सारित करे। दाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर एवं शाक्त बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर द्वार को पार करके अन्दर प्रवेश करे। वस्त्रों से द्वार को आच्छादित करके पञ्चगव्य-अर्घ्यजल से घण्टा बजाते हुए मण्डप के अन्दर प्रोक्षण करे। मण्डप के नैर्ऋत्य कोण में 'वास्तुपुरुषाय नमः' से और वहीं पर 'वास्त्वधीशाय ब्रह्मणे नमः' से पूजन करे। तब मण्डप के ईशान कोण में 'रक्तद्वादशशक्तिसहिताय दीपनाथाय नमः' से दीपनाथ का पूजन करके—

अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम। भैरवाय नमस्तुभ्यं ममाज्ञां दातुमर्हसि।।

इस प्रकार कहकर भैरव से आज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना करे। 'अ: फट्' कहकर मण्डपस्थ पूजा वेदी के पास जाकर ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि मेरुपृष्ठाय ऋषये नमः। मुखे सुतलाय छन्दसे नमः। हृदि पृथिव्यै देवतायै नमः। पृथिवी की प्रार्थना-हेतु विनियोग करे। तब हाथ जोड़कर इस प्रकार पृथ्वी की प्रार्थना करे—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्।।

इस मन्त्र से पृथिवी की प्रार्थना करके अपने आसन स्थान को मूल मन्त्र पढ़कर देखे। अस्त्र मन्त्र से उसका प्रोक्षण करे। अस्त्रमन्त्र से ही मन्त्र से कुश से संताड़न करे। कवच मन्त्र से अभ्युक्षण करे। तब मण्डूकादि से वेदिका तक पीठदेवता की पूजा करे। वहाँ पर दो हाथ लम्बा-चौड़ा मृगचर्म एवं कुश का चौकोर चार अंगुल मोटा आसन बिछावे। मूल मन्त्र के बारह जप से उसे मन्त्रित करे। जल से अभ्युक्षण करे। ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः से उसका पूजन करे। उस पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके स्वस्तिक, वीर या सिद्ध आसन लगाकर बैठे। आसन के अपने दाँयें कोण से प्रारम्भ करके चारों कोनों में प्रदक्षिणक्रम से पूजा करे—गं गणपतये नमः, दुं दुर्गायै नमः, सं सरस्वत्यै नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः। तब गन्ध-पुष्प-अक्षतादि पूजा द्रव्यों को अपने दाँयें भाग में रखकर 'ह्रां हूं फट्' मन्त्र का स्मरण करते हुये दिव्य दृष्टि से देखे। अपने बाँयें

भाग में कर्पूरादि वासित शुद्ध जल से पूर्ण कलश को 'श्रीं' कहकर बाँयें हाथ से स्पर्श करे। दक्षिण करांगुल्यग्र से 'क्ष्रौं' मन्त्र से कलश जल का स्पर्श करे। 'रं' कहकर दीपशिखा का स्पर्श करके हाथों को धोकर हाथ जोड़कर अपने बाँयें 'गुरुभ्यो नमः' दाँयें 'गणपतये नमः' आगे 'महादेवाय नमः' कहकर प्रणाम करे। चन्दन, सुगन्ध एवं फूलों को 'हस्त्रैं' इस मन्त्र से ग्रहण कर अस्त्रमन्त्र 'फट्' से मसल कर हाथों को सुगन्धित करके उस फूल को बाँयें हाथ से अपने मूर्धा के चारों ओर 'रं' कहकर घुमावे और सूँघे। तदनन्तर 'ॐ हों ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः। मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके।।' पढ़कर अस्त्रमन्त्र से नाराच मुद्रा से ईशान दिशा में दूर फेंक दे। तब अस्त्र मन्त्र से दोनों हाथों को मलकर धोये। अस्त्र मन्त्र से ऊपर-ऊपर अंगूठे और तर्जनी से ताली बजाकर दशों दिशाओं को बाँधकर त्रिशूल मुद्रा से मुद्रित व्यस्त मणिबन्ध से एक-दूसरे को स्पर्श करते हुए हाथों को अपने मूर्धा के चारों ओर अस्त्र मन्त्र से प्रदक्षिण क्रम से तीन बार घुमावे। इस प्रकार अग्नि का तीन घेरा बनाकर उसके मध्य में स्थित अपने को चिन्तन करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे।

यहाँ पर पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार से भूतशुद्धि आदि में पहले भूतशुद्धि, तब प्राण-प्रतिष्ठा, तब अन्तर्मातृका न्यास करे। यहाँ अन्तर्मातृका न्यास मानसिक करे—ऐसा दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है।

यथाश्रमं सृष्ट्यादिन्यासक्रमः

ततो बहिर्मातृकान्यासः। अत्र बहिर्मातृकान्यासे केवले बिन्दुयुक्तत्वमक्षराणां वीर्ययोजनार्थमिति संप्रदायः। ततो बिन्दुमातृकान्यासः। ततो विसर्गमातृकान्यासः। ततो बिन्दुविसर्गयुक्तमातृकान्यासः। अत्र यतिवानप्रस्थैरादौ सृष्टिस्ततः स्थितिस्ततः संहार इति कार्यः। गृहस्थैस्तु प्रथमं संहारस्ततः सृष्टिस्ततः स्थितिः कार्या। ब्रह्मचारिभिः आदौ स्थितिस्ततः संहारस्ततः सृष्टिः कार्या। अत्र केचित् 'गृहस्थैः सृष्टिस्थितिसंहारानन्तरं पुनः सृष्टिस्थिती च कार्ये, तेन स्थित्यन्तता स्यात्। एवं ब्रह्मचारिभिः सृष्टिस्थितिसंहारानन्तरं पुनः सृष्टिन्यासः कार्यः। एवं कृते स्थित्यन्तता सृष्ट्यन्तता संहारान्तता च भवति' इत्याहुः। अत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति।

ततस्तारोत्थैकपञ्चाशत्कलामातृकान्यासः। ततः केशवादिमातृकान्यासः। ततः श्रीकण्ठदिमातृकान्यासः। ततो भुवनेश्वरीमातृकान्यासः। ततः श्रीबीजादिमातृकान्यासः। ततः कामबीजादिमातृकान्यासः। ततः श्रीशक्तिकामबीजादिमातृकान्यासः। ततः प्रपञ्चयागमातृकान्यासः। ततस्तत्तद्देवतोपासकस्तत्तद्देवतामातृकान्यासं कृत्वा मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा योगपीठन्यासं कुर्यात्।

बहिर्मातृका न्यास में केवल बिन्दुयुक्त अक्षरों में वीर्ययोजन किया जाता है। बहिर्मातृका न्यास के बाद बिन्दु-मातृका न्यास, तब विसर्गमातृका न्यास, तब बिन्दु-विसर्गयुक्त मातृका न्यास करना चाहिये। यहाँ यतियों एवं वानप्रस्थों को पहले सृष्टि, तब स्थिति, तब संहारन्यास करना चाहिये। गृहस्थों को पहले संहारन्यास, तब सृष्टिन्यासं और अन्त में स्थितिन्यास करना चाहिये। ब्रह्मचारियों को पहले स्थितिन्यास, तब संहारन्यास और अन्त में सृष्टिन्यास करना चाहिये। किसी का मत यह है कि गृहस्थ को सृष्टि-स्थिति-संहार न्यास के बाद पुनः सृष्टि-स्थिति न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचारी को भी सृष्टि-स्थिति-संहार के बाद पुनः सृष्टिन्यास करना चाहिये। इस प्रकार से स्थित्यन्तता, सृष्ट्यन्तता और संहारान्तता होती है। अतः यहाँ पर गुरु के उपदेशानुसार न्यास करना चाहिये। तदनन्तर तारोत्थ इक्यावन मातृका न्यास, तब केशव मातृका न्यास, तब श्रीकण्ठ मातृका न्यास, तब भुवनेश्वरी मातृका न्यास, तब श्रीबीजादि मातृका न्यास, तब कामबीजादि मातृका न्यास, तब श्रीशक्तिकामबीजादि मातृका न्यास, तब प्रपञ्चयाग मातृका न्यास करने के पश्चात् विविध देवोपासकों को अपने-अपने देवता का मातृका न्यास करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके योगपीठन्यास करना चाहिये।

प्राणायामप्रयोगपूर्वपीठन्यासः ऋग्वेदोक्ताग्निसूक्तञ्च

तत्र प्राणायामप्रयोगः—तत्र बद्धपद्मासन ऋजुकायः समुपविश्य दक्षिणाङ्गुष्ठेन दक्षिणनासापुटं निरुध्य वामनासापुटेन वायुमाकृष्य स्वोदरे पूरयित्वा कनिष्ठानामिकाभ्यां वामनासापुटं च निरुध्य हृदि देवं ध्यायन् मूलमन्त्रं जपन् यावच्छक्यं वायुं कुम्भकेन धृत्वा पुनर्दक्षिणनासापुटेन शनैःशनैर्वायुं त्यजेदित्येकः प्राणायामः। पुनर्दक्षिणनासापुटेन

वायुमाकृष्य तथैव कुम्भयित्वा पुनर्वामनासारन्ध्रेण तं वायुं त्यजेदित्यन्यः। पुनर्वामनासारन्ध्रेण प्राग्वद्वायुमापूर्य तथैव कुम्भयित्वा तथैव दक्षिणनासारन्ध्रेण तं वायुं त्यजेदित्यपरः। इत्थं प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलाधारे 'मण्डूकाय नमः' इत्यादिपरतत्त्वान्तं प्रागुक्तक्रमेण विन्यस्य 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मने शक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः' इति मूर्धादिपादान्तं व्यापकत्वेन न्यसेदिति योगपीठन्यासः। अत्र योगपीठस्थाने—गाणेशैः सुधार्णवस्थाने इक्षुरससमुद्रो विष्णुसूर्योपासकैः क्षीरसमुद्रस्तत्र तत्तत्पीठमन्त्रश्च न्यस्तव्य इति विशेषः।

अत्र मूलमन्त्रन्यासः, स च तत्तत्कल्पेषु बोद्धव्यः। ततस्तत्तत्कल्पोक्तमुद्रा विरच्य स्वेष्टदेवताकल्पोक्तरूपं स्वाभेदेन ध्यात्वा स्वशिरसि मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्हृदयकमले ध्यात्वा, योगपीठपुरःसरं मानसैरुपचारैर्देवं साङ्गं सावरणं संपूज्य मानसमेव नैवेद्यं दत्त्वा देवं भुञ्जानं ध्यायन्, मूलाधारे आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मेत्यात्म-चतुष्काकारचतुरस्रे कुण्डमध्ये चिच्छक्तिं कुण्डलिनीं वह्निरूपां ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चार्य 'अहन्तां जुहोमि स्वाहा'। पुनर्मूलं 'असत्यं जुहोमि स्वाहा' इत्थमहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधलोभमदमोहमात्सर्याणि क्रमेण सुषुम्नास्रुग्युक्तमनः-स्रुवेण हुत्वा प्राणायामर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा गुह्येत्यादिना समर्प्य श्रीगुरुं प्रणम्य, पुरतश्चन्दनादिलिप्ते श्रीपर्ण्यादिपीठे सौधादिनिर्मिते स्थण्डिले वा कुङ्कुमादिना तत्तत्कल्पोक्तं पूजाचक्रं, निर्माय, तत्र मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। यद्वा सुवर्णादिभिः शिल्पिवरैर्निर्मितं पूजाचक्रं चन्दनादिमण्डितं प्राग्वत् पीठे संस्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। तत्र स्वर्णरूप्यादिधातुनिर्मितस्य पूजाचक्रस्याम्लरसादिना संशुद्धस्यादौ वैदिकमार्गेणा-ग्न्युत्तारणं कारयित्वा मधुघृतगोदुग्धनारिकेलजलैः पृथक्पृथगभिषिच्य पञ्चाशद्वर्णौषधिक्वाथजलैस्तत्तन्मन्त्रौषधि-क्वाथजलैर्वाभिषिञ्चेत्।

अत्र मन्त्रवर्णौषधिग्रहणे मन्त्रवर्णेषु पुनरुक्तवर्णानामोषध्यो यस्य वर्णस्य यावत्य आवृत्तयो मन्त्रे दृश्यन्ते तस्यौषधेस्तावन्तो भागा ग्राह्याः। तास्तु प्रागेव प्रदर्शिताः। ततः शुद्धजलैः प्रक्षाल्य चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादि-पङ्कैरालिप्य पुरतः शुभे पीठे संस्थाप्य तच्चक्रं स्पृष्ट्वा मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा संशुद्धस्य तस्य चक्रस्य प्रागुक्त-प्राणप्रतिष्ठामन्त्रे 'अमुकदेवतापूजाचक्रस्य' इत्यादितत्तद्देवतानामपूर्वकं देवमावाह्य साङ्गं सावरणं संपूज्य महानैवेद्यं बलिदानादिपूर्वकं महोत्सवं प्रत्यहं दिनत्रयपर्यन्तं कुर्यात्। दिनत्रयमपि, प्रथमदिने आवाहितं देवं न विसर्जयेत्। चतुर्थ-दिने नित्यपूजान्ते देवं विसर्जयेत्। इति प्रतिष्ठिते चक्रे नित्यनैमित्तिकादिपूजनं च कुर्यात्। अग्न्युत्तारणं तु ऋग्वेदोक्ताग्निसूक्तेनैव वा कार्यम्। सूक्तं तु (ऋ० १० मं० ८० सू०)—

अ॒ग्निः सप्तिं॑ वाज॒म्भ॒रं द॑दात्य॒ग्निर्वी॒रं श्रु॒त्यं॑ कर्म॒नि॒ष्ठाम्।
अ॒ग्नी रोद॑सी॒ वि च॑रत्सम॒ञ्जन्न॒ग्निर्नारीं॑ वी॒रकु॑क्षिं॒ पुरं॑धिम्॥१॥
अ॒ग्नेरप्न॑सः स॒मिद॑स्तु भ॒द्राग्निर्म॒ही रोद॑सी॒ आ वि॑वेश।
अ॒ग्निरेकं॑ चोदयत्स॒मत्स्व॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ दयते पु॒रूणि॑॥२॥
अ॒ग्निर्ह॒ त्यं जर॑तः कर्णमा॒वाग्निर॒द्भ्यो निर॑दह॒ज्जरू॑थम्।
अ॒ग्निरत्रिं॑ घ॒र्म उ॑रुष्यद॒न्तर॒ग्निर्नृ॒मेधं॑ प्र॒जया॑सृजत्सम्॥३॥
अ॒ग्निर्दा॒ द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा अ॒ग्निर्ऋषिं॒ यः स॒हस्रा॑ स॒नोति॑।
अ॒ग्निर्दि॒वि ह॒व्यमा त॑ताना॒ग्नेर्धामा॑नि॒ विभृ॑ता पु॒रु॒त्रा॥४॥
अ॒ग्निमु॒क्थैर्ऋष॑यो॒ वि ह्व॑यन्ते॒ऽग्निं नरो॒ याम॑नि बाधि॒तासः॑।
अ॒ग्निं वयो॑ अ॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑न्तो॒ऽग्निः स॒हस्रा॒ परि॑ याति॒ गोना॑म्॥५॥
अ॒ग्निं विश॑ ईळते॒ मानु॑षी॒र्या अ॒ग्निं मनु॑षो॒ नहु॑षो॒ वि जा॒ताः।
अ॒ग्निर्गान्ध॑र्वीं प॒थ्या॑मृ॒तस्या॒ग्नेर्गव्यू॑ति॒र्घृत॒ आ निष॑त्ता॥६॥

अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥७॥

अथैतस्य प्रयोगः—तत एभिर्मन्त्रैः प्रथमं प्रतिष्ठितस्य चक्रादिकमग्निशब्दरहितैः शतावृत्त्या शुद्धजलैरभिषिच्यानन्तरमग्निशब्दसहितैः शताद्यावृत्त्याभिषिञ्चेदित्यग्न्युत्तारणविधिः। ततः प्रत्यहमम्लादिभिः शुद्धजलेन प्रक्षालनं धातुमयचक्रस्य, स्फटिकस्य जलेनैव क्षालनं कार्यमिति।

प्राणायाम प्रयोग—पद्मासन में बैठकर शरीर को सीधा रखकर दाँयें अंगूठे से दाँयें नासापुट को निरुद्ध करके बाँयें नासापुट से वायु खींचकर अपने उदर को भरे। कनिष्ठा-अनामा से वाम नासापुट को निरुद्ध करके हृदय में देवता का ध्यान करके यथाशक्ति मूल मन्त्र को जपते हुए कुम्भक से धारण करे। तब दाँयें नासापुट से वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाले। यह प्रथम प्राणायाम होता है। फिर दक्षिण नासापुट से साँस लेकर उसी प्रकार कुम्भक करके पुनः वाम नासापुट से वायु को निकालना दूसरा प्राणायाम होता है। पुनः वाम नासापुट से पूर्ववत् साँस लेकर कुम्भक करके दाँयें नासापुट से उसे निकालना तीसरा प्राणायाम होता है। इस प्रकार से तीन प्राणायाम करके मूलाधार में 'मण्डूकाय नमः' इत्यादि परतत्त्व तक उक्त क्रम से न्यास करके 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मने शक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः' से मूर्धा से पैर तक व्यापक न्यास करे। इसे योगपीठन्यास कहते हैं।

योगपीठ के स्थान में गणेश के उपासक सुधार्णव स्थान में इक्षुरससमुद्र की कल्पना करें और विष्णु एवं सूर्य के उपासक वहाँ पर क्षीरसमुद्र की कल्पना कर अपने-अपने पीठमन्त्रों से न्यास करें।

मूलमन्त्र न्यास—यह अपने-अपने कल्प के अनुसार होता है। कल्पोक्त मुद्रा बनाकर अपने इष्ट के कल्पोक्त रूप का अपने से अभेद रूप में ध्यान करके अपने शिर पर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि छोड़े। पुनः अपने हृदय में ध्यान करके योगपीठ करे। अंगों और आवरणों सहित देवता का पूजन मानसोपचारों से करे। मानस नैवेद्य देकर भावना करे कि देवता खा रहे हैं। मूलाधार में आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा-ज्ञानात्मा के चतुरस्र कुण्ड में चित् शक्ति कुण्डलिनी का अग्नि का ध्यान करके मूल मन्त्र के साथ 'अहंतां जुहोमि स्वाहा' कहकर हवन करे। इसी प्रकार असत्य पैशुन्य काम क्रोध लोभ मद मोह मात्सर्य का सुषुम्ना रूपी स्रुक् से युक्त मनरूपी स्रुवा से हवन करे। तदनन्तर प्राणायाम अर्घ्यादि कर षडङ्ग न्यास करके मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करके 'गुह्यादि' मन्त्र से जप को समर्पित करे। गुरु को प्रणाम करे। अपने आगे चन्दनादि लगे हुये बेलकाष्ठ के पीठ पर या सौधादि-निर्मित स्थण्डिल में कुङ्कुमादि से पूजाचक्र बनावे। मूल मन्त्र से उस पर पुष्पाञ्जलि देवे। अथवा कारीगरों द्वारा सुवर्णादि से निर्मित पूजाचक्र में चन्दनादि लगाकर पूर्ववत् पीठ पर रखकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। सोना-चाँदी आदि धातुनिर्मित पूजा चक्र को अम्ल रस से शुद्ध करके प्रथमतः वैदिक मार्ग से अग्न्युत्तारण कर मधु, घी, दूध एवं नारियलजल से अलग-अलग अभिषेक करे। अथवा पचास वर्णौषधि क्वाथ से या मन्त्रौषधि क्वाथ से अभिषेक करे।

तदनन्तर चक्र को शुद्ध जल से धोकर चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, कुङ्कुमादि का लेप लगाकर अपने आगे शुभ पीठ पर स्थापित करके उसका स्पर्श करते हुए मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करने के बाद उस शुद्ध चक्र पर पूर्वोक्त प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रों से 'अमुकदेवतापूजाचक्रस्य' इत्यादि उन-उन देवता का नाम लेते हुये उनका आवाहन करके सांग-सावरण पूजन कर प्रतिदिन महानैवेद्य एवं बलिदान देकर तीन दिनों तक महोत्सव करे। तीन दिनों में भी प्रथम दिन आवाहित देवता का विसर्जन न करे। चौथे दिन नित्य पूजा के बाद देवता का विजर्सन करे। इस प्रकार प्रतिष्ठित चक्र में नित्य-नैमित्तिक पूजन करे। अग्न्युत्तारण ऋग्वेदोक्त निम्न अग्निसूक्त से करे—

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्। अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंन्धिम्।।
अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश। अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि।।
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्। अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम्।।
अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति। अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा।।

अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः। अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम्।।
अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः। अग्निर्गान्धर्वी पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता।।
अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्। अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व।।

इन मन्त्रों से प्रथम प्रतिष्ठित चक्रादि को अग्नि शब्दरहित इन मन्त्रों की सौ आवृत्ति से अभिषेक करने के पश्चात् अग्नि शब्दसहित सौ पाठ से अभिषेक करे। इसे अग्न्युत्तारण कहते हैं। तब धातुचक्र को प्रतिदिन खट्टे द्रव्य के साथ शुद्ध जल से प्रक्षालित करे एवं स्फटिक यन्त्र को जल से प्रक्षालित करे।

कालीमते चक्रप्रतिष्ठाविधिस्तत्प्रयोगश्च

अथ कालीमते चक्रप्रतिष्ठाविधिस्तु वामकेश्वरतन्त्रे—

भैरव्युवाच

चक्रभेदं महादेव त्वत्प्रसादान्मया श्रुतम्। इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाक्रमनिर्णयम्।।१।।

शङ्कर उवाच

शृणु देवि महाभागे जगत्कारिणि कौलिनि। तस्योद्यापनकर्माङ्गं सर्वकार्यविनिर्णयम्।।२।।
स्नात्वा सङ्कल्पयेन्मन्त्री गुरोरर्चनमारभेत्। पञ्चगव्यं ततः कृत्वा शिवमन्त्रेण मन्त्रितम्।।३।।
तत्र चक्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन समाकुलम्। समुद्धृत्य ततश्चक्रं स्थापयेत्पूर्णपात्रके।।४।।
पञ्चामृतेन दुग्धेन शीतलेन जलेन च। चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमेन च।।५।।
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात्। तोयधूपान्तरैः कुर्यात्पञ्चामृतविधिं बुधः।।६।।
हाटकैः कलशैर्देवीमष्टभिर्वारिपूरितैः। कषायजलसंपन्नैः कारयेत् स्नानमुत्तमम्।।७।।
स्नानं समाप्य तां देवीं स्थापयेत्स्वर्णपात्रके।
यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि। तन्नो यन्त्रं प्रचोदयात्।।८।।
स्पृष्ट्वा यन्त्रं कुशाग्रेण गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्। अष्टोत्तरशतं देवि देवताभावसिद्धये।।९।।
आत्मशुद्धिं ततः कृत्वा षडङ्गैर्देवतां यजेत्। तत्रावाह्य महादेवीं जीवन्यासं च कारयेत्।।१०।।
उपचारैः षोडशभिर्महामुद्रादिभिः सदा। फलताम्बूलनैवेद्यैर्देवीं तत्र समर्चयेत्।।११।।
पट्टसूत्रादिकं दद्याद्वस्त्रालङ्कारमेव च। मुकुरं चामरं घण्टां यथायोग्यं महेश्वरि।।१२।।
सर्वमेतत्प्रयत्नेन दद्यादात्महिते रतः। ततो जपेत्सहस्रं च सकलेप्सितसिद्धये।।१३।।
बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेच्चक्रराजकम्। अष्टोत्तरशतं हुत्वा संपाताज्यं विनिक्षिपेत्।।१४।।
होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत्। धेनुमेकां समानीय स्वर्णशृङ्गाद्यलङ्कृताम्।।१५।।
गुरवे दक्षिणां दद्यात्ततो देव्या विसर्जनम्।

अथ प्रयोगः—तत्र साधकः कृतनित्यक्रियः स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात्। अद्येहेत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकशर्मामुकदेवतायाः पूजार्थममुकयन्त्रसंस्कारमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, पञ्चगव्यमानीय हौमित्यष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य ओमिति यन्त्रं तत्र निक्षिपेत्। तस्मादुत्तोल्य पात्रान्तरे स्थापयेत्। ततः शीतलजलचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमैः स्नापयित्वा पञ्चामृतं प्राग्वत् हौमिति शोधयित्वा स्थापयेत्।

तत्र क्रमस्तु—क्षीरेण स्नाप्य पुनः शुद्धजलैः स्नाप्य धूपयेत्। एवं दधिघृतमधुशर्कराभिः। ततोऽष्टभिः कलशैः कुङ्कुमगोरोचनाचन्दनमिश्रिततोयैः स्नापयेत् मूलमन्त्रेण सर्वत्र। ततो यन्त्रमुत्तोल्य कुशाग्रेण स्पृशन् 'यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रं प्रचोदयात्' इत्यष्टोत्तरशतवारमभिमन्त्र्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। ततस्तत्रेष्टदेवतामावाह्य

षोडशोपचारैः संपूज्य षडङ्गेन पूजयेत्। तत्र पट्टसूत्रादिकं दत्त्वाष्टोत्तरसहस्रं जपेत्। शक्तश्चेद्बलिं दद्यात्। ततोऽष्टोत्तरशतहोमं कृत्वा प्रत्याहुति संपातं कुर्यात्। होमासामर्थ्ये द्विगुणजपः कार्यः। ततो गुरवे सुवर्णालङ्कृतां गां दक्षिणां च दत्त्वाच्छिद्रावधारणं कुर्यादिति।

कालीमत में चक्रप्रतिष्ठा—वामकेश्वर तन्त्र में महादेव से भैरवी ने कहा कि हे महादेव! आपकी कृपा से मैंने चक्रभेद को सुना; अब मैं प्रतिष्ठाक्रम का निर्णय सुनना चाहती हूँ। तब शंकर ने कहा—महाभागे देवि! सुनो, उद्यापन कर्मों के अंगरूप सभी कार्यों का निर्णय कहता हूँ। साधक स्नान करके सङ्कल्प करे। गुरु का अर्चन प्रारम्भ करे। पञ्चगव्य को शिव मन्त्र से मन्त्रित करके ॐ का उच्चारण कर चक्र को उसमें डुबो दे। प्रणव से ही उसे बाहर निकालकर पूर्ण पात्र में स्थापित करे। पञ्चामृत, दूध, शीतल जल, चन्दन, सुगन्ध, कस्तूरी, कुङ्कुम से धोकर दूध, दही, घी, मधु, शक्कर से स्नान कराये। पुनः जल से धोकर धूप दिखाये। कषाय जलपूर्ण आठ स्वर्ण कलशों से स्नान कराये। स्नान के बाद उसे सोने के पात्र में स्थापित करे। तदनन्तर 'यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्' इस यन्त्रगायत्री से यन्त्र को कुशाग्र से छूकर देवताभाव की सिद्धि के लिये एक सौ आठ जप से मन्त्रित करे। तब आत्मशुद्धि करके देवता का षडङ्ग पूजन करे। उसमें महादेवी का आवाहन करके जीवन्यास करे। मुद्रासहित सोलह उपचारों से पूजा करे। फल ताम्बूल नैवेद्य समर्पित करे। प्रयत्नपूर्वक यथायोग्य रेशमी वस्त्र अलंकार मुकुर चामर घण्टा आत्मकल्याण के लिये समर्पित करे। तब सभी इच्छित फलों की प्राप्ति के लिये एक हजार जप करे। बलि देकर चक्रराज को प्रणाम करे। एक सौ आठ हवन करके उस पर घी की धारा गिरावे। हवन करने में अशक्त होने पर दो हजार जप करे। सोने से मढ़े सिंग वाली एक गाय लाकर गुरु को दक्षिणा में प्रदान करे। तब देवी का विसर्जन करे।

प्रयोग—साधक नित्य कृत्य करके यन्त्र संस्कार करने के लिये स्वस्तिवाचनपूर्वक सङ्कल्प करे। तदनन्तर पञ्चगव्य लेकर 'हौं' के एक सौ आठ जप से उसे मन्त्रित करके 'ॐ' कहते हुये उसे यन्त्र पर डाल दे। यन्त्र को वहाँ से उठाकर दूसरे पात्र में रखे। तदनन्तर शीतल जल चन्दन कस्तूरी कुङ्कुम से उसे स्नान करावे। पञ्चामृत से पूर्ववत् स्नान कराकर 'हौं' द्वारा शोधित करके स्थापित करे।

स्नान का क्रम इस प्रकार है—दूध से स्नान कराने के बाद जल से स्नान कराकर उसे धूपित करे। इसी प्रकार दही, घी, मधु, शक्कर से स्नान करावे। तब कुङ्कुम गोरोचन चन्दन-मिश्रित जल आठ कलशों में भरकर मूल मन्त्र से आठों से स्नान करावे। तब यन्त्र को उठाकर कुशाग्र से स्पर्श किए हुए पूर्वोक्त यन्त्र को गायत्री के एक सौ आठ जप से मन्त्रित करके उसकी प्रतिष्ठा करे। उसमें इष्टदेवता का आवाहन करके षोडशोपचार से पूजन करके षडङ्ग पूजन करे। तब पट्टसूत्र देकर एक हजार आठ जप करे। यथाशक्ति बलि दान दे। तब एक सौ आठ हवन करके प्रत्येक आहुति से सम्पात करे। हवन में अशक्त होने पर दोगुना जप करे। तब गुरु को सोने से अलंकृत गाय एवं दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे।

प्रतिष्ठितयन्त्रे शिवपूजापद्धतिः

इत्थं प्रतिष्ठितं प्रक्षालितं चन्दनादिमण्डितं पुरतः प्रोक्तपीठे संस्थाप्य, तत्र मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रागवदर्घ्यादिपात्राण्यासाद्यार्घ्यजलं किञ्चित् पात्रान्तरेणोद्धृत्य तेन जलेन स्वात्मानं पूजाचक्रं पूजाद्रव्याणि च मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य तेषु धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, स्वदेहं गन्धादिभिरलङ्कृत्य स्वेष्टदेवतारूपं सञ्चिन्त्य स्वशिरसि श्रीगुरुं, मूलाधारे गणपतिं च संपूज्य, प्रागुक्तयोगपीठदेवतास्तत्तन्न्यासस्थानेषु संपूज्य हृदयकमलकेसरेषु तत्तत्पीठशक्तीश्च संपूज्य, तत्तत्पीठमन्त्रेण सर्वाङ्गेषु पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा स्वेष्टदेवतारूपं स्वात्मानं ध्यायन् मूलमन्त्रेण मूर्ध्नि हृदये गुह्ये पादयोः सर्वाङ्गे च पञ्चस्थानेषु पञ्च पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा धूपदीपनैवेद्यैरत्र प्राग्वन्मूलाधारे चतुरस्रं कुण्डं सञ्चिन्त्य तत्र कुण्डल्यात्मकपरमात्मवह्निं सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रमुच्चार्य,

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्॥

पुण्यं जुहोमि स्वाहा। पुनर्मूलं प्रागुक्तश्लोकमन्त्रं च, पापं जुहोमि स्वाहा। इत्थं पुण्यपापे कृत्याकृत्ये सङ्कल्पविकल्पौ धर्मं च पृथक् हुत्वा पुनर्मूलं,

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम् । धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा ॥

इति धर्माधर्मात्मकं सकलप्रपञ्चकं पूर्णाहुतित्वेन हुत्वा निरस्तनिखिलोपाधितया निरतिशयसुखानन्दचिद्विलासात्मकं स्वात्मानं ध्यायन्, प्राणायामर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा जपं समर्प्यार्घ्यजलेन पूजाचक्रमभ्युक्ष्य, चक्रस्योत्तरभागे ऐं गुरुभ्यो नमः। दक्षिणे गं गणपतये नमः। इति संपूज्य पूजाचक्रस्याधस्तादतलादिसप्तपातालभावनया ॐ मण्डूकाय नमः। एवं कालाग्निरुद्राय नमः। मूलप्रकृत्यै नमः। आधारशक्त्यै नमः। कूर्माय नमः। अनन्ताय नमः। वराहाय नमः। इति संपूज्य, वराहस्य दंष्ट्रोपरि पृथिव्यै नमः। तस्यां सुधार्णवाय नमः। तस्मिन् नवरत्नमयद्वीपाय नमः। तन्मध्ये स्वर्णपर्वताय नमः। तदुपरि नन्दनोद्यानाय नमः। तदुपरि कल्पवृक्षेभ्यो नमः। तेषां मध्ये विचित्ररत्नभूम्यै नमः। तन्मध्ये स्वर्णप्राकाराय नमः। तन्मध्ये रत्नमण्डपाय नमः। तस्यान्तः स्वर्णवेदिकायै नमः। तदुपरि रत्नसिंहासनाय नमः। इति तत्तद्भावनया संपूज्य पूजाचक्राधारपीठं सिंहासनत्वेन परिकल्प्य, तस्य चाग्नेयादिकोणचतुष्टयस्य पादचतुष्टये धर्माय नमः। ज्ञानाय नमः। वैराग्याय नमः। ऐश्वर्याय नमः। इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य, स्वाग्रादिपीठस्य गात्रचतुष्टये अधर्माय नमः। अज्ञानाय नमः। अवैराग्याय नमः। अनैश्वर्याय नमः। इति प्रादक्षिण्येन पूजयेत्।

ततः सिंहासनस्य मध्ये, मायायै नमः। विद्यायै नमः। इति मायाविद्ये पट्टसूत्रमयपट्टिकारूपेण लौकिकमञ्चवदोतप्रोतरूपेण ग्रथिते स्थिते ध्यात्वा संपूज्य, तदुपरि अनन्ताय नमः। इति तल्पाकारमनन्तं संपूज्य, तस्य मूर्ध्नि पद्माय नमः। आनन्दकन्दाय नमः। संविन्नालाय नमः। तद्दलेषु प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। तत्केसरेषु विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः। तत्कर्णिकायां पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः। केसरेषु अं अर्कमण्डलाय नमः। कर्णिकायां उं सोममण्डलाय नमः। पत्रेषु मं वह्निमण्डलाय नमः। तथैव, ब्रह्मणे नमः। विष्णवे नमः। रुद्राय नमः। तत्रैव सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः। रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः। तं मोहात्मने तमसे नमः। आं आत्मने नमः। अं अन्तरात्मने नमः। पं परमात्मने नमः। ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। सिंहासनस्य स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च—ज्ञानतत्त्वात्मने नमः। मायातत्त्वात्मने नमः। कलातत्त्वात्मने नमः। विद्यातत्त्वात्मने नमः। परतत्त्वात्मने नमः। इति संपूज्य, तत्केसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन गणेशादितत्तत्पीठस्य नवशक्तीः पीठमन्त्रेण समस्तं पीठं च संपूज्य तत्तन्मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीशिवादिमूर्तिं परिकल्पयामि' इति पीठमध्ये शिवलिङ्गादि तदभावे पुष्पादिकं वा निक्षिप्य ध्यानोक्तां मूर्तिं विभावयेत्। 'नमः' इति कल्पितां मूर्तिं पूजयेत्।

इस प्रकार से प्रतिष्ठित प्रक्षालित चन्दनादि से मण्डित चक्र को अपने आगे उक्त पीठ पर स्थापित करे। मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर पूर्ववत् अर्घ्य पात्रादि का स्थापन करे। कुछ अर्घ्य जल दूसरे पात्र में लेकर उससे अपना, पूजाचक्र का एवं पूजा द्रव्य का मूल मन्त्र से प्रोक्षण करे। धेनुमुद्रा दिखाकर अपने देह को गन्धादि से अलंकृत करके अपने को इष्टदेवता मानकर शिर पर स्वगुरु एवं मूलाधार में गणेश का पूजन करे। पूर्वोक्त योगपीठ देवताओं की उनके स्थानों में पूजा करे। अपने हृदय कमल के केसर में पीठशक्तियों की पूजा करे। पीठमन्त्रों से सभी अंगों में पुष्पाञ्जलि दे। अपने इष्टदेवता के रूप में अपना ध्यान करे। मूल मन्त्र से मूर्धा, हृदय, गुह्य, पैरों और सभी अंगों—इन पाँच स्थानों में पाँच पुष्पाञ्जलि दे। धूप, दीप, नैवेद्य दे। पूर्ववत् मूलाधार में चतुरस्र कुण्ड का चिन्तन करके उसमें स्थित कुण्डल्यात्मक परमात्माग्नि में मूल मन्त्र के साथ धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।। पुण्यं जुहोमि स्वाहा। पुनः मूल मन्त्र पूर्वोक्त श्लोक मन्त्र पापं जुहोमि स्वाहा—इस प्रकार पुण्य-पाप कृत्य-अकृत्य सङ्कल्प-विकल्प का पृथक्-पृथक् हवन करे। फिर मूल मन्त्र तब

'प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा' से धर्माधर्मात्मक सभी पंचकों से पूर्णाहुति देकर अपने को सभी उपाधियों से रहित निरतिशय सुखानन्द चिद्विलासात्मक समझे।

तदनन्तर प्राणायाम, ऋषि-कर-षडङ्ग न्यासपूर्वक मन्त्र मन्त्र का एक सौ आठ जप करके जप को देवता को समर्पित कर पूजाचक्र का अभ्युक्षण कर चक्र के उत्तर भाग में ऐं गुरुभ्यो नमः, दक्षिण में गं गणपतये नमः से पूजा करे। पूजा चक्र के नीचे अतलादि सात पातालों की भावना कर ॐ मण्डूकाय नमः, कालाग्निरुद्राय नमः, मूलप्रकृत्यै नमः, आधारशक्त्यै नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, वराहाय नमः से पूजा करे। वराह के दाँतों पर पृथिव्यै नमः। उसमें सुधार्णवाय नमः, उसमें नवरत्नमयद्वीपाय नमः, उसके मध्य में स्वर्णपर्वताय नमः, उसके ऊपर नन्दनोद्यानाय नमः, उसके ऊपर कल्पवृक्षेभ्यो नमः, उसके मध्य में विचित्ररत्नभूम्यै नमः, उसके मध्य में स्वर्णप्राकाराय नमः, उसके मध्य में रत्नमण्डपाय नमः, उसमें स्वर्णवेदिकायै नमः, उसके ऊपर रत्नसिंहासनाय नमः—इन भावनाओं से पूजा करे। पूजा चक्राधार पीठ को सिंहासन के रूप में कल्पित करके आग्नेय आदि चार कोनों में सिंहासन के चारो पैरों में धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः इस प्रकार पूजन प्रदक्षिणक्रम से करे। अपने आगे से पीठ के गात्रचतुष्टय में अधर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः से प्रदक्षिणक्रम से पूजन करे।

तदनन्तर सिंहासन के मध्य में मायायै नमः, विद्यायै नमः इस प्रकार माया और विद्या को पट्टसूत्रमय पट्टिकारूप में लौकिक मञ्चवत् ओत-प्रोत रूप से ग्रथित होकर स्थित रूप में ध्यान करके पूजा करे। उसके ऊपर अनन्ताय नमः से तल्पाकार रूप में अनन्त की पूजा करे। उसकी मूर्धा में पद्माय नमः, आनन्दकन्दाय नमः, संविन्नालाय नमः। पद्म के दलों में प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। उसके केसर में विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः। उसकी कर्णिका में पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः। केसरों में—अं अर्कमण्डलाय नमः। कर्णिका में ॐ सोममण्डलाय नमः। पत्रों में मं वह्निमण्डलाय नमः। वहीं पर ब्रह्मणे नमः, विष्णवे नमः, रुद्राय नमः। वहीं पर सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः, रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः, तं मोहात्मने तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। सिंहासन के अपने आगे से चारो दिशाओं और मध्य में—ज्ञानतत्त्वात्मने नमः, मायातत्त्वात्मने नमः, कलातत्त्वात्मने नमः, विद्यातत्त्वात्मने नमः, परतत्त्वात्मने नमः। उसके केसर में अपने आगे से प्रदक्षिणक्रम से गणेशादि नव पीठशक्तियों की एवं पीठमन्त्र से सारे पीठ की पूजा करे। उसके बाद मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीशिवादिमूर्तिं परिकल्पयामि' से पीठ के मध्य में शिवलिङ्गादि अथवा इसके अभाव में पुष्पादि देकर ध्यानोक्त मूर्ति की भावना करे और कल्पित मूर्ति की नमः से पूजा करे।

अथ पञ्चायतनी चेत् मध्ये शिवपूजायां देवस्याग्नेयादिकोणचतुष्टये सूर्यगणेशदुर्गाविष्णून् संस्थाप्य गणेशादिक्रमेण तत्तत्कल्पोक्तविधिना तत्तद्यन्त्रे तत्तत्पीठपूजापुरःसरं पृथक्पृथक् साङ्गावरणान् सर्वोपचारैः संपूज्य तत्तन्मन्त्रजपस्तोत्रपाठप्रणामक्षमापनादिभिः परितोषयेत्। एवं विष्ण्वादिपूजायां प्रमाणोक्तप्रकारेण कोणेषु देवताः संस्थाप्य प्रमाणोक्तप्रकारेणायतनदेवताः पूजयेत्। अत्र पञ्चायतनपूजायामपि पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीदिशं परिकल्प्य तदनुसारेणाग्नेय्यादिकं कल्पयेदिति। ततः पुनर्मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं मूलमन्त्रस्यर्ष्यादिकांश्च कृत्वा कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय पद्ममुद्रां बद्ध्वा पूर्वोक्तमातृकाम्भोजत्वेन ध्यात्वा पद्मासनेनोपविष्ट ऋजुकायोऽन्तर्मुखो गुदमेढ्रयोरन्तराले सुषुम्नान्तश्चतुरस्रमध्यस्थचतुर्दलपङ्कजदलेषु विद्योतत् वशषसार्णचतुष्टयं सकेसरं पीतवर्णं मूलाधारं सञ्चिन्त्य, तन्मध्ये सोमसूर्याग्निमयाकथादित्रिरेखं त्रिकोणं विभाव्य तन्मध्ये सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलं जपाकुसुमप्रभं ज्योतिर्लिङ्गं ध्यात्वा, तदुपरि चिद्रूपां तडित्कोटिप्रभादीप्तां बिसतन्तुतनीयसीं प्रसुप्तभुजगीमिव सार्धत्रिवलयेन सर्वान्तर्यामितया स्थितां परब्रह्माविनाभूतां कुण्डलिनीं शक्तिं चिरं विभाव्य, गुरूपदिष्टविधिना गुदाकुञ्चनपूर्वकं हूंकारेण तां कुण्डलिनीमुत्थाप्य सुषुम्नावर्त्मना मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्यषट्चक्रभेदेन ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, तत्रस्थपरमामृताम्बुधौ परमात्मनि संयोज्य शिवशक्त्यात्मकं तत्तेजो वहन्नासाध्वना निःसार्य करस्थपुष्पाञ्जलौ संयोज्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीशिव इहागच्छ इहागच्छ' इति चक्रमध्यस्थितमूर्तेः शिरसि पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेण तत्तेज आवाहनीमुद्रया समावाह्य

तद् ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविष्टं सञ्चिन्त्य, श्रीशिवादिरूपेण परिणतं ध्यानोक्तरूपं तं ध्यायन् मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीशिव इह तिष्ठ इह तिष्ठ' इति स्थापनीमुद्रां प्रदर्श्य,

देवेश भक्तसुलभ सर्वाभरणसंयुत। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावदत्र स्थिरो भव ॥

इति प्रार्थ्य, पुनर्मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीशिव इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि' इति सन्निधापनमुद्रया सन्निधाप्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव इह सन्निरुद्धो भव इह सन्निरुद्धो भव' पुनर्मूलं 'श्रीशिव इह संमुखो भव इह संमुखो भव' इति तत्तन्मुद्रया विधाय, पुनर्मूलं 'श्रीशिव इहावगुण्ठितो भव इहावगुण्ठितो भव' इत्यवगुण्ठ्य देवस्य हृदयादिषडङ्गन्यासस्थानेषु षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव सकलीकृतो भव सकलीकृतो भव' इति सकलीकृत्य, धेनुमुद्रां बद्ध्वा देवस्य मूर्ध्नि अमृतवृष्टिं धारयन् मूलमुच्चार्य 'श्रीशिवामृतीकृतो भवामृतीकृतो भव' इत्यमृतीकृत्य महामुद्रां बद्ध्वा मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव परमीकृतो भव परमीकृतो भव' इति देवस्य मूर्ध्नि परमामृतवृष्टिं ध्यात्वा, मूलमन्त्रं ततः 'ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु सौः ह्सौः' इति दीपनीमकारादिक्षकारान्तां मातृकां चोच्चार्यार्घ्योदकेन देवं त्रिः प्रोक्ष्य देवस्य हृदयं स्पृशन् पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रैर्ममपदस्थाने श्रीशिवस्येति पदं प्रक्षिप्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं जपेत्। देवस्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय, मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीशिवाय नमः' इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा लिङ्गयोनित्रिशूलाक्षमालावराभयमृगखट्वाङ्गकपालडमरुकाख्या दश मुद्राः प्रत्येकं कामबीजेन विरच्य मूलमन्त्रेण प्रदर्श्य ह्लमिति मुञ्चेदिति दश मुद्राः प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते आसनं नमः' इति वार्क्षं चार्मं वास्त्रं पौष्पं तैजसं वा यथासंभवमासनं देवस्य वामभागे विन्यस्य, 'हंहंहं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा' इति निवेद्य मूलेन पद्ममुद्रां प्रदर्श्य, पुनर्मूलमुच्चार्य 'श्रीशिवाय नमः' इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पुनर्मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव कुशलं स्वागतं' इति कुशलस्वागतप्रश्नं कृत्वा कुशलस्वागतप्रश्नमुद्रे प्रदर्श्य, पुनर्मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एष तेऽर्घ्यः स्वाहा' इति पूर्वस्थापितार्घ्यपात्राद्गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वान्वितं जलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य देवस्य शिरसि दत्त्वा 'ॐ हंहंहं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा' इति निवेद्यार्घ्यमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिवाय नमः' इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पुनर्मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते पाद्यं नमः' इति पाद्यपात्राच्छ्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तान्वितं जलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य देवस्य पादयोर्दत्वा ॐ हंहंहमिति मन्त्रेण प्राग्वन्निवेद्य, मुद्रां प्रदर्श्य मूलं प्राग्वत्पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। अत्र सर्वोपचारेषु प्रोक्तमन्त्रेण निवेदनं मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं च प्रत्युपचारं कुर्यात्।

पञ्चायतन पूजा में मध्य में शिवपूजा में देव के आग्नेयादि चारो कोनों में सूर्य-गणेश-दुर्गा-विष्णु को स्थापित करके गणेशादि के क्रम से उनकी कल्पोक्त विधि से उनके-उनके यन्त्र में पीठपूजापूर्वक पृथक्-पृथक् सांगावरण सभी उपचारों से पूजा करे। उनके मन्त्रों का जप, स्तोत्रपाठ, प्रणाम, क्षमापन से उन्हें सन्तुष्ट करे। इसी प्रकार विष्णु आदि की पूजा में प्रमाणोक्त प्रकार से कोणों में देवताओं को स्थापित करके प्रमाणोक्त प्रकार से आयतन देवताओं की पूजा करे। यहाँ पञ्चायतन पूजा में भी पूज्य-पूजक के मध्य में प्राची दिशा कल्पित करके तदनुसार ही आग्नेयादि कोणों को कल्पित करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादिक न्यास करके अञ्जलि में फूल भरकर पद्ममुद्रा बनाकर पूर्वोक्त मातृका कमल का ध्यान करके पद्मासन में बैठे। ऋजुकाय, अन्तर्मुख, गुदा-मेढ़ के अन्तराल में सुषुम्ना के चतुरस्र मध्यस्थ चतुर्दल पद्म के दलों में प्रकाशमान वं शं षं सं वर्णचतुष्टय सकेसर पीत वर्ण मूलाधार का चिन्तन करे। उसमें सोम-सूर्याग्निमय अकथादि त्रिरेखात्मक त्रिकोण की भावना करे। उसमें करोड़ सूर्य के समान प्रकाशित, करोड़ चन्द्रमा के समान सुशीतल, अडहुल-फूल के रंग के समान ज्योतिर्लिंग का ध्यान करे। उसके ऊपर कोटि विद्युत् प्रभा से दीप्त बिसतन्तुतनीयसी प्रसुप्त सर्पिणी के समान साढे तीन वलय में सर्वान्तर्या मी रूप में स्थित परब्रह्माविनाभूता कुण्डलिनी शक्ति की भावना करे। गुरु द्वारा उपदिष्ट विधि से गुदा को आंकुचित करके हुंकार से उस कुण्डलिनी को उठाकर सुषुम्ना मार्ग से मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा इस षट्चक्र भेदनपूर्वक ब्रह्मरन्ध्र में ले जाये। वहाँ पर स्थित अमृतसागर में परमात्मा से मिलाकर शिव-शक्त्यात्मक उस तेज को प्रवहमान नासामार्ग से निकालकर करस्थ पुष्पाञ्जलि में जोड़कर मूलमन्त्र के साथ 'श्रीशिव इहागच्छ इहागच्छ' कहकर चक्रमध्य-स्थित

मूर्ति के शिर पर पुष्पाञ्जलि को छोड़ दे। उस तेज को आवाहनी मुद्रा से आवाहित करके उसे ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट चिन्तन करके श्री शिवादि रूप में परिगत ध्यानोक्त रूप में ध्यान करे। मूलमन्त्र के साथ 'श्रीशिव इह तिष्ठ इह तिष्ठ' कहकर स्थापनी मुद्रा दिखाकर 'देवेश भक्तसुलभ सर्वाभरणसंयुत। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावदत्र स्थिरो भव' श्लोक पढ़कर प्रार्थना करे। पुन: मूलमन्त्र के साथ 'श्री शिव इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि' कहकर सन्निधापन मुद्रा से सन्निधापित करे। मूलमन्त्र श्री शिव इह सन्निरुद्धो भव इह सन्निसद्धो भव कहकर सन्निरुद्ध करे। मूल श्री शिव इह सम्मुखो भव इह सम्मुखो भाव कहकर सम्मुखीकरण करे। इस प्रकार उन-उन मुद्राओं को दिखावे। पुन: मूल श्री शिव इहावगुण्ठितो भव अवगुण्ठितो भव कहकर अवगुण्ठन करे। तदनन्तर देवता के हृदयादि षडङ्ग न्यासस्थानों में षडङ्ग मन्त्रों का न्यास करे। मूल मन्त्र श्री शिव सकलीकृतो भव सकलीकृतो भव से सकलीकरण करे। धेनुमुद्रा बनाकर देव के मूर्धा पर अमृतधार वर्षाते हुए मूल श्रीशिव अमृतीकृतो भव अमृतीकृतो भव कहकर अमृतीकरण करे। महामुद्रा बाँधकर मूल श्रीशिव परमीकृतो भव परमीकृतो भव कहकर देवता के शिर पर अमृतवृष्टि का ध्यान करे। मूल मन्त्र ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु सौ: ह्सौ—इस दीपिनी मन्त्र के साथ अ से क्ष तक की मातृका कहकर अर्घ्योदक से देवता की शिर को तीन बार प्रोक्षित करे। देव के हृदय को स्पर्श करके पूर्वोक्त प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र में 'मम' के स्थान पर 'श्रीशिवस्य' पद जोड़कर प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का जप करे। देव की प्राण-प्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र कहकर श्रीशिवाय नम: से तीन पुष्पाञ्जलि छोड़े। लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, अक्षमाला, वर, अभय, मृग, खट्वांग, कपाल, डमरु नामक दश मुद्रा को क्लीं बीज से बनाकर मूलमन्त्र से दिखावे एवं 'ह्वं' से त्याग करे। इस प्रकार दश मुद्रा दिखावे। मूलमन्त्र श्री शिव एतत्ते आसनं नम: से यथासम्भव वार्क्ष, चार्म, वास्त्र, पौष्प अथवा तैजस आसन देवता के वाम भाग में रखकर हं हं हं इदमिदं गृहाण स्वाहा से निवेदित करके मूल मन्त्र से पद्म मुद्रा दिखावे। पुन: मूल श्रीशिवाय नम: से पुष्पाञ्जलि देकर पुन: मूल श्रीशिव कुशलं स्वागतं कहकर कुशल-स्वागत सम्बन्धी प्रश्न करे। कुशल स्वागत प्रश्न मुद्रा दिखावे। पुन: मूल श्री शिव एष ते अर्घ्य: स्वाहा कहकर पूर्वस्थापित अर्घ्य पात्र से गन्धाक्षत पुष्प यव कुशाग्र तिल सरसों दुर्वायुक्त जल दूसरे पात्र में लेकर देवता के शिर पर डाले। ॐ हं हं हं इदमिदमदं गृहाण स्वाहा से निवेदित करके अर्घ्यमुद्रा दिखावे। मूल श्री शिवाय नम: से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। पुन: मूल श्रीशिव एतत्ते पाद्यं नम: से पाद्य दे। पाद्य पात्र से श्यामाक दूर्वा कमल विष्णुकान्तायुक्त जल दूसरे पात्र में लेकर देवता के पैरों में देकर ॐ हं हं हं मन्त्र से पूर्ववत् निवेदित करके मुद्रा दिखावे। मूल से पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।

तत आचमनीयपात्राज्जातीफललवङ्गकक्कोलचूर्णयुतजलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते आचमनीयं सुधा' इति देवस्य मुखकमले दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्याचमनीयमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मधुपर्कपात्रमुद्धृत्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एष ते मधुपर्क: सुधा' इति देवस्य मुखकमले दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्य मधुपर्कमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनराचमनीयपात्रात्पात्रान्तरेण जलमुद्धृत्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते पुनराचमनीयं सुधा' इति पुनराचमनीयं दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्याचमनीयमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, रत्नपादुके उपनीय 'पादुकायुगमारुह्य भगवन् रत्ननिर्मितम्। स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थं शक्रदिग्गतम्।' इति प्रार्थ्य, पूर्वस्यां दिशि विरचितं स्नानमण्डपं नीत्वा प्राग्वदासनं दत्त्वार्घ्यपाद्याचमनीयानि प्राग्वन्निवेद्य, सुगन्धतैलादिकमुपनीय 'श्रीशिव एतत्ते सुगन्धतैलाभ्यङ्गसुगन्धा-मलकाद्युद्वर्तनादिकं नम:' इति सुगन्धामलकाद्युद्वर्तनादिकं च निधाय महाराजोपचारवन्नानाविधैर्जलैरभिषिच्य गङ्गादितीर्थादाहृतजलपूर्णकनककलशहस्ताभिर्देवकन्याभिरभिषिक्तं मत्वा, प्राग्वन्निवेद्य स्नानमुद्रां प्रदर्श्य मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्राग्वदाचमनीयं दत्त्वा, जलापकर्षणार्थं वस्त्रं दत्त्वाङ्गप्रोञ्छनं परिकल्प्य श्वेतदुकूलयुगलमानीय वमिति वरुणबीजेनाभिमन्त्र्य, जलेनास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य 'बृहस्पतिदैवताभ्यां वासोभ्यां नम:' इति संपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एते ते वाससी नम:' इति वाससी परिधाप्य पूर्ववन्निवेद्य वस्त्रमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पूर्ववदाचमनीयं दत्त्वा स्वर्णादिनिर्मितं यज्ञोपवीतमानीय, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते यज्ञोपवीतं नम:' इति यज्ञोपवीतं दत्त्वा प्राग्व-न्निवेद्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा यज्ञोपवीतमुद्रां प्रदर्श्य प्राग्वदाचमनीयं निवेद्य रत्नपादुके उपनीय,

ॐ पादुकायुगमारुह्य भगवन् रत्ननिर्मितम्। आगच्छ निर्मितं याम्यमलङ्कारस्य मण्डपम्॥

इति दक्षिणदिशि तमलङ्कारमण्डपं नीत्वा तत्र सिंहासने उपवेश्य नानाविधालङ्करणानि समुपनीय, प्राग्वत्प्रोक्ष्य 'नानादैवतेभ्यो मुकुटाभरणेभ्यो नमः' इति संपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते मुकुटं नमः, एतत्ते कुण्डलं नमः' इति नानाभरणानि तत्तन्नाम्ना समर्प्य निवेद्याभरणमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पादुके उपानीय,

पादुके परिधायेमे पञ्चवाद्यपुरःसरम्। यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह॥

इति प्रार्थ्य प्रधानमण्डपं नीत्वा तत्र प्राक्कल्पितयोगपीठे देवं समुपवेश्य छत्रचामरादिनानाविधोपकरणहस्तं परिवारदेवतागणं सूर्यात् किरणसमूहमिव देवशरीराद्विनिर्गत्य स्वे स्वे स्थाने समुपविष्टं विशेषानुक्तौ प्रधानदेवता-सदृशाकाराभरणायुधादिशोभितं स्थिरीभूतं परितश्चक्रमध्ये ध्यात्वा, चन्दनागुरुकर्पूरादिनानागन्धमानीय प्राग्वत्प्रोक्ष्य 'गन्धर्वदैवत्याय गन्धाय नमः' इति संपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एष ते गन्धो नमः' इति देवाय गन्धं समर्प्य,

शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च। मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम्॥

इति प्रपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिवेमानि ते पुष्पाणि वौषट्' इति नानाविधानि सुगन्धशुभ्रपुष्पाणि समर्प्य प्राग्वन्निवेद्य पुष्पमुद्रां प्रदर्श्य देवं संपूज्य देवहृदयादिषु षडङ्गन्यासस्थानेषु षडङ्गत्वेन संपूज्य, 'श्रीशिव परिवारदेवता-पूजनार्थमनुज्ञां देहि' इति देवं प्रार्थ्य तत्तत्कल्पोक्तावरणदेवताः पूजयेदिति।

आचमनीय पात्र से जातिफल लवङ्ग कङ्कोल चूर्णयुक्त जल दूसरे पात्र में लेकर मूल श्रीशिव एतत्ते आचमनीयं सुधा कहकर मुखकमल में अर्पित कर पूर्ववत् निवेदित कर आचमनीय मुद्रा दिखावे। पुष्पाञ्जलि दे। मधुपर्क पात्र लेकर मूल श्री शिव एष ते मधुपर्कः सुधा कहकर मुख में देकर पूर्ववत् निवेदन करके मधुपर्क मुद्रा दिखाकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। पुनः आचमनीय पात्र से दूसरे पात्र में जल लेकर मूल श्री शिव एतत्ते पुनराचमनीयं सुधा कहकर पुनराचमनीय देकर पूर्ववत् निवेदन करके आचमनीय मुद्रा दिखाकर पुष्पाञ्जलि देवे। रत्नपादुका लेकर कहे—

पादुकायुगमारुह्य भगवन् रत्ननिर्मितम्। स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थं शक्रदिग्गतम्।।

इस प्रकार प्रार्थना करके पूर्व दिशा में विरचित स्नानमण्डप में ले आये। पूर्ववत् आसन देकर अर्घ्य पाद्य आचमनीय निवेदित करे। सुगन्धित तेल लेकर श्रीशिव एतत्ते सुगन्धतैलाभ्यङ्गसुगन्धामलकाद्युद्वर्तनादिकं नमः कहकर सुगन्धामलक उद्वर्तनादि महाराजोपचारवत् नाना प्रकार के जल से अभिषेक करे। गङ्गादि तीर्थ से लाये जल से स्वर्ण कलश द्वारा देवकन्याएँ अभिषेक कर रही हैं—ऐसी भावना करे। निवेदन करके स्नानमुद्रा दिखावे। मूल से पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। पूर्ववत् आचमनीय देकर जल पोंछने के लिये वस्त्र देकर अंगप्रोक्षण की कल्पना करे। दो श्वेत चादर लेकर उसे 'वं' वरुणबीज से मन्त्रित करे। अस्त्रमन्त्र से जल के छींटे मारकर 'बृहस्पतिदैवताभ्यां वासोभ्यां नमः' से पूजकर मूल श्रीशिव एते ते वाससी नमः से वस्त्र रखकर पूर्ववत् निवेदित करके वस्त्र मुद्रा दिखाकर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। पूर्ववत् आचनीय देवे। स्वर्णादि निर्मित जनेऊ लेकर मूल मन्त्र श्रीशिव एतत्ते यज्ञोपवीतं नमः कहकर यज्ञोपवीत देकर पूर्ववत् निवेदित कर पुष्पाञ्जलि देकर यज्ञोपवीत मुद्रा दिखाकर पूर्ववत् आचमनीय निवेदित करे। रत्नपादुका लेकर 'ॐ पादुकायुगमारुह्य भगवन् रत्ननिर्मितम्। आगच्छ निर्मितं याम्यमलङ्कारस्य मण्डपम्' कहकर उसे निवेदित करके अलङ्कारमण्डप में उन्हें लाकर सिंहासन पर बैठाकर नानाविध अलंकारों को उनके समीप रखकर पूर्ववत् प्रोक्षण करके 'नानादैवतेभ्यो मुकुटाभरणेभ्यो नमः' से पूजा करके मूल श्रीशिव एतत्ते मुकुटं नमः, एतत्ते कुंडलं नमः आदि कहकर नाना आभरणों को उनके नामों से समर्पित करे। निवेदन करके आभरण मुद्रा दिखाकर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तदनन्तर पादुका लेकर 'पादुके परिधायेमे पञ्चवाद्यपुरःसरम्। यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह' कहकर प्रार्थना करके प्रधान मण्डप में ले आये। वहाँ पूर्वकल्पित योगपीठ पर देव को बैठाये। छत्र-चामरादि नाना प्रकार के उपकरणों को हाथों में लेकर परिवार देवतागण को सूर्य से किरणसमूह के समान देवशरीर से निकल कर अपने-अपने स्थान में बैठ गये, उनके आकार प्रधान देवता के समान हैं, वैसे ही आभरण एवं आयुध हैं, वे देवता के सभी ओर बैठे हैं—इस प्रकार की भावना करते हुये

उनके मध्य मे स्थित देव का ध्यान करे। चन्दन अगर कपूरादि नाना गन्ध लाकर पूर्ववत् प्रोक्षण करके 'गन्धर्वदैवत्याय गन्धाय नमः' से पूजा करे। मूल मन्त्र श्री शिव एष ते गन्धो नमः कहकर गन्ध समर्पित करे। 'शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च। मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम्' से पूजा करे। 'मूलमन्त्र श्री शिवेमानि ते पुष्पाणि वौषट्' से नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्प चढ़ाकर पूर्ववत् निवेदित करके पुष्पमुद्रा दिखाकर पूजा करे। देव के हृदयादि में षडङ्ग न्यासस्थानों में लयाङ्ग रूप में पूजा करे। 'श्रीशिव परिवारदेवतापूजनार्थमनुज्ञां देहि' से देवता की प्रार्थना करके तत्कल्पोक्त आवरण देवताओं की पूजा करे।

इत्थमङ्गावरणदेवताः संपूज्य तद्बाह्ये देवाग्राद्यष्टसु दिक्षु क्रमेण—लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्र-हस्ताय ऐरावतवाहनाय नमः। रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः। टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः। क्षं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः। वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः। यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः। सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः। हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषभवाहनाय नमः। इति संपूज्य इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः, इति पूजयेत्। एवं विस्ताराशक्तौ लं इन्द्राय नमः। रं अग्नये नमः। टं यमाय नमः। क्षं निर्ऋतये नमः। वं वरुणाय नमः। यं वायवे नमः। सं कुबेराय नमः। हं ईशानाय नमः। आं ब्रह्मणे नमः। ह्रीं अनन्ताय नमः, इति प्राग्वत्संपूज्य इन्द्रादीनां समीपे वं वज्राय नमः। एवं, शं शक्त्यै नमः। दं दण्डाय नमः। खं खड्गाय नमः। पां पाशाय नमः। क्रों अङ्कुशाय नमः। गं गदायै नमः। शं त्रिशूलाय नमः। पं पद्माय नमः। चं चक्राय नमः, इति लोकपालानायुधानि च पूजयेत्। अत्र सर्वत्रावरणपूजायां प्रथमावरणपूजान्ते मूलमन्त्रेण देवं संपूज्य संबोध्य मूलमन्त्रमुच्चार्य

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

इति देवस्य चरणयोरर्घ्योदकं पुष्पादिकं दद्यात्। एवं द्वितीयावरणादिष्वप्यूहनीयम्।

ततो मूलमुच्चार्य 'साङ्गाय सावरणाय शिवाय नमः' इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना संपूज्यास्त्रमन्त्रेण धूपभाजनं संप्रोक्ष्य हृदयमन्त्रेण धूपभाजनं गन्धादिभिरभ्यर्च्य, तत्र साराङ्गारान्निधाय वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य 'क्लीं सुरभितेजसे स्वाहा' इति मन्त्रेण गुग्गुलादिधूपं निक्षिप्य 'गन्धर्वदैवताय धूपाय नमः' इति धूपं संपूज्य, मूलमुच्चार्य

वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति धूपमुत्सृज्य, स्ववामभागे घण्टां निधायास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य तेनैव मन्त्रेण 'घण्टायै नमः' इति त्रिरभ्यर्च्य 'ॐ गजध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा' इति घण्टामन्त्रेण तां त्रिभिरभिमन्त्र्य वामकरेण तां घण्टां वादयन् 'ॐ हंहंहं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा' इति मन्त्रेण नीचैर्धूपं निवेद्य, धूपभाजनं देवस्य वामभागे निवेश्य धूपमुद्रां प्रदर्श्य देवं संपूज्य, दीपग्राहिण्यां गोघृतं तिलस्नेहं वा निक्षिप्य तत्र कर्पूरगर्भिणीं वर्तिं निधाय ह्रीमिति प्रज्वाल्य 'विष्णुदैवत्याय घृतप्रदीपाय नमः' 'वनस्पतिदैवत्याय तिलदीपाय नमः' इति तैलदीपश्चेत्संपूज्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, मूलमुच्चार्य,

सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इत्युच्चार्य 'श्रीशिव एष ते दीपो नमः' इति दीपमुत्सृज्य प्राग्वत् घण्टां वादयन् देवस्य पादादिमूर्धान्तं दीपमुच्चैः प्रदर्श्य, घार्तश्चेद्दक्षभागे तैलदीपश्चेद्देवस्य वामभागे दीपं निवेश्य दीपमुद्रां प्रदर्श्य, देवं संपूज्य प्राग्वद्देवस्य पाद्याचमनीये दत्त्वा स्वर्णादिपात्रे भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यपेयात्मकं पञ्चविधमन्नं कट्वम्ललवणतिक्तकषायमधुरात्मक-षड्रसोपेतनानाविधव्यञ्जनसमेतं नैवेद्यमानीय 'विष्णुदैवत्याय नैवेद्याय नमः' इति संपूज्य देवस्य पुरतः चतुरस्रमण्डले

साधारं तत्पात्रं निधाय, मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्षणीजलेन प्रोक्ष्य तेनैव मन्त्रेण कुशैस्त्रिः संताड्य कवचमन्त्रेणाभ्युक्ष्याधोमुखदक्षिणहस्तोपरि तादृशं वामहस्तं निधाय यमिति वायुबीजेनाष्टवारमभिमन्त्र्य नैवेद्यगतस्पर्शादिदोषान् शोषयित्वा, पुनर्वामहस्तोपरि दक्षिणकरं प्राग्वन्निधायाधोमुखवामहस्तेनाच्छादयन् रमिति वह्निबीजमष्टवारं जपन् तद्गतदोषान् दग्ध्वा, धेनुमुद्रां प्रदर्शयन् वमित्यमृतबीजमष्टधा जपन्नैवेद्यममृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण नैवेद्यस्योपरि चक्रमुद्रां दर्शयन् तत्संरक्ष्य मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य दक्षिणहस्तेन जलं गृहीत्वा

हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्। पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वर ॥

इति नैवेद्यस्योपरि चुलुकोदकं निक्षिप्य मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते नैवेद्यं नमः' इत्युत्सृज्य, कराभ्यां तत्पात्रं स्पृशन् पूर्वोक्तमन्त्रेण निवेद्य पात्रान्तरे धेनुमुद्रयामृतीकृत्य देवस्य दक्षिणहस्ते तज्जलं किञ्चिद्दत्त्वा 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' इति देवमाचामयित्वा वामकरेण विकचोत्पलसन्निभां ग्रासमुद्रां दर्शयन् दक्षिणकरस्थकनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठयोगेन 'ॐ प्राणाय स्वाहा' एवं पुनस्तर्जनीमध्यमानामिकाङ्गुष्ठयोगेन 'ॐ उदानाय स्वाहा।' एवं प्रागुक्तपञ्चमुद्राभिः पञ्च ग्रासान् ग्राहयित्वा स्वर्णादिपात्रे जलं धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य,

नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् ॥
परमानन्दसंपूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्।

इति देवस्य वामभागे जलपात्रं निवेश्य निवेद्य, पुष्पाञ्जलिं दत्त्वास्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धनं कुर्वन् देवं परितो जवनिकां विभाव्य 'अवात्मकं नैवेद्यं नमः' इत्यङ्गुष्ठानामिकायोगरूपां करद्वयेन नैवेद्यमुद्रां प्रदर्श्य देवं भुञ्जानं ध्यायेत्। यथा—

ब्रह्मेन्द्राद्यैः सरसमभितः सूपविष्टैः समेतो देव्या शिञ्जद्वलयकरया सादरं वीज्यमानः ।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरो हासयन् पङ्क्तिभोज्यान् भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसान् देवदेवः ॥

इति ध्यायन् मूलमन्त्रं दशधा जपित्वा जपं समर्प्य नित्यहोमं कुर्यात्। अत्र नित्यहोमविधानं तु प्रागेव दर्शितम्।

इस प्रकार अंगावरण देवताओं को पूजकर उसके बाहर देव के अग्रभाग से प्रारम्भ करके आगे दिशाओं में क्रम से इनका पूजन करे—लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्रहस्ताय ऐरावतवाहनाय नमः, रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः, टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः, क्षं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः। वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः। यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः, सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः, हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषभवाहनाय नमः। इस प्रकार पूजन कर पूर्व और इशान कोण के मध्य में आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः कहकर पूजन करे। इस प्रकार विस्तार से पूजा करने में समर्थ न होने पर लं इन्द्राय नमः। रं अग्नये नमः। टं यमाय नमः। क्षं निर्ऋतये नमः। वं वरुणाय नमः। यं वायवे नमः। सं कुबेराय नमः। हं ईशानाय नमः। आं ब्रह्मणे नमः। ह्रीं अनन्ताय नमः, इति प्राग्वत्संपूज्य इन्द्रादीनां समीपे वं वज्राय नमः। एवं, शं शक्त्यै नमः। दं दण्डाय नमः। खं खड्गाय नमः। पां पाशाय नमः। क्रों अङ्कुशाय नमः। गं गदायै नमः। शं त्रिशूलाय नमः। पं पद्माय नमः। चं चक्राय नमः से पूजन करे। यहाँ पर सर्वत्र आवरण पूजा में प्रथमावरण पूजा के अन्त में मूल मन्त्र से देवता का पूजन करके देवता को सम्बोधित कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्' कहकर देव के चरण में अर्घ्योदक पुष्पादि अर्पित करे। इसी प्रकार द्वितीय आदि आवरण में भी करना चाहिये।

तदनन्तर मूल का उच्चारण कर 'मूल सांगाय सावरणाय शिवाय नमः' कहकर तीन पुष्पाञ्जलि देकर पूजा करे। अस्त्र

मन्त्र से धूप पात्र को पोंछकर हृदय मन्त्र से उसका गन्धादि से अर्चन करे। उसमें अंगार रखकर रखे। वं धेनु मुद्रा से उसका अमृतीकरण करे। 'क्लीं सुरभितेजसे स्वाहा' से गुग्गुलादि धूप उसमें डाले। 'गन्धर्वदैवताय धूपाय नम:' से पूजा करे। मूल के साथ 'वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो धूप उत्तम:। आघ्रेय: सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' कहकर धूप दिखावे।

अपने वाम भाग में घण्टा रखकर अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण करके अस्त्रमन्त्र से ही तीन बार उसका अर्चन कर 'ॐ गजध्वनि मन्त्रमात: स्वाहा' से तीन बार मन्त्रित करे। बाँयें हाथ से उस घण्टे को बजाते हुए 'ॐ हं हं हं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा' कहकर नीचे धूप निवेदन करे। धूपपात्र को देव के वाम भाग में रखकर धूपमुद्रा दिखावे। दीपक में गोघृत या तिल तेल डालकर कर्पूरगर्भिणी बत्ती रखे। 'ह्रीं से उसे प्रज्वलित करे। 'विष्णुदैवत्याय घृतप्रदीपाय नम:' या 'वनस्पतिदैवत्याय तिलदीपाय नम:' से घृतदीय या तैल दीप की पूजा करे। 'वं' धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। मूल के साथ 'सुप्रकाशो महादीप: सर्वत्र तिमिरापह:। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।' से श्री शिव एष ते दीपो नम: कहकर दीप को पूर्ववत् घण्टा बजाते हुए देव के पैर से मूर्धा तक ऊँचा करके दिखावे। घी के दीपक को देवता के दक्ष भाग में रखे और तैल दीप हो तो देवता के वाम भाग में रखकर दीपमुद्रा दिखावे। देवता की पूजा करके पूर्ववत् पाद्य आचनीय प्रदान करे। स्वर्णादि पात्र में भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य पेयात्मक पाँच प्रकार के अन्न एवं कटु अम्ल लवण तिक्त कषाय मधुरात्मक छ: रसोपेत नाना प्रकार के व्यञ्जन समेत नैवेद्य लेकर 'विष्णुदैवत्याय नैवेद्याय नम:' से पूजा करके देव के आगे चतुरस्र मण्डल में आधार पर पात्र रखकर मूल मन्त्र से वीक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षणी जल से प्रोक्षण करे। उसी मन्त्र से कुश से तीन बार ताड़ित करे। कवच मन्त्र से अभ्युक्षित करे। अधोमुख दाँयें हाथ पर अधोमुख बाँयाँ हाथ रखकर 'यं' इस वायु बीज के आठ जप से उसे मन्त्रित करके नैवेद्य के स्पर्शादि दोषों का शोधन करे। पुन: बाँयें हाथ पर दाँयाँ हाथ पूर्ववत् रखकर अधोमुख हाथों से उसे आच्छादित करे। रं वह्निबीज के आठ जप से तद्गत दोषों को दग्ध करे। धेनुमुद्रा दिखाकर वं अमृत बीज के आठ जप से नैवेद्य को अमृत बनावे। अस्त्र मन्त्र से नैवेद्य पर चक्रमुद्रा दिखावे। मूल मन्त्र के आठ जप से उसे मन्त्रित करे। दाँयें हाथ से जल लेकर हेमपात्रगतं दिव्यं परमात्रं सुसंस्कृतम्। पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वर' कहकर नैवेद्य पर चुल्लू भर जल छोड़े। मूल मन्त्र श्री शिव एतत्ते नैवेद्यं नम: से उसे देवता को समर्पित करे। हाथ से उस पात्र का स्पर्श किए हुए पूर्वोक्त मन्त्र से निवेदित करे। दूसरे पात्र को धेनुमुद्रा से अमृत बनाकर उसमें जल डालकर अमृत बनाकर उसमें से थोड़ा जल देवता के दाँयें हाथ में देकर 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' कहकर देवता को आचमन करावे। बाँयें हाथ मुद्रित कमल के समान ग्रासमुद्रा दिखावे। दाँयें हाथ की कनिष्ठा अनामिका अंगूठे को मिलाकर ॐ प्राणाय स्वाहा, तर्जनी-मध्यमा-अनामा-अंगुष्ठ के योग से अपनाय स्वाहा—इस प्रकार पूर्वोक्त पाँच ग्रासमुद्रा से पाँच ग्रास ग्रहण करावे। तब सोने के पात्र से जल लेकर धेनुमुद्रा से उसे अमृत बनाकर 'नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्। परमानन्दसंपूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्' कहकर वाम भाग में जलपात्र रखकर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। अस्त्र मन्त्र से दिग्बन्ध करे। देव के चारो ओर परदे की भावना करके 'अवात्मकं नैवेद्यं नम:' कहकर दोनों हाथों की अनामिका-अंगूठा के योग से नैवेद्य मुद्रा दिखावे और भावना करे कि देव भोजन कर रहे हैं। साथ ही इस प्रकार ध्यान करे—

ब्रह्मेन्द्राद्यै: सरसमभित: सूपविष्टै: समेतो देव्या शिञ्जद्वलयकरया सादरं वीज्यमान:।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरो हासयन् पङ्क्तिभोज्यान् भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसान् देवदेव:।।

इस प्रकार के ध्यान के बाद मूल मन्त्र का दश जप करे। जप समर्पण करके नित्य होम करे।

अत्रैवं विस्ताराशक्तौ 'अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमे न विद्यते' इति वशिष्ठसंहितावचनात् लौकिकाग्नावेव देवदेवं ध्यात्वा संपूज्य मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुती: षडङ्गमन्त्रैश्च षडाहुतीरावरणदेवतानामेकैकामाहुतिं च जुहुयात्। आवरणहोमाशक्तौ मूलमन्त्रेण षडङ्गमन्त्रैश्चोक्तसंख्यया जुहुयादिति नित्यहोमं विधाय, पूजास्थानं गत्वा स्वासन उपविश्य मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा पूजाचक्रस्येशानकोणे चतुरस्रवृत्तत्रिकोणमण्डलं कृत्वा साधारं सव्यञ्जनान्नोदकपूरितं ताम्रपात्रं निधाय 'सर्वभूतानीहागच्छत इह तिष्ठत' इत्यावाह्य 'सर्वभूतेभ्यो नम:' इति पुष्पादिभि: संपूज्य,

ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः। योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये॥
भूचराः खेचराश्चैव तथा वै चान्तरिक्षगाः। सर्वे ते प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम्॥

इति वामकराङ्गुलिभिरर्घ्यपात्रात्पात्रान्तरेणोद्धृत्य जलधारां बलिपात्रे निक्षिपन् बलिमुत्सृज्य पुष्पाञ्जलिमादाय

भूतानि यानीह वसन्ति भूतले बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
सन्तोषमासाद्य व्रजन्तु सर्वे क्षमन्तु तान्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणम्य 'यथासुखं विहरन्तु भूतानि' इति नाराचमुद्रया विसृज्यास्त्रमन्त्रेण शुद्धजलैः स्वात्मानं प्रोक्ष्य देवं तृप्तं ध्यात्वा, पात्रान्तरे वमिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' इति देवायोत्तरापोशानं दत्त्वा नैवेद्यं गतसारमुद्धृत्य नैर्ऋत्यां नैवेद्यपात्रं निधाय गोमयाद्भिरस्त्रमन्त्रेण तत्स्थानं शोधयित्वा तस्मात् किञ्चिच्छेषमादाय 'निर्माल्यभोजिने नमः' इत्यैशान्यां निक्षिप्य हस्तं प्रक्षाल्य, देवाय करशोधनार्थं सुगन्धिचूर्णादिकं करक्षालनाय च दत्त्वा करं क्षालयित्वा, हस्तशोधनार्थं कर्पूरशलाकादि दत्त्वा पुनर्गण्डूषजलं दत्त्वा पादौ प्रक्षाल्य प्राग्वदाचमनीयं दत्त्वा सूक्ष्मवस्त्रेण हस्तौ पादौ प्रोञ्छ्य सुगन्धिचूर्णादिभिः करौ सुरभितौ कृत्वा ताम्बुलमादाय, मूलमुच्चार्य

तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम्। संशोभितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

'श्रीशिव एतत्ते ताम्बूलं नमः' इति ताम्बूलं समर्प्य प्रागुक्तनिवेदनमन्त्रेण निवेद्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय नमः' इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना संपूज्य, पुनर्मूलमुच्चार्य 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय एष गन्धो नमः' एवं गन्ध-पुष्पधूपदीपैराराधयेत्, इति प्रसन्नपूजां कृत्वा मुकुटं परिधाप्यादर्शं दर्शयित्वा छत्रचामरव्यजनादिनानाविधराजोपचारान् परिकल्प्य, दूर्वाक्षतजलान्यादाय मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतत्ते नीराजनं नमः' इति देवस्य मुकुटोपरि दूर्वादिकं निक्षिपेत्। ततः कांस्यादिबृहत्स्थाल्यां चन्दनादिनाष्टदलकमलं कृत्वा तत्र मध्येऽष्टसु दलेषु च पिष्टमयान् नव घृत-पूर्णान् कर्पूरगर्भवर्तिसहितान् निःक्षिप्य ह्रीमिति प्रज्वाल्य, क्वचिच्चतुरस्रमण्डले निधाय वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण चक्रमुद्रया संरक्ष्य 'श्रींह्रींग्लूंस्लूंप्लूंम्लूंन्लूंह्रींश्रीं' इति रत्नेश्वरीविद्यया मूलमन्त्रेण च पृथक्पृथगभ्यर्च्य तत्पात्रं कराभ्यामादाय मूलमुच्चरन् देवस्य चरणान्मूर्धान्तं मूर्धादिचरणान्तं पुनःपुनर्भ्रामयन् नवकृत्वो नीराजयेत्। इति नीराजनविधिः।

विस्तार से हवन में अशक्त होने पर नित्य होम में अग्न्याधानादि कर्म नहीं होते—इस वशिष्ठसंहिता के वचन के अनुसार लौकिक अग्नि में ही देवदेव का ध्यान करके पूजन करना चाहिये। मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति डाले एवं षडङ्ग मन्त्र से छः आहुति डाले। साथ ही आवरण देवताओं को भी एक-एक आहुति प्रदान करे। आवरण होम में अशक्त होने पर मूल मन्त्र और षडङ्ग मन्त्र से उक्त संख्या में हवन करे। नित्य होम करके पूजा स्थान में जाकर अपने आसन पर बैठकर मूल मन्त्र से तीन-तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करके मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। पूजा चक्र से ईशान कोण में चतुरस्र वृत त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें आधार रखकर उस पर ताम्र पात्र में अन्न-व्यञ्जन-जल रखे। 'सर्वभूतानीहागच्छत इह तिष्ठत' कहकर आवाहन करे। 'सर्वभूतेभ्यो नमः' से पुष्पादि से पूजा करके—

ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः। योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये।।
भूचराः खेचराश्चैव तथा वै चान्तरिक्षगाः। सर्वे ते प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम्।।

इस स्तोत्र का पाठ करके वाम कराङ्गुलि से अर्घ्य जल दूसरे पात्र में लेकर बलिपात्र में जलधारा गिरावे। बलि देकर के पुष्पाञ्जलि लेकर यह मन्त्र पढ़े—

भूतानि यानीह वसन्ति भूतले बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
सन्तोषमासाद्य व्रजन्तु सर्वे क्षमन्तु तान्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः।।

इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। प्रणाम करके 'यथासुखं विहरन्तु भूतानि' यह कहकर नाराच मुद्रा दिखाकर विसर्जन करे। अस्त्र मन्त्र से शुद्ध जल से अपना प्रोक्षण करके ध्यान करे कि देवता तृप्त हो गये। दूसरे पात्र में जल लेकर उसे वं धेनुमुद्रा से अमृत बनाकर 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' कहकर देवता को उत्तरापोशन देवे। नैवेद्यगत सार को लेकर नैर्ऋत्य में नैवेद्य पात्र को रखे। गोबर से या अस्त्र मन्त्र से उस स्थान का शोधन करके उसमें से कुछ लेकर 'निर्माल्यभोजिने नमः' से ईशान में फेंक दे। हाथों को धोकर देवता की करशुद्धि के लिये सुगन्धित चूर्ण देकर हाथों को धो ले। हाथ-शोधन के लिये कर्पूरशलाकादि देवे। पुनः गण्डूष के लिये जल देकर पैर धोकर पूर्ववत् आचमनीय प्रदान करे। सूक्ष्म वस्त्र से हाथ-पैर का प्रोक्षण करे। सुगन्धित चूर्णादि से हाथ को सुरभित करे। ताम्बूल लेकर मूल मन्त्र के साथ—

तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम्। संशोभितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।

कहकर 'श्रीशिव एतत्ते ताम्बूलं नमः' कहते हुये ताम्बूल देकर पूर्वोक्त निवेदन मन्त्र से निवेदित करे। पुनः मूल मन्त्र 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय नमः' से तीन पुष्पाञ्जलि से पूजन करे। पुनः मूल 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय एष गन्धो नमः' से गन्ध पुष्प धूप दीप से पूजा करे। इसके बाद मुकुट पहनाकर दर्पण दिखावे। छत्र चामर व्यजन आदि नानाविध राजोपचारों को कल्पित करे। दूब अक्षत जल लेकर मूलमन्त्र 'श्रीशिव एतत्ते नीराजन नमः' से देव के मुकुट पर दूर्वादि का निक्षेप करे। तब कांस्यादि के बड़े थाल में चन्दनादि से अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में और आठो दलों में एक-एक पिष्टमय दीपक बनाकर कुल नव दीपक रखे। दीपकों को घी से भरे। उसमें कर्पूरगर्भित बत्ती रखे। ह्रीं से उसे प्रज्वलित करे। किसी चतुरस्र मण्डल में रखकर वं धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्रमन्त्र से चक्र मुद्रा से संरक्षण करे। 'श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं' इस रत्नेश्वरी विद्या और मूल मन्त्र से पृथक्-पृथक् पूजा करे। तब उस पात्र को हाथों में लेकर मूल मन्त्र बोलकर देव के चरण से मूर्धा तक नव बार घुमाकर नीराजन करे।

ततः प्रणम्य मूलमन्त्रस्य प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं प्राक्प्रोक्तविधिना प्रतिष्ठिताक्षमालां प्रागुक्तविधिना संपूज्य, देवं भावयन् मूलमन्त्रं प्रणवोच्चारपूर्वकमष्टोत्तरसहस्रं तदर्धं त्रिशतमष्टोत्तरशतं वा जपित्वा, ओमिति जपं समाप्य पुनः प्राणायामर्ष्यादिन्यासपूर्वकं जपमालां प्राक्प्रोक्तविधिना स्वशिरसि निधायार्घ्योदकमादाय,

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता।।

इति देवस्य दक्षिणहस्ते गृहीतोदकदानेन जपं समर्प्य, प्राक्प्रोक्तविधानेन जपमालां संपूज्य रहसि निधापयेत्। अत्र जपमालाभावेऽङ्गुलिभिर्वा जपगणना कार्या। इत्थं जपं विधाय घण्टावादनपूर्वकं शिवसहस्रनामशतनामस्तोत्रादिभिर्देवं स्तुत्वा प्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य,

यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम्। निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया।।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर।।
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम। अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर।।
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वचला भक्तिरव्ययास्तु सदा त्वयि।।
देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत्। देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि।।

इति कृताञ्जलिः प्रार्थ्य पुनःपुनः प्रणम्य स्वेष्टार्थप्रार्थनां कृत्वार्घ्यपात्रमुद्धृत्य

साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्वं भगवञ्छम्भो गृहाणाराधनं परम्।।

इति कृतमाराधनमर्घ्योदकदानेन समर्प्य पुनः प्राग्वदर्घ्यं दत्त्वा तत्पात्रं स्वस्थाने निवेश्य पुष्पाञ्जलिमादाय 'इतः पूर्व'मिति मन्त्रेण देवस्य पादयोर्दत्त्वा प्रणम्य पुष्पाञ्जलिमादाय मूलमुच्चार्य

रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्च देवताः। श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ताः सन्तु सर्वसुखावहाः।।

इति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, द्वारदेवताश्चतुरायतनदेवताश्च देवस्याङ्गे विलीना इति विभाव्य 'श्रीशिव क्षमस्व'

इति तालत्रयं दत्त्वा संहारमुद्रां बद्ध्वा

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्॥

इति पठित्वा निर्माल्यपुष्पेण सह तत्तेजः समुद्धृत्याघ्राय नासाध्वना तत्तेजो ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा सुषुम्नामार्गेण हृदयकमलमानीय

ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि॥

इति स्वहृदि संस्थाप्य, तत्र यथोक्तरूपं देवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः संपूज्य स्वाभेदेन ध्यायन् प्राणायामत्र-यर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधायेशानकोणे चतुरस्रवेष्टितं त्रिकोणमण्डलं कृत्वा, पञ्चायतनी चेदीशानादिकोणचतुष्के प्रादक्षिण्येन—लम्बोदराय नमः। चण्डेश्वर्यै नमः। विष्वक्सेनाय नमः। तेजश्चण्डाय नमः, इति गणेशादिनिर्माल्येन संपूज्य, मध्ये चण्डेश्वराय नमः, इति देवस्य निर्माल्यपुष्पादिकं निक्षिप्य, नैवेद्यशेषं किञ्चिदानीय,

लेह्यचोष्यान्नपानादिताम्बूलं स्रग्विलेपनम्। निर्माल्यभोजिने तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया॥

इति तत्रैव निक्षिप्य स्वकरं प्रक्षालयेत्। अन्यदैवतोपासकैरपि स्वेष्टदेवताङ्गत्वेन पूर्वोक्तस्थापनक्रमेण गणेशादीनां निर्माल्यदेवताः पूज्याः। ततस्ताम्रादिपात्रे गन्धपुष्पान्वितं जलमापूर्य सूर्याभिमुखः स्थित्वा,

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने॥

इति पठित्वा 'ह्रांह्रींसः श्रीसूर्य एष तेऽर्घ्यः स्वाहा' इति सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा, कृताञ्जलिः

यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः॥

इत्यच्छिद्रमवधार्य पूजास्थानं गत्वा पूजावशिष्टं गन्धं किञ्चित् स्ववामकरे निधाय तत्रार्घ्यपात्रोदकं किञ्चित् निक्षिप्यालोड्य मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य तेन जलेन स्वात्मानं प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण निर्माल्यपुष्पं शिरसि निधाय, मूलेनैव चरणोदकं प्राश्य नैवेद्यं शिवभक्तेभ्यो विभज्य दत्त्वा, स्वयमपि भुक्त्वा श्रीशिवरूपः सुखं विहरेत्। इति नित्यपूजाविधिः।

अत्र स्कन्दपुराणे शिवनिर्माल्यधारणं तन्निवेदितभक्षणं च तद्भक्तैः कर्तव्यमित्युक्तत्वादवश्यं कार्यमिति। यत्तु शिवनिर्माल्यधारणनैवेद्यभक्षणादौ निषेधवचनं तदशुचिपरम्। अत्राशुचिरनधिकारी अदीक्षित इति यावत्।

तब प्रणाम करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। पूर्वोक्त विधि से प्रतिष्ठित अक्ष-माला को पूर्ववत् पूजकर देवता की भावना करते हुये मूल मन्त्र का प्रणवोच्चारपूर्वक एक हजार आठ जप करे। अथवा पाँच सौ या तीन सौ जप करे। ॐ से जप समाप्त करे। पुनः प्राणायाम ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करके पूर्वोक्त विधि से जपमाला को अपने शिर पर रखकर अर्घ्यजल लेकर 'ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता' कहकर देव के दाँयें हाथ में गृहीत जल को देकर जप समर्पित करे। पूर्वोक्त विधान से जपमाला को पूजकर एकान्त में रख दे। जपमाला के अभाव में अंगुलि से जपगणना करे। इस प्रकार जप के बाद घण्टा बजाते हुए शिवसहस्रनाम, शतनाम, स्तोत्र आदि से देव की स्तुति करे। प्रदक्षिणा नमस्कार से देव को परितुष्ट करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम्। निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर॥
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम। अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वचला भक्तिरव्ययास्तु सदा त्वयि॥
देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत्। देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि॥

इस प्रकार प्रार्थना करके बार-बार प्रणाम करे। अपने इष्ट कार्य को निवेदित करके अर्घ्यपात्र को लेकर 'साधु वासाधु

वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्वं भगवञ्छम्भो गृहाणाराधनं परम्' को पढ़कर कृत आराधन को जलदान करके समर्पित करे। पुनः पूर्ववत् अर्घ्य देकर उस पात्र को अपने स्थान में रख दे। पुष्पाञ्जलि लेकर 'इतः पूर्वं' मन्त्र से देव के चरणों में समर्पित करे। प्रणाम करके पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र 'रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्च देवताः। श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ताः सन्तु सर्वसुखावहाः' कहकर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। द्वारदेवता और चतुरायतन देवता को देवता के अंग में विलीन होने की भावना करे। 'श्रीशिव क्षमस्व' कहकर तीन ताली बजाकर संहारमुद्रा से 'गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्' पढ़कर निर्माल्य पुष्प के साथ उसके तेज को लेकर सूँघे। नासारन्ध्र से उस तेज को ब्रह्मरन्ध्र में लाकर सुषुम्ना मार्ग से हृदयकमल में ले आये। 'ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि' कहकर उसे अपने हृदय में स्थापित करे। देव का ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे। उनमें और अपने में अभेद की भावना से देव का ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे। तीन प्राणायाम ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करके ईशान कोन में चतुरस्र वेष्टित त्रिकोण मण्डल बनाकर पञ्चायतनी हो तो ईशानादि चारों कोनों में प्रदक्षिणक्रम से इस प्रकार पूजा करे— लम्बोदराय नमः। चण्डेश्वर्यै नमः। विश्वक्सेनाय नमः। तेजश्चण्डाय नमः। इस प्रकार गणेशादि का पूजन निर्माल्य से करके मध्य में 'चण्डेश्वराय नमः' कहकर निर्माल्य पुष्पादि चढ़ावे। नैवेद्यशेष में से कुछ लेकर 'लेह्यचोष्यान्नपानादिताम्बूलं स्रग्विलेपनम्। निर्माल्यभोजिने तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया' कहकर वहीं पर रख दे। तदनन्तर हाथों को धो ले। अन्य देवों के उपासक को भी स्वेष्ट देवता के अंगत्व से पूर्वोक्त स्थापन क्रम में गणेशादि निर्माल्य देवता की पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर ताम्र पात्र में गन्ध-पुष्पादि के साथ जल भरकर सूर्य के सामने खड़े होकर 'ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने' पढ़कर 'ह्रां ह्रीं सः श्रीसूर्य एष ते अर्घ्यः स्वाहा' कहकर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर 'यच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः' कहकर अच्छिद्रावधारण करके पूजा स्थान में जाकर पूजावशिष्ट कुछ गन्ध अपने बाँयें हाथ में लेकर उसमें कुछ अर्घ्य जल मिलाकर मूल मन्त्र से आठ बार मन्त्रित करके उस जल से अपना प्रोक्षण करके मूल मन्त्र से निर्माल्य को अपने शिर पर रखकर मूल मन्त्र से चरणोदक पान करे। नैवेद्य को शिवभक्तों में बाँटकर स्वयं भी ग्रहण करके शिवस्वरूप होकर सुख से विहार करे।

नित्यपूजासंक्षेपप्रकारः

अथैवं विस्तरतो नित्यपूजां कर्तुमशक्तश्चेत् प्रातरुत्थाय श्रीगुरुं स्मृत्वा प्रणम्य शौचादिकं विधायोक्तविधिना स्नात्वा, स्नानेऽपि विस्ताराशक्तौ निर्मलादिस्नानानन्तरं कुम्भमुद्रया स्वशिरसि त्रिरभिषिञ्चेत्। उक्तविधिना त्रिपुण्ड्रं विधाय, तत्रापि विस्ताराशक्तौ मूलमन्त्रेणैवाभिमन्त्रितभस्मना विधायोक्तविधिना संध्यातर्पणसूर्यार्घ्यदानानि कृत्वा, तर्पणेऽपि विस्ताराशक्तौ मूलमन्त्रेणाष्टाविंशतिवारं देवं संतर्प्य, सूर्यार्घ्यदाने विस्ताराशक्तौ केवलसूर्यमन्त्रेणैवार्घ्यं दत्त्वा गृहं गत्वा प्राग्वद्भूतोत्सादनं कृत्वा प्रागुक्तविधिना पश्चिमद्वारमेव संपूज्य, प्राग्वत् प्रविश्यासनं कल्पयित्वा आसनेऽपि विस्ताराशक्तौ 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इत्यासनं संपूज्योपविश्य, प्राग्वद्द्रव्याण्यासाद्य भूतशुद्धिं विधाय, तत्रापि विस्ताराशक्तौ प्राग्वद्धृदये जीवात्मानं ध्यात्वा तथैव ब्रह्मरन्ध्रे संयोज्य प्राग्वत् पापपुरुषं ध्यात्वा तथैव यंबीजेन संशोष्य रंबीजेन संदह्य वंबीजेनाप्लाव्य पुनर्ब्रह्मरन्ध्राज्जीवात्मानं हृदयमानीय प्राग्वत् प्राणप्रतिष्ठां मातृकान्यासांश्च कृत्वा, समस्तमातृकान्यासकरणाशक्तौ केवलमातृकान्यासं श्रीकण्ठादिन्यासं च, तत्राप्यशक्तश्चेत् केवलमातृकान्यासमेव कृत्वा प्राणायामयोगपीठन्यासं मूलमन्त्रन्यासांश्च कृत्वा ध्यानार्घ्यस्थापनादि सर्वं प्राग्वत् समापयेत्।

पाद्यादिपात्रस्थापनाशक्तौ अर्घ्यपात्रं प्रोक्षणीपात्रं च संस्थाप्य प्रोक्षणीजलेनैव पाद्यादीनि कल्पयेत्। इतोऽपि संक्षेपप्रकारः शास्त्राद्गुरुमुखादवगन्तव्यः। इयं संक्षेपपूजा विस्तरतः कर्तुमशक्तानामेव, शक्तौ चेदालस्यादिना विस्तारं त्यक्त्वा संक्षेपेण क्रियते तदा दोषाय भवतीति।

संक्षिप्त नित्य पूजन—विस्तार से नित्य पूजा करने में अशक्त होने पर प्रातः उठकर श्री गुरु को स्मरण कर प्रणाम करके शौचादि की उक्त विधि से स्नान करे। विस्तृत स्नान करने में अशक्त होने पर निर्मल स्नान के बाद कुम्भ मुद्रा से अपने

शिर को तीन बार अभिषिञ्चित करे। उक्त विधि से त्रिपुण्ड्र धारण करे। उसमें भी अशक्त होने पर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म धारण करे। उक्त विधि से सन्ध्या-तर्पण-सूर्यार्घ्यदान करे। विस्तार से तर्पण करने में भी अशक्त होने पर मूल मन्त्र से देव का तर्पण अट्ठाईस बार करे। सूर्यार्घ्य दान विस्तार से करने में अशक्त होने पर केवल सूर्यमन्त्र से अर्घ्यदान करे। घर जाकर पूर्ववत् भूतोत्सादन करके पूर्वोक्त विधि से पश्चिम द्वार का पूजन करके पूर्ववत् पूजा स्थान में प्रवेश करके आसन कल्पित करे। इसे भी विस्तार से करने में अशक्त होने पर 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम:' से आसन को पूजकर उस पर बैठे। पूर्ववत् पूजा द्रव्यों को रखकर भूतशुद्धि करे। इसे भी विस्तार से करने में अशक्त होने पर पूर्ववत् हृदय में जीवात्मा का ध्यान करके उसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में योजित करे। पूर्ववत् पापपुरुष का ध्यान करके उसी प्रकार यं बीज से शोषित करे, रं बीज से दहन करे एवं वं बीज से आप्लावित करे। पुन: ब्रह्मरन्ध्र से जीव को हृदय में लाकर प्राण-प्रतिष्ठा करे, मातृकान्यास करे। समस्त मातृका न्यास करने में अशक्त होने पर केवल मातृका न्यास और श्रीकण्ठादि न्यास करे। उसमें भी अशक्त होने पर केवल मातृका न्यास करके प्राणायामसहित योगपीठ न्यास और मूल मन्त्र न्यास करके ध्यान अर्घ्य स्थापन आदि सबों को पूर्ववत् करे और पूजा समाप्त करे। पाद्यादि पात्र स्थापन न कर सकने पर अर्घ्यपात्र और प्रोक्षणी पात्र स्थापित करे। प्रोक्षणी जल से ही पाद्यादि कल्पित करे। इससे भी संक्षिप्त प्रकार शास्त्र और गुरु से ज्ञातव्य हैं। यह संक्षिप्त पूजन विस्तृत पूजा में असमर्थों के लिये है। करने में सक्षम होने पर भी आलस्य के वशीभूत हो विस्तृत पूजा न करने पर दोष होता है।

देवतामन्त्रयन्त्राणां कालीमते पार्थिवादिस्वरूपज्ञानविधि:

उत्तरतन्त्रे—

स्वरूपं मन्त्रयन्त्राणां देवतानां विशेषत:। अज्ञात्वा भजते मूढो न सिद्धिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥१॥
मन्त्रविद्यार्णनिचयं स्वरव्यञ्जनभेदत:। पृथक्पृथग्विभज्यैवं पार्थिवाद्याश्च षड्विधा: ॥२॥
रश्मयोऽपि समालेख्यास्तेषु पार्थिवसंचयम्। तथैवाप्यं तैजसं च वायव्यं नाभसं क्रमात् ॥३॥
मानसं रश्मिवृन्दं च षोढा संयोज्य संलिखेत्। षड्विधेषु च भूयस्त्वं यस्य तत्तत्स्वरूपकम् ॥४॥ इति।

अस्यार्थ:—मन्त्रे यावन्तो वर्णास्तान् स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्पृथग्विलिख्य प्राक् मन्त्रवीर्यप्रकरणप्रोक्तेषु चतुर्विधेषु रश्मिष्वन्यतमं रश्मिक्रमं गृहीत्वा प्रत्यक्षरस्य षड्विधरश्मीन् पृथक्पृथग्विलिख्य, तत: इयन्त: पार्थिवा:, इयन्त: आप्या:, इयन्तस्तैजसा:, इयन्तो वायव्या:, इयन्तो नाभसा:, इयन्तो मानसा:। एवं षट् वृन्दानि कृत्वा तेषु यस्याधिक्यं दृश्यते तत्स्वरूपं मन्त्रयन्त्रदेवतानां ज्ञातव्यम्। इति कालीमते प्रकाशितं रश्मिवृन्दमेतस्यापि विवेको विविच्याग्रे वक्ष्यते।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि देवता के मन्त्र-यन्त्र का स्वरूप जाने बिना जो मूढ़ भजन करते हैं, उन्हें कभी भी सिद्धि नहीं मिलती। मन्त्र विद्या वर्ण समूह को स्वर-व्यञ्जन भेद से पृथक्-पृथक् विभाजित करने पर पार्थिवादि छ: प्रकार होते हैं। पार्थिव संचय की रश्मियाँ समालेख्य हैं; वैसे ही आप्य, तैजस, वायव्य, नाभस और मानस रश्मिवृन्दों को छ: प्रकार से योजित करके लिखे। इन छ: विधियों में देवी उनके स्वरूप की होती है।

मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उन्हें स्वर-व्यञ्जनभेद से पृथक्-पृथक् करके लिखे। पूर्वोक्त मन्त्र वीर्य प्रकरण में कथित चार विधियों में किसी एक रश्मिक्रम को ग्रहण करके प्रति अक्षर के षड्विध रश्मियों को अलग-अलग लिखे। तब निश्चित करे कि ये पार्थिव, ये जलीय, ये तैजस, ये वायव्य, ये नाभस और ये मानस रश्मियाँ हैं। इस प्रकार छ: वृन्द बनाकर उनमें जिसकी रश्मियाँ अधिक हों, उसी के समान मन्त्र, यन्त्र और देवता जानने चाहिये।

कादिमते तु तज्ज्ञानार्थं षड्विधरश्मिप्रदर्शनम्

कादिमते तु मातृकार्णवे—

ऊर्ध्वाम्नाया इति ख्याता ऊर्ध्ववक्त्राद्विनिर्गता:। पूर्वाम्नायास्तु संप्रोक्ता मन्त्रा: पूर्वमुखोद्भवा: ॥१॥
दक्षिणास्यात् समुद्भूता दक्षिणाम्नायसंज्ञका:। पश्चिमाननसम्भूता: पश्चिमाम्नायसंज्ञका: ॥२॥

उत्तरास्यात्तु सञ्जाता ह्युत्तराम्नायसंज्ञका: । ऊर्ध्ववक्त्राच्च सम्भूता ह्यूर्ध्वाम्नायाभिधा: स्मृता: ॥३॥
पृथिवीजलतेजांसि वायुराकाशमेव च । क्रमेणात्र तु विज्ञेयं धराद्यं भूतपञ्चकम् ॥४॥
मानसा रश्मयो ज्ञेया भूतग्रामे तु सर्वत: । ऊर्ध्वाम्नायक्रमे वच्मि रश्मिवृन्दं तु षड्विधम् ॥५॥
आकाशार्णेषु दशसु पार्थिवाद्याश्च रश्मय: । एकादिदशपर्यन्तं क्रमात्पार्थिवरश्मय: ॥६॥
एकसप्ततितोऽशीतिपर्यन्तं जलरश्मय: । एकादशोत्तरशताद् विंशोत्तरशतावधि ॥७॥
तैजसाश्चैकपञ्चाशदुत्तराच्छतत: क्रमात् । षष्ट्युत्तरशतं यावद्वायव्या: परिकीर्तिता: ॥८॥
नाभसा रश्मय: सैकचत्वारिंशच्छतद्वयात् । पञ्चाशदुत्तरशतद्वयं यावत् प्रकीर्तितम् ॥९॥
प्रत्यक्षरं तु द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशन्मानसांशव: । दशानां वायुवर्णानां वक्ष्ये रश्मिक्रमं शृणु ॥१०॥
रुद्राद्विंशतिपर्यन्तं पार्थिवा रश्मय: स्मृता: । एकषष्टिमितात्सप्तत्यन्तमाप्या: प्रकीर्तिता: ॥११॥
एकोत्तरशताच्चैव दशोत्तरशतावधि । तैजसा: सैकनवतिशताद्यावच्छतद्वयम् ॥१२॥
वायव्या रश्मयो ज्ञेया: सैकत्रिंशच्छतद्वयात् । चत्वारिंशोत्तरशतद्वयं नाभसरश्मय: ॥१३॥
मानसा रश्मय: प्राग्वद् द्वात्रिंशत्संमिताश्च ये । तैजसेषु दशार्णेषु पार्थिवाद्याश्च रश्मय: ॥१४॥
एकविंशात्क्रमात् त्रिंशद्यावत्पार्थिवरश्मय: । एकपञ्चाशत: षष्टिर्यावदाप्याश्च रश्मय: ॥१५॥
सैकचत्वारिंशशताद्यावत्सार्धशतं तथा । तैजसा रश्मय: सैकाशीत्युत्तरशतात्क्रमात् ॥१६॥
सनवत्युत्तरशतं वायव्या: संप्रकीर्तिता: । शतद्वयात्सैकविंशात्सत्रिंशद्द्विशतं क्रमात् ॥१७॥
नाभसा रश्मयो ज्ञेया: प्राग्वन्मानसरश्मय: । आप्येषु दशवर्णेषु क्रमाद्रश्मिक्रमं विदु: ॥१८॥
सैकत्रिंशात्ततश्चत्वारिंशद्यावच्च पार्थिवा: । तथैकनवतेर्यावच्छतमाप्या: प्रकीर्तिता: ॥१९॥
सैकत्रिंशच्छताद्यावच्चत्वारिंशच्छतान्तत: । तैजसा रश्मयश्चैकसप्तत्यूर्ध्वशतात्क्रमात् ॥२०॥
साशीतिशतकं यावद्वायव्या: परिकीर्तिता: । एकादशोत्तरशतद्वयाद्विंशच्छतद्वयम् ॥२१॥
नाभसा रश्मयो ज्ञेया: प्राग्वन्मानसरश्मय: । पार्थिवार्णेषु दशसु क्रमाद्रश्मिक्रमं ब्रुवे ॥२२॥
एकचत्वारिंशदङ्काद्यावत् पञ्चाशतं भवेत् । पार्थिवा रश्मयो ज्ञेयास्तथैकाशीतित: परम् ॥२३॥
यावन्नवति चाप्यास्ते सैकत्रिंशच्छतात्परे । सत्रिंशच्छतकं यावत्तैजसा: संप्रकीर्तिता: ॥२४॥
सैकषष्ट्युत्तरशतात्सप्तत्यूर्ध्वशतं तथा । वायव्या रश्मयो ज्ञेया एकोत्तरशतद्वयात् ॥२५॥
दशोत्तरं द्विशतकं नाभसा: पूर्ववत् परे । इति।

परे मानसा:। पूर्ववद् द्वात्रिंशत्प्रत्यर्णं ज्ञेया इत्यर्थ:। जयद्रथयामले—

ऊर्ध्वाम्नाये नभोवायुतेजोजलधरांशव: । पूर्वाम्नाये पृथिव्यम्बुतेजोऽनिलनभ: क्रम: ॥१॥
दक्षिणेऽनिलतेजोऽम्बुपृथिवीनभसां क्रम: । पश्चिमेऽम्बुपृथिव्यभ्रपवनानलरश्मय: ॥२॥
उत्तरेऽनलवा: पृथ्वीनभोवायुक्रम: स्मृत: । इति।

मातृकार्णवे—

षट्पञ्चाशल्लकारस्य चाधारे पार्थिवांशव: । स्वाधिष्ठाने तु द्वाषष्टिस्तेजसोपान्तरश्मय: ॥१॥
मणिपूरे द्विपञ्चाशल्लान्तस्यामृतसंख्यका: । अनाहते यकारस्य चतु:पञ्चाशदानिला: ॥२॥
द्वासप्ततिर्विशुद्धे तु हकारस्य च नाभसा: । आज्ञायां तु चतुष्षष्टिष्ठानते मानसरश्मय: ॥३॥
विसर्गस्थे विसर्गस्य कलाशतकमानसा: । इति।

अस्यार्थ:—ऊर्ध्वाम्नाये आकाशात्मकेशानमुखोद्भूते देवतामन्त्रयन्त्राणां स्वरूपज्ञानार्थं षड्विधरश्मय: प्रदर्श्यन्ते। तत्रादावाकाशवर्णानां लृलॄअंङञणनमशहानां दशानां क्रमेण १,२,३,४,५,६,७,८,९,१० एवं क्रमेण पार्थिवरश्मयो

ज्ञेयाः। अथाप्यरश्मयः—७१,७२,७३,७४,७५,७६,७७,७८,७९,८०। अथ तैजसरश्मयः—१११,११२, ११३,११४,११५,११६,११७,११८,११९,१२०। अथ वायव्यरश्मयः—१५१,१५२,१५३,१५४,१५५, १५६,१५७,१५८,१५९,१६०। अथाकाशरश्मयः—२४१,२४२,२४३,२४४,२४५,२४६,२४७,२४८, २४९,२५०। अथ मानसरश्मयः—३२,३२,३२,३२,३२,३२, ३२,३२,३२,३२।

अथ वायुवर्णानाम् अआएकचटतपयषाणां दशानां क्रमेण पार्थिवरश्मयः—११,१२,१३,१४,१५,१६, १७,१८,१९,२०। अथाप्यरश्मयः—६१,६२,६३,६४,६५,६६,६७,६८,६९,७०। अथ तैजसरश्मयः— १०१,१०२,१०३,१०४,१०५,१०६,१०७,१०८,१०९,११०। अथ वायव्यरश्मयः—१९१,१९२,१९३, १९४,१९५,१९६,१९७,१९८,१९९,२००। अथाकाशरश्मयः—२३१,२३२, २३३,२३४,२३५,२३६, २३७,२३८,२३९,२४०। मानसरश्मयः प्राग्वत्प्रत्यक्षरं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशत्क्रमेण ज्ञेयाः।

अथ तैजसवर्णानां दशानाम् इईऐखछठथफरक्षाणां पार्थिवादिरश्मयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२१,२२, २३,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०। अथाप्यरश्मयः—५१,५२,५३,५४,५५,५६,५७,५८,५९,६०। अथ तैजसरश्मयः—१४१,१४२,१४३,१४४,१४५,१४६,१४७,१४८,१४९,१५०। अथ वायव्यरश्मयः— १८१,१८२,१८३,१८४,१८५,१८६,१८७,१८८,१८९,१९०। अथाकाशरश्मयः—२२१,२२२,२२३, २२४,२२५,२२६,२२७,२२८,२२९,२३०। मानसाः प्राग्वत्।

अथाप्यवर्णानां दशानाम् ऋॠऔघझढधभवसानां दशानां क्रमेण पार्थिवादिरश्मयः। तत्रादौ पार्थिवाः— ३१,३२,३३,३४,३५,३६,३७,३८,३९,४०। अथाप्याः—९१,९२,९३,९४,९५,९६,९७, ९८,९९,१००। अथ तैजसाः—१३१,१३२,१३३,१३४,१३५,१३६,१३७,१३८,१३९,१४०। अथ वायव्याः— १७१,१७२,१७३,१७४,१७५,१७६,१७७,१७८,१७९,१८०। अथ नाभसाः—२११,२१२,२१३,२१४, २१५,२१६,२१७,२१८,२१९,२२०। मानसाः प्राग्वत्।

अथ पार्थिववर्णानां उऊओगजडदबलळानां क्रमेण पार्थिवादिरश्मयः। तत्रादौ पार्थिवाः—४१,४२,४३, ४४,४५,४६,४७,४८,४९,५०। अथाप्याः—९१,९२,९३,९४,९५,९६,९७,९८,९९,१००। अथ तैजसाः— २२१,२२२,२२३,२२४,२२५,२२६,२२७,२२८,२२९,२३०। अथ वायव्याः—१६१,१६२,१६३,१६४, १६५,१६६,१६७,१६८,१६९,१७०। अथ नाभसाः—२०१,२०२, २०३,२०४,२०५,२०६,२०७, २०८,२०९,२१०। मानसाः प्राग्वज्ज्ञेयाः। इत्यूर्ध्वाम्नायक्रमे रश्मिक्रमः।

कादिमत में षड्विध रश्मियाँ—मातृकार्णव में कहा गया है कि ऊर्ध्वमुख से विनिर्गत होने वाले मन्त्रों को ऊर्ध्वाम्नाय के नाम से जाना जाता है। पूर्वमुख से उद्भूत मन्त्रों को पूर्वाम्नाय कहते हैं। दक्षिण मुख से विनिर्गत मन्त्रों को दक्षिणाम्नाय कहा जाता है। पश्चिम मुख से कथित मन्त्रों का नाम पश्चिमाम्नाय है। उत्तर मुख से कथित मन्त्रों का नाम उत्तराम्नाय है। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश को भूतपंचक कहते हैं। सभी भूतों में मानस रश्मियाँ रहती हैं। ऊर्ध्वाम्नाय के क्रम से छः प्रकार की रश्मियों को कहता हूँ।

ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह—इन दश आकाश वर्णो में क्रमशः एक से दश तक पार्थिव रश्मियाँ होती हैं। इकहत्तर से अस्सी तक जल रश्मियाँ होती हैं। एक सौ ग्यारह से एक सौ बीस तक तैजस रश्मियाँ होती है। एक सौ इक्यावन से एक सौ साठ तक वायव्य रश्मियाँ होती है। नाभस रश्मियाँ दो सौ इकतालीस से दो सौ पचास तक होती हैं। प्रत्येक अक्षर में बत्तीस-बत्तीस मानस रश्मियाँ होती हैं।

दश वायु वर्ण में रश्मि क्रम सुनो। ग्यारह से बीस तक पार्थिव रश्मियाँ होती हैं। इकसठ से सत्तर तक जलीय रश्मियाँ

होती हैं। एक सौ एक से एक सौ दश तक तैंजस रश्मियाँ होती हैं। एक सौ इक्यानबे से दो सौ तक वायव्य रश्मियाँ होती हैं। दो सौ इकतीस से दो सौ चालीस तक नाभस रश्मियाँ होती हैं। प्रत्येक अक्षरों की मानस रश्मियाँ बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

तैजस दश वर्णों में इक्कीस से तीस तक पार्थिव रश्मियाँ होती हैं। इक्यावन से साठ तक जलीय रश्मियाँ होती हैं। एक सौ इकतालीस से एक सौ पचास तक तैजस रश्मियाँ होती हैं। एक सौ इक्यासी से एक सौ नब्बे तक वायव्य रश्मियाँ और दो सौ इक्कीस से दो सौ तीस तक नाभस रश्मियाँ हैं। मानस रश्मियाँ पूर्ववत् होती हैं।

जलीय दश वर्णों में क्रम से रश्मिक्रम इस प्रकार का है—इकतीस से चालीस तक पार्थिव रश्मियाँ, इक्यानबे से सौ तक जलीय रश्मियाँ, एक सौ इकतीस से एक सौ चालीस तक तैजस रश्मियाँ, एक सौ इकहत्तर से एक सौ अस्सी तक वायव्य रश्मियाँ एवं दो सौ ग्यारह से दो सौ बीस तक नाभस रश्मियाँ होती हैं। पूर्ववत् मानस रश्मियाँ होती हैं।

दश पार्थिव वर्णों में रश्मिक्रम इस प्रकार का है—इकतालीस से पचास तक पार्थिव रश्मियाँ है। इक्यानबे से एक सौ तक जलीय रश्मियाँ, एक सौ इक्कीस से एक सौ तीस तक तैजस रश्मियाँ, एक सौ इकसठ से एक सौ सत्तर तक वायव्य रश्मियाँ एवं दो सौ एक से दो सौ दस तक नाभस रश्मियाँ होती हैं। मानस रश्मियाँ पूर्ववत् बत्तीस-बत्तीस होती हैं। यही ऊर्ध्वाम्नाय का रश्मिक्रम होता है।

जयद्रथयामल में कहा गया है कि ऊर्ध्वाम्नाय में क्रमशः नभ, वायु, तेज, जल, पृथ्वी रश्मियाँ होती हैं। पूर्वाम्नाय में क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, नभ रश्मियाँ होती हैं। दक्षिणाम्नाय में क्रमशः वायु, तेज, जल, पृथ्वी, नभ रश्मियाँ होती हैं। पश्चिमाम्नाय में क्रमशः जल, पृथ्वी, नभ, वायु, अग्नि रश्मियाँ होती हैं। उत्तराम्नाय में क्रमशः अग्नि, जल, पृथिवी, नभ, वायु रश्मियाँ होती हैं।

मातृकार्णव में कहा गया है कि मूलाधार में लकार की छप्पन रश्मियाँ होती हैं। स्वाधिष्ठान में बासठ तैजस रश्मियाँ होती हैं। मणिपूर में बावन अमृत रश्मियाँ होती हैं। अनाहत में यकार की चौवन रश्मियाँ होती हैं। विशुद्धि में हकार की बहत्तर नाभस रश्मियाँ होती हैं। आज्ञाचक्र में चौसठ मानस रश्मियाँ होती हैं। विसर्गस्थ विसर्ग की एक सौ मानस रश्मियाँ होती हैं।

अथ पूर्वाम्नाये रश्मिक्रमः। तत्रादौ पार्थिवानां दशार्णानां क्रमेण पार्थिवादिरश्मिक्रमः। तत्रादौ पार्थिवाः—२४१,२४२,२४३,२४४,२४५,२४६,२४७,२४८,२४९,२५०। अथाप्याः—१५१,१५२,१५३। १५४,१५५,१५६,१५७,१५८,१५९,१६०, अथ तैजसाः—२११,२१२,२१३,२१४, २१५,२१६, २१७,२१८,२१९,२२०। अथ वायव्याः—७१,७२,७३,७४,७५,७६,७७,७८,७९,८०। अथ नाभसाः—१,२,३,४,५,६,७,८,९,१०।

अथाप्यानां दशार्णानां पार्थिवादिरश्मयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२३१,२३२,२३३,२३४,२३५,२३६, २३७,२३८,२३९,२४०। अथाप्याः—१९१,१९२,१९३,१९४,१९५,१९६,१९७,१९८, १९९, २००। अथ तैजसाः—१०१,१०२,१०३,१०४,१०५,१०६,१०७,१०८,१०९,११०। अथ वायव्याः—६१,६२,६३,६४,६५,६६,६७,६८,६९,७०। अथ नाभसाः—११,१२,१३,१४,१५,१६, १७,१८,१९,२०। मानसाः प्राग्वत्।

अथ तैजसानां दशार्णानां क्रमेण पार्थिवादिरश्मयः। तत्र पार्थिवाः—२२१,२२२,२२३,२२४,२२५, २२६,२२७,२२८,२२९,२३०। अथाप्याः—१८१,१८२,१८३,१८४,१८५,१८६,१८७,१८८,१८९,१९०। अथ तैजसाः—१४१,१४२,१४३,१४४,१४५,१४६,१४७,१४८,१४९,१५०, अथ वायव्याः—५१,५२, ५३,५४,५५,५६,५७,५८,५९,६०। अथ नाभसाः—२१,२२, २३,२४,२५, २६,२७,२८,२९,३०। अत्र मानसाः प्राग्वत्।

अथ वायव्यानां दशार्णानां पार्थिवादिरश्मयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२२१,२२२,२२३,२२४,२२५, २२६,२२७,२२८,२२९,२३०। अथाप्याः—१७१,१७२,१७३,१७४,१७५,१७६,१७७, १७८,१७९, १८०। अथ तैजसाः—१३१,१३२,१३३,१३४,१३५,१३६,१३७,१३८,१३९,१४०, अथ वायव्याः— ९१,९२,९३,९४,९५,९६,९७,९८,९९,१००। अथ नाभसाः—३१,३२,३३,३४, ३५,३६,३७,३८, ३९,४०।

अथ नाभसानां दशार्णानां पार्थिवादिरश्मयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२०१,२०२,२०३,२०४,२०५, २०६,२०७,२०८,२०९,२१०। अथाप्याः—१६१,१६२,१६३,१६४,१६५,१६६,१६७,१६८,१६९, १७०। अथ तैजसाः—२२१,२२२,२२३,२२४,२२५,२२६,२२७,२२८,२२९,२३०। अथ वायव्याः— ८१,८२,८३,८४,८५,८६,८७,८८,८९,९०। अथ नाभसाः—४१,४२,४३,४४,४५, ४६,४७,४८,४९,५०। अत्रापि मानसाः प्राग्वत्। इति पूर्वाम्नाये रश्मिक्रमः।

पूर्वाम्नाय का रश्मिक्रम इस प्रकार है—

पार्थिव उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळ—इन दश वर्णों की पार्थिव रश्मियाँ इकतालीस से पचास तक होती हैं। जलीय रश्मियाँ इक्यानबे सौ एक सौ तक होती हैं। तैजस रश्मियाँ एक सौ इक्कीस से एक सौ तीस तक होती हैं। वायव्य रश्मियाँ एक सौ इकसठ से एक सौ सत्तर तक होती हैं। नाभस रश्मियाँ दो सौ एक से दो सौ दस तक होती हैं। मानस रश्मियाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

ऋ ॠ औ घ झ ढ़ ध भ व स—इन दस जलीय वर्णों की पार्थिव रश्मियाँ दो सौ इकतीस से दो सौ चालीस तक होती हैं। जलीय रश्मियाँ एक सौ इक्यानबे से दो सौ तक होती हैं। तैजस रश्मियाँ एक सौ एक से एक सौ दस तक होती हैं। वायव्य रश्मियाँ इकसठ से सत्तर तक होती हैं। नाभस रश्मियाँ ग्यारह से बीस तक होती हैं। मानस रश्मियाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष—इन दस तैजस वर्णों की पार्थिव रश्मियाँ दो सौ इक्कीस से दो सौ तीस तक, जलीय रश्मियाँ एक सौ इक्यासी से एक सौ नब्बे तक, तैजस रश्मियाँ एक सौ इकतालीस से एक सौ पचास तक, वायव्य रश्मियाँ इक्यावन से साठ तक एवं नाभस रश्मियाँ इक्कीस से तीस तक होती हैं। मानस रश्मियाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

अ आ ए क च ट त प य ष—इन दस वायव्य वर्णों की पार्थिव रश्मियाँ दो सौ इक्कीस से दो सौ तीस तक, जलीय रश्मियाँ एक सौ इकहत्तर से एक सौ अस्सी तक, तैजस रश्मियाँ एक सौ इकतीस से एक सौ चालीस तक, वायव्य रश्मियाँ इक्यानबे से एक सौ तक एवं नाभस रश्मियाँ इकतीस से चालीस तक होती हैं। मानस रश्मियाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह—इन दस नाभस वर्णों की पार्थिव रश्मियाँ दो सौ एक से दो सौ दस तक, जलीय रश्मियाँ एक सौ इकसठ से एक सौ सत्तर तक, तैजस रश्मियाँ एक सौ इक्कीस से एक सौ तीस तक वायव्य रश्मियाँ इक्यासी से नब्बे तक एवं नाभस रश्मियाँ इकतालीस से पचास तक होती हैं। मानस रश्मियाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

अथ दक्षिणाम्नाये रश्मिक्रमः। 'दक्षिणेऽनिलतेजोऽम्बुपृथिवीनभसां क्रमः'। अत्रायमर्थः—पूर्वाम्नाये ये पार्थिवादिरश्मयः पार्थिवदशार्णानामभिहितास्ते दक्षिणाम्नाये वायव्यदशार्णानां पार्थिवादिरश्मयो ज्ञेयाः। अथ च पूर्वाम्नाये ये आप्यदशार्णानां पार्थिवादिरश्मयः प्रोक्तास्ते दक्षिणाम्नाये तैजसानां दशार्णानां पार्थिवादिरश्मयो ज्ञेयाः। अथ च पूर्वाम्नाये तैजसानां दशार्णानां ये पार्थिवादिरश्मयः प्रोक्तास्तेऽत्र दक्षिणाम्नाये आप्यानां दशार्णानां पार्थिवादिरश्मयो ज्ञेयाः। अथ च पूर्वाम्नाये वायव्यदशार्णानां ये पार्थिवादिरश्मयः प्रोक्तास्तेऽत्र दक्षिणाम्नाये पार्थिवदशार्णानां पार्थिवादिरश्मयो ज्ञेयाः। नाभसा उभयत्र समाना इत्यर्थः। एवं क्रमेण,

पश्चिमेऽम्बुपृथिव्यभ्रपवनानलरश्मयः। उत्तरेऽनलवाःपृथ्वीनभोवायुक्रमः स्मृतः॥

एतद्रीत्या पश्चिमाम्नायोत्तराम्नाययोः रश्मिक्रम ऊह्यः। अत्र पञ्चाम्नायेषु क्रमप्राप्तरश्मिभ्योऽप्यधिकरश्मयो लरवयहठानां वर्णानां षण्णां पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशमानसाः मातृकार्णवोक्तरीत्या ज्ञेयाः। यथा—मूलाधारे चतुर्दलकमलकर्णिकामध्यस्थलकारस्य षट्पञ्चाशत्पार्थिवरश्मयो ज्ञेयाः। स्वाधिष्ठाने षड्दलकमलकर्णिकामध्यस्थवकारस्य द्विपञ्चाशदाप्यरश्मयो ज्ञेयाः। मणिपूरे दशदलकमलकर्णिकामध्यस्थरेफस्य द्वाषष्टिस्तैजसरश्मयो ज्ञेयाः। अनाहते द्वादशदलकमलकर्णिकामध्यस्थयकारस्य चतुष्पञ्चाशद्वायव्यरश्मयो ज्ञेयाः। विशुद्धे षोडशदलकमलकर्णिकामध्यस्थहकारस्य द्वासप्ततिर्नाभसरश्मयो ज्ञेयाः। आज्ञायां द्विदलकमलकर्णिकामध्यस्थठकारस्य चतुःषष्टिर्मानसरश्मयो ज्ञेयाः। ततो ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रदलकमलकर्णिकोपरिष्टाद्विसर्गस्थानस्थितअःकारस्य षोडशशतमानसरश्मयो ज्ञेयाः।

दक्षिणाम्नाय में रश्मि क्रम—दक्षिण में वायु तेज जल पृथ्वी नभ का क्रम है। पूर्वाम्नाय में जो पार्थिवादि रश्मियाँ पार्थिव दश वर्णों की कही गई हैं, वे दक्षिणाम्नाय में वायव्य दश वर्णों की रश्मियाँ मानी जाती हैं। पूर्वाम्नाय में जो जलीय दश वर्णों की पार्थिवादि रश्मियाँ हैं, वे दक्षिणाम्नाय में तैजस दश वर्णों की रश्मियाँ होती हैं। पूर्वाम्नाय में तैजस दश वर्णों की जो पार्थिवादि रश्मियाँ हैं, वे दक्षिणाम्नाय में जलीय दश वर्णों की रश्मियाँ होती हैं। पूर्वाम्नाय में वायव्य दश वर्णों की जो पार्थिवादि रश्मियाँ हैं, वे दक्षिणाम्नाय में पार्थिव दश वर्णों की रश्मियाँ होती है। नाभस रश्मियाँ दोनों में समान होती हैं। इसी तरह पश्चिमाम्नाय में जल पृथ्वी नभ वायु अग्नि क्रम से रश्मियाँ होती हैं। उत्तराम्नाय में अग्नि, जल, पृथ्वी, नभ, वायु का क्रम होता है।

पश्चिमाम्नाय में क्रम प्राप्त रश्मियों से अधिक रश्मि लरवयहठ—इन छः वर्णों में भी पृथ्वी जल तेज वायु आकाश मानस मातृकार्णवोक्त रीति से ज्ञेय है। जैसे मूलाधार के चतुर्दल कमल कर्णिका मध्यस्थ लकार की छप्पन पार्थिव रश्मियाँ हैं। स्वाधिष्ठान के षड्दल कमल कर्णिका में मध्यस्थ वकार की बावन जलीय रश्मियाँ हैं। मणिपूर के दश दल कमलकर्णिका मध्यस्थ रेफ की बासठ तैजस रश्मियाँ हैं। अनाहत के द्वादश दल कमल कर्णिका मध्यस्थ 'य'कार की चौवन वायव्य रश्मियाँ हैं। विशुद्धि के षोडश दल कमल कर्णिका मध्यस्थ हकार की बहत्तर नाभस रश्मियाँ हैं। आज्ञा के द्विदल कमल कर्णिका मध्यस्थ ठकार की चौंसठ मानस रश्मियाँ हैं। तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्र के सहस्र दल कमल कर्णिका के ऊपर विसर्गस्थानस्थित 'अः' की सोलह सौ मानस रश्मियाँ होती हैं।

श्रीतन्त्रराजे—

अथ षोडशनित्यानां ध्यानानि विविधानि ते। कथयामि शृणु प्राज्ञे वाञ्छितार्थसुरद्रुमान्॥१॥
एकैकमङ्गाङ्गित्वेन तासां तच्छक्तिभिस्तथा। प्रयोगेषु समस्तेषु बाह्याभ्यन्तरतः क्रमात्॥२॥
श्रियै कीर्त्यै जयावाप्त्यै वश्याकर्षणसिद्धये। ध्यायेद्देवीः समस्ताश्च लोहिताकारमण्डनाः॥३॥
विद्याप्त्यै शान्तिके मुक्ताविन्दुकर्पूरसन्निभाः। विद्वेषोच्चाटनिधननिग्रहेष्वसिताः स्मरेत्॥४॥
क्षित्यादिभूतैः सत्त्वादिगुणैरेकैकसंहतैः। एतद्व्याप्तिसमारब्धैर्वर्णाकारैस्तु शक्तयः॥५॥ इति।

अत्र क्षितिवर्णानां दशानां सत्त्वादियोजनाप्रकारस्तु—सात्त्विकवर्णाः। राजसवर्णाः। तामसवर्णाः। सात्त्विकसात्त्विकाः। राजसराजसाः। तामसतामसाः। सात्त्विकराजसाः। राजससात्त्विकाः। सात्त्विकतामसाः। तामससात्त्विकाः। राजसतामसाः। तामसराजसाः। एवं द्वादशधा क्षितिवर्णाः १२०। एवमाप्यवर्णाः १२०। तैजसाः १२०। वायव्याः १२०। नाभसाः १२०। एवं मानसा अपि ज्ञेयाः। तथा—

धूम्राभाश्चिन्तयेत् सर्वाः प्रोक्तद्वेषादिसिद्धये। सर्वत्र स्वसमाकारवर्णशक्तिभिरावृताः॥१॥
असंख्याताः भवन्त्यासां कार्त्स्न्याद्ध्यानं तु को वदेत्। को वा शृणोति साकल्यात्ततः किञ्चिद्वदामि ते॥२॥
भौमाकाराः पीतवर्णाः सर्वाः स्तम्भनकारिकाः। आप्याः सत्त्वगुणाः सर्वाः सिताकाराः समीरिताः॥३॥

ताः सर्वा ज्ञानकान्तिश्रीकीर्तिसौभाग्यमुक्तिदाः। आग्नेय्यो राजसाः सर्वा लोहिताकारसंयुताः ॥४॥
वश्याकर्षणशान्तिश्रीसौभाग्यविजयप्रदाः। वायुरूपा धूम्रवर्णाः सर्वा द्वेषादिकारिकाः ॥५॥
नाभसा नीलवर्णास्ता मारणोच्चाटयोः स्मृताः। आसां मुखभुजादेहविधानं शृणु पार्वति ॥६॥
एकवक्त्राश्चतुर्वक्त्रा नववक्त्रास्तथापराः। षोडशास्याः पञ्चविंशदशास्या अपि काश्चन ॥७॥
षट्त्रिंशद्वदनाः क्वापि चत्वारिंशन्नवाननाः। चतुःषष्टिमुखास्तद्वदेकाशीतिशताननाः ॥८॥
बहुना किं मुखभुजसंख्या साधकवाञ्छया। तथापि दर्शितं किञ्चिद्वक्त्रे वक्त्रे भुजद्वयम् ॥९॥
नामरूपातिगा येन तेन सानन्तविग्रहा। न सन्ति नानारूपाश्च भवेयुर्भक्तवाञ्छया ॥१०॥
अम्बाया ललितायाः स्युरन्याः पञ्चदशाङ्गगाः। ललिताङ्गित्वरूपेण सर्वासामात्मविग्रहाः ॥११॥
तेन तासां तु सर्वासां स्वतोऽन्याः परिचारिकाः। तत्तद्वर्णायुधाकारवाहनैश्च सुसंयुताः ॥१२॥
तथाविधैः स्वस्वशक्तिवृन्दैश्चावेष्टिता अपि। इति तासां ध्यानभेदाः प्रोक्ताः स्थूला महेश्वरि ॥१३॥
सूक्ष्मरूपाणि च तथा कथयामि तवानघे। येन ते साधकाः सर्वे वाञ्छितं प्राप्नुयुः क्षणात् ॥१४॥
प्रोक्तेष्वाधारपद्मेषु लोहितात्मैक्यविग्रहाम्। विभाव्य तेजोनिचये तत्र सिद्धिं च चिन्तयेत् ॥१५॥
तेन सर्वमभीष्टं तु समवाप्नोत्ययत्नतः। पूजातर्पणहोमादिरहितं भावनेन वै ॥१६॥
परं तु ध्यानमुदितमखण्डात्मविमर्शतः। निर्वातदीपसङ्काशमात्मनात्मसमीरणात् ॥१७॥

षोडश नित्याओं का ध्यान—तन्त्रराज में कहा गया है कि हे प्राज्ञे! सुनो, मैं तुम्हें सोलह नित्याओं के विविध ध्यानों को कहता हूँ, जो इच्छित फल देने में कल्पवृक्ष के समान हैं। प्रत्येक की अंगांगी शक्तियों को प्रयोगों के लिये बाह्याभ्यन्तर क्रम से कहता हूँ। धन कीर्ति जयप्राप्ति वश्य आकर्षण की सिद्धि के लिये सबों का ध्यान लाल वर्ण का करना चाहिये। विद्या-प्राप्ति एवं शान्ति कर्म में इनका ध्यान मोती-बिन्दु और कपूर के समान श्वेत वर्ण का करना चाहिये। विद्वेषण-उच्चाटन-मारण-निग्रह में इनका ध्यान काला वर्ण का किया जाता है। दश क्षिति वर्णों में सत्त्वादि गुणों के अनुसार एक-एक की व्याप्ति वर्ण शक्तियों के रूप में है। सत्त्वादि में योजन प्रकार है—सात्त्विक वर्ण। राजसिक वर्ण। तामस वर्ण। सात्त्विक-सात्त्विक। राजस-राजस। तामस-तामस। सात्त्विक-राजस। राजस-सात्त्विक। सात्त्विक-तामस। तामस-सत्त्विक। राजस-तामस। तामस-राजस। इस प्रकार ये बारह क्षिति वर्ण एक सौ बीस हैं। इसी प्रकार आप्य वर्ण, तैजस, वायव्य नाभस एवं मानसा भी एक सौ बीस-एक सौ बीस होते हैं।

विद्वेषण-सिद्धि के लिये इनका चिन्तन धूम्राभ होता है। सर्वत्र अपने समान आकार वर्ण की शक्तियों से ये घिरी रहती हैं। इनके ध्यान अगणित हैं। कौन सबों को कह सकता है और कौन सबों को सुन सकता है? अतः उनमें से कुछ को कहता हूँ। सभी भौमाकार वर्ण शक्तियाँ पीले रंग की स्तम्भन करने वाली हैं। सभी जलीय वर्ण शक्तियाँ सत्त्वगुण श्वेत रंग की हैं। सभी आप्य ज्ञान-कान्ति-श्री-कीर्ति-सौभाग्य-मुक्तिदायिनी हैं। सभी आग्नेय राजसा शक्तियाँ लाल रंग की होती हैं, ये वश्य-आकर्षण-शान्ति-श्री-सौभाग्य-विजयप्रदा हैं। वायुरूपा सभी शक्तियाँ धूम्र वर्ण की हैं, ये सभी द्वेषकारिका हैं। नाभस शक्तियाँ नील वर्ण की हैं, मारण उच्चाटन में इनका स्मरण होता है। अब इनके मुख, भुजा, देह का विधान सुनो।

एक मुख, चार मुख, नव मुख, सोलह मुख, पच्चीस मुख, छत्तीस मुख, चालीस मुख, चौंसठ मुख, इक्यासी मुख, सौ मुख की शक्तियाँ होती हैं। इनके मुख-हाथ की संख्या के बारे में क्या कहा जाय; तथापि साधक की कामना के अनुसार कुछ कहा गया है। किसी के अनुसार प्रति मुख की दो-दो भुजाएँ होती हैं। चाहे वे किसी भी नाम-रूप की हों; पर सभी आनन्दविग्रह होती हैं। भक्तों को कामना के अनुसार ये सभी नाना रूपों से युक्त होती हैं। ललिताम्बा के अंगरूप में पन्द्रह अन्य शक्तियाँ हैं, ये सभी अंगी रूप में उन्हीं के समान हैं। प्रत्येक की उनके समान ही परिचारिकायें हैं। ये भी उन्हीं के आकार, आयुध एवं वाहनों से युक्त हैं। उसी प्रकार की अपनी शक्तिवृन्दों से ये घिरी रहती हैं। ध्यानभेद से उनके स्थूल रूप का वर्णन करता हूँ। उनके सूक्ष्म रूपों को भी कहता हूँ, जिससे सभी साधक वाञ्छितार्थ प्राप्त करते हैं। प्रोक्त मूलाधार पद्म में सभी

लाल वर्ण वाली हैं। उन्हें तेज:पुंज रूप में चिन्तन करने से सिद्धियाँ मिलती हैं। उन्हीं से अनायास सर्वाभीष्ट प्राप्त होते हैं। पूजा-तर्पण-हवन न करने पर भी केवल भावना से ही फल मिलते हैं; परन्तु यथाविधि ध्यान, अपने साथ ऐक्य भावना, दीपदान आदि की भावना करने से यथावाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

स्थूलेन साधयेत्तत्तदिष्टं सर्वं शुभाशुभम्। प्रोक्तक्रमेण देवेशि सततं साध्यसाधकैः ॥१८॥
सिद्धस्तु सूक्ष्मरूपेण ध्यानेन सकलेप्सितम्। साधयेत् पररूपं तु साध्यं साधनसिद्धये ॥१९॥
ब्रूहि देव महेशान स्थूलसूक्ष्मस्वरूपयोः। ध्यानयोः कर्मणा सिद्धिं विविधां फलयोगतः ॥२०॥
तासां तत्तत्करेषूक्तेष्वायुधान्यप्यशेषतः। शृणु वक्ष्ये महेशानि क्रमेण तव सांप्रतम् ॥२१॥
वामदक्षिणयोः स्यातां द्विभुजे च वराभये। पाशाङ्कुशौ चतुर्बाहौ षड्भुजे चापसायकौ ॥२२॥
चर्मखड्गौ चाष्टभुजे गदाशूले दशोदिते। मुखपाण्यायुधानां तु रूपसंख्यादिवाञ्छया ॥२३॥
यस्मिन् कर्मणि ता देवि यथा स्मरति साधकः। तथा तस्याग्रतो भूत्वा पालयन्ति तमादरात् ॥२४॥
सर्वत्र स्मेरवदननयनाः शुभकर्मसु। दंष्ट्रोग्रा भीमनयनवदनाः क्रूरकर्मसु ॥२५॥
शुभेषु कर्मस्वासीनाः स्थिताः वाहनगा अपि। शुभेतरेषु ताः सर्वाः प्रयोगेषु तु सर्वदा ॥२६॥
हारग्रैवेयमुक्तादिमुद्रिकानूपुरान्विताः। नवरत्नमयैः सर्वाः स्तबकैश्चोपशोभिताः ॥२७॥
वलयैरङ्गदै रत्नमयैरप्यङ्गुलीयकैः। विराजमानास्ताः सर्वा दिव्यांशुकधरा अपि ॥२८॥
एवं सामान्यमुदितं ध्यानं तासां महेश्वरि।

स्थूल ध्यान से सभी शुभ-अशुभ इष्ट सिद्ध होते हैं। प्रोक्त क्रम से साधक सर्वदा साधन करे। सूक्ष्म रूप के ध्यान से सभी इप्सित सिद्ध होते हैं। पररूप का साधन साध्य साधन सिद्धि के लिये करे। हे देव महेश! स्थूल-सूक्ष्म रूप के ध्यान से प्राप्त होने वाली विविध सिद्धियों और फल के बारे में कहिये। उनके करस्थ आयुधों और अन्य सब कुछ कहिये। हे महेशानि! सुनो, क्रम से उन्हें कहता हूँ। उन सभी द्विभुजी के दो हाथों में वर-अभय होते हैं। चतुर्भुजी के हाथों में वर-अभय-पाश-अंकुश होते हैं। छः भुजी के हाथों में इनके अतिरिक्त धनुष-बाण होते हैं। अष्टभुजी के हाथों में इनके अतिरिक्त ढाल, तलवार रहते हैं। दशभुजी के हाथों में इनके अतिरिक्त गदा-त्रिशूल रहते हैं। मुख, हाथ एवं अस्त्रों का स्वरूप एवं संख्या इच्छा के अनुसार होती है। साधक अपने कर्म के अनुसार जिस रूप में स्मरण करता है, उसी रूप में साधक के सामने प्रकट होकर वे उसका पालन करती हैं। सभी शुभ कर्मों में इनका ध्यान मुस्कानयुक्त मुख-नयन का किया जाता है। क्रूर कर्मों में इनका ध्यान भयानक दाँत-नेत्र-मुख का किया जाता है। शुभ कर्मों में ये अपने आसन पर बैठी या वाहन पर आरूढ रहती हैं। शुभेतर सभी प्रयोगों में सर्वदा वे हार ग्रैवेयक मोती मुद्रिका नूपुर से युक्त होती है। सभी नव रत्नयुक्त स्तबकों से उपशोभित रहती हैं। वलय अंगद रत्नजटित अंगूठी से युक्त होकर विराजमान रहती हैं। सबों के अंगों में दिव्य रेशमी वस्त्र सुशोभित होते हैं। यह उनके सामान्य ध्यान कहे गये हैं।

विशेषं शृणु वक्ष्यामि तत्तत्कर्मसु सिद्धिदम् ॥२९॥
गजवाजिरथारूढा विमानस्थाश्च सिंहगाः। व्याघ्रतार्क्ष्यसमारूढा ध्येया रक्षासु सर्वदा ॥३०॥
समरेषु जयावाप्त्यै नृपराष्ट्रादिरक्षणे। पिशाचचोरव्यालादिदुर्गमेऽरण्यवर्त्मनि ॥३१॥
ध्यायेत्ता देवताः सर्वाः सर्वशक्तिभिरावृताः। एकैकशः समस्ता वा सुखीभवति निश्चितम् ॥३२॥
ऋक्षवानरभल्लूकखरसैरिभवाहनाः। उच्चाटनेषु सर्वास्ता भीमा ध्येयाः सुदारुणाः ॥३३॥
कङ्कश्येनबकक्रौञ्चकाककौशिकवाहनाः। विद्वेषणेषु सर्वास्ताः घोरप्रहरणाकुलाः ॥३४॥
खड्गगोमायुगवयशललीहरिणाश्वगाः। चिन्तयेत् सकलाः सर्वक्षुद्रकर्मसु साधकः ॥३५॥
पिशाचवेतालगता ध्येयाः सर्वत्र मारणे। इति वाहनभेदेन फलभेदाः समीरिताः ॥३६॥

सर्वास्तार्क्ष्यगता वह्निवायुबाहुद्वयान्विताः । द्विनेत्रास्त्वेकवदना दष्टौष्ठा भीमविग्रहाः ।।३७।।
वहन्त्यो वह्निनिवहं ध्येयाः स्वाकारशक्तिभिः । भीमारवाभिरभितो वेष्टिता रणमूर्धनि ।।३८।।
विजयो भवति क्षिप्रं वैरिसेनाविनाशनः । पलायनात् संग्रहणात् पादयोः पतनेन वा ।।३९।।
चतुर्मुखा अष्टभुजा गृह्णत्यो महतीं चमूम् । विभाव्य विजयं युद्धे प्राप्नोत्युक्तक्रमेण वै ।।४०।।
नवाननास्तद्द्विगुणभुजा वा भीमविग्रहाः । वामैः कोदण्डनिवहमन्यैर्बाणांश्च बिभ्रतीः ।।४१।।
ध्यात्वारिसेनां सकलां शरभिन्नकलेवराम् । वमद्रुधिरधानां च विजयं प्रोक्तमाप्नुयात् ।।४२।।
अथवा नवभिः खेटमन्यैः खड्गं च बिभ्रतीः । चतुरङ्गा रिपोः सेनाश्छिन्दतीस्तरवारिभिः ।।४३।।
चिन्तयित्वा रिपुं युद्धे भीमाकारे सुदुर्जये । पत्त्यश्वेभरथाटोपवाद्यनिःस्वानसङ्कुले ।।४४।।
प्राप्नोत्ययत्नतः क्षिप्रं प्रागुक्तक्रमयोगतः । अथवा नवभिर्हस्तैर्गदा वामैस्तथेतरैः ।।४५।।
नखरान् पाणिभिर्भीमान् दधतीः समरे स्मरन् । तद्भिन्नचतुरङ्गां च सेनां विजयमाप्नुयात् ।।४६।।
तथा स्थूलकुठारौघैः पातयन्तीर्द्विषां बलम् । विजयी भवति प्रोक्तक्रमाद्वीरो रणाङ्गणे ।।४७।।
तथैव चर्मक्षुरिकानिवहैर्निघ्नतीर्बलम् । ध्यात्वा वा विजयी भूयात्समरे रोमहर्षणे ।।४८।।
निद्रातिमिरहस्ता वा मोहयन्तीर्द्विषां बलम् । ध्यात्वा विजयमाप्नोति नियतं समरे नृपः ।।४९।।
पिशाचसर्पहस्ता वा तैः सेनां मृद्गतीः स्मरन् । विजयं समरे शश्वदश्नुते शङ्करोपमः ।।५०।।
पाशकर्तरिकाभिर्वा निघ्नतीः पृतनां रणे । स्मृत्वा विजयमाप्नोति नृपः प्रोक्तक्रमाद् ध्रुवम् ।।५१।।
अङ्कुशक्रकचाभ्यां वा दारयन्तीश्चमूः क्षणात् । चिन्तयन् समरे भीमे विजयी स्यात्सुनिश्चितम् ।।५२।।
हलैश्च मुसलैर्नित्यं प्रहरन्तीर्द्विषां बलम् । स्मरन् प्रविजयं युद्धे प्राप्नोति ध्यानवैभवात् ।।५३।।

विशेष कर्मों की सिद्धि हेतु उनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—हाथी, घोड़े, रथ, विमान सिंह व्याघ्र, गरुड़ पर सवार शक्तियों का ध्यान रक्षा कर्म में करना चाहिये। युद्ध में विजय के लिये, राजा-राष्ट्र आदि की रक्षा के लिये, पिशाच चोर सर्प दुर्गम जंगली मार्ग में इन शक्तियों का ध्यान सभी शक्तियों से आवृत एक-एक का या सबों का करने से साधक निश्चित सुखी होता है। ऋक्ष, वानर, भालू, गदहा, सैरिभ पर सवार भयानक सुदारुण ध्यान उच्चाटन में करना चाहिये। गिद्ध बाज बगुला क्रौंच कौआ कौशिक पर सवार घोर प्रहार को आकुल सबों का ध्यान विद्वेषण में करना चाहिये। खड्ग, गोमायु, गवय, शलली, हरिण, घोड़े पर सवार सबों का चिन्तन सभी क्षुद्र कर्मों में करना चाहिये। मारण में सर्वत्र पिशाच वेताल पर सवार सबों का ध्यान होता है। वाहनभेद से फल में भी भेद होते हैं। गरुड़ पर सवार, अग्नि-वायु दो हाथों से युक्त, द्विनेत्र, एक मुखी, दाँतों से होठ चबाती हुई, भयंकर रूप की अग्नि के समान चंचल अपने आकार की शक्तियों से आवृत भयंकर गर्जन वाली का ध्यान रणभूमि में करने से शीघ्र विजय होती है और वैरी सेना का नाश होता है। भागते हुए को पकड़कर पादाघात करती हुई चारमुखी अष्टभुजी शक्तियाँ बड़ी सेना को खा रही हैं—इस रूप के ध्यान से युद्ध में विजय होती है। नव मुखी अट्ठारह भुजी भयंकर रूप वाली शक्तियों के बाँयें हाथ में धनुष और दाँयें हाथ में बाणयुक्त होने से सभी शत्रुसैनिकों का शिरविहीन शरीर रुधिरधारा का वमन करते हुये चिन्तन करने से युद्ध में विजय होती है। अथवा नवमुखी तलवार ढाल ली हुई चतुरंगी सेना को तलवार से काटती हुई का चिन्तन करने से युद्ध में भीमाकार दुर्जय, पैदल, अश्वारोही, रथाटोप, वाद्य, ध्वनि से युक्त सेना को पराजित कर शीघ्र विजय प्राप्त करता है अथवा नवो मुख एवं उससे दुगुने हाथों में से बाँयें में गदा और दाँयें में नखयुक्त अंगुलियों को युद्ध में स्मरण करने से उससे भिन्न चतुरंगिनी सेना पर विजय प्राप्त होती है अथवा स्थूल कुठारसमूह से वैरी के बल को काट रही है—ऐसा ध्यान करने से युद्ध में विजयी होता है। इसी प्रकार ढाल तलवार से शत्रु बल को काट रही है—ऐसा ध्यान करने से युद्ध में राजा विजयी होता है। निद्रा एवं तिमिर हाथ में ली हुई शक्ति शत्रु को मोहित कर रही हैं—ऐसा ध्यान करने से युद्ध में राजा विजयी होता है। पिशाच सर्प धारण की हुई वे सेना को भूमिगत कर रही हैं—ऐसा ध्यान से शंकर के समान शत्रु पर भी युद्ध में विजय होती है। पाश कर्तरी लेकर शत्रु को मार रही हैं—युद्ध में ऐसा

स्मरण करने से विजय मिलती है। अंकुश चक्र से शत्रुसेना को क्षण भर में मार रही हैं—ऐसा चिन्तन युद्ध में करने पर जीत होती है। हल और मूसल से वैरी के बल पर प्रहार करती हुई का ध्यान युद्ध में करने से वैभव एवं विजय प्राप्ति होती है।

तथा षोडशवक्त्रास्ता द्वात्रिंशद्बाहुभिर्युताः। प्राग्वत् प्रमथितारातिपृतनाश्चिन्तयञ्जपेत् ॥५४॥
पञ्चविंशतिवक्त्रा वा पञ्चाशद्भुजसंयुताः। तथैकादशभिर्भेदैरायुधैर्निघ्नतीर्बलम् ॥५५॥
विचिन्त्य जयमाप्नोति समरे सर्वदा नृपः। तथा स्मरणसंयुक्तः पूजयेत्तास्तदा गृहे ॥५६॥
षड्त्रिंशद्वदना देवीर्द्विसप्ततिकराः स्मरेत्। तथैकादशरूपैस्तैः घोरैः प्रहरणैर्युताः ॥५७॥
एकोनपञ्चाशद्वक्त्रा हस्तैस्तद्द्विगुणैर्वृताः। प्रहरन्तीस्तथारातीन् स्मृत्वा वा जयमाप्नुयात् ॥५८॥
चतुःषष्टिमुखा देवीः करैस्तद्द्विगुणैर्युताः। प्रहरन्तीः स्मरन् युद्धे जयी भवति निश्चितम् ॥५९॥
एकाशीतिमुखा देवीस्तद्द्वैगुण्यभुजैर्युताः। तथाविधैः प्रहरणैः स्मरन् युद्धे जयी भवेत् ॥६०॥
शतवक्त्रास्तद्द्विगुणकरास्तद्धेतिभिर्युताः। स्मृत्वा विजयमाप्नोति समरे ताश्च षोडश ॥६१॥
एवं वक्त्रकरैर्युक्तास्त्वनेकैरिष्टरूपतः। तथा तैर्हेतिनिवहैर्व्याकुलक्रमहस्तकैः ॥६२॥
असंख्याता भवेयुस्ताः साधकाभीष्टसिद्धिदाः। एवमुद्दामसमरसङ्कटादिषु चिन्तयन् ॥६३॥
देवीस्तास्तरति क्षिप्रमापदो मनुजोऽथवा। देवो वा राक्षसो यक्षः किन्नरो वा भुजङ्गमः ॥६४॥
पिशाचो वा गुह्यको वा सिद्धो वा दानवोऽथवा। न कदाचित्स्मरन्नित्यं भङ्गमाप्नोति निश्चितम् ॥६५॥
चोरादिसङ्कटेऽरण्ये गिरिदुर्गमवर्त्मनि। द्विविधैर्वैरिभिर्जातैः कृच्छ्रे राजभये तथा ॥६६॥
क्षुद्रपीडासु भूतापस्माररराक्षससंकटे। पिशाचडाकिनीवृन्दब्रह्मराक्षसपीडने ॥६७॥
अन्येष्वपि च कृच्छ्रेषु विस्तरेषु महत्स्वपि। स्मरन्नित्यं जयेत्सर्वा विपदो ध्यानवैभवात् ॥६८॥
एकवक्त्रा द्विनयना द्विभुजाभीष्टधारिकाः। सपादुकाः समागत्य सर्वाभरणभूषिताः ॥६९॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताः। गायन्तीभिश्च नृत्येषु वनमालाभिरन्विताः ॥७०॥
ध्यायन्नभिमतं सर्वमाप्नुयात् षोडशापि ताः। नासाध्यमस्ति भुवने ध्यानादासां महेश्वरि ॥७१॥
अलङ्कृतहयारूढाः शक्तिभिश्च तथावृताः। स्मेराननाश्च गायन्तीः स्मृत्वा विश्वं वशं नयेत् ॥७२॥
तथाविधा गजारूढास्तथा शक्तिभिरावृताः। सङ्गीतासक्तमहिलावृन्दसङ्कुलमध्यगाः ॥७३॥
स्मृत्वा लक्ष्मीमवाप्नोति राजमान्यामतिस्थिराम्। नानाभोगसमोपेतां प्रख्यातां निजवैभवात् ॥७४॥
तथाविधरथारूढास्तथा शक्तिभिरावृताः। तथा संगीतसंसक्तशक्तिवृन्दसमन्विताः ॥७५॥
स्मरन् भूमिमवाप्नोति राजा चेद्वैरिमण्डलम्। एवं तत्त्रिविधध्यानात्सौभाग्यं चातुलं यशः ॥७६॥
कदलीकानने रम्ये निर्जने तास्तथा स्मरन्। पादुकासक्तचरणा आगच्छन्तीश्च शक्तिभिः ॥७७॥
मण्डलं मासमर्धं वा जपन् विद्यां ततो वसेत्। निधिं संप्राप्य भवने भोगी स्याद्यावदायुषम् ॥७८॥
पूगारामे तथा स्मृत्वा निधिमाप्नोत्ययत्नतः। एवं चम्पकपुन्नागनमेरुबकुलेष्वपि ॥७९॥
तथा पर्वतकुञ्जेषु स्मरंस्ता वित्तमाप्नुयात्। राजतो धनितोऽन्यस्माद्येनासौ स्यात्सुखी चिरम् ॥८०॥
समुद्रतीरे पुण्येषु तथा नित्यं स्मरन् धिया। प्राप्नोत्यनर्घ्यरत्नानि बहूनि ध्यानवैभवात् ॥८१॥
समुद्रगासरिन्मध्यतरुवाटीषु तास्तथा। स्मरन् कनकमाप्नोति वर्णोत्कृष्टमसंख्यकम् ॥८२॥
निर्जने विपिने स्मृत्वा प्राप्नोति महिलाः शुभाः। रूपयौवनशीलाढ्याः प्रेमनिघ्नास्त्वनन्यगाः ॥८३॥
उक्तेषु तेषु स्थानेषु हयारूढाः स्मरन् नरः। नृपतिं कुरुते वश्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥८४॥
तेषूक्तेषु गजारूढाः स्मृत्वा नारीर्नरान्नृपान्। वशीकरोति भुवने प्राणिनश्चाविशेषतः ॥८५॥
तथा तेषु रथारूढाः स्मृत्वा देवीस्तथोदिताः। वाञ्छितं समवाप्नोति मुक्तः स्यान्निगडादितः ॥८६॥

सोलह मुख और बत्तीस हाथों वाली का 'वह शत्रुसेना का नाश कर रही है' ऐसा चिन्तन पूर्ववत् करते हुये जप करे पच्चीस मुख और पचास हाथों वाली देवी ग्यारह आयुधों से शत्रुबल का नाश कर रही है—ऐसा चिन्तन करने से राजा सर्वदा युद्ध में विजयी होता है। उसी प्रकार का स्मरण करके वह उसकी पूजा अपने घर में करे। छत्तीस मुख और बहत्तर हाथों वाली देवी ग्यारह घोर शस्त्रों से शत्रुप्रहार में लगी हुई है, उनचास मुख और अट्ठानबे हाथों वाली शत्रु के प्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से विजयी होता है। चौंसठ मुख और एक सौ अट्ठाईस हाथों वाली शत्रुप्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से युद्ध में विजयी होता है। इक्यासी मुख और एक सौ बासठ हाथों वाली शत्रुप्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से युद्ध में जयी होता है। सौ मुख और दो सौ हाथों वाली शत्रुप्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से युद्ध में विजयी होता हैं।

इस प्रकार साधक की कामनानुसार मुखों और हाथों से युक्त आयुध वाली अगणित देवियाँ साधक की अभीष्टदायिनी होती हैं। इस प्रकार का चिन्तन भयंकर युद्ध के संकट में करना चाहिये। ऐसा ध्यान करने से देवी मनुष्य को आपदाओं से पार कर देती हैं। देव राक्षस यक्ष किन्नर सर्प पिशाच गुह्यक दानव के भय होने पर ऐसा चिन्तन करे। इस प्रकार स्मरण नित्य यदि न करे तो छत्र भंग होता है। चोरों के संकट, दुर्गम जंगल पर्वत मार्ग में, दो प्रकार के वैरी होने पर, राजभय में, क्षुद्र पीड़ा में, भूत अपस्मार राक्षस संकट में, पिशाच डाकिनी-वृन्द ब्रह्मराक्षस से पीड़ा में या अन्य भयंकर कष्टों में देवी का स्मरण करने से सभी विपदायें नष्ट हो जाती हैं। एक मुख दो आँख दो हाथ वाली खड़ाऊ पहने सर्वाभरणभूषिता अपने समान शक्तियों से घिरी हुई गाती नाचती वनमाला युक्त इष्ट देवी का ध्यान करने से सभी इच्छायें पूरी होती हैं। इसी प्रकार षोडश नित्याओं का ध्यान करने से संसार में कुछ भी असाध्य नहीं होता। अलंकृत घोड़े पर सवार उसी प्रकार की शक्तियों से घिरी हुई संगीतासक्त महिला वृन्द संकुल के मध्य में देवी का स्मरण करने से लक्ष्मी मिलती है, राजमान्य होता है, बुद्धि स्थिर होती है एवं नाना भोगों से युक्त होकर अपने वैभव से विख्यात होता है।

उसी प्रकार रथारूढ़ शक्ति से आवृत संगीत में संसक्त शक्तिवृन्द समन्वित देवी का स्मरण करने से राजा शत्रु की भूमिमण्डल को प्राप्त करता है। इस प्रकार के तीन ध्यानों से अतुल सौभाग्य और यश मिलता है। केले के वन में रम्य निर्जन स्थान में देवी का स्मरण उस रूप में करने से पादुका पहनकर शक्तियों सहित देवी आती है। चालीस दिन या पन्द्रह दिन तक विद्या का जप करते हुये वहीं निवास करने से साधक को निधि प्राप्त होती है और वह यावज्जीवन घर में भोगों को भोगता है। कसैली के वन में उक्त रूप का स्मरण करते हुये जप करने से निधि बिना यत्न के मिलती है। इसी प्रकार चम्पा, पुन्नाग, नमेरु, वकुल बाग में, पर्वतकुञ्जों में जप-ध्यान करने से राजा से, धनिक से या अन्यों से धन मिलता है एवं चिरकाल तक सुखी जीवित रहता है। समुद्रतट में, पवित्र स्थानों में नित्य जप-ध्यान से बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते हैं। समुद्रगामिनी नदियों में या वाटिका में उस प्रकार के ध्यान से असंख्य वर्णोत्कृष्ट सोने की प्राप्ति होती है। निर्जन वन में जप-ध्यान से रूप-यौवनशील अनन्य स्नेहयुक्त सुन्दर महिला प्राप्त होती है। उक्त स्थानों में अश्वारूढ़ के स्मरण से मन-काय-वचन-कार्य से राजा वश में होता है। उन्हीं स्थानों में हाथी पर सवार देवी के स्मरण से वांछित सिद्धि होती है एवं निगड़ बन्धन से मुक्ति मिलती है।

शतवक्त्रास्तद्द्विगुणभुजास्तेष्वायुधान्यपि । वाञ्छितानि लिखित्वा ताः पटेषु नवसु स्फुटम् ॥८७॥
पटांस्तान् मध्यपर्यन्तद्वये संस्थापयेत्तथा । रथदन्तिहयानां तु तिरस्करणिकायुतान् ॥८८॥
प्रतिसैन्याभिमुख्ये तु तांस्तु सम्यक्प्रदर्शयेत् । वज्रालिखितनिःसानभेरीपणवमर्दलान् ॥८९॥
आहत्य वादयन् शृङ्गशङ्खकाहलकादिकम् । व्रजेदभिमुखं वैरी धावत्याशु पराजितः ॥९०॥
तत्सेना संमुखी पश्चान्न जातु भवति ध्रुवम् । इति ध्यानान्यशेषाणि कथितानि तवानघे ॥९१॥
सूक्ष्मध्यानेन सिद्धानां साधकानां फलोदयः । अतस्तच्छृणु वक्ष्यामि सर्वाभीष्टाप्तिकारकम् ॥९२॥
दाडिमीकेसरप्रख्यतेजोरूपाः स्मरन् धिया । तन्मध्ये साध्यरूपं च निजवाञ्छानुरूपकम् ॥९३॥
समस्ताभीष्टमाप्नोति शुभानप्यशुभानपि । तथा सुषुम्नान्तस्तद्वच्चिन्तयेद्वा गमागमम् ॥९४॥
तेनाखिलं निजेष्टं तु प्राप्नोति ध्यानवैभवात् । साधकश्च तथा सिद्धस्तयोरेवाशुसिद्धिकृत् ॥९५॥

अत्र मूलमन्त्रवर्णा: स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृता: तत्तद्रश्मिवृन्दसहितास्तत्तद्रूपेण ध्यातव्या:। मातृकावर्णाश्च तथैव ध्यातव्या इत्यर्थ:। षोडशनित्यासु ललिताया अङ्गत्वेन पञ्चदशनित्या:, पञ्चदशनित्यासु परस्परमङ्गाङ्गित्वेन तत्तन्मन्त्र-वर्णान् स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्पृथग्विभज्य क्षित्यादिभूतवर्णान् विभज्य तत्तद्रश्मिपुञ्जसहितान् भावयेत्। तत्तत्फलं भवेत्। इति कादिमते रश्मिक्रम:।

सौ मुखी, आयुध-सहित दो सौ हाथों वाली देवी का नये कपड़े पर चित्र बनाकर उसमें वांछित लिखे। दोनों सेनाओं के बीच में स्थापित करे। रथ, घोड़े, हाथी के सामने तिरस्करनी विद्यायुक्त वस्त्र को प्रदर्शित करे। वज्रांकित लकड़ी से ढोल-पणव-मर्दल बजवाये; शृगी, शङ्ख, काहल आदि बजवाये। इस प्रकार वैरी के सामने जाने से दौड़ता हुआ वैरी भाग जाता है और वैरी की सेना उसका सामना नहीं कर पाती। इस प्रकार ध्यान का कथन पूरा हुआ; अन्य शेष कहता हूँ। सूक्ष्म ध्यान से सिद्ध साधकों को फल प्राप्त होता है। अत: सभी अभीष्टों को देने वाले सूक्ष्म ध्यान को कहता हूँ। अनार पुष्प के केसर के समान तेजरूप का स्मरण बुद्धि से करे। उसमें अपनी इच्छा के अनुसार रूप के साध्य का चिन्तन करे। इससे सभी शुभ-अशुभ इष्टों की प्राप्ति ध्यान के वैभव से होती है। साधकसिद्ध को इससे तुरन्त सिद्धि मिलती है।

यहाँ पर मूल मन्त्र वर्णों को स्वर-व्यञ्जन रूप से अलग-अलग करके उनके रश्मिवृन्द के साथ उनके रूप से ध्यान करना चाहिये। मातृका वर्णों का ध्यान भी इसी प्रकार करना चाहिये। सोलह नित्याओं में ललिता के अंगरूप से पन्द्रह नित्यायें हैं। उन पन्द्रह नित्याओं में अंगागि रूप से उनके मन्त्रवर्णों को स्वर-व्यञ्जनरूप में पृथक्-पृथक् करके पृथ्वी आदि के भूत वर्णों को विभाजित करके उनकी रश्मिवृन्दसहित भावना करे। तब उसका फल प्राप्त होता है।

कालीमते देवतादिस्वरूपज्ञानाय रश्मिक्रमप्रदर्शनम्

अथ कालीमते रश्मिक्रममाह उत्तरतन्त्रे—

मनूनां प्रस्तृतेर्योग्या रश्मयो वर्णसंहते:। देवतामन्त्रयन्त्राणां ज्ञायते यै: स्वरूपकम्॥१॥
रश्मिक्रमस्य विज्ञानाच्छिवोऽभून्नात्र संशय:। अकारस्य तु विज्ञेया: पार्थिवाश्च चतुर्दश॥२॥
आप्या: पञ्च मयूखा: स्युस्तैजसा दश चैव हि। वायव्यास्तस्य संप्रोक्ता: षष्ट्युत्तरशतांशव:॥३॥
चत्वारो नाभसा उस्रास्तथा आकारके स्मृता:। चतुर्दश तत: पञ्च तत: षट्षष्टिकं शतम्॥४॥
चत्वारश्चैव चत्वार: इईवर्णद्वये पृथक्। शतं सप्तत्युत्तरं च तत: पञ्च ततो दश॥५॥
चत्वारश्चैव चत्वार: उऊवर्णद्वये पृथक्। चतुर्दश ततो भौमा: नवषष्ट्युत्तरं शतम्॥६॥
ततो दश च चत्वारो वेदा ऋॠद्वये पृथक्। चतुर्दश तत: पञ्च ततो दश ततो युगा:॥७॥
षष्ट्युत्तरशतं चैव ऌॡवर्णद्वये पृथक्। अवर्णस्येव संप्रोक्ता एकारस्य च रश्मय:॥८॥
इवर्णस्य यथा प्रोक्ता ऐकारस्य तथा स्मृता:। उवर्णस्येव ओकारे ऋकारस्येव औलिपे:॥९॥
ऌवर्णस्येव विज्ञेया अंस्वरस्य च रश्मय:। ऌवर्णस्येव विज्ञेया अ:स्वरस्य च रश्मय:॥१०॥
पार्थिवा रश्मयो ज्ञेया: कवर्णस्य चतुर्दश। आप्या: पञ्चदश प्रोक्तास्तैजसाश्च तत: परम्॥११॥
वायव्या रश्मय: प्रोक्ता: पञ्चत्रिंशच्छतद्वयम्। नाभसाश्चैव चत्वार: खकारस्य चतुर्दश॥१२॥
पार्थिवा जलजा: पञ्च ततश्चैव शतद्वयम्। सैकचत्वारिंशदनु तैजसा युगसंख्यका:॥१३॥
वायव्या नाभसाश्चोक्ताश्चत्वारो वेदसंख्यका:। गवर्णे पार्थिवा: पञ्चचत्वारिंशच्छतद्वयम्॥१४॥
पञ्चाप्या दश चाग्नेया वायव्या वेदसंख्यका:। नाभसाश्चैव चत्वारो घवर्णे मनुपार्थिवा:॥१५॥
आप्या: शतद्वयं चैव प्रोक्ता: षट्त्रिंशदुत्तरम्। तैजसा दश वायव्याश्चत्वारो नाभसा: स्मृता:॥१६॥
पञ्चत्रिंशच्छतद्वे च कार्णस्येव चवर्णके। खवर्णस्येव छार्णस्य गवर्णस्येव जार्णके॥१७॥
घवर्णस्येव झार्णस्य ङवर्णस्येव ञार्णके। चवर्णस्येव टार्णस्य छवर्णस्येव ठार्णके॥१८॥

शतद्वयं पञ्चनवत्युत्तरं डस्य पार्थिवाः । घस्येव ढस्य संप्रोक्ता ञार्णस्येव च णार्णके ॥१९॥
टस्येव तस्य सम्प्रोक्ता मनवस्थस्य पार्थिवाः । पञ्चाप्या एकनवतिद्विशतं चानु वायुजाः ॥२०॥
चत्वारो नाभसाश्चैव डस्येव च दवर्णके । ढस्येव धस्य संप्रोक्ता णार्णस्येव च नार्णके ॥२१॥
पार्णस्य पार्थिवाः प्रोक्ताश्चतुर्दश जलीयकाः । पञ्चैव तैजसाः प्रोक्ता दशैकनवतिस्तथा ॥२२॥
शतद्वयं तु वायव्याश्चत्वारो नाभसाः स्मृताः । थस्येव फस्य संप्रोक्ता रश्मयः क्रमशो बुधैः ॥२३॥
बार्णस्य पार्थिवाः पञ्चचत्वारिंशिच्छतांशवः । आप्याः पञ्चदशाग्नेया वायव्या नाभसाः स्मृताः ॥२४॥
चत्वारश्च तथा प्रोक्ता भार्णस्य मनुसंख्यकाः । पार्थिवाश्च सषट्त्रिंशत्पञ्चसंख्याशतानि च ॥२५॥
तैजसा दश वायव्याश्चत्वारो नाभसास्तथा । चतुर्दश मकारे तु रश्मयः पार्थिवाः स्मृताः ॥२६॥
आप्याः पञ्च दशाग्नेया वायव्या वेदसंख्यकाः । पञ्चत्रिंशत्पञ्चशतं नाभसाः संप्रकीर्तिताः ॥२७॥
यार्णे चतुर्दश प्रोक्ताः पार्थिवाः पञ्च नीरजाः । तैजसा रश्मयः प्रोक्ता वायव्याश्च ततः परम् ॥२८॥
पञ्चत्रिंशत्पञ्चशतं चत्वारो नाभसाः स्मृताः । रेफस्य मनुसंख्याकाः पार्थिवाः पञ्चनीरजाः ॥२९॥
सैकचत्वारिंशदनु शतपञ्चकतैजसाः । वायव्याश्चैकचत्वारश्चत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥३०॥
वार्णस्येव लवर्णस्य (रश्मयः संप्रकीर्तिताः । वार्णस्य रश्मयः प्रोक्ताः) पार्थिवाङ्के चतुर्दश ॥३१॥
सषट्त्रिंशदष्टशतमाप्या वै दश तैजसाः । वायव्याश्चैव चत्वारश्चत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥३२॥
मनुसंख्याः शकारस्य पार्थिवाः पञ्च नीरजाः । तैजसा दश वायव्याश्चत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥३३॥
पञ्चत्रिंशच्चाष्टशतं षकारे मनुसंख्यकाः । पार्थिवाः पञ्च चाप्या वै तैजसाः दश कीर्तिताः ॥३४॥
पञ्चत्रिंशच्चाष्टशतं वायव्या वेद नाभसाः । वार्णस्येव सकारस्य हकारस्य चतुर्दश ॥३५॥
पार्थिवाः पञ्च चाप्या वै तैजसा दश कीर्तिताः । वायव्याश्चैव चत्वारः सपञ्चत्रिंशदुत्तरम् ॥३६॥
ससप्ततिसहस्रं च नाभसाः परिकीर्तिताः । लकारस्येव ळस्यैव क्षकारस्य चतुर्दश ॥३७॥
पार्थिवाः पायसाः पञ्च रश्मयः परिकीर्तिताः । सैकचत्वारिंशदनु ससप्ततिसहस्रकम् ॥३८॥
तैजसा वेद वायव्या नाभसाश्च तथा स्मृताः ।

कालीमत में रश्मिक्रम—उत्तर तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रों के वर्णों में निहित रश्मियों के द्वारा देवता के मन्त्र-यन्त्रों का स्वरूप ज्ञात होता है। रश्मिक्रम के ज्ञान से ही शिव हुये हैं; इसमें संशय नहीं है।

अकार एवं आकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य एक सौ साठ एवं नाभस चार हैं। इकार एवं ईकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस एक सौ छाछठ, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। उकार एवं ऊकार की पार्थिव रश्मियाँ एक सौ सत्तर, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। ऋकार एवं ॠकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय एक सौ उनहत्तर, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। ऌकार एवं ॡकार की पार्थिक रश्मियाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य दो एवं नाभस एक सौ साठ हैं। एकार की रश्मियाँ अकार के ही समान हैं। ऐकार की रश्मियाँ इकार के समान हैं। ओकार की रश्मियाँ उकार के समान हैं एवं औकार की रश्मियाँ ऋकार के समान हैं। 'अं' स्वर की रश्मियाँ ऌकार के समान एवं 'अः' स्वर की रश्मियाँ भी ऌकार के समान ही हैं।

ककार एवं चकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय पन्द्रह, तैजस पन्द्रह, वायव्य दो सौ पैंतीस एवं नाभस चार हैं। खकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दो सौ इकतालीस, वायव्य दो एवं नाभस चार हैं। गकार की पार्थिव रश्मियाँ दो सौ पैंतालीस, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। घकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय दो सौ छत्तीस, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। ङकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस दो सौ पैंतीस हैं। छकार की रश्मियाँ खकार के समान हैं। जकार की गकार के समान हैं। झकार की घकार के समान हैं। ञकार की ङकार के समान हैं। टकार की ककार के समान एवं ठकार की खकार के समान रश्मियाँ हैं। डकार

की पार्थिव रश्मियाँ दो सौ पञ्चानबे, जलीय पाँच, तैजस दो सौ इकतालीस, वायव्य दो एवं नाभस चार हैं। ढकार एवं णकार की रश्मियाँ क्रमश: धकार एवं ङकार के समान हैं। तकार की रश्मियाँ ककार के समान हैं। थकार की चौदह, पार्थिव, पाँच जलीय, दो सौ इक्यानबे तैजस, चार वायव्य एवं चार नाभस रश्मियाँ होती हैं। दकार की डकार के समान, धकार की ढ़कार के समान एवं नकार की णकार के समान रश्मियाँ होती हैं। पकार की पार्थिव रश्मियाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य दो सौ इक्यानबे एवं नाभस चार हैं। फकार की रश्मियाँ थकार के समान होती हैं। बकार की पार्थिव रश्मियाँ एक सौ पैंतालीस, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार होती हैं। भकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच सौ पैंतीस, तैजस, दस, वायव्य चार एवं नाभस चार रश्मियाँ होती हैं। मकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस पाँच सौ छत्तीस रश्मियाँ होती हैं। यकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य पाँच सौ पैंतीस एवं नाभस चार रश्मियाँ होती हैं। रकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस पाँच सौ इकतालीस, वायव्य इकतालीस एवं नाभस चार रश्मियाँ होती हैं। लकार की रश्मियाँ बकार के समान होती हैं। वकार की पार्थिव चौदह, जलीय आठ सौ छत्तीस, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार रश्मियाँ होती हैं। शकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस आठ सौ पैंतीस रश्मियाँ होती हैं। षकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य आठ सौ पैंतीस एवं नाभस चार रश्मियाँ होती हैं। सकार की रश्मियाँ वकार के समान होती हैं। हकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस सत्तर हजार पैंतीस रश्मियाँ होती हैं। लकार के समान ही ळकार की रश्मियाँ होती हैं। झकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस सत्तर हजार इकतालीस, वायव्य चार एवं नाभस चार रश्मियाँ होती हैं। सारिणी रूप में कालीमत में रश्मियों का विवरण इस प्रकार है—

कालीमते रश्मिक्रम:

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
वर्गा:	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अ:	क
भौमा:	१४	१४	१४	१४	१७०	१७०	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१७०	१४	१४	१४	१४
आप्या:	५	५	५	५	५	५	१६९	१६९	५	५	५	५	५	१६९	५	५	१५
तैजसा:	१०	१०	१६६	१६६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१६६	१०	१०	१०	१०	१५
वायव्या:	१६०	१६०	४	४	४	४	४	४	२	२	१६०	४	४	४	२	२	२३५
नाभसा:	४	४	४	४	४	४	४	४	१६०	१६०	४	४	४	४	१६०	१६०	४

संख्या	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४
वर्गा:	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द
भौमा:	१४	२४५	१४	१४	१४	१४	२४५	१४	१४	१४	१४	२९५	१४	१४	१४	१४	२९५
आप्या:	५	५	२३६	५	१५	५	५	२३६	५	१५	५	५	२३६	५	१५	५	५
तैजसा:	२४१	१०	१०	१०	१५	२४१	१०	१०	१०	१५	२४१	२४१	१०	१०	१५	२९१	२४१
वायव्या:	२	४	४	४	२३५	२	४	४	४	२३५	२	२	४	४	२३५	४	२
नाभसा:	४	४	४	२३५	४	४	४	४	२३५	४	४	४	४	४	४	४	४

संख्या	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१
वर्गा:	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ	क्ष
भौमा:	१४	१४	१४	१४	१४५	१४	१४	१४	१४	१४५	१४	१४	१४	१४	१४	१४५	१४
आप्या:	२३६	५	५	५	५	५३६	५	५	५	५	८३६	५	५	८३६	५	५	५
तैजसा:	१०	१०	१०	२९१	१०	१०	१०	१०	५४१	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	७००४१
वायव्या:	४	४	२९१	४	४	४	४	५३५	४१	४	४	४	८३५	४	४	४	४
नाभसा:	४	४	४	४	४	४	५३६	४	४	४	४	८३५	४	४	७००३५	४	४

मूलाधारस्थपद्मस्य कर्णिकायां शिवात्मकः ॥३९॥
षट्पञ्चाशद्भिरुस्त्रैश्च प्रसरद्भिर्दलाब्धिके। आवृतः पृथिवीवर्णः स्वाधिष्ठानाह्वयाम्बुजे ॥४०॥
कर्णिकायां द्विषष्टिश्च मयूखैः परिवारितः। तेजोभिर्व्याप्तपत्रैश्चानलवर्णः शिवात्मकः ॥४१॥
मणिपूराख्यचक्रस्थकर्णिकायां समावृतः। द्वासप्ततिमयूखैश्चामृताख्यैरमृतार्णकः ॥४२॥
अनाहताख्यचक्रस्थकर्णिकायां शिवात्मकः। चतुःपञ्चाशदुस्त्रैश्चावृतो मारुतवर्णकः ॥४३॥
विशुद्धाख्ये महाचक्रे कर्णिकायां समावृतः। द्वासप्ततिमयूखैश्च नाभसैः शिव एव हि ॥४४॥
आज्ञायाः कर्णिकामध्ये मनोवर्णः शिवात्मकः। चतुःषष्टिमयूखैश्चावृतोऽमृतमयः सदा ॥४५॥
सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां समावृतः। षट्शताधिकसाहस्रमयूखैर्मानसैः सदा ॥४६॥
दलैः सहस्रसंख्याकैः सहस्रकिरणात्मकैः। षट्शतैः स्वाङ्गभूतैश्च विसर्गात्मा शिवात्मकः ॥४७॥
विसर्गस्था मयूखाश्च षट्चक्रस्थाश्च रश्मयः। सोमसूर्याग्निमयाष्टात्रिंशत्संख्याकलात्मभिः ॥४८॥
पञ्चब्रह्मात्ममन्त्राणामष्टात्रिंशत्कलात्मभिः। तेजोभिर्मिश्रिताः सन्तः प्रसर्पन्तः परस्परम् ॥४९॥
वाच्यवाचकरूपेण जगत्स्थावरजङ्गमम्। व्याप्य तिष्ठन्ति वै सर्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः ॥५०॥
षोडशार्णा महाविद्या चन्द्रमण्डलरूपिणी। षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्पूर्णा सुधावृष्टिमयी सदा ॥५१॥
पूर्णमण्डलरूपा च सर्वतेजोमयी परा। इति।

अत्र पाञ्चभौतिकरश्मीनां सहस्रारस्थितमानसरश्मीनां परस्परप्रतिफलनेन पञ्चाशद्भूतवर्णानां यावन्तो रश्मयः सम्भूयन्ते, तावन्तः प्रतिवर्णरश्मयो द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशन्मानसरश्मिसञ्चये अथच द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशन्मानसरश्मयः प्रतिवर्णं प्रतिफलन्तीत्यर्थः।

मूलाधार स्थित पद्म की शिवात्मक कर्णिका के प्रसृत दल में छप्पन रश्मियाँ होती हैं। स्वाधिष्ठान पद्म की कर्णिका में बासठ मयूखों से परिवारित तेजव्याप्त दलों में शिवात्मक अग्निबीज वर्ण हैं। मणिपूर नामक कमल की कर्णिका में बहत्तर मयूखों से समावृत अमृता नामक अमृत वर्ण हैं। अनाहत चक्र की कर्णिका में शिवात्मक चौवन मयूखों से आवृत वायव्य वर्ण हैं। विशुद्धि नामक महाचक्र की कर्णिका में बहत्तर मयूखों से समावृत नाभस रश्मियाँ हैं। आज्ञा चक्र की कर्णिका में मानस शिवात्मक वर्ण चौसठ मयूखों से आवृत अमृतमय हैं। सहस्रार महापद्म की कर्णिका में एक हजार छः सौ मयूखों से समावृत मानस रश्मियाँ हैं। हजार दलों में हजार किरणात्मक छः सौ स्वाङ्गभूत विसर्गात्मा शिवात्मक का वास है। विसर्ग में छः चक्रों की रश्मियाँ सोम-सूर्याग्निमय अड़तीस कला के रूप में हैं। पञ्च ब्रह्मात्मक मन्त्रों में अड़तीस कलायें तेजमिश्रित परस्पर प्रसरित हैं। वे सभी वाच्य-वाचक रूप में स्थावर जंगम जगत् को व्याप्त करके सभी सृष्टि स्थिति प्रलयकारिणी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। षोडशाक्षरी विद्या चन्द्रमण्डलरूपिणी है। वे सभी छत्तीस तत्त्वों से युक्त हैं एवं सदा सुधा की वृष्टि करती रहती हैं। साथ ही सर्वतेजोमयी, परा एवं पूर्णमण्डलरूपा हैं।

यहाँ पर पाँचभौतिक रश्मियों एवं सहस्रारस्थित मानस रश्मियों के परस्पर प्रतिफलन से उत्पन्न पचास वर्ण की जितनी रश्मियाँ उत्पन्न होती हैं, उन प्रति वर्णों की बत्तीस-बत्तीस मानस रश्मियों का समूह होता है और बत्तीस-बत्तीस मानस रश्मियाँ प्रतिवर्ण के अनुसार प्रतिफलित होती हैं।

विद्यायाः मन्त्रस्य वा छन्दोज्ञानक्रमः

ईशानवक्त्रसम्भूतकलानां पञ्चकस्य तु। एकैकस्याः कलायास्तु त्रिशतं विंशदुत्तरम् ॥१॥
मानसात्मकरश्मीनां क्रमो ज्ञेयो मनीषिभिः। मन्त्रस्य वाथ विद्याया अष्टषष्टिमितार्णकाः ॥२॥
द्वात्रिंशद्भिर्मानसैश्च गुणिताः पूर्णमानसैः। हृताश्चेत्तत्र यल्लब्धं तच्छन्दस्तन्मनोः स्फुटम् ॥३॥
शेषाङ्कपूर्णरूपेण महाविद्या भवत्यसौ। न्यूने न्यूना क्रमस्त्वेवं ज्ञातव्यः सिद्धिमिच्छता ॥४॥

अत्र यस्या विद्याया मन्त्रस्य वा स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृता वर्णा यावन्तो जायन्ते, तावन्तो द्वात्रिंशदङ्केन गुणनीयाः। प्रत्यर्णं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशन्मानसरश्मिक्रमत्वात्। अथच पूर्णमानसैः षट्शतोत्तरसहस्रसंख्याकैर्भागहरणेन यल्लब्धं तत्तन्मन्त्रस्य च्छन्दो ज्ञेयम्। तत्रापि षड्विंशतोऽधिकं लब्धं चेत्प्राप्यते तदपि षड्विंशता भागहरणेन यदुर्वरितं तच्छन्द इति ज्ञेयम्। तथा पूर्णमानसैर्भागहरणाद्यदुर्वरितं, तत् षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याङ्कश्चेत् सा विद्या महाविद्येति ज्ञेयम्। ततोऽधिकं चेत्तदपि ज्ञेयं, न्यूनं चेन्न्यूनं ज्ञेयमित्यर्थः।

अत्र विद्यार्णरूपस्य द्वात्रिंशद्गुणनेन च। हृतेन मानसैश्चापि क्वचिन्नोर्वरितं यदि॥१॥
लब्धं षड्विंशता चैव हरेल्लब्धं भवेच्च तत्। तच्छन्दः..................................॥२॥

अस्यार्थः—मन्त्रस्य विद्याया वा वर्णाः स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृताः द्वात्रिंशता गुणिताः पूर्णमानसैर्हृता-श्चेच्छेषाङ्को नोर्वरितस्तदा लब्धमेव षड्विंशता हरेच्छन्दः प्राप्यते, एवं क्रमः सर्वत्र ज्ञेयः।

मन्त्रविद्यार्णरूपं तु द्वात्रिंशद्गुणितं यदि। पूर्णतां न लभेद्यत्र दशघ्नीकृत्य चाहरेत्॥१॥

अस्यार्थः—मन्त्रविद्याक्षराणि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतानि द्वात्रिंशता गुणयेत् तदा पूर्णता षोडशशतानि न जायन्ते चेद् दशगुणितं कृत्वा षोडशशतैर्भागमाहरेत्। अन्यत्सर्वं प्राग्वत्।

ईशान मुखसम्भूत कलापञ्चक में एक-एक कला की तीन सौ बीस-तीन सौ बीस मानस रश्मियाँ होती हैं। मन्त्र अथवा विद्या के अडसठ वर्ण हैं। बत्तीस मानस से गुणित गुणनफल में पूर्ण मानस से भाग देने पर जो शेष बचता है, उससे छन्द और मन्त्र प्रकट होते हैं। पूर्ण शेषांक रूप में यह महाविद्या है। सिद्धि की कामना वाले इनका क्रम न्यून में न्यून जानना चाहिये।

यहाँ पर जिस विद्या या मन्त्र के स्वर-व्यञ्जनों को पृथक् करने पर जितने वर्ण होते हैं, उनमें बत्तीस से गुणा करे। प्रत्येक वर्ण में बत्तीस-बत्तीस मानस रश्मियों से गुणा करे। एक हजार छः सौ पूर्ण मानस संख्या से भाग देने पर जो लब्धि होती है, वह मन्त्र का छन्द होता है। वहाँ पर लब्धि यदि छत्तीस से अधिक होती है तब छत्तीस से भाग देने पर जो लब्धि होती है, वह मन्त्र का छन्द ज्ञेय है। पूर्ण मानस से भाग देने पर जो लब्धि होती है, वह पाँच सौ छिहत्तर होती है। इसे महाविद्या कहते हैं। उससे कुछ अधिक हो तब भी महाविद्या ज्ञेय है। कुछ कम भी महाविद्या मानी जाती है।

विद्या वर्णों के रूप को बत्तीस से गुणा करने और मानसों से भाग देने पर यदि कुछ भी नहीं बचता तो लब्धि में छब्बीस का भाग देने पर छन्द होता है। अर्थात् मन्त्र या विद्या के स्वर-व्यञ्जन को पृथक्-पृथक् करके बत्तीस से गुणा करे और पूर्ण मानस से भाग देने पर शेष कुछ नहीं बचता, तब लब्धि में छब्बीस से भाग देने पर जो शेष बचे, वही छन्द है। यह क्रम सर्वत्र मान्य है।

मन्त्र-विद्या वर्णों को बत्तीस से गुणा करने पर यदि पूर्णता प्राप्त न हो तो दश से भाग देना चाहिये। मन्त्र विद्या अक्षर के स्वर-व्यञ्जन को पृथक्-पृथक् करके बत्तीस से गुना करने पर यदि सोलह सौ नहीं होता तब दश से गुना करके सोलह से भाग देना चाहिये।

षोडशीविद्याया रश्मिवृन्दसङ्कलनं छन्दोज्ञानक्रमश्च

श्रीविद्यायाश्च षोडश्याः सहस्राणि च विंशतिः। षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं भवेयुर्नाभसांशवः॥१॥
पञ्चोत्तरं च नवतिर्द्विसहस्रं शताष्टकम्। पार्थिवा रश्मयश्चाथ षट्सहस्राणि चैव हि॥२॥
अष्टौ शतान्येकषष्टिस्तैजसा रश्मयो ह्यथ। पञ्चसप्तत्युत्तरशतं सहस्रं वायुरश्मयः॥३॥
अष्टादशोत्तरं पञ्चशतं वेदसहस्रकम्। मयूखा ह्यमृतात्मानो वक्ष्ये सङ्कीर्णरश्मिकम्॥४॥
त्रिशतं च चतुःषष्टिर्वियद्वर्णेषु पार्थिवाः। षष्ट्युत्तरं शतं चाप्यास्तावन्तस्तैजसाः स्मृताः॥५॥
शतं च चत्वारिंशच्च वायव्याः संप्रकीर्तिताः। चतुस्त्रिंशद्द्वेदशतं पार्थिवा ह्यनलेषु च॥६॥

शतं च पञ्चपञ्चाशदाप्याश्च शतमेव च। चतुर्विंशतिसंख्याका वायव्याः संप्रकीर्तिताः ॥७॥
तावन्तो नाभसाः प्रोक्तास्ततो भूवर्णसञ्चये। त्रिंशदाप्याश्च चाग्नेया अशीतिश्चतुरुत्तरा ॥८॥
वायव्याश्च चतुर्विंशत्तावन्तो नाभसाः स्मृताः। सप्तत्युस्राः समुद्दिष्टाः वायुवर्णेषु पार्थिवाः ॥९॥
पञ्चविंशतिश्चाप्यास्तु पञ्चाशत्तैजसाः स्मृताः। नाभसा विंशतिः प्रोक्ताश्चाप्यवर्णेषु पार्थिवाः ॥१०॥
अष्टाविंशत्युत्तरं च शतसप्तकमेव च। तैजसाः सप्ततिर्ज्ञेया अष्टाविंशतिर्वायुजाः ॥११॥
तावन्तो नाभसा ज्ञेयाः सङ्कीर्णा रश्मयस्त्विमे। अन्ये तद्भूतवर्णस्य तत्तद्भूतांशवो निजाः ॥१२॥ इति।

अन्ये भूतांशवः सङ्कीर्णाः मानसा अपि तत्रैव ज्ञेयाः। ऊर्ध्वाम्नायक्रमे—मानसाः सहजा, अन्ये सङ्कीर्णा इति केचित्। अत्र यथागुरूपदेशं बोद्धव्यम्।

श्रीविद्या षोडशी में एक हजार तीन सौ छबीस नाभस रश्मियाँ होती हैं। दो हजार आठ सौ पच्चानबे पार्थिव रश्मियाँ होती हैं। छः हजार आठ सौ इकसठ तैजस रश्मियाँ होती हैं। एक हजार एक सौ पचहत्तर वायव्य रश्मियाँ होती हैं। चार हजार पाँच सौ अट्ठारह रश्मियाँ जलीय होती हैं। नाभस्य वर्णों में तीन सौ चौंसठ पार्थिव रश्मियाँ रहती हैं। एक सौ आठ जलीय रश्मियाँ और इतनी ही तैजस रश्मियाँ होती हैं। एक सौ चालीस वायव्य रश्मियाँ होती हैं। चार सौ चौंतीस पार्थिव रश्मियाँ हैं। अग्निवर्णों में पाँच सौ पचास जलीय रश्मियाँ होती हैं। चौबीस वायव्य रश्मियाँ होती हैं। पार्थिव वर्णों की इतनी ही नाभस रश्मियाँ होती हैं। तीस जलीय एवं चौरासी तैजस रश्मियाँ तथा वायव्य और नाभस चौबीस-चौबीस होती हैं। सत्तर रश्मियाँ वायु वर्णों में पार्थिव होती हैं। पच्चीस जलीय एवं पचास तैजस होती हैं। बीस नाभस रश्मियाँ होती हैं। जलीय वर्णों में पार्थिव रश्मियाँ सात सौ अट्ठाईस एवं तैजस एक सौ सात होती हैं। अट्ठाईस वायव्य और इतनी ही नाभस रश्मियाँ होती हैं। ये सङ्कीर्ण रश्मियाँ हैं।

पराप्रासादमन्त्रस्य पञ्चोत्तरसहस्रकम्। आप्यास्तथा पञ्चनवत्युत्तरं च शताष्टकम् ॥१॥
सहस्रं नाभसाः प्रोक्ताः सङ्कीर्णाः पार्थिवाः स्मृताः। षट्पञ्चाशत्समाख्याताश्चत्वारिंशच्च तैजसाः ॥२॥
वायव्याः षोडश प्रोक्ता नाभसाः षोडशैव हि। आप्या दश समाख्याता मानसाः प्राग्वदेव हि ॥३॥ इति।
प्रत्यर्णं द्वात्रिंशत्क्रमेणाष्टाविंशत्युत्तरशतं रश्मय इत्यर्थः।

पराप्रासादवर्णौघं गुण्यात्तन्मानसांशुभिः। षड्विंशता हरेच्छेषं लब्धाङ्केन पुनर्हरेत् ॥१॥
तल्लब्धं तस्य मन्त्रस्य च्छन्दो ज्ञेयं मनीषिभिः। इति।

पराप्रासादमन्त्रस्य वर्णाः स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृता द्वात्रिंशद्भिर्गुणिताः षड्विंशता हृताः शेषं लब्धाङ्केन हृतं तच्छेषं तल्लब्धाङ्केन हरेत्तल्लब्धं तच्छन्दः इत्यर्थः।

पराप्रासाद मन्त्र में एक हजार पाँच जलीय रश्मियाँ होती हैं। एक हजार आठ सौ पच्चानबे नाभस रश्मियाँ होती हैं। छप्पन पार्थिव एवं चालीस तैजस रश्मियाँ होती हैं। वायव्य सोलह और नाभस भी सोलह होती हैं। आप्य रश्मियाँ दश होती हैं। मानस पूर्ववत् होती हैं। प्रत्येक वर्ण के बत्तीस क्रम से एक सौ अट्ठाईस रश्मियाँ होती हैं। पराप्रासाद वर्णों के समूह में उसकी मानस रश्मियों से गुना करके छब्बीस से भाग देने पर शेष में लब्धांक से पुनः भाग देवे। उससे प्राप्त अंक को छन्द कहते हैं। आशय यह है कि पराप्रासाद मन्त्रवर्णों के स्वर-व्यञ्जन को अलग-अलग करके बत्तीस से गुणा करके छब्बीस से भाग देने पर लब्धि मन्त्र का छन्द होता है।

कालीविद्यायाश्छन्दोज्ञानविधिः

तथा—
कालिकाया महाविद्यावर्णा द्वात्रिंशता हताः। हताश्च मानसैः पूर्णैः शेषं षड्विंशता हरेत् ॥१॥
शेषं लब्धं तु संयोज्य पुनः षड्विंशता हरेत्। शेषं छन्दस्तु विज्ञेयं सम्यक् तत्त्वविशारदैः ॥२॥ इति।

अस्यार्थः—विद्याया वर्णाः स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृताः द्वात्रिंशद्भिर्गुणिताः पूर्णमानसांशुभिर्हृताः शेषं षड्विंशता हरेत्, तच्छेषे तत्फलं संयोज्य पुनः षड्विंशता हरेत् तच्छेषं छन्दो ज्ञेयमिति।

रससंख्याः क्षितेर्भागा द्वौ भागावमृतस्य च। द्वाविंशत्यग्निभागाश्च वायुभागाश्चतुर्दश ॥१॥
पञ्चविंशतिभागाश्च व्योम्नश्च परिकीर्तिताः। अष्टोत्तरं च द्विशतं सहस्रद्वयमेव च ॥२॥
मानसा रश्मयो ज्ञेया भूतभागोद्भवांशवः। प्रागुक्तक्रमतो ज्ञेया रश्मिक्रम उदाहृतः ॥३॥ इति।

कालिका महाविद्या वर्णों में बत्तीस से गुणा करे। पूर्ण मानस से भाग दे। शेष को छब्बीस से भाग दे। लब्ध शेष को जोड़कर फिर छब्बीस से भाग दे। शेष को तत्त्वविशारद छन्द मानते हैं अर्थात् विद्यावर्णों के स्वर-व्यञ्जन को अलग-अलग करके बत्तीस से गुणा करे, उसमें पूर्ण मानस से भाग दे। शेष में छब्बीस से भाग दे। उस शेष में उसके फल को जोड़ने पुनः छब्बीस से भाग देने पर छन्द होता है।

छः भाग पृथिवी के, दो भाग जल के, बाईस भाग अग्नि के, वायु के चौदह भाग एवं आकाश के पच्चीस भाग होते हैं। दो हजार दो सौ आठ मानस रश्मियाँ होती हैं। भूतभाग से उत्पन्न रश्मियाँ पूर्वोक्त क्रम से ज्ञेय हैं।

कादिमते कामेश्वरीनित्याप्रयोगः

अथ कादिमते कामेश्वर्यादिनित्यानां प्रयोगविधिर्लिख्यते। 'ह्रींक्लींऐंब्लूंस्त्रीं' इति पञ्चकामा भवन्ति। तन्त्रराजे (प० ७ श्लोक ३९)—

एषां यन्त्राणि सर्वाणि त्रैलोक्यक्षोभणानि च। तानि क्रमेण कथयाम्याकर्णय समाहिता ॥१॥
तेषु पञ्चसु बीजेषु पुनरुक्तविवर्जितैः। योजयेदष्टभिस्तैस्तैः स्वरान् षोडश मायया ॥२॥
अष्टाविंशतिसंयुक्तं शतं तेन भवन्ति वै। तैर्यन्त्राणि विधेयानि पञ्चानां क्रमतः शिवे ॥३॥ इति।

अस्यार्थः—प्रोक्तपञ्चसु बीजेषु द्वितीयबीजस्य जठरे प्रथमबीजं॥१॥ तृतीयबीजजठरे द्वितीयं बीजं॥२॥ चतुर्थबीजजठरे तृतीयं बीजं॥३॥ पञ्चमबीजजठरे चतुर्थं बीजं॥४॥ चतुर्थबीजजठरे पञ्चमं बीजं॥५॥ तृतीयबीजजठरे चतुर्थं बीजं॥६॥ द्वितीयबीजजठरे तृतीयं बीजं॥७॥ प्रथमबीजजठरे द्वितीयं बीजं॥८॥ एवमष्टौ बीजानि पुनरुक्तवर्जितानि भवन्ति। एतानि प्रत्येकं षोडशस्वरयुक्तानि कर्तव्यानि, तदा संख्यया १२८ बीजानि भवन्ति। एतैर्यन्त्राणि विधेयानीत्यर्थः।

कादिमत में कामेश्वरी आदि नित्याओं की प्रयोगविधि—ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं—ये पाँच कामबीज हैं। तन्त्रराज में कहा गया है कि इनके सभी यन्त्र त्रैलोक्य में क्षोभ उत्पन्न करने वाले होते हैं। उन्हें क्रम से कहता हूँ, ध्यान से सुनो। उन पाँच बीजों में पुनरुक्ति न करते हुये उनमें आठ स्वरों को जोड़कर उन्हें सोलह माया से जोड़े। इससे वे एक सौ अट्ठाईस होते हैं। उससे पाँच-पाँच यन्त्र बनाना चाहिये अर्थात् प्रोक्त पाँचों बीजों में से दूसरी बीज के मध्य में प्रथम बीज जोड़े। तृतीय बीज के मध्य में द्वितीय बीज जोड़े। चतुर्थ बीज के मध्य में तृतीय बीज जोड़े। पञ्चम बीज के उदर में चतुर्थ बीज जोड़े। चतुर्थ बीज के उदर में पञ्चम बीज जोड़े। तृतीय बीज के उदर में चतुर्थ बीज जोड़े। द्वितीय बीज के उदर में तृतीय बीज जोड़े और प्रथम बीज के जठर में द्वितीय बीज जोड़े। इस प्रकार आठो बीज पुनरुक्ति से रहित होते हैं। प्रत्येक को सोलह स्वरों से युक्त करे। तब एक सौ अट्ठाईस बीज बनते हैं। इनसे यन्त्र का निर्माण करना चाहिये।

यन्त्ररचनाप्रकारः

यन्त्ररचनाप्रकारमाह—

वृत्तत्रयस्थं षट्कोणं कृत्वा मध्ये स्वमक्षरम्। लिखेत् साध्याख्ययोपेतं षट्कोणेषु च तन्पुनः ॥१॥
विभज्य बिन्दुमायाभ्यामध ऊर्ध्वं लिखेत्क्रमात्। वृत्तान्तरालयोर्बाह्ये चतुःषष्ट्या द्विरालिखेत् ॥२॥
एवं यन्त्राणि पञ्च स्युः पञ्चानां क्रमतः शिवे। इति।

अस्यार्थः—प्रथमतः षट्कोणं कृत्वा तद्बहिर्वृत्तत्रयं विधाय मध्ये साध्यनामसहितं प्रकृतिस्थपञ्चकामेषु

प्रथमं बीजं विलिख्य षट्सु कोणेषु तदेव बीजं विलिख्य प्रोक्ताष्टाविंशत्युत्तरशतं बीजानि चतु:षष्ट्या द्विधा विभज्य वृत्तत्रयान्तरालद्वयेऽभ्यन्तरान्तराले बिन्दुयुक्तानि प्रथमचतु:षष्टिबीजानि पङ्क्त्याकारेण विलिख्य, तद्बाह्यान्तराले द्वितीयचतु:षष्टिबीजानि विसर्गयुक्तानि लिखेत्, इदं प्रथमं यन्त्रम्। द्वितीयबीजं मध्ये साध्यसहितं विलिख्य षट्कोणेषु द्वितीयमेव बीजं विलिख्य बहिरन्तरालद्वये प्राग्वद्विलिखेदिति द्वितीययन्त्रम्। एवं तृतीयबीजेन तृतीयं यन्त्रम्। चतुर्थबीजेन चतुर्थं यन्त्रम्। पञ्चमबीजेन पञ्चमं यन्त्रम्। इति पञ्च यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थ:। अथ पञ्चबीजैरेकमेव यन्त्रं लेखनीयमित्याह—

पञ्चभिस्त्वेकमस्त्यन्यद्यन्त्रं सुमहदद्भुतम्। द्वितीयजठरे त्वाद्यं सनामाभिलिखेत्तयो: ॥१॥
बहिस्तृतीयरूपेण षट्कोणेन प्रवेष्टयेत्। चतुर्थं विलिखेत्कोणेष्वेषु षट्स्वपि पार्वति ॥२॥
वेष्टयेत्पञ्चमेनैव तद्यन्त्रं सर्वमोहनम्। इति।

अस्यार्थ:—द्वितीयबीजस्य क्लींकारस्य जठरे प्रथमबीजं ह्रीमिति बीजं साध्यनामगर्भं विलिख्य, तद्बहिस्तृतीयबीजेन ऐंकारेण अधरोत्तरयोगेन षट्कोणं कुर्यात्। अत्र ऐंकारस्य त्रिकोणरूपत्वाद्बीजद्वयरूपत्रिकोणद्वयेन षट्कोणेनावेष्ट्य षट्कोणेषु चतुर्थबीजं ब्लूंकारं विलिख्य पञ्चमबीजेन स्त्रींकारेण षट्कोणाद्बहिर्वेष्टयेत्, यथा स्त्रींकारगर्भे सर्वं भाति तथा कुर्यादित्यर्थ:। एवं षट्चक्राणि जातानि।

यन्त्ररचना का प्रकार—षट्कोण बनाकर उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। मध्य में साध्य नाम सहित पाँच कामबीजों में से पहला 'ह्रीं' लिखे। षट्कोण के कोनों में 'ह्रीं' लिखे। प्रोक्त एक सौ अट्ठाईस बीजों को चौंसठ-चौंसठ दो भागों में विभाजित करके तीन वृत्तों के दो अन्तरालों में सानुस्वार प्रथम चौंसठ बीजों को पंक्ति के आकार में लिखे। उसके बाहर के अन्तराल में द्वितीय चौंसठ बीजों को विसर्गसहित लिखने से प्रथम यन्त्र बनता है। द्वितीय बीज क्लीं को साध्य नामसहित मध्य में लिखे। षट्कोण के कोनों में केवल क्लीं लिखे। इसके बाहर दोनों अन्तरालों में पूर्ववत् एक सौ अट्ठाईस बीजों को लिखने से द्वितीय यन्त्र बनता है। इसी प्रकार तृतीय बीज से तृतीय यन्त्र, चतुर्थ बीज से चतुर्थ यन्त्र और पञ्चम बीज से पञ्चम यन्त्र बनाने से कुल पाँच यन्त्र बनते हैं।

पाँचों बीजों से एक ही यन्त्रलेखन—द्वितीय बीज क्लीं के जठर में प्रथम बीज ह्रीं को साध्य नामसहित लिखे। तृतीय बीज ऐं को षट्कोणों के कोनों में अधरोत्तर योग से लिखे। ऐंकार के त्रिकोण रूप होने के कारण बीज द्वय रूप त्रिकोण द्वय को त्रिकोण से वेष्टित करके छ: कोनों में चतुर्थ बीज ब्लूं लिखे। पञ्चम बीज स्त्रीं से षट्कोण को बाहर से वेष्टित करे। इस प्रकार पञ्चम बीज स्त्रीं के गर्भ में सभी बीज हो जाते हैं। इस प्रकार कुल छ: यन्त्र बनते हैं।

समययन्त्रयोरुद्धारक्रम:

अथ समययन्त्रयोरुद्धारक्रममाह—

तस्यापि परतो बाह्ये तैरावेष्ट्य पुरोदितै:। यन्त्रान्तरं तु जनयेद् बहिर्मातृकयापि च ॥१॥ इति।

प्रोक्तषष्ठयन्त्रस्य बहिर्वृत्तत्रयं विधाय प्राग्वत् १२८ बीजैश्चतु:षष्ट्या द्विरालिखेत् सप्तमं यन्त्रं भवति। एतस्यैव षष्ठयन्त्रस्य बहिर्वृत्तत्रयान्तरालद्वये प्राग्वद् बिन्दुयुक्तां विसर्गयुक्तां च लिखेत्, इदमष्टमं यन्त्रं भवतीति।

यन्त्राण्यष्टौ भवन्त्येवं पञ्चकामात्मकानि वै। तैरसाध्यं जगत्स्वेषु किञ्चित्तु न कदाचन ॥१॥
मनुजं मनुजेशं वा महिलां वा मदाबिलाम्। अष्टसूक्तेषु मध्यस्थं भावयेत् स्वेन तेजसा ॥२॥
एकीभूतं जपेदेतान्यक्षराण्यपि पञ्च वै। तेन ते वशगा: क्षिप्रं यावज्जीवं न संशय: ॥३॥
तेष्वष्टमस्य मध्यस्थमात्मसाध्यं जपारुणम्। तन्मन्त्रार्णप्रकाशैश्च तथारुणतरैर्वृतम् ॥४॥
भावयन्नात्मना ग्रस्तं जपेत्ताराक्षराण्यपि। तेन ते वशगा: क्षिप्रं दद्यु: प्राणान्धनानि च ॥५॥
तस्य षष्ठस्य मध्यस्यबीजं मन्त्रेण वेष्टयेत्। प्राग्वन्निजसुषुम्नान्तर्भावयेद्योनिमुद्रया ॥६॥
एतदष्टकमध्यस्थं कुम्भं कृत्वा यथाविधि। तेनाभिषिञ्चेद् दौर्भाग्यरोगदारिद्र्यमुक्तये ॥७॥

कुचन्दनैर्वा सिन्दूरैर्गैरिकैर्दरदैस्तु वा। कृत्वा चक्राष्टकं भूमौ फलकायां शिलासु च ॥८॥
मध्ये विद्यावृतं कृत्वा तत्रावाह्याभिपूज्य ताम्। कामेश्वरीं तदग्रस्थो जपेल्लक्षं पयोव्रतः ॥९॥
तेनास्य पूर्वजन्मान्तर्दुष्कृतान्यपयान्ति वै। अस्मिञ्जन्मनि सल्लक्ष्मीमवाप्य सुखमेधते ॥१०॥
नरं नारीं नृपं वान्यं नगरं वाथ पत्तनम्। देशं जनपदं विश्वं तन्मध्ये प्रविलिख्य तत् ॥११॥
पूजयेदरुणैः पुष्पैर्गन्धैः काश्मीरसम्भवैः। नैवेद्यैः कदलीदुग्धशर्करापायसादिभिः ॥१२॥
मण्डलं वा तदर्धं वा सप्तवासरमेव वा। कन्दर्पसमसौभाग्यो जायते नियतं नरः ॥१३॥
सुवर्णादिषु संलिख्य धारणाद्धरणीतले। लक्ष्मीकान्तिधनारोग्यैरायुः पूर्णमवाप्नुयात् ॥१४॥
अनावृत्तैस्तु विद्यार्णैः षोडशस्वरयोजनात्। द्वानवत्या शतं वर्णा जायन्ते मन्त्रसंभवाः ॥१५॥

अस्यार्थः—कामेश्वर्या मन्त्रस्यैकादशाक्षरस्यानावृत्ताक्षराणि 'असकलहरनतयमदव' इति द्वादशाक्षराणि भवन्ति। ते षोडशस्वरयोगेनाङ्कतः १९२ वर्णा भवन्तीति।

समय यन्त्रोद्धार क्रम—उपर्युक्त छठे यन्त्र के बाहर पूर्ववत् तीन वृत्त बनाकर उनके अन्तरालों में एक सौ अट्ठाईस बीजों के चौंसठ-चौंसठ भागों को लिखने से सातवाँ यन्त्र बनता है। इस छठे यन्त्र के बाहर तीन वृत्तों के दो अन्तरालों में पूर्ववत् बिन्दुयुक्त और विसर्गयुक्त चौंसठ बीजों को लिखने से अष्टम यन्त्र बनता हैं।

इस प्रकार कुल आठ पञ्च कामात्मक यन्त्र बनते हैं। इन यन्त्रों से संसार में कुछ भी असाध्य नहीं रहता। साधारण मनुष्य या राजा या स्त्री या मदगर्वित किसी के भी नाम को उक्त आठ यन्त्रों के मध्य में लिखकर उन मन्त्रवर्णों के अड़हुल जैसे लाल प्रकाश से आवृत अपने को मानकर उन पाँच बीजों के साथ नामाक्षरों के जप से साध्य आजीवन वश में हो जाता है। उन आठों के मध्यस्थ अपने साध्य को अड़हुल के वर्ण का उन वर्णों के लाल प्रकाश से आवृत समझे। अपने को भी लाल प्रकाश से आवृत्त समझकर उन अक्षरों का जप करे तो साध्य वश में होकर अपना प्राण और धन भी दे देते हैं। उक्त छठे यन्त्र के मध्य बीज को मन्त्र से वेष्टित करे। पूर्ववत् सुषुम्ना में योनि मुद्रा से भावना करे। तब साध्य वश में होता है। इन आठ यन्त्रों में यथाविधि कलश स्थापित करके उनके जल से अभिषेक करने पर दुर्भाग्य, रोग, दारिद्र्य से छुटकारा प्राप्त होता है। भूमि या पत्थर पर आठो यन्त्रों को लाल चन्दन या सिन्दूर या गेरु या दरद से लिखकर मध्य को विद्या से वेष्टित करे। उसमें कामेश्वरी का आवाहन करके पूजा करे। दुग्धाहार पर रहकर उसके सामने एक लाख जप करे। इससे साधक के पूर्व ज़न्मान्तरों के पापों का नाश होता है और इस जन्म में लक्ष्मीवान होकर वह सुख भोगता है। उसके मध्य में नर, नारी, नृप या अन्य, नगर या पत्तन, देश, जनपद, विश्व को लिखकर लाल फूल गन्ध-केसर से पूजा करे। नैवेद्य में केला दूध शक्कर पायस आदि अर्पण करे। ऐसा चालीस दिनों तक या बीस दिनों तक या सात दिनों तक करने से मनुष्य कामदेव के समान सौभाग्यशाली हो जाता है। सोने आदि पर लिखकर उसे धारण करने पर लक्ष्मी, कान्ति, धन, आरोग्य और पूर्णायु प्राप्त करता है। विद्या वर्णों के स्वर-व्यञ्जनों को पृथक् करके सोलह स्वरों के साथ जोड़ने पर मन्त्र के वर्णों की संख्या एक सौ बानवे होती है अर्थात् कामेश्वरी मन्त्र के ग्यारह अक्षरों के अनावृत अक्षर 'असकलहरनतयमदव'—ये बारह होते हैं। इनका सोलह स्वर के योग से १६ × १२ = १९२ होते वर्ण हैं।

स्वराणां सर्वमन्त्रेषु योजनं केन हेतुना। क्रियते परमेशान तन्मे कथय सांप्रतम् ॥१॥
स्वराः षोडश देवेशि व्यञ्जनानि तथा पुनः। पञ्चत्रिंशत् समाख्यातं तयोरन्योन्यसङ्गतैः ॥२॥
भारत्या देहभूतैस्तैर्व्यञ्जनैः स्वरयोजनम्। तत्प्राणयोजनं विद्धि रहस्यं परमेश्वरि ॥३॥
भारत्या वर्णरूपाया हसौ नेत्रे समीरिते। प्राणाः स्वराः समाख्याता बिन्दुसर्गौ तु चेतना ॥४॥
अन्यान्यवयवानि स्युरन्यानि परमेश्वरि। तेन तद्युक्तितो वर्णाः प्रसीदन्ति न चान्यथा ॥५॥
बिन्दुसर्गौ हसौ तुर्यस्वरश्चेति च पञ्चमम्। भारत्या मातृकादेहे विद्धि चैतन्यजृम्भणम् ॥६॥

तेन तैर्हीनरूपास्तु मन्त्रविद्यास्तथापरे। निष्प्राणदेहवत्कार्यकरणेष्वक्षमाः स्मृताः ॥७॥
तेन सर्वत्र तु मया स्वरयोग उदीर्यते। ये ये मन्त्राः प्रोक्तवर्णविहीनास्तैश्च योजयेत् ॥८॥
तेन ते बलवन्तः स्युः कार्येषु च फलान्विताः। तस्मात्सर्वत्र संयोगात्स्वरैः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥९॥
एवं तैरेव जायन्ते यन्त्राणि सबलानि वै। द्वात्रिंशद्विनियोगांश्च वक्ष्ये तेषामनुक्रमात् ॥१०॥
वृत्तद्वयान्तः षट्कोणं कृत्वा मध्ये निजेप्सितम्। मायागर्भं समालिख्य वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥११॥ इति।

अस्यार्थः—प्रथमतः षट्कोणं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय मध्ये साध्यनामगर्भं ह्रींकारं विलिख्य, षट्सु कोणेषु द्वानवत्युत्तरशतवर्णेषु प्रथमतः षडक्षराणि विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैर्वेष्टयेदिति प्रथमं यन्त्रं भवति। द्वितीययन्त्रस्य षट्सु कोणेषु प्रोक्तवर्णसमुदायस्य प्रथमतः षड्वर्णान् विहाय सप्तमाक्षरतः षड्वर्णान् विलिखेदिति द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं तृतीययन्त्रादिषु च क्रमेण पुनरुक्तवर्जिताः षट्षड्वर्णा लेखनीयाः। अन्यत्समानम्। एवं यन्त्राणि ३२ जायन्ते।

पार्वती ने पूछा—हे परमेशान! सभी मन्त्रों में स्वरों का योजन किसलिये किया जाता है, उसे आप मुझसे कहिये। महादेव ने कहा कि हे देवेशि! सोलह स्वरों का योजन पैंतीस व्यञ्जनों के साथ इसलिये किया जाता है कि ये सरस्वती के देह से सम्भूत हैं। इससे प्राणयोजन होता है। वर्णरूपा भारती का नेत्र ह्सौं है। स्वर प्राण हैं एवं बिन्दु-विसर्ग चेतना हैं। अन्य वर्ण उनके अवयव हैं। इसलिये इस युक्ति से वर्ण प्रसन्न होते हैं; अन्यथा नहीं। बिन्दु-विसर्ग-ह-सौ-ई—ये पाँच वर्ण भारती के मातृका देह में चैतन्यजृम्भण करते हैं। उनसे रहित मन्त्र, विद्या और अन्य सभी निष्प्राण देह के समान होकर कार्य करने में असमर्थ होते हैं। इसीलिये सर्वत्र मैं स्वरयोग को कहता हूँ। जो मन्त्र उक्त वर्ण से रहित हैं, उनमें इनका योजन करना चाहिये। इससे वे बलवान होते हैं और कार्य का फल देने वाले होते हैं। इसलिये सर्वत्र स्वरसंयोजन से वे सर्वार्थसिद्धि देने वाले होते हैं। इसी प्रकार उनके योजन से यन्त्र सबल होते हैं। उनके बत्तीस विनियोगों को अनुक्रम से कहता हूँ। दो वृत्तों के अन्दर षट्कोण बनाकर मध्य में इच्छित कार्य को ह्रीं के गर्भ में लिखकर मातृकाक्षरों से वेष्टित करे। अर्थात् पहले षट्कोण बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनाये। मध्य में साध्यगर्भित ह्रींकार लिखे। एक सौ बानवे अक्षरों में पहले छः को छः कोनों में लिखे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकाक्षरों को लिखकर वेष्टित करे। द्वितीय यन्त्र में वर्णों के प्रथम छः अक्षरों को छः कोनों में लिखे। छः वर्णों को छोड़कर सप्तम वर्ण से बारहवें वर्ण तक लिखने से दूसरा यन्त्र बनता है। इसी प्रकार तृतीय चतुर्थादि यन्त्र पुनरुक्तिरहित छः वर्णों से लिखना चाहिये। इस प्रकार कुल बत्तीस-बत्तीस यन्त्र बनते हैं।

यन्त्राणां फलानि

तेषां फलान्याह—

प्रथमे कनकावाप्तिर्द्वितीये भूषणोदयः। तृतीये कन्यकासिद्धिश्चतुर्थे भूप्रतिग्रहः ॥१॥
पञ्चमे वाहनावाप्तिः षष्ठे स्त्रीवश्यमीरितम्। सप्तमे भवनावाप्तिरष्टमे धेनुसङ्गमः ॥२॥
नवमे वशयेद्भूपं दशमे वारणं हयम्। एकादशेन विजयी नरः समरसीमनि ॥३॥
वादेषु व्यवहारेषु द्यूतेषु द्विविधेष्वपि। द्वादशे चेप्सितावाप्तिः परेणारिविनाशनम् ॥४॥
गजवाजिखरोष्ट्राणां नरगोमृगपक्षिणाम्। भुजङ्गमेषमहिषवाजिनां त्वाशु नाशनम् ॥५॥
तत्तत्त्वचि च तद्रक्तलिखितं तत्र तत्र च। स्थापितं मण्डलान्मासात्सप्तरात्रादथापि वा ॥६॥
चतुर्दशेन वृष्टिः स्यात्परेण स्तम्भनं रिपोः। क्रोधवैरिसमुद्योगगमनादेरपि ध्रुवम् ॥७॥
षोडशेन धृतेनासौ भूताद्यैर्नैव बाध्यते। ततः परेण यन्त्रेण खातेन धरणीतले ॥८॥
रक्षा भवति सर्वत्र प्राणिनां जगति ध्रुवम्। अनन्तरानन्तराभ्यां खननात्फलकद्वये ॥९॥
शस्यानां बहुभिः क्लेशैर्नाशः स्याद्भूरुहामपि। देशानामपि वान्योन्यकलहात्पीडनं भवेत् ॥१०॥

अनन्तरेण यन्त्रेण विरोधो भूभुजां भवेत्। राज्यसन्धितले तस्य खनननेनाल्पकालतः ॥११॥
एकविंशेन यन्त्रेण रोगार्ता वैरिणो ध्रुवम्। द्वाविंशेन गवां रोगस्त्रयोविंशेन दन्तिनाम् ॥१२॥
चतुर्विंशेन वाहानां पञ्चविंशेन भूभुजाम्। षड्विंशेन प्रधानानां रोगावाप्तिर्दृढं भवेत् ॥१३॥
सप्तविंशेन तेषां तु प्रोक्तानां क्लेशनाशनम्। अष्टाविंशेन यन्त्रेण कृत्या प्रतिनिवर्तते ॥१४॥
धारणाद्भूषु खननाद्वृक्षाग्रादिषु बन्धनात्। तडागकूपवाप्यादिष्वर्पणात्पाति ता ध्रुवम् ॥१५॥
ततः परेण यन्त्रेण वाग्मी मूकोऽपि जायते। अत ऊर्ध्वेन यन्त्रेण वैरिवाक्स्तम्भनं भवेत् ॥१६॥
एकत्रिंशेन यन्त्रेण वाहानां दन्तिनामपि। रक्षा भवति तद्भूषु खननाद्धारणादपि ॥१७॥
द्वात्रिंशेनाम्बुधौ पोता न क्लिश्यन्ति कदाचन। पारं प्रयान्ति चाक्लेशाद्विचित्रा यन्त्रशक्तयः ॥१८॥
षोडशानां तु नित्यानां प्रत्येकं तिथिषु क्रमात्। तत्तत्तिथौ तद्भजनं जपहोमादिना चरेत् ॥१९॥
घृतं च शर्करा दुग्धमपूपं कदलीफलम्। क्षौद्रं गुडं नालिकेरं फलं लाजा तिलं दधि ॥२०॥
पृथुकं चणकं मुद्गं पायसं च निवेदयेत्। प्रतिपत्तिथिमारभ्य क्रमात् पञ्चदशस्वपि ॥२१॥
कामेश्वर्यादिशक्तीनां सर्वासामपि चोदितम्। आद्याया ललितायास्तु सर्वाण्येतानि सर्वदा ॥२२॥
निवेदयेच्च जुहुयाद्वह्नौ दद्यान्नृणामपि। विद्याभक्तिमतां नित्यमभीष्टावाप्तयेऽनिशम् ॥२३॥
तत्तद्विद्याक्षरप्रोक्तमौषधं तत्प्रमाणतः। संपिष्य गुलिकीकृत्य ताभिः सर्वं च साधयेत् ॥२४॥
अर्घ्यान्ततर्पणं नित्यं स्नानपानानुयोजनम्। पाटीरसंयुतं भाले धारणं सर्वसिद्धिकृत् ॥२५॥
राज्ञां विशेषतो रक्षां कुर्यादेतैस्तु नित्यशः। स्नाने पाने धारणे च गुलिकायोजनेन वै ॥२६॥
रोगापमृत्युकृत्यादिदोषा ग्रहसमुद्भवाः। न बाधन्ते ततो नित्यमर्चयेत्स्वगृहे क्वचित् ॥२७॥

इति कामेश्वर्याः प्रयोगविधिः।

यन्त्रों के फल—प्रथम यन्त्र से सोना, द्वितीय यन्त्र से गहने, तीसरे से विवाह एवं चौथे से भूमि की प्राप्ति होती है। पाँचवें से सवारी, छठे से स्त्री-वशीकरण, सातवें से भवन-प्राप्ति, आठवें से गोवृन्द की प्राप्ति होती है। नवें से राजा वश में होते हैं। दशवें से हाथी-घोड़े वश में होते हैं। ग्यारहवें से युद्ध में, विवाद में, व्यवहार में, जुए में जीत होती है। बारहवें से कामनायें पूरी होती हैं। तेरहवें से शत्रु का नाश होता है; हाथी, घोड़ा, गदहा, ऊँट, मनुष्य, गाय, मृग, पक्षी, सर्प, भेड़, भैंसा का शीघ्र नाश उन-उन पशुओं के चमड़े पर उसके लहू से यन्त्र को लिखकर उनके स्थान में स्थापित करने से चालीस, तीस या सात दिनों में होता है। चौदहवें यन्त्र से वर्षा होती है। पन्द्रहवें से शत्रु, क्रोध, वैरी के कार्य एवं गमनादि में स्तम्भन होता है। सोलहवें को धारण करने से भूत आदि की बाधा नहीं होती। सत्रहवें को भूमि में गाड़ने से संसार में प्राणियों की रक्षा होती है। अट्ठारहवें को गाड़ने से फसल की हानि और पेड़-पौधों का नाश होता है। उन्नीसवें को फलक पर लिखकर गाड़ने से देशों में परस्पर कलह होता है। बीसवें को दो राज्यों की सीमा के बीच में गाड़ने से दोनों देशों के राजाओं में विरोध होता है। इक्कीसवें से वैरी रोगार्त होता है। बाईसवें से गायों को रोग होता है। तेईसवें से हाथियों को रोग होता है। चौबीसवें से वाहनों में रोग होता है। पच्चीसवें से राजाओं को रोग होता है। छब्बीसवें से सामन्तगण रोगग्रस्त होते हैं। सत्ताईसवें से उनके क्लेश नष्ट होते हैं। अट्ठाईसवें से कृत्या का प्रतिनिवर्तन होता है एवं उसके धारण करने से, गाड़ने से, वृक्षाग्र में बाँधने से, कूप-तड़ाग-वापी में डाल देने से निश्चित ही उन सबकी रक्षा होती है। उन्तीसवें यन्त्र से गूँगा भी बोलने लगता है। तीसवें यन्त्र से वैरी का वाक्स्तम्भन होता है। इकतीसवें यन्त्र से सेना और हाथियों की रक्षा होती है; यदि उसे धारण किया जाय या गाड़ दिया जाय। बत्तीसवें से समुद्र में पोतों के डूबने का भय नहीं होता और वे बिना कठिनाई के समुद्र पार कर जाते हैं। इस प्रकार यन्त्रशक्ति विचित्र है। षोडश नित्याओं में से प्रत्येक की तिथि के क्रम से उसका भजन-जप-हवन आदि करना चाहिये। नैवेद्य में उन्हें घी, शक्कर, दूध, पूआ, केला, मधु, गुड़, नारियल, लावा, तिल, दही, पृथुक, चना, मूँग और पायस—इन पन्द्रह द्रव्यों को पन्द्रह तिथियों में पन्द्रह नित्याओं को क्रमशः अर्पण करना चाहिये। शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पूर्णिमा तक

पन्द्रह तिथियों में क्रमशः पन्द्रह प्रकार के उक्त नैवेद्यों को अर्पण करना चाहिये। पन्द्रह नित्याओं का उदय ललिता से होता है, इसलिये उसकी पूजा प्रतिदिन करनी चाहिये। प्रतिदिन पूजन करके हवन करना चाहिये। श्रीविद्या के भक्तों को भी नैवेद्य का प्रसाद खिलाना चाहिये। इससे नित्य अभीष्ट प्राप्त होते हैं। नित्याओं की विद्याओं के अक्षर के प्रोक्त औषधों को प्रमाण के अनुसार पीसकर गोली बनाकर उनसे सब कुछ साधित किया जा सकता है। उन गुटिकाओं को नित्य अर्घ्य-तर्पण-स्नान-पान के बाद ग्रहण करना चाहिये। चन्दन के साथ घिसकर उसका तिलक ललाट में लगाना सर्वसिद्धिकृत होता है। इससे राजा की विशेष रूप से रक्षा होती है। नित्य स्नान-पान-धारण एवं गुटिका-योजन करने से रोग-अपमृत्यु-कृत्यादि दोष एवं ग्रहादि दोष की बाधा कभी नहीं होती है। अतः अपने घर में इसका नित्य अर्चन करना चाहिये।

भगमालिनीनित्याप्रयोगविधिः तद्यन्त्ररचनाक्रमश्च

अथ भगमालिनीनित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (प० ८ श्लोक २४)—

काम्यहोममथो वक्ष्ये नानाभीष्टाप्तिदायकम्। त्रिमध्वक्तैः पुण्डरीकैर्होमाद्विप्रान् वशं नयेत् ॥१॥
आरग्वधैस्तु राजानं करवीरैस्तु वैश्यकम्। उत्पलैर्वशयेच्छूद्रं वनिता जपया हुतैः ॥२॥
बिल्वैर्लक्ष्मीर्भवेद्धोमे भूम्याढ्यः कमलैर्हुतात्। कैरवैर्वाहनावाप्तिर्दरपुष्पैर्महद्यशः ॥३॥
सौभाग्यं चम्पकैः सिद्ध्यै रक्तसौगन्धिकैर्हुनेत्। तगरैर्वस्त्रसंसिद्ध्यै पुंनागैर्भूषणाप्तये ॥४॥
मधूकैः कन्यकासिद्ध्यै पलाशैः स्वर्णसिद्धये। किंशुकैरंशुकावाप्त्यै पाटलैः पशुसिद्धये ॥५॥
रक्तोत्पलैः सर्वसिद्ध्यै होमयेत् परमेश्वरि। अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि वाञ्छितार्थप्रदानि तु ॥६॥
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमैर्लिखेत्। सर्वाणि सर्वतो यन्त्राण्यभीष्टावाप्तिकामुकः ॥७॥
सुवर्णे रजते ताम्रे त्वंशुके भूर्जपत्रके। धारणं मूर्ध्नि बाहौ वा कण्ठे कट्यां प्रकोष्ठके ॥८॥
निधाय क्वापि पूजां वा कुर्याद्यन्त्राण्यशेषतः। षट्कोणं वृत्तयोर्मध्ये कृत्वा तन्मध्यतस्तथा ॥९॥
योनिं विलिख्य तन्मध्ये मायां साध्यसमन्विताम्। विलिख्य कोणत्रितये बहिः षट्केऽपि संलिखेत् ॥१०॥
एकैकं वृत्तयोर्मध्ये शेषार्णानि समालिखेत्। बहिर्मातृकयावेष्ट्य वृत्तान्तर्बिन्दुयुक्तया ॥११॥
एवं यन्त्राणि मन्त्रार्णैर्दशभिर्दशभिर्भवेत्। चरमेऽमृतषष्ठ्यैव शेषं सम्पूरयेच्छिवे ॥१२॥ इति।

अस्यार्थः—प्रथमतस्त्रिकोणं विलिख्य तद्बहिः षट्कोणं कृत्वा तद्बहिर्वृत्तचतुष्टयं विलिख्य मध्ये साध्यनामगर्भं ह्रींकारं विलिख्य त्रिषु कोणेषु प्रथमाक्षरमारभ्य मूलमन्त्रस्याक्षरत्रयं विलिख्य, ततः षट्सु कोणेषु षडक्षराणि विलिख्य तद्बहिर्वृत्तचतुष्टयान्तरालत्रयेऽभ्यन्तरान्तराले मूलमन्त्रस्य दशमबीजं विलिख्य, तत एकादशाक्षरमारभ्य तदन्तरालं यथा पूर्णं भवति तथा पञ्चविंशत्युत्तरशतमूलमन्त्रार्णैः संवेष्ट्य, तद्बहिरन्तराले बिन्दुयुक्तमातृकाक्षरैः संवेष्ट्य तद्बहिरन्तराले विसर्गयुक्तमातृकाक्षरैः संवेष्टयेत्। एवं दशभिर्दशभिर्मूलमन्त्रार्णैः कृत्वा त्रयोदश यन्त्राणि विलिख्यावशिष्टमूलमन्त्राक्षरैः पञ्चभिः सहामृतपञ्चकं संयोज्य, दशभिरक्षरैः प्राग्वद्यन्त्रं विलिख्यामृतपञ्चकं षण्ठहीनद्वादशस्वरसंयोगेन षष्टिबीजानि कृत्वा तानि बिन्दुयुक्तानि विसर्गयुक्तानि च विंशत्युत्तरशतवर्णैः प्रथमान्तराले संवेष्ट्य तद्बहिरन्तरालद्वये बिन्दुविसर्गमातृकाभ्यां वेष्टयेदिति चतुर्दश यन्त्राणि विलिखेत्।

भगमालिनी नित्या प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि नाना अभीष्ट-प्रदायक काम्य हवन को अब मैं कहता हूँ। त्रिमधुराक्त कमल के हवन से विप्र वश में होते हैं। आरग्वध से राजा और कनैल से वैश्य, उत्पल से शूद्र और अड़हुल के हवन से वनिता वश में होती है। बेल के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। कमल के हवन से भूमि, कैरव से वाहन प्राप्ति, दरपुष्प के हवन से यश होता है। चम्पा से सौभाग्य एवं रक्तसौगन्धिक के हवन से सिद्धि होती है। तगर के हवन से वस्त्र और पुन्नाग के हवन से भूषण मिलते हैं। पत्नी-प्राप्ति के लिये महुआ से, स्वर्णसिद्धि के लिये पलाश से, रेशमी वस्त्र के लिये किंशुक से एवं पशु प्राप्ति के लिये गुलाब से हवन करे। सभी सिद्धियों के लिये लाल उत्पल से हवन करे।

अब वांछित प्रदायक यन्त्रों को कहता हूँ। चन्दन अगर कपूर कस्तूरी कुङ्कुम से अभीष्ट-प्राप्ति के लिये सभी यन्त्रों को लिखे। सोने, चाँदी, ताम्बे, रेशमी वस्त्र, भोजपत्र पर लिखकर बाँह, कण्ठ, मूर्धा, कमर में धारण करने से अभीष्ट फल मिलते हैं। अथवा कहीं भी यन्त्र को स्थापित करके पूजा करे। पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण बनावे, उसके बाहर चार वृत्त बनावे। मध्य में साध्य नामगर्भित 'ह्रीं' लिखे। तीनों कोनों में मूल मन्त्र के पहले तीन अक्षरों को लिखे। छहों कोनों में चौथे से नवें तक के छ: अक्षरों को लिखे। उसके बाहर चार वृत्तों के अन्तरालों में से आभ्यन्तर अन्तराल में मूल मन्त्र के दशम बीज को लिखे। तब ग्यारहवें अक्षर से एक सौ पच्चीसवें अक्षर तक लिखे। उसके बाद वाले अन्तराल में सानुस्वार मातृकाओं को लिखे। उसके बाद वाले अन्तराल में विसर्गयुक्त मातृकाक्षरों को लिखे। इस प्रकार दश-दश मूल मन्त्र के वर्णों से तेरह यन्त्र लिखे। मूल मन्त्र के शेष अक्षरों में अमृतपञ्चक जोड़कर दश अक्षरों से पूर्ववत् यन्त्र लिखे। अमृतपञ्चक में षण्ठहीन बारह स्वरों के योग से साठ बीज बनाकर उन्हें बिन्दु-विसर्ग युक्त करके एक सौ बीस वर्णों से प्रथम अन्तराल को वेष्टित करे। उसके बाहर दो अन्तरालों में बिन्दु-विसर्ग युक्त मातृकाओं को लिखे। इस प्रकार चौदह यन्त्र बनावे।

अमृतपञ्चकोद्धार:

अमृतपञ्चकस्योद्धारमाह तत्रैव—

ज्या कं दावोऽम्बु हृत् स्वेन माययामृतपञ्चकम्। तत्पञ्चकं स्वरैर्भेदादशीतिर्मायया तथा ॥१॥

तथा अशीति:।

तै: षण्ठहीनै: षष्टि: स्यान्मायया च तथा भवेत्। षष्ट्या शतं समुद्दिष्टं वर्णेष्वमृतविग्रहम् ॥१॥

तेषां सर्वत्र तन्त्रेऽस्मिन् विनियोगो विधीयते।

ज्या जकार:, कं झकार:, दावष्ठकार:, अम्बु वकार:, हृत्सकार:, जझठवस इति। स्वेन बिन्दुना पञ्च। मायया विसर्गेण च योगे पञ्चेत्यर्थ:। षण्ठहीनस्वरयुक्तेन षष्टि:। बिन्दुविसर्गाभ्यां १२०। अमृतपञ्चकषोडशस्वरसंयोगेन ८०। बिन्दुना विसर्गेण च १६० अक्षराणीत्यर्थ:।

अमृतपञ्चकोद्धार—पर ज झ ठ व स—ये अमृत पंचक हैं। इन पाँचों में बिन्दु लगाने से पाँच, माया-विसर्ग योग से पाँच, ऋ ॠ ऌ ॡ षण्ठ स्वरों को छोड़ने पर शेष बारह स्वरों के योग से ५ × १२ = ६० होते हैं। बिन्दु-विसर्ग लगाने पर १२०। अमृतपंचक में सोलह स्वर जोड़ने से ५ × १६ = ८०। बिन्दु-विसर्गयुक्त करने पर १६० अक्षर होते हैं।

यन्त्राणां विनियोग:

तथा—

चतुर्दशानां यन्त्राणां विनियोगं शृणु प्रिये। वश्यमाकर्षणं स्तम्भमारोग्यं विजयं श्रियम् ॥१॥

रक्षां गजाश्वगोमेषमहिषाणामनुक्रमात्। नरनारीनृपाणां च प्रोक्तयोगेन साधयेत् ॥२॥ इति।

इन चौदह यन्त्रों का क्रमश: वश्य, आकर्षण, स्तम्भन, आरोग्य, विजय, श्री, रक्षा, गज, अश्व, गो, मेष, महिष, नर-नारी, नृप का साधन करने के लिये विनियोग किया जाता है।

अमृतार्णैर्यन्त्ररचनासङ्कलनम्

तथा—

अमृतार्णै:समूलार्णैर्लिखिता(ललिता)रहितैस्तु तै:। नित्याचतुर्दशार्णैश्चाप्येकषष्ट्या शतेन च ॥१॥

षट्पञ्चाशत्समोपेतं चतु:शतमुदीरितम्। तैर्यन्त्ररचनायोगं फलानि च शृणु प्रिये ॥२॥ इति।

अमृतार्णा: षष्ट्युत्तरशतवर्णा: १६० मूलार्णै: पञ्चत्रिंशच्छतवर्णै: १३५ ललितारहितचतुर्दशनित्यानां मन्त्रार्णा एकषष्ट्युत्तरशतवर्णा: १६१ सर्वे षट्पञ्चाशदुत्तरचतु:शतवर्णा: ४५६ भवन्ति। तथा—

त्रिकोणमष्टपत्राब्जं बहिर्वृत्तद्वयं तथा। विधाय मध्ये मायास्थं कृत्वा नाम त्रिकोणजम् ॥१॥

अन्तरालत्रयस्थं च बहि:पत्राष्टगामि च। चतुर्दशार्णमालिख्य वृत्तमध्ये तु मातृकाम् ॥२॥
विलिख्यार्चाहुतजपसेकसिद्धानि योजयेत्। त्रयस्त्रिंशत्तमं यन्त्रं सशक्त्यमृतपञ्चकैः ॥३॥ इति।

अस्यार्थः—प्रथमतस्त्रिकोणं विलिख्य तदुपरि वृत्तं कृत्वा, तल्लग्नान्यष्टदलानि विरच्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं कुर्यादिति यन्त्रं निर्माय मध्ये साध्यनामगर्भं ह्रींकारं विलिख्य त्रिषु कोणेषु तदन्तरालेषु षड्बीजानि विलिख्याष्टदलेष्वष्टबीजानि विलिखेदिति प्रागुक्तवर्णसमुदायात् प्रथमतश्चतुर्दशाक्षराणि विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैर्वेष्टयित्वा त्र्यस्त्रिंशत्तमयन्त्रस्यावशिष्टमूलवर्णाष्टके मायाबीजयुक्तामृतपञ्चकं संयोज्य चतुर्दशाक्षराणि पिधाय प्राग्वत्पूरयेत्।

अमृत वर्ण १६०, मूल मन्त्र के वर्ण १३५, ललितारहित चौदह नित्याओं के मन्त्राक्षर १६१ कुल मिलाकर ४५६ अक्षर होते हैं। इन्हीं से यन्त्ररचना की जाती है।

पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर वृत्त बनावे। वृत्त में अष्टदल बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर यन्त्र बनावे। मध्य में साध्य नामगर्भित 'ह्रीं' लिखे। तीनों कोनों के अन्तरालों में छ: बीजों को लिखे। आठ दलों में आठ बीजों को लिखे। पूर्वोक्त वर्णसमुदाय से पहले चौदह अक्षरों को लिखे। इसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकाओं को लिखे। तैंतीस यन्त्रों में अवशिष्ट मूल वर्णाष्टक में माया बीजयुक्त अमृतपञ्चक जोड़कर चौदह अक्षरों को पूर्ववत् लिखे।

प्रोक्तयन्त्राणां फलानि

फलानि ३३ यन्त्राणां क्रमेणाह—
ज्वरे घोरे शीतिकायां तथा चातुर्थिके गदे। स्फोटे मसूरिकायां च नेत्रार्त्यां कुक्षिसम्भवे ॥१॥
यक्षराक्षसगन्धर्वपिशाचोरगपीडने । बालग्रहार्तौ दौर्भाग्ये वन्ध्यात्वे वैरिपीडने ॥२॥
वादे चोन्मादके राजक्रोधे चौरभये तथा। डाकिन्यादिगणैः षड्भिराक्रान्त्यां ब्रह्मराक्षसैः ॥३॥
प्रमेहकामलाछर्दिदोषजेषु त्रिषु क्रमात्। योजयेदुक्तविधिना त्रयस्त्रिंशदितीश्वरि ॥४॥

तैंतीस यन्त्रों के फल—घोर ज्वर, शीतला, चातुर्थिक बुखार, चेचक, मसूरिका, नेत्ररोग, पेटसम्बन्धी रोग, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, सर्पपीड़ा, बालग्रह, दुर्भाग्य, वन्ध्यात्व, शत्रुपीड़न, विवाद, उन्माद, राजभय, चौरभय, डाकिनी आदि छ: से आक्रान्त होने पर, ब्रह्मराक्षस से आक्रान्त होने पर, प्रमेह, कामला, छर्दि एवं त्रिदोष—इन तैंतीस स्थितियों में क्रमशः तैंतीस यन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये एवं कामेश्वरी आदि नित्याओं का साधारण अर्चन करना चाहिये।

कामेश्वर्यादीनां साधारणचक्रतदर्चनविधिः

कामेश्वर्यादिनित्यानां साधारणसमर्चनम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्वाङ्गाङ्गित्वयोगतः ॥५॥
तासां पञ्चदशानां तु मन्त्रवर्णाः समीरिताः। शतद्वयं षण्णवतिः(२९६)तैश्चक्रं तत्र पूजनम् ॥६॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च रेखाविंशतिमालिखेत्। तेन कोष्ठानि जायन्ते चतुरस्राणि पार्वति ॥७॥
शतत्रयं त्वेकषष्ट्या तेष्वीशादिप्रदक्षिणम्। प्रवेशगत्या विलिखेद्यावत्संख्यं यथान्तरम् ॥८॥
पञ्चषष्टिस्तेषु दिक्षु प्रागादिषु चतुष्टयम्। अवशिष्टं भवेत्तेषु दिक्स्थेष्वेकीकृतेषु च ॥९॥
मायां चतुष्टयान्तस्थमालिखेद्वाञ्छितं क्रमात्। एकोनपञ्चाशत्कोष्ठेष्वेकीभूतेषु तत्र वै ॥१०॥
पद्मं चतुर्दशदलं बहिर्वृत्तद्वयं तथा। लिखित्वा कर्णिकामध्ये योनिं मायोदरां लिखेत् ॥११॥
दलेष्वपि तथा शक्तिं चतुर्दशसु संलिखेत्। भगमालां मध्यशक्त्यामावाह्याभ्यर्चयेद्बहिः ॥१२॥
पश्चिमादि तु वाय्वन्तमन्या आवाह्य पूजयेत्। यथाक्रममिदं चक्रमासां साधारणं भवेत् ॥१३॥
मध्ये मध्ये तु या पूज्या शेषास्तत्तद्दलाश्रिताः। यथाक्रमेण चित्रान्ताः पूजयेद्रक्तविग्रहाः ॥१४॥
चतुरस्रद्वयं बाह्ये कृत्वा द्वाराणि दिक्षु च। द्वाराणां पार्श्वयोः कोणेष्वर्चयेद् द्वादश क्रमात् ॥१५॥

ब्राह्मी माहेश्वरी द्वारे पश्चिमे सव्यदक्षिणे। कौमारी वैष्णवी सौम्ये वाराह्यैन्द्री च पूर्वके ॥१६॥
चामुण्डा समहालक्ष्मीर्याम्ये वाय्वादिकोणगाः। देशकालौ तथाकारशब्दौ प्रोक्तक्रमेण वै ॥१७॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यगायता विंशतिरेखा दक्षिणोत्तरायता विंशति कोष्ठानि कृत्वा तेषु कोष्ठेष्वीशानगतकोष्ठमारभ्य प्रवेशगत्या प्रादक्षिण्येन पञ्चदशनित्यामन्त्राक्षराणि प्रोक्तानि षण्णवत्युत्तरशतद्वयसंख्यकानि (२९६) विलिख्यावशिष्टपञ्चषष्टिकोष्ठेषु प्रागादिदिक्षु कोष्ठचतुष्टयक्रमेण षोडशकोष्ठानि मार्जयित्वा तेषु साध्यनामगर्भं ह्रींकारं प्रतिदिशं विलिख्य मध्येऽवशिष्टान्येकोनपञ्चाशत्कोष्ठान्येकीकृत्य सकर्णिकं चतुर्दशदलकमलं कृत्वा, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय कर्णिकामध्ये त्रिकोणं विलिख्य तन्मध्ये ह्रीमिति बीजं विलिख्य, दलेष्वपि मायाबीजं विलिख्य बहिश्चतुरस्रद्वयं चतुर्द्वारयुक्तं कुर्यादिति यन्त्रं विलिख्य, मध्ये भगमालामावाह्य चतुर्दशदलेषु पश्चिमादिवाय्वन्तं नित्यक्लिन्नादिविचित्रान्ताश्चतुर्दश नित्या आवाह्य पूजयेत्। अत्र मध्ये या नित्या पूज्यते तत्परतो नित्यामारभ्य चतुर्दश नित्याः पूजयेत्। तद्बहिश्चतुर्द्वारपार्श्वेषु ब्राह्म्यादिशक्तीः संपूज्याग्नेयादिकोणेषु देशकालाकारशक्तीः संपूजयेत्।

पन्द्रह नित्याओं के अंगांगित्व योग से मन्त्रवर्णों की संख्या दो सौ छिआनबे होती है। इससे चक्र बनाकर पूजा करे। पूरब से पश्चिम, दक्षिण से उत्तर बीस रेखा खींचे। इससे ३६१ चतुरस्र कोष्ठ बनते हैं। उनमें ईशानादि से प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति से विद्या वर्णों के २९६ बीजों को लिखे। शेष ६५ कोष्ठों में से चारो दिशाओं में सोलह कोष्ठों को मिटा दे। उसके चारों कोनों में साध्यगर्भित ह्रीं लिखे। मध्य में अवशिष्ट उनचास कोष्ठों को मिटाकर एक कर दे। मध्य में चर्तुदश कमल दल बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। कर्णिकामध्य में त्रिकोण बनावे। उसके मध्य में ह्रीं लिखे। दलों में मायाबीज ह्रीं लिखे। इसके बाद चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनावे। इस प्रकार यन्त्र बनाकर मध्य में भगमाला का आवाहन करे। चौदह दलों में पश्चिम से वायव्य तक शेष चौदह नित्याओं का आवाहन करके पूजन करे। उसके बाहर चारो द्वारों के पार्श्वों में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन करे। आग्नेयादि कोणों में देश-काल-आकार शक्ति की पूजा करे।

तथा—

पूजयेत्प्रोक्तरूपैस्तु प्रोक्तरूपाश्च ता यजेत्। उपचारैश्चासवैश्च मत्स्यैः मांसैः सुसंस्कृतैः ॥१॥
अपूपैः पायसैर्दुग्धैः सुश्रीतैः सितसंयुतैः। कदलीपनसाद्यैश्च फलैर्मधुभिरेव च ॥२॥
नैवेद्यैः प्रीणयेद् देवीं नृत्यगीतादिभिस्तथा। एकरात्रं त्रिरात्रं च पञ्चरात्रं तु सप्त वा ॥३॥
नवरात्रं तथा पक्षं मासं पूर्णादिकं तु वा। वर्षं वा फाल्गुनान्तं वा स्यात्समस्तार्तिनाशनम् ॥४॥
ग्रहाणां प्रातिकूल्येषु दीर्घरोगेषु वैकृते। देवतानामथोत्पाते त्रिविधे त्वभिचारके ॥५॥
दारिद्र्ये विजयप्राप्त्यां दुर्भिक्षे शत्रुपीडने। कृच्छ्रेष्वन्येषु घोरेषु पूजैषा सर्वकामदा ॥६॥
पीठे वा सुसमे कृत्वा वेदिकामण्डपे तु वा। कृत्वैतत् प्रोक्तरूपं च प्रोक्तद्रव्यैस्तथार्चयेत् ॥७॥
नमेरुचम्पकाशोकपुंनागबकुलाम्बुजैः। मल्लिकामालतीजातीशतपत्रोत्पलादिभिः ॥८॥
सुगन्धिभिस्तथान्यैश्च पूजयेत् पूर्णमानसः। एतद्विद्याभक्त्युपास्तियुतानन्यांश्च पूजयेत् ॥९॥
अथान्यदपि देवेशि चक्रमद्भुतदर्शनम्। योन्यर्णवाख्यं वनितागर्वपर्वतवज्रकम् ॥१०॥
षड्विंशाङ्गुलमानेन कृत्वा योनिं समे तले। तत्र द्व्यङ्गुलमानेषु सूत्राण्येकादशार्पयेत् ॥११॥
तेनात्र योन्यो जायन्ते त्रिकोणानि शतात्परम्। चत्वारिंशच्च चत्वारि तेषु मन्त्राक्षराणि तु ॥१२॥
प्रादक्षिण्यप्रवेशेन विलिखेत्तु निरन्तरम्। मध्येऽवशिष्टनवके नववर्गसमन्विते ॥१३॥
नाथान् नव लिखेत्पश्चात्साध्याख्यां कर्मसंयुताम्। सर्वत्र विलिखेद्भूमौ भूय आवर्तनेन तु ॥१४॥
अर्धरात्रे तु तां साध्यां स्मरन्मदनवह्निना। दह्यमानां हृतस्वान्तां मस्तकस्थापिताञ्जलिम् ॥१५॥
विकीर्णकेशीमालोललोचनामरुणारुणाम्। वायुप्रेङ्खत्पताकास्थपटोपमकलेवराम् ॥१६॥

विवेकविधुरां मत्तां मानलज्जाभयातिगाम्। चिन्तयन्नर्चयेच्चक्रं मध्ये देवीं दिगम्बराम् ॥१७॥
जपादाडिमबन्धूककिंशुकाद्यैः समर्चयेत्। अन्यैः सुगन्धिशेफालिकुसुमाद्यैः सुगन्धिभिः ॥१८॥
त्रिसप्तरात्रादायाति प्रोक्तरूपा मदाकुला। यावच्छरीरपातं सा छायेवानपगामिनी ॥१९॥

प्रयोगः स्पष्टः। इति भगमालिनीप्रयोगः।

भगमालिनी के उक्त रूप की यथाविधि पूजा सुसंस्कृत मद्य, मांस, मछली, पुआ, पायस, शक्करयुक्त दूध, केला, कटहल, फल, मधु एवं नैवेद्य से करे। नाच-गान से देवी को प्रसन्न करे। एक रात, तीन रात, पाँच रात, सात रात, नव रात, एक पक्ष-पूरे एक मास, एक वर्ष चैत्र से फाल्गुन तक ऐसी पूजा करे। यह सारे दुःखों का विनाशक है। ग्रहों की प्रतिकूलता में, लम्बी बीमारी में, देवताओं के उत्पात होने पर, तीनों प्रकार के अभिचार में, दरिद्रावस्था में, विजय-प्राप्ति के लिये, अकाल में, शत्रुपीड़ा में, अन्य घोर कष्टों में यह पूजा सर्वकामदा होती है। समतल पीठ पर वेदी-मण्डप पर यह पूजा उक्त विधि से विहित द्रव्यों से करे। नमेरु, चम्पा, अशोक, बकुल, पुंनाग, कमल, मल्लिका, मालती, जाती, शतपत्री, कुमुद आदि अन्य सुरभित पुष्पों से पूरे मन से पूजा करे। इसी प्रकार की भक्ति से दूसरी देवियों की भी पूजा करे। दूसरे प्रकार के चक्र में अद्भुत वर्णन है। योनि वर्ण नामक यन्त्र वनिता के गर्वरूपी पर्वत के लिये वज्र के समान है। समतल भूमि पर छब्बीस अंगुल मान का त्रिकोण बनावे। उसमें दो अंगुलमान से ग्यारह सूत्र स्फालित करे। इससे एक सौ चौवालीस त्रिकोण बनते हैं। उनमें मन्त्राक्षरों को प्रवेश गति से निरन्तर प्रदक्षिण क्रम से लिखे तो १३५ मन्त्राक्षर १३५ त्रिकोणों में अंकित होते हैं। १४४-१३५ = ९ अवशिष्ट त्रिकोणों में नव वर्ग-समन्वित नव नाथों को लिखे। तब साध्य नाम एवं कार्य संयुक्त करके इनके बाहर भूमि पर लिखकर इस त्रिकोण यन्त्र को वेष्टित करे। आधी रात में साध्या का अग्नि से दह्यमान योनि, हृत स्वान्त, मस्तक पर अञ्जलि बाँधे, बिखरे बाल, अरुणारुण लोल लोचन, वायुप्रेरित पताका के समान डोलते हुए शरीर से, विवेकरहित मत्त मान लज्जा भयरहित चिन्तन करके चक्रार्चन करे। मध्य में दिगम्बरा देवी का अर्चन अड़हुल, अनार, बन्धूक-पलाश आदि के फूलों से करे। अन्य का सुवासित शेफालि आदि फूलों से पूजन करे। तब साध्या तीन या सात रातों में उक्त रूप में मदाकुल होकर साधक के पाश आती है और तब तक उसके साथ रहती है, जबतक कि शरीरान्त नहीं हो जाता।

नित्यक्लिन्नाप्रयोगविधिः

अथ नित्यक्लिन्नाप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (प० ९ श्लोक २३)—

विद्यायाः साधनं सक्यक्समीहितफलप्रदम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि प्रयोगार्हो यतो भवेत् ॥१॥
जिन्द्रियो हविष्याशी त्रिसंध्यार्चारतो भवेत्। प्राग्वल्लक्षं तद्दशांशं कुर्याद्धोमं च तर्पणम् ॥२॥
मधूकपुष्पैर्मध्वक्तैर्बकुलोत्थैरथापि वा। चन्द्रचन्दनकस्तूरीवासितैस्तर्पयेज्जलैः ॥३॥
ततो विद्याप्रयोगार्हो नित्यार्चानिरतस्तथा। सहस्रजापी तद्भक्तः कुर्यादुक्तं न चान्यथा ॥४॥
पद्मै रक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। तथैव कैरवै रक्तैरङ्गनास्तु वशं नयेत् ॥५॥
समानरूपवत्सायाः शुक्लायाः गोः पयःप्लुतैः। मल्लिकामालतीजातीशतपत्रैर्हुतैर्भवेत् ॥६॥
कीर्तिविद्याधनारोग्यसौभाग्यविजयादिकम्। आरग्वधप्रसूनैस्तु क्षौद्राक्तैर्हवनाद्भवेत् ॥७॥
स्वर्णाप्तिः स्तम्भनं शत्रोः नृपादीनां क्रुधोऽपि च। आज्याक्तैः करवीरोत्थैः प्रसूनैररुणैर्हुतैः ॥८॥
रक्ताम्बराणि वनिताभूपामात्यवशं तथा। भूषावाहनवाणिज्यसिद्धयश्चास्य वाञ्छिताः ॥९॥
लवणैः सर्षपैर्गौरैरितरैर्वाथ होमतः। तत्तैलाक्तैर्निशामध्ये त्वानयेद्वाञ्छितां वधूम् ॥१०॥
तैलाक्तैर्जुहुयात् कृष्णादरपुष्पैर्निशान्तरा। मासादरातिस्तीव्रार्तिर्ज्वरेण भवति ध्रुवम् ॥११॥
आरुष्करघृताभ्यक्तैस्तद्बीजैर्निशि होमतः। शत्रोर्देहे व्रणानि स्युर्दुःसाध्यानि चिकित्सकैः ॥१२॥

आरुष्करघृतं भल्लातकतैलम्। तद्बीजैर्भल्लातकबीजैः।

तैरेव दलिताङ्गस्तु रिपुर्याति यमालयम्। तथा तत्तैलसंसिक्तैर्बीजैरङ्कोलकैरपि ॥१३॥

मरिचैः सर्षपाज्याक्तैर्निशि होमात्तु मासतः । वाञ्छितां वनितां कामज्वरार्तामानयेद्ध्रुवम् ॥१४॥
मरिचैः सर्षपोपेतैः सप्तरात्रं हुतैर्निशि । धैर्यमानकुलैर्नित्यं दुष्प्रापामानयेद्वधूम् ॥१५॥
अन्नाज्यैर्जुहुयान्नित्यं शतमष्टोत्तरं तु वा । तेनान्नपूर्णो भवने भोक्ता च भवति प्रिये ॥१६॥
शालीभिराज्ययुक्ताभिर्होमाच्छालीमवाप्नुयात् । मुद्गैर्मुद्गं घृतैराज्यमिष्टैरिष्टं हुतैर्भवेत् ॥१७॥
साध्यर्क्षवृक्षसम्भूतपिष्टपादरजःकृताम् । राजीमरिचलोणोत्थां पुत्तलीं जुहुयान्निशि ॥१८॥
प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः । नाभेरधस्ताद्धृदयाद्भिन्नेनाकण्ठतस्तथा ॥१९॥
शिरसा च सुतीक्ष्णेन छित्त्वा शस्त्रेण वै क्रमात् । एवं द्वादशधा होमान्नरनारीनराधिपाः ॥२०॥
वश्या भवन्ति सप्ताहाज्ज्वरार्ताश्चास्य वाञ्छया । प्रयान्ति निधनं चास्य वाञ्छयानन्ययोगतः ॥२१॥

अत्र साध्यनक्षत्रसम्भूतपिष्ट-साध्यपादरजो धूली-राजीमरिचलवणैरेभिः पञ्चद्रव्यैरेकैकपुत्तलिका प्राक्प्रयोगोक्तप्रकारेण कृतप्राणप्रतिष्ठा। प्रपदाभ्यां १ जङ्घाभ्यां २ जानुभ्यां ३ ऊरुयुग्मतः ४ नाभेरधस्तात् ५ हृदयान्नाभिपर्यन्तं ६ कण्ठतो हृत्पर्यन्तं ७ शिरः ८, एवमाहुत्यष्टकम्। तथा—

पिष्टेन गुडयुक्तेन मरिचैर्जीरकैर्युतम् । कृत्वा पुत्तलिकां साध्यनामयुक्तामथो हृदि ॥२२॥
सनामहोमसंपातघृते संपाच्य तां पुनः । स्पृशन् निजकराग्रेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥२३॥
अभ्यर्च्य तद्घृताभ्यक्तं भक्षयेत्तद्धिया जपन् । नरनारीनृपास्तस्य वश्याः स्युर्मरणावधि ॥२४॥

अस्यार्थः—प्राग्वद्गुडयुक्ततण्डुलपिष्टमरिचजीरकैः पुत्तलिकां कृत्वा तस्या हृदि साध्यनाम विलिख्य, क्वचिदग्निं संस्थाप्य साध्यनामविदर्भितमूलमन्त्रेण घृतेनैव सहस्रं हुत्वोद्देशत्यागं कृत्वा क्वचिद्भाण्डे कृत्वा तत्संपाताज्ये मूलमन्त्रं जपन् तां पुत्तलिकां पक्वान्नवत् संपाच्य, पुनर्निजकराग्रेण तां स्पृशन् मूलं साध्यविदर्भितं सहस्रं जपित्वा तस्यां देवतामावाह्याभ्यर्च्य 'अमुकं मे वशमानय, अमुकदेवतापादुकां पूजयामि' इति प्रत्यावरणशक्तिं संपूज्य, धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत्समाप्य प्राक्प्रोक्तसंपाताज्यसहितां तां मूलं जपन् तद्धिया भक्षयेदुक्तफलं भवति। तथा—

तैरेव पिष्टैर्वृत्तं तु कृत्वा तन्मध्यतस्तथा । साध्यनाम स्फुटं कृत्वा प्राग्वत्संपाच्य भक्षणात् ॥२५॥
वश्यास्ते वत्सरं भूयुस्तन्नामार्णान्वितस्तथा । कृत्वा विपाच्य खादंस्तु वशयेत्तांस्तदर्धकम् ॥२६॥

अयमर्थः—प्रागुक्तपिष्टैर्वर्तुलाकारां मुद्रां कृत्वा प्राग्वद्भक्षयेद्वत्सरमात्रं वश्या भवेयुः। अथ साध्यनामविदर्भितं मूलं जपन् प्रोक्तविधिं विनापि षण्मासमध्ये वश्या भवेयुः। तदुत्तरं पुनः कुर्यादित्यर्थः।

नित्यक्लिन्ना प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि विद्या का सम्यक् रूप से साधन करने पर वह फलप्रद होती है। जितेन्द्रिय, हविष्यभोजी, त्रिकाल सन्ध्या करने वाला होकर पूर्ववत् एक लाख नित्या विद्या का जप करे। जप का दशांश हवन और इसका दशांश तर्पण करे। महुआ के फूलों या बकुल के फूलों को त्रिमधुराक्त करके हवन करे। कपूर चन्दन कस्तूरी से वासित जल से तर्पण करे। ऐसा करने से विद्या के प्रयोग की क्षमता प्राप्त होती है। इसके बाद नित्या के पूजन में रत रहकर नित्याभक्त होकर हजार जप करके ही प्रयोग करे; अन्यथा न करे। मध्वक्त लाल कमलों के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। उसी प्रकार लाल कुमुद से हवन करने पर वनिता वश में होती है। जिस उजली गाय का बछड़ा भी उजला हो, उसके दूध में भीगे मल्लिका, मालती, जाती, शतपत्री के हवन से कीर्ति, विद्या, धन, आरोग्य, सौभाग्य-विजयादि की प्राप्ति होती है। आरग्वध फूलों को मधु से प्लुत करके हवन करने से स्वर्णप्राप्ति एवं शत्रु तथा क्रुद्ध राजा का स्तम्भन होता है। गोघृत-मिश्रित लाल कनैल के फूलों से हवन करने पर लाल वस्त्रों वाली वनिता, राजा और अमात्य वश में होते हैं तथा वस्त्र, वाहन और वाणिज्य में वांछित सिद्धि का लाभ होता है। नमक, पीला सरसों और तैलाक्त अन्य द्रव्यों के हवन से आधी रात में वांछित वनिता प्राप्त होती है। तैलाक्त काले दरद फूलों से हर दूसरी रात में हवन करने से एक महीने में शत्रु तीव्र ज्वर से

पीड़ित होता है। रात में भल्लातक तेल में भल्लातक बीज भिगोकर हवन करने से शत्रु के शरीर में घाव की पीड़ा इतनी ज्यादा होती है कि चिकित्सकों के लिये भी वह दु:साध्य होती है। उस घाव से पीड़ित अंग वाला शत्रु यमलोक में जाता है तथा भल्लातक तेल से सिक्त उसके बीज एवं अंकोल मरिच सरसों को गोघृत से सिक्त करके एक माह तक रात में हवन करने से कामज्वर से पीड़ित वांछित वनिता उसके पास आती है।

मरिच और सरसों मिलाकर सात रात तक हवन करने से सर्वथा अप्राप्य धैर्यवती, मानवती कुलाङ्गना उसके पास आती है। अन्न और गाय के घी से नित्य एक सौ आठ हवन करने से साधक के घर में अन्नपूर्णा का वास होता है और साधक उसका भोक्ता होता है। आज्ययुक्त शालि चावल के हवन से शाली चावल मिलता है। मूंग के हवन से मूंग मिलता है। घी और गुड़ के हवन से अरिष्ट नष्ट होते हैं। साध्य नक्षत्र के वृक्षों के चूर्ण में साध्य के पैरों की धूल, राई, मरिच, नमक मिलाकर पुत्तली बनाकर उसके पैरों, जाँघों, घुटनों, दोनों उरुओं, नाभि से नीचे का भाग, हृदय से कण्ठ तक के भाग और शिर को तेज हथियार से काटकर बारह हवन करने से नर-नारी, राजा वश में होते हैं और उसकी इच्छा होने पर सप्ताह भर में ज्वर से आर्त होकर मर जाते हैं।

चावल के पिष्ट में गुड़, जीरा, मरिच मिलाकर पुत्तली बनावे। उसके हृदय में साध्य का नाम लिखे। नाम से हवन करे। सम्पात घृत में उसे पकावे। पुत्तली पर हाथ रखकर एक हजार मन्त्र का जप करे। पुत्तली में घी लगाकर पूजा करे। पुत्तली को साध्य का रूप मानकर उसको खाने की भावना करते हुये जप करे। इससे उसके वश में नर-नारी-राजा आजीवन रहते हैं। आशय यह है कि तण्डुल पिष्ट में जीरा मरिच मिलाकर पुत्तली बनावे। उसके हृदय में साध्य नाम लिखे। अग्नि स्थापित करे। साध्य नामविदर्भित मूल मन्त्र से एक हजार हवन घी से करे। आहुति शेष का सम्पात किसी पात्र में करे। मूल मन्त्र जपते हुए उस पुत्तली को सम्पात घी में पकावे। कराग्र से उसका स्पर्श करके साध्य नामविदर्भित मूल मन्त्र का एक हजार जप करे। उसमें देवता का आवाहन करके 'अमुकं मे वशमानय, अमुकदेवतापादुकां पूजयामि' से प्रत्येक आवरण देवता का पूजन धूप-दीपादि से करके पूजा समाप्त करे। पूर्वोक्त सम्पात गोघृत सहित उस पुत्तली को माध्य मानकर मूल मन्त्र का जप करते हुये उसको भक्षण करने की भावना करने से उक्त फल मिलता है।

उसी प्रकार के पिष्ट से वृत्त बनावे। उसमें साध्य नाम लिखे। पूर्ववत् पकाकर उसका भक्षण करे तो एक वर्ष में साध्य वश में होता है। उस पिष्ट में उसके नाम वर्णो को मिलाकर उसे पकावे और खा जाय तो छ: महीनों में ही साध्य वश में हो जाता है। आशय यह है कि पूर्वोक्त पिष्ट से वर्तुलाकार मुद्रा बनाकर खा जाय तो साल भर में साध्य वश में होता है। साध्य नामविदर्भित मूल मन्त्र जप करने पर उक्त विधि के बिना भी छ: महीनों में साध्य वश में होता है। इसका अर्थ यह है कि इसके बाद भी पुन: क्रिया करे।

तथा—

नारिकेलफलाम्भोभिस्तर्पणाद्वनिता वशा: । कर्पूरवासितैस्तोयैर्मनुष्या: स्युर्वशे स्थिता: ॥२७॥
तर्पणाल्लवणाम्भोधिजलै: सर्वेऽस्य किङ्करा: । तथा लवणयुक्तेन तोयेन वनिता वशा: ॥२८॥
शुद्धेन वारिणा मासं तदर्धं सप्तरात्रकम् । तर्पयेद्यस्य नाम्नैव स तस्य स्याद्वशेऽनिशम् ॥२९॥
केतकैर्वासितैरिन्दुयुक्तै: केलफलोदकै: । तर्पणाद्वनिता वश्या दद्यु: प्राणान्निजं धनम् ॥३०॥
नमेरुवासितैस्तोयैस्तर्पणाद्भूमिपा वशम् । चम्पकैर्वासितजलैस्तर्पणं सर्वरञ्जनम् ॥३१॥
पाटलीशतपत्राभ्यां वासितैस्तर्पणं जलै: । सर्वलोकचमत्कारकारी भवति नित्यश: ॥३२॥
कस्तूरीवासिताम्भोभिस्तर्पणं सर्वसिद्धिकृत् । इन्दुचन्दनसौरभ्यवासिताम्भ:प्रतर्पणम् ॥३३॥
वाञ्छितार्थसुसंसिद्धिं मण्डलात्कुरुते ध्रुवम् । सक्तुमिश्रजलैराढ्यो धनधान्यादिभिश्चिरम् ॥३४॥
गुडमिश्रजलै रात्रौ तर्पणं विघ्ननाशनम् । चिञ्चाफलरसोपेतैर्जलैर्द्वेषाय तर्पयेत् ॥३५॥
उष्णोदकै: समरिचैस्तर्पयेद्वैरिमृत्यवे । केवलोष्णोदकैस्तस्य तीव्रज्वरसमुद्भव: ॥३६॥

निम्बपत्ररसोपेतैरम्बुभिस्तर्पणं द्विषाम्। जायतेऽन्योन्यवैरस्यं येन ते नाशमाप्नुयुः ॥३७॥
तथैव सर्षपतिलैस्तर्पणाद्वैरिणो भृशम्। अतीसारादिभिर्दोषैरौदरैः क्लेशमाप्नुयुः ॥३८॥
स्पष्टार्थः।

नारियल-जल से तर्पण करने पर वनिता वश में होती है। कपूरवासित जल से तर्पण करने पर मनुष्य वश में होते हैं। समुद्र के नमकीन जल के तर्पण से सभी उसके किंकर हो जाते हैं। उसी प्रकार नमकमिश्रित जल के तर्पण से स्त्रियाँ वश में होती हैं। शुद्ध जल से एक महीना, एक पक्ष या एक सप्ताह भर जिसके नाम से तर्पण किया जाता है, वह वश में हो जाता है। केतकी-वासित कपूर-मिश्रित केलाफल के रस से तर्पण करने पर वनिता वश में होकर अपना प्राण-धन सब कुछ दे देती है। नमेरुवासित जल से तर्पण करने पर राजा वश में होता है। चम्पावासित जल के तर्पण से सभी खुश रहते हैं। गुलाब शतपत्री-वासित जल से तर्पण करने पर साधक नित्य सर्व लोक चमत्कारी होता है। कस्तूरी-वासित जल के तर्पण से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। कपूर-चन्दन-सौरभवासित जल के तर्पण से चालीस दिनों में वांछितार्थ प्राप्त होता है। सत्तू मिले जल के तर्पण से धन-धान्य मिलता है। गुड़मिश्रित जल से रात में तर्पण करने पर सभी विघ्नों का नाश होता है। विद्वेषण के लिये चिंचाफल के रस से तर्पण करे। शत्रुमारण के लिये गरम जल में मरिच चूर्ण मिलाकर तर्पण करे। केवल गरम जल के तर्पण से शत्रु को तेज बुखार होता है। विद्वेषण के लिये निम्ब पत्र रसोपेत जल से तर्पण करे। इससे अवश्य ही वैरी का नाश होता है। इसी प्रकार सरसों एवं तिल से तर्पण करने पर शत्रु अतिसारादि उदर दोष से कष्ट पाता है।

यन्त्राणामुद्धारः

अथ यन्त्राणि देवेशि शृणु वाञ्छाप्रदानि वै। यैः कृतैः सिद्धयो हस्ते भवन्ति भजनादपि ॥३९॥
षट्कोणवृत्तयोर्मध्ये कृत्वा वृत्तं सनामकम्। विद्याद्यवर्णं विलिखेद् द्वितीयादीनि षट् क्रमात् ॥४०॥
षट्सु कोणेषु विलिखेच्छिष्टमर्णचतुष्टयम्। वृत्तयोरन्तरा दिक्षु लिखेत् कोणान्तरालतः ॥४१॥
भूताक्षराणि क्रमशो दश द्वित्रिक्रमेण तु। एवमेकादशविधं मध्येऽन्येषां निवेशनात् ॥४२॥
भूताक्षराणि प्रत्येकयोगात् पञ्चशतान्वितम्। पञ्चकं परमेशानि शृणु तानि यथाक्रमम् ॥४३॥
एषु सर्वत्र तद्बाह्ये वृत्तं कृत्वा च मातृकाम्। विलिखेदभितः पश्चाद्विनियोगमथोच्यते ॥४४॥
वश्ये त्रयमथाकर्षे द्वयं शान्त्यां द्वयं तथा। मध्ये नामाक्षरन्यासभेदास्तद्भेदकल्पनम् ॥४५॥
एवं तत्फलभेदस्तु सप्तविंशतिधा भवेत्। शेषाणि शृणु देवेशि क्रमेण विनियोगतः ॥४६॥
स्तम्भनं मोहनं पश्चाद्विद्वेषोच्चाटनं तथा। मारणं व्याधिभिः क्लेशं कुलोत्सादकरं तथा ॥४७॥
गजाश्वोष्ट्रखराणां च रक्षा महिषमेषयोः। गवां नराणां नारीणां विजयः समरे द्विषाम् ॥४८॥
द्वन्द्वयुद्धे तथा वादे व्यवहारेषु सर्वतः। द्यूते च रक्षा नगरग्राममण्डलके तथा ॥४९॥ इति।

अस्यार्थः—प्रथमतो वृत्तं विधाय तद्बहिः षट्कोणं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तत्रयं विधाय, मध्ये नित्यक्लिन्ना-विद्याक्षरेष्वेकादशसु प्रथमबीजं साध्यनामयुक्तं विलिख्य, षट्सु कोणेषु द्वितीयबीजादिषड्बीजानि विलिख्या-वशिष्टार्णचतुष्टयं षट्कोणाद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले चतुर्दिक्षु विलिख्य, तद्बहिरन्तराले तत्तत्कार्यानुगुण्यभूतार्णदशकं द्वित्रिक्रमेण चतुर्दिक्षु विलिख्य, तद्बहिः पुनर्वृत्तं कृत्वा तदन्तराले मातृकावर्णैर्वेष्टयेदिति प्रथमयन्त्रम्। द्वितीययन्त्रे मध्ये मूलमन्त्रस्य द्वितीयाक्षरं विलिख्य शेषं प्राग्वल्लिखेदिति द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं तृतीयादिबीजानां तृतीयादीनि यन्त्राणि भवन्ति। एवमेकादश यन्त्राणि जायन्ते। एवमेकादशयन्त्राणां सप्तविंशतिप्रयोगा भवन्ति। यथा—त्रिविधवश्ये प्रथमयन्त्रम्। द्विविधविद्वेषे द्वितीयं यन्त्रम्। द्विविधशान्त्यां तृतीयं यन्त्रम्। अन्येषामष्टयन्त्राणां प्रतियन्त्रं स्तम्भनादिप्रयोगत्रयं प्रयोगत्रयं ज्ञेयं, मध्ये साध्याक्षरलेखनभेदेन प्रयोगभेदस्तत्तत्कार्यानुसारिभूतार्णदशकलेखनभेदश्च ज्ञातव्य इत्यर्थः।

हे देवेशि! अब कामना-प्रदायक यन्त्रों को सुनो, जिनका पूजन कर जप करने से सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं। पहले

वृत्त बनाकर उसके बाहर षट्कोण बनावे। उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। मध्य में नित्य क्लिन्ना विद्या के ग्यारह अक्षरों में से प्रथम बीज को साध्य नामसहित लिखे। छः कोनों में दूसरे बीज से सातवें बीज तक लिखे। शेष चार वर्णों को षट्कोण के बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में पूर्वादि चार दिशाओं में लिखे। उसके बाद के अन्तराल में कार्य के अनुरूप दश भूत वर्णों को दो-तीन के क्रम से चारो दिशाओं में लिखे। उसके बाहर फिर एक वृत्त बनाकर अन्तराल को मातृकावर्णों से वेष्टित करे। यह प्रथम यन्त्र होता है। दूसरे यन्त्र के मध्य में मूल मन्त्र के दूसरे अक्षर को लिखकर शेष अक्षरों को पूर्ववत् लिखे। इसी प्रकार तीसरे अक्षर से तीसरा यन्त्र बनता है। इस प्रकार ग्यारह यन्त्र बनते हैं। इन ग्यारह यन्त्रों से सत्ताईस प्रयोग होते हैं। जैसे प्रथम यन्त्र से त्रिविध वश्य होते हैं। द्वितीय यन्त्र से द्विविध विद्वेषण होता है। तृतीय यन्त्र से द्विविध शान्ति होती है। शेष आठ यन्त्रों से स्तम्भनादि तीन-तीन प्रयोग होते हैं। मध्य में साध्य अक्षर लेखन भेद से प्रयोग भेद कार्य के अनुसार, दश भूतार्ण लेखन भेद ज्ञातव्य है। सत्ताईस यन्त्रों के फल भी सत्ताईस हैं। क्रम से उनके विनियोग के फलों को सुनो—स्तम्भन, मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण, व्याधि, क्लेश, कुलनाश, हाथी-घोड़ा-ऊँट की रक्षा, भैंस-भेंड-गाय-नर-नारी की रक्षा, युद्ध में वैरियों पर विजय, द्वन्द्वयुद्ध, वाद-व्यवहार-जुआ में जीत, नगर-ग्राम-मण्डल की रक्षा आदि इनके कार्य हैं।

यन्त्रान्तरोद्धारः

अथ यन्त्रान्तरोद्धारमाह—

विद्यायां पुनरुक्तानि हित्वा वर्णानि तान्यपि। एकादश स्युस्तैः प्राग्वत् स्वरयोगान्महेश्वरि ॥५०॥
षट्सप्तत्या शतं प्रोक्तं वर्णानां मन्त्रगामिनाम्। प्रोक्तयन्त्रेषु विलिखेदेकादशविभागतः ॥५१॥
मातृकाविद्ययावेष्ट्य कुर्यात्तन्नामयोजनम्। षोडशानां च यन्त्राणां विनियोगमथोच्यते ॥५२॥

अस्यार्थः—मूलविद्यायाः पुनरुक्तवर्जितानि अनावृत्तान्यक्षराणि एकादश भवन्ति 'हरनतयकलमदवस' इति। एते षोडशस्वरयोगेन षट् सप्तत्युत्तरशतं (१७६) वर्णा भवन्ति। प्राग्वदेषु वर्णेषु एकादशैकादशवर्णानामेकमेकं यन्त्रं विलिखेदेवं षोडश यन्त्राणि जायन्ते।

मूल विद्या के अक्षरों के स्वर-व्यञ्जन को अलग-अलग करने से ग्यारह अक्षर 'ह र न त य क ल म द व स' होते हैं। इनमें सोलह स्वरों का योग करने पर एक सौ छिहत्तर वर्ण होते हैं। पूर्ववत् ग्यारह-ग्यारह वर्ण एक-एक यन्त्र में लिखने से सोलह यन्त्र बनते हैं।

यन्त्राणां विनियोगः

तेषां फलान्याह—

प्रथमेन तु यन्त्रेण कन्यकाः स्ववशं नयेत्। तेनैव तासामार्तिं च शमयेत् सेकधारणैः ॥५३॥
स्वस्थावेशं च तेनैव कुर्यान्मन्त्रं जपन् धिया। तन्मयीं भावयेत्कन्यां धूपं सर्जरसैर्दहेत् ॥५४॥
आविष्टे तां समभ्यर्च्य प्रोक्तैस्तैरुपचारकैः। पृच्छेत् तान्वाञ्छितानर्थानाचष्टे स्वात्मनस्तदा ॥५५॥
ततोऽभ्यर्च्यात्मना योज्य तां तदात्मा भवेत्स्वयम्। तासामावेशमन्यैश्च शमयेत्तस्य धारणात् ॥५६॥
द्वितीयेन तु यन्त्रेण कर्पटे गैरिकद्रवैः। लिखितेन जयेद्वादे प्रतिवादिनमन्तरा ॥५७॥
स्थापनात्तस्य नियतमतिप्रौढोऽपि तत्क्षणात्। स्तब्धजिह्वो निरुद्योगः शुष्कास्यो लोललोचनः ॥५८॥
विलोकयन् दश दिशस्त्यक्तलज्जः पलायते। पतेद्वा पादयोः क्षिप्रं जितोऽस्मीति त्वयावदन् ॥५९॥
तृतीयेन निशापिष्टतोयेन लिखितेन तु। कर्पटे खर्परे वापि स्थापितेनोष्णभूतले ॥६०॥
चुल्ल्यधो वा दिनैर्द्वित्रैः स्तम्भयेत्सुदृढं रिपोः। रोषं गतिं मतिं जिह्वां समरं सर्वमेव च ॥६१॥
आयान्तमग्रतो रात्रौ मार्गमध्ये खनेदिदम्। बलिं दद्यात्तु तद्योन्यां तन्त्रक्षत्रोक्तया पुनः ॥६२॥
तेन तत्पृतना भ्रष्टा रुग्णा गतसमुद्यमा। भीता न तन्मुखा जातु यन्त्रवैभवात् ॥६३॥

चतुर्थेनारिनक्षत्रवृक्षोत्थफलकातले । लिखितेन पुरोक्तेन स्थापितेन रिपोः पुरे ॥६४॥
नाशमेति रिपुः कृच्छ्रैर्वैरिरोगादिसम्भवैः । तेषु तेषु प्रयोगेषु कुर्याद्रक्षामथात्मनः ॥६५॥
पञ्चमेनाथ षष्ठेन सप्तमेनाष्टमेन च । नवमेन च कुर्वीत रक्षां राष्ट्रपुरालये ॥६६॥
प्रागादिषु चतुर्दिषु वह्न्यादिष्वस्त्रदिक्ष्वपि । मध्ये च स्थापयेद्यन्त्रं ताम्रपट्टेषु कल्पितम् ॥६७॥
क्रमेण नवमं मध्ये स्थापयेदुक्तयोगतः । स्वराष्ट्रे नगरे राजगृहे प्रोक्तक्रमात् खनेत् ॥६८॥
तेन वैरिकृताः कृत्याप्रयोगाः क्रूरविग्रहाः । प्रवेष्टुमत्राशक्तास्ते नाशयन्ति प्रयोजकम् ॥६९॥
दशमं राजते पट्टे विलिख्य कवचं दधत् । रणं वीरः प्रविश्याशु नाशयेद् द्रावयेच्च तत् ॥७०॥
एकादशं निशातोयघृष्टगैरिकलेखनात् । कर्पटे स्थापितं शीघ्रं शमयेद्भूभृतां रणम् ॥७१॥
द्वादशेनेन्दुकाश्मीरलिखितेन धृतेन तु । भूर्जपत्रपुटे सम्यक् सर्वरक्षा भवेन्नृणाम् ॥७२॥
त्रयोदशेन यन्त्रेण तालपत्रकृतेन तु ।ताललिप्तेन कुड्यान्तःस्थापितेनार्चितेन च ॥॥७३॥
गृहरक्षा भवेद्व्याधिचोरग्रहभुजङ्गमात् । राजतो वैरितो बाधादन्यक्षुद्रादितस्तथा ॥७४॥
चतुर्दशेन यन्त्रेण भूर्जपत्रस्थितेन वै । धृतेन कामिनीनां तु सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥७५॥
तथा पञ्चदशेनापि स्वर्णपट्टधृतेन तु । वन्ध्यापि लभते पुत्रं गुणाढ्यं दीर्घजीवितम् ॥७६॥
षोडशेनोक्तरूपेण साभिषेकं धृतेन वै । सपत्नीष्वधिका तेन भर्तुः सात्यन्तवल्लभा ॥७७॥
भूर्जस्थेन धृतेनैव सर्वेषामपि सर्वदा । रक्षा भवति मर्त्यानां राजचौरग्रहादितः ॥७८॥
इति नित्यक्लिन्नाप्रयोगः।

इन यन्त्रों के फल इस प्रकार कहे गये हैं—प्रथम यन्त्र से कन्या वश में होती है। उसे धारण कराकर उसके दुःख का शमन किया जाता है। मन्त्र-जप करते हुये बुद्धि से उसे स्वस्थ किया जाता है। कन्या को स्वस्थ समझकर सर्जरस से धूप जलावे। भूताविष्ट होने पर प्रोक्त उपचारों से पूजा करे। उससे उसकी इच्छा पूछे और उसकी इच्छानुसार चेष्टा करे। उसके साथ स्वयं को एकात्म कर ले। उसे धारण कराकर दूसरों के आवेश का शमन करे। दूसरे यन्त्र को खपड़े पर गैरिक द्रव से लिखने पर विवाद में प्रतिवादी पर विजय प्राप्त होती है। उसे स्थापित करने से स्थिर मति प्रौढ़ भी उसी क्षण से स्तब्धजिह्वा वाला, निरुद्योग, शुष्क मुख होकर चंचल नयनों से दशों दिशाओं में निर्लज्ज होकर देखते हुये भाग जाता है अथवा पैरों पर गिरकर तुरन्त कहता है कि आप जीत गये, मैं हार गया। तृतीय यन्त्र को हल्दी के घोल से कौड़ी या खपड़े पर लिखकर गर्म भूमि पर चूल्हा में स्थापित करने पर बलवान शत्रु का भी स्तम्भन होता है। उसकी गति, मति, जीभ आदि सब कुछ युद्ध में रुद्ध हो जाता है। सेना के आने वाले मार्ग में रात में इस यन्त्र को गाड़ दे। उसकी योनि में नक्षत्रोक्त जीव की बलि दे। इससे वह भ्रष्ट, रोगी, क्रियाहीन और भीत होती है। यन्त्रवैभव से उसे कभी सुख नहीं मिलता। चौथे यन्त्र को शत्रु नक्षत्र वृक्षोत्थ फलक पर पूर्वोक्त विधि से बनाकर शत्रु के नगर में स्थापित करे तो शत्रु का नाश कठिन रोग की पीड़ा से हो जाता है। उपयुक्त प्रयोगों में अपनी रक्षा का विधान करके तब इसका प्रयोग करना चाहिये। पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें और नवें यन्त्र से राष्ट्र और नगर की रक्षा होती है। पूर्वादि दिशाओं में, आग्नेयादि विदिशाओं में एवं मध्य में ताम्र पट्ट पर लिखित नवयन्त्र स्थापित करे। क्रम से नवें को मध्य में उक्त योग से स्थापित करे। अपने राष्ट्र नगर राजगृह में प्रोक्त क्रम से गाड़ दे। इससे वैरी-कृत कृत्या प्रयोग, क्रूर विग्रह प्रवेश नहीं कर सकते और प्रयोगकर्ता को नष्ट कर देते हैं। दशवें यन्त्र को चाँदी के पत्र पर लिखकर कवच रूप में धारण करे तो रणक्षेत्र में प्रवेश करके वह वीर शत्रु को तुरन्त नष्ट कर देता है, उसका द्रावण कर देता है। ग्यारहवें यन्त्र को हल्दी के घोल में गेरु मिलाकर खपड़े पर लिखकर स्थापित करने से भूपति वैरी राजा को युद्ध में शीघ्र शमन कर देता है। बारहवें यन्त्र को केसर और घी मिलाकर भोजपत्र पर लिखने से सभी मनुष्यों की सब प्रकार से सम्यक् रक्षा होती है। तेरहवें यन्त्र को ताड़पत्र पर ताड़ के रस से लिखकर दिवाल में छेद करके उसमें रखने से घर की रक्षा होती है। व्याधि, चोर, ग्रह, सर्प, वैरी आदि अन्य क्षुद्रादि की बाधा से रक्षा होती है। चौदहवें यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से

कामिनियों को अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है। पन्द्रहवें यन्त्र को स्वर्णपट्ट पर लिखकर धारण करने से वन्ध्या को भी गुणवान एवं दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त होता है। सोलहवें यन्त्र को स्वर्णपट्ट पर लिखकर अभिषेक करके धारण करने से नारी अपनी सौतों में सबसे अधिक प्रिय पत्नी होती है। इसे भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से मनुष्यों की राजा, चोर, ग्रहादि से सर्वदा रक्षा होती है।

भेरुण्डानित्याप्रयोगविधि:

अथ भेरुण्डानित्याप्रयोगविधि:। तत्र श्रीतन्त्रराजे (प० १० श्लो० २१)—

स्नातो मौनी पयोभक्षः प्रजपेन्नवलक्षकम्। तद्दशांशं हुनेदग्नौ त्रिमध्वक्तैः कुशेशयैः ॥१॥
तावच्च तर्पयेत्तोयैरिन्दुचन्दनवासितैः। अर्चयेन्नित्यशो देवीं सहस्रं प्रजपेदपि ॥२॥
ततः स्वगुरुणोद्दिष्टप्रयोगान् विधिना चरेत्। अन्यथा निष्फलं भूयात्प्रत्युतैनं निहन्ति च ॥३॥
द्वितीयाद्यैस्त्रिभिर्बीजैः षष्ठेन च समीरितम्। निग्रहाख्यमथान्यैस्तु त्रिभिरन्त्यद्वयेन च ॥४॥
षट्कोणं वृत्तयुग्मं च कृत्वा तन्मध्यतो लिखेत्। द्वितीयार्णं साध्ययुतं कोणेष्वन्यत्त्रयं लिखेत् ॥५॥
अधरेषु समायानि तानि लेख्यानि सर्वदा। वृत्तयोरन्तरा साध्यसमेतैः पवनार्णकैः ॥६॥
संवेष्ट्य तानि सञ्जप्य रिपोरष्टमराशिगे। श्मशाने स्थापयेत्तत्र लग्ने विद्वेषणं भवेत् ॥७॥

अस्यार्थः—षट्कोणं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय भेरुण्डाया मूलनवार्णस्य द्वितीयाक्षरं साध्यनामगर्भं 'अमुकामुकयोर्विद्वेषणं कुरु कुरु' इति संयोज्य मध्ये विलिख्य, तृतीयं चतुर्थं षष्ठं बीजत्रयं बिन्दुयुक्तं षट्कोणस्योपरितनकोणत्रये विलिख्य, तान्येव त्रीणि बीजानि षट्कोणस्याधस्तनकोणत्रये विसर्गयुक्तानि विलिख्य तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले वायुवर्णदशकेन साध्यनामगर्भेणावेष्टयेदुक्तफलदं भवति। तथा—

निम्बपत्ररसैः पिष्टश्मशानाङ्गारलेखनात्। पृषदाखुत्वचि च तत्सहस्रद्वयजापतः ॥८॥
पृषन्मार्जारः। आखुर्मूषकः।

द्वीपिवक्त्रत्वचि लिखेत्तद्यन्त्रं गोमुखत्वचि। समालिख्यं च संज्ञान्तं पूर्वस्मिन्नुत्तरे रिपोः ॥९॥
उत्तराधरमाधाय शिलाधः संध्ययोर्जपेत्। जपित्वा प्रोक्तसंख्यं च जयेत्तं प्रतिवादिनम् ॥१०॥

रिपोरुत्तरदिशि पूर्वदिशि वा उत्तराधरं उपरिष्टादधस्ताच्छिलाद्वयमित्यर्थः। संध्ययोः प्रातः सायम्। प्रोक्तसंख्यं सहस्रम्।

एतन्मुखावलोकेन प्रतिवादी हतोद्यमः। निरुत्तरः पलायेत जितोऽस्मीति वदेत्तु वा ॥११॥
हरितालेन पिष्टेन निशारसयुतेन तु। विलिखेद्वादविजये यन्त्रमुक्तक्रमेण वै ॥१२॥
रुरुचर्मणि तद्रक्तलिखितं तद्रिपोर्गृहे। प्रोक्तकाले खनेदुक्तक्रमपूजाजपान्वितम् ॥१३॥
उच्चाटयेद्रिपून् मासान्नियतं यन्त्रवैभवात्। नृचर्मणि च तद्रक्तलिखितं तत् श्मशानके ॥१४॥
पूजाजपक्रमोपेतं निखनेदुक्तकालतः। मासेन याति वैरी तु दाहज्वरयुतो यमम् ॥१५॥
तृतीयं मध्यतः कृत्वा त्वितरान् परितो लिखेत्।

तृतीयं प्रोक्तबीजचतुष्टयमध्ये तृतीयं बीजमित्यर्थः।

साध्यर्क्षयोनेस्त्वचि तन्मधूच्छिष्टेन पीडितम् ॥१६॥
श्मशानभस्ममिलितं निक्षिप्तं नष्टकूपके। प्रोक्तकालसमोपेतं नाशयेत् सलिले रिपुम् ॥१७॥
तदेव वह्निमूलेन पिष्टेन मनुजासृजा। लिखितं गोत्वचि क्षिप्तं चुल्ल्यामुपरि वह्निना ॥१८॥
ज्वलितेनानिशं मासादग्निनाग्नौ पतेद्रिपुः। तृतीयेन तु मध्येन वेष्टितैरितरैरपि ॥१९॥
तृतीयेन तृतीयबीजेन।

उलूककाकपक्षाभ्यां प्रथमोक्तेन संलिखेत्। गर्दभत्वचि तत् खात्वा कुण्डमध्ये तदूर्ध्वतः ॥२०॥
साध्यवृक्षेन्धने वह्नौ बीजैरुन्मत्तसम्भवैः। कद्रुतैलप्लुतैर्होमान्मत्तोऽरिर्म्रियते ध्रुवम् ॥२१॥
साध्यर्क्षवृक्षकीलं तु प्रोक्तयन्त्रसमन्वितम्। खरस्नायुभिराबद्धं खातं वैरिपुरे निशि ॥२२॥
राशौ तदष्टमे मासात्तत्पुरं पितृकाननम्। काकोलूकबकश्येनकङ्कतित्तिरिपादयोः ॥२३॥
विलिख्य यन्त्राण्युक्तानि प्रेतचीरे निबध्य तत्। खनेन्मङ्गलवारे तु प्रोक्तकाले चतुष्पथे ॥२४॥
त्रिसप्ताहाद् व्रजेद्वैरी स्यादुन्मत्तो दिशो दश। तान्येव तत्तच्चर्मस्थं तदालयभुवि स्थितम् ॥२५॥
शमयेद्गजमर्त्याश्वगोखरोष्ट्राजसैरिभान् । सप्ताहात् तद्द्वयान्मासान्नियतं यन्त्रवैभवात् ॥२६॥
तच्छान्तिं शृणु देवेशि यन्त्रध्यानाभिषेकतः। तन्मन्त्रवर्णैर्यन्त्रस्थैश्चित्रा मन्त्रार्थवैभवाः ॥२७॥
पद्ममष्टदलं कृत्वा मध्ये त्वाद्यं सनामकम्। लिखित्वाष्टसु पत्रेषु चतुष्कं तद्द्विरालिखेत् ॥२८॥
बहिर्वृत्तान्तरा कुर्यान्मातृकाक्षरवेष्टनम्। प्रागुक्तैरेव तैर्द्रव्यैः संपूज्य विनियोगतः ॥२९॥
तत्तत्क्लेशविनाशः स्यात्तथा मन्त्रानुभावतः।

अत्र निग्रहयन्त्रोक्ताक्षरचतुष्टयं विहायोर्वरिताक्षरपञ्चकमध्ये प्रथमं साध्यनामगर्भं कर्णिकायामर्णचतुष्टयं द्विरावृत्त्याष्टदलेषु लिखेदित्यर्थः।

भेरुण्डा नित्या प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि स्नान करके, मौन व्रत धारण कर, दूध पीकर नव लाख मन्त्र का जप करे, उसका दशांश हवन त्रिमधुराक्त कमल से करे। उतना ही तर्पण कपूर-चन्दनवासित जल से करे और नित्य अर्चन करे, नित्य एक हजार जप करे। तब गुरु से उपदिष्ट प्रयोग को विधिवत् करे; अन्यथा प्रयोग निष्फल होता है और वह कर्ता का ही नाश करता है।

षट्कोण बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनावे। भेरुण्डा के मूल नवाक्षर मन्त्र के द्वितीय अक्षर को साध्य नाम के गर्भ में 'अमुकामुकयोः विद्वेषणं कुरु कुरु' योजित करके मध्य में लिखे। तृतीय चतुर्थ षष्ठ तीनों बीजों को बिन्दुयुक्त करके षट्कोण के ऊपरी तीनों कोनों में लिखे। उसी प्रकार सविसर्ग तीन बीजों को निचले तीनों कोनों में लिखे। उसके बाहर वृत्तों के अन्तराल में दश वायु वर्णो को साध्य नामगर्भित करके लिखे। तब उक्त फल प्राप्त होता है। उनका जप करके शत्रु के अष्टम राशिगत लग्न में श्मशान में स्थापित करे। इससे विद्वेषण होता है। नीम के पत्तों के पिष्ट से श्मशान के अंगार से विलार और मूस के चमड़े पर यन्त्र बनाकर एक हजार जप से विद्वेषण होता है। बाघ के मुख के चमड़े पर यन्त्र लिखे और गोमुख के चमड़े पर भी यन्त्र लिखे। शत्रु के उत्तर दिशा और पूर्व दिशा में दो पत्थरों के बीच में यन्त्रों को रखकर दोनों सन्ध्याओं में प्रोक्त संख्या में जप करे। इससे प्रतिवादी पर विजय होती है। ऐसा करने वाले का मुख देखकर प्रतिवादी उद्यमरहित हो निरुत्तर होकर 'मैं हार गया' कहते हुए भाग जाता है। वाद में जीत के लिये यन्त्र को उक्त क्रम से हरताल पिष्ट में हल्दी रस और रुरु का रक्त मिलाकर रुरु के चमड़े पर लिखकर पूजा-जप करके शत्रु के घर में गाड़ दे। तब यन्त्र के वैभव से एक महीने में शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। मनुष्य के चमड़े पर मनुष्य के रक्त से यन्त्र लिखकर पूजा-जप के बाद उक्त काल में श्मशान में गाड़ देने से एक महीने में वैरी ज्वरदाह से यमलोक सिधार जाता है। प्रोक्त चार बीजों में से तीसरे बीज को मध्य में लिखे और शेष को चारो ओर साध्य नक्षत्र योनि वृक्ष की छाल में मोम और श्मशान भस्म मिलाकर लिखे। विहित काल में उसे नष्ट कूप में डाल दे तो शत्रु जल में डूबकर मर जाता है। इसी प्रकार वह्निमूल पिष्ट में मनुष्य का रक्त मिलाकर गोचर्म पर यन्त्र लिखकर चूल्हा के ज्वलित आग पर तपाने से शत्रु अग्नि में गिर जाता है। इस यन्त्र में तृतीय बीज को मध्य में लिखकर इतर वर्णों से वेष्टित करे। उल्लू और कौए के पंखों से गदहे के चमड़े पर प्रथमोक्त प्रकार से लिखकर कुण्ड खान कर साध्य वृक्ष की अग्नि में धत्तूर बीज को सरसों तेल से अक्त करके हवन करे तो शत्रु पागल होकर मर जाता है। साध्य नक्षत्र वृक्ष के कील के साथ प्रोक्त यन्त्र को गदहे के स्नायु से बाँधकर रात में वैरी के नगर में उसकी अष्टम राशि में गाड़ दे तो एक माह में साध्य की मृत्यु हो जाती है। यन्त्र को लिखकर कौआ, उल्लू, बगुला, बाज, गिद्ध के पंजों के साथ मुर्दे के कपड़े से बाँध दे, मंगलवार

को चौराहे पर प्रोक्त काल में गाड़ दे। तब वैरी पागल होकर दशो दिशा में दौड़ता रहता है। उसी प्रकार मतवाले हाथी, घोड़ा, गाय, गदहा, ऊँट को शान्त करने के लिये उनके रहने के स्थान में बैठकर उनके चमड़े पर यन्त्र को लिखकर पूजा-जप करने से एक सप्ताह या दो सप्ताह या महीने भर में यन्त्र के प्रभाव से शान्ति हो जाती है। इन यन्त्रों की शान्ति के लिये यन्त्र का अभिषेक ध्यान-मन्त्र-वर्णसहित यन्त्रस्थ चित्रों के मन्त्र वैभव का चिन्तन करे। अष्टदल कमल बनाकर मध्य में साध्य नामसहित पहला अक्षर लिखे। आठ दलों में चार बीजों की दो आवृति से लिखे। उसके बाहर वृत्त को मातृकाक्षरों से वेष्टित करे। विनियोग करके पूर्वोक्त द्रव्यों से पूजन करे। तब क्लेश का नाश मन्त्र के द्वारा होता है।

विजयं समरे राज्ञां शृणु वैरिविनाशनम् ॥३०॥
मन्त्राक्षराणि प्रत्येकं योजयेत् षोडशस्वरैः। तेन मन्त्राक्षराणि स्युः संख्यया च शतं पुनः ॥३१॥
चत्वारिंशच्च चत्वारि तैर्यन्त्ररचनं शृणु।

अत्र मूलमन्त्रस्यानावृत्ताक्षराणि करभझछजसवह इति नवाक्षराणि षोडशस्वरयुक्तानि चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४४ भवन्ति। तथा—

तेन सर्वत्र समरे विजयो भवति ध्रुवम् ॥३२॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च कुर्याद्रेखास्त्रयोदश। तेन तावन्ति कोष्ठानि सम्भवन्ति समन्ततः ॥३३॥
कृत्वाष्टास्त्रं ततो बाह्ये वृत्तयुग्मं ततो लिखेत्। अक्षराणि शिवाद्यं तु निर्ऋत्यन्तमनुक्रमात् ॥३४॥
तत्तन्मन्त्रार्णकोष्ठेषु नवस्वाख्यां समालिखेत्। बहिरष्टसु कोणेषु द्वितीयार्णादि संलिखेत् ॥३५॥

यस्मिन् यस्मिन् कोष्ठेऽनावृत्ताक्षरं पतितं तस्मिंस्तस्मिन् कोष्ठे साध्यनाम लिखेदित्यर्थः। द्वितीयार्णेति मूलमन्त्रबीजानीत्यर्थः।

अन्तरालेषु विलिखेदाद्यं वृत्तद्वयान्तरा। तान्येव मातृकाख्याभिर्विदर्भितमथो लिखेत् ॥३६॥

बहिरष्टकोणान्तरालेषु आद्यक्षरं प्रणवमेव लिखेत्। तदन्तर्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मूलमन्त्राक्षरविदर्भितमातृकाक्षरैर्वेष्टयेदित्यर्थः।

एतत्पटे समालिख्य ध्वजीकृत्य रणोद्यमे। दर्शयेत्तेन रिपवः पलायन्ते दिशो दश ॥३७॥
प्रणमेयुर्निजां लक्ष्मीं प्राभृतीकृत्य तत्क्षणात्। तदेव वैरिशिविरे निखनेदुदये शनेः ॥३८॥
सद्यस्त्वन्योन्यकलहान्नाशमेति सुनिश्चितम्। तदेव स्वपुरे मध्ये स्थापयेद् धिषणोदये ॥३९॥
पराभिचारकृत्यादिदुरितानि न तत्र वै। संस्पृशन्ति पुरान्तःस्थाद्यन्त्रशक्त्यनुभावतः ॥४०॥
तद्यन्त्रं ताम्रपट्टे तु विलिख्याभ्यर्च्य तत्पुनः। स्थापयेत् साध्यभूभर्तुरेकादशसमुद्यमे ॥४१॥
गजवाजिगृहे स्वस्य भाण्डागारे स्वमन्दिरे। अन्तःपुरे नगर्यास्तु दिक्षु मध्ये च तत्खनेत् ॥४२॥
यत्र संस्थापितं यन्त्रं तत्रार्चा नित्यशो नृपः। कारयेत्तेन तत्सर्वं शाश्वतं वृद्धये भवेत् ॥४३॥
बीजानि तानि प्रत्येकमष्टपत्रसरोरुहे। मध्ये दलेषु परितो लिखेदेकैकशः क्रमात् ॥४४॥
बहिर्मातृकयावेष्ट्य संजप्याभ्यर्च्य नित्यशः। स्वजन्मर्क्षादिनवके कुर्याच्छान्तिमनुक्रमात् ॥४५॥
यन्नक्षत्रे भवेदस्य ग्रहतो राजतोऽपि वा। रोगतो वैरितो वापि तस्मिंस्तत्तेन शामयेत् ॥४६॥

अत्र यन्त्रान्तरमाह—बीजानीति—अष्टदलकमलं विलिख्य मध्ये प्रथमबीजं साध्यनामगर्भं विलिख्याष्टसु दलेषु द्वितीयाद्यष्टबीजानि विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैर्वेष्टयेत्। एवं द्वितीयाक्षरं मध्ये चेद् द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं नव यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

युद्ध में विजय और राजा के शत्रु के नाश लिये विधि सुनो। प्रत्येक मन्त्रवर्ण को सोलह स्वरों से युक्त करे। इससे

मन्त्राक्षर एक सौ चौवालीस होते हैं। उनसे यन्त्ररचना सुनो, जिससे युद्ध में राजा के वैरी का नाश होता है। पूरब से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर तेरह-तेरह रेखा खींचे। इससे एक सौ चौवालीस कोष्ठ बनते हैं। उसके बाहर अष्टास्र बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। ईशान से नैर्ऋत्य तक अनुक्रम से कोष्ठों में मन्त्रवर्णों को लिखे। बाहर आठों कोनों में द्वितीय वर्ण को लिखे। जिस-जिस कोष्ठ में अनावृत अक्षर हो, उन कोष्ठों में साध्य नाम लिखे। द्वितीय वर्ण मूल मन्त्र का बीज है। अन्तराल में आद्य बीज लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल में उनसे विदर्भित मातृकाओं को लिखे। बाहर कोणान्तराल में आद्य अक्षर प्रणव लिखे। इसे कपड़े पर लिखकर ध्वजा बनावे। युद्ध की स्थिति में उसे शत्रुसेना को दिखावे। इससे शत्रुसेना दशों दिशाओं में भाग जाती है। ध्वजा को अपनी लक्ष्मी मानकर पूजा करे। शनि के उदय होने पर उसे वैरी के शिविर में गाड़ दे। तब शत्रुसेना आपसी कलह से नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार अपने नगर में गुरु के उदय होने पर स्थापित करे। तब दूसरे द्वारा कृत अभिचार कृत्यादि विपत्तियाँ उस नगर का स्पर्श भी नहीं करतीं। नगर के अन्दर स्थापित यन्त्रशक्ति का प्रभाव ऐसा होता है। उस यन्त्र को ताम्र पत्र पर लिखकर पुनः अर्चन करे। साध्य भूपति के एकादश भाव में होने पर हाथी, घोड़े के शाला में, अपने भण्डार में, अपने घर में, अन्तःपुर में, नगर की चारो दिशाओं में और मध्य में गाड़ दे। यन्त्र स्थापित स्थान में राजा नित्य पूजा करे। इससे उनकी शाश्वत वृद्धि होती है। उन बीजों को अष्ट कमल के दलों के मध्य में चारो ओर एक-एक करके लिखे। बाहर मातृकाओं से वेष्टित करे। नित्य जप-पूजा करे। अपने जन्मनक्षत्र से नव नक्षत्रों में अनुक्रम से शान्ति करे। जिस नक्षत्र में ग्रह से, राजा से, रोग से, वैरी से पीड़ा होती है, उनका शमन होता है।

यन्त्रान्तर—अष्टदल कमल बनाकर मध्य में प्रथम बीज को साध्य नाम से गर्भित लिखे। आठों दलों में दूसरे से नवें तक के आठ बीजों को लिखे। इसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकाक्षरों को लिखकर वेष्टित करे। इस प्रकार द्वितीय अक्षर को मध्य में लिखने से द्वितीय यन्त्र होता है। इस प्रकार कुल नव यन्त्र बनते हैं।

तथा—

मन्त्रार्णौषधमध्यस्थं यन्त्रं कृत्वा तु तेन तु। रक्षां कुर्वीत सर्वेषां सर्वापत्तारणाय वै ।।४७।।
तत्तद्यन्त्रं तद्दिनेषु स्नानपानाशनादिना। ग्रहजं वैरिजं दुःखं शाम्यत्येव न संशयः ।।४८।।
क्रमेण नवयन्त्राणि नवग्रहमयानि च। तस्मात्तत्तद्ग्रहक्लेशं तत्तद्यन्त्रेण शामयेत् ।।४९।।
सेकाशनविभूत्यादिप्रयोगैरुदितैः क्रमात्। विविधानि विषाण्येभिर्यन्त्रैर्जलनिवेशनैः ।।५०।।
नाशयेत् पानसेकाभ्यां धारणेनार्चनेन च। एभिस्तु नवभिर्यन्त्रैर्यत्र साध्यं न कुत्रचित् ।।५१।।
देशे वा नगरे ग्रामे मण्डले खर्वटादिके। प्रथमं मध्यतः खात्वा प्रागादिषु ततोऽष्टसु ।।५२।।
द्वितीयादीनि तु खनेत्तत्र लक्ष्मीरतिस्थिरा। धर्मार्थौ चातिसंवृद्धौ भवेतामुक्तयोगतः ।।५३।।
द्वितीयं मध्यतः खात्वा त्वितराण्यभितः खनेत्। धार्मिकास्तेन तत्रस्थाः प्रसीदन्ति च देवताः ।।५४।।
सप्तस्वन्येषु च तथा कान्त्यारोग्ययशोबलैः। पुत्रज्ञानधनैश्चाढ्याः प्रभवन्ति च नित्यशः ।।५५।।
दष्टेषु घोरैः फणिभिर्नवभिर्नवरन्ध्रगैः। ध्यातैर्मृतोऽपि माहात्म्यान्मन्त्रस्योत्तिष्ठते ध्रुवम् ।।५६।।
अश्विन्यादिषु ऋक्षेषु नवानि नवसु क्रमात्। विलिख्य देवीं तत्रस्थां नवाकारां नवस्वपि ।।५७।।
पूजयेदुपचारैस्तां नित्यशो भक्तिसंयुतः। प्रागुक्तपरिवारादिरहितां पूजयन्नपि ।।५८।।
सिद्धिमेति नरो भक्त्या परया चेत्समन्वितः। स्त्रीबालवृद्धाशक्तानां गतिरेषा च सिद्धये ।।५९।।
भेरुण्डां कर्णयोर्जप्याद्विषार्तस्य तदैव सः। निर्विषो जायतेऽचिन्त्या मन्त्राणां शक्तयः शिवे ।।६०।।
त्रैलोक्यमोहिनी विद्या सर्वतो भवता स्तुता। न कदाचित्तु सा प्रोक्ता तां मे ब्रूहि महेश्वर ।।६१।।
सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि। व्याप्तरूपं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वमिदमद्भुतम् ।।६२।।
येन नारीनरनृपदेवताः सर्वजन्तवः। भजन्त्येनं यथा मां त्वं तत्प्रयोगबलाद् ध्रुवम् ।।६३।।
अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकार्णैः सबिन्दुभिः। प्रत्येकं पुटितान् कृत्वा मन्त्रं विद्यामथापि वा ।।६४।।

विद्यया मातृकावर्णान् पुटयेन्मन्त्रतोऽपि वा। प्रोक्ते तद्यन्त्रनवके कुम्भं संस्थाप्य वै तथा ॥६५॥
जपतर्पणहोमार्चासिद्ध्या सेक ईरितः। कुचन्दनैर्गैरिकैर्वा दरदैश्चन्दनैस्तथा ॥६६॥
सिन्दूरैस्तण्डुलैर्मुद्गैस्तिलैः कृष्णैः सितैरपि। नवानां नवभिः कुर्यादेभिर्यन्त्रप्रकल्पनम् ॥६७॥
चैत्रादिविषुवद्द्वन्द्वे तथैवायनयोर्द्वयोः। दक्षोत्तराख्ययोर्जन्मत्रितये पर्वणि क्रमात् ॥६८॥
राजा वा राजमहिषी सेनापत्यधिपोऽथवा। अन्यो वा भक्तिशीलाढ्यः कारयेदभिषेचनम् ॥६९॥
दक्षिणामभिषेके च दद्याद्भूरि स्वशक्तितः। वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदि कुर्वीत लोभतः ॥७०॥
संदहेत्तं यावकवत् पुत्रलक्ष्मीकलत्रकैः। तस्मात्सर्वत्र तन्त्रेऽस्मिन् वित्तशाठ्यं न चिन्तयेत् ॥७१॥
अभिषेकफलं देवि शृणु वक्ष्ये यथाविधि। सोमसूर्याग्निरूपेण जलेनेप्सितमन्त्रतः ॥७२॥
जपपूजादिना सिद्धवैभवेनाभिषेकतः। दुर्लक्षणसमुत्थानि तथा दुष्कर्मजानि च ॥७३॥
तद्वद्दुर्नीतिजनितान्यन्यानि दुरितानि च। नाशयेत्तत्क्षणादेव सलिलैरिव पावकः ॥७४॥
अपुत्रो वित्तविद्यायुरारोग्यादिसमन्वितः। लभते च बहून् पुत्रान् सुखी च चिरमेधते ॥७५॥
केमद्रुमादियोगेषु जन्मना प्राक्तनाद्यतः। यो भृशं नित्यदारिद्र्यात्क्लिष्टः सोऽपि श्रियैधते ॥७६॥
प्राग्जन्मसञ्चितैः पापैरपथ्यादिनिषेवणैः। अनीत्या वैरिविहितैरभिचारादिभिस्तु वा ॥७७॥
ये रोगाः पीडयन्त्येनं ते विनश्यन्त्यशेषतः। कान्तिलक्ष्मीधनारोग्यविद्याविजयकीर्तिभिः ॥७८॥
सुचिरं जीवति ख्यातः पुत्रपौत्रादिभिर्युतः। नवाभिषेकं नवसु प्रोक्तेषु विधिना चरन् ॥८९॥
अपमृत्युं विजित्यास्मद्भक्तः शुद्धान्तमानसः। जीवन्मुक्तश्चिरं योगी भुवि जीवति मन्मथः ॥८०॥

इति भेरुण्डानित्याप्रयोगविधिः।

मन्त्र वर्णौषध के मध्य में यन्त्र को रखने से सबों की रक्षा होती है और सभी विपत्तियों से मुक्ति मिलती है। यन्त्र के अनुरूप दिनों में स्नान-पान-खान से ग्रहज एवं वैरिज दुःखों का शमन होता है। ये नवों यन्त्र क्रम से नवग्रह रूप के हैं, इससे तत्तत् ग्रहजन्य कष्ट का शमन यन्त्र से होता है। इनसे अभिषेक, भक्षण और विभूति आदि के प्रयोग क्रम से होते हैं। विविध विषों के नाश के लिये इस यन्त्र का जल में निवेश किया जाता है। इस जल के पान, अभिषेक, धारण और अर्चन से इनका नाश होता है। इन नव यन्त्रों से जो साध्य न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है। देश, नगर, ग्राम, मण्डल, बाजार आदि में मध्य में पहला यन्त्र गाड़े; तब पूर्वादि दिशाओं में आठ यन्त्रों को गाड़े। उक्त योग से स्थिर लक्ष्मी, प्रीति, धर्म, अर्थ और समृद्धि की प्राप्ति होती है। दूसरे यन्त्र को बीच में और शेष आठ को उसके सभी दिशाओं में गाड़ कर धार्मिक वहाँ बैठे तो देवता प्रसन्न होते हैं। अन्य सातों से इसी प्रकार कान्ति, आरोग्य, यश, बल, पुत्र, ज्ञान, धन से साधक धनी होता है। भयंकर साँप के काटने पर उसके नव छिद्रों में नव यन्त्रों के ध्यान से मृत भी जी उठता है। इस मन्त्र का ऐसा ही माहात्म्य है।

अश्विनी आदि नव नक्षत्रों में नवों यन्त्रों को क्रम से लिखकर उनमें देवी को नव आकारों में स्थापित करके नित्य भक्ति से उपचारों से पूजा करे। इसके पूर्वोक्त परिवाररहित पूजन से भी मनुष्य को परमा सिद्धि मिलती है। स्त्री-बाल-वृद्ध-अशक्तों को भी इसमें अधिकार है। विष से आर्त मनुष्य के कान में भेरुण्डामन्त्र का जप करने से वह निर्विष हो जाता है। इस मन्त्र की शक्ति अचिन्त्य है।

हे महेश्वर! आपने त्रैलोक्यमोहिनी विद्या की प्रशंसा सर्वत्र की है; पर कभी कहा नहीं; अब उसे कहिये। हे देवि! सुनो, सभी मन्त्रों एवं विद्याओं में व्याप्त यशस्विनी के अद्भुत रूप को कहता हूँ। इसके प्रयोग के प्रभाव से ही मुझे और तुम्हें नारी-नर-नृप-देवता सभी प्राणी भजते हैं। सानुस्वार अ से क्ष तक की मातृकाओं से प्रत्येक मन्त्र विद्या को पुटित करके अथवा विद्या से मातृकाओं को पुटित करके प्रोक्त नव यन्त्रों में नव कलशों को स्थापित करे। तदनन्तर जप-तर्पण-हवन-अभिषेक करे तो सिद्धि मिलती है। लाल चन्दन, गेरु, सिंगरफ, चन्दन, सिन्दूर, तण्डुल, मूंग, तिल काला एवं उजला—इन नव से नव यन्त्रों को कल्पित करे। चैत्रादि दो विषुव, दक्षिणायन या उत्तरायन, जन्म के तृतीय पर्व में राजा, रानी, सेनापति, अधिपति अन्य

भक्त का अभिषेक करे। अपनी शक्ति के अनुसार प्रचुर दक्षिणा दे, वित्तशाठ्य कभी न करे। यदि लोभ से कोई वित्तशाठ्य करता है तो वह पुत्र, लक्ष्मी, पत्नी के साथ अग्निदाहवत् जलन से पीड़ित होता है। इसलिये इस तन्त्र में कहीं भी वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिये।

अभिषेक फल—हे देवि! सुनो, अभिषेक के फल को यथाविधि कहता हूँ। सोम-सूर्याग्नि रूप के जल से ईप्सित मन्त्र से जप-पूजादि करके सिद्ध मन्त्र से अभिषेक करने पर दुर्लक्षणजनित, दुष्कर्मजनित एवं दुर्नीतिजनित कष्ट तत्क्षण ही उस अभिषेकजल के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। यह जल अग्नि के समान कष्टों का नाश करता है। अपुत्र भी बहुत धन, विद्या, आयु, आरोग्य और पुत्र से युक्त होता है और वह बहुत दिनों तक सुखी रहता है। केमद्रुम योग में लेकर भी पूर्वजन्म के कर्मप्रभाव से नित्य दारिद्र्यरूपी कष्ट को प्राप्त मनुष्य भी लक्ष्मी से सम्पन्न होता है। पूर्व जन्मों के संचित पाप, अपथ्य-सेवन, अनीति एवं वैरीकृत अभिचारादि से उत्पन्न रोग की पीड़ा का जड़सहित नाश हो जाता है और वह कान्ति, लक्ष्मी, धन, आरोग्य, विद्या, विजय, कीर्ति से प्रसिद्ध होकर पुत्र-पौत्रों के साथ दीर्घकाल तक जीवित रहता है। प्रोक्त नव विधि से नव अभिषेक करने पर अपमृत्यु को जीतकर मेरा भक्त शुद्ध मानस एवं जीवनमुक्त योगी होकर संसार में मन्मथ के समान जीवित रहता है।

वह्निवासिनीनित्याप्रयोगविधि:

अथ वह्निवासिनीनित्याप्रयोग:। तत्र श्रीतन्त्रराजे (प० ११ श्लो० २६)—

विद्याया: साधनं तद्वत्तन्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरि। अन्यतन्त्रानपेक्षित्वादुच्यतेऽत्रैव साधनम् ॥१॥
द्रव्यानुक्तौ होमविधौ घृतमन्नाज्यमेव च। संख्यानुक्तौ सहस्रं स्याच्छतं वा तन्त्रचोदितम् ॥२॥
विदध्यादुक्तरूपेण पूर्णत्वं त्वमुनाक्षतम्। काम्यहोमविधिं वक्ष्ये शृणु वाञ्छितदायकम् ॥३॥
शालितण्डुलमादाय प्रस्थं भाण्डे विनिक्षिपेत्। समानवर्णवत्साया रक्ताया गो: पयस्तथा ॥४॥
द्विगुणस्तत्र निक्षिप्य श्नपयेन्संस्कृतेऽनले। घृतेन सिक्तं सिक्थं तु कृत्वा तत्ससितं करे ॥५॥
निधाय विद्यामष्टोर्ध्वं शतं जप्त्वा हुनेत्तत:। एवं होमो महालक्ष्मीमावहेत्प्रतिपत्कृत: ॥६॥

सिक्थं पिण्डं, ससितं सितया युतम्। तथा—

शुक्रवारेष्वपि तथा वर्षान्नृपसमो भवेत्। पञ्चम्यां तु विशेषेण प्राग्वद्धोमं समाचरेत् ॥७॥
तस्यां तिथौ त्रिमध्वक्तैर्मल्लिकाद्यै: सितैर्हुनेत्। अन्नाज्याभ्यां तु नियतं हुत्वान्नाढ्यो भवेन्नर: ॥८॥
यद्यद्धि वाञ्छितं वस्तु तानि सर्वानि सर्वदा। घृतहोमादवाप्नोति तथैव तिलमण्डुलै: ॥९॥
पञ्चमीषु विशेषेण पूजां कुर्याद् व्रती भवेत्। प्रतिपत्तिथिमारभ्य पञ्चदश्यन्तमम्बिके ॥१०॥
कामेश्वर्यादिचित्रान्ता देव्यस्त्वेकैकविग्रहा:। यतस्तेन स्वस्वतिथौ तास्ता: पूज्या हुतादिभि: ॥११॥
प्रीणयेद् व्रतसङ्कल्पसमेतो भक्तिसंयुत:। तेनायु:श्रीधनारोग्यविद्याकीर्तिसमन्वित: ॥१२॥
जीवेद्वर्षशतं भूमौ स्वकुल्याग्र्यश्च तत्त्ववित्। यत्तिथौ या: समाख्याता: स ता: सममवाप्नुयात् ॥१३॥
विद्या विधिवदेवैता: प्रोक्ता: पञ्चदशापि च। संप्राप्य जपहोमार्चायोगतर्पणसेकत: ॥१४॥
विद्यया देवतात्मानं संप्राप्याखिलमाचरेत्। विद्याप्राप्तिविधिं देव ब्रूहि सम्यङ् ममाधुना ॥१५॥
आसां पञ्चदशानां च येनैता: साधकोन्मुखा:। शृणु वक्ष्यामि ते देवि विद्याप्राप्तिविधिं शुभाम् ॥१६॥
येन विद्यादेवताभ्यामैक्यं योगेन सिध्यति। तद्भावमावयोरैक्यरूपमानन्दविग्रहम् ॥१७॥
यदवाप्तुं यजन्तेऽद्याप्यनेके मुनयोऽम्बिके। कुचन्दनै: कुङ्कुमैर्वा सिन्दूरैर्गैरिकै: शुभै: ॥१८॥
विदध्याद्विपुलं चक्रं व्यक्तरेखं सुशोभनम्। यस्या यच्चक्रमाख्यातं नित्यपूजाविधिक्रमे ॥१९॥
तत्र कुम्भं निधायान्तर्जले संपूज्य देवता:। प्रोक्तक्रमसमोपेतं पूर्वेद्युर्गीतनृत्यकै: ॥२०॥
कृत्वोत्सवमथान्येद्यु: प्राग्वदभ्यर्च्य तां तथा। तत्तिथौ प्राङ्मुखं शिष्यमुक्तलक्षणसंयुतम् ॥२१॥

तथाविधो गुरुः कुम्भजलैस्तमभिषेचयेत्। तज्जलं प्रागुदङ्मध्यदिक्षुगं सर्वसिद्धिदम् ॥२२॥
अन्यासु क्रमतोऽनिष्टान्यवाप्नोति सुनिश्चितम्। वह्निदाहं मृतिं रोगं दारिद्र्यं देशमोचनम् ॥२३॥
क्रमाद्वह्न्यादिवाय्वन्तं फलानि स्युरिमानि वै।

वह्निवासिनी नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि हे परमेश्वरि! इस तन्त्र में विद्यासाधन अन्य तन्त्रों से अपेक्षित रूप में कहता हूँ। इसके होमविधि में घी, अन्न, गोघृत एवं जप की संख्या एक हजार या एक सौ तन्त्रों की आज्ञानुसार है। उक्त रूप में साधन करने से अक्षत पूर्णत्व प्राप्त होता है। अब काम्य हवन को कहता हूँ, जिससे वांछितार्थ की सिद्धि होती है। एक प्रस्थ शालि तण्डुल लेकर एक पात्र में रखे। लाल वर्ण के बछड़े वाली लाल गाय का दूध उसमें चावल का दुगुना डाले। संस्कृत अग्नि में उसे पकाये। घी से सिक्त करके उसमें चीनी मिलाकर रखे। विद्या का एक सौ आठ जप करे। तब हवन करे। हवन में महालक्ष्मी का आवाहन पक्ष की प्रतिपदा या शुक्रवार में करे। एक वर्ष तक ऐसा करने से साधक राजा के समान हो जाता है। विशेषतः पञ्चमी में पूर्ववत् हवन करे। वह्निवासिनी की तिथि में त्रिमधुर युक्त मल्लिका शक्कर अन्न आज्य से निश्चित संख्या में हवन करने से मनुष्य अन्नाढ्य हो जाता है। सभी वांछितार्थ की प्राप्ति जैसे घी के हवन से होती है वैसे ही तिल-तण्डुल से भी होती है। पञ्चमी में विशेष रूप से व्रत रहकर पूजा करे। शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके पूर्णिमा तक कामेश्वरी से चित्रा तक की देवी के एक-एक विग्रह की पूजा करे और हवन करे। इस प्रकार भक्ति से व्रत-संकल्प करके उनको प्रसन्न करे तो आयु, श्री, धन, आरोग्य, विद्या, कीर्ति मिलती है। साथ ही वह कुलश्रेष्ठ और तत्त्वज्ञ होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जिस तिथि की जो देवी कही गई है, उसकी विद्या का क्रमशः तिथि के अनुसार जप, होम, पूजन, तर्पण आदि प्रतितिथियों में करते हुये अपने को विद्यास्वरूप मानकर समस्त कर्म सम्पादित करने से यथोक्त फल प्राप्त करता है। पार्वती ने कहा कि हे देव! विद्या-प्राप्ति की विधि कहिये। ये पन्द्रह विद्यायें जिस प्रकार साधक की ओर उन्मुख होती हैं, उस विधि को कहता हूँ। जिस योग से देवता और विद्या में ऐक्य होता है, उसी भाव में हम दोनों का आनन्दविग्रह स्वरूप है, अनेक मुनिगण जिसकी पूजा करके फल प्राप्त करते हैं। लाल चन्दन कुङ्कुम सिन्दूर गेरु से विशाल सुन्दर व्यक्त रेखा वाला चक्र बनाकर नित्य पूजा क्रम से उसमें कलश स्थापित करके उसके जल में देवता का पूजन प्रोक्त क्रम से नाच-गान के साथ करे। अन्य दिनों में भी उत्सव करके पूर्ववत् अर्चन करे। उस तिथि में उक्त लक्षणयुक्त शिष्य को पूर्वमुख बैठाये। विधि के अनुसार कलशजल से उसका अभिषेक करे। अभिषेक जल गिरकर यदि पूर्व, उत्तर, मध्य अर्थात् ईशान की ओर जाय तो सर्वसिद्धिप्रद होता है। दूसरी आग्नेयादि दिशाओं में जाने पर वह्निदाह, मृत्यु, रोग, दारिद्र्य, देश से निष्कासन आदि अनिष्ट फल प्राप्त होता है।

ततोऽसौ परिधायाशु शुभ्रे शुद्धे च वाससी ॥२४॥
समाचम्य निजैर्वृत्तैः समस्तैर्वा पुरोदितैः। अभ्यर्च्य पादयोर्नाथं पञ्चश्लोकैः स्तुवंस्त्रिशः ॥२५॥
प्रणम्योत्थाय पुरतो बद्धाञ्जलिकरो भवेत्। ततो गुरुस्तमाहूय चक्रमध्ये निवेश्य च ॥२६॥
मनसा भावयन्नैक्यमात्मानं देवतात्मना। प्रोक्तक्रमेण तां देवीं विद्यारूपां महाद्युतिम् ॥२७॥
समावाह्यास्य मूर्धादित्रिषु स्थानेष्वनुक्रमात्। संस्थाप्य प्रोक्तरूपां तां ध्यात्वाभ्यर्च्य वदेन्मनुम् ॥२८॥
जीवकर्णे त्रिशः पूर्णदेवतात्मा समाहितः। ततस्तत्रैव तां विद्यां शतं जप्यात्तदात्मवान् ॥२९॥
पुनस्तदाज्ञयोत्थाय पुष्पैरभ्यर्च्य तं स्तुवन्। प्रणम्य त्रिरुपासीत मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः स्तुवन् ॥३०॥
आहूय क्रममाचारान् प्रोक्त्वा सम्यग्भजेति तम्। आदिशेद्देशिकस्तस्माद्दिनादारभ्य सोऽपि तम् ॥३१॥
नित्यशो जपपूजाद्यैरुपासीत शिवं गुरुम्। एवं पञ्चदशानां च नित्यानां क्रम ईरितः ॥३२॥
विद्याप्राप्तिविधौ देवि सर्वं सम्यक् समीरितम्। तासां नैमित्तिकं काम्यं ललितोक्तविधानतः ॥३३॥
कुर्यात्प्रतिष्ठाद्यं चैवं यत एतास्तु तन्मयः। आसामन्योन्यमङ्गाङ्गिपूजासु परमेश्वरि ॥३४॥
एकाङ्गित्वे स्थितान्यास्तत्परिवारास्तथाविधाः। अन्यदा प्रोक्तरूपास्तास्तत्र तत्रार्चने मताः ॥३५॥

तासां काम्यफलावाप्तिध्यानं तत्पटलोदितम् । एवं सर्वं समाख्यातं साधारणविधानकम् ॥३६॥
विद्या मन्त्रा इति प्रोक्ता यत्तद्भेदं वद प्रभो । शृणु देवि विशेषं तु सन्दर्भत्वे समेऽपि च ॥३७॥
वर्णानां देवताभेदान् द्विधा स्युस्ते त्वशेषतः । त्वद्दैवत्याः स्मृता विद्या मद्दैवत्यास्तु मन्त्रकाः ॥३८॥
पुनरस्यास्तु यन्त्राणि तत्फलानि शृणु प्रिये । विद्याक्षरेष्वनावृत्तान्यक्षराण्यष्ट तैस्तथा ॥३९॥
स्वराणां संगमादष्टाविंशत्या शतमीरितम् । विधाय वृत्तयोर्मध्ये त्वष्टकोणं ततो द्वयम् ॥४०॥

अत्र अनावृत्ताक्षराणि 'हरवनसयम' इति। आदावकारः, मिलित्वाष्टावक्षराणि षोडशस्वरयुक्तानि चेदष्टाविंशत्युत्तरशतं १२८ वर्णा भवन्तीत्यर्थः।

कृत्वा तेषु न्यसेद्वर्णानिष्टस्वष्टौ तु मध्यतः । मायां नामाङ्कितां कृत्वा तां तारेण प्रवेष्टयेत् ॥४१॥
अन्तर्वृत्तान्तराले ताँल्लिखेद्वर्णान् दश क्रमात् । कर्मानुरूपान् पञ्चाशल्लिखेदुक्तक्रमेण वै ॥४२॥
बहिर्वृत्तान्तरा प्राग्वदादिक्षान्ताक्षराणि च । एवं षोडश यन्त्राणि जायन्ते तैर्यथाक्रमम् ॥४३॥ इति।

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—प्रथमतो मध्ये साध्यनामगर्भं ह्रींकारं विलिख्य तत्प्रणवेन बहिरावेष्ट्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा तद्बहिरष्टकोणं चतुरस्रद्वयेन विरच्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधायाभ्यन्तरवृत्तद्वयान्तराले कर्मानुसारीणि भूताक्षराणि दश द्वित्रिद्वित्रिक्रमेण विलिख्याष्टकोणेषु अष्टाविंशत्युत्तरशत १२८ वर्णेषु प्रथमाष्टबीजानि विलिख्य तद्बहिर्वृत्त-द्वयान्तराले मातृकाक्षरैः संवेष्टयेत्। द्वितीययन्त्रस्याष्टकोणेषु प्रागुक्तवर्णेषु प्रथमाष्टकं विहाय द्वितीयाष्टकं लिखेत्। अन्यत्समानम्। एवं षोडश यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

तदनन्तर शिष्य को शुभ्र शुद्ध वस्त्र पहनाये। आचमन करके पूर्वोक्त समस्त निज वृत्ति से पूजा करे। नाथ के पैरों का अर्चन कर उनकी स्तुति पाँच श्लोकों को तीन-तीन बार पढ़कर करे। प्रणाम करके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो। तब गुरु उसे बुलाकर चक्र में बैठाये। देवता और अपने में मन में ऐक्य मानकर उस विद्यारूपा तेजस्विनी देवी का आवाहन करे। मूर्धा आदि तीन स्थानों में स्थापित करके यथाविधि ध्यान करके शिष्य के कान में तीन बार मन्त्र बोले। तदनन्तर पूर्ण समाहित होकर उस विद्या का सौ जप करे। पुन: उससे आज्ञा लेकर पूजा और स्तुति करे। तीन बार प्रणाम करके हाथ जोड़कर स्तुति करके हुये विहित क्रम आहुत करके सम्यक् भजन करे। देशिक उस शिष्य को दिन भर के कर्मों को करने का आदेश दे। नित्य जप-पूजादि से भगवान् शिव की उपासना करे। इसी प्रकार क्रमश: पन्द्रहों नित्याओं का क्रम कहा गया है। इस प्रकार विद्या-प्राप्ति विधि के बारे में सब कुछ कहा गया। उनके नैमित्तिक और काम्य कर्म ललितोक्त विधान से प्रतिष्ठा करके करे, क्योंकि ये उसी के रूप हैं। इनकी पूजा अंग और अंगी रूप में की जाती है। अंगी रूप से स्थित अन्य उसके परिवार का पूजन भी उसी प्रकार से करे। उनके काम्य फल की प्राप्ति के लिये ध्यान उसके पटल में कथित हैं; अन्य सभी विधान साधारण ही हैं।

हे प्रभो! विद्या और मन्त्र में भेद बतलाइये। सन्दर्भ सम होने पर भी वर्णों के देवता दो प्रकार के होते हैं। हे पार्वति! तुम्हारे दैवत्व को विद्या और मुझ शिव के दैवत्व को मन्त्र कहते हैं। इनके यन्त्रों का फल सुनो। स्वरों के संगम से इस देवता के मन्त्रवर्ण एक सौ अट्ठाईस हैं। दो वृत्त के मध्य में अष्टकोण बनाकर मध्य में आठ वर्णों को लिखे। इसका स्पष्ट रूप इस प्रकार है—प्रथमत: मध्य में साध्य नाम गर्भ 'ह्रीं' लिखे। उसे बाहर से ॐ से वेष्टित करे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर दो चतुरस्र बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। आभ्यन्तर दो वृत्तों के अन्तराल में कर्मानुरूप दश भूताक्षरों को दो-दो, तीन-तीन के क्रम से लिखे। आठ कोनों में १२८ वर्णों में से पहले आठ वर्णों को लिखे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृका वर्णों को लिखकर वेष्टित करे। दूसरे यन्त्र के आठ कोणों में प्रथम अष्टक को छोड़कर द्वितीय अष्टक को लिखे। अन्य सब समान रखे। इस विधि से सोलह यन्त्र बनते हैं।

तथा—

तैर्यन्त्रैः साधयेन्नित्यं मनीषितमशेषतः । प्रथमं खर्परे रक्तवह्निमूलेन संयुतम् ॥४४॥

सिन्दूरं तद्रसे पिष्ट्वा धत्तूररससंयुते। लिखित्वा खदिराङ्गारे तापयेन्निशि जापवान् ॥४५॥
नारी नरो नृपोऽन्यो वा समायाति च तद्बलात्। तदेव तेन ताम्रे वा कांस्ये वा प्राग्वदालिखेत् ॥४६॥
तत्तापनादपि भवेत् पूर्वोक्तं फलमीश्वरि। द्वितीयं खर्परे तेन विलिख्य निशि तापयेत् ॥४७॥
नारी वश्यं समायाति जन्माचारविलङ्घिनी। तृतीयं तेन तत्रैव लिखित्वा निशि तापयेत् ॥४८॥
श्मशानाग्नौ मुक्तकेशः क्षणाद्वैरी ज्वरातुरः। तदेव दम्पतीदग्धवह्न्यङ्गारे तु निर्जने ॥४९॥
रसे पिष्ट्वा लिखित्वाग्नौ संताप्य निखनेत्ततः। श्मशाने वैरिणा प्रोक्तकाले क्रुद्धाशयो जपन् ॥५०॥
मनुं तदैव संभ्रान्तः पिशाचार्तो रिपुर्भवेत्। चतुर्थं विलिखेत्कृष्णपटचीरेऽसिताम्बरे ॥५१॥
पूर्ववत्तत्र निखनेद्रात्रावुक्तक्रमेण तु। दाहज्वरेण सप्ताहाद्रिपुर्याति यमालयम् ॥५२॥
पञ्चमेऽप्यथवा षष्ठे द्वयोर्नाम लिखेद् द्वयोः। काकोलूकजपक्षोत्थलेखिन्या खर्परद्वये ॥५३॥
श्मशाने निखनेत्प्राग्वन्नदीतीरद्वये द्वयम्। नद्यां तु वारिपूर्णायां विद्वेषः स्यात्तयोर्मिथः ॥५४॥
सप्तमे नाम संलिख्य सीसपट्टे यथाविधि। शिरः कपाले निक्षिप्य श्मशाने निखनेन्निशि ॥५५॥
रिपोः पुरोक्तकाले च पिशाचैर्गृह्यते रिपुः। अष्टमं खर्परे कृत्वा रिपुद्वारे खनेन्निशि ॥५६॥
सप्ताहात्तद्गृहाद्वैरी प्रयात्युच्चाटितोऽन्यतः। नवमं हेम्नि कृत्वा तदूर्मिकायां रवेर्दिने ॥५७॥
सिद्धयोगे शुभे लग्ने धिषणोदय एव वा। कृत्यापमृत्युरोगादिदुःखेभ्यो मुच्यते नरः ॥५८॥
दशमं राजते पट्टे कृत्वा वेश्मनि कुत्रचित्। निधाय पूजयेद्वेश्मन्यश्मपातादिशान्तये ॥५९॥
तथा भूतग्रहार्ताश्च रक्षेदेतस्य धारणात्। एकादशं लिखेद्भूर्जे पाटीरेन्दुद्रवैस्तु तत् ॥६०॥
उक्तक्रमसमोपेतं गुलिकीकृत्य तं पुनः। सितसिक्थमये लिङ्गे संस्थाप्याभ्यर्चयेत्पुनः ॥६१॥

अत्र सिक्थं मधूच्छिष्टम्।

स्थापयेत् क्षौद्रमध्ये तु पूजयेन्नित्यशश्च तत्। संध्यासु सुसितैः पुष्पैः सौरभाढ्यैर्विधानतः ॥६२॥
मासात्तदर्धात्सप्ताहाद्वशे स्युः शत्रवो ध्रुवम्। भवेयुर्व्याधितास्तेनोद्धृतेनारोग्यमाप्नुयुः ॥६३॥
ज्वरार्तास्तु विशेषेण सुखिताः स्युरयत्नतः। आम्लसौवीरमध्यस्थं विद्वेषयति वैरिणौ ॥६४॥
तत्रैव क्वथनाद्रोगं द्वयोरुत्सादयेदपि। शुण्ठीमरिचपिप्पल्यः सुसूक्ष्मं परिचूर्णिताः ॥६५॥
लकुचस्य रसोपेतास्तन्मध्ये तद्विनिक्षिपेत्। तापयेत्त्रिषु संध्यासु यत्राऽरातिस्तु तन्मुखम् ॥६६॥
प्रोक्तकाले ज्वरैरार्तस्तापतृष्णासमन्वितः। द्वादशं कर्पटे रात्रिरसेनालिख्य तत्पुनः ॥६७॥
इष्टकायुगमध्यस्थं कृत्वा तच्छ्लेषयेद् दृढम्। स्थापयेच्चण्डिकागेहे शास्तुरायतनेऽपि वा ॥६८॥
स्वगेहभित्तिमध्ये वा शयनस्थानतोऽपि वा। स्तम्भयेद्वैरिणो रोषमुद्योगं बन्धचिन्तनम् ॥६९॥
व्यवहारं रणं चान्यदस्याभिमतमात्मनः। त्रयोदशेन भूर्जस्थेनाशु धारणतोऽङ्गना ॥७०॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं विचित्रा यन्त्रशक्तयः। चतुर्दशगतं नाम कृत्वा भूर्जे च तत्तथा ॥७१॥
सिक्थमध्यगतं कृत्वा तं निशीथेऽभितापयेत्। सप्ताहाद्वशमायान्ति स्त्रियो वा पुरुषा नृपाः ॥७२॥
गजा हया मृगास्त्वन्ये ये जीवा भूतलाश्रयाः। परेण नाम्ना युक्तेन फलकालिखितेन वै ॥७३॥
सुखप्रसूतिः स्यात्स्त्रीणां तत्पूजा प्रेक्षणादिना। षोडशे नाम संलिख्य धारयेत्प्राणिनां तथा ॥७४॥
रक्षा भवति सर्वत्र ग्रहरोगभयादिषु। तदेव स्वर्णपट्टस्थं विधाय विधिना युतम् ॥७५॥
ऊर्मिकाङ्गदभूषादौ मूर्ध्नि वा बिभृयात्ततः। आधिव्याधिविनिर्मुक्तो निःसपत्नो जितेन्द्रियः ॥७६॥
भोक्ता कर्ता च पुण्यानां जीवेद्वर्षशतं भुवि।

इति वह्निवासिनीनित्याप्रयोगविधिः। (११ प०)

उक्त सभी यन्त्रों से मनीषी नित्य साधन करे। प्रथम यन्त्र को खपड़े पर लाल वह्निमूल के रस में सिन्दूर धतूर का रस मिलाकर निर्मित घोल से लिखे। रात में जप करते हुए उसे खैर की अग्नि पर तपावे। उसके प्रभाव से नारी-नर या नृप उसकी ओर खींचे चले आते हैं। इसी प्रकार ताम्बे या काँसे के पत्तर पर लिखकर उसे आग पर तपाने से पूर्वोक्त फल मिलते हैं। द्वितीय यन्त्र को खपड़े पर लिखकर रात में आग पर तपावे तो कुल के आचार को छोड़कर नारी वशीभूत होकर आ जाती है। तीसरे को भी उसी प्रकार खपड़े पर लिखकर चिता की अग्नि पर तपावे तो वैरी तत्क्षण ज्वरातुर हो जाता है। उसी प्रकार दम्पति दग्ध अंगार में रसपिष्ट मिलाकर यन्त्र लिखकर आग पर तपाकर श्मशान में गाड़ कर वैरी पर क्रुद्धाशय होकर मन्त्रजप करे तो शत्रु पिशाचों से पीड़ित होता है। चौथे यन्त्र को काले वस्त्र पर काले अम्बर से लिखकर पूर्ववत् गाड़ दे तब शत्रु ज्वर-दाह से शत्रु एक सप्ताह में यमलोक चला जाता है। पाँचवें और छठे यन्त्र को कौआ और उल्लू के पंखों से नामसहित खपड़ों पर लिखे। श्मशान वाली नदी के दोनों किनारों पर दोनों को गाड़ दे। नदी के जल से पूर्ण होने पर दोनों में विद्वेष हो जाता है। सप्तम यन्त्र को सीसे पर बनाकर उसमें नाम लिखे। खोपड़ी में रखकर रात में श्मशान में गाड़ दे। इससे एक सप्ताह में वैरी पिशाचग्रस्त हो जाता है। अष्टम यन्त्र को खपड़े पर लिखकर शत्रु के द्वार पर रात में गाड़ दे तो एक सप्ताह में वैरी उच्चाटित होकर अपना घर छोड़कर भाग जाता है। नवम यन्त्र को सोने के पत्तर पर लिखकर रविवार को शुभ सिद्ध योग में गुरु के उदय होने पर नग्न होकर भूमि में गाड़ दे तो कृत्या-अपमृत्यु-रोगादि दु:खों से साधक मुक्त हो जाता है। दशवें यन्त्र को चाँदी के पत्तर पर लिखकर घर में कहीं पर रखकर पूजा करने से शान्ति होती है। इसके धारण करने से भूत-ग्रहादि से रक्षा होती है। ग्यारहवें यन्त्र को भोजपत्र पर चन्दन-कपूर से लिखकर उसकी गोली बनाकर उजले मोम के लिङ्ग में स्थापित करके पूजा करे। तब मधु में रखकर नित्य पूजा सुरभित उजले फूल से सन्ध्या में करे तो एक माह या एक पक्ष या एक सप्ताह में शत्रु वश में हो जाता है। शत्रु के व्याधिग्रस्त होने पर यन्त्र को मधु से बाहर निकालने पर निरोग हो जाता है। ज्वरार्त सुखी हो जाता है। आमला सौवीर में रखने से वैरियों में द्वेष होता है। इसी प्रकार क्वाथ में रखने से दोनों रोग से मुक्त हो जाते हैं। सोंठ, मरिच, पीपल के महीन चूर्ण को लकुच के रस में मिलाकर उस यन्त्र को रख कर तीनों सन्ध्याओं में शत्रु की ओर करके तपावे तो उक्त काल में वैरी बुखार से पीड़ित होकर ताप एवं तृष्णा से बेचैन होता है। बारहवें यन्त्र को खपड़े पर हल्दी रस से लिखकर उसे दो ईटों के बीच में रखकर दोनों ईटों को मजबूती से बाँध कर चण्डी मन्दिर में स्थापित करे। अथवा वैरी के गृह में गाड़ दे या अपने घर के भीतर गाड़ दे या अपने शयन स्थान में गाड़ दे; इससे वैरियों का क्रोध उद्योग-बन्ध चिन्तन स्तम्भित हो जाता है। व्यवहार, युद्ध या अन्य अभीप्सित का स्तम्भन होता है। त्रयोदश यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से वन्ध्या को भी पुत्र होता है। इस यन्त्र की शक्ति विचित्र है। चौदहवें यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर मोम में बन्द कर दे, उसे रात में तपावे तो एक सप्ताह में स्त्री-पुरुष या राजा वश में हो जाते हैं। पन्द्रहवें यन्त्र पर हाथी, घोड़े, मृग या अन्य जीव के नाम फलक पर लिखने कर पूजा करने या देखने से स्त्रियों को सुख से प्रसव होता है। सोलहवें यन्त्र में नाम लिखकर धारण करने से प्राणियों की रक्षा ग्रह-रोगादि के भय से होती है। इसी प्रकार इस यन्त्र को सोने के पत्तर पर विधिवत् लिखकर हृदय पर, बाँह में, शिर की पगड़ी में धारण करने से साधक आधि-व्याधि से मुक्त होकर वह जितेन्द्रिय अपनी पत्नी का भोक्ता, कर्ता, पुण्यवान होकर सौ वर्षों तक पृथ्वी पर जीवित रहता है।

महावज्रेश्वरीनित्याप्रयोगविधि:

अथ महावज्रेश्वरीनित्याप्रयोगविधि:। श्रीतन्त्रराजे (१२ प० २२ श्लो०)—

वसन्तकाले ग्रीष्मे वा पूर्णामारभ्य साधयेत्। हविष्याशी पयोभक्ष: फलमूलाशनोऽथवा ॥१॥

स्नात: सुगन्धिसलिलैररुणांशुकवाञ्छुचि:। चन्द्रचन्दनकाश्मीरचर्चालोहितविग्रह: ॥२॥

अञ्जनाक्ताक्षियुगलस्ताम्बूलारुणवक्त्रवान्। मुखार्पितेन्दुशकलो हृष्टचेता जितेन्द्रिय: ॥३॥

मौनी त्रिकालपूजासु कृतसंकल्पसाधन:। नक्ताशी हुतशिष्टेन जपेद्विद्यां समीरिताम् ॥४॥

नित्यशो भोजयेद्विप्रान् भक्तान् भजनकौतुकान्। अघादिहीनान् मधुरं पायसं भोज्यभक्तिमान् ॥५॥

प्रणम्याभ्यर्च्य विसृजेन्नित्यं सप्तदिनेषु तु। गुरुं जीवनमासाद्य प्रणम्यासकृदात्मवान् ॥६॥

धनधान्याम्बराद्यैस्तं संतोष्य तदनुज्ञया। कृतारम्भो नित्यशश्च पूजयेत्तं च भक्तितः ॥७॥
अन्ते च वित्तैः स्तोत्रैश्च तं संतोष्य कृती भवेत्। वित्तशाठ्यं च दम्भं च मोहं चासत्यमेव च ॥८॥
न कदाचित् प्रकुर्वीत विशेषाद्गुरुसन्निधौ। एवं लक्षत्रयं जप्त्वा तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ॥९॥
आरग्वधप्रसूनैर्वा प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः। मधूकजैश्चम्पकैर्वा त्रिमध्वक्तैश्च नित्यशः ॥१०॥
चन्द्रचन्दनकस्तूरीकाश्मीरसुरभीकृतैः। तर्पयेत्सलिलैस्तावद् दिनशो भक्तिमान् दृढः ॥११॥
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु कुर्यात्काम्यानि साधकः। गुरुभक्तो नित्यकृत्यकृतसंकल्पसंयुतः ॥१२॥
सहस्रजापी स्थिरधीर्मन्त्रवीर्यविदात्मवान्। यः सोऽपि काम्यान्कुर्वीत प्रयोगान्नान्यथा शिवे ॥१३॥
यद्यज्ञानेन मोहेन चापलेनापि वा चरेत्। अनर्थक्लेशराजादिपीडाः प्राप्नोति निश्चितम् ॥१४॥
अरुणैः पङ्कजैर्होमं कुर्यात् त्रिमधुराप्लुतैः। मण्डलाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम् ॥१५॥
कह्लारैः क्षौद्रसंसिक्तैः पौर्णाद्यं तद्दिनावधि। जुहुयान्नित्यशो भक्त्या सहस्रं विकचैः शुभैः ॥१६॥
तद्दिनेषु तु पूर्वोक्तान् भोजयेदुक्तरूपतः। तावच्च जप्याद्धोमान्ते यावत्संख्यं हुतं कृतम् ॥१७॥
चम्पकैः क्षौद्रसंसिक्तैः सहस्रहवनाद् ध्रुवम्। लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन पूर्ववत् ॥१८॥
पाटलैर्घृतसंसिक्तैस्त्रिसहस्रं हुतैस्तथा। दर्शादिमासाल्लभते चित्राणि वसनानि च ॥१९॥
कर्पूरचन्दनादीनि सुगन्धीनि च मासतः। वस्तूनि लभते हृद्यैरन्यैर्भोगोपयोगिभिः ॥२०॥
शालीभिः क्षीरसिक्ताभिः सप्तमीषु शतं हुनेत्। तेन शालिसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम् ॥२१॥

महावज्रेश्वरी प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि वसन्त काल या ग्रीष्म काल में पूर्णिमा से प्रारम्भ करके इसका साधन करे। हविष्यान्न, दूध या फल-मूल का भोजन करे। सुगन्धित जल से स्नान करे। लाल पवित्र वस्त्र धारण करे। शरीर में कपूर चन्दन केसर का लेप लगाकर लाल विग्रह होकर रहे। आँखों में अंजन लगावे। ताम्बूल से मुख लाल रखे। मुख में कपूर का टुकड़ा रखे। प्रसन्न मन एवं जितेन्द्रिय रहे। तीनों कालों की पूजा के समय मौन रहे। साधना में कृतसंकल्प रहे। रात में हुतशिष्ट का भोजन करे। सावधानी से विद्या का जप करे। विप्रों, भक्तों एवं भजन करने वाले निष्पाप लोगों को नित्य मधुर पायस का भोजन कराये। सात दिनों तक भोजन कराकर उन्हें प्रणाम करे। गुरु को बुलाकर प्रणाम करे। धन-धान्य-वस्त्र आदि देकर गुरु को सन्तुष्ट करे। उनकी आज्ञा से साधना आरम्भ करके भक्तिसहित नित्य पूजा करे। अन्त में गुरु को धन देकर स्तुति करके उन्हें सन्तुष्ट करे। वित्तशाठ्य, दम्भ, मोह और असत्य भाषण विशेषतः गुरु के सामने न करे। इस प्रकार तीन लाख जप करके उसका दशांश तीस हजार हवन घी से करे। त्रिमधुराक्त अमलतास, मौलसिरी या महुआ के फूलों से नित्य हवन करे। इन सात दिनों तक कपूर, चन्दन, कस्तूरी, केसर से सुगन्धित जल से दृढ़ भक्ति से तर्पण करे। इस प्रकार से मन्त्र सिद्ध होता है। इस सिद्ध मन्त्र से गुरुभक्त साधक नित्य कृतसंकल्प होकर काम्य कर्मों को साधित करे। काम्य कर्मों में नित्य एक हजार जप स्थिर बुद्धि से मन्त्रवीर्य को जानकर जो साधक प्रयोग करता है, उसी को सिद्धि मिलती है; अन्यथा प्रयोग सिद्ध नहीं होते। यदि अज्ञानवश, मोह से या चपलता से प्रयोग करता है तो उसे अनर्थ, क्लेश एवं राजा से दुःख मिलता है। त्रिमधुराक्त लाल कमल से चालीस दिनों तक हवन करने से बहुत धन मिलता है और वह श्लाघ्य विग्रह हो जाता है। मधुसिक्त कल्हार से पूर्णिमा से आरम्भ करके उतने दिनों तक नित्य एक हजार हवन करने से, उतने दिनों तक पूर्वोक्त लोगों को उक्त रूप में भोजन कराने से और उतने दिनों तक जप-होम के बाद मधुसिक्त चम्पा के फूलों से एक हजार हवन करने से साधक को एक माह के अन्दर सौ निष्क सोना मिलता है। एक निष्क चार ग्राम के बराबर होता है। सौ निष्क चार सौ ग्राम के बराबर हुआ। घी से सिक्त गुलाब के फूलों से तीन हजार नित्य हवन अमावस्या से अमावस्या-पर्यन्त तीस दिनों तक करने से रंग-बिरंगे वस्त्र प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त कपूर चन्दनादि सुगन्ध, वस्त्र और भोगयोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। दुग्धसिक्त शालि चावल से प्रत्येक सप्तमी तिथियों में छः महीनों तक हवन करने से धान्य में समृद्धि प्राप्त होती है।

तिलैर्हुतैस्तद्दिवसे वर्षादारोग्यमाप्नुयात्। स्वजन्मसु त्रिषु तथा दूर्वाभिर्जुहुयात्तथा ॥२२॥
निरातङ्को महाभोगः शतं वर्षाणि जीवति। गुडूचीतिलदूर्वाभिस्त्रिषु जन्मसु वा हुनेत् ॥२३॥
तेनायुःश्रीयशोभाग्यपुण्यनिध्यादिवान् भवेत्। घृतपायसदुग्धैस्तु हुतैस्तेषु त्रिषु क्रमात् ॥२४॥
आयुरारोग्यविभवैर्नृपमान्यो भवेत् तथा। सप्तम्यां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभतेऽब्दतः ॥२५॥
दूर्वात्रिकैस्तु प्रादेशमात्रैस्त्रिस्वादुसंयुतैः। जुहुयाद्दिनशो घोरे सन्निपाते ज्वरे गदे ॥२६॥
महारोगेषु दूर्वाभिस्तिलैश्छिन्नोद्भवैस्तथा। त्रिभिर्वा नित्यशो होमं कुर्यात्त्रिस्वादुसंयुतैः ॥२७॥
षण्मासादब्दतो वापि रोगान्मुक्तः सुखी भवेत्। तद्दिनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन् ॥२८॥
सहस्रवारं तत्तोयैः स्नानपानं समाचरेत्। पाकाद्यमपि तैरेव कुर्याद्रोगविमुक्तये ॥२९॥
साध्यर्णवृक्षं सञ्चूर्ण्य त्र्यूषणं सर्षपं तिलम्। पिष्टं च साध्यपादोत्थरजसा च समन्वितम् ॥३०॥
कृत्वा पुत्तलिकां तैस्तु हृदये नामसंयुताम्। प्राग्वच्छित्त्वायसैस्सीक्ष्णैर्निशि पुत्तलिकां हुनेत् ॥३१॥
एवं दिनैः सप्तभिर्वा त्रिभिर्वैकदिनेन वा। साध्यो वश्यो भवेच्छीघ्रमपि दूरस्थितो दृढः ॥३२॥
तथाविधां पुत्तलिकां कुण्डमध्ये खनेद्भुवि। उपर्यग्निं निधायात्र विद्यया दिनशो हुनेत् ॥३३॥
त्रिसहस्रं त्रियामायां सर्षपैस्तद्रसाप्लुतैः। शतयोजनदूरादप्यानयेद्वनितां बलात् ॥३४॥

त्रियामायां निशीथे। तद्रसाप्लुतैः सर्षपतैलाक्तैः।

तां तु पुत्तलिकां मध्ये मधूच्छिष्टसमन्विताम्। कृतप्राणप्रतिष्ठां च श्मशाने निखनेन्निशि ॥३५॥
साध्ययोनिं च तत्रैव च्छित्वा दत्त्वा बलिं ततः। कृताभिषेकस्तां विद्यां प्रजपेच्च शतत्रयम् ॥३६॥
अरातेरष्टमे राशौ मासान्नानाविधैरपि। रोगैर्भूतादिसंक्लेशैर्नाशमेति सुनिश्चितम् ॥३७॥
यद्यन्तरा समुद्धृत्य सलिले तां खनेन्निशि। क्लेशैस्तैः स विनिर्मुक्तः सुखी जीवति भूतले ॥३८॥
साध्यवृक्षेण कृत्वा तां सर्षपाज्ये निवेशिताम्। तोयमध्ये निधायैतत् क्वाथयेदुक्तवासरैः ॥३९॥
वैरी तीव्रज्वरेणार्तः कृती प्राग्वत्सुखी भवेत्। तामेव चण्डिकागेहे तथा बलियुतां खनेत् ॥४०॥
साध्यो नरश्च नारी चेच्छास्तुरायतने खनेत्। तद्विधानेन सहितं शत्रुरुन्मादवान् भवेत् ॥४१॥

प्रत्येक सप्तमी में तिल के हवन से एक वर्ष में रोगी निरोग हो जाता है। अपने तीनों जन्मदिनों—माता के उदर से बाहर होने का दिन, उपवीत का दिन और दीक्षादिवस—इन तीनों दिनों में दूब के हवन करने से निर्भय होकर सौ वर्षों तक महाभोग भोगते हुए जीवित रहता है। तीनों जन्मदिनों में गुरुच, तिल, दूब के हवन से आयु, धन, आरोग्य, वैभव एवं नृपमान्यता प्राप्त होती है। प्रत्येक सप्तमी में केला के हवन से एक वर्ष में सौभाग्य प्राप्त होता है। त्रिमधुराक्त वित्ता भर लम्बे तीन-तीन दूबों के हवन से घोर सन्निपात ज्वर और रोग, महारोग नष्ट हो जाते हैं। त्रिमधुर सिक्त तीन दूबों से नित्य हवन से छः महीनों में या साल भर में साधक रोगमुक्त हो जाता है। उन दिनों में जल को स्पर्श करते हुये विद्या का एक हजार जप नित्य करना चाहिये। उस जल से स्नान पान और भोजन पकाकर खाने से साधक रोग से विमुक्त हो जाता है। साध्य नाम के वृक्षों की लकड़ी के चूर्ण में सरसों तिल पिष्ट साध्य के पैरों की धूलि मिलाकर पुत्तली बनावे। उसके हृदय में साध्य का नाम लिखे। पूर्ववत् तेज हथियार से उसे काट-काट कर रात में हवन करे। ऐसा सात दिनों तक या तीन दिनों तक या एक दिन करने से साध्य शीघ्र वश में हो जाता है। यदि वह दूर स्थित हो तो भी वशीभूत हो जाता है। उसी प्रकार पुत्तली बनाकर कुण्डमध्य में गाड़ दे। उसके ऊपर आग जलाकर दिन में हवन कर रात्रि में एक-एक हजार रसप्लुत सरसों से करे तो सौ योजन दूर रहने वाली रमणी भी खींची चली आती है। साध्य नाम वृक्ष के पिष्ट में मोम मिलाकर प्रतिमा बनावे। प्राणप्रतिष्ठा करके उसे श्मशान में गाड़ दे। साध्य की योनि काटकर बलि प्रदान करे। विद्या से अभिषेक करे। विद्या का तीन सौ जप करे। शत्रु की अष्टम राशि से एक माह के अन्दर विविध रोग भूतादि से ग्रस्त होकर साध्य की मृत्यु हो जाते है। उस पुत्तली को श्मशान से निकालकर जल में गाड़ देने से साध्य रोग-कष्टों से मुक्त होकर सुखी और जीवित रहता है। साध्य नाम के वृक्षों

की लकड़ी पिष्ट, सरसों, गोघृत मिलाकर क्वाथ बनावे। उसमें पुत्तली को रख दे। इससे वैरी तेज बुखार से दु:खी हो जाता है। पुन: उसमें से निकाल कर मूर्ति को जल में रख दे तो वह सुखी हो जाता है। उस पुत्तली को चण्डी मन्दिर में गाड़ कर बलि देने से साध्य नर या नारी वश में होती है। इसी प्रकार करने से शत्रु उन्माद से ग्रस्त हो जाता है।

महावज्रेश्वरीयन्त्रप्रयोगा:

महावज्रं च वज्रं च यन्त्राण्येतान्यनुक्रमात्। प्रयोगानपि वक्ष्यामि समाहितधिया शृणु ॥४२॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च विंशत्सूत्राणि पातयेत्। तेन कोष्ठानि जायन्ते त्वेकषष्ट्या शतत्रयम् ॥४३॥
तेषु कोणचतुष्केऽपि मार्जयेत्पञ्चकेन च। चत्वारिंशत्तत्र शेषं वज्राकारं यथा भवेत् ॥४४॥
दिक्षु चत्वारि चत्वारि मार्जयित्वा त्रिकोणगम्। कुर्याच्छेषाणि कोष्ठानि पञ्चषष्ट्या शतं भवेत् ॥४५॥
तेषु पूर्वादि परितो लिखेद्विद्याक्षराणि तु। प्राग्वत्स्वरविभिन्नानि प्रागुक्तविधिना तथा ॥४६॥
चत्वारि चत्वारिंशच्च शतं तेषां तु मध्यत:। एकविंशति कोष्ठानि शिष्टानि पुनरम्बिके ॥४७॥
तेषु पर्यायनित्याणुवर्णषट्कसमन्वितम्। घटिकायुगवर्णौ च लिखेत्प्रागुक्तयोगत: ॥४८॥
शिष्टेषु विद्यावर्णांश्च लिखेद् द्वादश शेषयो:। साध्याख्यामालिखेदुक्तक्रमेण पुटयोर्द्वयो: ॥४९॥
चतुर्दिक्षु लिखेत्कोणेष्वभितो भौतिकार्णकान्। द्वित्रिक्रमेण प्राक्प्रत्यक्कोणयोस्तु त्रयं त्रयम् ॥५०॥
एतत्प्रोक्तेषु संलिख्य संपूज्य विधिना युतम्। स्पृशञ्जपेन्मनुं पश्चात्त्रिसहस्रं ततस्तु तत् ॥५१॥
विनियुञ्ज्यादथोक्तेषु कार्येषु क्रमत: शिवे। भूताक्षराणि च पुनर्लिखेत् कार्यानुरूपत: ॥५२॥
महावज्रमिति ख्यातं सर्वत्रैवापराजितम्। विजयस्तम्भविद्वेषवश्योच्चाटनकर्मसु ॥५३॥
रक्षां पुष्टिं च शान्तिं च तथैव रिपुनिग्रहे। देशराष्ट्रपुरग्रामनिवेशोदर्विशेषत: ॥५४॥
घोरेषूत्पातजातेषु भूमौ संलिख्य गैरिकै:। मध्ये देवीं समावाह्य पूजयेन्नित्यश: शिवाम् ॥५५॥
संध्यासु तिसृषु प्रोक्तक्रमान्नीराजनं तथा। कुर्यात् त्रिरात्रं द्विगुणं त्रिगुणं काम्यरूपत: ॥५६॥
राज्ञां वैरिनिरोधेन पुरीमात्रावशेषिते। विभवे मण्डपे तस्य प्रोक्तवज्रं लिखेन्महत् ॥५७॥
दरदेनार्चयेत्तस्य मध्ये देवीं शुचिस्मिताम्। नृत्यगीतादिभि: सार्धं संध्यासु च विशेषत: ॥५८॥
एवं प्राग्वद्दिनैरुक्तैर्विजयी नृपतिर्भवेत्। वैरिनाशेन वा तस्य भङ्गाद्व्यसनतोऽपि वा ॥५९॥
ततस्तन्मार्जयित्वा तु भाले कृत्वा पुरीं बलै:। परीयाद्देशिकं त्वग्रे गजे जीवेच्चिरं सुखी ॥६०॥
नि:सपत्नो निरातङ्क: षडङ्गख्यातवैभव:। एवमेतस्य वज्रस्य वैभवं को नु वर्णयेत् ॥६१॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकार:—तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च विंशतिं विंशतिं रेखा: कृत्वा समान्तरालानि एकषष्ट्युत्तरत्रिशतकोष्ठानि विलिख्य, कोणचतुष्टये प्रतिकोणं पञ्चचत्वारिंशत्पञ्चचत्वारिंशदिति अशीत्युत्तरशतं कोष्ठानि गुरूक्तयुक्त्या मार्जयित्वा, तेषु स्थलेषु चत्वारि कोणानि विधाय सिद्धेषु पञ्चषष्ट्युत्तरशतकोष्ठेषु १६५ मूलविद्याक्षराण्यनावृत्तानि षोडशस्वरयुक्तानि चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशताक्षराणि १४४ पूर्वादिप्रादक्षिण्येन प्रवेशगत्या विलिख्यावशिष्टैकविंशतिकोष्ठेषु तद्दिननित्याया वर्णत्रयं पर्यायनित्याया वर्णत्रयं षट्कोणेषु विलिख्य, घटिकाक्षरसहितं युगाक्षरमेकस्मिन् कोष्ठे विलिख्यावशिष्टचतुर्दशकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकमेकमिति मूलमन्त्राक्षराणि विलिख्यावशिष्टकोष्ठद्वये साध्याख्यां कर्म च विलिख्य दिक्चतुष्टयस्थकोणचतुष्टये तत्तत्कर्मानुसारिभूतवर्णान् द्वित्रिद्वित्रिक्रमेण विलिखेदेतद्यन्त्रफलदं भवति।

महावज्रेश्वरी यन्त्र और उसके प्रयोग—अब महावज्र और वज्र यन्त्र और उनके को सुनो। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण उत्तर बराबर दूरी पर बीस रेखाओं को खींचे। इससे ३६१ कोष्ठ बनते हैं। उसके चारों कोनों के पैंतालीस-पैंतालीस कुल १८० कोष्ठों को मिटा दे। उन कोनों में चार त्रिकोण बनाये। चारों दिशाओं में त्रिकोणाकार में उनतीस-उनतीस कुल ११६ कोष्ठों को मिटा दे। कुल १८० + ११६ = २९५ कोष्ठों को मिटा देने पर शेष १६५ कोष्ठ बचते हैं। उनमें से १४४ में

अनावृत्त मन्त्र अक्षरों को लिखे। शेष २१ कोष्ठों में से छ: कोष्ठों में पर्यायनित्या के छ: अक्षरों को लिखे। २ कोष्ठों में दो घटिका वर्णों को लिखे। शेष एक कोष्ठ में साध्य नाम और कर्म लिखे। चारो दिशाओं के त्रिकोणों में दो-तीन क्रम से भूत वर्णों को लिखे। इस प्रकार यन्त्र बनाकर विधिवत् पूजन करे।

यह महावज्र यन्त्र सर्वत्र अपराजित रूप में विख्यात है। इससे विजय, स्तम्भन, विद्वेषण, वशीकरण, उच्चाटन, रक्षा, पुष्टि, शान्ति कर्म होते हैं। देश-राष्ट्र-पुर-ग्राम को शत्रुओं से बचाने में इनका प्रयोग होता है। घोर उत्पात होने पर गेरु से भूमि पर इस यन्त्र को लिखकर उसके मध्य में देवी का आवाहन करके नित्य पूजा तीनों सन्ध्याओं में प्रोक्त क्रम से करके आरती करे। तीन रातों तक दुगुना-तीन गुना पूजा करे। वैरी-निरोध के लिये राजा नगर के बाहर सुन्दर मण्डप बनाकर प्रोक्त वज्र यन्त्र को सिंगरफ से लिखकर उसके मध्य में शुचिस्मिता देवी का पूजन करे। नृत्य-गीतादि से सन्ध्या में उत्सव करे। इस प्रकार पूर्वोक्त दिनों तक करने से राजा शत्रुओं पर विजय पाता है। उसके वैरी का नाश होता है या अधीन हो जाता है। यन्त्र से गन्धादि को लेकर ललाट में तिलक करे तो राजा बलवान होकर सुखी दीर्घकाल तक जीवित रहता है एवं हाथी, घोड़ा से युक्त रहता है। अपनी पत्नी के साथ निर्भय होकर छहों ऐश्वर्यों से युक्त होता है। इस यन्त्र की महिमा कां वर्णन नहीं किया जा सकता।

तथा—

अथान्यवज्रनिर्माणविधानं च शृणु प्रिये। येन हस्तगतेन स्युः सिद्धयोऽपि स्वहस्तगाः ॥६२॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च दशसूत्रनिपातनात्। तेनैकाशीतिकोष्ठानि जायन्ते तच्च पूर्ववत् ॥६३॥
मार्जयेद्दशकोणेषु शिष्टेषु विलिखेत्तथा। त्रिकोणानि चतुर्दिक्षु तेषु तान्येव पूर्ववत् ॥३४॥
विलिखेदवशिष्टेषु मन्त्रार्णांस्तद्द्विशस्तथा। एकस्मिन्मध्यमे शक्तिजठरे साध्यमालिखेत् ॥६५॥
एतच्च पूर्वप्रोक्तेषु विनियुञ्ज्यान्निजेच्छया। न भेदस्त्वनयोरस्ति प्रयोगेषु तु सर्वतः ॥६६॥
एतद्वज्रस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा महीभुजः। दंशके हृदये शीर्षे संस्थाप्य समरे कृते ॥६७॥
निहत्य वाहिनीं शत्रोश्चतुरङ्गां महीभुजः। अक्षताशेषसर्वाङ्गो यशोलक्ष्मीधरान्वितः ॥६८॥
निर्वत्य सुचिरं जीवेद्भूमौ भोगी निजेच्छया। एतत्ताम्रतले कृत्वा स्थापयेदभिवृद्धये ॥६९॥

अथैतद्रचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च दश दश रेखाः कृत्वा समान्तरालानि एकाशीतिकोष्ठानि विधाय, चतुर्दिक्षु दश दश कोष्ठानि मार्जयित्वा एकचत्वारिंशत्कोष्ठात्मकं वज्राकारं निष्पाद्य, दिक्षु चत्वारि चत्वारि कोष्ठानि मार्जयित्वा त्रिकोणानि विधाय, तेषु कर्मानुसारिप्राग्वद्भूतार्णान् विलिख्य, मध्यकोष्ठे मायाबीजं साध्यनामगर्भं विलिख्यावशिष्टकोणेषु मूलमन्त्रस्य द्वादशाक्षराणि द्विशो विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। तथा—

विधाय वृत्तयोर्मध्ये षट्कोणं तस्य मध्यतः। बाह्ये च कृत्वा विद्याया बीजमाद्यमथान्तिकम् ॥७०॥
षट्सु कोणेषु तु पुनरग्रपश्चिमयोर्लिखेत्। एकैकं पार्श्वकोणेषु द्वे द्वे वृत्तान्तरा पुनः ॥७१॥
मातृकां विलिखेदादिक्षान्तां बिन्दुसमन्विताम्। मध्यबीजस्य मध्यस्थं लिखेत्तन्निजवाञ्छितम् ॥७२॥
भर्तुर्दर्शनभीतानां कुमारीणामिदं भुजे। कण्ठे वा धारयेत्सद्यो वल्लभा तस्य जायते ॥७३॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—प्रथमतः षट्कोणं विधाय तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा मध्ये साध्यनामगर्भं ह्रींकारं विलिख्य षट्सु कोणेषु कोणाग्रेषु कोणान्तरालेषु च मायाबीजान्येव विलिख्य वृत्तद्वयान्तराले मायाबीजद्वयसहितामकारादिक्षकारान्तां मातृकां विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। तथा—

स्वरप्रसारितैर्मन्त्रवर्णैः पद्मानि कारयेत्। वृत्ताष्टपत्रयुक्तानि षोडशानि मनोहरम् ॥७४॥
कर्णिकासु च पत्रेषु लिखेदेकैकमक्षरम्। कर्णिकार्णस्य मध्यस्थं कुर्यान्नाम निजेप्सितम् ॥७५॥
घटिकाक्षरसंयुक्तं विनियुञ्ज्यात्तु नित्यशः। अहोरात्रं षोडशधा कृत्वा तां तेषु योजयेत् ॥७६॥
समस्तं वाञ्छितं तत्र तन्मध्यं विलिखेत्तदा। धारयेदभिषिञ्चेच्च जपेदिष्टार्थसिद्धये ॥७७॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकार:—प्रथमतो वृत्तं कृत्वा तल्लग्नान्यष्टदलानि विधाय प्राक्प्रोक्तषोडशस्वरसंयुक्त-मूलविद्यानावृत्ताक्षरेषु चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतवर्णेषु १४४ प्रथमाक्षरं साध्यनामगर्भं कर्णिकायां विलिख्य तत्रैव घटिकाक्षरं संयोज्याष्टदलेषु द्वितीयाद्यष्टौ वर्णान् विलिखेत्। एवं नवनववर्णानामेकमेकं यन्त्रं भवति। एवं षोडश यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थ:। तथा—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च पञ्च सूत्राणि पातयेत्। कोष्ठानि षोडशात्र स्युस्तेषु पद्मानि कारयेत्॥७८॥
प्रागुक्तेषु विधायैवमर्चयेद्यामत: क्रमात्। देवीं तु स्थापयेद्भूमौ सर्वसम्पदवाप्तये॥७९॥
स्पष्टोऽयमर्थ:। इति महावज्रेश्वरीनित्याप्रयोगविधि:।

वज्रयन्त्र निर्माण प्रकार—अब अन्य वज्र-निर्माण का विधान प्रिये सुनो, जिसका ज्ञान होने से सिद्धियाँ हाथ में होती हैं। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समानान्तर दश-दश रेखाओं को खींचने से ८१ कोष्ठ बनते हैं। कोनों से दश-दश कुल ४० कोष्ठों को मिटा दे। जिससे ४१ कोष्ठों से वज्र का आकार बनता है। चारों दिशाओं में त्रिकोणाकार चार-चार कोष्ठों को मिटा दे। शेष २४ कोष्ठों में १२ मन्त्राक्षरों में से दो-दो लिखे। मध्य कोष्ठ में ह्रीं के गर्भ में साध्य नाम लिखे। इस यन्त्र का विनियोग अपनी इच्छा के अनुसार करे। इनके प्रयोगों में कोई भेद नहीं है। इस वज्र के मध्य में राजा अपना नाम लिखकर कन्धों में, हृदय में या शिर पर धारण करके यदि युद्ध में जाता है तो अपने शत्रु की चतुरंगिनी सेना को मारकर अक्षत सर्वांग होकर यश-लक्ष्मी-राज्य से संयुक्त होकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है और अपनी इच्छानुसार भोगों को भोगता है। अभिवृद्धि के लिय इसे ताम्र पर अंकित कराकर स्थापित करना चाहिये।

अन्य यन्त्र विधान—पहले षट्कोण बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनाये। षट्कोण के मध्य में साध्य नाम गर्भित 'ह्रीं' लिखे। छ: कोणों में, कोणाग्रों में और कोणों के अन्तराल में ह्रीं लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल में दो मायाबीज सहित अ से क्ष तक की मातृका लिखे। मध्य बीज के मध्य में निजवांछित लिखे। पति-दर्शन से भयभीत कुमारी यदि इसे बाँह में या कण्ठ में धारण करे तो वह तुरन्त पति की प्रिया हो जाती है।

अन्य यन्त्र रचना प्रकार—पहले वृत्त बनावे। उसकी परिधि से अष्टदल कमल बनावे। मूल विद्या के अनावृत्त नव अक्षरों को सोलह स्वरों से युक्त करने पर १४४ अक्षर बनते हैं। इन नव अक्षरों के सोलह-सोलह रूपों में पहले अक्षर के गर्भ में साध्य नाम कर्णिका में लिखे। अष्टदलों में शेष आठ अक्षरों को लिखे। घटिकाक्षर सहित नित्य इसका विनियोग करे। इस प्रकार नव-नव वर्ण के सोलह यन्त्र बनते हैं। इष्टसिद्धि के लिये इसे धारण करके इसका अभिषेक जप करे।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समानान्तर पाँच-पाँच रेखाएँ खींचे। इससे सोलह कोष्ठ बनते हैं। उनमें कमल बनावे। पूर्वोक्त प्रकार से विधान करके प्रत्येक प्रहर में पूजा करे। इसे भूमि में स्थापित करने से सभी सम्पत्ति मिलती है।

शिवदूतीनित्याप्रयोगविधि:

अथ शिवदूतीनित्याप्रयोगविधि:, श्रीतन्त्रराजे (१३ प० २० श्लो०)—

साधनं प्रोक्तमार्गेण कुर्याल्लक्षमतन्द्रित:। काम्यहोमविधिं देवि शृणु सङ्कल्पसिद्धिदम्॥१॥
येनासौ वाञ्छितं क्षिप्रमवाप्नोति सुनिश्चितम्। वशयेद्वनिता होमाद् गुग्गुलैर्मधुमिश्रितै:॥२॥
नारिकेलफलोपेतैर्गुडैर्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। तथाज्यसिक्तै: कह्लारै: क्षीराक्तैररुणोत्पलै:॥३॥
त्रिमध्वक्तैश्चम्पकैश्च प्रसूनैर्बकुलोद्भवै:। मधूकजै: प्रसूनैश्च हुतै: कन्यामवाप्नुयात्॥४॥
त्रिमध्वक्तैश्चम्पकैश्च प्रसूनैर्बकुलोद्भवै:। मधूकजै: प्रसूनैश्च हुतै: कन्यामवाप्नुयात्॥४॥
पुंनागजैर्हुतैर्वस्त्राण्याज्यैरिष्टमवाप्नुयात्। माहिष्यैर्महिषीराज्यैरजान् गव्यैश्च गास्तथा॥५॥
अवाप्नोति हुतैराज्यैरन्नेनान्नं च साधक:। शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं सितसंयुताम्॥६॥
हृद्देशन्यस्तनामार्णां पचेत्तैलाज्ययोर्निशि। तामनश्नन् दिवा रात्रौ विद्याजप्तां तु भक्षयेत्॥७॥

सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नृपोऽथवा। दासवद्वशमायाति वित्तप्राणादिमर्पयेत् ॥८॥
हयारिपुष्पैररुणैः सितैर्वा जुहुयात् तथा। त्रिसप्तरात्रान्महतीमवाप्नोति श्रियं नरः ॥९॥
छागमांसैस्त्रिमध्वक्तैर्होमात् स्वर्णमवाप्नुयात्। क्षीराक्तैः शस्यसम्पूर्णां भुवमाप्नोति मण्डलात् ॥१०॥
पद्माक्षैर्हवनाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः।

शिवदूती नित्या प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि शिवदूती नित्या के मन्त्र का निरालस होकर यथाविधि एक लाख हवन करे। वांछितार्थ देने वाले इस काम्य हवन की विधि सुनो। इससे शीघ्र इच्छाएँ पूरी होती हैं। गुग्गुल के हवन से वनिता वश में होती है। नारियल फल और गुड़ के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आज्यसिक्त कल्हार, दूधसिक्त लाल कमल, त्रिमधुरसिक्त चम्पा, बकुल और महुआ के फूलों से हवन करने पर शादी होती है। पुन्नाग के हवन से वस्त्र, आज्य हवन से इष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। भैंस के घी से हवन करने पर भैंस मिलती है। आज्य के हवन से बकरी और गव्य के हवन से गाय मिलती है। आज्य अन्न के हवन से अन्न मिलता है। शालिपिष्ट में मिश्री मिलाकर पुत्तली बनावे। उसके हृदय में साध्य नाम वर्णों को लिखे। रात में तेल या घी में पुत्तली को पकावे। उसे खाकर दिन-रात विद्या का जप करे और जप के समय भी उसे खाये। सात रातों तक इस प्रयोग से नर-नारी या नृप दासवत् वश में हो उसे अपना धन-प्राणादि समर्पित करते हैं। कनैल के लाल या उजले फूलों से तीन या सात रातों तक हवन करने से बहुत धन मिलता है। त्रिमधुरयुक्त छाग मांस के हवन से सोना मिलता है। दुग्ध सिक्त छाग मांस के हवन से फसल से भरपूर मण्डल भर भूमि प्राप्त होती है। तीन दिनों तक कमलगट्टे के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

शिवदूतीनित्यायन्त्रतद्विधानानि

अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि नानाभीष्टप्रदानि ते ॥११॥
शृणु तेषु विधानानि समाहितमनाः शिवे। दूतीनित्याक्षरेषु स्युरनावृत्तानि वै दश ॥१२॥
अत्रानावृत्ताक्षराणि 'हरअशवदतयनम' इति।

तैः षोडशस्वरयुतैः षष्ट्या शतमुदीरितम्। चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्वृत्तयुग्मकम् ॥१३॥
तदन्तरष्टकोणं च तदन्तर्वृत्तयुग्मकम्। कृत्वा तत्र लिखेन्मध्ये विद्याद्यं नामसंयुतम् ॥१४॥
विद्याद्यं ह्रींकारम्।

वृत्तयोरन्तरा शेषं बहिः कोणेषु चाष्टसु। लिखेद् द्वे द्वेऽक्षरे तेषु बाह्यवृत्तद्वयान्तरा ॥१५॥
कर्मानुरूपान् भूतार्णान् दश भूपुरमध्यतः। मातृकां विलिखेद् दिक्षु द्वादश द्वादश क्रमात् ॥१६॥
अन्त्यं च त्रिषु कोणेषु शेषाणां च विलेखने। स्वैर्बिन्दुं समायोज्य योजयेद्व्यञ्जने परम् ॥१७॥
एवं यन्त्राणि जायन्ते दश सिद्ध्यास्पदानि वै।

अत्र प्रथमतो वृत्तद्वयं कृत्वा तद्बहिरष्टकोणं तद्बहिर्वृत्तद्वयं तद्बहिश्चतुरस्रद्वयं कृत्वा मध्ये साध्यनामगर्भं मायाबीजं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले प्रथमबीजरहितैर्मूलविद्याक्षरैर्वेष्टयित्वा तद्बहिरष्टकोणेषु षोडशस्वरसंयुक्तानावृत्ताक्षरेषु षष्ट्युत्तरशतसंख्याकेषु १६० प्रथमतः षोडशाक्षराणि प्रतिकोणं द्विद्विक्रमेण विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तरे कर्मानुसारिभूताक्षरदशकं प्राग्वद्विलिख्य, तद्बहिश्चतुरस्रद्वयान्तराले दिक्षु द्वादश द्वादश क्रमेण अकारादिसकारान्तमातृकावर्णान् विलिख्याग्नेयादिकोणेषु त्रिषु हलक्षान् विलिख्येशानकोणे हंलंक्षं इति विलिखेत्। एवं दश यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

अब विविध अभीष्टों को देने वाले इसके यन्त्रों का वर्णन करता हूँ। हे देवि! उन यन्त्रों का विधान सुनो। दूती नित्या विद्या को अनावृत करने पर दश अक्षर होते हैं—हरअशवदतयनम। उन्हें सोलह स्वरों से युक्त करने पर वे १६० होते हैं। यन्त्र निर्माण हेतु पहले दो वृत्त बनावे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसके बाहर दो चतुरस्र बनावे।

इस प्रकार निर्मित यन्त्र के मध्य में साध्य नाम गर्भ ह्रीं लिखे। उसके बाहर वृत्तों के अन्तराल में प्रथम अक्षररहित मूल विद्या के अक्षरों को लिखे। उसके बाहर षोडश स्वरसंयुक्त १६० अक्षरों में से १६ अक्षर अष्टकोण के प्रति कोनों में दोनों अक्षर लिखे। उसके बाहर वृत्तों के अन्तराल में कर्म के अनुसार दश भूताक्षरों को लिखे। उसके बाहर चतुरस्रद्वय के अन्तराल में प्रत्येक दिशा में बारह-बारह अ से स तक के वर्णों को लिखे। अग्न्यादि तीन कोनों में ह ळ क्ष लिखे। ईशान कोन में हं ळं क्षं लिखे। इस प्रकार अनावृत १६० अक्षरों से सोलह-सोलह के हिसाब से दश यन्त्र बनते हैं।

तथा—

प्रथमं गैरिकैः कृत्वा तत्रावाह्य शिवां यजेत् ॥१८॥

सप्तम्यां त्रिषु संध्यासु सितापूपसमन्वितम्। कृत्वा निवेद्य पयसा प्रातर्मध्यन्दिने तथा ॥१९॥
दधिभक्तं तु सायं तु क्षीरं मोचाफलं तथा। एवं मण्डलमर्धं वा कुर्यात्पूजां समाहितः ॥२०॥
वाञ्छितं प्राप्नुयात् देव्याः प्रसादेनाल्पयत्नतः। द्वितीयं दरदैः कृत्वा तत्रावाह्याथ तद्दिने ॥२१॥
सुपक्वछागमांसेन क्षौद्रमन्नं निवेदयेत्। तावद्भजेन्महीपालं वशे कर्तुमयत्नतः ॥२२॥
तथैव वनितां हृद्यां वशयेद्यावदायुषम्। तृतीयमपि सिन्दूरैर्विधायावाह्य तत्र ताम् ॥२३॥
तावद्दिनैस्तथावाह्य वशयेद्विविधान् रिपून्। चतुर्थं कुङ्कुमैः कृत्वा तत्र मध्येऽर्चयेत्तथा ॥२४॥
सप्ताहादापदः सर्वाः प्रयान्त्यस्याः प्रसादतः। पञ्चमं चन्दनैः कृत्वा तन्मध्ये पूजयेच्छिवाम् ॥२५॥
केवलं पायसं मोचां सितां घृतसमन्विताम्। निवेदयंस्त्रिसंध्यासु मासाद्रोगानशेषतः ॥२६॥
जित्वा सुखं चिरं जीवेच्छेषमायुर्निरामयः। अभिषिञ्चेच्च यन्त्रे वै कुम्भं संस्थाप्य तैर्जलैः ॥२७॥
कृत्वा तस्मै दक्षिणां च दद्याद्भूरि स्वशक्तितः। प्राणप्रदाने तस्मै तु दद्यात्सर्वस्वमेव वा ॥२८॥
येनासौ तोषमायाति तावद्वित्तं समर्पयेत्। षष्ठं कर्पूरसंयुक्तं पाटीरैरालिखेत्ततः ॥२९॥
मसृणे वा शिलापट्टे पीठे वा सौधभूतले। अन्नाज्यपायसापूपव्यञ्जनानि निवेदयेत् ॥३०॥
पूजयेच्च त्रिसंध्यासु जपन् विद्यां तदा वशी। त्रिसप्तरात्रमात्रेण ज्वराद्धीमाभिचारजात् ॥३१॥
मुच्यन्ते प्राणिनोऽचिन्त्याः शक्तयो मन्त्रयन्त्रयोः। सप्तमं ताम्रपट्टे तु कृत्वावाह्याभिपूज्य च ॥३२॥
स्थापयेन्मन्दिरे तस्मिंल्लक्ष्मीरास्तेऽतिसुस्थिरा। अष्टमं राजते कृत्वा बिभृयात् सर्वसम्पदे ॥३३॥
नवमं हेमगं कृत्वा भूषादौ धारयेच्छिवे। दशमे सर्वकार्याणि साधयन्नर्चयेच्छिवाम् ॥३४॥
यद्यद्धि वाञ्छितं कार्यं तत्तन्मध्यगतं तथा। कृत्वा तां पूजयेत्तत्र तत्कार्यं हृदये स्मरन् ॥३५॥
तद्दिनैस्तदवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।

प्रथम यन्त्र को गेरु से लिखकर उसमें शिवादूती का आवाहन करके पूजा करे। सप्तमी की तीनों सन्ध्याओं में मिश्री-पूआ-पायस प्रातःकाल में चढ़ावे। मध्य दिन की सन्ध्या में दही-भात अर्पण करे। शाम को दूध और केला अर्पण करे। इस प्रकार की पूजा २० दिनों तक करे। इससे देवी की कृपा से थोड़े समय में ही वांछित फल प्राप्त होता है। द्वितीय यन्त्र को सिंगरफ से सप्तमी में बनाकर देवी का आवाहन, पूजन करे। उस दिन सुपक्व मांस, मधु और अन्न का नैवेद्य निवेदन करे। तब तक भजन करे जब तक राजा वश में न हो जाय। इसी प्रकार यावज्जीवन वनिता को भी वश में किया जा सकता है। तृतीय यन्त्र को सिन्दूर से बनाकर देवी का आवाहन-पूजन करे। २० दिनों तक ऐसा करने से विविध शत्रुओं को वश में करता है। चतुर्थ यन्त्र को कुङ्कुम से बनाकर मध्य में देवी का आवाहन-पूजन सात दिनों तक करे तो देवी की कृपा से सभी आपदाओं का नाश होता है। पञ्चम यन्त्र को चन्दन से बनाकर उसके मध्य में देवी का आवाहन-पूजन एक माह तक करे और नैवेद्य में केवल पायस, केला, मिश्री और घी का अर्पण तीनों सन्ध्याओं में करे। इससे साधक के सभी रोगों का नाश हो जाता है एवं सुखपूर्वक शेष आयु में निरोगी रहकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है। यन्त्र पर कलश स्थापित करके उसके जल से अभिषेक करे। गुरु को बहुत दक्षिणा देकर या सर्वस्व देकर सन्तुष्ट करे। छठे यन्त्र को कपूर में चन्दन मिलाकर चिकने शिलापट्ट

या पीठ या महल के भूतल पर बनाकर देवी को अन्न, आज्य, पायस, पूआ और व्यञ्जन निवेदित करे। तीनों सन्ध्याओं में पूजा करे और जप तीन या सात रातों तक करे तो ज्वर एवं भीषण अभिचार नष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्र-यन्त्र की शक्ति प्राणियों के लिये अचिन्त्य है। सप्तम यन्त्र को ताम्रपत्र पर अंकित करके देवी का आवाहन-पूजन करे। जिस घर में यह यन्त्र स्थापित होता है, उसमें स्थिर लक्ष्मी का वास होता है। अष्टम यन्त्र को चाँदी के पत्र पर बनाकर पूजन करने से सभी सम्पदाओं की प्राप्ति होती है। नवम यन्त्र को सोने के पत्र पर अंकित कराकर आभूषण के साथ धारण करे। दशम यन्त्र का अर्चन करने से सभी कार्य होते हैं। इस यन्त्र के मध्य में वांछित कार्य को लिखकर पूजा करे और कार्य का स्मरण हृदय में करे तो वह कार्य उसी दिन सिद्ध हो जाता है।

दशैव तानि यन्त्राणि भूर्जे कृत्वाभिपूज्य च ॥३६॥

सिक्थनिर्मितपात्रं तु क्षौद्रमध्ये निवेशयेत्। त्रिसंध्यमर्चयेद्रक्तगन्धपुष्पैः समाहितः ॥३७॥
साध्यस्याभिमुखो विद्यां जपेन्नित्यमनुस्मरन्। पाशेन कण्ठमाबध्य पातितं निजपादयोः ॥३८॥
न्यस्ताञ्जलिकरं शीर्षे दासोऽहमिति वादिनम्। त्रिसप्तरात्राद्वश्याः स्युर्नरनारीनृपादयः ॥३९॥
तदेव कोष्णं कृत्वा च संध्यासु त्रिषु नित्यशः। कामार्ता वनिताः कामज्वरग्रस्ताशयाः शनैः ॥४०॥
कुलं लज्जां विवेकं च परित्यज्यास्य किङ्कराः। भवेयुरिति यन्त्राणां प्रयोगास्ते समीरिताः ॥४१॥
प्राणप्रतिष्ठाविद्यां ते वक्ष्येऽहं शृणु पार्वति। वातो नभो धरायुक्तं स्पर्शो व्याप्तेन संयुतः ॥४२॥
जवी दाहमरुद्युक्तो व्योमापि मरुता युतम्। अग्निर्हंसश्च पूर्वार्णौ पश्चादादित्रयं तथा ॥४३॥
ज्यावह्नियुक्तान्तोऽम्बु स्यात्षष्ठसप्तमकौ पुनः। हृच्छिख्यग्निरथो माया वातादित्रितयं पुनः ॥४४॥
हृद्दाहाम्बुचरैः स्वेन गोत्रादाहाग्निभिः परम्। व्याप्तं मरुत्समोपेतं व्योमाग्निगमनन्तरम् ॥४५॥
पुनराद्यत्रयं चाम्बु मरुद्द्यु नभसा युतम्। शून्यं मायान्वितं पञ्चाच्चतुर्थं पञ्चमं ततः ॥४६॥
अग्निर्हंसो मरुद्युक्तो व्याप्तं च मरुता युतम्। स्वं स्याद्द्रयधरायुक्तं हृदम्बु मरुदन्वितम् ॥४७॥
हंसश्च मरुता युक्तश्चत्वारिंशल्लिपिर्मनुः।

'अमुष्य प्राणा इह प्राणा अमुष्य जीव इह स्थित अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि अमुष्य वाङ्मनःप्राणा इहायान्तु स्वाहा' इति।

यादिसप्ताक्षरैः कुर्यात् षडङ्गानि द्वियोगतः ॥४८॥

त्वगादिषु च तान्येव न्यस्येच्छक्तिपुटस्थितम्। ध्यायेद् देवीं प्राणशक्तिमरुणामरुणाम्बराम् ॥४९॥
अरुणाकल्पमुकुटामरुणाधरपल्लवाम्। अरुणायतनेत्राब्जयुगां चारुस्मिताननाम् ॥५०॥
प्रसूनपिण्डं पाशं च दधानां पाणियुग्मतः। स्वसमानाभिरभितो वेष्टितां दशशक्तिभिः ॥५१॥
अनन्तशक्तियुक्ताभिः पूजयेत् पद्ममध्यतः। प्राणापानसमानाश्च व्यानोदाना च शक्तयः ॥५२॥
नागा कूर्मा सकृकरा देवदत्त धनञ्जया। चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्वृत्तयुग्मकम् ॥५३॥
तदन्तर्दशपत्राब्जं तदन्तस्तद्द्वयं तथा। कृत्वा मध्ये समावाह्य कृत्वार्घ्यं पूजयेत्ततः ॥५४॥
लक्षं जपेत् पयोभक्षस्तद्दशांशं हुनेत्तथा। तिलैः शुद्धैः सर्षपैश्च सितैर्मधुरसंयुतैः ॥५५॥
तर्पयेत् सौरभाद्येन जलेनेत्थं सुसाधयेत्। तन्त्रेऽस्मिन्यास्तु पुत्तल्यो यन्त्राण्युक्तानि सर्वतः ॥५६॥
अनया विद्यया तत्र साध्यप्राणान्नियोजयेत्। यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञे सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥५७॥
येन पुत्तलिका जीवस्पन्दयुक्ता मनोर्बलात्। प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्राण्यष्टौ निपातयेत् ॥५८॥
कोष्ठान्येकोनपञ्चाशज्जायन्ते तेषु विन्यसेत्। प्रागुत्तरं समालिख्य परितोऽपि प्रवेशतः ॥५९॥
मध्येषु शिष्टनवसु लिखेदङ्गोदितात्क्रमात्। ततः शिष्टद्वये साध्यनामालिख्याथ साधकः ॥६०॥
संजप्य विद्यां हस्तेन सजीवेन स्पृशन् शतम्। तेन पुत्तलिकाः कुर्यात्सिद्धये नान्यथा भवेत् ॥६१॥

उन दशों यन्त्रों को भोजपत्र पर लिखकर पूजा करे। सिक्थ पात्र में मधु डालकर यन्त्रों को उसमें डुबो दे। तीनों सन्ध्याओं से लाल गन्ध एवं पुष्प से अर्चन करे। साध्य की दिशा में मुख करके विद्या का जप करे और नित्य स्मरण करे तब साध्य पाश में बद्ध होकर साधक के पाँव पर गिर पड़ता है और शिर पर हाथ जोड़कर कहता है कि मैं आपका दास हूँ। तीन या सात रातों तक ऐसा करने से नर-नारी या राजा वश में हो जाते हैं। उसी प्रकार यन्त्रों को तीनों सन्ध्याओं में तपाने पर कामार्त वनिता कामज्वर से ग्रस्त होकर अपने कुल, लज्जा एवं विवेक का त्याग कर उसकी दासी हो जाती है।

अब इन यन्त्रों की प्राणप्रतिष्ठा-विधि कहता हूँ। प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र है—अमुष्य प्राणा इह प्राणा अमुष्य जीव इह स्थित अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि, अमुष्य वाङ्मनः प्राणाः इहायान्तु स्वाहा। यह ४० अक्षरों का मन्त्र है। दो-दो के योग से यकारादि सप्ताक्षरों से षडङ्ग न्यास करे। इसी प्रकार कर न्यास भी करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—देवी लाल वस्त्र, लाल आभूषण, लाल मुकुट धारण की हुई हैं। उनके होठ लाल हैं। उनके दोनों नेत्र लाल हैं। उनके मुख पर मुस्कान है। दोनों हाथों में प्रसूनपिण्ड और पाश धारण की हुई हैं। अपने ही समान दश शक्तियों से घिरी हैं।

अनन्त शक्तियुक्त इन सब की पूजा कमलमध्य में करे। प्राण अपान समान व्यान उदान नाग कूर्म कृकर देवदत्त धनञ्जय—ये दश प्राणशक्तियाँ हैं।

पूजन यन्त्र—दो चतुरस्र बनावे। उसके अन्दर दो वृत्त बनावे। उसके अन्दर दशदल पद्म बनावे। उसके अन्दर दो दल का कमल बनावे। यन्त्र के मध्य में देवी का आवाहन करके अर्घ्यादि से पूजन करे। विद्या का जप एक लाख पयाहारी होकर करे। दशांश हवन तिल-सरसों-मिश्री मधु मिलाकर करे। सुगन्धित जल से तर्पण करे। इस तन्त्र में जिन पुत्तलियों और यन्त्रों का उल्लेख है, उनमें इसी प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्रतिष्ठा करे। अब शीघ्र सिद्धिदायक यन्त्र का वर्णन सुनो।

इस यन्त्र से और मन्त्रबल से पुत्तली में जीव स्पन्दनयुक्त होता है। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर आठ रेखायें खींचे। इससे ४९ कोष्ठ बनते हैं। पूर्व से प्रवेश रीति से उत्तर तक ४० मन्त्राक्षरों को लिखे। अवशिष्ट नव में से सात में कामेश्वरी से शिवदूती तक सात नित्याओं को लिखे। शेष दो कोष्ठों में साध्य नाम और कर्म लिखे। यन्त्र को स्पर्श किए हुए प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का एक सौ जप करे। सिद्धि के लिये इसी प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा करे; अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।

साध्यजीवाद्यानयनं शृणु वक्ष्यामि तेऽद्भुतम्। मन्त्रवीर्यस्मृतिं कुर्वन् तथा तद्देहगर्भतः ॥६२॥
ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यर्थान्मनो जीवं तनुं तथा। तस्मात्साध्यशरीरान्तात्पुत्तल्या नामभिस्तथा ॥६३॥
रक्तरज्ज्वा शक्तिमय्या तानानीयार्पयेद्धिया। विद्यायास्त्र्यक्षरान्तेषु साध्यनाम नियोजयेत् ॥६४॥
एवं नियोजितां विद्यां सहस्रं प्रजपेत्स्पृशन्। जीवहस्तेन तच्चित्तो निशामध्येषु साधकः ॥६५॥
एवं संस्थापितप्राणा पुत्तली स्पन्दते तदा। साध्यस्य जन्मनक्षत्राण्याकर्णय वदामि ते ॥६६॥
तज्जन्मलग्नसञ्जातनवांशर्क्षप्रमाणकम्। अन्यानि च नवर्क्षाणि नवग्रहसमन्वयात् ॥६७॥
तेषु तेषु प्रयोगांस्तु वक्ष्याम्यपरहोमके। रिपोर्नखं च केशं च चरणोत्थं रजस्तथा ॥६८॥
अन्यानि चाङ्गरोमाणि पुत्तल्यां योजयेन्मृतौ। वश्यादिषु च सर्वत्र पुत्तल्यां प्रोक्तया तया ॥६९॥
एवं सर्वं समाख्यातं प्राणाकर्षणकर्मणि। अनया विद्यया कृत्वा प्राणाकर्षणमुक्तया ॥७०॥
ततो निर्दिष्टपुत्तल्यां तत्र तन्त्रोक्तमाचरेत्। सर्वत्र मारणे प्रोक्ते साध्यर्क्षग्रहसंस्थितिम् ॥७१॥
उक्तानां तत्र ऋक्षाणां तथैवाष्टकवर्गकम्। दशास्थितिं च संवीक्ष्य कुर्यान्मारणमात्मवान् ॥७२॥
अनवेक्ष्य कृतं कर्म स्वात्मानं हन्ति तत्क्षणात्। ब्राह्मणं धार्मिकं भूपं वनितामास्तिकं नरम् ॥७३॥
वदान्यं सदयं नित्यमभिचारे न योजयेत्। योजयेद्यदि वैरेण प्रत्यगेनं निहन्ति तत् ॥७४॥
अभिचारस्य विषयानाकर्णय वदामि ते। पापिष्ठान्नास्तिकान् घोरान्देवब्राह्मणनिन्दकान् ॥७५॥

प्रजानां घातकान् सर्वक्लेशकर्मसु संस्थितान्। क्षेत्रवृत्तिधनस्त्रीणामाहर्तारं कुलान्तकम्॥७६॥
निन्दकं समयानां च पिशुनं राजघातकम्। विषाग्निक्षुरशस्त्राद्यैर्हिंसकं प्राणिनां सदा॥७७॥
नियोजयेन्मारणेषु कर्मस्वेतैर्न पातकी। कृत्वा तु मारणं कर्म तदन्ते स्वधनार्धतः॥७८॥
पादतो वा गुरुं विप्रानाराध्य स्वेन नित्यया। अभिषिच्य ततो विद्यां जपेल्लक्षं हविष्यभुक्॥७९॥
जन्मत्रयेऽप्यब्दमात्रमभिषेकं समाचरेत्। सदूर्वाहोममब्दात्तु तत्पापैरेष मुच्यते॥८०॥
एतत्ते कथितं सर्वं दूतीनित्याविधानकम्।

इति शिवदूतीनित्याप्रयोगविधिः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे विंशः श्वासः॥२०॥

●

साध्य के देह में जीवादि लाने के लिये अद्भुत विधि कहता हूँ। साध्य के देह में मन्त्रवीर्य का स्मरण करे। साध्य के ज्ञान-कर्म इन्द्रियाँ, मन, जीव, तन, साध्य के शरीर से निकालकर पुत्तली में नामसहित नियोजित करे। इसके बाद पुत्तली को श्वास प्रवाहित हाथ से स्पर्श किए हुए विद्या का एक हजार जप करे। इस प्रकार प्राण स्थापन करने पर पुत्तली स्पन्दन-युक्त होती है। साध्य के जन्म नक्षत्र के बारे में सुनो। उसका जन्म लग्न नवांश नक्षत्र में होता है। अन्य नव नक्षत्र नवग्रह से समन्वित होते हैं। उनके प्रयोगों को अन्य हवन के लिये कहता हूँ। शत्रु का नख, केश, चरणधूलि, अन्य अंगों के रोम पुत्तली में योजित करे। वश्यादि में सर्वत्र पुत्तली में योजित करे। प्राणाकर्षण कर्म में ये सभी समाख्यात हैं। इस विद्या से प्राणाकर्षण किया जाता है। तन्त्रों में निर्दिष्ट पुत्तलियों से प्रयोग करे। मारण में ग्रह में स्थित नक्षत्र ही सर्वत्र ग्राह्य है। उक्त नक्षत्रों में अष्टक वर्ग, दशास्थिति देखकर ही मारण कर्म करना चाहिये। बिना विचारे कर्म करने से अपनी मृत्यु होती है। ब्राह्मण, धार्मिक राजा, वनिता, आस्तिक मनुष्य और अन्य दयालु पर अभिचार का प्रयोग न करे। यदि वैर से इन पर अभिचार का प्रयोग करता है तो साधक की मृत्यु हो जाती है। अब अभिचार के विषयों को सुनो। पापी, नास्तिक, भयंकर, देव-ब्राह्मणों का निन्दक, प्रजा के घातक, सभी क्लेश कर्म में लग्न, क्षेत्र-वृत्ति धन-स्त्री के हर्ता-कुलान्तक, समयों के निन्दक, चुगलखोर, राजा के घातक, प्राणियों को विष, अग्नि, शस्त्रादि से मारने वालों को मारण कर्म में नियोजित करे; इसमें पाप नहीं लगता। मारण कर्म करने के बाद अपने धन का आधा गुरु, विप्र या नित्या के उपासकों के पैरों में अर्पित करे। विद्या से अभिषेक करके हविष्याशी रहकर एक लाख जप करे। तीन जन्म दिनों में साल भर तक अभिषेक करे। साल भर दूर्वासहित हवन करे तो पाप से मुक्त होता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्य यतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में बीसवाँ श्वास पूर्ण हुआ

●

अथैकविंशः श्वासः

त्वरितानित्याप्रयोगविधिः

अथ त्वरितानित्यायाः प्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१४.२३)—

ततः साधितविद्यस्तु प्रयोगानाचरेन्नरः। बैल्वैर्दशांशं जुहुयात् पत्राद्यैः साधने जपे ॥१॥
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु मन्त्रितैश्चुलुकोदकैः। फणिदष्टमृतानां तु मुखे संताड्य जीवयेत् ॥२॥
तत्कर्णयोर्जपेद्विद्यां यष्ट्या वा जपसिद्धये। संताड्य शीर्षे सहसा मृतमुत्थापयेदिति ॥३॥

त्वरिता नित्या प्रयोगविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि साधित सिद्ध विद्या से ही मनुष्य प्रयोग करे। दशांश हवन बेलपत्र से करे। उन बिल्वपत्रादि को हवन के पूर्व मन्त्र जप से मन्त्रित करे। इस सिद्ध मन्त्र से चुल्लू भर जल को अभिमन्त्रित करके सर्पदंश से मृत व्यक्ति के मुख पर मारने से मृत व्यक्ति भी जीवित हो जाता है। मृत के कान में विद्या का जप करे एवं अभिमन्त्रित छड़ी से मृतक के शिर पर प्रहार करे तो मृतक सहसा जीवित हो जाता है।

काम्यहोमविधिः

काम्यहोमविधिं देवि शृणु वक्ष्ये यथाविधि। कृत्वा योनिं कुण्डमध्ये तत्राग्नौ विधिवद्धुनेत् ॥४॥
तिलसर्षपगोधूमशालिधान्ययवैर्हुनेत्। त्रिमध्वक्तैरेकशो वा समेतैर्वा समृद्धये ॥५॥
बकुलैश्चम्पकैरब्जैः कह्लारैररुणोत्पलैः। कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधूकैरिन्दिराप्तये ॥६॥
अशोकैः पाटलैर्बिल्वैर्जातीविचकिलैः सितैः। नवैर्नीलोत्पलैरश्वरिपुजैः कर्णिकारजैः ॥७॥
होमाल्लक्ष्मीं च सौभाग्यमायुर्वित्तं यशो निधिम्। यद्यद्धि वाञ्छितं सर्वमवाप्नोति सुनिश्चितम् ॥८॥
दुर्वागुडूचीमश्वत्थं वटमारग्वधं तथा। सितार्कप्लक्षकं हुत्वा रोगान्मुक्तो नरोऽचिरात् ॥९॥
इक्षुजम्बूनालिकेरमोचागुडसितैर्हुतैः। अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति ध्रुवम् ॥१०॥
एतैरुदीरितैराज्यमधुक्षीरपरिप्लुतैः। एकैकैर्वनिता वश्या यावज्जीवं धनादिभिः ॥११॥
तैस्तैराज्यप्लुतैर्भूपा वश्या स्युर्हवनात्प्रिये। क्षीराक्तैस्तैर्हुतैर्मर्त्या वशे तिष्ठन्त्यशेषतः ॥१२॥
सर्षपाज्यैर्हुनेन्मृत्युकाष्ठाग्नौ वैरिमृत्यवे। तदक्तैर्वैरियोन्युत्थमांसैरपि च तत्कृते ॥१३॥
अक्षेन्धनाग्नौ योन्युत्थक्षतजोत्पादितं चरुम्। आरुष्करघृतोपेतं फणिशीर्षस्रुचा हुनेत् ॥१४॥
कृष्णांशुकशिरोवेष्टः खड्गपाणिश्च रोषवान्। निशामध्ये हुनेत्सद्यो निहन्तुं वैरिणं हठात् ॥१५॥
मृत्युकाष्ठानले तस्य फलैः पत्रैश्च होमतः। सप्तरात्रादरातेस्तु गजाश्वा रोगमाप्नुयुः ॥१६॥
चतुरङ्गुलजैर्होमाच्चतुरङ्गबलं रिपोः। सप्ताहाद्रोगदुःखार्तं भवत्येव न संशयः ॥१७॥
एवमस्यास्तु विद्याया वैभवं को नु वर्णयेत्। तथापि तद्दिशा किञ्चिदुच्यते तच्छृणु प्रिये ॥१८॥

हे देवि! सुनो, अब मैं काम्य हवन की विधि को विधिवत् कहता हूँ। कुण्डमध्य में योनि बनाकर विधिवत् अग्नि स्थापित करे। तिल, सरसों, गेहूँ, शालिधान्य में से प्रत्येक को अलग-अलग और सबों को एक साथ त्रिमधुर से अक्त करके हवन करे तो समृद्धि मिलती है। बकुल, चम्पा, कमल, कल्हार, लाल उत्पल, कैरव, मल्लिका, कुन्द, महुआ के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अशोक, गुलाब, बेल, जाती, विचकिल, मिश्री, नव नील कमल, कनेर, कर्णिकार के हवन से लक्ष्मी, सौभाग्य, आयु, धन, यश, निधि के साथ जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उनकी प्राप्ति निश्चित रूप से होती है। दूब, गुरूच, पीपल, वट, अमलतास, श्वेतार्क, पलाश के हवन से अल्प काल में रोगों का नाश होता है। ईख, जामुन, नारियल, केला, गुड़, मिश्री के हवन से साधक अचला लक्ष्मी का भोक्ता होता है। उपरोक्त सभी वस्तुओं को आज्य, मधु और दूध से प्लुत

करके या एक ही को प्लुत करके हवन करने से वनिता अपने धनसहित आजीवन वश में होती है। उन्हें आज्य से प्लुत करके हवन करने से राजा वश में होते हैं। क्षारात्त करके हवन से मनुष्य जीवन भर वश में होते हैं। श्मशान के लकड़ी की अग्नि में सरसों, आज्य के हवन से शत्रुओं की मृत्यु होती है। वैरी-योनि के मांस एवं सरसों को आज्य से अक्त करके हवन करने से भी वैरी की मृत्यु होती है। रुद्राक्ष की लकड़ी पर योनिगत घाव के मांस का चरु बनाकर घृतोपेत आरुष्कर के साथ सर्पाकार शीर्ष वाली स्रुचा से हवन करे। शिर पर काली पगड़ी बाँधकर हाथ में खड्ग लेकर क्रुद्ध होकर आधी रात में हवन करे तो शत्रु की मृत्यु हठात् होती है। मृत्युकाष्ठ की अग्नि में उसके फल और पत्तों से हवन करे तो सात रात में शत्रु के हाथी, घोड़ों में बिमारी फैल जाती है। चार अंगुल के मृत्युकाष्ठ की अग्नि में सात रातों तक हवन करने से शत्रु रोगार्त होकर दु:खी होता है। इस प्रकार इस विद्या के वैभव का वर्णन यद्यपि समासत: नहीं किया जा सकता है; तथापि उसके बारे में कुछ कहा गया है।

यन्त्रोद्धारतद्रचनाप्रकार:

अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि समस्ताभीष्टसिद्धये। तानि सर्वाणि देवेशि कुरु चित्ते क्रमेण वै ॥१९॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्राणि द्वादशार्पयेत्। तदग्राण्यभित: कुर्यात्त्रिशिखान्यस्य मध्यगे ॥२०॥
कोष्ठे तारस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा शिवादिषु। प्रादक्षिण्यप्रवेशेन द्वादशावृत्ति मायया ॥२१॥
विद्यामालिख्य संजप्य बिभृयात्सर्वसिद्धये। श्रियै कीर्त्यै च वश्याय सौभाग्यायाखिलाप्तये ॥२२॥
विषग्रहगदोन्मादशान्त्यै युद्धे जयाप्त्ये। नरनारीनृपादीनां वश्याय बिभृयाच्च तत् ॥२३॥

अस्यार्थ:—प्राग्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च द्वादश रेखा विलिख्यैकविंशत्युत्तरशतकोष्ठानि (१२१) **कृत्वा, रेखाग्रेषु सर्वेषु त्रिशूलानि विलिख्य तन्मध्यकोष्ठे ससाध्यं प्रणवं विलिख्येशानकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन प्रवेशगत्या त्वरिताविद्यां प्रणवद्वितीयहृल्लेखाविधुरां द्वादशावृत्ति विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। तथा—**

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च नव सूत्राणि पातयेत्। जायन्ते च चतु:षष्टिकोष्ठानि परमेश्वरि ॥२४॥
तेषु शर्वनिर्ऋत्यादि लिखेल्लक्ष्मीमनुं क्रमात्। बहिस्तूर्णाक्षरैरन्ते वषड्युक्तैस्तु वेष्टयेत् ॥२५॥
अनुग्रहं महाचक्रं विद्यां श्रृणु महेश्वरि। सर्वतोभद्रविन्यासानुष्टुभं सर्वसिद्धिदम् ॥२६॥
दाहवह्नियुतं चाद्यं वियद्भून्मरुता तत:। नभश्च मरुतोपेतं व्याप्तं तेन समन्वितम् ॥२७॥
एतान्येव विलोमानि प्रथमं चरणं भवेत्। द्वितीयादि द्वितीयं स्याद्ध्रुवा शून्यं द्वितीयकम् ॥२८॥
तृतीयं च चतुर्थं स्याज्ज्या तु साभ्रचरा तत:। प्रतिलोमं तथैतेषां द्वितीयं चरणं भवेत् ॥२९॥
तृतीयतुर्यौ परत इला वह्न्या ततस्त्विला। मरुद्युता प्राग्वदेतत्प्रतिलोमं तृतीयकम् ॥३०॥
चतुर्थं द्वादशं विंशं तदाद्यं ते विलोमगा:। एतच्चतुर्थं चरणं श्रीविद्यायां महेश्वरि ॥३१॥
सर्वतोभद्ररूपैषा विद्या सर्वार्थसाधिका। यत्र स्थितासौ चक्रस्था न तत्राशुभसंकथा ॥३२॥

'श्रीसामायायामासाश्री सानोयाज्ञेज्ञेयानोसा। मायालीलालीयामा याज्ञेलालीलीलाज्ञेया' इति। अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकार:—तत्र प्राग्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च नव रेखा: कृत्वा चतु:षष्टिकोष्ठयुतं चतुरस्रं श्रीचक्रं परिकल्प्य, तत्र सर्वोपरिगतपङ्क्ते: प्रथमकोष्ठमारभ्य स्ववामादिदक्षिणान्तक्रमेण पङ्क्तिचतुष्टयगतेषु द्वात्रिंशत्कोष्ठेषु प्रोक्तसर्वतोभद्राख्यलक्ष्मीमन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य, पुनरधोगतपङ्क्तिचतुष्टयेऽपि सर्वाध:पंक्ते: प्रथमकोष्ठं स्वदक्षिणस्थमारभ्य वामान्तमुपर्युपरि पङ्क्तिचतुष्टये तस्यैव मन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य तद्बहि: प्रागादिषु चतसृषु दिक्षु ईशादीशान्तं चतुरावृत्ति तद्बाह्यरेखास्पृष्टां त्वरिताविद्यामन्तर्गतवषट्कारामालिख्य तद्बहिर्वमित्यमृतबीजेन वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

हे प्रिये! सुनो, सभी अभीष्टों की सिद्धि के लिये यन्त्रों का वर्णन करता हूँ। उन सबों को तुम क्रम से चित्त में धारण करो। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बारह रेखाएँ खींचे। इससे १२१ कोष्ठ बनते हैं। सभी रेखाओं के अग्र भाग को

त्रिशूलयुक्त करे। उसके मध्य कोष्ठ में साध्य गर्भ ॐकार लिखे। ईशान कोष्ठ से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति से प्रणव और ह्रीं को छोड़कर त्वरिता विद्या की १२ आवृत्ति लिखे। तदनन्तर विद्या का जप करे तो सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। श्री, कीर्ति, वश्य, सौभाग्य के साथ सब कुछ प्राप्त होते हैं। विष-ग्रहजनित रोग एवं उन्माद की शान्ति तथा युद्ध में जय के लिये या नर-नारी-नृपादि को वश में करने के लिये इस यन्त्र का साधन किया जाता है।

अन्य यन्त्र—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर नव रेखाएं खींचे। इससे चौंसठ कोष्ठ बनते हैं। उनमें नैर्ऋत्य से शुरु करके लक्ष्मीमन्त्र को क्रमशः लिखे। उसे बाहर से त्वरिता मन्त्र के साथ वषट् जोड़कर वेष्टित करे।

लक्ष्मी मन्त्र—अब अनुग्रह महाचक्र विद्या को सुनो। श्री सा मा या या मा सा श्री सा नो या ज्ञे ज्ञे या नो सा माया लीला लाली यामा याज्ञे लाली लीला ज्ञेया—सर्वतोभद्ररूपा यह विद्या सर्वार्थ-साधिका है। जहाँ यह चक्र स्थित रहता है; वहाँ कोई अशुभ नहीं होता। इस चक्र के ऊपरी कोष्ठपंक्ति में नैर्ऋत्य से प्रारम्भ करके चार पंक्तियों में ३२ मन्त्राक्षरों को लिखे। पुनः सबसे निचले कोष्ठ में ईशान से प्रारम्भ करके ३२ कोष्ठों में ३२ अक्षरों को लिखे। उसके पूर्वादि चारो दिशाओं में ईशान से ईशान तक की रेखा को स्पर्श करते हुए त्वरिता विद्यान्तर्गत वषट् लिखे। उसके बाहर अमृतबीज वं से वेष्टित करे।

तथा—

दशसूत्रनिपातेन कृत्वैकाशीतिकं पदम्। तन्मध्यकोष्ठे दावस्थं कृत्वा नामास्य वीथिषु ॥३३॥
लिखेद्वर्णचतुष्कं तु शृणु भद्रे यथाविधि। ज्याधरास्वैर्मायया हृत्ततोऽम्बु स्पर्शगा इला ॥३४॥
ततः श्रियो लिखेद्विद्यां शिवरक्षोदिगादिकाम्। प्राग्वत्तूर्णमृतार्णैस्तैर्वेष्टयेत् फड्वियोजितैः ॥३५॥
ततोऽम्बु स्वयुतं तेन मालाकलितरूपिणा। वृत्तद्वयेन निष्पाद्य कुम्भं पद्माधरोत्तरम् ॥३६॥
कृत्वा स्वर्णादिषूक्तेषु संपूज्याभ्यर्च्य तत्पुनः। स्थापयेज्जपसंसिद्धं तेषु पूर्वोदितेषु वै ॥३७॥
तत्र लक्ष्मीरतिस्फीता नीरोगाश्च प्रजास्तथा। गजाश्वपशवस्त्वन्ये प्राणिनः सुखिनोऽनिशम् ॥३८॥
भूतप्रेतपिशाचादिपीडासु बिभृयादिदम्। अलक्ष्मीशान्तये वश्यसिद्धये सर्वसंपदे ॥३९॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च समान्तरालानि दश दश सूत्राण्यास्फाल्यैकाशीतिपदानि विधाय, तत्र मध्यकोष्ठे सबिन्दुकठकारोदरे साध्यनामालिख्य तत्कोष्ठपार्श्वस्थपूर्वापरायतपंक्तिद्वयेन दक्षिणोत्तरायतपङ्क्तिद्वयेन च संभूय चतसृषु पंक्तिषु चतुश्चतुष्कोष्ठात्मिकासु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्यक्रमेण 'जूंसः वषट्' इति च प्रतिकोष्ठमेकैकमभ्यन्तरान्निर्गमगत्या विलिख्य, तत ईशानादिनिर्ऋत्यादिकं च प्रागुक्तश्रीविद्यानुष्टुभं मध्यवीथीचतुष्टयवर्जमालिख्य, सर्वबाह्येऽभितः ईशादीशान्तं तूर्णमृताक्षराणि चतुरावृत्त्या प्राग्वत्समालिख्य सर्वमध्यकोष्ठमध्यकोष्ठमवष्टभ्य चतुष्कोणस्य तूर्णाक्षरमानेन भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तद्बाह्येऽङ्गुलमानेन तथा वृत्तान्तरं कृत्वाध उपरिभागे च मध्यतश्चतुरङ्गुलान्तरालं वृत्तद्वयं मार्जयित्वा तदग्रचतुष्टयमानमवक्रं समान्तरालमुपरि चतुरङ्गुलकुम्भमुखाकारं यथा भवति तथा समुन्नमय्य कुम्भमुखे तिर्यग्रेखाद्वयं प्रसार्य, तत्कुम्भवीथीमध्यमन्योन्यस्पृष्टवकारमालया शृङ्खलारूपयान्तर्मुखया समापूर्य सर्वत्रोपरि बिन्दुं समालिख्य, कुम्भाधस्तात्पद्मं तत्कर्णिकास्थकुम्भं यथा भवति तथा समालिख्य प्रोक्तक्रमेण मनीषितेषु विनियोगात् प्रोक्तफलानि भवन्ति। इत्यनुग्रहयन्त्राणि।

अन्य यन्त्र रचना प्रकार—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर दश रेखाएँ खींचने से ८१ कोष्ठ बनते हैं। मध्य कोष्ठ में ठ के गर्भ में साध्य नाम लिखे। वीथियों में 'जूं सः वषट्'—ये चार वर्ण लिखे। तब श्रीविद्या ईशान से नैर्ऋत्य तक लिखे। फट् के साथ त्वरिता विद्याक्षरों से वेष्टित करे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर कुम्भ की आकृति बनावे। उसके नीचे पद्म बनावे। सोने आदि के सूत्रों से वेष्टित करे। पूजन करे। पुनः उसे जप से सिद्धि के लिये स्थापित करे। यह जहाँ स्थापित होता है, वहाँ की प्रजा लक्ष्मी एवं रति से युक्त तथा निरोग रहती है। हाथी, घोड़े एवं अन्य पशु बराबर सुखी रहते हैं।

भूत-प्रेत-पिशाचादि की पीड़ा नहीं होती। इससे दरिद्रता नष्ट होती है, वशीकरण सिद्ध होता है तथा सभी सम्पत्तियाँ मिलती हैं।

निगडयन्त्राणि तद्रचनाप्रकारश्च

अथ निग्रहयन्त्राणि (तत्रैव)—

निग्रहं शृणु देवेशि शत्रवो यस्य शङ्किताः। स्वल्पेनैव तु कालेन भवन्त्येव परासवः ॥४०॥
प्राग्वदेकाशीतिपदं कृत्वा तन्मध्यकोष्ठके। दाहगर्भे नाम कृत्वा तथा दिग्वीथिषु क्रमात् ॥४१॥
लिखेद्बीजचतुष्कं तु वह्निमारुतविग्रहम्। यैः सद्यो वैरिणः स्वैरं विमुञ्चन्ति कलेवरम् ॥४२॥
रसो दाहक्ष्मास्वयुतो ग्रासो दाहक्ष्मया स्वगः। प्रभा दाहक्ष्मास्वयुता हंसो दाहादिसंयुतः ॥४३॥
ईशरक्षोदिगारम्भात्पङ्क्तिशो विलिखेत्ततः। काल्या यमस्य क्रमतो विद्यामन्त्रं च संक्रमम् ॥४४॥
सर्वतोभद्ररूपं तु काल्यनुष्टुभमीश्वरि। शृणुं वक्ष्यामि परतो यमानुष्टुभमीदृशम् ॥४५॥
प्राणो मरुत्समोपेत इला वह्न्या समन्विता। नभो मरुद्युतं दाहश्चतुर्णां प्रतिलोमतः ॥४६॥
प्रथमं चरणं तस्य द्वितीयं शून्यमेव च। नभो भुवा ग्रास एतत्प्रतिलोमाद्द्वितीयकम् ॥४७॥
तृतीयमेकादशमं ततो गोत्रा चरान्विता। रयस्तेषां विलोमं च तृतीयं चरणं मतम् ॥४८॥
चतुर्थं द्वादशं विंशं रयोऽम्ब्वाधो विलोमकम्। चतुर्थं चरणं प्रोक्तं विद्यैषा सर्वनाशिनी ॥४९॥
व्याप्तं कालीतृतीयं च मरुताम्बुसमन्वितम्। नाद एषां विलोमं च प्रथमं चरणं यमे ॥५०॥
एतद्द्वितीयतुर्यौ च नभसा भूश्च नादकम्। एतेषां प्रतिलोमं च द्वितीयं चरणं मनोः ॥५१॥
अम्बुयुक्तो मरुच्चास्मिन्नेकादशकमेव च। रसः क्ष्मया वह्निदाहौ प्रतिलोमं तृतीयकम् ॥५२॥
नादो नादो दाहवह्नी रयोऽम्ब्वा तदनन्तम्। प्रतिलोमं तु तेषां स्याच्चतुर्थं चरणं शिवे ॥५३॥
एवं मनुद्वयं कोष्ठेष्वालिख्य बहिरप्यथ। वेष्टयेद् व्याप्तदाहाभ्यामुक्तक्रमसमन्वितम् ॥५४॥
मर्कटीदण्डिगरलैरालिप्तं स्थापितेरकम्। जपन् विनिक्षिपेदक्षविवरे चत्वरेऽथवा ॥५५॥
वल्मीके मातृभवने शास्तुरायतनेऽथवा। श्मशाने प्रोक्तसमये प्रोक्तक्रमसमन्वितम् ॥५६॥

'कालीमाररमालीका लीनमोक्षक्षमोनली। मामोदेततदेमोमा रक्षतत्वत्वतक्षर' इति काल्यनुष्टुभम्। 'यमावाटटवामाय माटमोटटमोटमा। वामोभूरीरीभूमोवा टटरीत्वत्वरीटट' इति यमानुष्टुभम्। 'भ्रूंक्ष्रूंछ्रूंहूं' इति निग्रहबीजचतुष्टयम्।

अथैतन्निग्रहयन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वदेकाशीतिपदोपेतं चक्रं विरच्य तन्मध्यकोष्ठे सबिन्दुकरेफोदरे साध्यनामालिख्य प्राग्वत् तत्पार्श्वपङ्क्तिषु चतुष्कोष्ठेषु प्रागुक्तक्रमेण 'भ्रूंक्ष्रूंछ्रूंहूं' इत्यक्षरचतुष्टयमभ्यन्तरान्निर्गमनगत्याभितः समालिख्य, आभिचार्यः पुरुषश्चेदन्तःकाल्यनुष्टुभं बहिर्यममन्त्रं, वनिता चेदन्तर्यममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च समालिखेत्। लेखने तु—ईशानादिकं निर्ऋत्यादिकं च कालीविद्याम्, अन्यदा तथा यममन्त्रं विलिख्य अन्यतरं बहिरीशानादिनिर्ऋत्यन्तं निर्ऋत्यादीशान्तं च निरन्तरं द्विरालिख्य, तद्बहिर्निरन्तरं बिन्दुयुक्तं यकारं रेफं चेशादीशान्तं यथाक्रममन्तर्बहिर्विभागेन समालिख्य मनीषितेषु विनियुञ्ज्यात्। एतन्निक्षिपेदाभिचार्यः पुरुषश्चेत् काल्यादिशक्तेरायतने, स्त्री चेत् शास्तुरायतन एवाग्रभागेऽधस्तान्निखनेदिति संप्रदायः।

हे देवि! अब शत्रुओं को अतिशीघ्र मृत्यु के मुख में पहुँचाने वाले निग्रह यन्त्र सुनो। पूर्ववत् ८१ कोष्ठ बनाकर उसके मध्य कोष्ठ में रं के गर्भ में साध्य नाम लिखे। दिग्वीथियों में क्रमशः चार निग्रह बीज भ्रूं क्ष्रूं छ्रूं हूं लिखे; जो वैरियों को तत्काल ही समाप्त कर देते हैं। काली और यम के विद्या मन्त्र को लिखे। काली का अनुष्टुप् मन्त्र सर्वतोभद्र रूप का है। यम का अनुष्टुप् भी इसी रूप का है।

काली अनुष्टुप्—कालीमाररमालीका लीनमोक्षक्षमोनली। मामोदेततदेमोमा रक्षतत्वत्वतक्षर।।
यम अनुष्टुप्—यमावाटटवामाय माटमोटटमोटमा। वामोभूरीरीभूमोवा टटरीत्वत्वरीटट।।

इन दोनों मन्त्रों को कोष्ठों में लिखे। यन्त्र को बाहर भी इनसे वेष्टित करे। भूमि को मर्कटी दण्डी गरल से लीप कर इसे स्थापित करे। तदनन्तर मन्त्र का जप करते हुये इसे अपने दाहिने गड्ढा में गाड़े अथवा चौराहे में गाड़े या दीमक वाले स्थान में गाड़े या माता मन्दिर में गाड़ दे या राजमहल के प्रांगण में गाड़े या श्मशान में विहित समय में विहित क्रम से गाड़ दे।

प्रपञ्चसारे—

सीसकृते नवपट्टे शावभवे कर्पटके वा। प्रस्तरके वा विषमस्या संलिख काकसुपत्रैश्च ॥१॥
चत्वरके वा कलिवृक्षे स्थापितमेतदरीणां हि। मृत्युकरं व्याधिकरं स्यात् पुत्रस्त्रीविपत्करं च ॥२॥ इति।

तन्त्रराजे—

यत्र देशादिके यन्त्रं तत्रालक्ष्मीर्गदैः समम्। मारी सुदुस्तरासाध्या सर्वैर्देवासुरैरपि ॥५७॥
प्राग्वच्च नवभिः सूत्रैरष्टाष्टकपदं शिवे। कृत्वा तेष्वीशरक्षोदिगारम्भात्कालिकामनुम् ॥५८॥
विलिख्य यममन्त्रेण प्रोक्तबीजद्वयेन च। वेष्टयित्वा बहिश्चक्रं स्थापयेत्तदधोमुखम् ॥५९॥
एतच्च पूर्वचक्रोक्तफलकृत् परमेश्वरि। अनुक्तेष्वपि नामानि योजयेत् कोष्ठमध्यतः ॥६०॥
लवणोषणमेहाम्बुगृहधूमाग्निसंयुतम्। श्मशानाङ्गारनिम्बोत्थनिर्यासो विषमीरितम् ॥६१॥

ऊषणमूषर इति मनोरमाकारैर्व्याख्यातम्। मेहाम्बु प्रस्रवः। अग्निश्चित्रकम्। यन्त्ररचनाक्रमो यथा—तत्र प्राग्वत् नवभिर्नवभिः सूत्रैश्चतुःषष्टिकोष्ठकानि कृत्वा तेष्वीशानादिकं निर्ऋत्यादिकं चाभिचार्यः पुरुषश्चेदन्तः कालीविद्यां बहिर्यममन्त्रं च, स्त्री चेदन्तर्यममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च प्राग्वत् समालिख्य प्राग्वत् सबिन्दुयकाररेफाभ्यां संवेष्ट्य प्रोक्तक्रमेण प्रोक्तस्थानेषु स्थापनात् प्रोक्तफलसिद्धिर्भवतीति।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि यह यन्त्र सीसा पर, नये वस्त्र पर, शववस्त्र पर, खपड़े पर या पत्थर पर विष की स्याही से कौए के पँख से लिखकर चौराहे पर या कलिवृक्ष में स्थापित करने से शत्रुओं की मृत्यु करने वाला, उनमें व्याधि उत्पन्न करने वाला और उनके पुत्रों तथा स्त्रियों को विपत्ति प्रदान करने वाला होता है।

तन्त्रराज में कहा गया है कि जिस देश में यह यन्त्र रहता है, वहाँ बराबर दरिद्रता और बीमारी रहती है; साथ ही सभी देवताओं एवं दैत्यों से भी असाध्य महामारी फैलती है।

अन्य यन्त्र—पूर्ववत् नव-नव रेखाओं को खींचकर ६४ कोष्ठ बनावे। उसमें ईशान और नैर्ऋत्य से आरम्भ करके कालिका मन्त्र लिखे। यममन्त्र से उसे वेष्टित करे। उसे अधोमुख स्थापित करे। ऐसा करने से पूर्व चक्रोक्त फल प्राप्त होता है। अनुक्त होने पर भी मध्य कोष्ठ में नाम लिखे। लवणोषण, मेहाम्बु, गृहधूम, अग्नि (चित्रक), श्मशान अंगार एवं निम्बोत्थ निर्यास को विष कहा गया है।

तथा—

विद्याद्यवर्णजठरे साध्यमालिख्य तद्बहिः। अष्टच्छदेषु फड्वर्ज्यमालिखेदष्टवर्णकम् ॥६२॥
कर्णिकास्थं ततोऽब्जं च वेष्टयेन्मायया ततः। बहिः कुम्भं विदध्याच्च प्रोक्ताक्षरविधानतः ॥६३॥
एवमन्यैश्च नवभिर्विद्यावर्णैर्यथाक्रमम्। विदध्यान्नव यन्त्राणि दशानां च फलं शृणु ॥६४॥

यन्त्ररचनाक्रमो यथा—तत्राष्टदलकमलं सकर्णिकं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय कर्णिकायां विद्याद्यवर्णं साध्यनामगर्भं विलिख्य, तद्बहिर्मायाबीजेन संवेष्ट्याष्टदलेषु फड्वर्ज्यं द्वितीयाद्यष्टौ बीजानि विलिख्य तद्बहिर्मायया वेष्टयेत्। एवं द्वितीयबीजं कर्णिकायां विलिख्य द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं तृतीयबीजादिकं ज्ञेयम्। एवं दश यन्त्राणि भवन्ति। फलान्याह—

सर्वरक्षां जयं वश्यं नरनारीनृपादिनाम्। स्तम्भं लक्ष्मीयशोहेमवासांसि च समाप्नुयात् ॥६५॥

अनावृत्तान्यक्षराणि मन्त्रेष्वेकादशाथ तैः। स्वरभिन्नैर्भवेत्संख्या षट्सप्तत्या शतं स्मृतम् ॥६६॥
'अहरखचछक्षसतफट्' इति।

तैर्यन्त्रकरणं तेषां फलानि च यथाक्रमम्। शृणु वक्ष्यामि देवेशि साधकाभीष्टसिद्धये ॥६७॥
वृत्तयोर्मध्यगं कृत्वा पद्मं षोडशपत्रकम्। तन्मध्ये कर्णिकामध्ये शक्तिं साध्यसमन्विताम् ॥६८॥
परेषु षोडशार्णानि वेष्टयेत्तच्च मायया। वृत्तयोरन्तरा बाह्ये कुम्भं प्रोक्तं समालिखेत् ॥६९॥
एवमेकादशोक्तानि यन्त्राणि प्रथितानि वै।

अत्र सकर्णिकं षोडशदलपद्मं विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयं विधाय, कर्णिकायां साध्यनामगर्भं ह्रींकारं विलिख्य तन्मायया संवेष्ट्य षोडशदलेषु षोडशबीजानि विलिख्य, वृत्तद्वयान्तराले मायाबीजैः संवेष्ट्य प्राक्प्रोक्तप्रकारेण तद्बहिः कुम्भं विलिखेत्। एवमेकादश यन्त्राणि भवन्ति।

सकर्णिक अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनावे। कर्णिका में विद्या के आद्य वर्ण के गर्भ में साध्य नाम लिखे। उसे ह्रीं से वेष्टित करे। आठ दलों में द्वितीय वर्ण से आठ बीज लिखे। उसे बाहर से माया से वेष्टित करे। बाहर कुम्भ बनावे। उक्त अक्षर-विधान से इसी प्रकार अन्य नव यन्त्र विद्या वर्णों से बनावे। ये सभी दशो यन्त्र सर्वरक्षाकर, जयप्रद, नर-नारी-नृपादि को वशीभूत करने वाले, स्तम्भनकारक, लक्ष्मी-यश-सोना-वस्त्र प्रदान करने वाले होते हैं। त्वरिता मन्त्र के अक्षरों को अनावृत करने पर एकादश अक्षर होते हैं। स्वरभिन्न होने पर १७६ अक्षर होते हैं। ग्यारह अक्षर है—अ ह र ख च छ क्ष स त फट्। इनसे बने सभी यन्त्र साधकाभीष्टदायक होते हैं। वृत्त के मध्य में षोडश दल कमल बनावे। कमलकर्णिका के मध्य में साध्य नामगर्भित ह्रीं लिखे। उसे ह्रीं से वेष्टित करे। सोलह दलों में सोलह बीजों को लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल में ह्रीं से वेष्टित कर पूर्वोक्त प्रकार से उसके बाहर कुम्भ बनावे। इस प्रकार से ग्यारह यन्त्र बनते हैं।

तथा—

विनियोगानथैतेषां क्रमेण शृणु पार्वति ॥७०॥
प्रथमं गजरक्षाकृद् द्वितीयं हेमरक्षकम्। तृतीयं नृपरक्षायां चतुर्थं द्वन्द्वरक्षकम् ॥७१॥
पञ्चमं कुरुते राजवेश्मरक्षां तु सर्वतः। षष्ठं सचिवरक्षाकृत्सप्तमं पुररक्षकम् ॥७२॥
अष्टमे गृहरक्षा स्यात्सर्वेषामपि सर्वदा। फणिचोरग्रहादिभ्यो भयेभ्यः शत्रुतस्तथा ॥७३॥
नवमं सर्वरोगार्तौ सर्वेषामपि सर्वदा। उत्तारकं स्याद्देवेशि प्राक्प्रोक्तविधिना युतम् ॥७४॥
दशमं भूर्जगं कृत्वा प्राग्वत्सिक्थोत्थलिङ्गकम्। स्थापयेच्छीतले तोये घटादौ सविधेऽथ तम् ॥७५॥
पूजयेत्तानि च यजेत्स्पृशञ्जीवकरेण तम्। घोराभिचारकृत्यादिजातो दाहज्वरः क्षणात् ॥७६॥
विमुच्य तं प्रयोक्तारं नाशयेत्तत्क्षणात् प्रिये। एवमेतानि यन्त्राणि नामतः सर्वकार्यकृत् ॥७७॥
सर्वासामपि नित्यानां प्रातरेव समृद्धये। पूजादौ च बलिं दद्यात्षोडशार्णेन पार्वति ॥७८॥
इति त्वरितानित्याप्रयोगविधिः।

हे पार्वति! क्रमशः इनके विनियोग सुनो। प्रथम यन्त्र से हाथियों की रक्षा होती है। द्वितीय यन्त्र से सोने की रक्षा होती है। तृतीय यन्त्र नृपरक्षक होता है। चतुर्थ यन्त्र युद्ध में रक्षक होता है! पञ्चम राजवेश्म का रक्षक होता है। षष्ठ सचिव का रक्षक होता है। सप्तम पुर का रक्षक होता है। अष्टम से सर्प-चोर-ग्रह-भय-शत्रु से घर की रक्षा होती है। नवम यन्त्र से सभी रोग एवं दु:ख से सर्वदा रक्षा होती है। दशम यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर भात के लिङ्ग में स्थापित करके घड़े के शीतल जल में रखकर सविधि पूजन करे। जीवक से स्पर्श करके पूजन करे। इससे घोर अभिचार कृत्यादि से उत्पन्न दाहज्वर क्षण भर में आर्त को छोड़कर प्रयोग करने वाले को ही नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार इतने यन्त्र नाम से सभी कार्य करते हैं। सभी नित्याओं की पूजा प्रात:काल करने से और षोडशार्ण से बलि देने पर समृद्धि मिलती है।

कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः

अथ कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१५.२५)—

एवं नित्यार्चनं कुर्यान्नित्यहोमं घृतेन वै। प्रातः सलिलपानं च कुर्याद्विद्यात्मसिद्धये ॥१॥
चन्दनोशीरकर्पूरकस्तूरीरोचनान्वितैः। काश्मीरकालागुरुभिर्मृगस्वेदमयैरपि ॥२॥
आलिप्तगात्रो हृष्टान्तःकरणो मौनमन्वितः। चित्रभूषाम्बरस्रग्वी जपेद्विद्यां निशामुखे ॥३॥
पूजयेच्च शिवामेतैर्गन्धैः सर्वार्थसिद्धये। सर्वाभिरपि नित्याभिः प्रातर्मातृकया समम् ॥४॥
त्रिजप्ताभिः पिबेत्तोयं तथा वाक्सिद्धये शिवे। अन्यैरपि च मन्त्रैस्तैर्विद्याभिस्तत् प्रसिद्ध्यति ॥५॥
प्राग्वल्लक्षत्रयं जप्त्वा तद्दशांशं च तर्पयेत्। सुगन्धिसलिलैर्होमं तावत्त्रिमधुराप्लुतैः ॥६॥
पलाशपुष्पैर्विकचैरदुष्टैरविखण्डितैः। सिद्धविद्यः पुनः कुर्यात्काम्यकर्माणि साधकः ॥७॥
देव्या वर्णविभेदेन फलभेदाः समीरिताः।

कुलसुन्दरी नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि इस प्रकार कुलसुन्दरी का नित्य पूजन करके घी से हवन करे। प्रातः विद्या से मन्त्रित जल पीने से आत्मसिद्धि होती है। चन्दन, खश, कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, केसर, काला अगर, मृगस्वेद का लेप शरीर में लगाकर प्रसन्न मन हो मौनावलम्बन कर विचित्र भूषण वस्त्र माला पहन कर रात के प्रथम प्रहर में विद्या का जप करे। सर्वार्थसिद्धि के लिये उपर्युक्त गन्धों से शिवा का पूजन करे। इससे अन्य मन्त्र भी सिद्ध होते हैं। प्रातःकाल में सभी नित्याओं का इसी के समान पूजन करे। कुलसुन्दरी के मन्त्र के तीन बार जप से मन्त्रित करके जल पीने से वाक्सिद्धि मिलती है। अन्य नित्याओं के मन्त्र से भी यह सिद्ध होता है। पूर्ववत् तीन लाख जप करके दशांश तर्पण सुगन्धित जल से करे। त्रिमधुराक्त पलाश पुष्प से दशांश हवन करे। इस प्रकार सिद्ध विद्या से काम्य कर्म साधक करे। देवी के वर्णभेद से फल में भी भेद कहा गया है।

विद्यायास्त्रयीमयत्वविवरणम्

विद्यास्वरूपभेदांस्तु शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥८॥
त्रयीमयत्वं विद्यायास्तथा व्यञ्जनसङ्गमात्। वाच्यवाचकरूपस्य प्रपञ्चस्यामितात्मनः ॥९॥
कारणत्वं परात्मत्वममेयत्वं च वै क्रमात्। कथयामि शृणु प्राज्ञे विचित्रास्तव वैभवाः ॥१०॥
अकारादिः सामवेदो ऋग्वेदस्तु तदादिकः। यजुर्वेद इकारादिस्तेषां संयोगतः शुचिः ॥११॥
तन्निष्पत्तिं शृणु प्राज्ञे प्रोक्तं पूर्वापरक्रमात्। विलिखेद्योजयेत् पूर्वं शब्दशास्त्रानुसारतः ॥१२॥
गुणसंध्या ऋग्यजुषा ततस्तेनापरं तथा। वृद्धिसंध्या समायुञ्ज्यादित्युत्पन्नं शुचेर्वपुः ॥१३॥
तेन त्रयीमयी विद्या कार्यकारणयोगतः। आद्यक्षरप्रसूतानि सर्वाण्यन्यानि येन वै ॥१४॥
मध्यमार्णगतप्राणा व्यञ्जनादेस्तु मातृका। प्राग्वत् कारणकार्यत्वयोगाद्वाचकरूपता ॥१५॥
तदर्णकरसायोगाद्भूतादित्वेन वाच्यता। इति वाचकवाच्यत्वरूपा विश्वात्मतोदिता ॥१६॥
परारूपं तृतीयेन त्रिंशिकोक्तं त्रिकात्मकम्। एवमेषा विश्वमयी विद्यारूपमिदं शृणु ॥१७॥
शुचिराद्या वाक्स्वरूपा द्वितीया वह्निरीरिता। बिन्दुसर्गात्मनोरैक्यरूपा सा त्वावयोर्वपुः ॥१८॥
तेन बीजेन विश्वात्मरूपा सा सम्यगीरिता। वनं तृतीयमाख्यातं मायया स्वेन वा युतम् ॥१९॥
एषा त्रैपुरकन्दा स्यात् सङ्केतेन निगद्यते। ज्ञातृज्ञानज्ञेयदोषगुणतेजस्त्रयात्मिका ॥२०॥

'ऐईऔ' इति सङ्केतविद्या। त्रैपुरकन्दं त्रिपुरामन्त्राणां मूलमित्यर्थः। वनं तृतीयं औकारः। मायया विसर्गेण, स्वेन बिन्दुना वेति विकल्पः। तथा—

अस्यास्तु मध्यमे बीजे रसाप्राणनियोजनात्। वाच्यवाचकरूपात्मा प्रपञ्चस्य हि कारणम् ॥२१॥

तृतीये हृत्समायोगात् त्रिकविश्वात्मतोदिता। हंसहृद्योगतस्तेषु जङ्गमस्थावरात्मता ॥२२॥
'ऐंक्लींऔः, ऐंक्लींसौः, ह्सैंह्स्क्लींह्सौः'। एतासु विद्यासु कादिपञ्चत्रिंशद्व्यञ्जनानाम्।

विद्या का स्वरूपभेद जैसा है, उसे यथाविधि कहता हूँ। त्रयीमयत्व, व्यञ्जनसंगम से वाच्य-वाचकरूप अमित प्रपञ्च और अमेयत्व—ये तीन विद्या के स्वरूपभेद हैं। इनका मैं क्रमशः विवेचन करता हूँ। हे देवि! आपका वैभव विचित्र है। सामवेद और ऋग्वेद के आदि में 'अ' है। यजुर्वेद के आदि में 'इ'कार है। इसी से ऋग्वेद पवित्र है, उसकी निष्पत्ति पूर्वापर से इस प्रकार होती है। शब्दशास्त्र के अनुसार उसे पूर्वयोजित करके लिखा जाता है। गुणसन्ध्या ऋक्, यजु और अन्य में है। वृद्धिसन्ध्या के योग से आदित्य का पवित्र वपु उत्पन्न हुआ। इसी से त्रयीमयी विद्या कार्य-कारणयोग से हुई। आद्य अक्षर से प्रसूत अन्य सभी हैं। मध्यम अक्षरगत प्राण से व्यञ्जन मातृकायें हैं। पूर्ववत् कारण-कार्यत्व के योग से उनकी वाचकरूपता है। उस वर्ण के संयोग से भूतादित्व का वाचक है। वाचक वाच्यत्व रूप विश्वात्मा उदित है। परारूप तृतीय से तैंतीस व्यञ्जन हैं। इस प्रकार यह विश्वमयी विद्या है। इस पवित्र विद्या का प्रथम अक्षर वाक्स्वरूप (ऐ) है। द्वितीय वह्निरूप (ई) है। बिन्दु-विसर्गात्मक ऐंरूप आपका शरीर है। उन्हीं बीजों से वह विश्वात्मरूप सम्यक् प्रकार से कहा गया है। तृतीय का नाम वन (औ) है। माया से ये युक्त हैं। त्रिपुरामन्त्रों के मूल ये ही हैं। ज्ञात-ज्ञान-ज्ञेय के दोष-गुण-तेज से यह त्रयात्मिका है। ऐ ई ओ संकेत विद्या है।

रसा एवं प्राण का नियोजन इसके मध्यम बीज में होता है। वाच्य वाचकरूपता ही प्रपञ्च का कारण है। तृतीय हृत् के समायोग से त्रिक विश्वात्म उदित है। उसमें हंस-हृत् योग से उनकी जंगमता एवं स्थावरात्मता है। ऐं क्लीं औं, ऐं क्लीं सौः, ह्सैं हस्क्लीं ह्सौं—इन विद्याओं में कादि पच्चीस व्यञ्जन हैं।

तथा—

एकद्व्यादिसमायोगाद्व्यञ्जानानां तथा त्रिषु। ज्ञातुं न शक्यते संख्या विद्यानां परमेश्वरि ॥२३॥
त्रिषु त्रिबीजेषु।

एवं सानन्तविभवा तां निःशेषं वदेत्कथम्। तथापि भक्तसंत्राणहेतोः काञ्चन वच्मि ते ॥२४॥
आयुर्लक्ष्मीकीर्तिभोगसौन्दर्यारोग्यदायिकाः। ऐहिकामुष्मिकज्ञानमय्यः सङ्कल्पसिद्धिदाः ॥२५॥
विद्यायाः कुलसुन्दर्या हंसयोगात्त्रिषु क्रमात्। विजयाख्या महाविद्या विश्वसंत्राणतत्परा ॥२६॥
अत्र 'हैंह्क्लींहसौः' इति विजया।

हृत्समायोगतस्तेषु बीजाख्या विश्वचिन्मयी। द्वयोर्नियोजनात्तेषु जायते सावयोर्वपुः ॥२७॥
केवलसकारयोगाद्बीजाख्या। द्वयोर्हकारसकारयोर्योगाद्विश्वचिन्मयी।

हृदादिस्त्वन्मयी विद्या हंसादिर्मन्मयो मनुः। तेषु दाहसमायोगाद्विश्वाख्या विश्वविग्रहा ॥२८॥
अत्र मन्त्र इति विद्येति भेदद्वयम्। दाहो रेफः।

प्रत्येकं शक्तिपुटिता विद्या विश्वविमोहिनी।

मायाबीजपुटिता प्रत्येकम्।

खेचराम्बुरसोपेतमायाभ्यां पुटिता तु सा ॥२९॥
त्रिपुरामृतसंज्ञा सा सर्वाप्यायनविग्रहा।

ह्रींब्लेंह्रीं इति।

मायाद्या मोहिनी प्रोक्ता तन्मध्या क्षोभिणी मता ॥३०॥
तदन्ता क्लेदिनी ख्याता वातादिः स्यान्महोदया। त्रयोदशीति कथिता त्रिपुरानिधयः स्मृताः ॥३१॥

आसां क्रमविपर्यासजाता विद्याष्टसप्ततिः। तासां विधानं ते प्रोक्तमशेषं लक्षसागरे ॥३२॥

एक दो आदि के संयोग से एवं तीनों व्यञ्जनों के संयोग से विद्याओं की संख्या अनन्त है। इस प्रकार इस अनन्त विभव का वर्णन कैसे किया जा सकता है, तथापि भक्तों के त्राण के लिये कुछ को कहता हूँ। आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, भोग, सौन्दर्य, आरोग्यदायिका, ऐहिक-आमुष्मिक ज्ञानमयी, संकल्पसिद्धिदा कुलसुन्दरी विद्या के हंस योग से तीनों क्रम से विजया नामक महाविद्या विश्व के संत्राण में तत्पर है। 'हैं ह्क्लीं ह्सौः' विजया विद्या है। उनमें हत् के समायोग से बीजाख्या विद्या विश्वचिन्मयी है। सकार एवं हकार के योग से यह विद्या विश्वचिन्मयी होती है। ह्रदादि त्वन्मयी विद्या है। हंसादि मन्मयी विद्या (शिव) है। उनमें रेफ के संयोग से विश्वा विश्वविग्रहा है। प्रत्येक शक्तिपुटित विद्या विश्वविमोहिनी है। ह्रीं ब्लें ह्रीं से पुटित विद्या सर्वाप्यायन-स्वरूपा त्रिपुरामृता है। जिसके आदि में ह्रीं हो, उसे क्षोभिणी कहते हैं। अन्त में ह्रीं होने से क्लेदिनी होती है। त्रिपुरा निधि तेरह हैं। इनके कर्मविपर्यय से ७८ विद्यायें होती है। उनका विधान लक्षसागर में वर्णित है।

सम्पत्करीविद्यातद्ध्यानविधानादि

संपत्करीति काप्यस्ति विद्या याचिन्त्यवैभवा। तां वक्ष्ये शृणु देवेशि साधकाभीष्टसिद्धये ॥३३॥
प्राणो रसा मरुद्वह्निस्वयोगादाद्यमीरितम्। वातेन च चरस्वाभ्यां द्वितीयमपि पार्वति ॥३४॥
हंसहृद्वनमायाभिस्तृतीयं परमेश्वरि। एवं त्रिवर्णा सा विद्या विधानं चाथ कथ्यते ॥३५॥
कळआईं, अऐं, ह्सौः'।

तृतीयबीजेनाङ्गानि दीर्घस्वरयुजा क्रमात्। कुर्यात्कराङ्गयोः प्राग्वदित्थं ध्यायेच्च तां पराम् ॥३६॥
दाडिमीकेसरप्रख्यदेहवासोविभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नस्मेरवक्त्रकाम् ॥३७॥
रत्नाभिषेकसंभिन्नामष्टपत्राब्जमध्यगे। त्रिकोणे स्वस्तिकासीनां करुणानन्दमन्दिराम् ॥३८॥
प्रवालाक्षस्रजं रत्नचषकं रत्नपूरितम्। पुस्तकं च वरं हस्तैर्दधानां सर्वमङ्गलाम् ॥३९॥
अकारादिसकारान्तषोडशत्रयकल्पिते। कुलासने हळक्षार्णमध्ये तद्विद्ययान्विते ॥४०॥
समावाह्यार्घ्यसङ्कल्पपूर्वं तामर्चयेत्क्रमात्। मध्ये त्रिकोणकोणेषु रतिं प्रीतिं मनोभवाम् ॥४१॥
अग्रादिसव्यगास्तद्वदष्टपत्रेषु मातरः। चतुरस्रे लोकपालान् प्राग्वच्छक्तीः समर्चयेत् ॥४२॥
विधानमष्टसप्तत्या इति सम्यक्समीरितम्। बलिद्वयं च होमं च प्राग्वदन्यत्समुन्नयेत् ॥४३॥
चतुर्गुणचतुर्थांशस्वसमाननियोजितैः। ब्राह्मीरसवचादुग्धैः शृतं सर्पिस्त्रिभिर्दिनैः ॥४४॥
सयन्त्रं मातृकाविद्याजप्तं त्वयुतमादरात्। दिनशो विलिखेत्प्रातरब्दान्मूको भवेत्कविः ॥४५॥
शिवोऽम्बिका कुमारश्च विधिर्विष्णुस्तथा रमा। कुबेरो रविचन्द्रारज्ञगुरुसितसौरयः ॥४६॥
वारेशास्तेषु वारेषु तांस्तद्दिनजविद्यया। नामसप्ताक्षरीयुक्त्या पूजयेत्तर्पयेद्धुनेत् ॥४७॥
वर्णौषधिसमुत्थेन भस्मना मन्त्रितेन तु। मातृकान्याससहितं स्पृशेद्रक्षाकृतेन तु ॥४८॥
विशेषतो महीपानामार्तानाञ्च विधिं चरेत्। तेन ते सुखिनो भूयुः सान्वया यावदायुषम् ॥४९॥
क्रूरेषु व्याधिषु प्राप्तेष्वभ्यर्च्यैवं तु मण्डले। नवकोष्ठे नव प्रोक्तान् राहुकेतुसमन्वितान् ॥५०॥
मध्येन्द्रयमपाशीन्दुवह्निरक्षोऽनिले शिवे। कोष्ठे तांस्तैर्जपेत्सद्यो मुक्तरोगः सुखी भवेत् ॥५१॥
ग्रहार्तिषु रिपुक्लेशे दुर्भिक्षे त्रिविधे तथा। उत्पन्ने समरोद्योगे कुर्यादुक्तार्चनादिकम् ॥५२॥
संपूज्य तद्विदां सम्यग्दद्याद्गां स्वर्णमम्बरम्। तेन सर्वापदुन्मुक्तः सुखी जीवति भूतले ॥५३॥

सम्पत्करी विद्या अचिन्त्य वैभवा है। साधकों की अभीष्ट-सिद्धि के लिये इसे कहता हूँ। यह विद्या है—कळआईं अऐं ह्सौः। सां सीं सूं सैं सौं सः से इसका षडङ्ग न्यास करे। इन्हीं से करन्यास भी करके परा देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

दाडिमीकेसरप्रख्यदेहवासोविभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नस्मेरवक्त्रकाम्।।
रत्नाभिषेकसंभिन्नामष्टपत्राब्जमध्यगे। त्रिकोणे स्वस्तिकासीनां करुणानन्दमन्दिराम्।।
प्रवालाक्षस्रजं रत्नचषकं रत्नपूरितम्। पुस्तकं च वरं हस्तैर्दधानां सर्वमङ्गलाम्।।
अकारादिसकारान्तषोडशत्रयकल्पिते। कुलासने हळक्षार्णमध्ये तद्विद्ययान्विते।।

अर्घ्य स्थापित करके संकल्प करके देवी का अर्चन करे। मध्य में त्रिकोण के कोनों में रति-प्रीति-मनोभवा की पूजा करे। अपने अग्र से वामावर्त अष्ट पत्रों में माताओं की पूजा करे। चतुरस्र में लोकपालों की शक्तियों का अर्चन करे। अठहत्तर विद्याओं का विधान सम्यक् रूप में कहता हूँ। बलिद्वय और होम के साथ पूर्ववत् अन्य क्रिया करे। चौगुना चतुर्थांश स्वसमान ब्राह्मी रस, वचा, दूध, क्वाथ, गोघृत से तीन दिनों तक पूजा करे। एक लाख सयन्त्र मातृका विद्या का जप करे। तदनन्तर दिन में प्रात: यन्त्र को लिखे तो एक वर्ष में गूंगा कवि हो जाता है। शिव भी अम्बिका, कुमार, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, कुबेर, सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के वारेशों को उनके वारों में उस दिन की विद्या के साथ सप्ताक्षरी नाम से युक्त कर पूजन-तर्पण-हवन करे। मन्त्रित वर्णौषधि भस्म से मातृका न्याससहित रक्षा के लिये आर्त का स्पर्श करे। विशेषत: आर्त राजा के लिये यह विधि करे। इससे वे आजीवन सुखी रहते हैं। क्रूर व्याधियों के होने पर अर्चन नव कोष्ठों के मण्डल में नवो ग्रहों का करे। मध्य, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, अग्नि, नैर्ॠत्य, वायव्य, ईशान कोष्ठों में उनके जप से तुरन्त रोगमुक्त होकर सुखी हो जाता है। ग्रहपीड़ा, शत्रुकष्ट, दुर्भिक्ष—इन तीनों के उत्पन्न होने पर और युद्ध के उद्योग में उक्त अर्चनादि करे। पूजन करके आचार्य को गाय, सोना, वस्त्र दान करे। इससे सभी आपदाओं से मुक्त होकर पृथ्वी पर सुखी होकर जीवित रहता है।

ब्रूहि मे मातृकान्यासं तद्यन्त्रं परमेश्वर। कथयामि द्वयं तेऽद्य वक्ष्ये तत्पटलेऽखिलम्।।५४।।
ह्रस्वदीर्घस्वरद्वन्द्वपुटितैः षण्ठवर्जितैः। कुर्यादङ्गानि षड्वर्गैः पञ्च पञ्चदशाक्षरैः।।५५।।
स्वरेषु मध्यतः प्रोक्ताश्चत्वारः षण्ठवर्जिताः। कराङ्गयोर्विधायेत्थमादिक्षान्ताक्षराणि वै।।५६।।
भाले वक्त्रावृतौ नेत्रश्रोत्रनासाकपोलतः। ओष्ठदन्तशिरोजिह्वास्वेकशो विन्यसेत्स्वरान्।।५७।।
करयोः पादयोर्मूलमध्यसन्धिष्वथाग्रतः। विन्यसेच्च चतुर्वर्गं पञ्चमं पार्श्वपृष्ठतः।।५८।।
नाभौ हृदि च विन्यस्य व्यापकान् दशधातुषु। त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रान्तगामिषु।।५९।।
प्राणशक्त्यात्मसु तथा न्यसेदेवं समाहितः। हृदयस्पर्शिनां तेषां स्मरन् धातुषु विन्यसेत्।।६०।।
अथ बाहुद्वये स्कन्धयुगे च त्रिककक्षयोः। हृदयाधस्तथा पादजठरे वदने न्यसेत्।।६१।।
वृत्तद्वयावृत्तं चाष्टपत्रमब्जं महीपुरम्। विधाय विलिखेन्मध्ये हंसहृद्वनशक्तिकम्।।६२।।
कूटं स्वरान् केसरेषु वर्गान्पत्रेषु चालिखेत्। पञ्चपञ्चाक्षरोपेतान् दावाम्बु दिग्विदिक्षु च।।६३।।
स्वरेष्वपुनरुक्तानि पञ्चान्यानि तु पञ्च वै। सव्यञ्जनाव्यञ्जनत्वभेदतोऽभूद् द्विरन्वयः।।६४।।
सवाताग्निधरास्वेन शक्तिस्तत्पञ्चकं भवेत्। अन्यान्येकादश शिवे सन्धिमात्रादिसम्भवाः।।६५।।

पार्वती ने कहा कि हे परमेश्वर! मातृका न्यास एवं यन्त्र को कहिये। शिव ने कहा कि आज दोनों को कहता हूँ, जिसे पहले भी कह चुका हूँ। ऋ ॠ ऌ ॡ चारो को छोड़कर शेष स्वरों के ह्रस्व-दीर्घ से पुटित षड्वर्ग में पाँच-पाँच अक्षरों से अंगन्यास एवं करन्यास करे। जैसे—अं कं खं गं घं ङं आं, इं चं छं जं झं ञं ईं इत्यादि और अन्त में य र ल व श ष स ह ल क्ष' दश से न्यास करे। ललाट, मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासा, कपोल, ओष्ठ, दन्त, शिर, जीभ में स्वरों से न्यास करे। हाथों और पैरों के मूल, मध्य, सन्धि, अंगुलिमूल, अंगुल्यग्र में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग का न्यास करे। पञ्चम वर्ग पवर्ग से पार्श्व, पीठ, नाभि, हृदय में न्यास करे। शेष दश से धातु, त्वचा, असृङ्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, प्राणशक्ति एवं आत्मा में न्यास करे। धातुओं का न्यास हृदय को स्पर्श करके करे। दोनों बाहुओं में, दोनों कन्धों में, त्रिक में, कक्ष में, हृदय के नीचे, पैर में, उदर में, मुख में, वृत्तद्वय आवृत अष्टपत्र कमल भूपुर में न्यास करे। यन्त्र मध्य में हंस हृद् वनशक्ति लिखे। कूट स्वरों को केसर में लिखे। पत्रों में वर्णों को लिखे। पाँच अक्षरों से युक्त दावाम्बु दिशा-विदिशाओं में लिखे। पुनरुक्त स्वरों

में पाँच-पाँच सव्यञ्जन-अव्यञ्जन भेद से दोनों अन्वय होता है। सवातारिनधरास्वेन = अ, इ, उ, विन्दु, विसर्ग—ये शक्तिपञ्चक हैं। अन्य ग्यारह सन्धि-मात्रादिसम्भव हैं।

यन्त्रविनियोग:

एतद्यन्त्रस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा प्रयोजयेत्। प्रातर्मूर्ध्नि स्मरेदिन्दुबिम्बस्थं सर्वसम्पदे ॥६६॥
अभिषेकाद् धारणाच्च पूजनाल्लोहकल्पिते। स्थापनाद् गृहदेशादौ यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥६७॥
एतद्यन्त्रस्य मध्यस्था देवता: सकला अपि। सन्निधिं फलदानं च साधकानां वितन्वते ॥६८॥
विद्यां तां तु नरो मूर्खो जडो मूकोऽतिपातकी। नित्यशो जपपूजाद्यैः काले मत्समतां व्रजेत् ॥६९॥
जिह्वायामक्षराण्येतान्यसकृद्भावयन् धिया। प्रविष्टो विद्वद्गोष्ठीषु पूज्यते वाग्मिभिर्जनैः ॥७०॥
मूर्ध्नीन्दुबिम्बमध्यस्थं सुधावर्षविधायिनम्। विभावयन्निति मनुं जपेदेकाग्रमानसः ॥७१॥
मण्डलात्कवितासिद्धि: सर्वभाषामयी भवेत्। वादादिषु तु सर्वत्र देवतात्मा जयी भवेत् ॥७२॥
यन्त्राणि नित्याविद्याया: समान्येकात्मयोगतः। तेनात्मनोक्तानि शिवे सर्वसिद्धिकराणि वै ॥७३॥
षोडशस्वपि विद्यासु यन्त्रादन्यत्समीरितम्। प्रयोगजातमन्योन्यं विदध्यादैक्ययोगतः ॥७४॥
वृत्तयुग्मं षडस्रं च कृत्वा मध्याद्यमध्यतः। नामालिख्य बहिः षट्सु तत्त्रयं स्वेन मायया ॥७५॥
विलिख्य मातृकां वृत्ते कृत्वा तद्धारणान्मुखे। जिह्वायां भावनात् सर्वगोष्ठीष्वग्रं विगाहते ॥७६॥
इति कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः।

इस यन्त्र के मध्य में साध्य नाम लिखकर प्रयोग करे। प्रात:काल मूर्धा में चन्द्रबिम्ब में स्थित देवी का ध्यान करने से सर्व सम्पदा मिलती है। अभिषेक करने और उसे धारण करने एवं लौह-निर्मित के पूजन से तथा गृह-देश आदि में स्थापित करने से यह यन्त्र सर्वार्थ-सिद्धिप्रद होता है। इस यन्त्र के मध्य में सभी देवताओं का वास है। ये साधकों को फल प्रदान करते हैं। इस विद्या का जप करने वाला मनुष्य यदि मूर्ख, जड़, गूंगा, पापी भी हो तो समय पर मुझ शिव के समान हो जाता है। विद्या के अक्षरों की अपने जीभ में भावना करके विद्वानों की गोष्ठी में जाने पर अपनी बुद्धि से वह विद्वानों द्वारा पूज्य होता है। मूर्धा स्थित चन्द्र-विम्ब में देवी की सुधा-वर्षा करते हुए भावना करके एकाग्र मन से मन्त्र जप करे। ४० दिनों तक ऐसा करने से साधक समस्त भाषाओं में कविता करने लगता है। वाद-विवाद में सर्वत्र वह देवतात्मा विजयी होता है। नित्या विद्या के सभी यन्त्र को अपनी आत्मा स्वरूप मानने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। सोलह नित्या विद्या के यन्त्रों का स्मरण एक साथ करने से प्रयोग सफल होता है। दो वृत्त सहित षडस्र के मध्य में नाम लिखे। बाहर छ: कोनों में उन तीनों को ह्रीं के साथ लिखकर वृत्त मध्य में मातृकाओं को लिखकर यन्त्र बनावे। उसे मुख में धारण करके जिह्वा में स्थित होने की भावना करे तो साधक सभी गोष्ठियों में अग्रगण्य होता है।

नित्यानित्याप्रयोगविधि:

अथ नित्यानित्याप्रयोगविधि:। श्रीतन्त्ररात्रे (१६ प०, २१ श्लोक)—
विदध्यात् साधनं प्राग्वद्वर्णलक्षं पयोव्रतः। त्रिस्वादुसिक्तैररुणैरम्बुजैर्हवनं तथा ॥१॥
जपतर्पणहोमार्चासेकसिद्धमनुर्नरः। कुर्यादुक्तान् प्रयोगांश्च न चेत्तद्धातुदेवताः ॥२॥
प्राणांस्तस्य ग्रसन्त्येव कुपितास्तत्क्षणं शिवे। अनया विद्यया लोके यन्न साध्यं न तत्क्वचित् ॥३॥

नित्यानित्या प्रयोग विधि—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि दुग्धाहारी रहकर साधन करे और पूर्ववत् वर्ण लक्ष विद्या का जप करे। त्रिमधुराक्त लाल कमल से हवन करे। जप-तर्पण-हवन-अर्चन-अभिषेक से सिद्ध मन्त्र का प्रयोग साधक करे; अन्यथा देवता प्रयोक्ता का नाश कर देते हैं। वे क्रुद्ध होकर उसके प्राणों को खा जाते हैं। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे इस मन्त्र के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

नित्यानित्यायन्त्रतत्फलानि

विद्याक्षराणि सप्त स्युस्तैः प्राग्वत्स्वरसंयुतैः। शतं द्वादशसंयुक्तं तैर्यन्त्राणि वदामि ते ॥४॥
वृत्तद्वयान्तः षट्कोणं तदन्तर्वृत्तयुग्मकम्। विधाय मध्ये मायास्थमेकमक्षरमाख्यया ॥५॥
बहिः षडालिखेत्षट्सु वृत्तयोर्भूतमातृकाम्। कृत्वान्तर्बहिरेवं स्युः क्रमाद्यन्त्राणि षोडश ॥६॥ इति।

अस्यार्थः—अस्या अनावृत्ताक्षराणि सप्त 'हसकलरडअ' इति। ते षोडशस्वरयुक्ता द्वादशोत्तरशतं वर्णा ११२ भवन्ति। प्रथमतो वृत्तद्वयं कृत्वा तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय मध्ये साध्यनामगर्भमायाबीजे एकमक्षरं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले कर्मानुसारीणि तत्तद्भूताक्षराणि प्राग्वद्विलिख्य, तद्बहिः षट्सु कोणेषु षडक्षराणि विलिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैर्वेष्टयेत्। एवं षोडश यन्त्राणि भवन्ति।

विद्या के अनावृत्त अक्षर सात हैं। इन्हें सोलह स्वरों से युक्त करने पर संख्या ११२ होती है। उनसे निर्मित यन्त्रों को कहता हूँ। अनावृत्त अक्षर 'ह स क ल र ड अ' हैं। पहले दो वृत्त बनाकर उसके बाहर षट्कोण बनावे, उसके बाहर दो वृत्त बनावे। यन्त्र मध्य में साध्य नाम गर्भ ह्रीं में एक बीजाक्षर लिखे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में कर्मानुसार भूत वर्णों को लिखे। उसके बाहर षट्कोण के कोणों में शेष छः अक्षरों को लिखे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृका वर्णों को लिखकर वेष्टित करे। इस प्रकार से सोलह यन्त्र बनते हैं।

नित्यानित्यायन्त्रफलानि

फलान्याह—

प्रथमेन धृतेन स्यादौदरव्याधिसंहतिः। द्वितीयेन शिरोरोगा नश्यन्ति परमेश्वरि ॥७॥
तृतीयेनाक्षिरुक्शान्तिः श्रोत्रजानां परेण तु। पञ्चमेन भुजारोगाः प्रयान्त्यूर्ध्वेन पादजाः ॥८॥
सप्तमेनान्तराधिस्था धृतेन निधनाश्रयाः। धृतेनाष्टमयन्त्रेण ज्ञानेन्द्रियगता गदाः ॥९॥
परेण कर्मेन्द्रियगा दशमेनानिलोद्भवाः। एकादशेन पित्तोत्था द्वादशेन कफोद्भवाः ॥१०॥
त्रयोदशेन दोषाणां सन्निपातसमुद्भवाः। प्रयान्ति विलयं सद्यो यन्त्राणां शक्तिवैभवात् ॥११॥
चतुर्दशेन यन्त्रेण भूतप्रेतपिशाचकाः। प्रयान्ति भीताः क्षणतः सर्वेऽन्येऽपि ग्रहाः शिवे ॥१२॥
तत्परेण महारोगाः धृतेनाष्टौ न बाधकाः। षोडशेन धृतेन स्यादायुरारोग्यमीश्वरि ॥१३॥
यन्त्राणि षोडशैतानि धारयेच्चाधिशान्तये। सर्वेषां प्राणिनां सम्यगनुक्तेषु गदेष्वपि ॥१४॥
सर्वत्र यन्त्रधरणं साभिषेकं सदक्षिणम्। सवन्दनं सविश्वासं फलत्येवान्यथान्यथा ॥१५॥

इन सोलह यन्त्रों के फल इस प्रकार होते हैं—प्रथम यन्त्र के धारण से उदररोगों का नाश होता है। द्वितीय यन्त्र के धारण से शिर के रोगों का नाश होता है। तीसरे यन्त्र से आँख के रोग और चौथे से कान के रोग नष्ट होते हैं। पाँचवें से भुजारोग और छठें से पैरों के रोग नष्ट होते हैं। सातवें के धारण से आन्तरिक आधि नष्ट होती है। आठवें के धारण से ज्ञानेन्द्रियों के रोग नष्ट होते हैं। नवें यन्त्र के धारण से कर्मेन्द्रियों के रोगों का नाश होता है। दसवें से वायुजनित रोग ठीक होते हैं। ग्यारहवें से पित्तजनित रोग और बारहवें से कफजनित रोग नष्ट होते हैं। तेरहवें यन्त्र से त्रिदोषजनित सन्निपात का नाश होता है। यन्त्र-शक्ति का वैभव ऐसा ही है। चौदहवें यन्त्र के धारण से भूत-प्रेत-पिशाच क्षण भर में भयभीत होकर भाग जाते हैं और कोई ग्रहबाधा नहीं होती। पन्द्रहवें यन्त्र के धारण से महारोगों का नाश होता है। सोलहवें यन्त्र के धारण करने से आयु एवं आरोग्य प्राप्त होते हैं। इन सभी सोलह यन्त्रों को आधि-शान्ति के लिये धारण करना चाहिये। सभी प्राणियों को यहाँ न कहे गये रोगों में भी यन्त्र धारण करना चाहिये। साभिषेक सदक्षिण सवन्दन विश्वास के साथ इस यन्त्र को धारण करना चाहिये; अन्यथा फल नहीं मिलता।

वज्रयन्त्रनिर्माण-तत्फलानि

कुर्विहीना तु सा विद्या पञ्चकूटाभिधा शिवे। वाक्सिद्धिमन्यत्सकलं कुरुते त्वभिदान्ययोः ॥१६॥
तद्विद्याकूटभेदाः स्युर्विंशत्या शतसप्तकम्। तैर्वज्रयन्त्रनिर्माणं फलानि च शृणु प्रिये ॥१७॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्राण्यष्टादश क्षिपेत्। तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते नवाशीतिशतद्वयम् ॥१८॥
प्रागवत्तत्कोणकोष्ठानि षट्त्रिंशन्मार्जयेत्क्रमात्। मध्ये वज्रं यथा भूयात्तथा कुर्यात्समन्ततः ॥१९॥
सपञ्चचत्वारिंशच्च शतकोष्ठैस्तु वज्रकम्। त्र्यस्राणि चत्वार्यग्राणि चतुष्कोष्ठैस्तु पूर्ववत् ॥२०॥
विधाय तस्य मध्याधः कोष्ठमारभ्य संलिखेत्। प्रादक्षिण्यप्रवेशेन कूटांस्तस्याद्यखण्डजान् ॥२१॥
मध्येऽवशिष्टनवके वामदक्षत्रयद्वये। प्रतिलोमानुलोमात्मविद्याद्वयमथालिखेत् ॥२२॥
शिष्टेषु त्रिषु कोणेषु साधकाख्यां तदूर्ध्वगे। कर्म मध्येऽधरे साध्यमालिखेदपि सर्वतः ॥२३॥
चतुस्त्रिकोणमध्यस्थं द्विरेखाभिर्नवीकृतम्। मध्यवद्विलिखेत्तेषु वज्रयन्त्रमितीरितम् ॥२४॥
एवमन्यैः पञ्चभिश्च खण्डैः पञ्च प्रकल्पयेत्। इति षड्वज्रयन्त्राणि प्रोक्तानि क्रमतः शिवे ॥२५॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्चाष्टादशाष्टादश रेखा विलिख्य, समान्तरालानि नवाशीत्युत्तरशतद्वय (२८९) कोष्ठानि कृत्वा, चतुर्दिक्षु षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशत्कोष्ठानि गुरूक्तयुक्त्या मार्जयित्वा पञ्चचत्वारिंशदुत्तरशत (१४५) कोष्ठात्मकं वज्राकारं निष्पाद्य, चतुर्दिक्षु कोष्ठचतुष्टयं कोष्ठचतुष्टयं मार्जयित्वा त्रिकोणानि विधायावशिष्टेष्वेकोनत्रिंशदुत्तरशत (१२९) कोष्ठेषु मध्याधः कोष्ठमारभ्याद्यकूटखण्डान् विंशत्युत्तरशत (१२०) भेदान् विलिख्य, मध्येऽवशिष्टनवकोष्ठेषु वामापार्श्वस्थत्रिषु कोष्ठेषु प्रतिलोमविद्यां त्रिधा विलिख्य दक्षपार्श्वस्थकोष्ठत्रये तथैवानुलोमविद्यां विलिख्य, मध्यस्थकोष्ठत्रये ऊर्ध्वकोष्ठे साधकनाम तदधः कोष्ठे कर्म तदधः कोष्ठे साध्यनाम विलिख्य, चतुर्दिक्षु चतुस्त्रिकोणेषु द्विद्विरेखायोगेन नव नव त्रिकोणानि विलिख्य तेषु तेषु मध्यनवकोष्ठवद्विलिखेत्। एवं षट्कूटखण्डजैः षड्वज्रयन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः। तथा—

लोहत्रयकृते पट्टे शिलायां वा चतुर्षु वा। पट्टे वा फलकायां वा षट्कं षट्सु प्रकल्पयेत् ॥२६॥

चतुर्षु वेति लोहत्रयं शिला च।

फलकापट्टयोः पूजां कुर्यान्नित्यश एव तु। इतराणि तु संस्थाप्य यजेत्तत्रैव तां शिवाम् ॥२७॥
तत्स्थापनप्रदेशे तु विदध्यान्मण्डपं शुभम्। नवहस्तायामततं पताकातोरणान्वितम् ॥२८॥
फलपुष्पवितानाद्यैरुपेतं परिकल्पयेत्। उत्सेधायामविस्तारहस्तां वेदीं च मध्यतः ॥२९॥
एकं चेत्षट्कमथ चेत्कुर्याद्विद्यादिकं तथा। ईशप्राग्वह्निरक्षोम्बुवाय्वादीनां यथाक्रमम् ॥३०॥
प्रथमं राक्षसे त्वन्यान्यन्येषूक्तक्रमेण वै। निवेश्य गन्धपुष्पाद्यैर्नृत्यगीतादिभिस्तथा ॥३१॥
समाराध्यैवमेवं तु त्रिदिनं प्रोक्तशक्तिभिः। हुत्वा जपित्वा जीवोच्चे भानूच्चे वा स्थिरोदये ॥३२॥
स्ववामगे भूम्युदये संस्थाप्य परमेश्वरि। देव्यात्मा तच्छिलाभिस्तु दृढमाबध्य तत्र वै ॥३३॥
देवीं षड्भिर्वृतां ताभिर्डाकिन्यादिभिरम्बिके। मूर्तिसप्तकमुत्पाद्य प्रतिष्ठाप्य समर्चयेत् ॥३४॥
नित्यशस्तत्पुरो विद्याभजनं वापि कारयेत्। यत्र तत्र गदालक्ष्मीरिपुग्रहपिशाचकाः ॥३५॥
दुर्भिक्षक्षुद्रकर्मोत्थपीडाः कृत्याः परेरिताः। न कदाचित्सम्भवन्ति विद्यायन्त्रानुभावतः ॥३६॥
मङ्गलान्येव जायन्ते सर्वेषां सर्वतः सदा। धार्मिकाश्चैव राजानः पूर्णसप्ताङ्गसंयुताः ॥३७॥
फलकापट्टयोः क्लृप्तपूजातो निजमन्दिरे। वाञ्छितं समवाप्नोति मण्डलान्मासतोऽपि वा ॥३८॥

कुर्वीरहित इस विद्या को पञ्चकूटा कहते हैं। इससे वाक्सिद्धि होती है। इस विद्या के कूटभेद ७२० हैं। उनसे यन्त्र-निर्माण और उसके फल सुनो।

वज्रयन्त्र निर्माण—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर अट्ठारह-अट्ठारह रेखायें समान दूरी पर खींचे। इससे २८९ कोष्ठ बनते हैं। चारो दिशाओं में छत्तीस-छत्तीस कोष्ठों को मिटा दे अर्थात् कुल १४४ कोष्ठों को मिटा दे। शेष १४५ कोष्ठों से वज्राकर यन्त्र बनावे। इनमें से चारो दिशाओं में चार-चार कोष्ठों को त्रिकोणाकार में मिटा दे। शेष १२९ कोष्ठों में मध्य के नीचे वाले कोष्ठ से आरम्भ करके आद्य कूट के १२० भेदों को लिखे। मध्य के अवशिष्ट नव कोष्ठों में से वाम पार्श्व के तीन कोष्ठों में प्रतिलोम विद्या को तीन बार लिखे। दक्ष पार्श्व के तीन कोष्ठों में उसी प्रकार अनुलोम विद्या को लिखे। मध्य के तीनों कोष्ठों में से ऊपरी कोष्ठ में साधक का नाम, उसके नीचे वाले कोष्ठ में कर्म और उसके नीचे वाले कोष्ठ में साध्य का नाम लिखे। चारो दिशाओं के त्रिकोणों में दो-दो रेखा के योग से नव त्रिकोण बनाकर उनमें मध्य नव कोष्ठों के समान अक्षरों को लिखे। इसी प्रकार षट्कूट खण्ड से शेष पाँच से पाँच वज्र यन्त्र बनावे। इस प्रकार छः वज्रयन्त्र बनते हैं।

त्रिधातु के पत्र पर, शिलापट्ट पर या चारो पट्टों पर या फलक पर छहों यन्त्रों को छः पर बनावे। फलकपट्ट पर नित्य पूजा करे। अन्यों को स्थापित करके उसमें शिवा का पूजन करे। उसके स्थापन प्रदेश में शुभ मण्डप बनावे। मण्डप नव हाथ विस्तृत एवं पताका-तोरण से युक्त हो। फल-पुष्प-वितानादि से उसे सजाये। मध्य में एक हाथ लम्बी-चौड़ी-ऊँची वेदी बनावे। एक या षट्कमय यन्त्र ईशान अग्नि नैर्ऋत्य पश्चिम वायव्य में यथाक्रम बनावे। प्रथम नैर्ऋत्य में पूजन करे, तब अन्यों में क्रमशः पूजन करे। गन्ध-पुष्पादि से पूजा के बाद शक्ति के अनुसार नृत्य-गीत से आराधना तीन दिनों तक करे। हवन करे, जप करे। गुरु के उच्च होने पर, सूर्य के उच्च होने पर या स्थिरोदय में अपने बाँयें ऊँची भूमि पर यन्त्र को स्थापित करे। देव्यात्मा को उस शिला में दृढ़ता से बाँधे। डाकिन्यादि छः शक्तियों से घिरी देवी की सात मूर्तियाँ बनाकर प्राणप्रतिष्ठा करे, उनका अर्चन करे। उस विद्या के सम्मुख नित्य भजन करे। ऐसा जहाँ होता है, वहाँ रोग, दरिद्रता, शत्रु, ग्रह, पिशाच, अकाल, क्षुद्रकर्मोत्थ पीड़ा, कृत्या-बाधा आदि इस विद्यायन्त्र के प्रभाव से कभी नहीं होते। सबों का सर्वत्र सर्वदा मंगल होता रहता है। धार्मिक राजा पूर्ण सप्ताङ्ग संयुक्त फलक पट्ट पर अंकित यन्त्र को यदि अपने महल में स्थापित कर पूजा करे तो उसे चालीस दिनों में या तीस दिनों में वांछित फल मिलता है।

डाकिन्यादीनां देहे स्थाननिरूपणम्

आसां देहस्थितिं वक्ष्ये शृणु सर्वार्थदायिनीम्। सुषुम्नामध्यसंस्थेषु षडाधाराम्बुजेषु ताः ॥३९॥
तिष्ठन्ति प्राणिनां देव्यः सिद्ध्यन्ति ज्ञानपूजिताः। बहिश्च मण्डले पूजां निग्रहानुग्रहात्मिकाम् ॥४०॥
विशुद्धाख्ये कण्ठदेशे षोडशस्वरपत्रके। धूम्रवर्णाम्बुजे देवीं डाकिनीं तत्समाकृतिम् ॥४१॥
शक्तिभिः स्वररूपाभिरावृतां तत्र पूजयेत्। तथा सर्वज्ञतासिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥४२॥
अनाहताख्ये हृद्देशे सिन्दूरारुणपङ्कजे। राकिणीं द्वादशदले कादिठान्ताक्षरात्मभिः ॥४३॥
शक्तिभिः पूजयेन्नित्यं कीर्त्यायुःश्रीधनाप्तये। मणिपूरकसंज्ञे च नाभिस्थे दशपत्रके ॥४४॥
इन्द्रनीलनिभे डादिदशवर्णात्मशक्तिके। लाकिनीं पूजयेद्देवीं विजयश्रीसमृद्धये ॥४५॥
ध्वजमूले समस्तापत्तारणायेष्टसिद्धये। वादिषड्वर्णशक्तीभिरावृतां काकिनीं यजेत् ॥४६॥
स्वाधिष्ठानाह्वये पद्मे बालार्कत्विषि षड्दले। आधाराख्ये चतुष्पत्रे सुवर्णाभे सरोरुहे ॥४७॥
वादिसान्तार्णशक्तीभिरावृतां शाकिनीं यजेत्। पायुध्वजान्तरा त्र्यस्रमध्ये तेजःसमन्विताम् ॥४८॥
आज्ञाख्येऽब्जे भ्रुवोर्मध्ये द्विदले शुद्धविग्रहे। सेवितां हक्षशक्तिभ्यां हाकिनीं पूजयेत्तथा ॥४९॥
त्रिकालज्ञानतः सर्वचित्ताकर्षणकारिणी। विश्वसृष्टिस्थितिध्वंसशक्तिदामप्ययत्नतः ॥५०॥
उक्तक्रमविपर्यासो निग्रहोऽन्तर्बहिस्तथा। पूजनं सर्वदुःखार्तिशमनं संपदास्पदम् ॥५१॥

सर्वार्थदायिनी देवी की देह में स्थिति सुनो। सुषुम्ना मध्य में स्थित छः पद्मों में वह रहती हैं और ज्ञान से पूजित होने पर सिद्ध होती हैं। बाहरी मण्डल में निग्रहात्मक अनुग्रहात्मक पूजन होता है। कण्ठ देश के विशुद्धि चक्र के स्वर वर्णरूप सोलह दलों में धूम्र वर्ण के पद्म में उसकी आकृति वाली डाकिनी देवी रहती है। वह अपने समान शक्तियों से घिरी रहती

है। वहाँ उसकी पूजा करे। इससे सर्वज्ञता की सिद्धि होती है। इसमें संशय नहीं है। हृदय देश में सिन्दूर के समान लाल रंग के द्वादश दल अनाहत पद्म में राकिनी नामक शक्ति के रूप में क से ठ तक के बारह अक्षरों में रहती है। यह अपनी शक्तियों से आवृत्त रहती है। इसके नित्य पूजन से कीर्ति, आयु, श्री एवं धन की प्राप्ति होती है। नाभि में स्थित दशदल कमल मणिपूर में इन्द्रनील वर्ण की देवी ड से फ तक के वर्णों में लाकिनी नाम से रहती है। विजय, श्री एवं समृद्धि के लिये इनकी पूजा करे। लिङ्गमूल में स्थित स्वाधिष्ठान षड्दल पद्म के छः दलों में ब से ल तक के वर्णों की शक्तियों से घिरी काकिनी का पूजन करे। स्वाधिष्ठान का वर्ण बाल सूर्य के समान है। मूलाधार नामक चतुर्दल कमल का वर्ण स्वर्णिम है। इसमें व से स तक की चार शक्तियों से घिरी शाकिनी शक्ति की पूजा करे। मूलाधार चक्र पायु और लिङ्ग के मध्य के त्रिकोण में तेज से समन्वित है। भ्रूमध्य में द्विदल आज्ञा चक्र में शुभ्र विग्रह ह-क्ष शक्तियों से सेवित हाकिनी की पूजा करे। इससे त्रिकाल ज्ञान, सर्वचित्ताकर्षण, विश्वसृष्टि, स्थिति एवं ध्वंस की शक्ति प्राप्ति होती है। उक्त क्रम में विपर्यय से अन्दर-बाहर निग्रह के लिये पूजन से सभी दुःख एवं कष्टों का शमन होकर सम्पदा प्राप्त होती है।

भूमौ विधाय षट्कोणसप्तकं प्रोक्तदिक्क्रमात् । मध्ये च तत्र तां नित्यानित्यां गन्धादिभिर्यजेत् ॥५२॥
अभितस्तु षडस्रेषु तत् षट्कं तत्क्रमाद्यजेत् । बाह्येष्वपि च ताः प्राग्वत्प्रोक्तवर्णाः समर्चयेत् ॥५३॥
तासां षण्णामपि तथा षट्सु कोणेषु शक्तयः । षट्त्रिंशत्ताः समा देव्याः सर्वा रूपायुधादिभिः ॥५४॥
प्राग्वत्स्वरेण पञ्च स्युरपूर्वाः कादिमान्तिकाः । परेषु यवलक्षार्णरहितैस्तैस्तथार्चयेत् ॥५५॥
तेषामपि च चक्राणां शक्तीनां च विलोमतः । पूजा निग्रहसंज्ञा स्यात्सा शत्रूणां विपत्तये ॥५६॥

भूमि पर प्रोक्त दिशा के क्रम से सात षट्कोण बनावे। मध्य के षट्कोण में नित्या का पूजन गन्धादि से करे। सामने के षट्कोण में उसके षट्क का क्रम से यजन करे। बाहर भी पूर्ववत् प्रोक्त वर्ण का यजन करे। उन छहों में भी उसी प्रकार उनके छः कोणों में शक्तियों की पूजा करे। इन छत्तीस शक्तियों के रूप-आयुधादि उसी के समान हैं। इनके ३६ आवास वर्ण अ आ इ ई उ, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, र श ष स ह ळ कुल छत्तीस हैं। इन वर्णशक्तियों की पूजा करे। उन चक्रों में शक्तियों का अर्चन विलोम क्रम से करे। यह निग्रह पूजा शत्रु से विपत्ति होने पर करनी चाहिये।

षट्चक्रेषु च षट् कुम्भान्निधायारिमहीरुहाम् । क्वाथतोयाभिसंपूर्णान् कृष्णाम्बरसमन्वितात् ॥५७॥
अर्धरात्रे यजेत्तास्तु तद्योनिबलिदानतः । क्षिप्रं त्वगादिभिस्ते स्युः पूर्णाः शत्रोः कलेवराः ॥५८॥
निवेद्यं योनिरक्तेन संपन्नं चरुणा रिपोः । होमं च कुर्यात्तेनैव फणिशीर्षस्रुचा रुषा ॥५९॥
ध्यायेद् देवीश्च कुपिता दष्टौष्ठा बाहुभिर्निजैः । प्रहरन्तीः पिशाचेभ्यो विकिरन्तीश्च तत्तनुम् ॥६०॥
जपागुलुच्छविकसत्कण्ठा भीमार्तनिःस्वनाः । ध्यात्वैवं निग्रहं कुर्याद्रिपूणां मारणाय वै ॥६१॥
चक्रं च निग्रहे प्रोक्तं वज्ररूपं भयङ्करम् । कांस्ये सीसेऽपि वा कृत्वा स्थापयेद्वैरिभूमिषु ॥६२॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च दशसूत्रनिपातनात् । एकाशीतिपदानि स्युस्तेषु कोणचतुष्टये ॥६३॥
प्रत्येकं दशकोष्ठानि मार्जयेच्छिष्टवज्रकैः । चतुर्दिक्षु त्रिकोणानि चतुष्कोष्ठैः प्रकल्पयेत् ॥६४॥
तेषु मध्यस्थकोष्ठे च साध्यं कर्म समालिखेत् । शिष्टेषु मध्याधःकोष्ठमारभ्य प्रतिलोमजान् ॥६५॥
विद्याकूटांस्तु षट्त्रिंशदालिखेदप्रदक्षिणम् । साध्ययोन्यसृजा पिष्टं तद्वृक्षक्षोदलेपितम् ॥६६॥
स्थापयेत् प्रोक्तसमये रिपुक्षेत्रगृहादिके । श्मशाने चण्डिकागेहे कुलोत्सादकरं भवेत् ॥६७॥
इति निग्रहमाख्यातं समस्तरिपुमर्दनम् ।

छ चक्रों में छः कलश स्थापित करे। उन्हें शत्रुवृक्ष के क्वाथ से भरे। उनके ऊपर काला कपड़ा लपटे। आधी रात में पूजा करे। शत्रुयोनि के पशु का बलि प्रदान करे। इसे वे शीघ्र ही शत्रु कलेवर वाले हो जाते हैं। उन्हें योनि पशु का रक्त

निवेदित करे। चरु निवेदित करे। सर्पशीर्ष के आकार की स्रुचा से हवन करे। क्रुद्ध देवी का ध्यान करते हुये यह भावना करे कि देवी दाँत, ओठ एवं अपने हाथों से शत्रु पर प्रहार कर रही हैं। पिशाच उसके शरीर के टुकड़ों को बिखेर रहे हैं। शत्रुमारण के लिये इस प्रकार देवी का ध्यान करते हुये निग्रहपूजा करे।

निग्रह में वज्ररूप भयंकर चक्र होता है। इसे काँसे या शीसा पर बनाकर शत्रुभूमि में स्थापित करे। पूर्व से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर दश-दश रेखाओं को खींचने से इक्यासी कोष्ठ बनते हैं। चारो कोणों में दश-दश कोष्ठों को मिटा दे। शेष ४१ कोष्ठों से वज्ररूप चक्र बनता है। चारो दिशाओं में चार-चार कोष्ठों को मिटाकर त्रिकोण बनावे। उसके मध्य कोष्ट में साध्य नाम और कर्म लिखे। मध्य कोष्ठ के नीचे से प्रारम्भ करके प्रतिलोम क्रम से ३६ विद्याकूटों को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। साध्य योनि वृक्ष के पिष्ट को उस वृक्ष के जल से लेपित करे। प्रोक्त समय में शत्रुक्षेत्र-गृहादि में, श्मशान में, देवी मन्दिर में उसे स्थापित करे। यह कुल का नाशक प्रयोग है। इस प्रकार सभी शत्रुओं को मारने वाले निग्रह का वर्णन किया गया।

अनुग्रहं शृणु प्राज्ञे पूजाचक्रविधानतः ॥६८॥
देवीस्ताः प्रोक्तरूपास्तु ध्यात्वा चक्रेषु पूजयेत्। नैवेद्यमासां संप्रोक्तं यदासां प्रीतिदायकम् ॥६९॥
पायसान्नं गुडान्नं च मुद्गभिन्नान्नकं तथा। हरिद्रान्नं तिलान्नं च शुद्धान्नं षट्कमेव च ॥७०॥
चक्रेषु सप्तसु तथा तद्वर्णाश्चारुविग्रहाः। युवतीसप्तकं स्थाप्य प्राग्वदभ्यर्च्य ताः क्रमात् ॥७१॥
भूषणाम्बरगन्धासृग्भोजनाद्यैस्तु तोषयेत्। तुष्टासु तासु तुष्टाः स्युः शक्तयस्ताः समास्तदा ॥७२॥
प्रागुक्तवज्रे साध्याख्यां तथालिख्यानुलोमजान्। कूटानुक्तसमारम्भान् प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥७३॥
प्रोक्तेषु प्रोक्तरूपेण स्थापयेत् प्रोक्तभूमिषु। प्रोक्तान्येव फलानि स्युर्योगोऽयं लघुविग्रहः ॥७४॥
आदिक्षान्ताक्षरैः प्राग्वद्रूपिणीशक्तिसंयुतैः। बीजद्वयाद्यैः सप्ताक्षर्यन्तैः पञ्चदशाक्षरैः ॥७५॥
पञ्चाशच्छक्तयः पूज्याः पञ्चाशत्क्षेत्रपालकैः। सप्ताक्षर्या च संयुक्ता मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः ॥७६॥
चतुःषष्टिपदे मध्यचतुष्के दिनविद्यया। दिनेषु घटिकायोगात्पञ्चाशन्मिथुनान्यपि ॥७७॥
तेषां बीजद्वयं वर्णरूपक्षेत्रेशसंयुताः। मनीषितं समालेख्य तेषु तन्मिथुनानि वै ॥७८॥
घटिकाक्रमयोगेन हृन्मायामध्यगेऽर्चयेत्। एवं मण्डलमासार्धात्प्राप्नोत्येवाभिवाञ्छितम् ॥७९॥
नित्यशस्तां समावाह्य तस्मिंश्चक्रे समर्चनात्। समस्तवाञ्छितप्राप्तिः सदा भवति सर्वतः ॥८०॥
इति नित्यानित्याप्रयोगविधिः।

अब पूजाचक्रविधान से अनुग्रह का विवेचन सुनो। उपर्युक्त रूप के देवी का ध्यान करके चक्र में पूजन करे। देवी के प्रीतिदायक नैवेद्य को कहता हूँ। खीर, गुडान्न, मुद्गभिन्न अन्न, हरिद्रान्न, तिलान्न, शुद्धान्न—ये छः देवी को प्रिय हैं। सातों चक्रों में उनके समान वर्णों की सुन्दर सात युवतियों को बैठाये। पूर्ववत् क्रम से उनकी पूजा करे। आभूषण-वस्त्र-गन्ध-माला-भोजन आदि से उन्हें सन्तुष्ट करे। इनके तुष्ट होने से उनकी शक्तियाँ भी तुष्ट होती हैं। पूर्वोक्त वज्रचक्र में साध्य नाम लिखे तथा अनुलोम क्रम से कूटों को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। सभी को विहित रूप में विहित भूमि में स्थापित करे। पहले दो बीज पञ्च दशाक्षर तब सप्ताक्षरी मन्त्र से पचास शक्तियों और पचास क्षेत्रपालों की पूजा करे। पञ्चदशाक्षरी मन्त्र को सप्ताक्षरी से युक्त करे। चौसठ पदों के मध्य के चार पद में दिननित्या घटिका योग से पचास मिथुनों, उनके बीजद्वय वर्ण रूप क्षेत्रेश संयुत को लिखे। घटिका क्रम योग से हृन्माया का मध्य में अर्चन करे। इस प्रकार चालीस दिनों या पन्द्रह दिनों में मनोवांछित फल मिलता है। देवी का नित्य आवाहन करके अर्चन करे। इससे सब जगह सर्वदा समस्त वांछित प्राप्त होते हैं।

नीलपताकानित्याप्रयोगविधिः

अथ नीलपताकानित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१७-१८)—
सर्वत्र नित्यहोमं तु कुर्यादन्नाज्यतोऽपि वा। तिलतण्डुलकैर्वापि प्रोक्तं द्रव्यानुदीरणे ॥१॥

विद्याक्षराणां सर्वेषां स्वरव्यञ्जनबिन्दुकान्। पृथक्कृत्वाथ गणितैस्त्रिपञ्चाशद्भवन्ति हि॥२॥
तेन तल्लक्षसंख्यं तु जपेद्विद्यां प्रयत्नतः। तद्दशांशं हुनेदग्नौ सर्वत्राक्षरलक्षके॥३॥
प्राङ्मुखो नित्यपूजासु साधनेषु च साधकः। नित्यानामपि सर्वासां वासनायामुदीरितम्॥४॥

नीलपताका प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि सर्वत्र नित्य होम अन्न और आज्य से या तिल और चावल से करे। विद्या के सभी अक्षरों के स्वर-व्यञ्जन-बिन्दु को पृथक्-पृथक् अनावृत करने पर संख्या ५३ होती है। इसलिये यत्नपूर्वक वर्णलक्ष विद्याजप करे। जप का दशांश हवन करे। पूजा और साधन में साधक पूर्वमुख बैठे। सभी नित्याओं की वासना इसी प्रकार कही गई है।

सिद्धिकौतुकविधानम्

ततः सिद्धमनुर्मन्त्री कुर्यात्सिद्धिषु कौतुकम्। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे वक्ष्ये विद्याविभेदतः॥५॥
दशानामपि सिद्धीनां विद्यास्तासां भिदागताम्। संख्यां च ताश्च संप्रोक्ताः क्रमेणासां फलानि च॥६॥
विद्यादिकूटे त्वाद्ये तु योजयेद्दशसु क्रमात्। ताभ्यामेव विलोमाभ्यां पुटयेदुपरीरितान्॥७॥
मन्त्रवर्णान् दशानां च तत्तत्संख्याश्च ताः शृणु। परस्तात्तत्प्रभेदानां मन्त्रान् वक्ष्ये यथाविधि॥८॥
चतुर्विधः स्याद्विजयो द्वन्द्वे चतुरङ्गके। कूटयुद्धे दुर्गजे च तेषां मन्त्राश्चतुर्विधाः॥९॥
कामरूपत्वमुदितं स्वेच्छयाभीष्टविग्रहम्। विधातुमात्मनः शक्तिं स एको मन्त्र ईरितः॥१०॥
पादुकायुगलं विद्यावैभवाप्तं तु पादयोः। कृत्वा स्मरेद्वाञ्छितं तु देशं तत्र तदा स्थितिः॥११॥
तन्मन्त्रः स्यादेकविधस्तथैवाञ्जनमीरितम्। येनाक्ताक्षो निधिं पश्येद्देवाद्यांश्चान्तरिक्षगान्॥१२॥
खड्गश्च तादृशः प्रोक्तः करस्थेनाहिताः क्षणात्। पलायिता वा पदयोः प्रणमेयुर्वशंगताः॥१३॥
वेतालाः स्युरसंख्याताः सिद्ध्यन्ते चैकविद्यया। निधाय साधकं स्कन्धे चरेयुर्वाञ्छयास्य ते॥१४॥
विकृताङ्गमुखाः केचित्केचित्तिर्यङ्मुखाङ्ककाः। केचिद्भीषणनादाङ्गा वेताला बहुविग्रहाः॥१५॥
सर्वेऽपि वशगा वाक्यादस्य शत्रून् ग्रसन्ति च। किङ्कराः प्रोक्तकरणाद्भवेयुर्यावदायुषम्॥१६॥
पिशाचास्तादृशाः प्रोक्ताः कार्श्यवैरूप्यविग्रहाः। क्रुद्धाः क्षुद्राशयाः प्रोक्तकारिणः स्युरसंख्यकाः॥१७॥
तेषामेका भवेद्विद्या तथा ते किङ्कराः सदा। तैरेव प्रहरेच्छत्रुमज्ञातमनिशं रणे॥१८॥
षट्त्रिंशद्रूपसंयुक्ता यक्षिण्यो वाञ्छितप्रदाः। सुरूपा द्विभुजाश्चित्रवसनाभरणान्विताः॥१९॥
ससहाया यौवनाढ्याः स्रगालेपनसौरभैः। समेत्य सर्वाभीष्टानि दद्युस्ताः साधकाय वै॥२०॥
तासां विद्यास्तु षट्त्रिंशद्वक्ष्ये ताश्च शृणु प्रिये। याभिः सिद्धाभिरनिशं साधकाः सर्वसंमताः॥२१॥
चेटकाश्च चतुःषष्टिस्तेषां मन्त्राश्च तत्समाः। तेऽपि नानाविधाकाराः सिद्धास्ते दद्युरीप्सितम्॥२२॥
मायासंख्याश्चित्ररूपाश्चित्राण्यस्येच्छयानिशम्। वसून्युपहरेयुस्ता विद्यैका तत्प्रसाधने॥२३॥
विद्याया नवमार्णादिवर्णैः षड्भिरुदीरितैः। दश विद्याः प्रजायन्ते शृणु वक्ष्ये च ताः क्रमात्॥२४॥

तब साधक सिद्ध मन्त्र से सिद्धियों में कौतुक करे। उसका विधान विद्याभेद से कहता हूँ। उसकी विद्या से दशों सिद्धियाँ विद्यासाधक को मिलती हैं। उनकी संख्या और फलों को क्रम से कहता हूँ। विद्या के आदि कूट और शक्ति कूट के आगे दशों को क्रम से जोड़े। उनके विलोम क्रम से पुटित करे। दशों के मन्त्रवर्णों की संख्या सुनो। उनके भेद से यथाविधि मन्त्रों को कहता हूँ। द्वन्द्वयुद्ध में, चतुरंगिनी सेना के युद्ध में, दुर्गजय के लिये एवं कूट युद्ध के लिये चार प्रकार के मन्त्र हैं। इससे कामरूपत्व उदित होता है। इच्छानुसार रूप बनाया जा सकता है। आत्मशक्ति देने वाला एक ही मन्त्र है। विद्या वैभव से प्राप्त पादुका पर चढ़कर वांछित देश के स्मरण से साधक वहाँ पहुँच जाता है। इस मन्त्र से अंजनसिद्धि होती है, जिस अंजन को लगाकर साधक गड़े धन को देखता है। अन्तरिक्षगामी देवों को देख सकता है। इस मन्त्र से खड्ग प्राप्त होता है, जिसे हाथ

में लेते ही शत्रु भाग जाते हैं, पैरों में प्रणाम करते हैं और वशीभूत रहते हैं। इस विद्या से असंख्य वेताल सिद्ध होते हैं, जो साधक को अपने कन्धे पर बिठाकर वांछित स्थान पर ले जाते हैं। कुछ वेतालों के अंग-मुख विकृत होते हैं और किन्हीं के अंग-मुख टेढ़े होते हैं। कुछ भयंकर गर्जन करते हैं। इस प्रकार वेतालों के विग्रह बहुत प्रकार के होते हैं। ये सभी साधक के वश में रहते हैं और उसकी आज्ञा के अनुसार शत्रुओं को खा जाते हैं। ये आजीवन साधक के किङ्कर रहते हैं।

पिशाच भी उसी प्रकार के होते हैं। वे सभी कृशकाय एवं बदसूरत होते हैं। ये क्षुद्राशय और क्रुद्ध होते हैं। ये असंख्य होते हैं। इनकी भी एक प्रकार की विद्या होती है, जिससे वे साधक के किङ्कर होते हैं। युद्ध में वे शत्रुओं को मार गिराते हैं। छत्तीस प्रकार की यक्षिणियाँ वांछित देने वाली होती हैं। यक्षिणियाँ सुन्दर, दो हाथों वाली एवं विविध वस्त्राभूषण से युक्त होती हैं। ये यौवन से परिपूर्ण एवं माला-गन्ध से युक्त होती हैं। साधक को सभी अभीष्ट देती हैं। इनकी विद्याएँ भी छत्तीस हैं, उन्हें सुनो। इनसे साधक उन्हें सिद्ध करते हैं, यह सर्वसम्मत है। चौंसठ प्रकार के चेटक हैं और उनके मन्त्र भी चौंसठ हैं। वे भी नाना आकार के हैं। सिद्ध होने पर वांछित प्रदान करते हैं। चेटक विद्या के सिद्ध होने पर विविध प्रकार की माया सिद्ध होती है। विद्या के नव आदि अक्षरों से दश विद्यायें बनती हैं, उन्हें क्रम से सुनो।

विद्याया दशधा भेदप्रदर्शनम्

नित्येति विजयं देहीत्युक्त्वा संपुटयेत्ततः। विद्या सा विजयप्राप्त्यां चतुर्धैकादशाक्षराः ॥२५॥

अत्र 'नित्यविजयं देहि मदद्रवे' इत्येकादशाक्षरो मूलभूतश्चतुर्धा। तथा—'नित्यद्वन्द्वयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे' (१)। 'नित्यचतुरङ्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे' (२)। 'नित्यकूटयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे' (३)। नित्यदुर्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे' (४) इति। तथा—

मदेति कामरूपं मे देहीति पुटयेत्तथा। त्रयोदशाक्षरी विद्या कामरूपप्रदेरिता ॥२६॥
'मदकामरूपं मे देहि द्रवे नित्य' इति।

नित्यदे पादुकां देहीत्युक्त्वा कुर्याच्च संपुटम्। द्वादशार्णा भवेद्विद्या सिद्धा दद्याच्च पादुके ॥२७॥
'नित्यदे पादुकां देहि मदद्रवे' इति।

तथा नित्यमदेत्युक्त्वा देह्यञ्जनमितीरयेत्। पुटयेत् तद् द्वयेनाथ द्वादशार्णा समीरिता ॥२८॥
'द्रवे नित्यमद देह्यञ्जनं द्रवे' इति।

द्रवनित्ये देहि खड्गमित्युक्त्वा पुटयेत्तथा। द्वादशार्णा भवेत्सिद्धा खड्गं दद्यात्सुशोभनम् ॥२९॥
'द्रवनित्ये देहि खड्गं द्रवनित्ये' इति।

नित्यद्रवेति वेतालान् देहीति पुटयेत्तथा। त्रयोदशाक्षरी विद्या सिद्धा तान् दर्शयेत्तथा ॥३०॥
'नित्यद्रवे वेतालान्देहि नित्यद्रवे' इति।

पिशाचान्मे प्रयच्छेति पूर्वं नित्यमदद्रवे। पुटयेत् पूर्ववद् द्वाभ्यां विद्या सप्तदशाक्षरी ॥३१॥
'नित्यमदद्रवे पिशाचान्मे प्रयच्छ नित्यद्रवे' इति।

दश विद्यायें इस प्रकार हैं—यहाँ 'नित्यविजयं देहि मदद्रवे' यह एकादशाक्षरी मूल विद्या चार प्रकार की है—१. नित्यद्वन्द्वयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे, २. नित्यचतुरङ्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे, ३. नित्यकूटयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे, ४. नित्य-दुर्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे। ५. कामरूपप्रदायी विद्या है—मदकामरूपं देहि द्रवे नित्य। ६. पादुकासिद्धि मन्त्र है—नित्यदे पादुकां देहि मदद्रवे। ७. अंजनसिद्धि मन्त्र है—द्रवे नित्यमद देहि अंजनं द्रवे। ८. खड्गसिद्धि मन्त्र है—द्रवनित्ये देहि खड्गं द्रवनित्ये। ९. वेतालसिद्धि मन्त्र है—नित्यद्रवे बेतालान्देहि नित्यद्रवे। १०. पिशाचसिद्धि मन्त्र है—नित्यमदद्रवे पिशाचान्मे प्रयच्छ नित्यद्रवे।

षट्त्रिंशद्यक्षिणीनामविद्याः

षट्त्रिंशदुक्ता यक्षिण्यः सर्वा वाञ्छितसिद्धिदाः। तासां नामानि विद्याश्च शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥३२॥
विचित्रा विभ्रमा हंसी भीषणी जनरञ्जिका। विशाला मदना तुष्टा कालकण्ठी महाभया ॥३३॥
माहेन्द्री शङ्खिनी चान्द्री मङ्गला वटवासिनी। मेखला सकला लक्ष्मीर्मालिनी विश्वनायिका ॥३४॥
सुलोचना सुशोभा च कामदा सविलासिनी। कामेश्वरी नन्दिनी च स्वणरिखा मनोहरा ॥३५॥
प्रमोदा रागिणी सिद्धा पद्मिनी सरतिप्रिया। कल्याणदा कलादक्षा ततश्च सुरसुन्दरी ॥३६॥
इति षट्त्रिंशदाख्याता यक्षिण्योऽभीष्टदायिकाः। तासां विद्याः क्रमेण स्युस्तद्बीजद्वयसंपुटैः ॥३७॥
नित्यद्रवमदेत्येतैः षड्वर्णैश्चोक्तनामभिः। विद्याः षट्त्रिंशदाख्यातास्ताः सिद्धाः दद्युरीप्सितम् ॥३८॥
तासां विद्यार्णसंख्यास्तु शृणु वक्ष्ये यथाक्रमम्। पञ्चमी पञ्चदशमी विंशतिश्च तथान्तिमा ॥३९॥
चतस्रः पञ्चदशकास्तृतीया साष्टमी तथा। त्रयोदशी साष्टदशा द्वाविंशा द्वादशाक्षरा ॥४०॥
सैकत्रिंशच्च तद्वत् स्युश्चतुर्दशसमन्विताः। नवमी दशमी चैकविंशा तद्वदनन्तरम् ॥४१॥
चतुर्विंशा पञ्चविंशा सप्तविंशा तदूर्ध्वगा। त्रयस्त्रिंशादिकास्तिस्रस्त्रयोदशयुताः पराः ॥४२॥

(१) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदविचित्रे श्रींह्लीं' १३। (२) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदविभ्रमे श्रींह्लीं' १३। (३) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदहंसि श्रींह्लीं' १२। (४) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदभीषणि श्रींह्लीं' १३। (५) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदजनरञ्जिके श्रींह्लीं' १५। (६) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदविशाले श्रींह्लीं' १३। (७) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमदने श्रींह्लीं' १३। (८) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदतुष्टे श्रींह्लीं १२। (९) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदकालकण्ठि श्रींह्लीं' १४। (१०) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमहाभये श्रींह्लीं' १४। (११) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमाहेन्द्रि श्रींह्लीं' १३। (१२) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदशंखिनि श्रींह्लीं' १३। 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदचान्द्रि श्रींह्लीं' १२। (१४) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमङ्गले श्रींह्लीं' १३। (१५) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदवटवासिनि श्रींह्लीं' १५। (१६) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमेखले श्रींह्लीं' १३। (१७) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदसकले श्रींह्लीं' १३। (१८) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदलक्ष्मि श्रींह्लीं' १२। (१९) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमालिनि ह्लींश्रीं' १३। (२०) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदविश्वनायिके श्रींह्लीं' १५। (२१) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदसुलोचने श्रींह्लीं' १५। (२२) ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मद(सु)शोभे श्रींह्लीं' १३। (२३) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदकामदे श्रींह्लीं' १३। (२४) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)विलासिनि श्रींह्लीं' १५। (२५) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदकामेश्वरि श्रींह्लीं' १४। (२६) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदनन्दिनी श्रींह्लीं' १३। (२७) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदस्वणरिखे श्रींह्लीं' १४। (२८) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदमनोहरे श्रींह्लीं' १४। (२९) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदप्रमोदे श्रींह्लीं' १३। (३०) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदरागिणि श्रींह्लीं' १३। (३१) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदसिद्धे श्रींह्लीं' १२। (३२) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदपद्मिनि श्रींह्लीं' १३। (३३) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)रतिप्रिये श्रींह्लीं'' १५। (३४) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदकल्याणदे श्रींह्लीं' १५। (३५) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदकलादक्षे श्रींह्लीं' १४। (३६) 'ह्लींश्रीं नित्यद्रवे मदसुरसुन्दरि श्रींह्लीं' १५। इति षट्त्रिंशद्यक्षिणीमन्त्राः।

उपरोक्त छत्तीस यक्षिणियाँ वांछित सिद्धि देती हैं। उनके नाम और उनकी विद्या को यथाविधि कहता हूँ। सुनो—

१. विचित्रा	७. मदना	१३. चान्द्री	१९. मालिनी
२. विभ्रमा	८. तुष्टा	१४. मंगला	२०. विश्वनायिका
३. हंसी	९. कालकण्ठी	१५. वटवासिनी	२१. सुलोचना
४. भीषणा	१०. महाभया	१६. मेखला	२२. सुशोभा
५. जनरंजिका	११. माहेन्द्री	१७. सकला	२३. कामदा
६. विशाला	१२. शङ्खिनी	१८. लक्ष्मी	२४. सविलासिनी

२५. कामेश्वरी	२८. मनोहरा	३१. सिद्धा	३४. कल्याणदा
२६. नन्दिनी	२९. प्रमोदा	३२. पद्मिनी	३५. कलादक्षा
२७. स्वर्णरेखा	३०. रागिणी	३३. सरतिप्रिया	३६. सुरसुन्दरी।

उपर्युक्त छत्तीस यक्षिणियाँ अभीष्टदायिका हैं। उनकी विद्या क्रम से दो बीजों से सम्पुटित होती है। इनकी विद्याएँ छत्तीस हैं, जिनके सिद्ध होने पर ईप्सित फल मिलते हैं। इनके विद्यावर्णों की संख्या यथाक्रम कहता हूँ—

(१) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदविचित्रे श्रींह्रीं' १३। (२) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदविभ्रमे श्रींह्रीं' १३। (३) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदहंसि श्रींह्रीं' १२। (४) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदभीषणि श्रींह्रीं' १३। (५) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदजनरञ्जिके श्रींह्रीं' १५। (६) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदविशाले श्रींह्रीं' १३। (७) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमदने श्रींह्रीं' १३। (८) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदतुष्टे श्रींह्रीं १२। (९) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदकालकण्ठि श्रींह्रीं' १४। (१०) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमहाभये श्रींह्रीं' १४। (११) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमाहेन्द्रि श्रींह्रीं' १३। (१२) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदशंखिनि श्रींह्रीं' १३। 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदचान्द्रि श्रींह्रीं' १२। (१४) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमङ्गले श्रींह्रीं' १३। (१५) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदवटवासिनि श्रींह्रीं' १५। (१६) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमेखले श्रींह्रीं' १३। (१७) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदसकले श्रींह्रीं' १३। (१८) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदलक्ष्मि श्रींह्रीं'१२। (१९) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमालिनि ह्रींश्रीं' १३। (२०) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदविश्वनायिके श्रींह्रीं' १५। (२१) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदसुलोचने श्रींह्रीं' १५। (२२) ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मद(सु)शोभे श्रींह्रीं' १३। (२३) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदकामदे श्रींह्रीं' १३। (२४) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)विलासिनि श्रींह्रीं' १५। (२५) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदकामेश्वरि श्रींह्रीं' १४। (२६) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदनन्दिनी श्रींह्रीं' १३। (२७) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदस्वर्णरेखे श्रींह्रीं' १४। (२८) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदमनोहरे श्रींह्रीं' १४। (२९) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदप्रमोदे श्रींह्रीं' १३। (३०) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदरागिणि श्रींह्रीं' १३। (३१) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदसिद्धे श्रींह्रीं' १२। (३२) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदपद्मिनि श्रींह्रीं' १३। (३३) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)रतिप्रिये श्रींह्रीं'' १५। (३४) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदकल्याणदे श्रींह्रीं' १५। (३५) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदकलादक्षे श्रींह्रीं' १४। (३६) 'ह्रींश्रीं नित्यद्रवे मदसुरसुन्दरि श्रींह्रीं' १५।

चतुष्षष्टिचेटकनामविद्याः

चेटकानां चतुःषष्टिं तन्मन्त्रांश्च वदामि ते। शृणु सिद्धास्तु ते नित्यं साधयेयुः समीहितम् ॥४३॥
विभ्रमो वाहको वीरो विकर्षः कोरकः कविः। सिंहनादो महानादः सुग्रीवो मर्कटः शठः ॥४४॥
बिडालाक्षो बिडालास्य कुमारः खेचरो भवः। मयूरो मङ्गलो भीमो द्वीपिवक्रः खराननः ॥४५॥
मातङ्गश्च निशाचारी विषग्राही वृकोदरः। सैरिभास्यो गजमुखः पशुवक्त्रो मृगाननः ॥४६॥
क्षोभको मणिभद्रश्च क्रीडकः सिंहवक्त्रकः। श्येनास्यः कङ्कवदनः काकास्यो हयवक्त्रकः ॥४७॥
महोदरः स्थूलशिरा विकृतास्यो वराननः। चपलः कुक्कुटास्यश्च मायावी मदनालसः ॥४८॥
मनोहरो दीर्घजङ्घः स्थूलदन्तो दशाननः। सुमुखः पिण्डितः क्रुद्धो वराहास्यः सटामुखः ॥४९॥
कपटः कौतुकी कालः किङ्करः कितवः खलः। भक्षको भयदः सिद्धः सर्वगश्चेति कीर्तिताः ॥५०॥
बीज पुटान्तस्थैर्मदनित्यद्रवे-युतैः। नामभिस्तैर्द्वितीयान्तैर्देहीति पदसंयुतैः ॥५१॥
एवं मन्त्राश्चतुःषष्टिः क्रमादुक्ता महेश्वरि। तेषां संख्यामपि तथा शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥५२॥
चतुर्दशाक्षरास्तेषु नव मन्त्राः समीरिताः। तथा पञ्चदशार्णास्तु षड्विंशतिरितीरिताः ॥५३॥
षोडशार्णास्तु मनवः पञ्चविंशतिरीरिताः। तथा सप्तदशार्णाश्च चत्वारो व्याकुलाः क्रमात् ॥५४॥

अथ चतुष्षष्टिश्चेटका यथा—(१) 'ह्रींश्रीं मदनित्यद्रवे विभ्रमं देहि श्रींह्रीं' १५। (२) 'ह्रींश्रीं मदनित्यद्रवे वाहकं देहि श्रींह्रीं' १५। (३) 'ह्रींश्रीं मदनित्यद्रवे वीरं देहि श्रींह्रीं' १४। (४) 'ह्रींश्रीं मदनित्यद्रवे विकर्षं देहि श्रींह्रीं' १५। (५) 'ह्रींश्रीं मदनित्यद्रवे कोरकं देहि श्रींह्रीं' १५। एवं—कविं सिंहनादं महानादं सुग्रीवं मर्कटं शठं विडालाक्षं

बिडालास्यं कुमारं खेचरं भवं मयूरं मङ्गलं भीमं द्वीपिवक्त्रं खराननं मातङ्गं निशाचारिणं विषग्राहिणं वृकोदरं सैरिभास्यं गजमुखं पशुवक्त्रं मृगाननं क्षोभकं मणिभद्रं क्रीडकं सिंहवक्त्रकं श्येनास्यं कङ्कवदनं काकास्यं हयवक्त्रकं महोदरं स्थूलशिरसं विकृतास्यं वराननं चपलं कुक्कुटास्यं मायाविनं मदनालसं मनोहरं दीर्घजङ्घं स्थूलदन्तं दशाननं सुमुखं पिण्डितं क्रुद्धं वराहास्यं सटामुखं कपटं कौतुकिनं कालं किङ्करं कितवं खलं भक्षकं भयदं सिद्धं सर्वगं (६४) इति चतुःषष्टिश्चेटकाः।

चेटक चौंसठ हैं और उनके मन्त्र भी चौंसठ हैं, जो सिद्ध होने पर इच्छाएँ पूरी करते हैं। चेटकों नाम इस प्रकार हैं—

१. विभ्रम	१७. मयूर	३३. सिंहवक्त्र	४९. दशानन
२. वाहक	१८. मंगल	३४. श्येनास्य	५०. सुमुख
३. वीर	१९. भीम	३५. कंकवदन	५१. पिण्डित
४. विकर्ष	२०. द्वीपिवक्त्र	३६. काकास्य	५२. क्रुद्ध
५. कोरक	२१. खरानन	३७. हयवक्त्र	५३. वराहास्य
६. कवि	२२. मातंग	३८. महोदर	५४. सटामुख
७. सिंहनाद	२३. निशाचारी	३९. स्थूलशिरा	५५. कपट
८. महानाद	२४. विषग्राही	४०. विकृतास्य	५६. कौतुकी
९. सुग्रीव	२५. वृकोदर	४१. वरानन	५७. काल
१०. मर्कट	२६. सैरिभास्य	४२. चपल	५८. किंकर
११. शठ	२७. गजमुख	४३. कुक्कुटास्य	५९. कितव
१२. बिडालाक्ष	२८. पशुवक्त्र	४४. मायावी	६०. खल
१३. बिडालास्य	२९. मृगानन	४५. मदनालस	६१. भक्षक
१४. कुमार	३०. क्षोभक	४६. मनोहर	६२. भयद
१५. खेचर	३१. मणिभद्र	४७. दीर्घजङ्घ	६३. सिद्ध
१६. भव	३२. क्रीडक	४८. स्थूलदन्त	६४. सर्वग

इन चौंसठ चेटकों के चौंसठ मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे विभ्रमं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे वाहकं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे वीरं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे विकर्षं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
५. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कोरकं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
६. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कविं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
७. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सिंहनादं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
८. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे महानादं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
९. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सुग्रीवं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
१०. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मर्कटं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
११. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे शठं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
१२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे बिडालाक्षं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
१३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे बिडालास्यं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।

१४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कुमारं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
१५. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे खेचरं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
१६. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे भवं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
१७. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मयूरं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
१८. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मंगलं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
१९. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे भीमं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
२०. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे द्वीपिवक्त्रं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२१. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे खराननं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मातंगं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
२३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे निशाचारिणं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे विषग्राहिणं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२५. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे वृकोदरं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२६. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सौरिभास्यं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२७. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे गजमुखं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२८. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे पशुवक्त्रं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
२९. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मृगाननं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
३०. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे क्षोभकं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
३१. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मणिभद्रं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
३२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे क्रीडकं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
३३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सिंहवक्त्रं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
३४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे श्येनास्यं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
३५. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कंकवदनं देहि श्रीं ह्रीं—१७ अक्षर।
३६. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे काकास्यं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
३७. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे हयवक्त्रं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
३८. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे महोदरं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
३९. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे स्थूलशिरां देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४०. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे विकृतास्यं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४१. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे वराननं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे चपलं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
४३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कुक्कुटास्य देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मायाविनं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४५. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मदनालसं देहि श्रीं ह्रीं—१७ अक्षर।
४६. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे मनोहरं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४७. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे दीर्घजङ्घं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४८. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे स्थूलदन्तं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
४९. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे दशाननं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
५०. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सुमुखं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।

५१. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे पिण्डितं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
५२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे क्रुद्धं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
५३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे वराहास्यं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
५४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सटामुखं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
५५. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कपटं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
५६. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कौतुकिनं देहि श्रीं ह्रीं—१६ अक्षर।
५७. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कालं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
५८. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे किंकरं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
५९. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे कितवं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
६०. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे खलं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
६१. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे भक्षकं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
६२. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे भयदं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।
६३. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सिद्धं देहि श्रीं ह्रीं—१४ अक्षर।
६४. ह्रीं श्रीं मदनित्यद्रवे सर्वगं देहि श्रीं ह्रीं—१५ अक्षर।

विद्यायन्त्रोद्धारः

तथा—

विद्याक्षरेष्वनावृत्तान्यक्षराणि चतुर्दश। सस्वरैस्तैर्भवेत्संख्या चतुर्विंशच्छतद्वयम् ॥५५॥
अत्र 'हरफसकअलवनतयमदव' इति।

तैर्यन्त्राणि च सप्त स्युस्तेषु प्रोक्तक्रमाद्यजेत्। देवताः सप्तवारेषु भास्करादिषु भक्तितः ॥५६॥
वाराख्यां सप्तमीयुक्तामिष्टं देहीति चालिखेत्। यन्त्रस्य मध्ये मायास्थं तत्र सिद्धीश्च पूजयेत् ॥५७॥
वृत्तयोर्नवयोनिं च कृत्वा बाह्येऽष्टकोणकम्। बहिः कलाब्जभूसद्मयुगं कुर्याद्यथाविधि ॥५८॥
विलिख्य तेषु क्रमतो वर्णान् द्वात्रिंशदालिखेत्। दलेषु कोणेषु तथा वृत्तमध्ये द्वये पुनः ॥५९॥
मातृकामकथाद्यां वै विलिखेदान्तरक्रमात्। तस्य कोणान्तरालेषु हळक्षार्णान् समालिखेत् ॥६०॥
अग्रात् प्रदक्षिणं त्वेवं सप्त यन्त्राणि तैर्भवेत्। सिद्धीनां चेटकानां च यक्षिणीनां तथैकशः ॥६१॥
चेटकानां विशेषोऽयं मध्येऽष्टच्छदमम्बुजम्। तेषामुक्तक्रमेणैव साधनानि फलानि वै ॥६२॥

विद्याक्षरों को अनावृत्त करने पर चौदह अक्षर होते हैं। इनमें सोलह स्वरों के योग से इनकी संख्या २२४ होती है। ये अनावृत चौदह अक्षर हैं—ह र फ स क अ ल व न त य म द व।

२२४ अनावृत्त अक्षरों से सात यन्त्र बनते हैं। प्रोक्त क्रम से इनका यजन सात दिनों में करे। सात दिनों के सूर्यादि देवताओं की पूजा करे। दिन का नाम एवं मदनित्यद्रवे इष्टं देहि लिखे। यन्त्र के मध्य में ह्रीं लिखे, वहीं पर सिद्धि की पूजा करे। वृत्त में नवयोनि बनाकर बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर षोडश दल कमल बनावे। उसके बाहर दो भूपुर बनावे। उनमें क्रमशः ३२ वर्णों को षोडश दल कमल के दलों में दो-दो वर्ण लिखे। नव कोनों में दो-दो लिखे। वृत्तमध्य में दो लिखे। अकथादि मातृका को आन्तर क्रम से लिखे। कोणों के अन्तराल में हळक्ष लिखे। अग्रभाग से प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार लिखने पर सात यन्त्र बनते हैं। चेटकों के यन्त्र में मध्य में अष्टदल कमल बनावे। उनमें उक्त क्रम से साधना करने से विहित फल प्राप्त होते हैं।

यक्षिणीचेटकसाधनप्रयोगः

प्रयोगाञ्छृणु देवेशि यैः सिद्धो मत्समो भुवि। पूज्यते सर्वलोकैश्च सर्वतः सर्वदापि वा ॥६३॥

सिन्धुतीरवने चैता यक्षिणी: साधयेत्त्रिश: । एकैकस्मिन् वर्णलक्षं जपेदुक्तविधानत: ॥६४॥
अरण्यवटमूले च पर्वताग्रे गुहासु च । उद्यानमध्ये कान्तारे मातृपादपमूलत: ॥६५॥
तद्दशांशं तर्पणं च होमं कुर्यात्प्रसूनकै: । कदम्बबन्धूकजपाहयमारैश्च लोहितै: ॥६६॥
तत: प्रीता: समागत्य प्रत्यक्षा वाञ्छितप्रदा: । सुवर्णानि च वासांसि भूषणानि फलानि च ॥६७॥
आस्वाद्यानि च लेह्यानि भोज्यानि विविधानि च । आलेपनानि माल्यानि दद्युराजीविताविध ॥६८॥
आयाता: सर्वदा मह्यं प्रत्यक्षा देहि वाञ्छितम् । इत्युक्त्वा नित्यशस्तास्तु पूजयेच्च जपेत्तथा ॥६९॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु तां तां विद्यामनन्यधी: । एवं ता: सर्वयक्षिण्य: फलं दद्युर्यथेप्सितम् ॥७०॥
चेटकानां तु सर्वेषां तेषु तेषु क्रमेण वै । एकस्मिन् पञ्च पञ्च स्यु: सिद्धा: सिन्धुतटे नव ॥७१॥
तेषां च वर्णलक्षं तु जपमुक्तविधानत: । मौनं दिनेषु सततं कुर्यात्सिद्ध्यै न चालयेत् ॥७२॥
मध्यरात्रे सदा होमं तर्पणं च समीरितम् । जपेद् दिवानिशं प्रोक्तं सर्वेषामपि साधने ॥७३॥
चेटकास्ते समागत्य मध्यरात्रेऽतिभीषणा: । क्षोभयेयुरमुं क्षोभं न चेदेत्याथ तत्पुर: ॥७४॥
प्रत्यक्षा: किं तवेष्टं तत्करोमीति वदेन्निशि । प्रत्येकं ते तथेत्युक्त्वा न मां मुञ्चत इत्यपि ॥७५॥
नित्यशस्तान् जपार्चाभिरुपासीताचरेत्तत: । स्मृते तमेत्य संदिष्टं साधयेयु: समीहितम् ॥७६॥
शत्रूणां समरे भङ्गं प्रहारमहिते जने । कुर्वन्ति प्रार्थितार्थानां प्रदानं ते दिवानिशम् ॥७७॥
आनयेयुश्च वनिता वाञ्छितास्तत्क्षणाद् ध्रुवम् । निश्चलीकुर्वते मत्तं दन्तिनं वा हयं नरम् ॥७८॥
नित्याषोडशके सिद्धे देवर्षिपितृराक्षसै: । पिशाचैरुरगै: सिद्धै: किन्नरैरप्सरोगणै: ॥७९॥
मरुद्भिर्वसुभि: सप्तऋषिभिर्यक्षदानवै: । रुद्रैरेकादशविधै: साध्यैश्च नवभिर्ग्रहै: ॥८०॥
द्वादशार्कैर्लोकपालैस्तथान्यैरपि दैवतै: । राजभिर्वनिताभिश्च नरैरन्यैर्मृगैस्तथा ॥८१॥
पूज्यते सर्वदा सिद्ध: समीहितसुखास्पद: । हृष्टाशयो वदान्यश्च दयावान् सुमुख: क्षमी ॥८२॥
पूर्णाशय: सदानन्दो निरपेक्ष: कलान्वित: । धनी भोक्तापरद्वेषी प्रेमभूरावयोर्भवेत् ॥८३॥
इति नीलपताकानित्याप्रयोगविधि:।

हे देवि! अब उनके प्रयोगों को सुनो, जिसे सिद्ध होने पर साधक मुझ शिव के समान हो जाता है। सर्वत: सर्वदा सभी लोकों में उसकी पूजा होती है। सागर के तट पर स्थित वन में इन यक्षिणियों को सिद्ध करे। एक-एक का वर्ण लक्ष जप विधिवत् करे। जंगल के वटमूल में, पर्वताग्र गुफा में, उद्यान में, कान्तार में, मातृपादमूल में साधना और जप करे। जप का दशांश हवन-तर्पण करे। कदम्ब, बन्धूक, अड़हुल, लाल कनैल से हवन करे। इससे प्रसन्न यक्षिणियाँ प्रत्यक्ष होकर वांछित फल देती हैं। जीवन भर स्वादिष्ट भोजन, लेह्य, भोज्य देती हैं। विविध लेप, माला देती हैं। उनके आने पर कहे 'सर्वदा मह्यं प्रत्यक्षा देहि वांछितम्' यह कहकर नित्य पूजा और जप करे। अनन्य बुद्धि से नित्या का एक हजार आठ जप करे। इससे सभी यक्षिणियाँ ईप्सित फल देती हैं।

सभी चेटकों को उनके क्रम से पाँच-पाँच की संख्या में सागरतट पर सिद्ध करे। उनके मन्त्रों का वर्णलक्ष जप करे। दिन भर मौन रहकर साधना करे, कहीं न जाय। आधी रात में हवन-तर्पण करे। सबों के साधन में दिन-रात जप करे। आधी रात में चेटक भयंकर रूप में आते हैं और साधक को क्षुब्ध करते हैं। साधक क्षुब्धा न हो तब वे प्रत्यक्ष होकर कहते हैं कि आपकी इच्छा क्या है, उसे पूरी करूँगा। उनमें प्रत्येक से साधक कहे कि मेरा साथ कभी मत छोड़िये। नित्य उनकी उपासना पूजन एवं जप से करे। एकाग्रता से उनका साधन करे। स्मरण करने पर वे दर्शन देते हैं। युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करके उन्हें वे नष्ट करते हैं। आदेशानुसार सभी कर्म करते हैं और इच्छित प्रदान करते हैं। वांछित वनिता को क्षण भर में ले आते हैं। मतवाले हाथी, घोड़ों, मनुष्यों को निश्चल करते हैं। सोलह नित्याओं के सिद्ध होने पर देवर्षि, पितर, राक्षस, पिशाच, नाग, सिद्ध, किन्नर, अप्सरागण, मरुत, वसु, सप्तर्षि, यक्ष, दानव, एकादश रुद्र, मनुष्य, मृग सर्वदा इस सिद्ध की पूजा करते हैं।

दूसरों से वह मधुर बोलता है। वह सदा दयावान, प्रसन्नमुख, क्षमाशील, पूर्णाशय, सदानन्दित, निरपेक्ष, कलान्वित, धनी, भोक्ता, द्वेषहीन होकर प्रेम से पूर्ण रहता है।

विजयानित्याप्रयोगविधिः

अथ विजयानित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१८.२६)—

पूर्वोक्तक्रमतो विद्यां वर्णलक्षं जपेत्सुधीः। होमं रक्ताम्बुजैः कृत्वा सिद्धमन्त्रो दयान्वितः ॥१॥
प्रयोगानाचरेन्मन्त्री होमयन्त्रविधानतः। जपेन तर्पणेनापि पूजनेन यथाविधि ॥२॥
कमलैः कैरवै रक्तैः सितैः सौगन्धिकोत्पलैः। सुगन्धिशेफालिकया त्रिमध्वक्तैर्यथाविधिः ॥३॥
होमात्सप्तसु वारेषु कुर्यात्प्रोक्तैस्तु सप्तभिः। प्रोक्तवारेशयोश्चापि तम्मण्डलत एव वै ॥४॥
विजयं समवाप्नोति समरे द्वन्द्वयुद्धके। मल्लयुद्धे शस्त्रयुद्धे वादे द्यूतद्वयेऽपि च ॥५॥
व्यवहारेषु सर्वत्र जयमाप्नोति निश्चितम्। चतुरङ्गुलजैः पुष्पैर्होमात् संस्तम्भयेद्रिपून् ॥६॥
तथैव कर्णिकारोत्थैः पुंनागोत्थैर्नमेरुजैः। चम्पकैः केतकै राजवृक्षजैर्माधवोद्भवैः ॥७॥
प्राग्वद्वारेषु जुहुयात्क्रमात्पुष्पैस्तु सप्तभिः। प्रोक्तेषु स्तम्भनं शत्रोर्भङ्गो वा भवति ध्रुवम् ॥८॥
शत्रोर्नक्षत्रवृक्षाग्नौ तत्समिद्भिस्तु होमतः। सर्षपाज्याप्लुताभिस्तैः प्रणमन्त्येव पादयोः ॥९॥
मृत्युकाष्ठानले मृत्युपत्रपुष्पफलैरपि। समिद्भिर्जुहुयात्सम्यग् वारेशार्चनपूर्वकम् ॥१०॥
अरातेश्चतुरङ्गं तु बलं रोगार्दितं भवेत्। तेनास्य विजयो भूयान्निधनेनापि वा पुनः ॥११॥
अर्कवारेऽर्कजैरिध्मैः समिद्धेऽग्नौ तदुद्भवैः। पत्रैः पुष्पैः फलैः काण्डैर्मूलैश्चापि हुनेत्क्रमात् ॥१२॥
सवर्णारुणवत्साया घृतसिक्तैस्तु मण्डलात्। अरातिदिङ्मुखो भूत्वा कुण्डे त्र्यस्रे विधानतः ॥१३॥
पलायते वा रोगार्तः प्रणमेद्वा भयान्वितः। वैरी बलसमग्रोऽपि शौर्यमानान्वितोऽपि च ॥१४॥
पलाशेध्मानले तस्य पञ्चाङ्गैस्तद्घृताप्लुतैः। होमेन सोमवारेषु भवेत्प्राग्वन्न संशयः ॥१५॥
खादिरेध्मानले तस्य पञ्चाङ्गैस्तद्घृताप्लुतैः। वारे भौमस्य हवनात्तदाप्नोति सुनिश्चितम् ॥१६॥
अपामार्गेध्मजे वह्नौ तत्समिद्भिर्हुनेत्तथा। बुधवारेषु शुभ्रायाः सवत्साया घृतान्वितम् ॥१७॥
पूर्वोक्तफलसंसिद्धिर्भवत्येव च तद्दिनैः। तत्तद्वारेषु भजनात् पूर्वमेव हुतक्रिया ॥१८॥

विजया नित्या प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्वोक्त क्रम से साधक विद्या का वर्णलक्ष जप करे। लाल कमल से हवन करने पर दयालु मन्त्र सिद्ध होता है। मन्त्रज्ञ हवन यन्त्र विधान से, जप से, तर्पण से और पूजन से यथाविधि प्रयोग करे। कमल कैरव लाल उजला सुगन्धित, उत्पल सुगन्धित शेफाली को यथाविधि त्रिमुधराक्त करके हवन करे। सातों वारों में हवन विहित रूप में करे। उक्त वारेशों का चालीस दिनों तक पूजन करे। इससे द्वन्द्व युद्ध में विजय मिलती है। मल्ल युद्ध, शस्त्र युद्ध, विवाद, दोनों प्रकार के जूआ में, व्यवहार में सर्वत्र साधक विजयी होता है। चार अंगुल के फूलों से हवन करने पर शत्रुओं का स्तम्भन होता है। उसी प्रकार कर्णिकार, पुन्नाग, नमेरु, चम्पा, केतकी, राजवृक्ष पुष्प माधवपुष्प—इन सात से पूर्ववत् सात दिनों में हवन करे। इससे शत्रु का स्तम्भन या मृत्यु होती है। शत्रु नक्षत्र वृक्षों की अग्नि में उसी की समिधा से हवन करने पर या आज्य प्लुत सरसों से हवन करने से शत्रु पैरों में प्रणाम करता है। मृत्युकाष्ठ की अग्नि में उसके पत्ते-पुष्प-फल-समिधा से वारेश की पूजापूर्वक हवन करे तो शत्रु की चतुरंगिनी सेना रोगार्त हो जाती है। इससे साधक विजयी होता है और शत्रु का नाश होता है। रविवार में अकवन की अग्नि में अकवन की समिधा, पत्तों, फूलों, फलों या काष्ठमूल से क्रमशः हवन करे। इन्हें लाल बछड़े वाली लाल गाय के घी से अक्त करके चालीस दिनों तक शत्रु की दिशा में मुख करके त्रिकोण कुण्ड में विधि से हवन करने से शत्रु भाग जाता है या रोगार्त होकर भय से प्रणाम करता है। सभी बल-शौर्य से युक्त शत्रु भी पलाश के पञ्चाङ्ग को घी से प्लुत करके पलाश के काष्ठ की अग्नि में सोमवार को हवन करने से पूर्ववत् होता है अर्थात् पैरों में गिर पड़ता है। खैरकाष्ठ की अग्नि में खैर के पञ्चाङ्ग को घृताक्त करके मंगलवार में हवन करने से भी वही

फल मिलता है। अपामार्ग-काष्ठ की अग्नि में उसी की समिधा से बुधवार को सवत्सा उजली गाय के घी से अक्त करके हवन करने से शत्रु पराजित होता है। सभी वारों में पूजन से पूर्व ही हवन करना चाहिये।

सर्वत्र प्रोक्तमेवार्चाजपयन्त्रादिकर्मसु। तत्तन्नित्यार्चनं तत्तद्वारेशद्वयपूजनम् ॥१९॥
विधाय पश्चात्कर्माणि तानि कुर्यात्समाहितः। शीघ्रं तत्फलसंसिद्ध्यै भवत्येवान्यथान्यथा ॥२०॥
पिप्पलाग्नौ गुरोवरि तदुत्थैस्तद्घृतप्लुतैः। हुनेत्तथा तत्फलाप्तिस्तद्दिनैः स्यादसंशयम् ॥२१॥
उदुम्बराग्नौ भृगुजे वारे होमं तदुद्भवैः। तत्सिक्थैर्विदधीतेत्थं तद्दिनैस्तत्र सिध्यति ॥२२॥
शमीवह्नौ तदुत्थैस्तु जुहुयात्कृष्णगोघृतैः। तद्दिनात्तत्फलानि स्युरिति वारेषु सप्तसु ॥२३॥
विजयो विहितः सम्यग्हवनात्तिथिऋक्षयोः। विजयं शृणु देवेशि कथयामि क्रमेण ते ॥२४॥
प्रतिपत्तिथिमारभ्य पञ्चम्यन्तक्रमेण वै। शालीचणकमुद्गैश्च यवमाषैश्च होमतः ॥२५॥
महिषाज्यप्लुतैस्ताभिस्तिथिभिः समवाप्नुयात्। षष्ठ्यादि च दशम्यन्तमजाभवघृतैस्तदा ॥२६॥
प्रागुक्तैर्निस्तुषैर्होमात् प्रागुक्तं फलमाप्नुयात्। तदूर्ध्वं पञ्चदश्यन्ते समस्तैश्च तिलद्वयैः ॥२७॥
सिताक्तैः पायसैः सिक्तैराविकैस्तु घृतैस्तथा। हवनात्फलमाप्नोति यदादौ फलमीरितम् ॥२८॥
एवं नक्षत्रवृक्षोत्थवह्नौ तैस्तैर्मधुप्लुतैः। हवनादपि तत्प्राप्तिर्भवत्येव न संशयः ॥२९॥
विद्यायां प्राग्वदर्णानि पञ्च युञ्ज्यात्स्वरैस्तथा। अशीत्यर्णवती विद्या तैर्यन्त्राणि शृणु प्रिये ॥३०॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च दश सूत्राणि पातयेत्। एकाशीतिपदानि स्युस्तेषु तानि लिखेत्क्रमात् ॥३१॥
मध्यकोष्ठेऽभिधां कृत्वा प्रागुक्तविधिना युतम्। शूलीकृत्य च रेखाग्राण्यत्रावाह्याभिपूज्य ताम् ॥३२॥
उपासीत पुरो विद्यां जपं नित्यं समर्चयेत्। विद्याक्रमं तत्र यन्त्रे यजेत्तत्फलमाप्नुयात् ॥३३॥

सर्वत्र उक्त यन्त्र के पूजन-अर्चन आदि कर्म में उस-उस नित्या का अर्चन एवं उस-उस वार तथा वारेश का पूजन करके बाद के कर्मों को एकाग्रता से करे तो शीघ्र ही उसका फल मिलता है; अन्यथा फल नहीं मिलता। गुरुवार को पीपल काष्ठ की अग्नि में उसके पत्ते-फल को घृतप्लुत करके हवन करने से उसी दिन फल प्राप्त होता है। गूलर काष्ठ की अग्नि में शुक्रवार को गूलर के पत्तों, फल, काष्ठ को घृताक्त करके हवन करने से शत्रु पराजित होते हैं। शमी काष्ठ की अग्नि से उसके कांड, पत्तों को काली गाय के घी से सिक्त करके हवन से शत्रु पराजित होता है।

तिथियों एवं नक्षत्रों में सम्यक् हवन से विजय होती है, उसे क्रम से कहता हूँ। प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ करके पञ्चमी तक प्रत्येक तिथि में अलग-अलग शाली, चना, मूंग, यव, उड़द को भैंस के घी से सिक्त करके हवन करने से होता विजयी होता है। षष्ठी से दशमी तक पूर्वोक्त अन्नों को बकरी के घृत से सिक्त करके हवन करने से विजयी होता है। एकादशी से पूर्णिमा तक सबों को तिल के साथ सितात्त पायस को भेड़ के घृत से सिक्त करके हवन से पूर्ववत् फल मिलता है। इसी प्रकार नक्षत्र वृक्षोत्थ अग्नि में हवन करने से विजयी होता है। विद्या के पाँच वर्णों को सोलह स्वरों से युक्त करने के बाद विद्या अस्सी वर्णों की हो जाती है, उसके यन्त्रों को सुनो।

पूरब से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर दश रेखाओं को खींचने से इक्यासी कोष्ठ बनते हैं। मध्य कोष्ठ में साध्य नाम लिखे। शेष अस्सी कोष्ठों में विद्या के अस्सी अक्षरों को लिखे। रेखाग्रों में त्रिशूल बनावे। उसमें आवाहन करके पूजन करे। तब जप करे। विद्याक्रम से यन्त्र में पूजन करने से उक्त फल मिलता है।

विजयानित्यायन्त्रम्

अत्र यन्त्रलेखनक्रमः सुगमः। तथा—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च चतुःसूत्रनिपातनात्। नवानि सम्भवन्त्यत्र कोष्ठानि परमेश्वरि ॥३४॥
तेषु प्रत्येकमब्जानि साष्टपत्राणि संलिखेत्। तेषु मध्यस्थपद्मस्य कर्णिकायां समालिखेत् ॥३५॥

नामगर्भां तु तां विद्यां तद्बहिश्चाष्टपत्रके। तेष्वादितोऽष्टौ संलिख्य बिन्दुना तद्बहिस्तथा ॥३६॥
कर्णिकायां तु नामैकं बहिरष्टौ तथाष्टसु। एवमष्टसु संलिख्य वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥३७॥
विलोमैरनुलोमैश्च मायाबिन्दुसमन्वितैः। चतुरस्रत्रये बाह्ये ळक्षावग्रे समालिखेत् ॥३८॥
एवं कृत्वा हस्तयुग्ममाने कुम्भं विधाय तम्। विद्याक्षरौषधिक्वाथजलैरापूर्य पूर्ववत् ॥३९॥
अभ्यर्च्य विद्यामयुतं जपित्वा तैर्विधानतः। अभिषिञ्चेत्ततः क्लेशैर्विमुक्तो जायते सुखी ॥४०॥
विजयं सर्वतो भूयात्प्रोक्तेष्वपि च सप्तसु। नवग्रहार्तौ रिपुभिः सर्वतः क्लेशसम्भवे ॥४१॥
समरस्योद्यमे कीर्तिसमृद्ध्योरप्यवाप्तये। पुत्राप्त्यै वाञ्छितप्राप्त्यै त्रिषु जन्मसु कारयेत् ॥४२॥
एतद्यन्त्रं गैरिकेण पीठे संलिख्य तत्र ताम्। देवीमावाह्य संपूज्य जपेद्विद्यां तथायुतम् ॥४३॥
एवं त्रिःसप्तभिः सप्तरात्राद्विश्वं वशं नयेत्। राजानं वनितां मर्त्यानन्यांश्च प्राणिनोऽखिलान् ॥४४॥
हरिद्राढ्यपटे कृत्वा कलशे वा शरावयोः। निधाय भित्तिमध्ये वा शयनस्थानके निजे ॥४५॥
अभ्यर्च्य विद्यया जापं कुर्यात्संध्यासु नित्यशः। सहस्रं प्रोक्तकलनात्स्तम्भयेदखिलं दृढम् ॥४६॥
शत्रोरुद्योगरोषाभ्यामनिष्टकरणं तथा। व्यवहारे रणोद्योगे वादे वाचं रुषं मतिम् ॥४७॥
एतत्प्रागुक्तसुरभिद्रव्यैरालिख्य तत्र ताम्। संध्यासु पूजयेन्नित्यं सहस्रं प्रजपेत्तथा ॥४८॥
प्रोक्तकालप्रयोगेण श्रियं प्राप्नोति पुष्कलाम्। इति।

अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च चतुश्चतुःसूत्रनिपातनात् समान्तरालानि नव कोष्ठानि कृत्वा, तेषु नवसु कोष्ठेषु अष्टदलपद्मानि सकर्णिकानि नव कृत्वा, मध्यष्टदलकर्णिकायां साध्यनामयुक्तां विजयाविद्यां विलिख्य, बहिरष्टसु दलेषु प्रागुक्ताशीत्यक्षरेषु प्रथमतोऽष्टाक्षराणि विलिख्य, पूर्वदिग्गताष्टदले कर्णिकायां नवमाक्षरं साध्यनामगर्भं विलिख्याष्टदलेष्वष्टाक्षराणि विलिख्य, तथैवाग्नेयदिक्स्थाष्टदलपद्मेषु विलिख्य बहिश्चतुरस्रत्रयं कृत्वाभ्यन्तराले विसर्गयुक्तां विलोममातृकां विलिख्य तद्बहिर्ळक्षाभ्यां वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर चार-चार रेखाओं को खींचने से नव कोष्ठ बनते हैं। उन नवों कोष्ठों में से प्रत्येक में एक-एक अष्टदल कमल कर्णिकासहित बनावे। उनमें से मध्यस्थ पद्म की कर्णिका में साध्य नाम-युक्त विजया विद्या लिखे। बाहर आठ दलों में पूर्वोक्त अस्सी अक्षरों में से आठ अक्षर लिखे। पूरब दिशा वाले अष्टदल की कर्णिका में नवमाक्षर के गर्भ में साध्य नाम लिखे। आठ दलों में आठ अक्षर लिखे। इसी प्रकार आग्नेयादि दिशा के अष्टदल पद्मों में भी इसी प्रकार लिखे। इसके बाहर तीन भूपुर बनावे। तीन भूपुरों के दो अन्तरालों में विसर्गयुक्त विलोम मातृका लिखे। उसके बाहर ळं क्षं लिखकर वेष्टित करे।

इस यन्त्र को दो हाथ विस्तृत बनावे। प्रत्येक पद्म में एक-एक कुम्भ इस प्रकार कुल नवकुम्भ रखकर उन्हें विद्याक्षरौषधि क्वाथ जल से पूर्ववत् भरे, अर्चन करे। विद्या का जप एक हजार करे। उस जल से पीड़ित मनुष्य का विधिवत् अभिषेक करे तो रोगी निरोग हो जाता है। उन प्रोक्त सातों यन्त्रों से सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। इससे शत्रु नवग्रहों की पीड़ा से ग्रस्त होता है। युद्ध के उद्यम में कीर्ति और समृद्धि मिलती है। पुत्रप्राप्ति एवं वांछित प्राप्ति तीनों जन्मों में होती है। इस यन्त्र को पीठ पर गेरू से लिखकर उसमें देवी का आवाहन-पूजन के बाद विद्या का एक हजार जप करे। इस प्रकार तीन या सात रातों तक करने से विश्व वश में हो जाता है। राजा, वनिता, मनुष्य, अन्य प्राणी सभी वश में हो जाते हैं। हल्दी में रंगे वस्त्र पर यन्त्र बनाकर कलश में या शराव में रखकर या अपने शयन कक्ष की भीत पर रखकर सन्ध्या में विद्या का जप एक हजार करे। इससे सबों का दृढ़ स्तम्भन होता है। शत्रु का उद्योग एवं क्रोध से अनिष्टकरण, व्यवहार में युद्ध में वाद में वचन में मति में स्तम्भन होता है। इस यन्त्र को पूर्वोक्त सुगन्धित द्रव्यों से लिखकर उसमें देवी का पूजन सन्ध्याओं में नित्य करे और हजार जप करे तो विहित काल में प्रयोग से अपार धन मिलता है।

तथा—

अथान्यद्वज्ररूपं तु यन्त्रं वक्ष्येऽतिवैभवम् ॥४९॥

प्राग्वद् द्विसप्तरूपाणां पातेनोत्पादयेत्तथा। कोष्ठानि नवषष्ट्या च युतं शतमतिस्फुटम् ॥५०॥
तच्चतुष्कोणकोष्ठानि मार्जयेत्सैकविंशतिम्। मध्ये वज्रं भवेत्पञ्चाशीतिकोष्ठैर्यथाविधि ॥५१॥
तच्चतुर्दिक्षु विलिखेत्त्रिकोणान्येककोणतः। सर्वमध्यस्थकोष्ठे च चतुर्दिक्षु न्यसेत्तथा ॥५२॥
विद्यां नामोदरां कृत्वा प्राग्वद्वर्णांस्तु संलिखेत्। एतदग्रचतुष्कस्य स्पर्शान् त्रिचतुरस्रकम् ॥५३॥
विधाय तत्र विलिखेन्मातृकां प्राग्विधानतः। एतेन वज्रयन्त्रेण विजया विजयप्रदा ॥५४॥
एतत्प्रोक्तेषु संलिख्य स्थापयेत्प्रोक्तरूपतः। विजयं समवाप्नोति प्रोक्तेष्वपि च सप्तसु ॥५५॥
विलिख्याश्वत्थफलकातले यन्त्रं कुचन्दनैः। जपाराधनसंसिद्धं स्थापयेच्छून्यवेश्मसु ॥५६॥
देशे वा तत्र दिनशो वर्धते श्रीरचञ्चला। पिशाचा राक्षसाः कृत्या वेतालाः स्युर्न तत्र वै ॥५७॥
पलाशफलकायां तु विलिख्यैतद्यथाविधि। स्थापयेद्यत्र कुत्रापि तत् क्षेत्रं ब्राह्मणास्पदम् ॥५८॥
पूर्वोक्तस्थापनाद्राजधानी भवति सुस्थिरा। वटे विलिख्य खननात्पत्तनं भवति ध्रुवम् ॥५९॥
उदुम्बरे विधायेत्थं स्थापनादचिरेण वै। अहितानाश्रयं स्थानं भवत्येव न संशयः ॥६०॥
वज्रस्य दिक्त्रिकोणान्तरालात्कुर्यात्त्रिशूलकम्। दाहव्याप्ते स्वसंयुक्ते लिखेत्तच्छृङ्गमध्ययोः ॥६१॥
तत्र संस्थाप्य गदितं विद्याजप्तविभूतिना। भालस्थेनाभिजप्तेन तमाविश्य गदो वदेत् ॥६२॥
स्वावेशकारणं कर्म स्वापयानक्रमं तथा। ग्रहभूतपिशाचाद्या अस्याविश्यापयान्ति वै ॥६३॥
(तदैव दासवत्तस्य वशे भवति तद्बलात्।) यन्त्रमेतद्विलिख्याश्मन्यभ्यर्च्य स्थापयेत्क्वचित् ॥६४॥
राज्ञो गेहे तस्य राज्ञः क्षमा मुञ्चति नान्वयम्। स्थाने गजानां वाहानां नव कृत्वा नवस्वपि ॥६५॥
स्थानेषु स्थापितान्येतान्यर्चयेद् दिनशस्तथा। दिक्षु मध्ये च तत्रैव रोगाः कृत्याः परेरिताः ॥६६॥
वीक्षितुं भुवनं नैव शक्ताः स्युस्तत्प्रभावतः। चन्द्रचन्दनकाश्मीरैरालिख्याभिनवे पटे ॥६७॥
अभ्यर्च्य विद्याजप्तं तं पटमास्तीर्य शाययेत्। दाहज्वरार्तमचिरान्मुच्यते तज्ज्वरेण सः ॥६८॥
अन्येष्वपि गदेष्वेवं कारयेत्तद्विमुक्तये। समरेषु महीपानां यन्त्रमेतदुदीरितम् ॥६९॥
निःसाने पटहेऽन्येषु वाद्येषु च समालिखेत्। दरदेनाथ तन्मध्ये तामावाह्य समर्चयेत् ॥७०॥
विजयां विजयावाप्त्यै युगपत्ताडयन् व्रजेत्। प्रत्यर्थिसेना तच्छब्दाकर्णनेन पलायते ॥७१॥
दिशो दश भयोद्विग्ना नाभियाति कदाचन। सजीवद्यूतकालेषु यन्त्रमेतद्विनिर्मितम् ॥७२॥
गुलिकीकृत्य तत्कण्ठे बद्ध्वा पश्चात्तु योजयेत्। एतद्दर्शनमात्रेण पलायन्ते दिशो दश ॥७३॥
निर्जीवेषु च तद्यन्त्रं जयमाप्नोति सर्वतः। नासाध्यं विद्यते तेन वज्रयन्त्रेण पार्वति ॥७४॥
ध्यायेद्वक्त्रे रिपोर्यन्त्रं विद्यां वा लोहिताकृतिम्। तदैव दासवत्तस्य वशो भवति तद्बलात् ॥७५॥

इति ते विजयानित्यावैभवास्तु समीरिताः।

एतद्वज्रस्तु सुगमत्वान्न विस्तारितः। इति विजयानित्याप्रयोगविधिः।

अतिवैभवयुक्त अन्य वज्ररूप यन्त्र को कहता हूँ। पूर्ववत् पूरब से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर चौदह-चौदह रेखा खींचे। इससे एक सौ उनहत्तर कोष्ठ बनते हैं। चारो कोनों में इक्कीस-इक्कीस कोष्ठों को इस प्रकार मिटा दे कि शेष पच्चासी कोष्ठों से वज्र का आकार बन जाय। चारो दिशाओं में एक-एक कोष्ठ में त्रिकोण बनावे। शेष ८१ कोष्ठों में से सबके बीच वाले कोष्ठ में साध्य नाम सम्पुटित मूल विद्याक्षरों को लिखे। शेष अस्सी कोष्ठों में सबसे नीचे वाले कोष्ठ से प्रारम्भ करके स्वरयुक्त अस्सी अक्षरों को प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति को लिखे। इसके बाहर तीन भूपुर बनावे। उनके अन्तरालों में पूर्वोक्त विधान के मातृकाओं को लिखे। इस वज्रयन्त्र से विजया विजयादायिनी होती है।

उक्त क्रम से इस यन्त्र को लिखकर विहित रूप से स्थापित करे तो इससे कथित सातों प्रकार की विजय मिलती है। पीपल के पटरे पर काला चन्दन से यन्त्र बनावे। इसे जप-आराधन से सिद्ध करके सूने घर में स्थापित करे तो उस देश में या स्थान में प्रतिदिन अचंचला श्री की वृद्धि होती है, पिशाच-राक्षस-कृत्या-वेताल वहाँ नहीं फटकते। इसे पलाश के पटरे पर यथाविधि लिखकर जहाँ-कहीं भी स्थापित करने पर वह क्षेत्र ब्राह्मण का स्थान हो जाता है। पूर्वोक्त स्थापन से राजधानी स्थिर होती है। वट के पटरे पर यन्त्र बनाकर गाड़ देने से नगर स्थिर होता है। गूलर के पटरे पर यन्त्र बनाकर स्थापन करने से थोड़े दिनों में ही वह स्थान दुष्टों से रहित हो जाता है। वज्र की दिशा में स्थित त्रिकोण में त्रिशूल बनावे। उन त्रिशूलों के मध्य शूल में 'रं-यं' लिखे। उसे स्थापित करके रोगी के भाल पर विद्या का जप करने से उसमें आवेशित रोग अपने आवेश का कारण, स्वाप एवं यान कर्म, ग्रह-भूत-प्रेत-पिशाचादि का आवेश नष्ट होता है। इससे सभी दासवत् साधक के वश में होते हैं। इस यन्त्र को लिखकर पूजन कर किसी राजमहल में स्थापित करे तो पृथ्वी उस राजा के कुल का त्याग नहीं करती। राजा के स्थान में हाथी-घोड़ों की वृद्धि होती है। जिस स्थान पर यह यन्त्र स्थापित रहता है, उस स्थान में दिन में पूजा करे तो रोग-कृत्या आदि भाग जाते हैं। इसके प्रभाव से रोगादि उस स्थान को देखने में भी समर्थ नहीं होते।

नये वस्त्र पर कपूर-चन्दन-केसर से यन्त्र बनावे। उसकी पूजा और जप करे। उस वस्त्र को बिछाकर उस पर रोगी को सुलावे तो दाह ज्वरार्त का ज्वर तुरन्त छूट जाता है। अन्य रोगों से छुटकारे के लिये भी इसका प्रयोग करे। राजाओं के युद्ध में इस यन्त्र को नि:सान, पटह और अन्य वाद्यों पर सिगरफ से लिखकर देवी का आवाहन-पूजन करे। युद्ध में उसे बजाने से प्रतिपक्ष की सेना उन वाद्यों के शब्द सुनकर ही भाग खड़ी होती है। इसे स्थापित करने पर दशों दिशाओं में भय से उद्विग्न होकर शत्रु कभी नहीं आते। जीव श्वास के चलते समय इस यन्त्र को बनावे। इसकी गोली बनाकर कण्ठ में धारण करे तो इसे देखकर रोगादि सभी दिशाओं में भाग जाते हैं। उस यन्त्र से सर्वत्र विजय होती है। उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। शत्रु के मुख में विद्या का ध्यान लाल रंग का करे। ऐसा करते ही शत्रु दासवत् वश में हो जाता है।

सर्वमङ्गलाप्रयोगविधिः

अथ सर्वमङ्गलाप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१६.१७)—

जपं तु नित्यशः कुर्यादग्रे तस्याः सहस्रकम्। प्राग्वत्तां साधयेद्विद्यां द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ॥१॥
होमं दशांशतः कुर्यादन्नाज्याभ्यां घृतेन वा। एवं संसिद्धविद्यस्तु कुर्यात्प्रोक्तानशेषतः ॥२॥
प्रयोगानन्यथा तस्य नैष्फल्यमयशो मृतिम्। विदध्यात्तेन तां प्रोक्तक्रमेणाराध्य भक्तितः ॥३॥
संसाध्य पश्चात्कुर्वीत मङ्गलान्मङ्गलोदितान्। प्रयोगार्था वर्णशक्तीर्वक्ष्ये देवि शृणु प्रिये ॥४॥
सोमसूर्याग्निरूपाश्च ताश्चाष्टत्रिंशदेव ताः। अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः ॥५॥
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा। पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः ॥६॥
एताः षोडश चन्द्रस्य कलाः कल्पद्रुमोपमाः। तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ॥७॥
सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा। एतास्तु शक्तयः प्रोक्ताः क्रमाद् द्वादश भानुजाः ॥८॥
भकारादिडकारान्तवर्णोच्चारो विलोमतः। धातार्यमा च मित्रश्च वरुणो सौभगस्तथा ॥९॥
विवस्वानिन्द्रपूषार्का पर्जन्यः समनन्तरः। त्वष्टा विष्णुरिति प्रोक्ता द्वादशार्काः क्रमेण वै ॥१०॥
कादिठान्तार्णतनवः सर्वगाः सर्वसिद्धिदाः। धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ॥११॥
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे अपि। यादिक्षान्ताक्षरमयाः शक्तयो दश कीर्तिताः ॥१२॥
तेषां दशानां नामानि वासनोक्तानि ते शिवे। कादिक्षान्ताक्षराणां तु द्वात्रिंशन्मिथुनानि वै ॥१३॥
प्रोक्तक्रमेण संपूज्य विनियुञ्ज्यात्तु सर्वतः। स्वराणां तु स्वतन्त्रत्वात्स्वतन्त्राः शक्तयस्तथा ॥१४॥
तासां नाथास्तत्सदृशनामरूपाः समीरिताः। मिथुनान्येवमुक्तानि त्रिंशदष्टक्रमेण वै ॥१५॥
तानि संपूज्य तत्तेजस्त्रयात्मनि जले शिवे। प्रोक्तानि देवतारूपाण्यावाह्याभ्यर्च्य तैर्जलैः ॥१६॥
अभिषेकात्तु तत्तेजस्त्रयं देव्यात्मता भवेत्।

अत्र स्वरान्विना द्वाविंशतिमिथुनानि सूर्यस्याग्नेश्च कलाद्वाविंशतित्वात्स्वरैर्मिलित्वा अष्टात्रिंशन्मिथुनानीत्यर्थः। तथा—

वाताद्यैर्ग्रसमायान्तैः षट्सप्ततियुतैः शतैः ॥१७॥
पञ्चभिर्योजयेन्नित्यां विद्यां तां सर्वमङ्गलाम्। ततस्तस्या वनस्थाने स्वरान् षोडश योजयेत् ॥१८॥
ततः सहस्रैर्नवभिर्द्विशतेन च षोडश। रूपाणि नित्याविद्याया जायन्ते परमेश्वरि ॥१९॥
तैर्यन्त्राणि प्रयोगांश्च फलानि च वदामि ते।

अस्यार्थः—वाताद्यैरकाराद्यैर्ग्रसमायान्तैर्ग्रासो क्षकारः माया विसर्गस्तत्सहितक्षकारान्तैः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशत(५७६)वर्णैः पूर्णमण्डलरूपैरित्यर्थः। ततः सर्वमङ्गलाविद्याया वनस्थाने औकारस्थाने षोडशस्वरान् योजयेत्। तद्बीजमेव षोडशस्वरयुक्तं कुर्यादित्यर्थः। एवं षोडशस्वरयुक्तसर्वमङ्गलाबीजेन प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णान् योजयेत्। यथा—स्वंअंस्वंआंस्वंइंस्वंईं इत्यादि स्वंक्षः इत्यन्तम् (५७६)। एवं स्वांअंस्वांआंस्वांइंस्वांईं इत्यादि स्वांक्षः इत्यन्तम् (५७६)। स्विंअंस्विंआंस्विंइंस्विंईं इत्यादि स्विंक्षः इत्यन्तम् (५७६)। एवं नव सहस्राणि षोडशोत्तरद्विशतवर्णाः (९२१६) जायन्ते इत्यर्थः।

सर्वमंगला नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि सर्वमङ्गला नित्य के आगे नित्य एक हजार जप करे। पूर्ववत् इस विद्या का साधन बत्तीस लाख जप से करे। दशांश हवन अत्र आज्य या घी से करे। इस प्रकार की सिद्धि विद्या से सभी प्रोक्त प्रयोगों को करे; अन्यथा निष्फलता, अयश और मरण मिलता है। इसलिये देवी का आराधना प्रोक्त क्रम से भक्तिसहित करे। सिद्ध होने पर मंगला से उदित मांगलिक प्रयोग करे। हे देवि! सुनो, अब वर्णशक्ति को कहता हूँ। सभी वर्ण सोम-सूर्याग्निरूप हैं। उन देवों की शक्तियाँ अड़तीस हैं; जैसे अमृता मानदा पूषा तुष्टि पुष्टि रति धृति शशिनी चन्द्रिका कान्ति ज्योत्स्ना श्री प्रीति अंगदा पूर्णा पूर्णामृता कामदायिनी—ये स्वरों की शक्तियाँ हैं। चन्द्रमा की सोलह कलाएँ कल्पद्रुम के समान हैं। तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा—ये बारह शक्तियाँ सूर्य की हैं। भ से ड तक बारह वर्णों की ये शक्तियाँ हैं। बारह वर्णों के बारह सूर्य हैं—धाता, अर्यमा, मित्र वरुण, सौभग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, अर्क, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु। अग्नि के दश वर्ण क से ठ तक हैं। ये सर्वगा और सर्वसिद्धिदा हैं। इन दश वर्णों की शक्तियाँ इस प्रकार हैं—धूम्रा, अर्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यकव्यवहा। य से क्ष तक दश वर्णों की दश शक्तियाँ हैं। उन दशों के नाम वासना में कहा गया है। स्वरों के स्वतन्त्र होने से उनकी शक्तियाँ भी स्वतन्त्र हैं। उन्हीं के नामरूप के समान उनके नाथ भी हैं। अड़तीस मिथुन क्रम से उक्त है। उनकी पूजा करके उनके तेजत्रय को जल में ले आये। देवता रूप में उनका आवाहन पूजन करे। उनके तेजत्रय से अभिषेक करने पर साधक देवी के समान हो जाता है।

वातादि ग्रास माया तक इनकी संख्या ५७६ होती है। यहाँ पर वात यकार है। ग्रास क्षकार है। ५७६ वर्णों का पूर्ण मण्डल होता है। सर्वमंगला के पाँच वर्णों को उनके साथ जोड़े। उसके औकार स्थान में सोलह स्वरों को जोड़े; इसका अर्थ है कि सर्वमंगला बीजों को सोलह स्वरों से युक्त करे; जैसे—स्वं अं स्वं आं स्वं इं इत्यादि इससे ५७६ वर्ण होते हैं। इसी प्रकार स्वां अं स्वां आं स्वां इं इत्यादि भी ५७६ होते हैं। इसी प्रकार स्विं अं स्विं आ: इत्यादि भी ५७६ होते हैं। इस प्रकार कुल ९२१६ वर्ण होते हैं। इनसे निर्मित यन्त्र, उनके प्रयोग और फलों को कहता हूँ।

तथा—

वृत्तद्वयं विधायास्य बहिः षट्कोणमालिखेत् ॥२०॥
तद्बहिश्चाष्टपत्राब्जं तद्बहिस्तत्त्रयं तथा। कृत्वा तेषु न्यसेद्विद्याकूटान्युक्तक्रमेण वै ॥२१॥
तेष्वाद्यं मध्यतः साध्यसमेतं विलिखेद्बहिः। षट्सु कोणेषु चत्वारि प्रत्येकं विलिखेत्ततः ॥२२॥
अष्टच्छदेषु प्रत्येकं पञ्च पञ्च समालिखेत्। बहिर्वृत्तान्तरयुगे मातृकां माययान्विताम् ॥२३॥

विलोमामनुलोमाञ्च स्वेन सम्यक्समालिखेत्। अन्तः षडन्तरालेषु पर्यायदिनसम्भवे ॥२४॥
नित्ये लिखेदग्रतस्तु प्रादक्षिण्येन सर्वतः। एवं यन्त्राणि जायन्ते तैः कूटैरुक्तभेदतः ॥२५॥
शतञ्च चत्वारिंशच्च चत्वारि च ततः क्रमात्। एवमन्यानि कूटानि प्रोक्तानि विलिखेत्क्रमात् ॥२६॥
मध्ये नामसमेतानि तदन्यान्यभितो लिखेत्। त्रयोदशमितैर्लक्षैः सप्तविंशतिसंख्यकैः ॥२७॥
सहस्रैश्च शतेनापि चतुर्भिस्तानि संख्यया। यन्त्राणि तेन जायन्ते तैश्चासौ सर्वमङ्गला ॥२८॥
एवमासां तु नित्यानां यन्त्राणि स्युः पृथक्पृथक्। तस्मादाभिरसाध्यानि न कदाचिच्च कुत्रचित् ॥२९॥
विद्यन्ते तेषु यत्किञ्चिद्वक्ष्ये कोऽशेषतो वदेत्। नाथात्मकानि येन स्युस्तेन तानि नवक्रमैः ॥३०॥
भित्त्वा षोडशधा देवि विदध्याद्विनियोगकम्। विशालमध्यविन्यासं विधाय नवकोष्ठकम् ॥३१॥
प्रागादिमध्यपर्यन्तं प्रादक्षिण्यक्रमाल्लिखेत्। नवानि नवसु प्राज्ञे तेषु ऋषाणि चालिखेत् ॥३२॥
सप्तम्या साध्यसंयुक्तं नाथान् देवीश्च तत्क्रमात्। यद्यद्धि वाञ्छितं कर्म तत्तत्तेषु विलिख्य वै ॥३३॥
पीठे वा भूतले वापि पूजयेत्प्रोक्तवासरे। ततः प्राप्ते वाञ्छितार्थे स्वात्मन्युद्वास्य देवताः ॥३४॥
चक्रं प्रक्षाल्य तत्तोयं केदारादिषु निक्षिपेत्। एवमन्यानि यन्त्राणि प्रोक्तानि क्रमतः शिवे ॥३५॥
विनियुञ्ज्यादभीष्टेषु कार्येषु क्रमतः शिवे। परसंख्यासमेतानि तेषु तेष्वप्ययं विधिः ॥३६॥
सर्वतः सौम्यकर्माणि सिध्यन्त्येवानया ध्रुवम्। वश्येषु ज्ञानसंप्राप्तौ सर्वप्रत्यूहशान्तये ॥३७॥
लक्ष्मीप्राप्तौ तथारोग्यसिद्धौ रोगार्तिशान्तिषु। विजयाय समस्तापत्तारणायाभिवृद्धये ॥३८॥
पुत्राप्त्यै सर्वरक्षायै पूजयेत्तेषु तत्क्रमात्। गजाश्वगोखरोष्ट्राजमहिषीणां विवृद्धये ॥३९॥
तेषां रोगादिपीडासु तच्छान्त्यै च यथाक्रमात्। निर्माय नवयन्त्राणि तत्र तत्रार्चयेच्छिवाम् ॥४०॥
तेषु तेषूक्तकार्येषु तत्तत्संप्राप्तिहेतवे। नव प्राकारयुक्तानि षोडश प्रथमादिषु ॥४१॥
तिथिषु प्रोक्तरूपाणि तत्र तां सर्वमङ्गलाम्। पूजयेद्वाञ्छितावाप्त्यै प्रथमे सर्वदा यजेत् ॥४२॥
एवमेषा महासिद्धिकरी पूजाजपादिना।

पहले दो वृत्त बनावे। उसके बाहर षट्कोण बनावे। उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। उनमें विहित क्रम से विद्याकूटों को लिखे। सबके मध्य में साध्य नाम के सहित विद्या लिखे। उसके बाहर षट्कोण के कोणों में चार-चार अक्षर लिखे। अष्टदल पद्म में प्रत्येक में पाँच-पाँच अक्षर लिखे। सबसे बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मायान्वित मातृकाओं को विलोम-अनुलोम क्रम से लिखे। षट्कोणों के अन्तराल में पर्यायनित्या और दिननित्या के छः अक्षरों को अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से लिखे। इसी प्रकार मध्य कूट को स्थापित करके द्वितीय यन्त्र में अग्रिम कूटों को लिखे। इसी प्रकार तृतीय में अग्रिम कूटों को लिखे। इस प्रकार एक-एक कूट से एक सौ चौवालीस-एक सौ चौवालीस यन्त्र बनते हैं। इस क्रम से यन्त्रों की संख्या १३२७१०४ होती है। इसी प्रकार अन्य नित्याओं के यन्त्र भी होते हैं। यन्त्रों का विनियोग नाथात्मक होता है।

एक विशाल नव कोष्ठात्मक चक्र बनावे। प्रत्येक कोष्ठ में पाँच-पाँच रेखा खींचने से सोलह कोष्ठ होते हैं। प्रत्येक कोष्ठ में एक-एक यन्त्र लिखे। इस प्रकार एक सौ चौवालीस यन्त्र बनते हैं। नव कोष्ठों में तीन आवृत्ति में सत्ताईस नक्षत्रों को लिखे। नवों में नव नाथों को लिखे। सप्तम्यन्त साध्य नाम के बाद वांछित कर्म और देहि लिखे। तदनन्तर विहित क्रम से पूजादि करने पर कथित फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अन्य यन्त्रों का भी यही क्रम कहा गया है। पीठ में या भूमि में विहित वासर में पूजा करे। तब वांछित की प्राप्ति के लिये अपनी आत्मा में देवता का उद्वासन करे। चक्र को धोकर उस जल को केदारनाथ आदि तीर्थों में डाल दे। इसी प्रकार अन्य यन्त्रों का भी क्रम कहा गया है। अभीष्ट कार्यों के लिये विनियोग परसंख्या समेत विधिवत् करे। इससे सर्वत्र सौम्य कर्म सिद्ध होते हैं। वश्य, ज्ञानप्राप्ति, प्रत्यूह-शान्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, आरोग्यसिद्धि, रोगार्ति शान्ति, युद्ध में विजय, सभी तापों से मुक्ति, पुत्रप्राप्ति एवं सर्वरक्षा के लिये क्रम से पूजन करे। हाथी, घोड़े, गाय,

गदहा, ऊँट, भैंस की वृद्धि के लिये एवं उनके रोगपीड़ा की शान्ति के लिये यथाक्रम से नव यन्त्र बनाकर शिवा का अर्चन करे। तत्तत् कार्यों में फल प्राप्ति के लिये नव प्राकारयुक्त सोलह यन्त्रों में विहित प्रथमादि तिथियों में सर्वमंगला का पूजन करे। इससे वांछित प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इसकी पूजा-जपादि महती सिद्धियों को देने वाली है।

लघुमन्त्रपूजाविधानम्

लघुमन्त्रक्रियामासां पूजां सर्वार्थसिद्धिदाम् ॥४३॥

पूर्णामनतिविस्तारां मङ्गलां ब्रूहि मे शिव। देवर्षिसिद्धगन्धर्वयज्ञदेवाङ्गनाश्रयाम् ॥४४॥
पूजां वक्ष्यामि देवेशि गुह्यां शृणु मनोहराम्। विद्यया कुलसुन्दर्या कराङ्गन्यासपूर्वकम् ॥४५॥
अर्घ्यं तया विधायाथ पीठे चक्रं विधाय तत्। चन्दनागुरुकर्पूररोचनादरदादिषु ॥४६॥
एकेन तत्र ताः सम्यगुक्तरूपमथार्चयेत्। रत्नादिषूक्तेष्वालिख्य प्रतिष्ठाप्यात्र पूजयेत् ॥४७॥
वृत्तस्यायामविस्तारद्वये त्वेकतुरीयतः। वृत्ते विधाय चिह्नानि तेषु सूत्राणि पातयेत् ॥४८॥
त्रयमन्तरतो मुक्त्वा तेन द्वादशकोणकम्। तेषां मर्मसु मध्ये च विदध्याद्वृत्तयुग्मकम् ॥४९॥
मध्यवृत्तस्य मध्ये तु योनिं कुर्यात्समास्रकम्। प्राग्वत्तिस्रोऽर्चयेन्नित्यास्तत्कोणेषु प्रदक्षिणम् ॥५०॥
अन्या अन्येषु कोणेषु पूजयेद् द्वादश क्रमात्। अग्रात्प्रदक्षिणं पश्चाद्बलिं दध्याद्यथाविधि ॥५१॥
सप्ताक्षर्या केवलया केवलां ललितां जपेत्। नित्यानां ललिताद्यानां षोडशानां च नामभिः ॥५२॥
नित्यासप्ताक्षरीभिः स्युर्विद्याः पूजासु सर्वदा। ताभिः षोडशविद्याभिर्नित्यास्ताः षोडशार्चयेत् ॥५३॥
तद्विद्याक्षरसंख्यास्तु शृणु वक्ष्ये यथाक्रमम्। प्रथमायाश्च सप्तम्या विद्या स्यात्षोडशाक्षरी ॥५४॥
द्वितीयायाश्चतुर्थ्यास्तु चतुर्दशभिरक्षरैः। तृतीयायाश्च षष्ठ्याश्च दशम्या दशपञ्चकम् ॥५५॥
द्वादश्याः सचतुर्दश्याः पञ्चदश्याः क्रमेण वै। पञ्चम्याश्च नवम्याश्च त्रयोदश्यास्त्रयोदश ॥५६॥
एकादश्यास्तु साष्टम्याः षोडश्या द्वादशोदिताः। अस्मिन्नेवार्चयेच्चक्रे चतुर्विंशतिभिस्तथा ॥५७॥
सविंशतिशता विद्या जपेत्तास्ताश्च सिद्धये। अन्या विंशत्सप्तशतं तैर्यन्त्रेष्वेव पूजनम् ॥५८॥
आसां पूजाजपाद्येषु यन्त्रेषु च समीरितम्। एतल्लघुप्रकारं तु यन्त्रं सर्वार्थदायकम् ॥५९॥
तेन तत्रोक्तमखिलं साधयेद्वज्ररूपिणा। इति।

अत्र 'वृत्तद्वयं विधाय' इत्यादिश्लोकषट्कस्यायमर्थः—प्रथमतो वृत्तद्वयं विधाय तद्बहिः षट्कोणं कृत्वा तद्बहिरष्टदलपद्मं विरच्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा मध्ये साध्यगर्भमाद्यकूटं विलिख्य, षट्कोणे प्रतिकोणं चत्वारि चत्वारि कूटानि विलिख्याष्टपत्रेषु प्रतिपत्रं पञ्च पञ्च कूटानि विलिख्य, बहिर्वृत्तान्तरालद्वयस्याभ्यन्तरान्तराले विसर्गसहितां प्रतिलोममातृकां विलिख्य, बाह्यान्तराले बिन्दुयुक्तामनुलोममातृकां विलिख्यान्तः षट्कोणान्तरालेषु पर्यायनित्या-तद्दिननित्ययोः षडक्षराणि स्वाग्रात् प्रादक्षिण्येन विलिखेदिति। एवं मध्यकूटं तथैव स्थापयित्वा द्वितीययन्त्रेऽग्रिमकूटानि विलिखेदेवं तृतीये तदग्रिमकूटानि विलिखेत्। एवमेकस्यैकस्य कूटस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं (१४४) यन्त्राणि जायन्ते। एवं क्रमेण सर्वाणि यन्त्राणि त्रयोदशलक्षाणि सप्तविंशतिसहस्राणि चतुरुत्तरशतसंख्यानि (१३२७१०४) भवन्ति। एवमन्यासां नित्यानां यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः। यन्त्राणां विनियोगानाह—'नाथात्मकानि' इति। अस्यायमर्थः—विशालायामं नवकोष्ठात्मकं चक्रं विलिख्यैकैकस्मिन् कोष्ठे सूत्रत्रयनिपातनात् षोडश कोष्ठानि विलिख्यैकैकस्मिन् कोष्ठे एकमेकं यन्त्रं विलिखेत्। एवं चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं (१४४) यन्त्राणि भवन्ति। नवकोष्ठेषु त्रिरावृत्त्या सप्तविंशतिनक्षत्राणि विलिख्य नवसु नवनाथान् विलिख्य, सप्तम्यन्तं साध्यनाम 'वाञ्छितं कर्म देहि' इति विलिख्य प्रोक्तक्रमेण पूजादिकं कुर्यात्, प्रोक्तफलानि भवन्तीत्यर्थः। एवमन्येषां यन्त्राणामपि प्रोक्त एव क्रमो ज्ञेयः। 'लघुमन्त्रक्रिया'मित्यादिश्लोकैर्लघुपूजोक्ता। तत्र चतुर्दशारं विलिख्य, मध्ये त्र्यस्रं विधाय तन्मध्ये ललितात्र्यस्रे तिस्रः

चतुर्दशस्वरेषु चतुर्दशनित्याः पूज्या इत्यर्थः। तत्तद्विद्याया उच्चारणाशक्तौ नाममन्त्रैः पूजा कार्येत्याह 'प्रथमायाश्च' इत्यादिश्लोकैः। ते मन्त्रास्तु तत्तत्संख्यां ज्ञात्वोह्याः। 'अस्मिन्नेवार्चयेच्चक्रे' इत्यादिश्लोकेन चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतकूटानि प्रागुक्तान्यप्यस्मिन्नेव चक्रे जपेदित्यर्थः। अन्यानि नित्याप्रकरणे प्रोक्तानि विंशत्युत्तरसप्तशत (७२०) कूटानि तत्रोक्तयन्त्रेष्वेव पूजयेदित्यर्थः।

इस सर्वमङ्गला के लघु मन्त्र की पूजा सर्वार्थसिद्धिदायिनी है। पार्वती ने कहा कि पूर्ण होती हुई भी जो अधिक विस्तृत न हो, ऐसी मंगला की पूजा को मुझसे कहिये; क्योंकि यह देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष एवं देवांगनाओं का आश्रय है। शंकर ने कहा है कि हे देवि! मैं गुह्य एवं मनोहर पूजा कहता हूँ। कुलसुन्दरी विद्या से करन्यास और अंगन्यास करे। अर्घ्य स्थापित करे। पीठ पर चक्र स्थापित करे। चन्दन अगर कपूर गोरोचन और सिंगरक आदि में से किसी एक से उस चक्र का अर्चन करे। एक ही यन्त्र में उसका अर्चन सम्यक् उक्त रूप से करे। रत्नादि में भी उसे अंकित कराकर प्रतिष्ठा करके पूजा करे। लघु मन्त्र क्रिया में चतुर्दशार बनाकर मध्य में त्रिकोण बनावे। त्रिकोण के मध्य में ललिता की पूजा करे। चतुर्दशार में चौदह नित्याओं का पूजन करे। उस विद्या के उच्चारण में अशक्त होने पर नाम-मन्त्रादि से पूजा करे। प्रथम एवं सप्तमी विद्या षोडशाक्षरी हैं। दूसरी और चौथी विद्या चतुर्दशाक्षरी है। तीसरी, छठी और दशवीं विद्या में पन्द्रह अक्षर हैं। बारहवीं और चौदहवीं विद्या पन्द्रह अक्षरों की है। पाँचवीं और नवीं विद्या के तेरह-तेरह अक्षर हैं। ग्यारहवीं और आठवीं विद्या में सोलह और बारह अक्षर हैं। इसमें चौबीस का भी पूजन करे। सिद्धि के लिये विद्या का १२० जप करे। दूसरों की सात सौ बीस चक्रों में करे। इसके जप में यन्त्र का स्मरण करे। यह लघु प्रकार का यन्त्र सर्वार्थदायक है। इन सबों को वज्रयन्त्र से सिद्ध करे।

षोडशनित्यानामविद्याभेदादिभिः कोष्ठरूपवज्रयन्त्रनिर्माणम्

तथा—

तद्वज्रं द्विविधं प्रोक्तं कोष्ठकोणात्मभेदतः ॥६०॥
कोणात्मवज्रनिर्माणप्रयोगाः परतः शिवे। तयोस्तु कोष्ठरूपं तु वज्रं वक्ष्ये यथाविधि ॥६१॥
यत्साधकेप्सितावाप्त्यै सुराङ्घ्रिपसमो भवेत्। प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च चतुर्विंशतिसूत्रतः ॥६२॥
नवविंशतिभिः पञ्चशतं कोष्ठानि तेषु वै। कोणेषु मार्जयेत्षड्भिः षष्टिकोष्ठानि पूर्ववत् ॥६३॥
शिष्टेषु वज्रकोष्ठानि पञ्चषष्ट्या शतद्वयम्। तेषु प्राग्वत्त्रिकोणानि चतुर्दिक्षु चतुष्टयैः ॥६४॥
कोष्ठैर्विधायाधो मध्ये बाह्यारम्भात्प्रदक्षिणम्। प्रवेशगत्या विलिखेच्चित्रादिललितान्तकम् ॥६५॥
मध्येऽवशिष्टेष्वन्यार्णचतुर्विंशतिमालिखेत्। ललितार्णचतुर्भेदजनितां नामशक्तियुक् ॥६६॥
ललितां साध्यगर्भां तु विलिखेन्मध्यकोणतः। एवं यन्त्रं समालिख्य शिलालोहत्रयादिषु ॥६७॥
संस्थाप्य कुत्रचित्स्थाने पूजयेद्वाञ्छिताप्तये।

कोष्ठ कोणात्म भेद से वज्रयन्त्र दो प्रकार के हैं। कोणात्म वज्र निर्माण प्रयोग यन्त्रपटल में कथित है। कोष्ठरूप वज्र को यथाविधि कहता हूँ। इसके साधन से साधक इन्द्र के समान हो जाता है। पूर्ववत् पूर्व में पश्चिम, दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर चौबीस-चौबीस रेखा खींचकर पाँच सौ उन्तीस कोष्ठ बनावे। चारों कोनों से छिआसठ-छिआसठ कोष्ठों को मिटाने से २६५ कोष्ठ शेष बचते हैं। चारो दिशाओं में चार कोष्ठों से त्रिकोण बनावे। मध्य कोष्ठ के नीचे बाहर से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति से चित्रा से ललिता तक लिखे। मध्य में अवशिष्ट चौबीस कोष्ठों में अन्य वर्ण लिखे। ललिता अक्षर के चार भेदजनित नाश शक्ति युक्त ललिता साध्य गर्भ मध्य कोण से लिखे। इस प्रकार शिला या लौहत्रय पर यन्त्र लिखकर जहाँ-कहीं भी स्थापित करके वांछित प्राप्ति के लिये पूजा करे।

यन्त्रप्रयोगफलानि

यस्मिन् देशे वज्रयन्त्रं स्थापितं योजनावधि ॥६८॥

मङ्गलान्येव जायन्ते नामङ्गलकथा क्वचित् । पूजाचक्रे च तासां तु नामानि प्रतिकोणकम् ॥६९॥
विलिख्य मध्ये ललितां साध्यगर्भां समालिखेत् । बहिर्वृत्ते मातृकां च तच्चक्रं स्थापयेद्भुवि ॥७०॥
तेनापि पूर्ववत्प्रोक्तं देशे न स्यादभव्यकम् । तस्मिन् सर्वत्र संलिख्य तां विद्यां सर्वमङ्गलाम् ॥७१॥
मध्ये साध्याक्षरोपेतां स्थापयेत्तत्फलाप्तये । प्रागुक्ते वज्रयन्त्रे वा द्वादशारेऽपि वा शिवे ॥७२॥
संस्थाप्य कुम्भं तद्वर्णभूरुहक्वाथपूरितम् । विद्यया विधिवज्जप्तैरभिषिञ्चेज्जलैः शुभैः ॥७३॥
जन्मर्क्षेषु विशेषेण समस्तामयशान्तये । पूर्णसंपत्समृद्ध्यै च ग्रहरोगादिशान्तये ॥७४॥
तथान्यमपि देवेशि प्रयोगं सर्वपावनम् । दारिद्र्यवनदावाग्निं पापाब्धिवडवानलम् ॥७५॥
सङ्कोचध्वान्तमार्तण्डं सन्तोषाब्धिविधूदयम् । प्रागुक्ताक्षरसंभिन्नां विद्यां नित्यां समाहितः ॥७६॥
मौनी जपेत्प्रसूनैश्च पूजयेत्सौरभान्वितैः । तर्पयेत्सलिलैः सिन्धुगामिनीसम्भवैः शिवे ॥७७॥
सौरभाढ्यैस्तिलैः शुभ्रैस्तण्डुलैर्विधिवद्धुनेत् । संस्थाप्य कुम्भं प्रोक्ताम्बुपूर्णं संपूज्य भक्तितः ॥७८॥

प्रोक्ताम्बु अक्षरौषधिक्वाथम्।

समस्तं तत् क्रमादेकवारं तैरभिषेकतः । घोराभिचारकृत्यादिदुःखेभ्यो मुच्यते क्षणात् ॥७९॥
भूतप्रेतपिशाचापस्माररराक्षसयक्षकाः । कुमारा गुह्यका वीरा डाकिन्यश्चातिदारुणाः ॥८०॥
विमुच्य तत्क्षणाद्भीताः प्रयान्त्येवान्यतः क्षणात् । समुद्रगासरित्तोये ताः समावर्तयेत्स्थितः ॥८१॥
कण्ठमात्रे मण्डलात्तु प्राग्जन्माघैर्विमुच्यते । तथैव घृतहोमेन तर्पणाच्चाब्धिवारिभिः ॥८२॥
एवं सकलकल्याणा संप्रोक्ता सर्वमङ्गला । नामानुरूपं भजतां कृपया फलदानतः ॥८३॥
क्षिप्रप्रसादतो नित्यं हर्षोत्पादनतोऽपि च ।

इति सर्वमङ्गलानित्याप्रयोगविधिः।

जिस देश में वज्रयन्त्र स्थापित रहता है, उस स्थान से योजन भर विस्तृत क्षेत्र में मांगलिक कार्य होते रहते हैं; वहाँ कुछ भी अमंगल नहीं होता। पूजाचक्र में उनके नाम प्रतिकोण लिखकर मध्य में ललिता साध्य गर्भ लिखे। बाहर वृत्त में मातृका लिखकर भूमि पर स्थापित करे। इनसे भी पूर्ववत् देश में अमंगल नहीं होता। उसमें सर्वत्र सर्वमंगला विद्या को लिखे। मध्य में साध्य नामाक्षर लिखकर स्थापित करने से यह फल प्राप्त होता है। पूर्वोक्त वज्रयन्त्र के द्वादशार में कुम्भ स्थापित करके उन्हें साध्य नामाक्षर वर्ण की लकड़ियों के क्वाथ से भरे। विधिवत् विद्या जप से मन्त्रित करके उससे अभिषेक करे। जन्मनक्षत्र में विशेष कर ऐसा करने से ताप की शान्ति होती है। पूर्ण सम्पत्ति समृद्धि मिलती है। ग्रह-रोगादि शान्त होते हैं। इसी प्रकार के अन्य भी सर्वपावन प्रयोग हैं। इनके नाम दारिद्र्यवनदावाग्नि, पापाब्धि-वडवानल, संकोचध्वान्तमार्तण्ड, सन्तोषाब्धिविधूदय हैं। पूर्वोक्त अक्षरसंभिन्न नित्या विद्या का सावधानीपूर्वक मौनी होकर जप करे। सुगन्धित पुष्पों से पूजा करे। सिन्धुगामिनी नदी-जल से तर्पण करे। सुरभित तिल एवं शुभ्र चावल से विधिवत् हवन करे। अक्षरौषधि क्वाथ से पूर्ण कुम्भ को स्थापित कर पूजन करे। क्रम से सबों से एक बार अभिषेक करने से व्यक्ति पीड़ित घोर अभिचार कृत्यादि दुःख से तत्काल ही छुटकारा पा जाता है। भूत-प्रेत-पिशाच-अपस्मार-राक्षस-यक्ष-कुमार-गुह्यक-वीर-अति दारुण डाकिनियाँ उसे छोड़कर क्षण भर में दूर भाग जाती हैं। समुद्रगामिनी नदी जल में कण्ठ तक स्थित होकर चालीस दिनों तक समावर्तन करने से साधक पूर्व जन्म के पापों से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार घी के हवन एवं समुद्रजल से तर्पण करने से भी सभी कल्याण होते हैं। सर्वमंगला नामानुरूप अपने भक्तों को फल देती है। वह जल्दी प्रसन्न होती है और नित्य हर्ष उत्पन्न करती है।

ज्वालामालिनीनित्याप्रयोगविधिः

अथ ज्वालामालिनीनित्यायाः प्रयोगविधिः। तन्त्रराजे (२०.२४)—

अष्टलक्षं हविष्याशी जपेद्विद्यां जितेन्द्रियः । तद्दशांशं तर्पणं च होमं कुर्याच्च गोघृतैः ॥१॥

एवं संसिद्धमन्त्रस्तु कुर्याद्यन्त्राण्यनुक्रमात्। पूजाचक्रे बहिर्भूतचतुरस्रे त्वखण्डिते ॥२॥
विधाय तत्र विलिखेदक्षराणि यथाविधि। सर्वमध्ये तारगर्भे शक्तिमाख्यासमन्विताम् ॥३॥
त्रयं च त्रिषु कोणेषु षट्सु षट्कमथाष्टसु। अष्टकं बहिरप्येवं बाह्ये दिक्षु नव क्रमात् ॥४॥
एवं मूलाक्षरैः कृत्वा यन्त्रं तेनैव साधयेत्। समस्तं वाञ्छितं पूजाधारणस्थापनैः शिवे ॥५॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र मध्ये त्रिकोणं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिरष्टास्रं तद्बहिरष्टदलकमलं तद्बहिर्द्वाररहितं चतुरस्रमिति चक्रं निर्माय, मध्ये साध्याख्यागर्भं मायाबीजं प्रणवोदरे विलिख्य त्रिषु कोणेषु त्रीण्यक्षराणि षट्सु कोणेषु षडक्षराणि चाष्टकोणेष्वष्टाक्षराणि अष्टदलेष्वष्टाक्षराणि चतुरस्रे प्रागादिदिक्ष्वष्टावक्षराणि मूलमन्त्रस्य लिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

ज्वालामालिनी नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि जितेन्द्रिय और हविष्याशी रहकर विद्या का जप आठ लाख करे। उसका दशांश तर्पण और गोघृत से हवन करे। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से क्रमपूर्वक यन्त्र बनावे। पहले त्रिकोण बनावे, उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टकोण और उसके बाहर अष्टपत्र उसके बाहर द्वाररहित चतुरस्र बनावे। मूल मन्त्र के ६३ अक्षरों से पहला यन्त्र वनावे। 'ॐ' के गर्भ में 'ह्रीं' और ह्रीं के गर्भ में साध्य नाम लिखे। तीनों कोनों में तीन अक्षर, छः कोनों में छः अक्षर, अष्टकोण में आठ अक्षर, अष्टदल मे आठ अक्षर, चतुरस्र में दिशा-विदिशा में नव-नव अक्षर मूल मन्त्र का लिखे। इस यन्त्र का पूजन और तदनन्तर धारण करने से समस्त अभीष्ट की प्राप्ति होती है।

दशयन्त्रनिर्माणम्

तथा—

अकारादिक्षकारान्तवर्णेषु स्वरयोगिषु। चतुष्टयं प्रोक्तयन्त्रं वर्णैस्तत्स्थानतो लिखेत् ॥६॥
शिष्टमेकं लिखेन्मध्ये साध्याक्षरसमन्वितम्। एवं यन्त्राणि जायन्ते दश तेषामनुक्रमात् ॥७॥

शेष नव यन्त्र 'क' से 'क्ष' तक के ३६ वर्णों को १६ स्वरों से विकृत करके कुछ ५७६ वर्ण बनावे। इनमें से अ से ग तक के चौंसठ वर्णों को प्रथम यन्त्र के समान भरकर दूसरा, घ से छ तक स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को दूसरे यन्त्र के समान भरकर तीसरा, ज से ट तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को तीसरे यन्त्र के समान भरकर चौथा, ठ से ण तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर पाँचवाँ यन्त्र बनावे। इसी प्रकार त से ध तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर छठा यन्त्र बनावे। न से ब तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर सातवाँ यन्त्र बनावे। भ से र तक के स्वर विकृत चौंसठ वर्णों को भरकर आठवाँ यन्त्र बनावे। ल से ष तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर नवाँ यन्त्र बनावे। स ह ळ क्ष के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर दसवाँ यन्त्र बनावे।

दशयन्त्रप्रयोगविशेषः

विनियोगात्फलावाप्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये। यैरिष्टमखिलं प्राप्नोत्ययत्नात्साधको ध्रुवम् ॥८॥
द्वितीयादीनि यन्त्राणि मातृकार्णयुतानि वै। क्रमान्नवग्रहाणां स्युस्तत्तद्द्वारेषु तद्दिशि ॥९॥
तेषु देव्यर्चनात्प्रीतास्त्वनिष्टं ते न कुर्वते। राहुकेतू स्थितौ यत्र तद्राश्यधिपवारके ॥१०॥
षडस्राष्टान्तरालेषु ग्रहनाम द्वितीयया। विभक्त्या भाजने सम्यक्प्रीणयामीति संलिखेत् ॥११॥
आद्ये तु यन्त्रे संलिख्य प्रोक्तक्रममथार्चयेत्। सर्वेष्वपि च वारेषु सर्वेषां प्रीतिसिद्धये ॥१२॥
अनिष्टशान्त्यै नियतमर्चयेत्तान् ग्रहान् प्रिये। एवं यन्त्रेषु दशसु पूजिता नित्यया सह ॥१३॥
प्रीताः क्रूरा अपि तथा क्रूरस्था अपि सर्वदा। सौम्याः सौम्यगतानान्तु फलान्येव वितन्वते ॥१४॥
दशस्वपि च यन्त्रेषु दरदैर्गैरिकैस्तु वा। लिखितेष्वर्चितेष्वेवं कुमारं कन्यकान्तु वा ॥१५॥
सुशुभावयवां मुग्धां स्नातां धौताम्बरां शुभाम्। तथाविधं कुमारं वा संस्थाप्याभ्यर्च्य विद्यया ॥१६॥

स्पृष्टशीर्षो जपेद्विद्यां शतवारं तथार्चयेत्। प्रसूनैररुणैः शुभ्रैः सौरभाढ्यैरथापि वा ॥१७॥
दद्याद् गुग्गुलधूपञ्च यावत्कार्यावसानकम्। ततो देव्या समाविष्टे तस्मिन् सम्पूज्य भक्तितः ॥१८॥
ततस्तामुपचारैस्तैः प्रागुक्तैर्विद्यया वशी। प्रजपेत्तां ततः पृच्छेदभीष्टं कथयेच्च सा ॥१९॥
भूतं भवद्भविष्यञ्च यदन्यन्मनसि स्थितम्। जपान्तराण्यतीतानि सर्वं सम्पूजिता वदेत् ॥२०॥
ततस्तां प्राग्वदभ्यर्च्य स्वात्मन्युद्वास्य तां जपेत्। सहस्रवारं स्थिरधीः पूर्णात्मा विचरेत्सुखी ॥२१॥

अब इन यन्त्रों के विनियोगों के फलों को कहता हूँ। यत्नपूर्वक इनकी साधना करने से अनायास ही सभी वाञ्छायें पूरी होती हैं। दूसरे से दशवें यन्त्रों में युक्त मातृका वर्ण क्रमश नवग्रहों के हैं। इसलिये उनके दिनों में उनकी दिशा में देवी की पूजा से उन्हें प्रसन्नता होती है; अन्यथा वे अनिष्ट करते हैं। जहाँ राहु-केतु स्थित हैं, उस राशि के अधिपति के दिन में पूजा करे। षडस्र के अन्तरालों में ग्रह नाम में द्वितीया विभक्ति लगाकर 'सम्यक् प्रीणयामि' आद्य यन्त्र में लिखे, तदनन्तर विहित क्रम से अर्चन करे। सभी के वारों में सभी की प्रीति के लिये अर्चन करे। अनिष्ट-शान्ति के लिये ग्रहों का नियत अर्चन करे। इस प्रकार मन्त्रों से दशों यन्त्रों में पूजन नित्या के सहित करे। इससे क्रूर ग्रह प्रसन्न होते है और क्रूर स्थान में स्थित ग्रह भी प्रसन्न होते हैं तथा सौम्य ग्रह सौम्य भाव में शुभ फल देते हैं।

दशों यन्त्रों को सिंगरफ या गेरु से लिखकर अर्चन में सभी अवयवों से युक्त सुन्दरी, मुग्धा, स्नाता शुभ्र वस्त्र पहनी हुई कुमारी या कुमार को बैठाकर विद्या से अर्चन करे। उसके शिर पर हाथ रखकर विद्या का जप सौ बार करे और पूजा लाल शुभ्र सुगन्धित फूलों से करे। कार्य की समाप्ति तक गुग्गुल का धूप जलावे। तब उसमें देवी आविष्ट होती है। उसकी पूजा भक्तिपूर्वक उपचारों से करे। तब पूर्वोक्त विद्या वश में होती है। विद्या का जप करे और उससे अभीष्ट के बारे में पूछे तो वह अभीष्ट कथन करती है। भूत वर्तमान भविष्य के बारे में जो भी प्रश्न करे या विगत जन्मान्तरों के बारे में पूछे तो वह सब कुछ बतलाती है। तब उसे अपने हृदय में उद्वासित करके जप करे। जप एक हजार स्थिर बुद्धि से करने के बाद पूर्णात्मा होकर सुखपूर्वक विचरण करे।

रोगावेशार्थं यन्त्रनिर्माणम्

तथा षट्कोणकोणेषु मध्ये चालिख्य दाहकम्। तत्र संस्थाप्य गदिनमभ्यर्च्योदीरितक्रमात् ॥२२॥
आवेश्य रोगिणं रोगं पृच्छेत्तत्कारणं शमम्। प्रोक्त्वा तत्सकलन्तस्य निर्देशादापयाति च ॥२३॥
प्रथमं स्त्रीकपालस्य मध्यस्थं तापयेन्निशि। जपन् विद्यां स्मरन् साध्यां सद्य आकृष्यतेऽथ सा ॥२४॥
भीतिलज्जाभिमानादिरहिता वेपिताङ्गका। निरस्तेतरसद्भावा मन्मथार्ताभियाति सा ॥२५॥
तद्यन्त्रं पुंस्कपालस्थं स्थापयेत्प्रजपेत्तथा। राजानो राजपुत्रा वा तथान्ये वापि केचन ॥२६॥
विवेकविधुरा मूढास्त्यक्तजातिकुलक्रमाः। वशगा दासवद्भूमौ तिष्ठन्त्यामरणाद् ध्रुवम् ॥२७॥
सर्वासामपि नित्यानामुपदेशेषु तं गुरुः। तत्र चक्रस्य मध्यस्थं चेष्टविद्याजपान्वितम् ॥२८॥
वह्निज्वालापरीताङ्गं भावयन्निन्द्रियाण्यपि। मनःषष्ठानि वाकर्षेन्मनसा प्राग्वदात्मनि ॥२९॥
एवं कृते क्षणादेवं विसंज्ञो निपतेद्भुवि। ततस्तमुत्थाप्य मुखे प्रक्षिप्ताम्बु वदेत्ततः ॥३०॥
एष वेधस्त्रिधा प्रोक्तः सद्यः प्रत्ययकारकः। शाक्तशाम्भववेधाभ्यां द्वयोरात्मैक्ययामलात् ॥३१॥
शिष्यस्य मूलाधारादिस्थानेषु ब्रह्मरंध्रके। स्मर दाहार्णकान् सप्तेत्युक्त्वा प्राग्वदुदीक्षणात् ॥३२॥
विदध्याच्छाक्तवेधं तु देशिकः सिद्धविद्यया। शाम्भवं तु शृणु प्राज्ञे वेधमद्भुतविग्रहम् ॥३३॥
तूष्णीं संस्थापितं शिष्यं तत्तच्चक्रे तदात्मना। स्वयं प्रविश्य तद्देहमेकीभूत्वा पुनः स्वके ॥३४॥
समागत्यात्मरूपेण तदात्मानं विभाव्य वै। कृतन्यासजपार्चस्तु तत्तनुं वह्निना दहेत् ॥३५॥
स्यादेष शाम्भवो वेधः प्रोक्तः प्रागेव यामलः। इति वेधत्रयं प्रोक्तं भावनासिद्धिसूचकम् ॥३६॥
यामले तु विशेषोऽयं विद्धः पश्चाद्गुरोः श्रुतम्। ज्ञानमन्यच्च सकलं संक्रमेत्तेन तत्समः ॥३७॥

षट्कोण के मध्य में 'रं' लिखे। उस पर रोगी को स्थापित कर पूर्वोक्त क्रम से पूजा करे। इससे रोगी में देवी का आवेश होता है। उससे रोग का कारण और उसके शमन का उपाय पूछे। वह सब कुछ बतलाती है और तदनुसार रोग का नाश होता है। पहले यन्त्र को स्त्री-कपाल में बनाकर रात में तपावे। विद्या का जप करे। साध्या का स्मरण करे तो वह तुरन्त आकर्षित होती है। भय, लज्जा, अभिमान छोड़कर काँपते अंगों से अपने स्वभाव को छोड़कर कामार्त होकर आती है। इस यन्त्र को पुरुष की खोपड़ी में स्थापित करे और मन्त्र का जप करे। इससे राजा या राजकुमार या अन्य कोई भी विवेकहीन होकर मूढ़मति से जाति-कुल के क्रम को छोड़कर दासवत् वश में होकर भूमि पर बैठ जाते हैं और आजीवन दास बने रहते हैं।

जो गुरु सभी नित्याओं का उपदेश देता है, उसके चक्र मध्य में स्थित होकर विद्या का जप करते हुये अपने अंगों एवं इन्द्रियों को वह्निज्वाला से दग्ध होने की भावना करते एवं मन का आत्मा में आकर्षण करने से क्षणमात्र में शिष्य बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ता है। तब उसे उठाकर उसके मुख पर छींटे मार कर मन्त्रोपदेश करे। यह वेध दीक्षा तीन प्रकार की होती है, जो शीघ्र प्रत्ययकारक है। शाक्त शाम्भव वेध से दोनों में ऐक्य मानने से होता है। शिष्य के मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक सात 'रं' बीजों का स्मरण करे। पूर्ववत् उदीक्षण करे। देशिक सिद्ध विद्या से शाक्त वेध करे। शाम्भव वेध अद्भुत रूप का है। शिष्य को मौन बिठाकर षट्चक्रों में उसकी आत्मा के साथ स्वयं प्रवेश करे। उसके देह से अपने देह का ऐक्य करे। पुन: अपने देह में आकर उसकी आत्मा को अपनी आत्मा में विलीन करे, एक करे। न्यास जप अर्चन करके उसके शरीर को अग्नि में जला दे। इस शाम्भव वेध का वर्णन यामल में पहले किया जा चुका है। ये तीनों वेध भावना-सिद्धि के सूचक हैं। यामल में विशेष यह है कि विद्ध शिष्य गुरु की वाणी को सुने। इससे शिष्य में सभी ज्ञानों का संक्रमण होता है और इससे वह गुरु के समान हो जाता है।

वश्यादिप्रयोगा:

रक्तचन्दनपङ्केन लिखित्वा प्रथमं शिवे। लोहैर्विरचिते पट्टे फलकायां शिलातले ॥३८॥
भूमौ वा सुसमे शुद्धे लोष्टाङ्गारविवर्जिते। देवीमावाह्य तत्रैव पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम् ॥३९॥
दिनं दिनत्रयं सप्तवासरं पक्षमेव वा। मासं मण्डलमित्येवं क्रमादिष्टमवाप्नुयात् ॥४०॥
वश्यमाकर्षणं स्तम्भं निग्रहं लाभमीप्सितम्। अन्यच्च सकलं त्विष्टमवाप्नोत्यर्चनाद् द्रुतम् ॥४१॥
तदा प्रोक्तगदान्सर्वान् जयेदन्यांस्तथाखिलान्। साधयेत् प्रथमेनैव यन्त्रेणायत्नतः शिवे ॥४२॥

प्रथम यन्त्र को लाल चन्दन के लेप से त्रिलौह के पत्र पर या पत्थर के फलक पर या लोष्ट अङ्गाररहित पवित्र समतल भूमि पर बनावे। उसमें आवाहन करके शक्ति से घिरी देवी का तीन दिनों तक दिन में या सात दिनों तक या पन्द्रह दिनों तक या तीस दिनों तक या चालीस दिनों तक पूजन करे तो इष्ट की प्राप्ति होती है। इससे इच्छित वश्य आकर्षण स्तम्भन निग्रह और लाभ होता है; साथ ही समस्त इष्ट की प्राप्ति इसके अर्चन से शीघ्र होती है। सभी रोगों का नाश होता है। अन्य सभी पर विजय होती है। इस प्रकार प्रथम यन्त्र से इन सबों को अनायास ही साधन करे।

द्वितीययन्त्रसाध्यानि

द्वितीयं दरदैः कृत्वा प्रोक्तेषूच्चगते रवौ। पूजयेत्प्रोक्तकालेन फलान्युक्तान्यवाप्नुयात् ॥४३॥
विलिख्य राजते पट्टे जपित्वा दिनशः स्पृशन्। सहस्रवारं तां नित्यां विद्यां तद्वासिताम्बुभिः ॥४४॥
स्नानं पानं पाकजातं कुर्यादुक्तदिनं ततः। प्रमेहैस्त्रिविधैर्घोरैर्मूत्रकृच्छ्रैः सुदारुणैः ॥४५॥
अश्मरीमूत्रघातादिरोगैर्मुक्तः सुखी भवेत्। जीवेच्च सुचिरं भूमौ नीरोगः स्वस्थमानसः ॥४६॥

द्वितीय यन्त्र को सिंगरफ से लिखकर सूर्य के उच्च होने पर विहित काल में पूजन करे तो उक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। चाँदी के पत्र पर लिखकर उस पर हाथ रखकर दिन में एक हजार जप नित्या विद्या का करे और उससे वासित जल से स्नान पान करके भोजन पका कर खाय तो त्रिविध घोर प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, दारुण अश्मरी, मूत्राघातादि रोगों से मुक्त होकर सुखी होता है। साथ ही बहुत दिनों तक जिन्दा रहकर निरोग और स्वस्थ मानस रहता है।

वैरिनिग्रह:

तृतीयं गैरिकैः कृत्वा वैरिनक्षत्रवृक्षजे। तले भूमौ ततः खात्वा तत्राग्निं ज्वालयेत्सदा ॥४७॥
प्रोक्तैस्तैर्वासरैर्वैरी दाहज्वरगदादिभिः। तच्च नोद्धृत्य सलिले प्रक्षिपेच्चेद्विनश्यति ॥४८॥

तृतीय यन्त्र को गेरू से वैरी नक्षत्र वृक्ष के पटरे पर बनाकर भूमि में गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि जलाकर यन्त्र को विहित दिनों तक तपावे तो वैरी दाह-ज्वरादि रोगों से पीड़ित होता है। उसे गड्ढे से निकाल कर जल में डाल देने से रोग नष्ट हो जाता है।

द्यूतादिषु जय:

चतुर्थं रोचनापङ्कैरालिख्योक्तप्रपूजनात्। प्राप्नोति विजयं प्रोक्तेष्वखिलेषु सुनिश्चितम् ॥४९॥
वादे च द्विविधे द्यूते ग्रहेष्वन्येषु सर्वतः। सर्वदा जयिनः सर्वे भवन्त्येतस्य वैभवात् ॥५०॥

चतुर्थ यन्त्र को गोरोचन के लेप से लिखकर उक्त प्रकार से पूजा करने पर सभी प्रकार की विजय प्राप्त होती है। बाद में द्विविध जूआ में, ग्रहपीड़ा में या अन्य सबों में सर्वदा जीत होती है और वैभव मिलता है।

मर्त्यादिवश्यम्

पञ्चमं कुङ्कुमैः कृत्वा तत्र तत्पूजनाद्दिनैः। वशे भवन्ति मनुजा दन्तिनो वाजिनः स्त्रियः ॥५१॥

पञ्चम यन्त्र को कुङ्कुम से बनाकर विहित दिनों तक पूजन करने से हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ साधक के वश में होते हैं।

शत्रुस्तम्भनम्

षष्ठं हरिद्रयालिख्य कर्पटे नामसंयुतम्। मन्दोच्चे स्थापयेत्क्वापि सुबद्धं त्विष्टकापुटे ॥५२॥
शत्रोर्जिह्वां गतिं दोषं दिव्यं राज्ञां समुद्यमम्। वादेच्छां सकलं चान्यदनिष्टं स्तम्भयेद् ध्रुवम् ॥५३॥

षष्ठ यन्त्र को हल्दी से खपड़े पर लिखकर उसमें नाम लिखे और शनि के उच्चस्थ होने पर दो ईटों के बीच में स्थापित करे। इससे शत्रु का जीभ-गति-दोष, दिव्य राजा का उद्योग, वाद की इच्छा या अन्य अनिष्ट का स्तम्भन होता है।

लक्ष्मीवासोभूषणप्राप्तिः

सप्तमं चन्दनैरिन्दुमिलितैरालिखेत्तथा। तत्रार्चयेन्नित्यशस्तां सन्ध्यासु भुवने निजे ॥५४॥
तद्दिनैरिन्दिरा तस्य सर्वलोकातिशायिनी। भवत्येव महेशानि विचित्रा यन्त्रशक्तयः ॥५५॥
अष्टमं त्वगुरुक्षोदैरालिखेत् फलकापुटे। पीठे वा तत्र तां देवीं गुरावुच्चगते दिने ॥५६॥
तदुच्चकाले सुरभिप्रसूनैस्त्वेवमर्चयेत्। वासांसि च विचित्राणि भूषणान्यप्यवाप्नुयात् ॥५७॥

सप्तम यन्त्र को चन्दन कपूर के घोल से लिखे। उसका अर्चन नित्य सन्ध्याओं में अपने घर में विहित दिनों तक करे तो सर्वलोक अतिशायिनी लक्ष्मी प्राप्त होती है, इस प्रकार इस यन्त्र की शक्ति विचित्र है। अष्टम यन्त्र को अगर क्षोद से पत्थर या पीठ पर बनाकर गुरु के उच्चस्थ होने पर उसमें देवी की पूजा करे। उच्चस्थ गुरु के समय सुगन्धित फूलों से पूजा करे। इससे विचित्र वस्त्र-अभूषण की प्राप्ति होती है।

लोकस्त्रीवश्यसिद्धिः

मृगस्वेदैस्तु नवममालिख्याभ्यर्च्य तत्र ताम्। तदालिप्तो व्रजेद्यत्र कुत्रापि जनसंसदि ॥५८॥
सर्वे तं गुरुवद्बुद्ध्वा वशे स्युर्वनिता यदि। तदिष्टसाधिका यावज्जीवमस्यानुभावतः ॥५९॥

नवम यन्त्र को मृगस्वेद से लिखकर उसमें देवी का अर्चन करे। मृगस्वेद को लगाकर जहाँ-कहीं भी जनसभा में जाता है तो उसे सभी गुरुवत् मानते हैं। उसकी इच्छा यदि किसी वनिता को वश में करने की होती है तो वह आजीवन वशीभूत हो जाती है।

दशमयन्त्रफलप्राप्तिप्रयोगः

विलिखेद् दशमं प्रोक्तद्रव्यैः सर्वैस्तथैकशः। सद्यस्तैरीरितं सर्वं कार्यमेतत्सुसाधयेत् ॥६०॥
प्रोक्तेषु दशसु प्रोक्तद्रव्यैरालिख्य तेषु च। संस्थाप्य कुम्भं विधिना जापत्वोग्रग्रहे तदा ॥६१॥
अभिषिञ्चेत्तद्ग्रहस्य दोषस्थानगतं फलम्। न भवेच्छुभमेव स्यादेवं यन्त्रेष्वशेषतः ॥६२॥

दशम यन्त्र को प्रोक्त सभी दश द्रव्यों से या एक ही द्रव्य से लिखकर पूजा करने से उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। उक्त दशों यन्त्रों को विहित द्रव्यों से लिखकर प्रत्येक में एक-एक कुम्भ स्थापित करे और विधिवत् उग्र गृहों का मन्त्र जप करे और उस जल से रोगी को स्नान करावे तो उस ग्रह के स्थानगत बुरे फल नहीं मिलते। शुभ फल मिलते हैं। इस प्रकार यन्त्र का वर्णन पूरा हुआ।

यन्त्रेष्वभिषेकाद् ग्रहदोषशान्तिः

तथा तदुच्चे तत्पूजां होममन्नाज्यपायसैः। निवेद्य च प्रणम्यार्घ्ययुतं दद्याच्छिवात्मवान् ॥६३॥
तत्तद्ग्रहार्तिषु क्षिप्रं ते ग्रहास्तत्प्रभावतः। एकादशस्थफलदा नित्यशो यजनादपि ॥६४॥

उच्चस्थ ग्रहों की पूजा अन्न-आज्य से करे और पायस का नैवेद्य अर्पण करे। अर्घ्य देकर प्रणाम करे तो देवी ग्रहों के प्रभाव से मुक्त करके लाभस्थान का फल नित्य पूजन से देती है।

यन्त्राङ्कितस्वर्णपट्टादिदानफलम्

सुवर्णे रजते वा तद्यन्त्रेष्वन्यतमं शिवे। विलिख्याभ्यर्च्य तद्विद्याविदे दद्यात्सुपूजितम् ॥६५॥
षोडशद्वादशनवषट्त्रिनिष्कप्रकल्पितम्। नित्यार्चकस्य नित्यानामेकां पूजयितुं तु वा ॥६६॥
दद्याद् गन्धादिनार्च्यैतं प्रणम्य ग्रहविग्रहम्।

सोने या चाँदी के पत्र पर यन्त्र को लिखकर अर्चन करके देवी के विद्याज्ञानी को पूजकर दान दे। यन्त्र सोलह बारह दश नव छः तीन निष्क (चार ग्राम के बराबर) बनाकर नित्यार्चक को दान दे और उस नित्र्याचक को ग्रहरूप मानकर गन्धादि से पूजन करे, प्रणाम करे।

जाठराग्निवृद्ध्युपायः

पश्चिमामुखमासीनं तस्मै प्रोक्तविधानतः ॥६७॥
विद्याजप्ताम्बुपानेन वर्धते कुक्षिगोऽनलः। भुक्ते च जठरस्पर्शजपादपि सुनिश्चितम् ॥६८॥

पश्चिम दिशा में मुख करके प्रोक्त विधान से विद्या का जप करे और मन्त्रित जल को पीये तो भूख लगती है। पेट को स्पर्श करके जप करे तो सभी ठीक हो जाता है।

प्रोक्तयन्त्रेषु भास्कराद्यर्चनफलानि

मेषादिराशिगे भानौ मासेषु द्वादशस्वपि। प्रोक्तेषु दशयन्त्रेषु प्रत्येकं त्रित्रिवासरम् ॥६९॥
पूजयेदेवमब्देन धनधान्यगृहादिभिः। समृद्धो जीवति चिरमरोगः सुमना भुवि ॥७०॥

बारहों महीनों में सूर्य जब मेष राशि में जाय तो उक्त दश यन्त्रों में से प्रत्येक में तीन-तीन दिनों तक देव की पूजा साल भर करे तो साधक धन-धान्य-गृहादि से समृद्ध होकर दीर्घ काल तक निरोग और सुखी होकर जीवित रहता है।

सर्वग्रहपूजाफलम्

यद्राशौ यो ग्रहस्तिष्ठत्येको द्वौ बहवोऽथवा। तद्दिनेषु तदुच्चेषु कालेषु च तदर्चनात् ॥७१॥
तत्तद्ग्रहाः सुसंप्रीताः पालयन्त्यनिशञ्च तम्। तथा तर्पणहोमाभ्यां जपदानादिनापि वा ॥७२॥

जिस राशि में एक, दो या बहुत ग्रह हों तब उच्चस्थ उस ग्रह के दिन में उसकी पूजा करे। इससे वह ग्रह प्रसन्न

होकर उसका पालन नित्य करता है। उसी प्रकार तर्पण-होम-जप-दान से भी ग्रह प्रसन्न होते हैं।

शत्रुमर्दनम्

नवस्वपि च यन्त्रेषु नवग्रहमयलत:। तत्तत्क्षोभं विलिख्यान्त: पूजयेद्वैरिमर्दने ॥७३॥
रिपुनामयुतान्युक्तान्यालिख्य रविचन्द्रयो:। उपरागे समे भूमौ दिनशो जयमाप्नुयु: ॥७४॥

नव यन्त्र नवग्रहमय हैं। ग्रहों के अनुसार क्षोभ लिखकर यन्त्रों की पूजा करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। सूर्य और चन्द्र ग्रहण में यन्त्रों में शत्रु का नाम लिखकर भूमि पर यन्त्र बनाये तो कुछ ही दिनों में शत्रुओं पर विजय होती है।

सर्वविद्याक्षरौषधभस्मसाधनम्

विद्याक्षरौषधानां तु प्रत्येकं कर्षमर्पितम्। भाण्डे नवे पञ्चगव्ये खारिमाने पचेच्च तत् ॥७५॥
विद्यया संस्कृते वह्नौ ततस्तदुदरोत्थिते। घृतेन विद्यया हुत्वा तद्भस्मादाय तत्र वै ॥७६॥
यन्त्राणि दश निष्पाद्य तत्र देवीं यजेत्तथा। ततस्तद्भस्म संगृह्य निदध्याद्दिनशोऽर्चयेत् ॥७७॥
तद्भस्म सर्वरक्षाकृत्सर्वाभिरपि साधयेत्। गदचोरग्रहारिष्टक्लेशा न स्युश्च तद्गृहे ॥७८॥
नित्यशो धारणे देहे श्रीकण्ठाद्यैर्विलेपितम्। भक्षणं सर्वकृत्यादिदुरितार्तिविभञ्जकम् ॥७९॥

विद्याक्षर औषधों को सोलह-सोलह ग्राम लेकर नये वर्तन में खारीमान पञ्चगव्य में डालकर पकावे। संस्कृत अग्नि में उनमें घी मिलाकर विद्या से हवन करे और हवन का भस्म लेकर दश यन्त्रों में उससे देवी की पूजा करे। उस भस्म से सबों की रक्षा होती है। उससे सब कुछ साध्य है। जहाँ यह भस्म रहता है, उस घर में रोग-चोर-ग्रहारिष्टजन्य क्लेश नहीं होते हैं। इसके नित्य कण्ठादि में लागने से, खाने से सभी कृत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

आग्नेयक्षारमेलितयन्त्राणि तैर्जाठराग्निप्रदीप्ति:

वह्न्यक्षरेषु दशसु व्यञ्जनै: सप्तभि: पृथक्। स्वरत्रयं क्रमाद्युञ्ज्यात्तेन तान्येकविंशति: ॥८०॥
त्रिकोणद्वयमालिख्य बाह्याभ्यन्तरयोगत:। तदन्तर्वृत्तमध्यस्थं षडस्रं च विधाय तु ॥८१॥
नामाद्यं विलिखेन्मध्ये षट्कोणेषु च षट् क्रमात्। विलिखेदग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन पार्वति ॥८२॥
त्रिकोणान्तरतो लिख्य चतुर्दश तथा क्रमात्। शिष्टे साध्याक्षरं त्वग्रे लिखेत्पञ्चदशस्वपि ॥८३॥
क्रमेण मध्ये त्वन्येषां निवेशादेकविंशति:। भवन्ति यन्त्राणि तथा तै: कुक्ष्यग्नि: प्रवर्धते ॥८४॥
त्रिकोणाकारके पट्टे ताम्रे तानि विलिख्य वै। स्पृशन् विद्यां जपेल्लक्षं तद्वर्णकृतसंपुटाम् ॥८५॥
तत्तोयभाण्डे दिनशो निक्षिपेज्जपपूजितम्। तत्तोयै: पाकपानाभिषेकतो भवति ध्रुवम् ॥८६॥
प्रदीप्तिर्जठराग्नेस्तु प्राग्जन्माघक्षयेण वै। जायते परमेशानि नित्यानां वैभवादिति ॥८७॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकार:—प्रथमत: षट्कोणं विरच्य तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिरन्तर्बहिर्विभागेन त्रिकोणद्वयं विधाय वह्नेर्दशाक्षरेषु सप्तव्यञ्जनानि स्वरत्रययोगेनैकविंशतिर्भवन्ति। तेष्वाद्यं साध्यनामगर्भं मध्ये विलिख्य द्विती'यादिषडक्षराणि षट्सु कोणेषु विलिख्यावशिष्टचतुर्दशाक्षराणि त्रिकोणद्वयान्तरालेऽग्रात् प्रादक्षिण्यक्रमेणावेष्ट्य शिष्टे वह्न्यक्षरे साध्यनामगर्भं कृत्वाग्रेषु विलिखेत्। एवं मध्याक्षरभेदेनैकविंशतिर्भवन्ति, प्रोक्तफलेषु योज्यानि प्रोक्तफलानि भवन्ति। इति ज्वालामालिनीनित्याप्रयोग:।

दश आग्नेय अक्षरों में से ७ में तीन स्वरों के योग से २१ अक्षरों को दो त्रिकोणों के बाहर-भीतर में लिखे। उसके अन्दर वृत्त बनाकर वृत्त में षट्कोण बनावे। मध्य में साध्य नाम लिखे। षट्कोणों में छ: अक्षरों को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। त्रिकोणों के अन्तर में चौदह अक्षरों को लिखे। शेष पन्द्रह को साध्याक्षर के आगे लिखे। क्रम से मध्य में निवेश करने में इक्कीस यन्त्र बनते हैं। ये भूख बढ़ाते हैं।

ताम्बे के त्रिकोणाकार पत्र पर यन्त्रों को लिखकर उन पर हाथ रखकर विद्या को यन्त्रांकित अक्षरों से सम्पुटित करके एक लाख जप करे। पूजा-जप के बाद उस पात्र के जल से खाना बनावे, पीये और स्नान करे तो नित्याओं की कृपा से भूख बढ़ती है और पूर्व जन्मों के पापों का नाश होता है।

विचित्रानित्याप्रयोगविधिः

अथ विचित्रानित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२१. १३)—

काम्यहोमविधिं वक्ष्ये शृणु सर्वार्थदायकम्। येनातिमन्दभाग्योऽपि श्रीमान् भोक्ता सुखी भवेत्॥१॥
मधुरत्रयसंसिक्तैररुणैरम्बुजैः श्रियम्। प्राप्नोति मण्डलाद्धोमात्सितैस्तैश्च महद्यशः॥२॥
क्षौद्राक्तैरुत्पलैः रक्तैर्हवनात्प्रोक्तकालतः। सुवर्णं समवाप्नोति निधिं वा वसुधां तु वा॥३॥
क्षीराक्तैः कैरवैर्होमात्प्रोक्तकालमवाप्नुयात्। धान्यानि विविधान्याशु सुभगस्तु भवेन्नरः॥४॥
आज्याक्तैरुत्पलैर्होमाद्वाञ्छितं समवाप्नुयात्। तदक्तैरपि कह्लारैर्हवनाद्राजवल्लभः॥५॥
पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुक्तैस्तत्कालहोमतः। चतुर्विधं तु पाण्डित्यं भवत्येव न संशयः॥६॥
लाजैस्त्रिमधुरोपेतैस्तत्कालहवनेन वा। कन्यकां लभतेऽयत्नात्समस्तगुणसंयुताम्॥७॥
नारिकेलफलक्षोदं ससितं सगुडं तु वा। क्षौद्राक्तं जुहुयात्तद्वदयत्नाद् धनदोपमः॥८॥
तथैवान्नाज्यहोमेन सतण्डुलतिलैरपि। प्रसूनैररुणैस्तद्वत्तथा बन्धूकसम्भवैः॥९॥
सितैः प्रसूनैर्वाक्सिद्धिं हवनात्समवाप्नुयात्। सितरक्तैस्तु मिलितैरायुरारोग्यमाप्नुयात्॥१०॥
दूर्वात्रिकैस्त्रिमध्वक्तैर्हवनात्तु जयेद्गदान्। तथा गुडूच्या होमेन पायसेन तिलेन च॥११॥
श्रीखण्डपङ्ककर्पूरमिलितैः शतपत्रकैः। हवनाच्छ्रियमाप्नोति या तदन्वयगामिनी॥१२॥
कुङ्कुमं हिमतोयेन पिष्ट्वा कर्पूरसंयुतम्। तत्पङ्कमर्दितैर्होमात् कह्लारैर्विकचैः शुभैः॥१३॥
राजकल्पः श्रिया भूयाज्जीवेद्वर्षशतं भुवि। निःसपत्नो निरातङ्को निर्द्वन्द्वो निर्मलाशयः॥१४॥
इक्षुकाण्डस्य शकलैर्हवनाद्वस्त्रमाप्नुयात्। तथैव करवीरोत्थैः प्रसूनैररुणैः सितैः॥१५॥
क्षौद्राक्तैः पाटलीपुष्पैर्हवनाद्वशयेद्वधूः। तथैव चम्पकैर्होमाद्रूपाजीवां वशं नयेत्॥१६॥
सरूपवत्सासितगोक्षीराक्तसितहोमतः। लभतेऽनुपमां लक्ष्मीमपि पापिष्टचेतनः॥१७॥
सौवीराक्तैस्तु कार्पासबीजैस्तत्कालहोमतः। अर्धेन्दुकुण्डे नियतं विद्विष्टा रिपवोऽम्बिके॥१८॥
अरिष्टपत्रैस्तद्बीजैस्तत्तैलाक्तैस्तथा हुतैः। मृत्युबीजैर्निम्बतैलसिक्तैर्होमात्तु दन्तिनः॥१९॥
रोगार्तास्तुरगास्तद्वत्तत्पञ्चाङ्गैर्हुतैर्ध्रुवम्। अक्षबीजैस्तु तैलाक्तैर्होमः सर्वविनाशनः॥२०॥
करञ्जबीजैस्तत्सिक्तैर्होमाद्वैरी पिशाचवान्। तथैवाक्षतरूद्भूतपञ्चाङ्गहवनादपि॥२१॥
निम्बतैलाप्लुतैरक्षद्रुमबीजैस्तु होमतः। तद्दिनैः स्यादपस्मारी वैरी भवति निश्चितम्॥२२॥
अरातेर्जन्मनक्षत्रवृक्षेन्धनगतेऽनले। तद्योनिपिशितैस्तैश्च हवनं मृत्युकृद्रिपोः॥२३॥
यक्षाक्षबीजैः सर्षपतैलाक्तैर्हवनात्तथा। जायन्ते वैरिणः कुष्ठरोगा देहविलोपकाः॥२४॥
मरिचैः सर्षपैर्होमात्तैलाक्तैर्मध्यरात्रके। दाहज्वरेण ग्रस्तः स्यादरातिस्तद्दिनैर्ध्रुवम्॥२५॥
एवं निग्रहहोमेषु स्वरक्षायै तथान्वहम्। स्निग्धैः संप्राप्तमन्त्रैस्तु जपहोमादि कारयेत्॥२६॥
मृत्युञ्जयेन वा तद्वत्प्रयोगस्ताभिरेव च। विद्याभिरन्यथासिद्धमन्त्रमाशु विनाशयेत्॥२७॥
प्रागुक्तानां तु कुर्वीत निग्रहं स्वस्य रोषतः। वित्ताशया वा न कदाप्याचरेद्धूतिकामुकः॥२८॥
नित्यक्लिन्नाविधौ प्रोक्तैस्तर्पणैस्तानि साधयेत्। अनया विद्यया कर्माण्यशेषाणि महेश्वरि॥२९॥

विचित्रा नित्या प्रयोगविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि अब सर्वार्थदायक काम्य हवन की विधि कहता हूँ,

जिससे अति मन्द भाग्य वाला भी श्रीमान्, भोक्ता और सुखी होता है। त्रिमधुराक्त लाल कमल के हवन से ४० दिनों में लक्ष्मी प्राप्त होती है। उतने ही दिनों तक उजले कमल के हवन से महान् यश मिलता है। मधुसिक्त लाल कुमुद से उतने दिनों तक हवन करने से सोना, धन और जमीन की प्राप्ति होती है। दूध से सिक्त कैरव से उक्त दिनों तक हवन करने से विविध धान्य एवं अन्य वस्तुएँ प्राप्त करके मनुष्य भाग्यवान हो जाता है। आज्य से सिक्त उत्पल के हवन से वांछित की प्राप्ति होती है। आज्य से सिक्त कल्हार के हवन से राजप्रिय होता है। त्रिमधुराक्त पलाशपुष्पों से उक्त काल तक हवन करने से चतुर्विध पाण्डित्य प्राप्त होता है। उक्त काल तक त्रिमधुराक्त लावा के हवन से सभी गुणों वाली लड़की से विवाह होता है। चीनी, गुड़, नारियल खण्डों को मधु से सिक्त करके हवन करने से धन मिलता है। अन्न और आज्य के हवन से, तिल-चावल, लाल फूल, बन्धूक के उजले फूलों से हवन से वाक्सिद्धि मिलती है। लाल-उजले मिले-जुले फूलों के हवन से आयु-आरोग्य की प्राप्ति होती है। मधुसिक्त तीन-तीन दूर्वा के हवन से रोग का नाश होता है। उसी प्रकार गिलोय, पायस और तिल के हवन से भी रोग नष्ट होता है।

चन्दन, कपूर के घोल से अक्त शतपत्री के हवन से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कुङ्कुम-कपूर को बर्फ जल से पीसकर कल्हार के फूलों को लिप्त करके हवन करने से राजकल्प श्री का भोग करते हुए सौ वर्षों तक अपनी पत्नी के साथ निर्भय, निर्द्वन्द्व, निर्मल आशय वाला होकर जीवित रहता है। ईख के टुकड़ों से हवन करने पर वस्त्र मिलता है। लाल एवं कनैल के लाल उजले फूलों के हवन से उक्त फल मिलता है। मधु से अक्त गुलाब के फूलों के हवन से वनिता वश में होती है। उसी प्रकार चम्पाफूलों के हवन से वेश्या वश में होती है। उजले बछड़े वाली उजली गाय के दूध से अक्त मिश्री के हवन से पापी भी अनुपम लक्ष्मी प्राप्त करता है। अर्द्धचन्द्र कुण्ड में सौवीर में अक्त कपासबीजों के हवन से शत्रुओं से परस्पर विद्वेष होता है। रीठा बीज के तेल से अक्त उसके पत्तों के हवन से, नीम तैल से सिक्त धत्तूर बीजों के हवन से हाथी बीमार होते हैं। उसके पञ्चाङ्ग के हवन से घोड़े रोगी होते हैं। अक्षबीज के तेल से अक्त पत्तों के हवन से हाथी-घोड़ा का नाश होता है। नीम तेल से सिक्त करञ्जबीजों के हवन से वैरी पिशाचग्रस्त होता है। अक्षबीज के पञ्चाङ्ग के हवन से वैसा ही होता है। नीम तेल से सिक्त अक्षबीजों से हवन उक्त दिनों तक करने से वैरी को मृगी रोग होता है। वैरी के जन्मनक्षत्र की लकड़ी की अग्नि में उसकी योनिपिशित के हवन से वैरी की मृत्यु हो जाती है। सरसों तेल से सिक्त यक्षाक्ष बीजों के हवन से वैरी को देहविलोपक कोढ़ होता है। तैलाक्त मरिच और सरसों से मध्य रात में हवन करने से वैरी को दाह ज्वर होता है। इसी प्रकार निग्रह हवन में आत्मरक्षा तथा कुल की रक्षा के लिये जप-हवनादि करके मृत्युञ्जय आदि का जप करना चाहिये; अन्यथा प्रयोग तुरन्त विनाश करता है।

पूर्वोक्त प्रयोगों को अपने निग्रह के लिये करे, धन की आशा और भूति-प्राप्ति के लिये कदापि न करे। नित्याक्लिन्ना विधि से तर्पण करके इस विद्या का साधन करे।

षड्विंशतियन्त्राणि

अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि नानाभीष्टप्रदानि वै। यैः सर्वे सर्वदा सर्वसमीहितमवाप्नुयुः ॥३०॥
स्वरयुक्तलिपिव्रातगर्भां विद्यां समालिखेत्। सर्वत्रोक्तेषु विधिवत् स्थानेषु परमेश्वरि ॥३१॥
त्रिकोणं वृत्तयुग्मं च षट्कोणं तद्द्वयं तथा। तद्बहिः षड्दलं पद्मं तत्त्रयं च समालिखेत् ॥३२॥
आद्यकूटं लिखेत्साध्यगर्भं मध्ये विधानतः। त्रिकोणेषु च षट्कोणे षट्पत्रेषु समालिखेत् ॥३३॥
कूटान्यन्यानि चोक्तानि तत्र पञ्चदशान्यपि। अन्तर्वृत्तान्तरद्वन्द्वे भूतार्णांश्च क्रियोचितान् ॥३४॥
ससाध्यकर्मवर्णैश्च बहिर्वृत्तान्तरद्वये। मातृकां विलिखेन्मायाबिन्दुयुक्तां क्रमोत्क्रमात् ॥३५॥
एवं षड्विंशतिविधं यन्त्रं कुर्याद्विचक्षणः। परस्तात्तु शतेनापि षष्ट्या कूटैर्लिखेत्पविम् ॥३६॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—मध्ये त्रिकोणं तद्बहिर्वृत्तद्वयं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिः पुनर्वृत्तद्वयं तद्बहिः षड्दलं पद्मं तद्बहिर्वृत्तत्रयमिति यन्त्रं विलिख्य, तन्मध्ये षोडशस्वरयुक्तमूलविद्यायाः प्रथमं कूटं साध्यगर्भं विलिख्य त्रिकोणेषु

कूटत्रयं षट्कोणेषु षट्कूटानि षड्दलेषु षट्कूटानीति षोडश कूटानि विलिख्याभ्यन्तरवृत्तान्तराले साध्यनामयुक्तं तत्तत्कर्मानुसारितत्तद्भूताक्षराणि द्वित्रिद्वित्रिक्रमेण षट्कोणाद्बहिर्वृत्तान्तराले तान्येव भूताक्षराणि तथैव कर्मयुक्तानि विलिख्य, बहिर्वृत्तान्तरालद्वयेऽभ्यन्तरान्तराले विसर्गयुक्तमातृकामनुलोमां विलिख्य तद्बहिरन्तराले बिन्दुयुक्तां विलोममातृकां विलिखेत्। एवं द्वितीययन्त्रे मध्ये साध्यगर्भं द्वितीयं कूटं विलिख्य प्रागुक्तक्रमेणान्यानि पञ्चदशकूटानि विलिखेत्। एवं तृतीयकूटादीनि तृतीयादिषु यन्त्रेषु विलिखेदिति षोडशयन्त्राणि निष्पाद्य, प्रागुक्तामृतबीजपञ्चकं षोडशस्वरसंयुक्तं कृत्वा तान्यशीतिबीजानि बिन्दुयुक्तानि विसर्गयुक्तानि च षष्ट्युत्तरशतबीजानि कुर्यात्। ततस्तेषु प्रथमं मूलविद्यया सहितं मध्ये विलिख्य पञ्चदशबीजानि त्रिकोणादिषु विलिखेत्। एवं षोडशषोडशबीजैर्दशयन्त्राणि विलिखेत्। एवं प्रागुक्तैः षोडशयन्त्रैः सह षड्विंशतिर्यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

नाना अभीष्ट-प्रदायक इसके यन्त्र को कहता हूँ, जिससे सर्वदा समस्त अभीष्ट की प्राप्ति होती है। सबसे पहले त्रिकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर षड्दल कमल और उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। मूल विद्या 'च्कौं' को सोलह स्वर से युक्त करे, जैसे—च्कं च्कां च्किं च्कीं इत्यादि। मध्य में मूल विद्या का प्रथम कूट च्कं के उदर में साध्य नाम लिखे। त्रिकोण कोनों में च्कां च्किं च्कीं लिखे। षट्कोण के छः कोणों में च्कुं च्कूं च्कृं च्कॄं च्क्लृं च्क्लॄं लिखे। षड्दल पद्म के छः दलों में च्कें च्कैं च्कों च्कौं च्कं च्कः लिखे। त्रिकोण के बाहर वृत्तों के अन्तराल में साध्य नामयुक्त कार्य के अनुसार भूताक्षरों को लिखे। षट्कोण के बाहर वृत्तों के अन्तराल में कर्मयुक्त भूताक्षरों को लिखे। षड्दल के बाहर तीन वृत्तों के दो अन्तरालों में से पहले अन्तराल में विसर्गयुक्त मातृकाओं को अनुलोमक्रम से लिखे। दूसरे अन्तराल में अनुस्वारयुक्त मातृकाओं को विलोम गति से लिखे। इसी प्रकार द्वितीय यन्त्र के मध्य में साध्य नाम गर्भ दूसरे कूट च्कां को लिखे और शेष में अन्य अक्षरों तथा मातृकाओं को लिखे। इसी प्रकार तृतीय से लेकर सोलहवें यन्त्र तक बनावे। पूर्वोक्त अमृतबीजपञ्चक को षोडश स्वरयुक्त करने से अस्सी बीज बिन्दुयुक्त और अस्सी बीज विसर्गयुक्त कुल १६० अक्षर बनते हैं। उनमें सोलह कूटों से दश यन्त्र बनते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त सोलह यन्त्रों सहित कुल छब्बीस यन्त्र बनते हैं।

कोष्ठवज्रयन्त्रं तदनुभावः

अथ सप्तविंशतितमं वज्ररूपं यन्त्रमाह—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्राण्यष्टादश क्षिपेत्। तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते नवाशीतिशतद्वयम्॥३७॥
तत्र कोणेषु कोष्ठानि द्वात्रिंशन्मार्जयेत्तदा। ततो वज्रं भवेन्मध्ये त्वेकषष्ट्या शतात्मकम्॥३८॥
अस्य दिक्षु त्रिकोणानि विदध्यादेककोष्ठतः। मध्ये कोष्ठे लिखेद्विद्यां साध्याख्याकर्मसंयुताम्॥३९॥
त्रिकोणेषु तु तत्कूटान्यालिखेत्साध्यवन्ति च। प्राग्वदारभ्य विलिखेत् प्रादक्षिण्यप्रवेशतः॥४०॥
एतद्वज्रं महायन्त्रं समस्तापन्निवारणम्।

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् चाष्टादशाष्टादशसूत्रपातनेन नवाशीत्युत्तरशतकोष्ठानि विरच्य, चतुर्दिक्षु द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशत् कोष्ठानि मार्जयित्वा एकषष्ट्युत्तरशत (१६१) कोष्ठात्मकं वज्ररूपं विधाय चतुर्दिक्षु एकैकं कोणं मार्जयित्वा त्रिकोणानि विधाय, मध्ये साध्यनामगर्भां मूलविद्यां विलिख्य चतुर्दिक्षु चतुस्त्रिकोणेषु प्रागुक्तामृतबीजानामादितश्चतुर्बीजानि साध्यनामयुक्तानि विलिख्य, पञ्चमबीजमारभ्य बाह्यतः प्रवेशगत्या प्रादक्षिण्येन सर्वाणि कोष्ठानि पूरयेदिति।

वज्र यन्त्र—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर अट्ठारह-अट्ठारह रेखा खींचे। इससे दो सौ नवासी कोष्ठ बनते हैं। चारों कोणों में बत्तीस-बत्तीस कोष्ठों को मिटा देने से १६१ कोष्ठ वज्रात्मक रूप के होते हैं। चारो दिशाओं में एक-एक कोष्ठ मिटाकर त्रिकोण बनावे। यन्त्र के मध्य में साध्य नाम गर्भ 'च्कौं' लिखे। चारो दिशाओं के चार कोनों में पूर्वोक्त पाँच अमृतबीजों में से चार प्रारम्भिक कूटों को साध्य नामयुक्त लिखे। पञ्चम बीज से प्रारम्भ करके बाहर से प्रवेश गति से प्रदक्षिण क्रम से सभी कोष्ठों में स्वरविकृत १६० कूटों को लिखे। यह महावज्र यन्त्र सभी तापों का निवारक होता है।

नक्षत्रवारतिथिषु अर्चनादिक्रमः

तथा—

समस्ताभीष्टदं सर्वविजयश्रीप्रदं शुभम् । सप्तविंशतिरुक्तानि यन्त्राण्येवं महेश्वरि ।।४१।।
सप्तविंशतिनक्षत्रमयान्येतानि येन वै । तेन तान्येव सप्तम्या विभक्त्या साध्यमालिखेत् ।।४२।।
तानि तत्तद्दिनेष्वेवं विलिखेत् स्थापयेदपि । फलानि तेषां क्रमशो वदाम्युक्तक्रमेण वै ।।४३।।
विनियोगक्रमं चैव सुस्फुटं परमेश्वरि । प्रथमेनार्चितेन स्याद्रोगा नश्यन्त्यशेषतः ।।४४।।
स्ववेश्मनि विधायैतत्पीठे भूमितलेऽपि वा । प्रोक्तद्रव्याणि संपिष्य तत्पङ्केनाथ सुस्फुटम् ।।४५।।
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा सप्तविंशतिरात्रकम् । संपूज्य तत्र कुम्भं तु विद्यौषधिजलान्वितम् ।।४६।।
निधायाभ्यर्च्य गदिनमभिषिञ्चेत्ततः सुखी । एवमन्यानि यन्त्राणि प्रोक्तेषु विनियोजयेत् ।।४७।।
तेषां विलेखनद्रव्याण्याकर्णय वदामि ते । कुचन्दनं चन्दनं च सिन्दूरं सेन्दुरोचनम् ।।४८।।
काश्मीरमगुरुं कुष्ठमेलाकक्कोलजातिभिः । स्वर्क्षवृक्षैर्द्वादशभिर्हिमाम्बुपरिपेषितैः ।।४९।।
जलैर्नक्षत्रवृक्षोत्थै रसैर्वा सूक्ष्मपेषितैः । द्वितीयं विजयप्राप्त्यै विदध्यात्प्रोक्तरूपतः ।।५०।।
वादे विवादे समरे द्यूतेषु च जयी भवेत् । तृतीयाद्येषु नवसु ग्रहान् नव समर्चयेत् ।।५१।।
देव्यात्मरूपान् तेनास्य तैर्बाधा न भवेद्ध्रुवम् । स्तम्भयेद् द्वादशेनाशु प्रोक्तक्रमविधानतः ।।५२।।
संग्रामगमनं वर्षामुद्योगं वाचमाग्रहम् । त्रयोदशाद्यैर्वस्त्रान्तैर्यन्त्रैस्तिथिमयैरपि ।।५३।।
तत्तत्तिथिषु तैः प्राग्वद्वाञ्छितान् प्राप्नुयाद्ध्रुवम् । तेषु तेषु तु यन्त्रेषु तत्तत्तिथिदिनाधिपान् ।।५४।।
वारेशानपि संपूज्य तत्तत्फलमवाप्नुयात् । कार्योद्योगेषु रोगेषु वाञ्छितेष्वितरेष्वपि ।।५५।।
वारर्क्षतिथिसंप्रोक्तयन्त्रे तां तैश्च दैवतैः । आवृतामर्चयेदग्निरक्षोवाय्वीशदिग्गतैः ।।५६।।
रोगशान्तिसमुद्योगफलाभीष्टान्यवाप्नुयात् । वाराणामधिपाः प्रोक्तास्तिथिनक्षत्रदेवताः ।।५७।।

उक्त सभी सत्ताईस यन्त्र सभी अभीष्टों एवं सभी प्रकार के विजय और श्री को देने वाले होते हैं। ये सत्ताईस नक्षत्रों के रूप होते हैं। उनमें सप्तमी विभक्ति लगाकर साध्य नाम लिखे। उनमें उस दिन के देवता का नाम लिखे और स्थापित करे। उनके फलों और विनियोग को कहता हूँ। प्रथम यन्त्र के पूजन से सभी रोग समूल नष्ट होते हैं। अपने घर की भूमि पर या पीठ पर प्रोक्त द्रव्य पिष्ट से स्पष्ट यन्त्र बनावे। तीन या सात या सत्ताईस रातों तक पूजन करे। वहाँ पर विद्यौषधि जलान्वित कुम्भ स्थापित करे। पूजा करे और उस जल से रोगी को स्नान करावे। इससे रोगी निरोग होता है। इसी प्रकार अन्य यन्त्रों को विनियोजित करे।

उन यन्त्रों को लिखने के द्रव्यों को कहता हूँ, सुनो। लाल चन्दन, चन्दन, कपूर, सिन्दूर, गोरोचन, केसर, अगर, कुष्ठ, कक्कोल, इलायची, जातिफल और अपने नक्षत्रवृक्ष—इन बारह को बर्फ जल से पीसकर या नक्षत्र वृक्षोत्थ जल में पीसकर या रस में महीन पीसकर उक्त रूप में द्वितीय यन्त्र बनाकर पूजा करने से वाद-विवाद में, युद्ध में, जुआ में विजयी होता है। तीसरे से लेकर ग्यारहवें तक के यन्त्र में नवग्रहों की पूजा क्रम से करे तो देव्यात्म रूप में वे बाधा नहीं करते। बारहवें यन्त्र से उक्त विधान से साधन करने पर संग्राम के लिये गमन में, वर्षा में, उद्योग में, वाणी में स्तम्भन होता है। त्रयोदश से सत्ताईस तक के यन्त्र तिथिरूप हैं। उनकी तिथियों में उनकी पूजा से वांछित फल मिलता है। उनकी तिथियों में अधिपति और वारेशों की पूजा करने से भी वह फल प्राप्त होता है। कार्यों में, उद्योगों में, रोगों में या अन्य फल उनसे प्राप्त होते हैं। उक्त यन्त्र में वार, तिथि, नक्षत्र में उनके देवताओं की पूजा अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान में करे। इससे रोगशान्ति के उद्योग में सफलता मिलती है। इस प्रकार वारों के अधिपति तथा तिथि-नक्षत्र देवता का विवेचन किया गया।

तिथिवृक्षदेवतानक्षत्रयोनयः

ऋक्षवृक्षांस्तथा योनीर्वदामि परमेश्वरि । वह्निदस्रावुमा विघ्नो भुजङ्गः षण्मुखो रविः ।।५८।।
मातरश्च तथा दुर्गा दिशो धनदकेशवौ । यमो हरः शशी चेति तिथीशाः परिकीर्तिताः ।।५९।।

नक्षत्रदेवताश्चापि शृणु वक्ष्ये यथाविधि। अश्विनौ च यमो वह्निर्धाता चन्द्रः शिवोऽदितिः ॥६०॥
गुरुः सर्पाश्च पितरस्त्वर्यमा भग एव च। दिनकृच्च तथा त्वष्टा मरुदिन्द्राग्निमित्रकाः ॥६१॥
इन्द्रो निर्ऋतितोयाख्यौ विश्वेदेवा हरिस्तथा। वसवो वरुणः पश्चादजएकपदस्तथा ॥६२॥
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा प्रोक्ता नक्षत्रदेवताः। कारस्करश्चामलकोदुम्बरो जम्बुकस्तथा ॥६३॥
खदिरः कृष्णवंशौ च पिप्पलो नागरोहिणौ। पलाशप्लक्षकाम्बष्ठबिल्वार्जुनविकङ्कताः ॥६४॥
बकुलः सरलः सर्जो वञ्जुलः पनसस्तथा। अर्कः शमी कदम्बश्च चूतो निम्बस्तथान्तिमः ॥६५॥
मधुकश्चेति संप्रोक्ता वृक्षा भानां क्रमादमी। अश्वगजमजं सर्पसर्पिणीश्वबिडालिकाः ॥६६॥
अजामार्जारमूषाश्च मूषिका वृषमाहिषौ। व्याघ्रश्च महिषो व्याघ्री मृगी मृगशुनी कपिः ॥६७॥
गोखड्गो वानरी सिंही तुरगी सिंहगोगजाः।

तिथियों के स्वामी हैं—अग्नि, दस्र, उमा, विघ्नेश, सर्प, कार्तिकेय, सूर्य, मातृगण, दुर्गा, कुबेर, दिक्पति, केशव, यम, हर, शशी।

नक्षत्रों के देवता हैं—अश्विनी, यम, अग्नि, धाता, चन्द्र, शिव, अदिति, गुरु, सर्प, पितर, अर्यमा, भग, सूर्य, त्वष्टा, मरुत्, इन्द्र, अग्नि, मित्र, निर्ऋति, वरुण, विश्वेदेव, हरि, वसु, वरुण, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य एवं पूषा।

नक्षत्र वृक्ष हैं—कारस्कर, आमलक, गूलर, जामुन, खैर, कृष्णवंश, पीपल, नाग, रोहिणी, पलाश, पाँकड, अम्बष्ठ, बेल, अर्जुन, विकंकत, बकुल, सरल, सर्ज, वंजुल, कटहल, अकवन, शमी, कदम्ब, आम, नितम्ब, महुआ।

योनी है—अश्व, गज, बकरा, सर्प, सर्पिणी, बिल्ली, बकरी, मार्जार, मूष, मूषिका, बैल, भैंस, बाघ, भैंसा, व्याघ्री, मृगी, मृगछौना, कपि, गोखड्ग, वानरी, सिंही, घोड़ी, सिंह, गाय, हाथी।

रोगशान्तिसमयज्ञानम्

यदा रोगादिदुःखार्तिर्भवेत् तत्पूर्वगैर्दिनैः ॥६८॥
मुहूर्तैः संख्ययाऽहोभिः शान्तिः स्याद्द्विगुणेन वा।

जिस दिन रोगादि दुःख होते हैं, उसके पहले एक दिन के मुहूर्त में दिन की संख्या के दूनी संख्या के दिन में शान्ति करे।

षट्स्वाधारेषु यन्त्राणां भावनफलम्

आधारे पञ्च यन्त्राणि स्वाधिष्ठाने चतुष्टयम् ॥६९॥
प्रोक्तेषु भावयेत्तानि तावन्ति मणिपूरके। अनाहते ततः पञ्चयन्त्राणि परिभावयेत् ॥७०॥
विशुद्धाख्ये च चत्वारि पञ्चाज्ञायामिति क्रमात्। तत्तत्तिथिदिनेष्वेवं भावयेत् षोडशीं शिवाम् ॥७१॥
तत्तच्चक्रगताः सर्वा भावयेत् सर्वसंपदे। आधारादिषु चक्राणि भावयेदुक्तयोगतः ॥७२॥
न तु सर्वत्र सर्वाणि भावयेन्न कदाचन। भावनायामशक्तानां तत्तद्यन्त्राद्बहिस्तथा ॥७३॥
प्रोक्तान्याधारपद्मानि कृत्वा तत्रार्चयेच्छिवाम्। एवं दिनेषु वारेषु नक्षत्रेषु त्रिषु क्रमात् ॥७४॥
संपूज्य देवीमिष्टानि प्राप्नुयात्प्रोक्तवासरैः। बलिं च दद्यात्तेष्वेव वासरेषु यथाविधि ॥७५॥

मूलाधार में पाँच यन्त्रों की एवं स्वाधिष्ठान के चार यन्त्रों की उक्त रूप में भावना करे। मणिपूर में चार और अनाहत में पाँच यन्त्रों की भावना करे। विशुद्धि चक्र में चार और आज्ञा में पाँच यन्त्रों की भावना करे। इसी प्रकार तिथि दिनों में षोडशी शिवा की भावना करे। उन चक्रों में सभी सम्पदाओं की भावना करे। आधारादि चक्रों में उसके योग से भावना करे। सबों की सर्वत्र भावना कभी न करे। भावना करने में अशक्त होने पर उन यन्त्रों का बाहर आधारादि पद्म में अर्चन करे। इस प्रकार दिनों

में, वारों में, नक्षत्रों में क्रम से करे। उन दिनों में देवी की पूजा करके इष्ट प्राप्त करे, उन्हीं दिनों में यथाविधि बलि भी प्रदान करे।

देव्याः पञ्चाशन्मिथुनानाञ्च बलिदानप्रकारफलम्

पञ्चाशन्मिथुनानां च प्रोक्तचक्रेऽर्धरात्रके। मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि चक्रस्थानामपीश्वरि ॥७६॥
मिथुनोक्तक्रमे शक्तिमन्त्रवच्चक्रगामिनाम्। कूटानां मन्त्ररूपाणि प्रोक्तानि स्फुटमीश्वरि ॥७७॥
तैस्तेषां तेषु कालेषु बलिं दद्यात्तथेरितैः। देव्यास्त्वनुग्रहप्रोक्तनिवेद्यैः सिक्थकं महत् ॥७८॥
विधाय तस्य मध्ये तु कृत्वा दीपं घृतप्लुतम्। विधाय तत्तन्मन्त्रैस्तु विदध्यात्तान्यनुक्रमात् ॥७९॥
प्रत्येकं देवतानां वा मिथुनानां तथापि वा। इत्थं कार्यस्य गुरुतालाघवापेक्षया दिनैः ॥८०॥
साधयेत्सप्तभिः पक्षान्मासान्मण्डलतोऽपि वा। दद्यादपूपपनसमोचागुडघृतान्वितम् ॥८१॥
कुल्माषाः पायसान्नं च व्यञ्जनं छागमांसयुक्। मिथुनानां बलिं दद्यात्प्रतिमासं गृहेऽर्चयेत् ॥८२॥
प्रत्यब्दं वा गृहे मन्त्री जीवेदाढ्यो महोदयः। एवं कालात्ममिथुनबलिदानेन पूजनात् ॥८३॥
स्मरणात्कीर्तनात् सर्ववाञ्छितानाप्नुयुर्नराः। मिथुनानां बलिद्रव्याण्याकर्णय महेश्वरि ॥८४॥
यैस्तुष्टिं प्रापितान्याशु प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितम्। दशानां पायसं दद्याद् दशानां तु गुडौदनम् ॥८५॥
पञ्चानां मुद्गभिन्नान्नं पञ्चानां दधिभक्तकम्। दद्यादपूपं पञ्चानां पञ्चानां क्षीरशर्करे ॥८६॥
पञ्चानां नारिकेलस्य फलक्षोदं गुडान्वितम्। पञ्चानां सितभक्ताभ्यां मोचाफलमुदीरितम् ॥८७॥
मिथुनार्चारतो नित्यं योऽसौ स्यान्मान्त्रिकाग्रणीः।

इति विचित्रानित्याप्रयोगविधिः।

उपर्युक्त चक्र में आधी रात को, मध्याह्न में, सन्ध्याद्वय में, चक्र स्थान में पचास मिथुनों के उक्त क्रम से शक्ति मन्त्रवत् चक्रगामी कूटों में मन्त्ररूप में स्फुट मानकर उनसे उनके काल के अनुसार बलि प्रदान करे। महान् सिक्थक देवी को कृपा के लिये अर्पित करे। उसके मध्य में घी का दीपक जलाये और उनके मन्त्रों से अर्पण करे। प्रत्येक देवता या मिथुनों को उनकी गुरुता-लघुता के अनुसार अर्पित करे। इस प्रकार की साधना सात दिनों तक या पन्द्रह दिनों तक या तीस दिनों तक या चालीस दिनों तक करे। उन्हें पूआ, कटहल, केला, गुड़, घीसंयुक्त नैवेद्य का अर्पण करे। उड़द, पायसान्न एवं छाग-मांसयुक्त व्यञ्जन देकर मिथुनों को प्रति माह बलि प्रदान करे और गृह में अर्चन करे अथवा प्रत्येक वर्ष में अर्चन करे तो साधक महान् होकर जीवित रहता है। ऐसा कालात्म मिथुनों के पूजन-बलिदान से होता है। उनका स्मरण-कीर्तन करने से मनुष्य वांछित फल प्राप्त करता है। मिथुनों के बलि द्रव्यों को सुनो, जिससे वे सन्तुष्ट होते हैं और वांछित देते हैं। दश को पायस, दश को चावल-गुड़, पाँच को मूँग-दही-भात, पाँच को पूआ, पाँच को दूध एवं शर्करा, पाँच को नारियल फल का टुकड़ा और गुड़, पाँच को भात, चीनी और केला अर्पण करे। मिथुनों के अर्चन में जो साधक लगा रहता है, वह साधकों में अग्रणी होता है।

कुरुकुल्लानित्याप्रयोगविधिः

अथ कुरुकुल्लानित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२२.३२)—

प्राग्वद्व्रतयुतो विद्यां पञ्चविंशतिलक्षकम्। जपित्वा पूजयेत्सन्ध्यास्वथ तर्पणहोमतः ॥१॥
कुर्यान्नित्योदितेष्वन्यतमेन हवनक्रियाम्। एवं संसिद्धविद्यस्तु नित्यार्चानिरतस्तथा ॥२॥
प्रयोगानाचरेद्भक्त्या काम्यान् प्रोक्तक्रमेण वै। होमेन पूजया यन्त्रभावनेन च तान् शृणु ॥३॥

कुरुकुल्ला नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्ववत् व्रत में रहकर विद्या का जप पाँच लाख करे। जप के बाद सन्ध्या में पूजन-तर्पण-हवन करे। यह हवन नित्य करे। इस प्रकार सिद्ध विद्या का नित्य अर्चन करे। भक्ति से काम्य प्रयोग उक्त क्रम से करे। जिस प्रकार के हवन-पूजा-यन्त्र और भावना से प्रयोग होते हैं, उन्हें अब कहता हूँ।

नानाहोमान्नानाफलप्राप्तिः

घृताक्तैः सर्षपैर्होमाद्वशयेद् वनिताजनम्। सर्षपस्नेहसंसिक्तैर्मरिचैरानयेच्च ताः ॥४॥
तैलाक्तैस्तु तिलैर्होमान्मध्यरात्रे यथाविधि। नारीनरनृपानन्यान् वशयेद्यावदायुषम् ॥५॥
अजाघृताक्तैर्बन्धूककुसुमैर्मध्यरात्रके। हवनाद्वनिताः सर्वा मोहयेत्प्रेमकौतुकैः ॥६॥
क्षीराक्तैर्मल्लिकापुष्पैर्हवनाद् ब्राह्मणान् नृपान्। वशयेच्छतपत्रैस्तु तथा विचकिलैः शुभै ॥७॥
सवत्ससितगोदुग्धसमेतैर्नारिकेलजैः। फलक्षोदैः सितयुतैहर्वनात्स्वर्णमाप्नुयात् ॥८॥
नारिकेलफलक्षोदैर्गुडक्षौद्रघृतप्लुतैः। प्रागुक्तकालतो वित्तनिचयं समवाप्नुयात् ॥९॥
कदलीफलहोमेन स्यादाढ्योऽम्बुजहोमतः। कह्लारहोमतोऽभीष्टं लभते कुमुदद्वयैः ॥१०॥
उत्पलैः पूजयेद् देवीं समस्तापद्विमुक्तये। पद्मैः सितैर्लोहितैश्च पूजयेदिन्दिराप्तये ॥११॥
कुमुदाभ्यां यजेद्वित्तलाभाय यशसे तथा। जपाबन्धूककुसुमैस्तथा दाडिमजैरपि ॥१२॥
सौगन्धिकैर्विचकिलैः कुटजैः शतपत्रकैः। पुंनागजैः पाटलैश्च चम्पकोत्थैर्यजेच्छिवे ॥१३॥
सप्तभिः सप्तवारेषु भास्करादिषु पूजयेत्। प्रोक्तकालेषु वित्ताढ्यो धराधान्यांशुकादिमान् ॥१४॥
चन्दनैरर्चयेन्नित्यं समस्तमपि वाञ्छितम्। लभते प्रोक्तकालेन तथा कालागुरुद्रवैः ॥१५॥
कुसुमैर्नित्यशः पूजां कुर्यात्सौभाग्यसिद्धये। कर्पूरैरायुषः सिद्ध्यै वश्यश्रीधनसिद्धये ॥१६॥
मृगस्वेदमदाभ्यां च पूजयेन्मासमात्रकम्। कन्दर्पसमसौभाग्यो वनितासु नरो भवेत् ॥१७॥
एलालवङ्गकक्कोलजातीभिर्नित्यशो यजेत्। अब्दमात्रं ततो लोके विश्रुतः स्यात्स वैभवैः ॥१८॥
कर्पूरशकलैः पूजा सर्वाभीष्टप्रदा भवेत्। पूजितैस्तैस्तु जग्धैः स्यान्नरो यात्यखिलप्रियः ॥१९॥

घृताक्त सरसों के हवन से वनितायें मोहित होती हैं। सरसों तेल से सिक्त मरिच के हवन से वनिता आती है। तैलाक्त तिल से आधी रात में हवन करने से नारी-नर-नृप या अन्य आजीवन वश में रहते हैं। बकरी के घी से अक्त बन्धूकपुष्प से आधी रात में हवन करने से सभी वनितायें उसके प्रेमरूपी क्रीड़ा से मोहित होती हैं। दूधसिक्त मल्लिका पुष्पों के हवन से राजा एवं ब्राह्मण वश में होते हैं। शतपत्री और विचकिला के हवन से भी यही कार्य होता है। उजले बछड़े वाली उजली गाय के दूध के साथ नारियल के महीन टुकड़ों और चीनी के हवन से सोना मिलता है। नारियल के महीन टुकड़ों और गुड़ को मधु से सिक्त करके पूर्वोक्त काल तक हवन करने से निश्चय ही धन मिलता है। केले के हवन से कमल एवं कल्हार के हवन से अभीष्ट प्राप्त होता है। लाल उजले कुमुद उत्पल से देवी का पूजन करने से सभी तापों का नाश होता है। रक्त और श्वेत कमल से लक्ष्मीप्राप्ति के लिये पूजा करे। कुमुद से पूजा करने पर धन और यश प्राप्त होते हैं। अड़हुल, बन्धूक, अनार के फूलों से हवन करने पर भी धन मिलता है। सौगन्धिक विचकिल कूटज शतपत्री पुन्नाग गुलाब और चम्पा के फूलों से देवी की पूजा करे। इन सात फूलों में से प्रत्येक से रविवार से शनि तक सात दिनों में पूजा उक्त काल तक करने से धन-धरा-धान्य-वस्त्र से साधक भरपूर होता है।

चन्दन से नित्य अर्चन करके वांछित प्राप्त करता है। काला अगर के द्रव और फूलों से नित्य पूजन सौभाग्यसिद्धि के लिये करना चाहिये। मृगस्वेद और कस्तूरी से एक महीने तक पूजा करने से साधक स्त्रियों के लिये कामदेव के समान सौभाग्यवान होता है। इलायची लवंग कक्कोल और जातिपुष्प से नित्य एक साल तक पूजा करने से साधक अपने वैभव से लोक-विख्यात होता है। कपूर के टुकड़ों से पूजा सर्वाभीष्टदायिका होती है। जग्ध से पूजा करने पर साधक सबका प्रिय हो जाता है।

यन्त्रनिर्माणं तत्प्रयोगपञ्चकम्

वृत्तत्रयं तथाष्टारमब्जं तन्मध्यतस्तथा। नवयोनिं विधायात्र मध्ये मायां ससाध्यकाम् ॥२०॥
आलिख्याष्टसु कोणेषु मन्त्रार्णाष्टकमालिखेत्। बहिर्दलेष्वपि तथा लिखेद् द्विद्विक्रमेण वै ॥२१॥

बहिर्मातृकया मायास्वगया प्रतिलोमया। क्रमेण चाभिसंवेष्ट्य तेन यन्त्रेण साधयेत् ॥२२॥
समस्तं वाञ्छितं पूजाधारणस्थापनादिना। यन्त्रं रोचनयालिख्य भूर्जे वा क्षौमखण्डके ॥२३॥
गुलिकीकृत्य सिक्थस्य मध्यगं तद्विधाय तु। तापयेद्रात्रिषु दिनैः प्रागुक्तैः स्त्रियमानयेत् ॥२४॥
दरदेन विलिख्यैतत् पटे वा फलकोदरे। तत्र देवीं समावाह्य पूजयेत्तैर्दिनैर्भवेत् ॥२५॥
वशे त्रिभुवनं सर्वं नरनारीनृपादिकम्। गजवाजितरक्ष्वादितिर्यग्जातीरपि ध्रुवम् ॥२६॥
तद्यन्त्रं सिन्धुतीरे वा नदीतीरेऽथवा लिखेत्। गैरिकेण समावाह्य देवीं तत्रैव पूजयेत् ॥२७॥
समस्तरोगदुःखार्तिशान्तिः स्यादुदितैर्दिनैः। लभेच्च पूजनात्तत्र पशुदासीधनादिकम् ॥२८॥
तद्यन्त्रं चन्दनैः कृत्वा पीठे तद्दिनपूजनात्। पुत्रपौत्रकलत्राज्ञाधनधान्यार्द्धिमान् भवेत् ॥२९॥
तद्यन्त्रं हेम्नि रूप्ये वा भूर्जे वालिख्य धारणात्। समस्तरोगदुःखार्तिरहितो वर्धते सुखी ॥३०॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—प्रथमतो नवयोनिचक्रं विलिख्य तद्बहिरष्टदलकमलं तद्बहिरष्टारं तद्बहिर्वृत्तत्रयं च विलिख्य, मध्ये ससाध्यं ह्रीः इति बीजं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोणेषु मूलपञ्चविंशाक्षरमन्त्रस्याष्टौ वर्णान् विलिख्य, तद्बहिरष्टदलेष्वष्टाक्षराणि तद्बहिरष्टारेष्वापि शिष्टान्यष्टाक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले विसर्गयुक्तयानुलोममातृकया तद्बहिरन्तराले बिन्दुयुक्तया विलोममातृकया च वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

सबसे पहले नव योनिचक्र बनाकर उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे, उसके बाहर अष्टकोण बनावे, उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। चक्र में मध्य में साध्य नामसहित 'ह्रीं' लिखे। उसके बाहर अष्टकोण में मूल मन्त्र के पच्चीस अक्षरों में से आठ अक्षर लिखे। उसके बाहर अष्टदल में आठ अक्षर लिखे। उसके बाहर अष्टकोण में आठ अक्षर लिखे। उसके बाहर वृत्तों के दो अन्तराल में विसर्गयुक्त अनुलोम मातृका लिखे। दूसरे अन्तराल में सानुस्वार विलोम मातृका लिखे। इस यन्त्र के पूजा, धारण एवं स्थापन से सभी वाञ्छित प्राप्त होते हैं।

यन्त्र को गोरोचन से भोजपत्र पर या रेशमी वस्त्र के टुकड़े पर लिखे। गोली बनाकर सिक्थक में रखे। उसे तीन रातों तक आग में तपावे तो देवी वांछित स्त्री ला देती है। सिगरफ से कपड़े या फलक पर लिखकर उसमें देवी का पूजन तीन दिनों तक करे तो उसके वश में तीनों लोक, सभी नारी, राजा, हाथी, घोड़ा, तरक्षु आदि तिर्यक् जाति भी हो जाते हैं।

समुद्र के किनारे या नदी के तट पर उस यन्त्र को गेरु से लिख कर उसमें देवी का आवाहन-पूजन करे तो उसके सभी रोग, दुःख एवं कष्ट उसी दिन शान्त हो जाते हैं। इसके पूजन से पशु-धनादि भी प्राप्त होते हैं। इस यन्त्र को पीठ पर चन्दन से लिखकर तीन दिनों तक पूजन करने से साधक पुत्र, पौत्र, कलत्र, धन-धान्य से युक्त होता है। इस यन्त्र को सोने-चाँदी या भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से सभी दुःख-रोग आदि से रहित साधक सुखी होकर जीवित रहता है।

द्वितीयविद्यया कोष्ठवज्रयन्त्रनिर्माणं तत्प्रयोगचतुष्टयञ्च

तथा—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्रषट्कनिपातनात्। कोष्ठेषु पञ्चविंशत्सु त्रीणि कोणेषु मार्जयेत् ॥३१॥
कोष्ठैर्वज्रं ततः शेषैस्त्रयोदशभिरीरितम्। तन्मध्ये शक्तिमायास्थामालिख्याख्यां ततोऽभितः ॥३२॥
लिखेद्विद्यां ततस्तस्मिन् पूजयेदर्धरात्रके। वाञ्छितां वनितां मानकुललज्जातिलङ्घिनीम् ॥३३॥
तृणराजदले कृत्वा यन्त्रं सर्षपहिङ्गुभिः।

तृणराजदले तालपत्रे।

पटुशुण्ठीमागधिकामरिचार्कपयोयुतम् ॥३४॥
निशासु सिक्थगं दीपवह्नौ संतापयेज्जपन्। विद्यां त्रयोदशार्णान्तु तद्दिग्वक्त्रो दिनैः स्त्रियम् ॥३५॥
आकर्षयेन्न वागच्छेत्तत्र कामज्वराच्छतैः। अवस्थाभिश्च दशभिर्मृतिमेति सुनिश्चितम् ॥३६॥

भूर्जे वा तालपत्रे तदालिख्य स्पष्टविग्रहम्। मधूच्छिष्टप्रतिकृतैर्ऋजु तं तापयेत्तथा ॥३७॥
नरं नारीं नृपं चान्यं प्राणिनं स्नेहविह्वलम्। करोति यावद्देहान्तं ते प्रतीपा लपन्ति च ॥३८॥
कज्जलैर्यन्त्रमालिख्य भूर्जे क्षौमे सितेऽथवा। जपित्वा धारयेत्सर्वरोगदुःखार्तिनाशनम् ॥३९॥
गैरिकैश्चन्दनोपेतैरालिख्य विमलाम्बरे। तदास्तीर्य शयानस्य वैरिणो दाससन्निभाः ॥४०॥
वृत्तद्वयान्तरा कृत्वा षट्कोणं तस्य मध्यतः। भूःस्वगर्भगतं नाम विलिख्याश्रिषु षट्स्वपि ॥४१॥
षडक्षराणि विलिखेत्सप्ताक्षर्या क्रमेण वै। यन्त्रमेतत्तालपत्रे भूर्जे क्षौमेऽर्कपत्रके ॥४२॥
प्रजप्य विद्यामयुतं वल्मीके निक्षिपेच्च तत्। तत्र स्थिता ये भुजगा पलायन्तेऽथ तद्दिने ॥४३॥
तदूर्मिकादौ संलिख्य सञ्जप्याभ्यर्च्य कुत्रचित्। निधाय नित्यशः पूजासमेते रक्षतो गृहे ॥४४॥
भूतप्रेतपिशाचापस्मारवेतालराक्षसाः। यक्षगन्धर्वभुजगवृश्चिकाद्या न तत्र वै ॥४५॥
तत्क्षिप्त्वा कुम्भसलिले जपित्वा विद्ययानया। सहस्रवारं सलिलैरासेकः क्ष्वेडनाशनः ॥४६॥
तत्पीतं जठरे प्राप्तमशेषं नाशयेद्विषम्। देहगं परमेशानि त्रिविधं भीषणात्मकम् ॥४७॥
तद्विलिख्य नखाग्रेण नारिकेलदले स्मरन्। तद्रूपं फणिनं विद्याजपपूर्वं नखादिना ॥४८॥
पीडनात्पाटनाद्भोगी पीडितः पाटितो भवेत्। एवं सर्वं त्रिप्रकारं गरलं नाशयेदिदम् ॥४९॥
वालुकासु सुसंलिख्य यन्त्रमभ्यर्च्य देवताम्। तत्र तैर्वेष्टयेत्सुप्तं भोगिनं न व्रजेद्बहिः ॥५०॥

अथ त्रयोदशाक्षरमन्त्रस्य यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च षट्सूत्रनिपातनात् पञ्चविंशति-कोष्ठात्मकं यन्त्रं विरच्य चतुष्कोणेषु त्रीणि त्रीणि कोष्ठानि मार्जयित्वा त्रयोदशकोष्ठात्मकं वज्ररूपं निष्पाद्य मध्य-कोष्ठे ह्रीः इति मायाबीजं साध्यगर्भं विलिख्यावशिष्टानि विद्याया अक्षराणि प्रवेशगत्या विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

अथ सप्ताक्षर्याः यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र वृत्तद्वयमध्यस्थं षट्कोणं विलिख्य मध्ये प्रणवगर्भं साध्यना-मालिख्य षट्सु कोणेषु षडक्षराणि विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

पूर्ववत् पूर्व-पश्चिम और दक्षिण-उत्तर समान दूरी पर छः-छः रेखा खींचने पर पच्चीस कोष्ठ बनते हैं। उनमें से चारो कोणों में तीन-तीन कोष्ठ मिटा देने से तेरह कोष्ठों का वज्रयन्त्र बनता है। उसके मध्य में ह्रीं के गर्भ में नाम लिखे। उसके चारो ओर विद्या के अक्षरों को लिखे। आधी रात में पूजा करे तो वांछित वनिता अपने मान-कुल और लज्जा को छोड़कर उसके पास आ जाती है। इस यन्त्र को ताड़पत्र पर सरसों हिंग पटु सोंठ मागधी मरिच अकवनदूध हल्दी के सिक्थक से दीप बनाकर तपाते हुए त्रयोदशाक्षरी विद्या का जप वांछित स्त्री की दिशा में मुख करके करे तो वह आकर्षित होकर कामज्वर से पीड़ित होकर आ जाती है।

भोजपत्र या ताड़पत्र पर साध्य का चित्र बनाकर मोम में रखकर आग पर तपावे तो नर-नारी-नृप अथवा अन्य प्राणी स्नेहविह्वल होकर आजीवन उसका पालन करते हैं। काजल से यन्त्र को भोजपत्र या उजले रेशमी वस्त्रखण्ड पर लिखकर जप करके धारण करने से सभी रोग-दुःख-कष्टों का नाश होता है।

गेरू और चन्दन मिलाकर सफेद कपड़े पर यन्त्र लिखकर उसे बिछाकर उस पर सोने से वैरी दासवत् हो जाता है। दो वृत्तों के अन्दर षट्कोण बनाकर उसके मध्य में ह्रीं के गर्भ में नाम लिखे। षट्कोण के कोणों में अक्षरों को लिखे। इसे भोजपत्र, रेशमी वस्त्रखण्ड या अकवन के पत्ते पर बनावे। विद्या का जप दश हजार करके दीमक के घर में गाड़ दे तो वहाँ पर रहने वाले सर्प उसी दिन भाग जाते हैं। इस यन्त्र को अंगूठी आदि में खुदवाकर जप कर कहीं रखकर नित्य पूजा करे तो गृह की रक्षा होती है। वहाँ से भूत प्रेत पिशाच अपस्मार वेताल राक्षस यक्ष गन्धर्व साँप बिच्छू भाग जाते हैं। उसे घड़े भर जल में डालकर एक हजार विद्या का जप करे और उस जल से स्नान करे तो रोग नष्ट होते हैं; तीनों प्रकार के विष उदर में हों या देह में हों तो नष्ट हो जाते हैं। उस यन्त्र को नारियल के दल पर नखाग्र से लिखकर विद्या जपसहित सर्पों का स्मरण

करके उन्हें नख से पीड़ित तथा पाटित करने से वे पीड़ित और पाटित होते हैं, तीनों प्रकार के सर्पविष नष्ट होते हैं। बालू पर यन्त्र बनाकर देवता का अर्चन करे और उसे बालू से ही वेष्टित करे तो सुप्त सर्प वहाँ से बाहर नहीं निकलते।

स्वरप्रसारणात् त्रयोदशाक्षरैः यन्त्राष्टकोपदेशस्तद्विनियोगश्च

तथा—

अनावृत्तानि विद्यायामक्षराणि त्रयोदश। तैः षोडशस्वरोपेतैः संख्याष्टौ च शतद्वयम् ॥५१॥
तानि पूर्वाद्ययन्त्रे तु विलिखेन्मध्यतो द्वयम्। बहिः प्राग्वत्ततस्तैः स्याद्यन्त्राण्यष्टौ महेश्वरि ॥५२॥
तेष्वाद्यं सर्ववारेषु विनियुञ्ज्यादुदीरिते। द्वितीयादीनि यन्त्राणि सप्त भान्वादिवारके ॥५३॥
विनियुञ्ज्यात् प्रोक्तकर्मस्वाख्यालेखनपूर्वकम्। वाराख्यां सप्तमीयुक्तामालिखेत्साधयेति तत् ॥५४॥
वश्याकर्षणशान्त्याप्त्यै विदध्यादाद्ययन्त्रतः। प्रोक्तक्रमेण विधिना शान्तिमर्चनतस्तथा ॥५५॥
सप्तमं पूजितं क्वापि स्थापितं पोतगर्भके। न नाशयति तत्पोतमम्बुधौ सर्वदा शिवे ॥५६॥
तथा वारेषु तेषूक्तान्यालिख्याभ्यर्चयेच्छिवाम्। वाञ्छितेषु समस्तेषु तैर्दिनैस्तान्यवाप्नुयात् ॥५७॥
रोगशान्तिं जयं लाभं नानाभीष्टार्थविग्रहम्। शत्रुभङ्गं वशं नारीनृपमर्त्यादिजन्मिनाम् ॥५८॥

विद्या के अनावृत अक्षर तेरह हैं। उन्हें सोलह स्वरों के साथ जोड़ने पर संख्या २०८ होती है। उन्हें पूर्वादि यन्त्रों में लिखने से आठ यन्त्र बनते हैं। इनमें से पहले यन्त्र की पूजा सातो दिनों में करे। शेष सात यन्त्रों की पूजा रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार—इन सातों दिनों में करे। उनमें नाम और काम लिखे। वार का नाम लिखकर साधे। इससे वश्य, आकर्षण, शान्ति आदि कार्य होते हैं। सातवें यन्त्र की पूजा करके जहाज के गर्भ में रख दे तो वह जहाज समुद्र में नष्ट नहीं होता है। उक्त दिनों में उक्त यन्त्र लिखकर अर्चन करे तो वांछित फल प्राप्त होते हैं। रोगशान्ति, जय, लाभ, नाना अभीष्ट, शत्रुनाश, नारी-नृप-मनुष्य उसके वश में होते हैं।

एकविंशत्यधिकद्विशतकोष्टरूपवज्रयन्त्रनिर्माणादि

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्राण्यास्फालयेत्क्रमात्। द्वाविंशतिं ततः सैकचत्वारिंशच्चतुःशतम् ॥५९॥
तेषु कोणेषु परितो मार्जयेत्पूर्ववत्क्रमात्। पञ्चपञ्चाशदन्यानि कोष्ठवज्रे महेश्वरि ॥६०॥
शतद्वयं सैकविंशत्तेषु दिक्षु त्रिकोणकम्। कुर्यात्प्राग्वच्चतुःकोष्ठैस्तथा प्राङ्मध्यतः शिवे ॥६१॥
प्रादक्षिण्येन विलिखेत्प्रवेशक्रमयोगतः। मध्येऽवशिष्टनवकमध्ये नामोदरां लिखेत् ॥६२॥
मायां तदभितो मन्त्रवर्णांस्त्रित्रिक्रमेण वै। त्रिकोणेषु च साध्यानि लिखेद्वज्रमितीरितम् ॥६३॥
तद्वज्रयन्त्रं तु पटे क्षौमे वा सुसिते शुभे। विलिख्याभ्यर्च्य तद्यन्त्रं पोतं रक्षति वारिधौ ॥६४॥
प्रागुक्तानि समस्तानि साधयेद्वज्ररूपिणा। यन्त्रेणानेन कालेन प्रोक्तेन नियतं शिवे ॥६५॥
तां देवीं पाशसंबद्धं साध्यमङ्कुशताडनात्। आकर्षन्ती स्वपादान्ते साञ्जलिं प्रणतं मुहुः ॥६६॥
रक्ष रक्षेति भाषन्तं स्मरन् विद्यां जपन्निशि। साध्यो नरोऽथ नारी वा वशमेति सुनिश्चितम् ॥६७॥
अथवा साञ्जलिं साध्यं प्राग्वद्वादिनमङ्कुशे। प्रोतकेशसमाकृष्टं जपेत्प्राग्वद्वशे भवेत् ॥६८॥
मन्त्राक्षराणां तेजोभिः परीतं वा तथाविधाम्। स्वयमेवानयेत्तां तु स्मरन् जापैर्वशं नयेत् ॥६९॥
एवं सा कुरुकुल्ला ते प्रोक्ता सर्वार्थसाधिका। ललिताविग्रहा येन वशिन्यादियुता ततः ॥७०॥

इति कुरुकुल्लानित्याप्रयोगविधिः।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर बाईस-बाईस रेखा खींचे। इससे चार सौ इकतालीस कोष्ठ बनते हैं। प्रत्येक कोणों में पचपन कोष्ठों को मिटाने से दो सौ इक्कीस कोष्ठों का वज्रयन्त्र बनता है। चारों दिशाओं में चार-चार

कोष्ठों को मिटाकर त्रिकोण बनावे, सबसे बीच वाले कोष्ठ के पूर्व से प्रारम्भ करके प्रवेश गति प्रदक्षिण क्रम से अक्षरों को लिखे। मध्य में अवशिष्ट नवक मध्य में ह्रीं के उदर में माया लिखे। उसके चारो ओर तीन मन्त्राक्षरों को लिखे। त्रिकोणों में साध्य नाम लिखे। इस वज्रयन्त्र को पट्ट पर, रेशमी वस्त्र पर लिखकर पूजा करे तो समुद्र में जहाज की रक्षा होती है।

इस वज्रयन्त्र से पूर्वोक्त सबों का साधन प्रोक्त काल में निश्चित रूप से करे। इससे देवी साध्य को पाश से बाँधकर अंकुश से मारती हुई साधक के पैरों पर गिरा देती है और वह प्रणत होकर कहता है—रक्षा करो। विद्या का स्मरण करते हुए रात में जप करे तब साध्य नर या नारी सुनिश्चित वश में होती है। अथवा साध्य को अंकुश से आकृष्ट करके ला देती है। जप करने से वह पूर्ववत् वश में हो जाता है। मन्त्राक्षरों के तेज से साधक के समीप स्वयं साध्य को ला देती है और वह जप के स्मरण से वश में होता है। इस प्रकार कुरुकुल्ला को सर्वार्थसाधिका कहते हैं।

वाराहीनित्याप्रयोगविधिः

अथ वाराहीनित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२३.१०)—

जितेन्द्रियो हविष्याशी मौनी सन्ध्यासु पूजयेत्। विद्यां जपेल्लक्षसंख्यां तद्दशांशेन तर्पणम्॥१॥
अर्चनं हवनं कृत्वा सिद्धमन्त्रो दयान्वितः। गुरुभक्तः सुसन्तुष्टः शान्तचित्तः क्षमान्वितः॥२॥
प्रयोगानाचरेद्भक्त्या यैरिष्टमखिलं क्षणात्। सिध्यत्ययत्नतो देव्या प्रसादाद्वैभवादपि॥३॥
ध्यायेच्च देवीं कोलास्यां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्। आकण्ठवनितारूपां ज्वलत्पिङ्गशिरोरुहाम्॥४॥
त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शङ्खमथाङ्कुशम्। पाशं च मुसलं सीरमभयं वरदं तथा॥५॥
दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत्। नित्यपूजासु तच्छक्तीस्तत्समानाः स्मरेच्छिवे॥६॥

प्रयोगेषु ध्यानभेदः

प्रयोगेषु स्मरेद् देवीं सिंहस्थां व्याघ्रगामपि। गजारूढां हयारूढां ताक्ष्यारूढां च शक्तिभिः॥७॥
श्यामामप्यरुणां पीतामसितां धूम्रविग्रहाम्। तत्तत्प्रयोगेषु तथा ध्यायेत्तत्तदवाप्तये॥८॥

वश्यविधानम्

अरुणामरुणाकल्पामरुणाभिस्तु शक्तिभिः। आवृतां पञ्चमीं ध्यायन् जपेद्वश्याप्तयेऽनिशम्॥९॥

स्तम्भनप्रयोगः

पीतां पीताम्बरां पीतभूषणस्रग्विलेपनाम्। पीतशक्त्यावृतां ध्यायेत्स्तम्भनेषु तु सर्वदा॥१०॥

वाराही नित्या प्रयोगविधि—जितेन्द्रिय रहकर, हविष्यान्न भोजन कर मौनावलम्बन कर सन्ध्याओं में विद्या का पूजन करके एक लाख जप करे। उसका दशांश तर्पण करे। अर्चन-हवन करके मन्त्र सिद्ध करे। वह साधक दयालु, गुरुभक्त, सन्तुष्ट, शान्त चित्त और क्षमावान रहते हुये भक्तिपूर्वक काम्य प्रयोग करे तो देवी की कृपा और वैभव से सभी इष्ट उसे तुरन्त सिद्ध होते हैं। नित्य पूजा में देवी का इस प्रकार ध्यान करे कि देवी दीप्यमान स्वर्ण के समान प्रदीप्त हैं, कण्ठपर्यन्त स्त्री रूप में हैं, उनके माथे पर जटाजूट है, तीन नेत्र हैं, आठ हाथों में चक्र, शंख, अंकुश, पाश, मुसल, माला, अभय एवं वर क्रमशः धारण की हुई हैं एवं गरुड़ के पीठ पर सुखपूर्वक आसीन हैं; साथ ही उनकी शक्तियाँ भी उन्हीं के समान हैं। प्रयोगों में देवी को सिंह अथवा व्याघ्र पर आसीन तथा उनकी शक्तियों को हाथी, घोड़े और गरुड़ पर आसीन ध्यान करे।

प्रयोगानुसार श्याम, अरुण, पीत, असित एवं धूम्र वर्ण का ध्यान करे। वश्य-प्राप्ति के लिये देवी को सदा अरुण-वर्णा, लाल वस्त्रधारिणी एवं अरुणवर्णा शक्तियों से आवृत ध्यान करे। स्तम्भन कार्यों में सर्वदा पीतवर्णा, पीताम्बरधारिणी पीत आभूषण एवं माला धारण की हुई तथा पीत शक्तियों से आवृत ध्यान करे। दुर्गम मार्गों में श्यामवर्णा, सिंहारूढ़ा, भीमविग्रहा एवं अपने ही समान अनन्त शक्तियों से आवृत ध्यान करे।

मार्गरक्षाविधानम्

श्यामां च दुर्गमे मार्गे सिंहस्थां भीमविग्रहाम्। शक्तिभिः स्वसमानाभिरनन्ताभिः समावृताम् ॥११॥
चिन्तयन् प्रजपन् विद्यां प्रजपेच्छक्तिमध्यगम्। स्वात्मानं भावयन्मन्त्री प्रयात्यक्लिष्टवैभवः ॥१२॥
सिंहर्क्षद्वीपिशरभखड्गिसैरिभसूकरैः। गवयैर्भुजगैर्भीमैर्दन्तिभिर्मदमन्थरैः ॥१३॥
चौरैः कुन्तप्रहरणैः क्रूरैरन्यैर्भयावहैः। भूतप्रेतपिशाचाद्यैराकुले रणसङ्कटे ॥१४॥
अलब्धमार्गे विपिने गिरिशृङ्गे तथाविधे। स्मरन् देवीमुक्तरूपां निरातङ्को व्रजेत्सुखी ॥१५॥

इस प्रकार के ध्यान करके विद्या का जप शक्ति के मध्य में अपने को मानकर करे तो मन्त्र के वैभव से अतिभयानक एवं मदमत्त सिंह, हाथी, शरभ, खड्गी, भैंसा, सूकर, साँढ़, सर्प, भयानक हाथी भी भाग जाते हैं। चोर, कुन्त, प्रहरण, अन्य क्रूर एवं भयावह भूत-प्रेत-पिशाच से आकुल युद्ध के संकट में या जंगल में रास्ता भूलने पर, पर्वतशिखर पर देवी का स्मरण उक्त रूप में करके साधक आतंकरहित होकर सुखी रह सकता है।

समरविजयध्यानम्

समरेष्वपि भीमेषु पत्त्यश्वरथदन्तिभिः। सङ्कटेषु दुरन्तेषु स्मृत्वेत्थं विजयी भवेत् ॥१६॥
नखरं क्षुरिकां खड्गं बाणं शूलं गदां सृणिम्। चक्रं च दक्षिणैर्बिभ्रद्बाहुभिर्भीमविग्रहाम् ॥१७॥
तर्जनीं खेटकं चर्म चापं डमरुकं हलम्। पाशं शङ्खं च दधतीमन्यैर्नीलां स्वशक्तिभिः ॥१८॥
गजाधिरूढां द्विरदैः शक्त्यारूढैः समावृताम्। वैरिसेनां समस्तां च निपात्य परिघैर्भुवि ॥१९॥
तदुपर्यभितः प्रेङ्खत्कदलीकेतुसंकुलम्। चरन्तीं शक्तिवृन्दैश्च भीमारावैर्मदोद्धतैः ॥२०॥

हाथी, घोड़े एवं रथ पर सवार सैनिकों के साथ भयंकर युद्धरूपी घोर संकट के समय देवी का स्मरण करने पर संकट दूर हो जाते हैं और विजय प्राप्त होती है। दाहिने आठ हाथों में नखर, क्षुरिका, खड्ग, बाण, शूल, गदा, सृणि, चक्र धारण की हुई देवी भयंकर रूप की हैं। बाँयें आठ हाथों में तर्जनी, खेटक, ढाल, चाप, डमरू, हल, पाश, शङ्ख धारण की हुई अपनी नीली शक्तियों के साथ वैरी के हाथी सवार एवं पैदल सारी सेना को परिघ से मार गिराती हैं। उन पर अपनी शक्तिवृन्द के साथ घोर नाद करती हुई मदोद्धत विचरण करती हैं।

रिपुमारणप्रयोगादि

भानुमण्डलमध्यस्थां शूलप्रोतारिविग्रहाम्। तद्देहनिर्यद्रक्ताक्तशूलां देवीं विचिन्तयेत् ॥२१॥
कण्ठमात्रे जले स्थित्वा जपेद्विद्यामनन्यधीः। सप्तरात्रप्रयोगेण वैरिणं मारयेज्ज्वरात् ॥२२॥
देव्याः सपरिवाराया हेतिभिः शकलीकृतम्। रिपुदेहं स्मरन् फेरुकङ्कक्रव्यादकुक्कुरैः ॥२३॥
भक्ष्यमाणं जपेद्विद्यां त्रिदिनं सलिले स्थितः। यावत्तावद्दिनैर्वारिहतं श्रुत्वा समुत्तरेत् ॥२४॥
द्विभुजां धूम्रवर्णां च साध्यजिह्वाहृदम्बुजे। उत्पाटयन्तीं सञ्चिन्त्य जपञ्छत्रुं यमं नयेत् ॥२५॥

सूर्यमण्डल में स्थित देवी के विग्रह से शूल निर्गत होकर शत्रु के शरीर में घुस रहे हैं—ऐसा चिन्तन करके कण्ठ तक जल में खड़े होकर एकाग्रता से विद्या का जप सात रातों में करे तो वैरी की मृत्यु ज्वर से होती है। ऐसा चिन्तन करे कि देवी अपनी शक्तियों के साथ शत्रुओं के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर रही हैं और सियार, गिद्ध, कौए, कुत्ते उसे खा रहे हैं। इस प्रकार का ध्यान करते हुए जल में खड़े होकर विद्या का जप तीन दिन तक करे अथवा तब तक करे जब तक कि वैरी के मृत्यु की खबर न सुने। दो भुजी धूम्रवर्णा देवी साध्य के जीभ को उखाड़ रही हैं—ऐसा चिन्तन करते हुए जप करे तो शत्रु यमराज द्वारा ले जाया जाता है।

क्रोधस्तम्भनध्यानम्

तथाविधां पीतवर्णां स्मृत्वा सञ्जप्य वैरिणः। क्रोधं संशमयेद्वादे विवादे समरेऽपि च ॥२६॥

उसी प्रकार पीतवर्णा देवी का ध्यान करे कि वह वैरियों के क्रोध को शान्त कर रही है और वाद-विवाद में भी उनका शमन कर रही है।

सेनाविद्रावणादि तद्ध्यानञ्च

तार्क्ष्यारूढाञ्च तां तार्क्ष्यगणस्थाभिश्च शक्तिभिः । वृत्तां तार्क्ष्यगणोद्दामपक्षमारुतमूर्छिताम् ॥२७॥
स्मृत्वा जपेद्रिपोः सेनां दूरतो द्रावयेत्क्षणात् । तथैवाष्टभुजैः खड्गान् दधानां शक्तिभिर्वृताम् ॥२८॥
तथैवारातिपृतनां समरे नाशयेत्क्षणात् । विकीर्य केशानरुणवारवाणधरो हयैः ॥२९॥
तरक्षुकेसरिकपिकोलर्क्षगरुडस्थितैः । शक्तिवृन्दैस्त्रिशूलाग्रप्रोतपत्त्यश्ववारणैः ॥३०॥
क्रीडाविनोदां माणिक्यमण्डपे सिंहविष्टरे । ध्यायन्नरातेः पृतनां नाशयेत्स्वैर्बलैर्नृपः ॥३१॥

देवी गरुड़ पर सवार हैं, वे गरुड़ों पर सवार अपनी शक्तियों से घिरी हैं। गरुड़ों के उद्दाम पङ्खों की हवा से शत्रु मूर्च्छित हैं। इस प्रकार का ध्यान करते हुये मन्त्र जपने से वह शत्रुसेना को क्षण भर में भगा देती है। उसी प्रकार आठ भुजाओं में तलवार लिए हुए शक्तियों से घिरी हैं—ऐसा ध्यान करने से शत्रुसेना का नाश क्षण भर में कर देती है। बिखरे केश, अरुण वर्णा, हाथों में बाण लिये, घोड़े, लकड़बग्घा, शेर, कपि, भालू, गरुड़ पर सवार शक्तियों के झुण्ड के साथ त्रिशूल के प्रहार से हाथी-घोड़ों को मार कर गिरा रही हैं। माणिक्य मण्डप में सिंहचर्म पर बैठकर क्रीड़ा-विनोद करती देवी का ध्यान करने से शत्रुसेना का नाश राजा अपने बल से कर देता है।

स्तम्भनीयपञ्चाङ्गादिकम्

पीतप्रसूतैः पीताभामर्चयेत्स्तम्भनाय वै । प्रागुक्तैर्मण्डलाद्यैस्तु वासरैः परमेश्वरि ॥३२॥
अरातीनां गतिं सेनां मतिं जिह्वां समुद्यमम् । इष्टमन्यच्च सकलं स्तम्भयेत्साधकः क्षणात् ॥३३॥

स्तम्भन के लिये पीले वर्ण का ध्यान पूर्वोक्त मण्डल के प्रथम दिवस में करे तो शत्रुसेना की गति, मति, जीभ, उद्यम एवं अन्य जो भी अभीष्ट हो, सबों को स्तम्भन हो जाता है।

रिपुवश्यप्रयोगः

अरुणामरुणैः पुष्पैरर्चयेन्मध्यरात्रतः । निहन्तुकाममप्याशु रिपुं कुर्याद्विधेयताम् ॥३४॥

लाल वर्ण की देवी का अर्चन लाल फूलों से आधी रात में करे तो शत्रु वशीभूत होता है।

मारणप्रयोगः

विषनाड्यां दग्धयोगे मृतियोगे सनाशके । यमकण्टककाले वा कृष्णैः पुष्पैस्तथाविधाम् ॥३५॥
पूजयेत्तद्दिनैः शत्रून् जीवितेशपुरं नयेत् ।

विष-नाड़ी-दग्ध योग, मृत्युयोग, यमकण्टक काल में काले फूलों से उनके दिनों में विधिवत् पूजा करने से शत्रु का नाश होता है।

लक्ष्मीप्राप्तिप्रयोगः

श्यामां च सौरभाद्यैस्तैः पुष्पैरभ्यर्च्य वासरैः ॥३६॥
तद्दिनैरिन्दिराढ्यः स्यादरोगः सुमना वशी । सुखी जीवति भूमौ स शतं वर्षाणि विश्रुतः ॥३७॥

श्याम वर्ण की देवी का सुगन्धित पुष्पों से उक्त दिनों में पूजा करने से साधक धनाढ्य होकर निरोग एवं सुखी मन से सौ वर्षों तक जीवित रहकर पृथ्वी पर विख्यात होता है।

होमद्रव्यभेदेन फलभेदः

होमं कुर्यात्तथा रात्रौ चतुरस्रेऽथ कुण्डके । हरिद्रामिलितैरन्नैस्तिलैर्माषैः सतण्डुलैः ॥३८॥

पीतैः पुष्पैस्तथा पीतैः फलैस्तालदलैरपि। सकलीकृत्य लिखितसाध्यवर्णसमन्वितैः ॥३९॥
निशाघृतसमोपेतैः स्तम्भयेत्प्रागुदीरितान्। निशाचूर्णैर्घृताक्तैस्तु होमात्संस्तम्भयेत्तथा ॥४०॥
अर्धरात्रेऽरिवृक्षेद्धवह्नौ तद्योनिदेहजैः। मांसैस्तद्देहसम्भूतस्नेहाक्तैर्हवनाद् दिनैः ॥४१॥
मारयेद्वैरिणं रोगशस्त्रशृङ्गफणीजलैः। दहनैर्वारुणैरन्यैः प्रमादैः कण्टकादिभिः ॥४२॥
निर्घाततरुकुड्यादिपतनाद् विषभक्षणात्। शत्रुभिर्वा प्रयोगामी न भवन्त्येव भङ्गुराः ॥४३॥
धूम्रां कङ्कसमारूढां नखराद्यायुधैर्युताम्। ध्यायन् रिपोरष्टमे तु राशौ छागघृताप्लुतैः ॥४४॥
मरीचैः सर्षपैर्होमात् तद्दिनैर्मारयेद्रिपून्। तीव्रदाहज्वरैर्ग्रस्तं विसंज्ञं विकृताङ्गकम् ॥४५॥

रात में चतुरस्र कुण्ड में हल्दीमिश्रित अन्न, तिल, उड़द, चावल, पीले फूल, पीले फल एवं ताड़फल को मिलाकर साध्य वर्णसमन्वित हल्दी घी से हवन करे तो स्तम्भन होता है। घृताक्त हल्दी चूर्ण के हवन से स्तम्भन होता है। आधी रात में शत्रु वृक्ष की अग्नि में शत्रुयोनि देह के मांस से निकाला गया तेल का हवन उक्त दिनों तक करने से देवी वैरियों को रोग, शस्त्र, शृंग, सर्प, जल, अग्नि, दाह, प्रमाद, कण्टक के निर्घात से, पेड़ के गिरने से, विषभक्षण से नष्ट कर देती है। शत्रु के ये प्रयोग नष्ट नहीं होते हैं। धूम्रवर्णा गिद्ध पर सवार तेज आयुधों से युक्त देवी का ध्यान करके शत्रु की अष्टम राशि में छाग मांस घृत प्लुत करके मरिच सरसों मिलाकर हवन करने से आठ दिनों में शत्रु की मृत्यु तीव्र दाहज्वर से ग्रस्त होकर, विसंज्ञ होकर एवं विकृत अंग वाला होकर होती है।

ऐश्वर्यप्राप्तिहोमः

बालार्काभां स्मरन्नाद्यहेतिभिः संयुतां शिवाम्। सरूपवत्सारुणगोघृताक्तैररुणैः शुभैः ॥४६॥
प्रसूनैः किंशुकोद्भूतैस्तथा बन्धूकसंभवैः। जपाप्रसूनैः पालाशैः करवीरसमुद्भवैः ॥४७॥
कह्लारैरुत्पलै रक्तैः कमलैः पाटलोद्भवैः। अशोकजैः कुसुम्भोत्थैरन्यैः पुष्पैश्च लोहितैः ॥४८॥
हवनान्नृपतुल्यः स्यादैश्वर्येणाज्ञया धनैः।

नवोदित सूर्य की लाल आभा के समान वर्ण की प्रथम देवी को शस्त्रों से युक्त स्मरण करते हुये उनसे सरूप सवत्सा लाल गाय के घी से अक्त लाल फूलों; जैसे—पलाश, बन्धूक, अड़हुल, कनैल, कल्हार, उत्पल, लाल कमल, गुलाब, अशोक, कुसुम्भ आदि के हवन से राजा के समान ऐश्वर्य एवं धन से युक्त होता है।

वश्यादिकरणहोमः

अन्यैरपि च तत्साम्यकरैरङ्गैः सुनिश्चितम् ॥४९॥
अरुणां नखराद्यैश्च युतां ध्यायन् समाहितः। मध्यरात्रे हुनेत् साध्यदिङ्मुखो मरिचैस्तथा ॥५०॥
प्रोक्तैर्दिनैर्नृपो नारी नरलोकोऽपि वा वशे। भवेत्कीर्तीन्दिरायुक्तश्चिरं जीवति भूतले ॥५१॥

उसके समान ही हाथों और अंगों से युक्त लाल वर्ण की तेज शस्त्रों से युक्त देवी का ध्यान करके आधी रात में साध्य की दिशा की ओर मुख करके मरिच से हवन उक्त दिनों तक करे तो नर-नारी-राजा और लोक भी वश में होता है एवं साधक कीर्तियुक्त तथा लक्ष्मीवान होकर पृथ्वी पर बहुत वर्षों तक जीवित रहता है।

रिपुसेनास्तम्भनयन्त्रम्

विलिख्य भूपुरं मध्ये निजसाध्यं समालिखेत्। भौमाक्षराणि तद्बाह्ये दशाग्रादभितो लिखेत् ॥५२॥
बहिरष्टच्छदं पद्मं कृत्वा तत्र लिखेत्क्रमात्। मन्त्राक्षराणि ऋतुशस्तद्बहिर्वृत्तयुग्मकम् ॥५३॥
तत्रापि पार्थिवान् वर्णान् बहिः षट्कोणमालिखेत्। तत्कोणेष्वन्तरालेषु मन्त्रार्णान् भूदशान्वितान् ॥५४॥
विलिखेत् प्राग्वदभितो बहिर्वृत्तद्वयं लिखेत्। विलोमां मातृकां तत्र न्यस्य भूमिपुरं बहिः ॥५५॥
कृत्वानुलोमामालिख्य मातृकां मूलविद्यया। पूजयन्नखिलं लोकं स्तम्भयेदरिवाहिनीम् ॥५६॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र मध्ये भूपुरं विलिख्य तन्मध्ये साध्यनाम लिखित्वा तद्बहिः पार्थिववर्णैर्दशभिरावेष्ट्य, तद्बहिरष्टदलपद्मं निर्माय दलेषु मूलमन्त्राक्षराणि प्रतिदलं षट्षट् क्रमेण विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तदन्तराले पार्थिववर्णैर्दशभिरावेष्ट्य, तद्बहिः षट्कोणं विलिख्य तत्कोणेषु मन्त्रवर्णान् पार्थिवार्णसहितान् षट्षट् क्रमेण विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तदन्तराले विलोममातृकाक्षरैर्वेष्टयेत्। तद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

पहले भूपुर बनाकर उसमें साध्य का नाम लिखे। उसके बाहर दश पार्थिव वर्णों को लिखकर उसे वेष्टित करे। उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर दलों में मूल मन्त्र के छः-छः अक्षरों को लिखे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर अन्तराल में दश पार्थिव वर्णों को लिखे, उसके बाहर षट्कोण बनाकर कोणों में छः-छः मन्त्रवर्णों के साथ पार्थिव वर्णों को भी लिखे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर अन्तराल में विलोम मातृका लिखे। उसके बाहर भूपुर बनाकर अनुलोम मातृका और मूल विद्या को लिखे। इसके पूजन से सारे संसार का स्तम्भन के साथ-साथ शत्रुसेना का भी स्तम्भन होता है।

सर्वस्तम्भनयन्त्रम्

तथा—

नवास्रं वृत्तयुग्मं च वस्वस्रं तद्द्वयं बहिः। चतुरस्रं च संलिख्य मन्त्रार्णान् षट्षडालिखेत् ॥५७॥
अष्टान्तरालेष्वेकैकं बाह्यवृत्ते तु मातृकाम्। चतुरस्रे च विलिखेत् प्रतिलोमानुलोमकाम् ॥५८॥
साध्याख्यां सर्वतो लिख्याद्ध्यायेदष्टभुजां शिवाम्। स्तम्भः स्यात्पूर्वमुक्तानां विधानात्परमेश्वरि ॥५९॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्रथमतो नवास्रं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं तद्बहिर्वसुकोणं तद्बहिर्वृत्तद्वयं तद्बहिश्चतुरस्रं विलिख्य, मध्ये साध्यनाम कर्मसहितं विलिख्य नवकोणेषु प्रतिकोणं षट्षट् क्रमेण मूलमन्त्राक्षराणि विलिख्याष्टकोणेष्वपि तथैवाष्टकोणान्तरालेष्वेकमेकं मूलमन्त्राक्षरं विलिख्य, मध्यवृत्तान्तरालद्वयेऽपि पार्थिववर्णान् प्रागुक्तविधिना साध्यसहितान् विलिख्य, बाह्यवृत्तान्तरालेषु मातृकाक्षरैः संवेष्ट्य तद्बहिश्चतुरस्रे प्राग्वत् प्रतिलोमानुलोममातृकां विलिखेत्। तद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

सबसे पहले नवकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर चतुरस्र बनावे। मध्य में साध्य नाम-कर्म लिखे। नव कोनों में प्रतिकोण छः-छः मूल मन्त्राक्षर लिखे। अष्टकोणों में और उनके अन्तरालों में एक मूल मन्त्राक्षर को लिखे। मध्य वृत्तों के अन्तराल में दश पार्थिव वर्णों को साध्य के नाम के साथ लिखे। बाह्य वृत्त के अन्तराल में मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर चतुरस्र में प्रतिलोम-अनुलोम मातृकाओं को लिखे। अष्टभुजी देवी का ध्यान करे। इससे समस्त लोक का स्तम्भन होता है।

रोगशान्तिकरयन्त्रम्

तथा—

वृत्तं त्र्यस्रं पुनर्वृत्तं षडस्रं वृत्तयुग्मकम्। अष्टास्रं तद्बहिर्वृत्तमिति कृत्वा निवेदयेत् ॥६०॥
एकं मध्ये बहिः कोणेष्वन्तरालेषु च क्रमात्। त्रयं त्रयं समालिख्य बहिः शिष्टं तु पार्थिवैः ॥६१॥
विलिख्य साध्यनामापि जपित्वाभ्यर्च्य साधकः। स्थापयेत् क्वापि तत्रैव नित्यशश्च बलिं क्षिपेत् ॥६२॥
कृत्वा षडष्टकोणानि षट्कोणानि पृथक् पृथक्। क्रमात् त्रिकोणवृत्तान्तरालान् षट्कोणसंयुतान् ॥६३॥
बाह्यात् क्रमेण मध्यान्तं नक्षत्रतिथिवारयुक्। विलिखेल्लिपिशः सर्वां मातृकां शक्तिसंयुताम् ॥६४॥
साध्यं सप्तसु मध्येषु विलिखेच्च प्रदक्षिणम्। मायामध्यगतं देवि धारयेत् सर्वसिद्धये ॥६५॥
भूतप्रेतपिशाचादिशान्त्यै सर्वार्तिशान्तये। गजवाजिखरोष्ट्रादिरोगशान्त्यै च धारयेत् ॥६६॥

एतेषां पृथक् पृथक्करणे सुगमत्वान्न विस्तारितम्।

पहले वृत्त बनावे। उसके बाहर त्रिकोण बनावे। उसके बाहर वृत्त और उसके बाहर षट्कोण बनावे। उसके बाहर दो

वृत्त बनावे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर वृत्त बनावे। मध्य में एक कोण में तीन-तीन मन्त्राक्षरों को लिखे। उसके बाहर अवशिष्ट पार्थिव वर्णों को नामसहित लिखे। साधक इसे स्थापित करके नित्य बलि प्रदान करे। षट्कोण के कोणों में पृथक्-पृथक् त्रिकोण-वृत्त के अन्तराल में षट्कोण युक्त बाहर अन्दर की तरफ नक्षत्र-तिथि-वारयुक्त मातृकाओं को लिखे। साध्य का नाम सातों में मध्य में प्रदक्षिणक्रम से लिखे। मध्य में माया लिखे और इसे धारण करे। इससे सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं। भूत-प्रेत-पिशाचादि की शान्ति होती है एवं हाथी, घोड़े, गदहे, ऊँट के रोगादि नष्ट होते हैं।

स्तम्भकरकोष्ठयन्त्रम्

तथा—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च रेखा द्वादश संलिखेत्। रेखाग्रात्सर्वतः शूलांस्तन्मध्याग्रे च पार्श्वयोः ॥६७॥

स्तम्भयेति समालिख्य मध्यकोष्ठेऽरिनाम च। परितो विलिखेन्मन्त्रवर्णान् भौमसमन्वितान् ॥६८॥

गैरिकेणाथ निशया तालेन विलिखेच्छुभम्। स्थापयेद्भित्तिमध्ये च भूमौ च क्रमतः शिवे ॥६९॥

भूर्जे वा कर्पटे लोहे शिलायां वा समालिखेत्। गृहपत्तनयोर्लोहदृषदोरिष्टसिद्धिदम् ॥७०॥

नित्यशः पूजयेत्पुष्पैः सुगन्धैः प्रजपेत्तथा। यावत्फलाप्ति कुर्वीत नियतं संध्ययोर्द्वयोः ॥७१॥

इदमपि यन्त्रं सुगमम्।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर बारह-बारह रेखा खींचे। सभी रेखाग्रों में त्रिशूल बनावे। त्रिशूल के मध्य शूल में तथा पार्श्वों में 'स्तम्भय' लिखे। मध्य कोष्ठ में शत्रु का नाम लिखे। इसके चारो ओर मन्त्रवर्णों और दश पार्थिव अक्षरों को लिखे। यन्त्र को गेरू से अथवा हल्दी से ताड़पत्र पर लिखकर दीवाल पर या भूमि पर स्थापित करे। भोजपत्र पर, खपड़ा पर, लोहे पर या पत्थर पर लिखकर घर में या बन्दरगाह में स्थापित करे तो सुखदायक होता है। अरिष्ट की शान्ति होती है और इष्ट की सिद्धि होती है। नित्य सुगन्धित फूलों से इस यन्त्र की पूजा करे एवं तब तक दोनों सन्ध्याओं में जप करे जब तक फल प्राप्त न हो जाय।

अभीष्टदमहावज्रयन्त्रम्

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च कुर्यात्सूत्राणि षोडश। तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते पञ्चविंशच्छतद्वयम् ॥७२॥

तेषु कोष्ठेषु परितो मार्जयेत् प्राग्वदीश्वरि। अष्टाविंशतिकोष्ठानि ततः शिष्टेषु दिक्ष्वपि ॥७३॥

प्राग्वदेकैकतः कुर्यात्त्रिकोणानि यथाविधि। मध्ये त्रिषु तु कोष्ठेषु साध्यसाधककर्म च ॥७४॥

उपर्यधो मध्यतश्च शेषेषु प्राग्वदालिखेत्। मन्त्रार्णानग्रमारभ्य विलिखेदभितः शिवे ॥७५॥

एतद्वज्रं महायन्त्रं समस्ताभीष्टदायकम्। यत्रैतत्स्थापितं लोहशिलादिलिखितं शिवे ॥७६॥

तत्र चोरग्रहव्याधिरिपुसर्पसमुद्भवाः। भूतप्रेतपिशाचादिकोपजाश्चाप्युपप्लवाः ॥७७॥

न भवन्ति कदाप्यत्र सम्भवन्ति च संपदः। वास्तुमर्मादिदुःखादि शमयेद्गेहगं च यत् ॥७८॥

यस्मिन् गृहे स्थापितं तद्यन्त्रं तद्गृहवर्तिनाम्। कृत्याभिचारक्षुद्रादिपीडा न भवति ध्रुवम् ॥७९॥

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर सोलह रेखा खींचे। इससे दो सौ पच्चीस कोष्ठ बनते हैं। चारो कोणों में अट्ठाईस कोष्ठ मिटाने से एक सौ तेरह कोष्ठ बचते हैं। चारो दिशाओं में एक-एक कोष्ठ में त्रिकोण बनावे। बीच वाले तीन कोष्ठों में साध्य नाम एवं कर्म का नाम लिखे। मध्य कोष्ठ के आगे से प्रारम्भ करके पूर्ववत् मन्त्राक्षरों को लिखे। यह वज्रयन्त्र सभी अभीष्टों का दायक होता है। लोहपात्र अथवा शिलादि पर लिखकर जहाँ यह स्थापित रहता है, वहाँ चोर, ग्रह, व्याधि, शत्रु, सर्प, भूत, प्रेत, पिशाच आदि के कोप से उपद्रव कभी नहीं होते। सम्पत्ति बढ़ती है। घर के वास्तुदोषों को यह शान्त करता है। जिस घर में यह यन्त्र स्थापित रहता है, उसमें रहने वालों को कृत्या अभिचार क्षुद्रादि पीड़ा नहीं होती।

वज्रवज्राभिधयन्त्रम्

वाय्वग्निनैर्ऋतेशं च कुर्याद् द्वादशसूत्रकम्। तैर्वज्ररूपकोष्ठानि सैकविंशं शतं भवेत्॥८०॥
तेषु मध्ये समालिख्य साध्यनाम ततो बहिः। अग्राद्यभित एवान्यान्यक्षराणि समालिखेत्॥८१॥
निर्गमेन महीवर्णपूर्वाणि क्रमतः शिवे। यत्रैतत् स्थापितं लोहशिलादिलिखितं शिवे॥८२॥
रोगभूतग्रहोन्मादपिशाचापस्मृतिद्विषः। अन्यानि क्लेशकारीणि यानि तानि विनाशयेत्॥८३॥
प्रोक्तेष्वार्तिष्वपि तथा तद्वत्रं गैरिकैर्भुवि। विलिख्य मध्ये कुम्भं तु क्षीरद्रुक्वाथपूरितम्॥८४॥
निधाय देवीं सलिले समावाह्याभिपूज्य च। स्पृशञ्जलं जपेद्विद्यां सहस्रत्रयमात्मवान्॥८५॥
तैर्जलैरभिषिञ्चेत्तं गदिनं प्राङ्मुखं ततः। तैः क्लेशैर्मुक्तदेहस्तु सुखी जीवति भूतले॥८६॥

वायव्य से अग्नि और नैर्ऋत्य से ईशान तक बारह रेखा खींचे। इससे एक सौ इक्कीस कोष्ठों का वज्रयन्त्र बनता है। उसके बीच वाले कोष्ठ में साध्य नाम लिखे। उसके बाहर चारों ओर अन्य मन्त्राक्षरों को निर्गम क्रम से पार्थिव वर्णों के बाद लिखे। लोहा पत्थर आदि पर लिखित यह यन्त्र जहाँ स्थापित रहता है, वहाँ रोग-भूत-ग्रहोन्माद-पिशाच-अपस्मृति आदि अन्य दुःखदों का नाश होता है।

उक्त दुःखों में उसी प्रकार का यन्त्र भूमि पर गेरू से लिखे। मध्य में कुम्भ स्थापित करे। उसमें दूध वाले वृक्षों के क्वाथ भरे। उसे जल में रखकर देवी का आवाहन करके पूजा करे और जल को स्पर्श करके तीन हजार जप करे। रोगी को पूर्वमुख बैठाकर उस जल से स्नान करावे। इससे रोगी निरोग होकर पृथ्वी पर सुखपूर्वक जीवित रहता है।

अखिलसिद्धिकरयन्त्रम्

विद्याप्राप्त्यभिषेकं तु वज्रेऽस्मिन् कोष्ठवज्रके। सैकविंशशते वापि कुम्भं संस्थाप्य सेचयेत्॥८७॥
वेदाङ्गुलपरिभ्रान्त्या वृत्तं कृत्वा ततो बहिः। द्व्यङ्गुले द्व्यङ्गुले कुर्यादेकादश ततः क्रमात्॥८८॥
तेषु द्व्यङ्गुलमानेषु तिर्यक्सूत्राणि पातयेत्। एकादश ततस्तेषु प्राङ्मध्यात्तु प्रदक्षिणम्॥८९॥
भूदशार्णैस्तु तां विद्यामालिखेन्निर्गमक्रमात्। रेखाग्राणि च शूलानि कृत्वा साध्यं च मध्यतः॥९०॥
तद्यन्त्रं प्राग्वदखिलविनियोगेषु योजितम्। नासाध्यमस्ति भुवने विद्यया सिद्धयानया॥९१॥
इति वाराहीनित्याप्रयोगविधिः।

कोष्ठ वज्रयन्त्र में एक सौ बीस कुम्भ स्थापित करके उन्हें मन्त्रित करे। उसके बाहर चार अंगुल मान का वृत्त बनावे। उस वृत्त को दो-दो अंगुल मान के ग्यारह भाग में बाँटे। उनमें दो अंगुल के मान से ग्यारह रेखा खींचे। पूर्वमध्य से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से रेखा खींचे। दश पार्थिव वर्णों के साथ मन्त्राक्षरों को लिखे। रेखाग्रों में त्रिशूल बनावे। उनके मध्य शूल में पूर्ववत् विनियोग लिखे। संसार में इस विद्या से कुछ भी असाध्य नहीं होता।

कौतुकप्रकरणम्

अथ कौतुकप्रकरणम्। श्रीतन्त्रराजे (३४.१)—
अथ षोडशनित्यानां विद्याकौतुकिनामिह। चमत्कारकरीं विद्यां वदामि शृणु सुन्दरि॥१॥
सिद्धसारस्वतं मृत्युञ्जयं त्रिपुटगारुडे। अश्वारूढामन्नपूर्णां नवात्मानं नवात्मिकाम्॥२॥
ततश्च देवीहृदयं गौरीविद्यां च लक्षदाम्। निष्कत्रयप्रदामिष्टवादिनीं च मतङ्गिनीम्॥३॥
राज्यलक्ष्मीं महालक्ष्मीं सिद्धलक्ष्मीमनन्तरम्। गोपालभेदानौषध्यान् वदाम्युक्तक्रमेण वै॥४॥

कौतुकप्रकरण—तन्त्रराज में भगवान् शिव ने कहा है कि सोलह नित्याओं की कौतुक विद्याओं में चमत्कारकरी विद्या को कहता हूँ। सिद्धसारस्वत, मृत्युञ्जय, त्रिपुट, गारुड़, अश्वारूढ़ा, अन्नपूर्णा, नवात्मा, नवात्मिका है। तब देवीहृदय,

गौरी विद्या लक्षदा है। तीन निष्क देने वाली इष्टवादिनी मातङ्गी है। राज्यलक्ष्मी, महालक्ष्मी और सिद्धलक्ष्मी है। गोपालभेद, औषध आदि क्रम से कहता हूँ।

सिद्धसारस्वतविद्या

शुचिः स्वेन ततो माया वियद्दाहस्ववह्नियुक्। हंसहृत्तेजसां योगाद् द्युतिदाहचरस्वकैः ॥५॥
पुनश्च हंसहद्धंसद्वयदाहवनैरपि। समायैरुदिता विद्या पञ्चार्णामृतविग्रहा ॥६॥
'ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसहह्रौः'।

'ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसहह्रौः' यह पाँच अक्षरों की विद्या अमृतविग्रहा है।

विद्यासाधनप्रकारः

पटलेऽस्मिननुक्तानामङ्गानि निजविद्यया। मायया वा विदध्याच्च ध्यानं चाद्यानुदीरिते ॥७॥
पयोव्रतः पञ्चलक्षं जपित्वा कुलसुन्दरीम्। ध्यात्वा सिद्धमनुः पश्चाद्विदध्याद्विनियोगकम् ॥८॥
अनया मन्त्रितैरद्भिः शोधयित्वा तु कन्यकाम्। पाययित्वा च तां ब्रूयाच्छ्लोकयेति समाहितः ॥९॥
गङ्गाप्रवाहवत्तस्या भारती निःसरेन्मुखात्। आचष्टे च त्रिकालस्थानर्थान् पृष्टा महाद्भुतम् ॥१०॥

इस पटल में अंगों के नाम नहीं कहे गये हैं। निज विद्या या माया से ध्यान आदि करे। पयोव्रत रहकर कुलसुन्दरी का पाँच लाख जप करे। ध्यान करके सिद्ध मन्त्र का विनियोग करे। इस सिद्ध मन्त्र से मन्त्रित जल से कन्या का शोधन करे एवं कुछ जल पिलाकर समाहित होकर श्लोक सुनाये तब उस कन्या के मुख से गंगाप्रवाह के समान बोली निकलने लगती है। तीनों कालों की बातों को पूछने पर वह बतलाती है।

मृत्युञ्जयविद्या

भूःस्वेन ज्या धरास्वेता हृच्च मायासमन्वितम्। पालयेति द्विरुक्त्वा तत्प्रतिलोममुदीरयेत् ॥११॥
विद्या मृत्युञ्जयाख्यासौ दीर्घस्वरयुजा हृदा। विधायाङ्गानि नियतं स्वात्मानं चिन्तयेदिति ॥१२॥
'ॐजुंसः पालय पालय सःजुंॐ'। सांसीं इत्यादिना षडङ्गन्यासः।

मृत्युञ्जय मन्त्र है—ॐ जुं सः पालय पालय सः जुं ॐ। सां सीं इत्यादि से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है।

त्रिपुटाविद्यास्वरूपं तस्याः षडङ्गादिकञ्च

आद्यमध्यतृतीयार्णनालपद्मसुकर्णिके। समासीनं सुधार्द्राङ्गं मौलाविन्दुकलायुतम् ॥१३॥
सुसितं हरिणाक्षस्त्रक्चिन्तापाशकरं हरम्। स्वैक्येन भावयन्नित्यं जपन् दीर्घायुरेधते ॥१४॥
तृतीयममृताख्याया द्वितीयं तदनन्तरम्। रसावह्निस्वसहितप्राणस्तैस्त्रिपुटोदिता ॥१५॥
'श्रींह्रींक्लीं'।

आद्य अक्षररूप नाल, द्वितीयाक्षररूप दल एवं तृतीय अक्षर रूप पद्म की कर्णिका वाले कमल पर आसीन शिव का अंग अमृत से तर है। शिर पर द्वितीया का चाँद है। हाथों में हरिण अक्षमाला व्याख्यान मुद्रा और पाश हैं। ऐसा ध्यान करके त्रिपुटा मन्त्र का जप करने से दीर्घायु प्राप्त होती है। त्रिपुटा मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं।

गारुडमन्त्रतत्प्रयोगध्यानादि

त्रिभिर्द्विरुक्तैरङ्गानि कृत्वा नित्यां तु नित्यशः। जपेदह्नो मुखे स्वैक्यं भावयंस्त्रिसहस्रकम् ॥१६॥
तेन विद्यां श्रियं कान्तिं कवितां गानकौशलम्। नरनारीनृपाणां च वाल्लभ्यं लभते नरः ॥१७॥
अरुणामरुणाब्जस्थां प्रसन्नवदनाम्बुजाम्। पुष्पेष्वङ्कुशपद्मानि पद्मपाशेक्षुचापकान् ॥१८॥
दधानां बाहुभिः षड्भिर्माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। शृङ्गारभूषापिटकचामरादर्शपादुकाः ॥१९॥

धानाः परितस्तस्या गायन्त्यश्चापि शक्तयः । परिवार्य स्थितास्ताभिर्वृतां तां स्वैक्यतः स्मरेत् ॥२०॥
भूःस्वेन हंसदाहाभ्यां मरुद्वह्निक्ष्मया युताः । वैरिमोहीत्यक्षराणां चतुष्कं गरुडेति च ॥२१॥
जवी सवह्निर्ग्रासश्च हंसहिंसद्वयं तथा । स्वाहान्तो गदितो मन्त्रस्तार्क्ष्यस्याखिलरक्षितुः ॥२२॥
त्रयोविंशार्णको मन्त्र उपरागे सुसाधितः ।
'ॐ ह्रांह्रींहूं वैरिमोहिगरुडपक्षी हंसहंसहिंसहिंस स्वाहा'।

उक्त तीन बीजों से अंगन्यास करे। नित्य प्रातः नित्या विद्या का जप ऐक्य की भावना से तीन हजार करे। इससे विद्या, श्री, कान्ति, कविता, गानकौशल एवं नर-नारी-नृप को प्रियत्व प्राप्त होता है। ध्यान इस प्रकार किया जाता है।

अरुणामरुणाब्जस्थां प्रसन्नवदनाम्बुजाम्। पुष्पेष्वङ्कुशपद्मानि पद्मपाशेक्षुचापकान्।।
दधानां बाहुभिः षड्भिर्माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। शृङ्गारभूषापिटकचामरादर्शपादुकाः।।
दधानाः परितस्तस्या गायन्त्यश्चापि शक्तयः। परिवार्य स्थितास्ताभिर्वृतां तां स्वैक्यतः स्मरेत्।।

श्लोक २१, २२ के उद्धार से गारुड़ मन्त्र इस प्रकार का होता है—ॐ ह्रां ह्रीं हूं वैरिमोहिगरुड़पक्षी हंस हंस हिसं हिंस स्वाहा। यह तेईस अक्षर का मन्त्र है। ग्रहण काल में इसे सिद्ध करके प्रयोग करना चाहिये।

भुजगविषनाशनमौषधम्

फणिदष्टान् पिशाचाद्यैः क्लिष्टानन्यांश्च रोगिणः ॥२३॥
विषार्तांस्त्रिविधैरुग्रैर्मूर्च्छितांश्च गतासुकान् । पालयेच्छतजप्तेन तोयेनाभ्युक्षणात्क्षणात् ॥२४॥
कुर्वतस्ताण्डवं शम्भोरग्रे मेरुसमं विभुम् । अहितानि च खादन्तं स्मरंस्तार्क्ष्यमनुं जपेत् ॥२५॥
पद्माक्षबीजतैलेनाप्याशु नस्येन नाशयेत् । गरलं भुजगानां च समस्तानामयत्नतः ॥२६॥

सर्पदंश, पिशाचादि से क्लिष्ट या अन्य रोगी, तीनों प्रकार के जहरों में से किसी से भी मूर्च्छित को उक्त गारुड मन्त्र के सौ जप से मन्त्रित जल से अभ्युक्षण करने पर वह तुरन्त उठकर शिव के आगे ताण्डव करने लगता है। इस मन्त्र के स्मरण और जप से अहितकरों का नाश होता है। कमलगट्टे के तेल को सूँघाने से सर्पों के विष का नाश होता है।

अश्वारूढ़ाविद्या तदङ्गादि

प्रणवं चरहंसाग्निर्जवी दाहो नभश्चरौ । शून्याम्ब्वग्नियुतो दाहो हृदम्बु मरुदन्वितम् ॥२७॥
हंसश्च मरुता युक्तः प्रोक्ता विद्या दशाक्षरी । षडङ्गं मायया कृत्वा जपेदक्षरलक्षकम् ॥२८॥
'ॐ एहि परमेश्वरि स्वाहा'।

ततो यमुद्दिश्य जपं निशि कुर्यादयत्नतः । समानयेत्स्वगेहे तमानाशात्प्रोक्तकारिणम् ॥२९॥
वश्यमाकर्षणं लक्ष्मीं सुवर्णं वाञ्छितानि च । प्राप्नोत्ययत्नादनया विद्यया सिद्धयानिशम् ॥३०॥
लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ॥३१॥
भल्लं दक्षेण वामेन चर्मयष्टिं समुज्ज्वलाम् । अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम् ॥३२॥
हेमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मकृताञ्जलिम् । दासोऽहमिति भाषन्तं पतितं निजपादयोः ॥३३॥
स्मरन् विद्यां जपेन्मर्त्यो वशीकुर्यादयत्नतः । समस्तं जीवभुवनमश्वारूढाख्यविद्यया ॥३४॥

श्लोक २७, २८ का उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ एहि परमेश्वरि स्वाहा। यह दशाक्षर मन्त्र है। ह्रां, ह्रीं, हूं इत्यादि से षडंग न्यास करके प्रति अक्षर एक लाख के अनुसार दश लाख इस मन्त्र का जप करे। इस विद्या का रात में जप तब तक करे जब तक कि यह सिद्ध न हो जाय। सिद्ध होने पर यह साध्य को साधक के घर में ले आती है और वह आजीवन दास के समान रहता है। इस सिद्ध विद्या से वश्य और आकर्षण होता है, लक्ष्मी प्राप्त होती है, सोना और वांछित मिलता है। यत्न करने से इस विद्या से सब कुछ मिलता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नवदनाम्बुजाम्।।
भल्लं दक्षेण वामेन चर्मयष्टिं समुज्ज्वलाम्। अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम्।।

इस विद्या के प्रयोग से साध्य को देवी स्वर्णदण्ड से पीटती हुई ले आती है और साध्य 'दासोऽहं' कहते हुए साधक के पैरों पर गिर पड़ता है। विद्या का स्मरण करके जप करने से साधक किसी भी मनुष्य को वश में कर सकता है। अश्वारूढ़ा विद्या से सभी भुवनों के जीव वश में होते हैं।

अन्नपूर्णाविद्या तदङ्गध्यानसाधनप्रकारा:

प्रणवं नमसा युक्तं तथा भगवतीति च। माहेश्वरीति प्रोक्त्वान्नपूर्णे स्वाहेति तन्मनु: ।।३५।।
विधाय माययाङ्गानि जपेद्विद्यामहर्मुखे। सहस्रवारं नियतं तस्य स्याददरिद्रता ।।३६।।
'ॐनमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'।

भुजगत्रासकरणनृत्तासक्तावलोकिनीम्। स्मितवक्त्रां हेमपात्रात् पायसं दधतीं स्मरेत् ।।३७।।
भवानीं सर्वदा विद्याजपवान्न कदाचन। बुभुक्षितो भवेदेव न कदाचिन्न कुत्रचित् ।।३८।।
तथा नृत्यस्थितं मां त्वां तदालोकनकौतुकाम्। आभ्यां भजन्नित्यशो यो मन्त्राभ्यां याचते वरम् ।।३९।।
तस्यावयो: प्रसादेन सिध्यत्येवाशु चिन्तितम्। तिष्ठेच्चोपरि सर्वेषां सर्वथा सर्वत: सदा ।।४०।।

श्लोक ३५ के उद्धार करने पर अन्नपूर्णा-मन्त्र होता है—ॐ नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। ह्रां ह्रीं इत्यादि से इसका षडंग न्यास कर विद्या का जप एक हजार प्रतिदिन करे तो साधक की दरिद्रता नष्ट हो जाती है। सर्पों के लिये त्रासकारक ताण्डव नृत्य करने वाले शिव को देखने वाली देवी के मुख में मुस्कान है। उनके हाथ में सोने के पात्र में पायस है। देवी के इस रूप का स्मरण करके अन्नपूर्णा विद्या का जप करने वालों को भोजन के बिना भूखे कभी नहीं रहना पड़ता। इसी प्रकार नृत्य आसक्त हम दोनों शिव-गौरी का अवलोकन करते हुए जो जप करते हैं और वर मांगते हैं, उन्हें हम दोनों की कृपा से सभी वांछित प्राप्त होते हैं और वह साधक सर्वत्र सर्वदा सबों से श्रेष्ठ होकर रहता है।

नवात्मविद्या

हंसहृद्ग्रासनभसां रसाम्बुव्याप्तदाहकै:। क्ष्मास्वयोगान्नामतश्च नवात्मा नवभिश्च तै: ।।४१।।
'हसक्षमलवयरूं'।

श्लोक इकतालीस के उद्धार करने पर नवात्म मन्त्र होता है—हसक्षमलवयरूं। यह शिवमन्त्र है।

नवात्मिका विद्या

तस्यैव क्ष्माक्षरं हित्वा वह्निं तत्र प्रयोजयेत्। नवात्मिका तु ते विद्या द्वावेतौ सर्वसिद्धये ।।४२।।
'हसक्षमलवयरीं'।

श्लोक ४२ के उद्धार करने से देवी की नवात्मिका विद्या होती है—हसक्षमलवयरीं।

देवीहृदयविद्या ध्यानादि

प्रणवं त्रिपुटान्त्यार्णं नमसा चतुरक्षरी। देवीहृदयसंज्ञासौ विद्या सर्वार्थसिद्धिदा ।।४३।।
'ॐक्लींनम:'।

ध्यानमुक्तममुष्यास्तु सततं सर्वमङ्गलम्। सितकुष्ठं स्वर्णपुष्पीमूलं तत्पत्रवारिणा ।।४४।।
पिष्ट्वा शुद्ध: पायसाशी विद्याजापी जितेन्द्रिय:। भूमौ शयीत तां रात्रिं विजने सुशुभे गृहे ।।४५।।
तल्लिप्ताज्ञाकण्ठहृत्कस्तत्रालिखितमायक:। स्वपन्त्रिशीथिनीविद्यां जपन्नाज्ञास्थितां तथा ।।४६।।
अतिलोहितरूपां तां विद्यां तां देवतामपि। स्वप्ने सा तं समासाद्य वदेदस्याभिवाञ्छितम् ।।४७।।
देवीहृदयविद्येयं स्त्रीणां सद्य: फलप्रदा। सौभाग्यलक्ष्मीकीर्त्यायुरारोग्यविजयावहा ।।४८।।

श्लोक ४३ के उद्धार करने पर सर्वार्थसिद्धिदा देवीहृदय नामक मन्त्र होता है—ॐ क्लीं नमः। इसका ध्यान सर्वदा सर्वमंगलकारी है। श्वेत कूठ, स्वर्णपुष्पी की जड़ और पत्तों को पीसकर पायस भोजन करके जितेन्द्रिय रहकर इस विद्या का जो जप करता है और रात में निर्जन सुन्दर गृह में भूमि पर सोता है और उक्त पिष्ट का आज्ञा चक्र स्थित कण्ठ और हृदय में लगता है तब निशीथिनी विद्या के जप से बद्ध होकर वह रक्तरूपा देवी स्वप्न में उसे दर्शन देकर उसका अभिवांछित कहती है। यह देवीहृदय विद्या स्त्रियों को तुरन्त फल देती है और उसे सौभाग्य लक्ष्मी कीर्ति आयु आरोग्य विजय की प्राप्ति कराती है।

गौरीविद्या तत्साधनध्यानादि

प्रणवं रुद्रदयिते तथा योगेश्वरीति च। स्वाहान्तिका तु विद्येयं कथिता द्वादशाक्षरी ॥४९॥
'ॐरुद्रदयिते योगेश्वरि स्वाहा'।

गौरीविद्येत्यसौ प्रोक्ता लक्षजप्तानुसारतः। ध्यानात्प्राग्वद्धयारूढा देवी साधयतीप्सितम् ॥५०॥
निशामध्ये तु निशया निजवामोरुदेशतः। साध्यनामसमोपेतामालिख्यैतां तु तन्मनाः ॥५१॥
ध्यायंस्तथा जपेद्विद्यां तदैवाकर्षयेत्प्रियाम्। नानया सदृशी विद्या विद्यते वनितावशे ॥५२॥
राजवश्ये तथा लोकवश्ये स्त्रीवश्यकर्मणि। न विद्याः सन्ति विषये हयगौरीमनुद्वयात् ॥५३॥

श्लोक ४९ के उद्धार करने पर द्वादशाक्षरी विद्या होती है—ॐ रुद्रदयिते योगेश्वरि स्वाहा। यह गौरी विद्या है। इसका एक लाख जप और पूर्ववत् हयारूढ़ रूप में ध्यान करने से देवी अभीष्ट फल देती है। आधी रात में हल्दी से अपने वाम भाग में साध्य नामसहित इस मन्त्र को लिखकर उसके साथ मन लगाकर ध्यानसहित विद्या का जप करने से साधक प्रेमिका को आकर्षित करता है। स्त्रियों को वश में करने के लिये कोई दूसरी विद्या इसके समान नहीं है। हयारूढ़ा गौरी विद्या के समान दूसरी कोई ऐसी विद्या नहीं है, जिससे राजा, लोक और स्त्री को वश में किया जा सके।

लक्षसुवर्णदा विद्या तत्साधनञ्च

अग्निर्नादश्च तद्युक्तस्तावेवाथ नभोधरे। एतद् द्वितीयं तौ स्यातां काकण्ठेति ततः परम् ॥५४॥
मुण्डिस्वाहेति विद्येयमुक्ता पञ्चदशाक्षरी।
'इटिइटिमुटिमुटिकाकण्ठमुण्डि स्वाहा'।

कृताङ्गो मायया ध्यात्वा तां देवीं सर्वमङ्गलाम् ॥५५॥
जपेद्विद्यां मौनयुतः कदलीपूगमध्यतः। त्रिसन्ध्यार्चासमोपेतं सा प्रीता लक्षदा दिनैः ॥५६॥

श्लोक ५४ के उद्धार करने पर लक्षसुवर्णदा विद्या होती है—इटि इटि मुटि मुटि काकण्ठमुण्डि स्वाहा। ह्रां ह्रीं इत्यादि से न्यास करके देवी सर्वमंगला का ध्यान करे। मौन धारण कर केला और कसैली वृक्षयुक्त क्षेत्र में रहकर तीनों सन्ध्याओं में पूजा करके इसका जप करे। इससे देवी प्रसन्न होकर साधक को एक लाख रूपया प्रतिदिन देती है।

निष्कत्रयप्रदा विद्या तत्साधनादि

प्रणवं नवकेशी च कनकं वतिसंयुतम्। स्वाहान्ता द्वादशार्णेयं विद्या निष्कत्रयप्रदा ॥५७॥
'ॐ नवकेशी कनकवति स्वाहा'।
नित्यशो गिरिशृङ्गस्थवटमूले त्रिलक्षकम्। जपित्वाक्षरशो विद्यां फलमुक्तमवाप्नुयात् ॥५८॥

प्रणव के साथ नवकेशी के जप से देवी साधक को तीन निष्क सोना देती है। इसका द्वादशाक्षर मन्त्र है—ॐ नवकेशी कनकवति स्वाहा। पर्वतशिखर पर स्थित वटवृक्ष के मूल में नित्य बैठकर तीन लाख जप करे। अक्षरलक्ष जप से विद्या का फल मिलता है।

अभीष्टवादिनी विद्या

चरः प्राणो मरुद्युक्तो व्याप्तं प्राणो धरान्वितः। व्योमद्वयं मरुद्युक्तं रयश्च धरया युतः ॥५९॥

चरः प्राण इति प्रोक्ता विद्याभीष्टं वदेन्मिथः ।

'एकायकुण्णातुएक'।

जातीपुष्पैर्निशामध्ये पूजिता मङ्गलाकृतिः ॥६०॥

श्लोक ५९ के उद्धार करने पर अभीष्टवादिनी विद्या होती है—एकायकुण्णातुएक। विद्या के साथ अभीष्ट बोले। सिद्ध सारस्वत मंगलाकृति की पूजा आधी रात में जातीपुष्प से करे।

मातङ्गिनीविद्या तद्ध्यानादि

सिद्धसारस्वतस्यादौ त्र्यक्षराणि ततः परम् । मातङ्गिन्यै तथा स्वाहा पुनस्त्रीणीति तन्मनुः ॥६१॥

'ऐंह्रींश्रीं मातङ्गिन्यै स्वाहा ऐंह्रींश्रीं'।

द्वादशार्णेयमचिरात्सौभाग्यं कवितां श्रियम् । गानाभियोगं विश्वेषां मान्यतां च प्रयच्छति ॥६२॥
मायाकृताङ्गो नित्यशस्तां जपेदुदये रवेः । सहस्रवारं तेनासौ सिद्धा सर्वं प्रयच्छति ॥६३॥
इन्द्रनीलनिभां रक्तवसनाभरणोज्ज्वलाम् । प्रलम्बवेणीसन्नद्धसौगन्धिकसमुज्ज्वलाम् ॥६४॥
तत्क्लृप्तमुण्डमालां च मुक्तास्तबकशोभिताम् । ऊर्मिकावीरकटकनूपुरैर्मण्डिताङ्घ्रिकाम् ॥६५॥
वादयन्तीं सदा वीणां स्वसमानाङ्गनाजनैः । स्तूयमानां च परितो ध्यायेद्देवीं शुचिस्मिताम् ॥६६॥

श्लोक ६१ के उद्धार करने पर मातङ्गिनी मन्त्र होता है—ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्गिन्यै स्वाहा ऐं ह्री श्रीं। यह द्वादशाक्षर मन्त्र अल्प काल में ही सौभाग्य, कवित्वशक्ति, लक्ष्मी और गायन में योग्यता की विश्व में मान्यता दिलाती है। नित्य सूर्योदय के समय ह्रां ह्रीं इत्यादि से न्यास करके हजार बार मन्त्रजप करे। इससे यह सिद्ध होकर सब कुछ देती है। मातङ्गिनी का ध्यान इस प्रकार है—

इन्द्रनीलनिभां रक्तवसनाभरणोज्ज्वलाम्। प्रलम्बवेणीसन्नद्धसौगन्धिकसमुज्ज्वलाम् ।।
तत्क्लृप्तमुण्डमालां च मुक्तास्तबकशोभिताम्। ऊर्मिकावीरकटकनूपुरैर्मण्डिताङ्घ्रिकाम् ।।
वादयन्तीं सदा वीणां स्वसमानाङ्गनाजनैः। स्तूयमानां च परितो ध्यायेद्देवीं शुचिस्मिताम्।।

राज्यलक्ष्मीविद्या

मातङ्गिन्या द्वितीयं च तृतीयं तदनन्तरम् । रसाचरस्वैरम्बु स्याद्वाताग्नी तदनन्तरम् ॥६७॥
राज्यदे राज्यलक्ष्मीति हृन्माया व्युत्क्रमात्त्रयम् । विद्यासौ राज्यलक्ष्म्यास्तु षोडशार्णा समीरिता ॥६८॥

'ह्रींश्रींब्लेंअइराज्यदे राज्यलक्ष्मि सः ब्लेंश्रींह्रीं'।

ध्यात्वा तां विजयाविद्यां जपेन्नित्यं च पूजयेत् । राज्यं प्रयच्छति प्रीता साधकायाविलम्बितम् ॥६९॥

श्लोक ६७, ६८ के उद्धार करने पर राजलक्ष्मी का षोड़शाक्षर मन्त्र होता है—ह्रीं श्रीं ब्लें अ इ राज्यदे राज्यलक्ष्मि सः ब्लें श्रीं ह्रीं। इस विजया विद्या का ध्यान करके नित्य पूजा एवं जप करने से यह साधक को बिना विलम्ब किये प्रसन्न होकर राज्य प्रदान करती है।

महालक्ष्मीविद्या तद्ध्यानादि

प्रणवं श्रीपुटां मायां कमले तदनन्तरम् । कमलातो लये पश्चात्प्रसीद द्वितयं पुनः ॥७०॥
आद्यत्रयं महालक्ष्म्यै नमः प्रोक्ता महेश्वरि । विद्या ते सप्तविंशार्णा समस्ताभीष्टदानिशम् ॥७१॥

'ॐश्रींह्रींश्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रींह्रींश्रीं महालक्ष्म्यै नमः'।

बीजत्रयैः षडङ्गानि द्विरुक्तैर्विहितानि वै । ध्यानं च विजयारूपं प्रजपेद् दिनशस्तथा ॥७२॥
कीर्तिलक्ष्मीधरारोग्यविजयाद्यखिलेष्टदा । तुलास्थे भास्करे पूजा पूर्णायां सकलेष्टदा ॥७३॥

श्लोक ७०, ७१ के उद्धार करने पर सत्ताईस अक्षरों की महालक्ष्मी विद्या सभी अभीष्टों को देने वाली होती हैं—ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसाद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः। तीन बीजों की दो आवृत्ति से विहित षडङ्ग न्यास करे। विजया नित्या के रूप का ध्यान करे और नित्य दिन में जप करे। इससे कीर्ति लक्ष्मी भूमि विजय आदि सभी इष्ट की प्राप्ति होती है। तुला राशि में सूर्य के होने पर पूर्णिमा तिथि में इसका पूजन इष्टप्रद होता है।

सिद्धलक्ष्मीविद्या तदङ्गादि

ज्यासकदाहवह्निस्वान्त्रभो हंसो मरुद्युतः। चण्डतेजश्च संकर्षवर्णाः स्युस्तदनन्तरम् ॥७४॥
व्योमाग्न्या कालिमन्थाने वर्णा हंसश्च मायया। सिद्धलक्ष्म्याश्च विद्येयं प्रोक्ता सप्तदशाक्षरा ॥७५॥
'जझरीं महाचण्डतेजः सङ्कर्षणि कालिमन्थाने हः'।

आद्येन कृत्वा चाङ्गानि जपेद्विद्यां तु नित्यशः। प्रातः सहस्रवारं तु तर्पयेत्तद्दशांशकम् ॥७६॥
प्रसन्ना वर्षतो नित्यपूजायां साधकस्य सा। प्रयच्छति जयं युद्धे श्रियं सर्वातिशायिनीम् ॥७७॥
भूतप्रेतपिशाचापस्मारकृत्यादिवारणम् । करोति मार्गे कान्तारगिरिकृच्छ्रेऽभिरक्षति ॥७८॥
ध्यानं तु तस्या देवेशि मङ्गले मङ्गलासमा। युद्धमार्गादिरक्षासु शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥७९॥
शतशीर्षां त्रिनयनां प्रतिवक्त्रं भयानकाम्। हस्तद्विशतसंयुक्तां स्वसमाकारशक्तिभिः ॥८०॥
वृतामनन्तहस्तेषु साधकाभीष्टहेतिकाम्। ध्यात्वैवमर्चयन्निष्टमवाप्नोत्यखिलं ध्रुवम् ॥८१॥

श्लोक ७४, ७५ के उद्धार करने पर सिद्धलक्ष्मी का सत्तरह अक्षरों का मन्त्र होता है—ज्झ्रीं महाचण्डतेजः संकर्षणि कालिमन्थाने हः। आद्य बीज से षडंग न्यास करे। नित्य प्रातः एक हजार विद्या जप करे और उसका दशांश तर्पण करे। एक वर्ष तक साधक की नित्य पूजा से प्रसन्न होकर देवी युद्ध में जय और अतुल्य लक्ष्मी देती है। भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मार से रक्षा करती है। पहाड़ और जंगल के रास्तों में रक्षा करती है। इस देवी का ध्यान सर्वमंगला के समान मंगलकारी है। युद्ध में मार्ग में इससे रक्षा के उपाय कहता हूँ। एक सौ शिरों वाली तीन नयनों से युक्त, भयानक मुखों वाली, दो सौ हाथों वाली, अपनी आकृति के समान ही शक्तियों एवं अनन्त हाथों से घिरी हुई, साधक को अभीष्ट प्रदान करने वाली—इस प्रकार ध्यान कर अर्चन करने से निश्चित रूप से साधक समस्त अभीष्टों को प्राप्त करता है।

नित्यार्चनचक्रनिर्माणम्

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च कृत्वा सूत्राष्टकं ततः। मार्जयेद् बाह्यवीथीषु पञ्च पञ्च तथैकधा ॥८२॥
तदन्तरपि कोणेषु त्रयमेकीकृते ततः। मध्यादि विलिखेन्मन्त्रवर्णान् षोडशनाम च ॥८३॥
प्रदक्षिणत्रयान्मध्ये पूजयेत्तत्र तां सदा। समस्ताभीष्टसंसिद्ध्यै सिद्धलक्ष्मीं तु नित्यशः ॥८४॥

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर आठ-आठ रेखा खींचे। इससे उनचास कोष्ठ बनते हैं। इस चतुरस्र की बाहरी वीथियों में २४ कोष्ठ होते हैं। प्रत्येक दिशा में चारो कोणों पर एक-एक छोड़कर पाँच कोष्ठ को एक बना दे। अन्दर के कोष्ठों की वीथि में चारो कोणों में तीन-तीन कोष्ठों को एक कर दे। सबके बीच वाले कोष्ठ में मन्त्र का प्रथम अक्षर लिखे। मध्य के आगे से आरम्भ करके आठ कोष्ठों में आठ मन्त्राक्षरों को लिखे। आन्तरिक वीथि की चारो दिशाओं में शिष्ट एक-एक कोष्ठ में चार अक्षरों को एक-एक के क्रम से लिखे। सबसे बाहर के चार कोष्ठों में एक-एक अक्षर लिखे। इस प्रकार एक अक्षर मध्य में, आठ मध्य कोष्ठों में, चार आन्तरिक वीथि की दिशाओं में और चार अक्षरों को कोष्ठों से बने चतुरस्र में शिष्ट चार अक्षरों को लिखे। इस प्रकार १+८+४+४=१७ अक्षर कोष्ठचतुरस्र में लिखे जाते हैं। अभीष्ट सिद्धि के लिये सिद्धलक्ष्मी की पूजा नित्य प्रदक्षिणक्रम से षोड़श नित्याओं के साथ करनी चाहिये।

ललिताविद्याया गोपालस्वरूपत्वम्

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा। सर्वनारीसमारम्भादकरोद्विवशं जगत् ॥८५॥

ततः स गोपीसंज्ञाभिरावृतोऽभूत्स्वशक्तिभिः। ततस्तेन विनोदाय स्वं षोढाकल्पयद्वपुः ॥८६॥
तेषां षण्णां च षण्मन्त्राः समस्ताभीष्टदायकाः। तैर्यन्त्रपूजाहवनजपतर्पणसेचनैः ॥८७॥
भवन्ति लक्ष्मीकान्तिश्रीविजयारोग्यसंपदः। शृणु तान् षट्क्रमान्मन्त्रान् ध्यानार्चाविनियोगकैः ॥८८॥

कदाचित् कृष्णवर्णा ललिता पुरुषरूप धारण करती है तो सभी नारियों सहित सारे संसार को विवश कर देती है। तदनन्तर वह गोपीरूप में अपनी शक्तियों से आवृत होती है। तत्पश्चात् ललिता ने लीला के लिये अपने को सोलह रूपों में प्रकट किया। उनमें से छः के छः मन्त्र सभी अभीष्टों के दायक हैं। उनके मन्त्रों से पूजन-हवन-जप-तर्पण-अभिषेक करने से लक्ष्मी, कान्ति, श्री, विजय, आरोग्य एवं सम्पदा की प्राप्ति होती है। अब उन छहों मन्त्रों के ध्यान-अर्चन-विनियोग को क्रमशः कहता हूँ।

सिद्धगोपालमन्त्रः

स्थिरारसाव्याप्तवनस्वैरुक्तोभून्महामनुः। प्रणवद्वयमध्यस्थः सिद्धगोपालकाभिधः ॥८९॥
'ॐ ग्ल्यौं ॐ। (१)

श्लोक ८९ के उद्धार करने पर सिद्धगोपाल मन्त्र होता है—ॐ ग्ल्यौं ॐ।

षड्विधगोपालमन्त्राः

प्रोक्तैस्तैः पञ्चभिः काममन्त्रैरेकैकतः क्रमात्। पुटनान्नामतस्तस्माद्वाणैस्तैः पुटनाद्भवेत् ॥९०॥
संमोहनाख्यस्त्वेवं च सप्तधाभून्महामनुः।

ह्रींग्ल्यौंह्रीं (२)। क्लींग्ल्यौंक्लीं (३)। ऐंग्ल्यौंऐं (४)। ब्लूंग्ल्यौंब्लूं (५)। स्त्रींग्ल्यौंस्त्रीं (६)। द्रांद्रींक्लींब्लूंसः ग्ल्यौं सःब्लूंक्लींद्रींद्रां (७)।

श्लोक ९० के उद्धार करने पर शेष छः गोपालमन्त्र बनते हैं, वे हैं—१. ह्रीं ग्ल्यौं ह्रीं, २. क्लीं ग्ल्यौं क्लीं, ३. ऐं ग्ल्यौं ऐं, ४. ब्लूं ग्ल्यौं ब्लूं, ५. स्त्रीं ग्ल्यौं स्त्रीं और ६. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ग्ल्यौं सः ब्लूं क्लीं द्रीं द्रां।

तेषां यन्त्राणां ध्यानानि

आद्यः पञ्चाङ्गको मन्त्रस्त्वितरे स्युः षडङ्गकाः ॥९१॥
तत्तद्बीजादिकेन स्यात्षडङ्गानि यथाविधि। अष्टपत्राब्जमध्यस्थं पूजयेत्सप्त तान् क्रमात् ॥९२॥
यन्त्राणि तानि तन्मन्त्रयुतमध्यान्यनुक्रमात्। वारेषु भास्कराद्येषु तेषां पूजा क्रमेण वै ॥९३॥
सकलेष्टप्रदा नित्यं दुग्धक्षौद्रघृतान्नकैः। पायसैर्नारिकेलैश्च ससितैः कदलीफलैः ॥९४॥
क्रमाद्वारेषु नैवेद्यं दद्यादिष्टार्थसिद्धये। इतीरितैः सप्तभिस्तैः सर्वमिष्टमवाप्नुयात् ॥९५॥
अरुणं षड्भुजं वंशवादिनं पाशमङ्कुशम्। पुण्ड्रेक्षुचापपुष्पेषून् दधानं शक्तिभिः स्मरेत् ॥९६॥
सुवर्णपुष्पीमूलेन पिष्टेन निजवारिणा। हृत्कण्ठाज्ञालेपनतो देवतादर्शनं भवेत् ॥९७॥

प्रथम में पञ्चाग न्यास करे और अन्य में षडंग न्यास करे। तत्तत् बीजों से अंगों में षडङ्ग न्यास करे। अष्टदल कमल में इन सातों की पूजा दूध, मधु, घी, अन्न, पायस, नारियल, मिश्री, केला से रवि से शनिवार तक सात दिनों में क्रम से एक्-एक की करे। इससे वांछित फल मिलते हैं। इन सातों से सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। वंशीवादक कृष्ण का ध्यान लाल वर्ण की छः भुजाओं वाली शक्ति के हाथों में पाश अंकुश पुण्ड्रेक्षु चाप पुष्पबाण धारण करने वाली शक्तियों से घिरी हुई रूप में करे, सुवर्ण-पुष्पों के मूल को उसी के रस में पीसकर हृदय-कण्ठ-भ्रूमध्य में लगाने से देवता का दर्शन होता है।

सकलदेवतानामपरोक्षोपायौषधयोगादिविधानाम्

उग्रगन्धां च नीलां च धातकीं फलसंयुताम्। आरग्वधं मुण्डिनीं च शाखोटं जम्बुमूलकम् ॥९८॥
कर्णिकारं हंसपदीं वाराहीं भृङ्गराजकम्। कोरण्टं कर्पटं सूत्रं त्रिफलां चूर्णयेत्समम् ॥९९॥

सितेनाज्येन मधुना जग्ध्वा तल्लिप्ततत्त्रयः। भावयंसतन्मयो भूयाद्दिवसैः कैश्चिदात्मवान् ॥१००॥ इति।

उग्रगन्धा, नीला, आमला, अमलतास, मुण्डी, शाखोट, जामुनमूल, कर्णिकार, हंसपदी, वाराही, भृङ्गराज, कोरण्ट, कर्पट, सूत्र, त्रिफला को बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे। उस चूर्ण में शक्कर, गोघृत एवं मधु मिलाकर हृदय-कण्ठ-भ्रूमध्य में लेप लगाकर तन्मय होने की भावना करे। इससे कुछ ही दिनों में साधक देवीस्वरूप हो जाता है।

षोडशनित्यानां स्वात्मत्वेन वासना

अथ वासना तत्र श्रीतन्त्रराजे (३५.१)—

अथ षोडशनित्यानां स्वात्मत्वे वासनां शृणु। यया तन्मयतासिद्धिः प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम् ॥१॥
गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता। नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते ॥२॥
बलिदेव्यः स्वमायाः स्युः पञ्चमी जनकात्मिका। कुरुकुल्ला भवेन्माता पुरुषार्थास्तु सागराः ॥३॥
रत्नद्वीपो भवेद्देहो नवत्वं धातुरोमभिः। सङ्कल्पाः कल्पतरवः स्वाधारा ऋतवः स्मृताः ॥४॥
ग्रहर्क्षराशिचक्रेण कालात्मा पश्चिमामुखः। तेन पूर्वाभिमुख्यं स्यादन्यत्ते कथितं मिथः ॥५॥
ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं बहिःस्थितम्। श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरितम् ॥६॥
श्रीचक्रे सिद्धयः प्रोक्ता रसा नियतिसंयुताः। ऊर्मयः पुण्यपापे च ब्राह्म्याद्या मातरः स्मृताः ॥७॥
भूतेन्द्रियमनांस्येव क्रमान्नित्याकलाः पुनः। कर्मेन्द्रियार्था दोषाश्च ज्ञेयाः स्युः शक्तयोऽष्ट वै ॥८॥
नाड्यश्चतुर्दश प्रोक्ताः क्षोभिण्याद्यास्तु शक्तयः। वायवो दश संप्रोक्ताः सर्वसिद्ध्यादिशक्तयः ॥९॥
वह्नयो दश संप्रोक्ताः सर्वज्ञाद्यास्तु शक्तयः। शीतोष्णसुखदुःखेच्छा गुणाः प्रोक्ताः क्रमेण वै ॥१०॥
वशिन्याद्याः शक्तयः स्युस्तन्मात्राः पुष्पसायकाः। मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग इतीरितः ॥११॥
द्वेषः स्यादङ्कुशः प्रोक्तः क्रमेण वरवर्णिनि। अव्यक्ताहङ्कृतिमहदाकाराः प्रतिलोमतः ॥१२॥
कामेश्वर्यादिदेव्यः स्युः संवित्कामेश्वरः स्मृतः। स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा ॥१३॥
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना। सिद्धिस्त्वनन्यचित्तत्वं मुद्रा वैभवभावना ॥१४॥
उपचाराश्चलत्वेऽपि तन्मयत्वाप्रमत्तता। प्रयोगास्तु विकल्पानां हेतोः स्वात्मनि नाशनम् ॥१५॥
यन्त्राणि मन्त्राः सर्वत्र स्वात्मत्वे धैर्यसाधनम्। संध्यासु भजनं देव्या आदिमध्यान्तमञ्जनम् ॥१६॥
अन्यास्तु शक्तयश्चक्रगामिन्यो याः समन्ततः। तास्तु विश्वविकल्पानां हेतवः समुदीरिताः ॥१७॥
न्यासस्तु देवतात्वेन स्वात्मनो देहकल्पनम्। जपस्तन्मयतारूपभावनं सम्यगीरितम् ॥१८॥
होमो विश्वविकल्पानामात्मन्यस्तमयो मतः। तेषामन्योन्यसंभेदभावनं तर्पणं स्मृतम् ॥१९॥
मोहाज्ञानादिदुःखानामात्मन्यस्तमयो दृढम्। अभिषेकस्तु विद्या स्यादात्मा सर्वाश्रयो महान् ॥२०॥
उपाधीनां तु राहित्यमुपदेश इतीरितः। दक्षिणा भेदशून्यत्वं शुश्रूषा स्थैर्यमुच्यते ॥२१॥
तिथिरूपेण कालेन परिणामावलोकनम्। नित्याः पञ्चदशैताः स्युरिति प्रोक्तास्तु वासनाः ॥२२॥
पृथिव्यादीनि भूतानि कनिष्ठाद्याः क्रमान्मताः। तेषामन्योन्यसंभेदप्रकारैस्तत्प्रपञ्चता ॥२३॥
ललितायास्त्रिभिर्वर्णैः सकलार्थोऽभिधीयते। शेषेण देवीरूपं तु तेन स्यादिदमीरितम् ॥२४॥
अशेषतो जगत् कृत्स्नं हृल्लेखात्मकमीरितम्। तस्याश्चार्थस्तु कथितः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ॥२५॥
व्योम्ना प्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना। तयोर्विमर्श ईकारो बिन्दुना तन्निफालनम् ॥२६॥

सोलह नित्याओं की वासना—तन्त्रराज में भगवान् ने कहा है कि अब सोलह नित्याओं से स्वात्मत्व-प्राप्ति के लिये वासना सुनो, जिससे तन्मय होने पर सिद्धि प्रत्यक्ष होती है। आद्या शक्ति गुरु होती है, वह विमर्शमयी है। उसके नवत्व होने से ही हमारे शरीर में नव रन्ध्र हैं। बलिदेवियाँ अपनी माया से जनकात्मिका हैं। कुरुकुल्ला माता है। पुरुषार्थ सागर हैं।

रत्नद्वीप हमारे शरीर में नव धातुरोम में है। संकल्प कल्पवृक्ष है और अपना आधार ऋतुयें हैं। ग्रह-नक्षत्र-राशि चक्र से कालरूपी आत्मा पश्चिममुख है, उसे कुछ लोग व्यर्थ में पूर्वमुख कहते हैं। अपना आत्मा ज्ञाता है। ज्ञान अर्घ्य है और ज्ञेय बाहर स्थित है। श्रीचक्र पूजन में इनका एकीकरण होता है। श्रीचक्र में सिद्धियाँ नियति संयुत रस हैं। उसमें पुण्य-पाप ब्राह्मी आदि मातृकाओं के रूप में लहरे हैं। पञ्चभूत, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन क्रमश: नित्या कला हैं। कर्मेन्द्रियों के अर्थ और दोष आठ शक्तियाँ हैं। चौदह नाडियाँ क्षोभिणी आदि चौदह शक्तियाँ हैं। दश प्राण सर्व सिद्धि आदि दश शक्तियाँ हैं। दश अग्नियाँ सर्वज्ञादि दश शक्तियाँ हैं। शीत-उष्ण-सुख-दु:ख-इच्छा उनके गुण हैं। पुष्पशायक तन्मात्रा में वशिन्यादि शक्तियाँ हैं। मन, इक्षु, धनु और राग पाश है, द्वेष अंकुश है। अव्यक्त अहंकृति विशाल आकार में प्रतिलोमत: कामेश्वरी आदि देवियाँ हैं। कामेश्वर संवित् हैं। अपनी आत्मा ललिता विश्वविग्रहा है। उसका विमर्श लौहित्य है। भावना से वह उपासित होती है। अनन्य चित् तत्त्व मुद्रा वैभव से सिद्ध होती है। उपचार के चलित होने पर भी तन्मयत्व में अप्रमत्तता है। विकल्प प्रयोग आत्मनाश के कारण हैं। सभी यन्त्र मन्त्र सर्वत्र अपनी आत्मा में धैर्य के साधन हैं। सन्ध्याओं में देवी का भजन और आदि मध्यान्त में अंजन किया जाता है। चक्र की जितनी अन्य शक्तियाँ हैं, वे सभी विश्वविकल्प की हेतु हैं। न्यास से अपने देह में देवतात्व प्राप्त होता है। जप तन्मयतारूप भावना है; होम विश्व विकल्प अन्य को आत्मवत् समझना है। उससे अन्यन्य भावना तर्पण है, मोह अज्ञानादि दु:ख आत्मा से अभिन्न हैं। अभिषेक से आत्मा सर्वाश्रय होता है। उपदेश से उपाधिराहित्य होता है। दक्षिणा भेदशून्यत्व है एवं सुश्रूषा स्थैर्य है। तिथिरूप काल से परिणाम का अवलोकन होता है। यही पन्द्रह नित्या की वासना है। पृथ्वी से लेकर समस्त भूतों के अन्यन्य सम्भेद प्रकार से प्रपञ्चता है। ललिता के तीनों वर्णों का अर्थ सकल यानि सब कुछ होता है। शेष देवीरूप है। अशेष जगत् को बनाने से इसे हल्लेखा (ह्रीं) कहते हैं। सभी तन्त्रों में इसका अर्थ गोपित है। आकाश से प्रकाशमानत्व है। ग्रसमानता अग्नि है। उसका विमर्श 'ई'कार है, उसे बिन्दु से निफालित किया जाता है।

ब्रह्मविद्याप्रवचनम्

अथ प्रणवस्वरूपनिरूपणम्। तत्रोपनिषद्वाक्यम्—

ॐब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानमनुत्तमाम्। यत्रोत्पत्तिं लयं चैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्॥१॥
प्रसादान्त:समुत्थस्य विष्णोरद्भुतकर्मण:। रहस्यं ब्रह्मविद्यायां ध्रुवाग्नि: संप्रचक्षते॥२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभि:। शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालं लयं तथा॥३॥
तत्र देवास्त्रय: प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नय:। तिस्रो मात्रार्धमात्रा च त्र्यक्षरस्य शिवस्य च॥४॥
ऋग्वेदो गार्हपत्यश्च पृथिवी ब्रह्म एव च। अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभि:॥५॥
यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च। विष्णुश्च भगवान् देव उकार: परिकीर्तित:॥६॥
सामवेदस्तथाद्यौश्चाहवनीयस्तथैव च। ईश्वर: परमो देवो मकार: परिकीर्तित:॥७॥
सूर्यमण्डलमिवाभात्यकार: शङ्खमध्यग:। उकारश्चन्द्रसङ्काशस्तस्य मध्ये व्यवस्थित:॥८॥
मकारश्चाग्निसङ्काशो विधूमो विद्युतोपम:। तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेया: सोमसूर्याग्नितेजस:॥९॥
शिखाभा दीपसङ्काशा यस्मिन्नुपरि वर्तते। अर्धमात्रा तु सा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता॥१०॥
पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखाभा दृश्यते परा। सा नाडी सूर्यसङ्काशा सूर्यं भित्त्वा तथापरम्॥११॥
द्वासप्ततिसहस्राणि सूर्यं भित्त्वा तु मूर्धनि। वरद: सर्वभूतानां सर्वं व्याप्यैव तिष्ठति॥१२॥
कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये। ओंकारस्तु तथा योज्य: शान्तये सर्वमिच्छता॥१३॥
यस्मिन् संलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते। ध्रुवं हि चिन्तयेद्ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१४॥ इति।

अस्यार्थ:—ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामीति श्लोक: क्वचिदेवादौ पठ्यते। ब्रह्म प्रणवस्तस्य विद्यां ज्ञानं, तां किंभूतां, सर्वेषां ज्ञानं ज्ञानोपायभूतां, प्रणवेन ब्रह्मणि ज्ञाते सर्वस्य विज्ञानात्। तथा यत्र विद्यायां देवत्रयादुत्पत्तिं लयं चकारात् पालनं च वक्ष्यामीति पूर्वेणान्वय: श्रुते: प्रतिज्ञेयम्। प्रसादेति विष्णो: ब्रह्मविद्यायां रहस्यं ध्रुवाग्नि:

प्रणवतेज इति संप्रचक्षते बुधा इत्यन्वयः, विष्णुनेयं विद्या प्रवर्तितेत्यर्थः। कीदृशस्य प्रसादेन भक्तकृपया अन्तः अन्तरात् स्तम्भमध्यात् समुत्थस्य नृसिंहरूपेण प्रकटीभूतस्य, यद्वा 'प्रासादो देवभूभुजा'मिति कोषात् क्षीरोदार्णव-वैकुण्ठबलिगृहद्वारादेः प्रासादस्यान्तराज्जगद्रक्षणार्थं प्रकटीभूतस्य, यद्वा प्रसादः लिङ्गाद्यपेक्षया प्रसन्नरूपो जीवस्तस्यान्तर-मावरणमविद्यादि, ततः समुत्थस्य निष्क्रान्तस्याविद्यावरणरहितस्येत्यर्थः। यथोक्तं छान्दोग्ये—'अथ य एष संप्रसादोऽस्मा-च्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिसंपद्यते स उत्तमपुरुषः' इति। अद्भुतकर्मणो मत्स्यादिरूपेण ओंकारो ध्रुवोऽक्षरनिघण्टावुक्तः। तथाहि—

ॐकारो वर्तुलस्तारो बिन्दुः शक्तिस्त्रिदैवतः। प्रणवो मन्त्रगर्भश्च पञ्चदेवो ध्रुवः शिवः॥
मन्त्राद्यः परमं बीजं मूलमाद्यश्च तारकः। शिवादि व्यापको व्यक्तः परं ज्योतिश्च संविदः॥ इति।

स्थानं कालं लयं तथेति कालशब्दो मेचकवाचको वर्णं लक्षयति, तेन वर्णं वक्ष्यामीत्यर्थः। वर्णमित्येव वक्तव्ये कालग्रहणं मात्रारूपकालस्यापि संग्रहार्थमिति द्रष्टव्यम्। अवयवशः शरीरं तावदाह तत्र देवा इति, त्र्यक्षरस्य शिवस्य चेति। शिवोऽर्धमात्रार्थः। तिस्रो मात्रा त्र्यक्षरस्य, अर्धमात्रा शिवस्येत्यर्थः, प्रणवस्य देवादयस्त्रय उक्ताः। त्रयस्त्रयोऽनुपदमेव वक्ष्यन्ते। तिस्रो मात्रा अर्धमात्रा चेति वक्तव्ये छान्दसः सन्धिः। तदुक्तं हठप्रदीपिकायाम्—

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुसंज्ञकः। त्रिधा मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥

त्रय इत्युक्तं तदेव विभजते ऋग्वेद इत्यादिना। ब्रह्म एव चेत्यत्र छान्दसो ह्रस्वः प्रकृतिभावश्च, ब्रह्मा देव इत्यर्थः। खण्डान्तेन ग्रन्थेन शरीरमित्युक्तं संप्रति स्थानं वर्णसहितमाह सूर्येति, सूर्यमण्डलमिवाभाति अकारः। शङ्खो ललाटास्थि तन्मध्यं नेत्रस्थानं तत्र वर्तमानः 'योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः' इति श्रुतेः। 'शङ्खो निध्यन्तरे कम्बुललाटास्थिनखेषु चेति' विश्वः। तस्य मध्ये शङ्खस्यैव मध्येऽर्थाद्वामनेत्रे स्थितः। मकार इत्यत्रापि तस्य मध्ये इत्यपेक्षते। शङ्खस्य मध्ये अर्थात् तृतीयनेत्रे व्यवस्थितः। अत एव याज्ञवल्क्येनोक्तम्—

इडायां पिङ्गलायां च चरतश्चन्द्रभास्करौ। इडायां चन्द्रमा ज्ञेयः पिङ्गलायां रविः स्मृतः॥ इति।

खेचर्यां च—

जिह्वामूले स्थितो देवि सर्वतेजोमयोऽनलः। तदग्रे भास्करश्चन्द्रस्तालुमध्ये प्रतिष्ठितः॥
एवं यो वेत्ति तत्त्वेन तस्य सिद्धिः प्रजायते। इति।

तिस्रो मात्रा अकारादयः। अनेन काल उक्तः। सोमसूर्याग्नितेजस इत्यनेन वर्णा उक्ताः। यस्मिन् शङ्खे उपरि तृतीयनेत्रादुपरि, अनेनार्धमात्रास्थानमुक्तम्। पद्मसूत्रनिभेति तस्या वर्ण उक्तः। शिखाभा ज्वालाभा ऊर्ध्वतावैशद्याभ्याम्। तथा मूले स्थूला उपर्युपरि तन्वी च।

शिखा शिफायां ज्वालायां चूडायामग्रमात्रके। लाङ्गल्यां चापि शाखायां चूडायां च शिखण्डिनः॥

इति विश्वः। सा नाडी सुषुम्ना तस्या एव वा पूर्वाणि विशेषणानि। सूर्यं चक्षुरधिष्ठानं अथवा सूर्या-ल्लब्धरश्मित्वान्मनोऽधिष्ठानश्चन्द्रः सूर्यस्तं भित्त्वा तथा अपरमधःकन्दे द्वासप्ततिसहस्रनाडीर्भित्त्वा ऊर्ध्वं गता। तदुक्तं (गोरक्षेण)—

ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत्। तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः॥ इति।

पुनरधिदैवतं सूर्यं भित्त्वा मूर्धनि ब्रह्मलोके द्वादशान्ते च दृश्यते इत्यनुषङ्गः। तदुक्तं याज्ञवल्क्येन—

तासां मुख्यतमा तिस्रस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा। मुक्तिमार्गेति सा प्रोक्ता सुषुम्ना विश्वधारिणी॥१॥
कन्दस्था मध्यमे मार्गे सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता। पृष्ठमध्यस्थिता नाडी या हि मूर्ध्नि व्यवस्थिता॥२॥
मुक्तिमार्गे सुषुम्ना सा ब्रह्मरन्ध्रे प्रतिष्ठिता। अव्यक्ता सैव विज्ञेया सूक्ष्मा सा वैष्णवी स्मृता॥३॥ इति।

प्रणवो नादरूपेण सर्वं व्याप्यैव तिष्ठतीत्याह वरद इति। अनेन ॐकारोऽनाहतशब्दो विष्णुश्चैक इत्युक्तं भवति। इदानीं लयमाह कांस्यघण्टेति। यथा लीयति लीनो उपरतव्यापारो भवति ॐकारस्तथा शान्तये योज्यः, प्लुततरो जप्तव्य इत्यर्थः। सर्वं सर्वात्मभावे ब्रह्मभावमिच्छता। यस्मिन् संलीयते इति, यद्वस्त्वनुभूय शब्दो विषयो नोपलभ्यते विलीयते तत्परं ब्रह्म। तदुक्तं प्रदीपिकायाम्—

काष्ठे प्रवर्तितो वह्निः काष्ठेन सह शाम्यति। नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते॥१॥
विसृज्य सकलं बाह्यं नादे दुग्धाम्बुवन्मनः। एकीभूयास्य मनसा ब्रह्माकाशे विलीयते॥२॥ इति।

लयलक्षणं तु—

लयो लय इति प्राहुः कीदृशं लयलक्षणम्। अपुनर्वासनोत्थानाल्लयो विषयविस्मृतिः॥१॥

यद्वा यतो वाचो निवर्तन्ते, इत्यर्थः। उपसंहरति ध्रुवमिति। ध्रुवमोंकारं हि ब्रह्म चिन्तयेत्, ध्रुवमेकरूपं वा एकाग्रतया वा ब्रह्म चिन्तयेत्। द्विरुक्तिः समाप्त्यर्थः।

प्रणव स्वरूप-निरूपण—उपनिषद् में कहा गया है कि सभी ज्ञान से उत्तम ॐ यह ब्रह्मविद्या है। ॐ से ही ब्रह्मा सृजन, विष्णु पालन और शिव प्रलय करते हैं। इसी के प्रसाद से विष्णु के अद्भुत कर्म होते हैं। ब्रह्मविद्या का रहस्य ध्रुव अग्नि है। ब्रह्मवादी कहते हैं—ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म। उस ॐ के शरीर, स्थान, काल और लय को कहता हूँ। उसमें तीनों लोक, तीनों वेद, तीनों अग्नि व्याप्त हैं। तीन मात्रा, अर्द्धमात्रा और शिव के तीन अक्षर उसी में निहित हैं। ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि और पृथ्वी तथा ब्रह्म को अकार का शरीर ब्रह्मवादियों द्वारा कहा गया है। यजुर्वेद, अन्तरिक्ष, दक्षिणाग्नि और भगवान् विष्णु 'उ'कार को कहा गया है। सामवेद, आकाश, आहवनीय अग्नि और परमदेव ईश्वर मकार को कहते हैं। सूर्यमण्डल की आभा के समान शंख मध्य में अकार है। 'उ'कार चन्द्रमा के समान उसके मध्य में स्थित है। 'म'कार अग्नि के समान निर्धूम विद्युतोपम है। तीनों मात्रायें सोम-सूर्य-अग्नि, तेज के रूप हैं। दीप शिखा की आभा जिसके ऊपर रहती है, उसे अर्धमात्रा कहते हैं। यह प्रणव के ऊपर स्थित रहता है। पद्मसूत्र के समान शिखा की जो सूक्ष्म परा आभा दीखती है, वह नाड़ी सूर्य के समान सूर्य को भेद कर औरों का भेदन करती है। बहत्तर हजार सूर्यों का भेदन करके यह मूर्धा में रहकर वरद रूप में सभी भूतों और सबों में व्याप्त रहती है। कांस्य घंटानाद जैसे धीरे-धीरे शान्त होकर लीन होता है, उसी प्रकार ॐकार का योजन भी शान्ति की इच्छा से करना चाहिये। इसमें जो शब्द लीन होता है, उसे परब्रह्म कहते हैं। निश्चित ही जो इस प्रकार ब्रह्म का चिन्तन करता है, वह अमृतत्व के लिये करता है, वह अमृतत्व के लिये करता है, वह अमृतत्व के लिये करता है।

निघण्टु में कहा गया है कि ॐकार गोल है, बिन्दु ब्रह्मा-विष्णु-महेश की शक्ति है, प्रणव मन्त्रगर्भ है, पञ्चदेव शिव हैं। यह ॐकार मन्त्र का प्रथम अक्षर, परम बीज एवं तारक मन्त्र का मूल है। शिव आदि इसी से व्यक्त हुये हैं और परं ज्योति भी इसी से उद्भूत है।

हठप्रदीपिका में कहा गया है कि अकार, उकार और बिन्दुसंज्ञक मकार—ये तीन मात्रायें जिसमें स्थित हो, उसे ही परं ज्योतिस्वरूप ॐ कहा जाता है।

याज्ञवल्क्य उपनिषद् में कहा गया है कि इड़ा और पिङ्गला नाड़ी में चन्द्रमा और सूर्य सञ्चरण करते रहते हैं; इसीलिये इड़ा को चन्द्रमा और पिङ्गला को सूर्य कहा गया है।

खेचरी में कहा गया है कि जिह्वा के मूल भाग में सर्वतेजःस्वरूप अग्नि स्थित रहती है, उसमें सूर्य प्रतिष्ठित रहता है एवं तालु के मध्य में चन्द्रमा प्रतिष्ठित रहता है। इस प्रकार तत्त्वतः जो जानता है, उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है। कमलमूल में, ज्वाला में, चूड़ा में, मात्राओं के अग्रभाग में, नारियल के वृक्ष में, शाखा में, अग्नि में शिखा होती है।

गोरक्ष ने कहा है कि मेढ़्र से ऊपर एवं नाभि से नीचे खगाण्डवत् कन्दयोनि अवस्थित है। वहीं से बहत्तर हजार नाड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं।

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि बहत्तर हजार नाड़ियों में इड़ा-पिंगला एवं सुषुम्ना—ये तीन मुख्य हैं और इनमें भी एकमात्र सुषुम्ना सर्वप्रमुख है, क्योंकि वही मुक्ति का मार्ग और विश्व को धारण करने वाली है। कन्दस्थ मध्य मार्ग में सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। पृष्ठ के मध्य में स्थित यह नाड़ी मूर्धा में व्यवस्थित रहती है। मुक्तिमार्ग में वह सुषुम्ना ब्रह्मरन्ध्र में प्रतिष्ठित रहती है। वही अव्यक्त कही गई है और वही सूक्ष्म नाड़ी वैष्णवी कही गई है।

योगप्रदीपिका में कहा गया है कि लकड़ी से उत्पन्न अग्नि लकड़ी से ही शान्त भी होती है, नाद से प्रवर्तित चित्त नाद में ही लयीभूत होता है। समस्त बाह्य विषयों का त्याग कर दुग्ध और जल के समान मन एकीभूय होकर ब्रह्माकाश में विलीन हो जाता है।

लय को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि वासना का पुन: उत्थान न होने से विषय भी विस्मृति ही लय कही जाती है।

क्षुरिकाधारणायोगलक्षणानि

अथ प्रसङ्गतो योगलक्षणमाह क्षुरिकायाम्—

क्षुरिकां संप्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये। यां प्राप्य न पुनर्जन्म योगयुक्त: स जायते ॥१॥
वेदतत्त्वार्थविहितं यथोक्तं हि स्वयम्भुवा। नि:शब्दं देशमास्थाय तत्रासनमवस्थित: ॥२॥
कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य मनो हृदि निरुध्य च। मात्राद्वादशयोगेन प्रणवेन शनै: शनै: ॥३॥
पूरयेत् सर्वमात्मानं सर्वद्वारान् निरुध्य च। उरोमुखकटिग्रीवं किञ्चिद् हृदयमुन्नतम् ॥४॥
प्राणान् संचारयेद्योगी नासाभ्यन्तरचारिण:। भूत्वा तत्र गत: प्राणान् शनैरथ समुत्सृजेत् ॥५॥
स्थिरमात्रादृढं कृत्वा अङ्गुष्ठे तु समाहित:। द्वे तु गुल्फे च कुर्वीत जङ्घे चैव त्रयस्त्रय: ॥६॥
द्वे जानुनि तथोरुभ्यां गुदे शिश्ने त्रयस्त्रय:। वायोरायतनं चात्र नाभिदेशे समाश्रयेत् ॥७॥
तत्र नाडी सुषुम्ना तु नाडीभिर्बहुभिर्वृता। अणुरक्ताश्च पीताश्च कृष्णास्ताम्रविलोहिता: ॥८॥
अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लां नाडीं समाश्रयेत्। तत: संचारयेत् प्राणानूर्णनाभीव तन्तुना ॥९॥
तत्र रक्तोत्पलाभासं पुरुषायतनं महत्। दहरं पुण्डरेकेति वेदान्तेषु निगद्यते ॥१०॥
तद्भित्त्वा कण्ठमायाति तां नाडीं पूरयन्यत:। मनसस्तु क्षुरं गृह्य सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम् ॥११॥
पादस्योपरि मर्मृज्य तद्रूपं नाम कृन्तयेत्। मनोद्वारेण तीक्ष्णेन योगमाश्रित्य नित्यश: ॥१२॥
इद्रवज्र इव प्रोक्तं मर्मजङ्घानुकीर्तनम्। तद्ध्यानबलयोगेन धारणाभिर्निकृन्तयेत् ॥१३॥
ऊरोर्मध्ये तु संस्थाप्य मर्मप्राणविमोचनम्। चतुरभ्यासयोगेन छिन्देदनभिशङ्कित: ॥१४॥
तत: कण्ठान्तरे योगी समूहन्नाडिसञ्चयम्। एकोत्तरं नाडिशतं तासां मध्ये वरा: स्मृता: ॥१५॥

योगलक्षण—क्षुरिकोपनिषद् में कहा गया है कि योग की सिद्धि के लिये धारणारूप क्षुरिका अर्थात् चाकू को कहता हूँ, जिसे प्राप्त करके योगाभ्यासी मोक्ष प्राप्त करते हैं। नि:शब्द स्थान में आसन पर बैठे। कछुए के समान अपने मन को हृदय में सिकोड़ ले। उसके बाद धीरे-धीरे ॐकार का बारह बार मानसिक उच्चारण करते हुए पूरक प्राणायाम से सारे शरीर को पूर्ण करे। छाती, मुख, रीढ़, गर्दन और हृदय को सीधा रखे। नाक के भीतर चलते प्राण को हृदय में धारण करके कुम्भक करे। तब प्राण को रेचक प्राणायाम से धीरे-धीरे बाहर निकाले। इस अभ्यास के स्थिर और दृढ़ हो जाने पर पूरी सावधानी से पैरों के अंगूठों से दोनों गुल्फों में दो-दो, दोनों जांघों में तीन-तीन, दोनों जानुओं में दो-दो, उपस्थ-पायु में तीन-तीन प्राणायाम करे। तब वायु को नाभि देश में ले आये। वहाँ सुषुम्ना नामक नाड़ी है। वह दश नाड़ियों से लिपटी रहती है। नाड़ियों के कई रंग हैं, जैसे—लाल, पीला, काला, ताम्र इत्यादि। पर उनमें जो अत्यन्त सूक्ष्म पतली और श्वेत है, उसी का आश्रय लेना चाहिये। जैसे मकड़ी अपने नाभि से निकले सूत्र के सहारे ऊपर चढ़ती है, उसी प्रकार योगी अपने प्राण को गतिशील करे। वेदान्त में जिसे दहर पुण्डरीक कहते हैं, वह महान् पुरुष अर्थात् आत्मा का स्थान हृदय है, जो लाल कमल के समान प्रकाशित रहता है।

उसे भेदकर वायु उक्त नाड़ी को भरता हुआ कण्ठ में आता है। इसलिये योगी बुद्धि से निर्मल अति तीक्ष्ण मन-रूपी चाकू को लेकर पैरों के मध्य के नामरूप को काट दे। ऐसे तीक्ष्ण मन से नित्य योगाभ्यास करना चाहिये। जंघा में स्थित इन्द्रवज्र नामक स्थान को ध्यान योग से काट डालना चाहिये। दोनों ऊरुओं के बीच में प्राण को स्थापित करके उसे मर्म भागों में ले जाना चाहिये। चार बार योगाभ्यास करके नि:शंक होकर मर्मभागों को काट दे। इसके बाद योगी कण्ठ में नाड़ियों को इकट्ठा करे। इन नाड़ियों में एक सौ एक नाड़ियों को श्रेष्ठ कहा गया है।

इडा रक्षतु वामेन पिङ्गला दक्षिणेन तु। तयोर्मध्ये वरं स्थानं यस्तं वेद स वेदवित् ॥१६॥
सुषुम्ना तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी। द्वासप्ततिसहस्राणि प्रति नाडीस्तु तैतिलम् ॥१७॥
छिद्यते ध्यानयोगेन सुषुम्नैका न छिद्यते। योगनिर्मलधारेण क्षुरेणानलवर्चसा ॥१८॥
छिन्देन्नाडीशतं धीरः प्रभावादिह जन्मनि। जातीपुष्पसमायोगैर्यथा वास्यन्ति तैतिलम् ॥१९॥
एवं शुभाशुभैर्भावैः सा नाडी तां विभावयेत्। तद्भाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जन्मविवर्जिताः ॥२०॥
ततो विदितचित्तस्तु निःशब्दं देशमाश्रितः। निःसङ्गस्तत्त्वयोगज्ञो निरपेक्षः शनैः शनैः ॥२१॥
पाशं छित्वा यथा हंसो निर्विशङ्कः खमुत्क्रमेत्। छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते तदा ॥२२॥
यथा निर्वाणकाले तु दीपो दग्ध्वा लयं व्रजेत्। तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं व्रजेत् ॥२३॥
प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित्। वैराग्योपलघृष्टेन छित्त्वा तन्तुं न बध्यते ॥२४॥ इति।

अस्यार्थः—

क्षुरिका शस्त्रिका प्रोक्ता तत्तुल्या धारणा यतः। तद्वाचकस्त्रिखण्डोऽयं क्षुरिकाग्रन्थ उच्यते ॥

गुरुतः प्राप्तविद्यस्य तत एव लब्धज्ञानप्रणवमन्त्रस्य षडङ्गयोगेऽधिकार इति तदर्थमुत्तरो ग्रन्थः क्षुरिकामित्यादि। क्षुरिकामिव संसारोच्छित्तये शस्त्रिकामिव रूपकं धारणामात्मनि चित्तावस्थानलक्षणम्।

इड़ा बाँयीं ओर रहती है और पिंगला दाहिनी तरफ। इन दोनों के बीच में जो उत्तम स्थान है, उसे जो जानता है वह ब्रह्म का ज्ञानी है। सुषुम्ना परतत्व में लीन है। विरजा ब्रह्मरूपिणी है। सभी सूक्ष्म नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार है। इनको तैतिल कहते हैं। ध्यान योग से ये सभी नाड़ियाँ छेदी जाती हैं, एक सुषुम्ना ही नहीं छेदी जाती। योगी पुरुष को इस जन्म में आत्मा के प्रभाव से अग्नि के समान तेजस्वी और योगरूपी निर्मल धार वाली मनरूपी छुरी से सभी नाड़ियों को छेदना चाहिये। इससे तैतिल नाड़ियाँ उसी प्रकार सुवासित हो जाती हैं, जिस प्रकार जवापुष्पों से तिल सुवासित हो जाते हैं। इस प्रकार शुभाशुभ भावों से सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करने, उसमें भावना करने से योगी पुनर्जन्म से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त करता है।

तप से जिसने चित्त को जीत लिया है, वह एकान्त प्रदेश में बैठकर नि:संग तत्त्व के योग का अभ्यास करे और धीरे-धीरे निरपेक्ष हो जाय। हंस जिस प्रकार नि:शंक होकर आकाश में उड़ जाता है, उसी प्रकार इस अभ्यास से योगी सभी बन्धनों के कट जाने से बन्धनमुक्त होकर संसार से सदा के लिये पार हो जाता है। जैसे दीपक के बुझते समय समस्त तेल जलकर समाप्त हो जाता है, वैसे ही योगी सभी कर्मों को जलाकर भस्म कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। प्राणायाम द्वारा निर्मित अति तीक्ष्ण ॐकार रूप धार वाली वैराग्य रूप पत्थर पर घिसी हुई मन रूपी छुरी से संसाररूपी सूत्र को काटकर योगवेत्ता पुन: उसके द्वारा नहीं बाँधा जाता। जब वह कामनाओं से छूटता है और सभी ऐषणाओं से रहित होता है तब अमृतत्त्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार संसार को काट देने पर वह बन्धन में नहीं पड़ता। ऐसा यह रहस्य है। आशय यह है कि शस्त्रिका को ही क्षुरिका कहा जाता है और उसके ही समान धारणा भी है। उसी का वाचक तीन खण्डों में विभक्त यह ग्रन्थ क्षुरिकाग्रन्थ कहा जाता है।

गुरु से विद्या और प्रणव मन्त्र का ज्ञान-प्राप्त शिष्य का ही षडङ्ग योग में अधिकार होता है।

धारणालक्षणम्

उक्तं च योगियाज्ञवल्क्येन—

शमादिगुणयुक्तस्य मनसः स्थितिरात्मनि। धारणेत्युच्यते सद्भिः शास्त्रतात्पर्यवेदिभिः ॥ इति।

न पुनर्जन्म भवतीति शेषः। स धारणावान् कुतश्चिदपराधाद्यदि योगभ्रष्टो भवति तर्हि जन्मान्तरे योगयुक्त एव जायते इत्यर्थः। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'। 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिक'मिति स्मृतेः। वेदेति। इदं योगस्वरूपं वेदेन तत्त्वार्थेन परमार्थेन विहितं विधिविषयीकृतं स्वयंभुवा ब्रह्मणा यथोक्तं यथा वर्तते तथोक्तं न विसंवादीत्यर्थः। तदुक्तं योगियाज्ञवल्क्येन—'वक्ष्यामि योगसर्वस्वं ब्रह्मणा कीर्तितं पुरा' इति। 'यथोक्तं परमेष्ठिना' इति च। योगस्वरूपं साधयितुं षडङ्गान्याह निःशब्दमिति। यदुक्तं 'कान्तारे विजने देशे फलमूलोदकान्विते। तपश्चरन् वसेन्नित्यं' इति। षडङ्गलक्षणानि प्रागुक्तानि। यमादीनां पूर्वकाण्डादेव सिद्धत्वादिहानभिधानं, न तु कापालिकवदनङ्गीकारात्।

योगि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि शम-दमादि गुण से युक्त मन की आत्मा में उपस्थिति को ही शास्त्रज्ञों ने 'धारणा' कहा है। धारणावान को पुनर्जन्म नहीं होता। धारणा करने वाला यदि कभी अपराधादि से योगभ्रष्ट होता हो जाता है तो जन्मान्तर में भी वह योगयुक्त ही होता है। यह योग ब्रह्मा द्वारा प्रवर्तित है।

दशधा यमाः

यमा दश यथा—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्। क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ इति।

यम दश होते हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, मिताहार एवं पवित्रता।

दशधा नियमाः

नियमा दश यथा—

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्। सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ इति।

अवस्थित आस्थित आरूढः। तदुक्तं गीतासु—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ इति।

तथा तन्त्रेणासनं पद्माद्यास्थितमित्यपि बोद्धव्यम्। तदुक्तं हठयोगप्रदीपिकायाम्—

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते। तत्कुर्यादासनस्थैर्यमारोग्यं चाङ्गपाटवम् ॥ इति।

नियम भी दश हैं—तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त का श्रवण, लज्जा, बुद्धि, जप एवं हवन।

गीता में भी कहा है कि पवित्र देश में न ज़्यादा ऊँचा और न ही ज्यादा नीचा मृगचर्म या कुशासन के स्थिर आसन पर स्वयं को प्रतिष्ठापित करना चाहिये।

यहाँ आसन से पद्मासनादि बोधव्य हैं। हठयोगप्रदीपिका में भी कहा है कि हठ के प्रथम अंग होने के कारण आसन को पहले कहा जाता है। अंगों की चपलता के लिये एवं आरोग्य-प्राप्ति के लिये स्थिर आसन करना चाहिये।

प्रत्याहारलक्षणम्

कूर्मोऽङ्गानीवेति प्रत्याहार उक्तः। अत्र इन्द्रियाणीति शेषः। तदुक्तम्—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः। बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥ इति।

आन्तरप्रत्याहारसिद्धये मन इति। हृदि हृत्पुण्डरीके। मनोऽनिरोद्धे दोषस्मरणात्। तदुक्तम्—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ इति।

मात्रेति द्वादश मात्रा नादबिन्दावुक्ता: 'घोषिणी प्रथमा मात्रा' इत्यादिना तत्रैव द्रष्टव्या:। प्रणवेन शनैः शनैरुच्चारितेन वायुं पूरयेत्। कीदृशेन मात्रा: अकारोकारमकारार्धमात्राख्याश्चतस्रस्तासां प्रत्येकं तिस्रस्तिस्रो मात्रा घोषिण्यादयो भूमिपत्यादिफला द्वादश, तासां योगश्चिन्तनं यस्मिंस्तेन प्रणवेन पूरयेत्। यदा द्वादशभिः प्रणवैः पूरणं तदाष्टचत्वारिंशद्भिः कुम्भनं, चतुर्विंशतिभी रेचनम्। यदा तु षोडशभिः पूरणं तदा चतुष्षष्टिभिः कुम्भनं द्वात्रिंशद्भी रेचनम्। यदा त्वष्टभिः पूरणं तदा द्वात्रिंशद्भिः कुम्भनं षोडशभी रेचनमिति विवेक:। सर्वमात्मानं न तु कतिपयाङ्गनिरोधेनोपविशेत्। तथा सति वायुवैषम्यं स्यात्। सर्वद्वारान् सर्वद्वाराणीत्यर्थ:। अधोद्वारें आकुञ्चनमूलबन्धाभ्यामूर्ध्वद्वाराणि जालन्धरबन्धेन। उरोमुखकटिग्रीवमुन्नतं धारयेदिति शेष:। तदुक्तं गीतासु—'समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम्' इति। हृदयं किञ्चिदुन्नतं धारयेत्, अनेन जालन्धरबन्धः सूचितः।

'कूर्मोऽङ्गानीव' से प्रत्याहार कहा गया है। कहा भी गया है कि विषयों में स्वभावत: विचरण करने वाले इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकना ही प्रत्याहार कहलाता है।

आन्तर प्रत्याहार सिद्धि के लिये मन को नियन्त्रित करना चाहिये; क्योंकि मन के नियन्त्रित न होने से दोष का स्मरण होता है। कहा भी है कि कर्मेन्द्रियों को नियन्त्रित करके इन्द्रिय विषयों को मन से जो विमूढ़ प्राणी स्मरण करता है, वह मिथ्याचार कहलाता है।

प्रणव का उच्चारण करते हुए धीरे-धीरे पूरक करे। जब बारह प्रणवों से पूरक करे तो अड़तालीस प्रणव से कुम्भक करे और चौबीस प्रणव से रेचक करे। जब सोलह प्रणव से पूरक करे तो चौंसठ प्रणव से कुम्भक और बत्तीस प्रणव से रेचक करे। जब आठ से पूरक करे तो बत्तीस से कुम्भक और सोलह से रेचक करे। अधोद्वार के आकुंचन से मूल बन्ध और ऊर्ध्व द्वार के आकुंचन से जालन्धर बन्ध करे। छाती मुख कटि गर्दन सीधा रखे। गीता में भी कहा है कि शरीर, शिर एवं गर्दन को सीधा रखकर अचल होकर स्थित रहे। हृदय को कुछ उच्च रखे। इससे जालन्धर बन्ध सूचित होता है।

जालन्धरबन्धः

स यथा—

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्। बन्धो जालन्धराख्योऽयममृताक्षयकारकः॥ इति।

सञ्चारयेत् पूरकमात्राभिस्तस्मिन् हृदये। नासेति तेन मुखेन पूरकरेचकौ निषिद्धौ, मुखेनैव पूरणे शिरानैर्मल्यासिद्धेः। भूत्वेति प्राणस्तत्र सर्वशरीरे गत: प्रविष्टो भूत्वा तिष्ठतीति शेष:, एतेन कुम्भक उक्त:। स च पूरकमात्रापेक्षया चतुर्गुणाभिर्मात्राभिः कार्य:। अथ रेचकमाह शनैरिति। समुत्सर्जनं च पूरणापेक्षया द्विगुणाभिर्मात्राभिः। शीघ्रोत्सर्जने विमार्गे वायुर्गच्छेत्। स्थिरेति स्थिराभिरेकरूपाभिर्मात्राभिर्दृढं स्थिरं प्राणं कृत्वा केवलकुम्भके सिद्धे इत्यर्थ:। ततो धारणाभिः प्रत्याहारमभ्यसेदित्याह अङ्गुष्ठे इत्यादिना। अङ्गुष्ठे इत्यादौ जातावेकवचनम्। अङ्गुष्ठयोर्गुल्फयोर्जङ्घयोरित्यादि बोद्धव्यम्। अङ्गुष्ठयोर्धारणे कुर्वीतेत्यन्वय:, द्वे तु, धारणे कुर्यादित्यर्थ:। त्रयस्त्रय इति (जङ्घे प्राप्य) आद्यन्तमध्येषु निरोधा: कर्तव्या इति शेष:। जानुनि आद्यन्तयोरूरुभ्यां साधनाभ्यां ऊर्वोरपि तथा द्वे इत्यर्थ:। गुदेति मूलाधारे स्वाधिष्ठाने चाद्यन्तमध्येषु निरोध:। वायोरिति, अत्र नाभिदेशे वायोरायतनं मुख्यं स्थानमस्ति। तच्च धारणया समाश्रयेदित्यर्थ:। तत्रेति, तत्र नाभौ सुषुम्ना मध्यनाडी बहुभिर्द्वासप्ततिसहस्रैर्वृता। मूलं तु तस्या: कन्दमध्ये कन्दस्तु—'गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद्द्व्यङ्गुलं विदु'रित्युक्त:। 'गुदमेढ्रान्तरे यद्वै—वेणुकन्दं तदुच्यते' इति च। वेणुः सुषुम्ना सा च षट्चक्रवती मूलाधारदण्डान्तर्विवरगता मूर्धानं भित्त्वा ब्रह्मलोकान्तं निर्गता। यच्छान्दोग्ये—'शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनि:सृतैका' इति। नाभेरूर्ध्वं तु चक्रानुक्रमेण धारणा मूर्धान्तं द्रष्टव्या। उक्तं च योगियाज्ञवल्क्येन—

मर्मस्थानानि सिद्ध्यर्थं शरीरे योगक्षेमयो:। तानि सर्वाणि वक्ष्यामि यथावच्छृणु सुव्रते॥१॥

कण्ठ को सिकोड़ते हुये चिबुक को दृढ़तापूर्वक हृदय पर स्थापित करना ही जालन्धर बन्ध कहलाता है; यह अमृत को अक्षय़ रखने वाला होता है। अर्थात् अमरत्व प्रदान करने वाला होता है।

पूरक मात्रा का हृदय में सञ्चार करे। नाक से पूरक-रेचक करे, मुख से नहीं; क्योंकि मुख से पूरक करने से शिर निर्मल नहीं होता। प्राण सारे शरीर में प्रविष्ट होकर स्थित रहता है, इसीलिये इसे कुम्भक कहते हैं। उसे सामान्य पूरक से चौगुना अधिक मात्रा में करना चाहिये। रेचक धीरे-धीरे करे। रेचक पूरक के दुगुनी मात्रा में करे। शीघ्र उत्सर्जन करने से वायु विमार्ग में जाता है। स्थिर रूप से एक समान मात्रा से प्राण को स्थिर दृढ़ करके कुम्भक सिद्ध होने पर धारंणा से प्रत्याहार का अभ्यास मूलाधार गुदा और लिङ्ग के मध्य में करना चाहिये। वेणु सुषुम्ना को कहते हैं और वह षट्चक्रवती मूलाधार दण्ड के भीतर विवरगत मूर्धा को भेद कर ब्रह्मलोक तक जाता है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि शरीर के योगक्षेम के लिये मर्मस्थानों का सिद्ध होना आवश्यक है।

मर्मस्थानसंख्यादि

मर्मस्थानसंख्या तु—

पादाङ्गुष्ठौ तु गुल्फौ च जङ्घामध्यौ तथैव च। तयोर्मूलं च जान्वोश्च मध्ये चोरूभयस्य च ॥२॥
पायुमूलं ततः पश्चान्मध्यदेहश्च मेढ्रकम्। नाभिश्च हृदयं गार्गि कण्ठकूपस्तथैव च ॥३॥
तालुमूलं च नासाया मूलं चाक्ष्णोश्च मण्डले। भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च प्रोक्तानि मुनिसत्तमैः ॥४॥
मर्मस्थानानि चैतानि.....................। इति।

एतेषु च तत्रैव धारणोक्ता—

स्थानेष्वेतेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत्। स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारं प्रकुर्वतः ॥१॥
सर्वे रोगाश्च नश्यन्ति योगाः सिध्यन्ति तस्य च। इति।

प्रपञ्चसारेऽपि (१९.५१)—

अङ्गुष्ठगुल्फजानुद्वितयं च गुदं च सीवनी मेढ्रम्। नाभिर्हृदयं ग्रीवा सलम्बिकाग्रं तथैव नासा च ॥१॥
भ्रूमध्यललाटाग्रं सुषुम्नाग्रं द्वादशान्तमित्येवम्। उत्क्रान्तौ परकायप्रवेशने चागतौ च पुनः स्वतनौ ॥२॥
स्थानानि धारणायाः प्रोक्तानि मरुत्प्रयोगविधिनिपुणैः। इति।

अङ्गुष्ठादूर्ध्वमारोहे फलमिदमुक्तम्। मूर्ध्नोऽङ्गुष्ठपर्यन्तावरोहेऽपि च धारणानां फलमुक्तम्—
स्थानात् स्थानं समाकृष्य यस्त्वेवं धारयेत्सुधीः। सर्वपापविशुद्धात्मा जीवेदाचन्द्रतारकम्॥ इति।

अणुरक्ताश्चेत्यादीनां नाडीनां विशेषणम्। तदुक्तं छान्दोग्ये—'अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्य' इति। अणवश्च ता रक्ताश्चेति समासः। एवं केवलकुम्भके सिद्धे प्राणमनसोः स्थानविशेषेषु प्रत्याहारमभ्यस्य धारणासिद्धये सुषुम्नायां प्राणमनसोः प्रवेशः कर्तव्यः। तत्रोपायः—मूलोड्याणजालन्धरबन्धैः शक्तिचालनेन त्वपानमूर्ध्वमाकुञ्च्य तेन देहमध्ये अग्निं प्रज्वाल्य तज्ज्वालया कुण्डलिनीं प्रताप्योद्बोध्य ब्रह्मनाडीद्वारमध्यस्थतन्मुखप्रसारणेन तत्र वायुमनोवह्नीन् प्रवेशयेदित्याशयेन आह—अतिसूक्ष्मामिति। तत्र जालन्धरबन्ध उक्तः।

पैर के अंगूठे, दोनों गुल्फ, जंघाओं का मध्य भाग, जंघाओं का मूल, दोनों जानुयें, दोनों ऊरुयें, पायुमूल, देह का मध्य भाग, मेढ्र, नाभि, हृदय, कण्ठकूप, तालुमूल, नासिकामूल, अक्षिमण्डल, भौंहों का मध्य भाग एवं ललाट—ये सभी मर्मस्थान कहे गये हैं। इतने ही मर्मस्थानों में धारणा करनी चाहिये। याज्ञवल्क्य ने ही कहा है कि उपर्युक्त मर्मस्थानों में मनसा वायु को आरोपित करके धारणा करे। तदनन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते हुये प्रत्याहार का साधन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं एवं साधक का योग भी सिद्ध होता है।

प्रपञ्चसार में भी कहा है कि दोनों अंगुष्ठ, दोनों गुल्फ, दोनों जानु, गुदा, सीवनी, मेढ्र, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, नासा, भ्रूमध्य, ललाट का अग्र भाग, सुषुम्ना का अग्र भाग—ये बारह ही दूसरे शरीर में प्रवेश करने हेतु एवं पुनः अपने शरीर में आने हेतु प्राण के स्थान हैं। इन्हीं स्थानों की धारणा वायु के प्रयोग में निपुण लोग करते हैं। अंगूठे से ऊपर ऊर्ध्व आरोह में यह फल कहे गये हैं। मूर्धा से अंगुष्ठपर्यन्त अवरोहक्रम में धारणा का फल बताते हुये कहा गया है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर खींच कर वायु को जो धारण करता है, वह समस्त पापों से रहित विशुद्धात्मा होकर आकाश में चन्द्र-ताराओं की स्थितिपर्यन्त जीवित रहता है।

केवल कुम्भक-सिद्धि में प्राण और मन के स्थान विशेष हैं। प्रत्याहार के अभ्यास से धारणा सिद्धि में सुषुम्ना में प्राण और मन को प्रवेश कराना चाहिये। उसका उपाय है—मूल उड्यान जालन्धर बन्ध द्वारा शक्तिचालन से अपान को ऊपर आकुञ्चित करके देह में अग्नि प्रज्वलित करे। उसकी ज्वाला से कुण्डलिनी को तपाकर उद्बुद्ध करे। ब्रह्मनाड़ी-द्वारमध्यस्थ उसके मुख पसारने पर वहाँ वायु, मन एवं वह्नि का प्रवेश करे।

उड्याणमूलबन्धशक्तिचालनानि

उड्याणं यथा—

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्। उडियाणो ह्ययं बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी॥ इति।

मूलबन्धो यथा—

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद् गुदम्। अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो निगद्यते॥ इति।

शक्तिचालनं यथा—

सव्यासनस्थस्य फणावती सा प्रातश्च सायं प्रहरार्धमात्रम्।
प्रपूर्य सूर्यात् परिधानयुक्ता प्रदह्य नित्यं परिचालनीया॥ इति।

अतिसूक्ष्मां तन्वीं बालाग्रशत(सहस्रान्त)भागोपमां नाडीं सुषुम्नां समाश्रयेत्, अन्या नाडीरुत्सृज्य तत्रैव मनो रुन्ध्यादित्यर्थः। ततस्तयेत्यर्थः। तृतीयार्थे तसिः। तन्तुना इति प्रतियोगिनि तृतीयाश्रवणात्। सुषुम्नया प्राणान् सञ्चारयेदूर्ध्वं नयेत्। ऊर्णनाभी कीटविशेषो लूताख्यः स तन्तुना यथोर्ध्वं सञ्चरति तथा सञ्चारयेदित्यर्थः। तत इति। ततः सञ्चारानन्तरं तद्भित्त्वा इत्यग्रतनेनान्वयः। तत् पुण्डरीकं कीदृशं रक्तोत्पलवदाभासं रक्तवर्णं, नानावर्णनाडीयोगात् रक्तता। 'पुण्डरीकं सिताम्बुजे' इति कोषात्, सितत्वेऽपि औपाधिकी रक्तता ज्ञेया। पुरुषायतनं जीवनीडः महत् सर्वावभासकत्वात्। दहरं दभ्रं सूक्ष्मरूपत्वेन पुण्डरीके हृत्पद्मे दहराख्यमाकाशं वेदान्तेषु छान्दोग्यादिषु निगद्यते पठ्यते। तद्यथा—'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं 'पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वा व विजिज्ञासितव्यम्' इति। तद्भित्त्वेति, तत्पुण्डरीकमनाहताख्यं कुण्डलिनीं मनःप्राणाग्निभिर्भित्त्वा कण्ठं विशुद्धिचक्रस्थानं अर्गलां भेत्तुमायाति जीवः। तां सुषुम्नां पूरयन् व्याप्नुवन् यतः प्रयतः सावधानः 'पूरयन् दिवि' इति पाठे दिवि इति निमित्तसप्तमी, फलमपि ह्य निमित्तं भवति, दिवः प्राप्त्यर्थं ऊर्ध्वमारोहेदित्यर्थः। मनसस्त्विति मनःप्रकृतिकं क्षुरं शास्त्रनिष्णातं मन एवेत्यर्थः। सुतीक्ष्णं तर्केण घर्षणोपलेन निर्घृष्टं शाणस्थानीयया बुद्ध्या निर्मलम्। पादस्येति, ब्रह्मणः पादस्य श्रुत्यन्तरोक्तस्य पुंस्पादस्थानीयस्योपरि तदुपासनया मर्मृज्य निर्मलीकृत्य, मृजेर्यङन्तात् ल्यप् छान्दसः। ब्रह्मणः पादा यथा—'तदेतच्चतुष्पाद् ब्रह्म वाक् पादः प्राणः पादः चक्षुः पादः श्रोत्रं पादः' इत्यध्यात्मम्। अथाधिदैवतं 'अग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पादः' इत्युभयमेवादिष्टं भवति। अध्यात्मं चाधिदेवं चेति। अथवा प्रणवस्य चत्वार्यक्षराण्येव जाग्रदादिरूपाणि पादाः। 'ओमित्येतदक्षरस्य पादाश्चत्वारः' इत्यथर्वणशिखोक्तेः। तत् प्रसिद्धं रूपं भूतादिस्वरूपं नाम तद्वाचकः शब्दः तद्द्वयं ब्रह्मणो लोमस्थानीयं स्वरूपाद् बाह्यं कृन्तयेन्निवर्तयेत्, तद्विषयां वृत्तिं भूतशुद्धिमार्गेण त्यजेदित्यर्थः। इदमेव तस्य निकृन्तनं यदविषयीकरणं मनोमयत्वात्

संसारस्य मनसानुपरक्तस्य स्वरूपाभावात्। हठपक्षे उत्तरमार्गरोधकं सग्रन्थि नाडीचक्रं छिन्द्यात्। तदुक्तम्—

नासादक्षिणमार्गवाहिपवनः प्राणातिदीर्घीकृतश्चन्द्राम्भः परिपूरितामृततनुः प्राग्घण्टिकायां तदा।
छिन्द्यात् कालविशालवह्निवशतो भ्रूरन्ध्रनाडीगणान् तत्कार्यं कुरुते पुनर्नवतरं छिन्नद्रुमस्कन्धवत्॥ इति।

किं कृत्वा निकृन्तयेदत आह मन इति। मनसा उपायेन नित्यशोऽभीक्ष्णं योगं जीवात्मपरमात्मनोरैक्यं पक्षान्तरे योगमुद्योगमाश्रित्य। इन्द्रेति। कीदृशं योगं इन्द्रवज्र इवेति। तथा प्रोक्तं यथा इन्द्रो वज्रेण भेद्यं भिनत्ति, एवमयं योगश्छेद्यं वासनाजालम्। इन्द्रवज्रो विद्युत् तत्तुल्यया कुण्डलिन्या नाडीजालं च छिनत्ति। पुनः कीदृशं, मर्मणो जङ्घाया अनुकीर्तनं यस्मिन् स तं जङ्घारूपं मर्म ध्यानस्थानं यत्र कथितम्। जङ्घाग्रहणमङ्गुष्ठादेरप्युपलक्षणं तुल्यन्यायत्वात्। अङ्गुष्ठादिमूर्धान्तानां मर्मणामनुकीर्तनात्। 'मर्मजङ्घानुकर्तनं' इति पाठे यथा नापितेन क्षुरस्य तैक्ष्ण्यज्ञानाय जङ्घा अनु-कृत्यते मुण्ड्यते, तथाङ्गुष्ठादिमर्मस्थानानि नाडीमलापनुत्तये निर्मलीक्रियन्ते इत्यर्थः। तद्ध्यानेति, तच्छब्देन योग्यतावशाद् मर्म जङ्घादि गुणीभूतमपि परामृश्यते। तत् सनामकं मर्मादि धारणाभिः छिन्द्यात्। अथवा व्यवहितमपि रूपं नाम तच्छब्देन परामृश्यते, स एवार्थः। इममिन्द्रवज्रयोगं जिह्वायास्तालुमूले प्रवेशार्थं जिह्वामूलसूत्रकृन्तनरूपं हठयोगिनो वर्णयन्ति।

पेट को सिकोड़कर वायु को नाभि के ऊपर उठाने को उड्याण बन्ध कहा जाता है; यह मृत्यु को जीतने वाला होता है। पार्ष्णि भाग से योनि को पीड़ित कर गुदा को आकुञ्चित कर अपान वायु को ऊपर की ओर खींचना मूलबन्ध कहलाता है। सव्य आसन में स्थित होकर प्रातः एवं सायं आधा प्रहर तक कुण्डलिनी को सूर्य से परिधानयुक्त करते हुये तप्त कर प्रतिदिन परिचालन करना ही शक्तिचालन कहलाता है।

अति सूक्ष्म तन्वी बालाग्र शत भागोपम नाड़ी सुषुम्ना का समाश्रयण ग्रहण करे। अन्य नाड़ियों को छोड़कर उसी में मन को निरुद्ध करे। सुषुम्ना में प्राण का संचार करके उसे ऊपर ले आये। मकड़ी जैसे अपने ही देह से निकले सूते के सहारे ऊपर चढ़ती है, वैसे ही प्राण को संचरित करे। पुण्डरीक का भेदन करके ऊपर जाय। पुण्डरीक रक्तोत्पल-सदृश रक्त वर्ण का है, नाना वर्ण की नाड़ियों के योग से उसका लाल रंग है। हठयोग के पक्ष में उत्तर मार्गरोधक सग्रन्थि नाड़ी चक्र का छेदन करना चाहिये। कहा भी गया है कि नासिका के दाहिने छिद्र से प्रवाहित होने वाली वायु अर्थात् इड़ा नामक नाड़ी प्राणवायु को अत्यधिक विस्तारित करके चान्द्र जल अर्थात् अमृत से आप्लावित होकर स्वयं को अमृतमय बनाते हुये गले में स्थित घण्टिका के पूर्व स्थान पर स्थित कालरूपी विशाल वह्नि के वशीभूत होकर भ्रू-स्थित रन्ध्र में विस्तारित नाड़ी समूह को छिन्न-भिन्न करके कटी हुई शाखाओं वाले वृक्ष में पुनः प्रस्फुटित पल्लवों के समान ही शरीर को भी नूतन बना देती है। मनसा उपाय से मन का निकृन्तन करे। नित्य अभीक्ष्ण योग से जीवात्मा परमात्मा ऐक्य की भावना से करे। जैसे इन्द्रवज्र से मेद्य का भेदन करता है, वैसे ही इस योग से वासनाओं का उच्छेद करे। इन्द्रवज्र से निःसृत बिजली के समान कुण्डलिनी नाड़ी जाल को छिन्न करती है। यह इन्द्रवज्र योग जिह्वा तालुमूल में प्रवेश के लिये जिह्वा मूल के सूत्र को काटने की बात हठयोगी कहते हैं।

रसनामूले सिराबन्धच्छेदः

तदुक्तं खेचर्याम्—

तालुमूलं समुद्धृत्य सप्तवासरमात्मवित्। स्वगुरूक्तप्रकारेण मलं सर्वं विशोषयेत्॥१॥
स्नुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम्। समाधाय यतस्तेन रोममात्रं समुच्छिदेत्॥२॥
छित्त्वा सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णं तेन प्रघर्षयेत्। पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिदेत्॥३॥
एवं क्रमेण षण्मासं नित्ययुक्तः समाचरेत्। षण्मासाद्रसनामूले शिराबन्धः प्रणश्यति॥४॥ इति।

ततो दोहनमुक्तम्।

अथ वागीश्वरीं नाम शिरोवस्त्रेण वेष्टयेत्। शनैरुत्कर्षयेद्योगी कालवेलाविधानवित्॥५॥ इति।

खेचरी में कहा है कि आत्मज्ञानी सात दिनों तक तालुमूल के सभी मैल को गुरु के उपदेशानुसार साफ करे। स्नुहीपत्र के समान तेज स्निग्ध निर्मल शस्त्र लेकर रोम के बराबर जिह्वामूल के सूत्र को काटे। काटने के बाद उसमें सैन्धव चूर्ण मले। फिर सात दिनों के बाद रोममात्र काटे। इस क्रम से छः महीनों में जिह्वामूल के सूत्र का छेदन हो जाता है। इसके बाद दोहन करे। शिर को वागीश्वरी नामक वस्त्र से वेष्टित करे।

ब्रह्मार्गलप्रवेशफलम्

प्रवेशोऽप्युक्तः—

यदा त्वबाह्यमार्गेण जिह्वा ब्रह्मबिलं विशेत्। तदा ब्रह्मार्गलं देवि दुर्भेद्यं त्रिदशैरपि॥६॥
अङ्गुल्यग्रेण संघृष्य जिह्वां तत्र प्रवेशयेत्। इति।

ततो जिह्वया मथनाभ्यासात् फलमप्युक्तम्—

एवं द्वादशवर्षान्ते संसिद्धिः परमेश्वरि। शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्माविभेदतः॥ इति।

स हठतरः पन्थाः। ऊरोरिति। ऊरुग्रहणमुत्तरोत्तरस्थानोपलक्षणम्, ऊरोर्मध्ये समनस्कं प्राणं संस्थाप्य मर्मणः प्राणस्य च विमोचनं कर्तव्यम्। 'अस्मिन् मर्मण्यहं स्थितः' इत्यभिमानं त्यक्त्वा निरालम्बस्तिष्ठेदित्यर्थः। एवं स्थानान्तरेष्वप्यूह्यम्। अथवा सर्वत्रावच्छेदेन व्यवधायकं नाड्यादि विदार्य स्थानात् स्थानान्तरे गमनं च। चतुरिति, ऊरोरुत्तरेषु चतुर्षु गुदशिश्ननाभिहृदयस्थानेषु अभ्यासयोगेन नामरूपमर्मप्राणान् छिन्देत्। अथवा चतुर्वारं चतुरावृत्त्या प्रातर्मध्याह्ने सायं निशीथे च सर्वेषु स्थानेषु अभ्यासयोगेन। नन्वेवं छेदने देहाभिमानत्यागेन देहपातः स्यादत आह— अनभिशङ्कित इति। अयं भावः—न ह्यभिमानत्यागेन देहपातो भवति, सुषुप्त्यादिषु तथादर्शनात्। ध्यानिनां चिरकालं देहावस्थानस्मृतेश्च। न वा चक्रादिभेदेनेत्यपि सा शङ्केति। तत इति, तदनन्तरं योगी कण्ठान्तरे कण्ठमध्ये नाडीसञ्चयं समूहन् सङ्गीकुर्वन् छिन्देदित्यनुषङ्गः। कियन्त्यो नाड्यः सन्तीत्यपेक्षायां मध्यमसंख्यामाह—एकेति। वरा उत्तमाः। इडा रक्षत्वेति। इडा वामेन पिङ्गला दक्षिणेन इत्येवं वक्तव्ये रक्षतु-शब्दप्रयोगः शिष्याणामाशिषे विद्यासंप्रदायोच्छेदो मा भूदिति। वरं स्थानं सुषुम्नाख्यं, तं तदधिष्ठातारं पुंलिङ्गनिर्देशात्। किं तत् स्थानं कश्च तदधिष्ठाता इत्यपेक्षायामाह— सुषुम्ना त्विति। परे परपुरुषे ब्रह्मणि लीना विरजा निर्मला ब्रह्मरूपिणी ब्रह्मस्थानत्वात् सुषुम्नैव वरं स्थानं पर एव तदधिष्ठाता इत्यर्थः। कथंभूता सुषुम्ना, नाडीषु मध्ये द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीः प्रति तैतिलमुच्छीर्षं गण्डुकम्। यथा गण्डुकाधारे उत्तमाङ्गं तिष्ठति एवं सुषुम्नाधारे सर्वा नाड्यः स्थिता इत्यर्थः। 'तैतिलो गण्डुके प्रोक्तस्तैतिलं कर-णान्तरे' इति विश्वः। छिद्यते इति। ध्यानयोगेन ताश्छिद्यन्ते, तासां छिन्नत्वादुच्चावचदेशेषु उत्क्रान्तौ जीवस्य गमनं भवतीत्यर्थः। यदुक्तम्—'तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङन्या उत्क्रमणे भवन्ति' इति। एका सुषुम्ना न छिद्यते, तस्याः परमसूक्ष्मत्वेन मनोविषयत्वायोग्यत्वात् मनोविषयस्यैव योगेन च्छेद्यत्वात् ऋजुतयाऽप्रतिद्वन्द्वित्वाच्च। योगनिर्मलेति, योग एव निर्मला धारा यस्य तेन क्षुरेण मनसा अनलवर्चसा पादस्योपरि मृ(घृ)ष्टत्वान्निर्मले तेजसा नाडीशतं छिन्देत्। तासां च्छेदे तत्प्रभूतस्य द्वासप्ततिसहस्रस्यापि छेद सिद्धः। धीरो धीमान्, प्रभावाद्योगसामर्थ्यात्, इहजन्मनि मनुष्यशरीरे। तैतिलेन सुषुम्नायाः सादृश्यान्तरमाह—जातीपुष्पेति। जाती मालती तस्याः पुष्पाणां समायोगैः संयोगैः कृत्वा यथा प्रसाधकास्तैतिकं गण्डुकं वास्यन्ति वासेन परिमलेन युक्तं कुर्वन्ति एवं सा नाडी शुभाशुभैर्भावैर्वास्यते इति विपरिणामः। पुष्पाधिवासाश्रयो यथा गण्डुकं भवति तथेयं नाडी वासनाश्रय इत्यर्थः। तर्हि किं कार्यमत आह— तामिति। चिन्तनफलमाह—तदिति। प्रपद्यन्ते संपद्यन्ते। तत इति, विदितं चित्तं येन स विदितचित्तः। मात्राधारेण मात्रा द्वादशादिसंख्या प्रणवमात्रास्ता एव धारा मनः क्षुरस्य स तथा, तन्तु वासनारूपं नाडीरूपं च। द्विरुक्तिर्निश्चयार्थः। समाप्त्यर्थ इतिशब्दः।

कालवेला विधान से योगी धीरे-धीरे जीभ का दोहन करे। जब बाह्य मार्ग से जीभ ब्रह्मबिल में प्रवेश करता है तब देवताओं से भी दुर्भेद्य ब्रह्म अर्गला को अंगुल्यग्र से घर्षित करके जीभ को प्रवेश करावे। इस प्रकार का अभ्यास बारह वर्षों तक करने से सिद्धि मिलती है। तब साधक अपने ही शरीर में सारे संसार को अपने से अभिन्न रूप में देखता हैं।

उत्क्रान्तिविधिः

अयमारोहप्रकार उत्क्रान्तिसमये खेचरीपटले उक्तः, यथा—

यदा तु योगिनो बुद्धिस्त्यक्तुं देहमिमं भवेत्। तदा स्थिरासनो भूत्वा मूलाच्छक्तिं समुज्ज्वलाम् ॥१॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां भावयेच्चिरमात्मनः। आपादतलपर्यन्तं प्रसृतं जीवमात्मनः ॥२॥
संहृत्य क्रमयोगेन मूलाधारपदं नयेत्। तत्र कुण्डलिनीं शक्तिं संवर्तानलसंनिभाम् ॥३॥
जीवं निजं चेन्द्रियाणि ग्रसन्तीं चिन्तयेद्धिया। संप्राप्य कुम्भकावस्थां तडिज्ज्वलनभास्वराम् ॥४॥
मूलाधाराद् यतिर्देवि स्वाधिष्ठानपदं नयेत्। तत्रस्थं जीवमखिलं ग्रसन्तीं चिन्तयेद् व्रती ॥५॥
तडित्कोटिप्रतीकाशां तस्मादुन्नीय सत्वरम्। मणिपूरपदं प्राप्य तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥६॥
तत्र स्थित्वा क्षणं देवि पूर्ववद्योगमार्गवित्। अनाहतं नयेद्योगी तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥७॥
ततो विशुद्धावानीय कुण्डलीं पूर्ववच्चरेत्। उन्नीय तस्माद् भ्रूमध्ये नीरक्षीरं ग्रसेत्पुनः ॥८॥
ग्रस्तं क्षीरं महाशक्त्या कोटिसूर्यसमप्रभम्। मनसा सह वागीश्या भित्त्वा ब्रह्मार्गलं क्षणात् ॥९॥
परामृतमहाम्भोधौ विश्रान्तिं तत्र कारयेत्। तत्रस्थं परमं देवं शिवं परमकारणम् ॥१०॥
शक्त्या सह समायोज्य तयोरैक्यं विभावयेत्। इति।

खेचरी पटल में कहा गया है कि जब योगियों का शरीर बुद्धिरहित हो जाता है तब आसन स्थिर होता है। तब मूल शक्ति कुण्डलिनी करोड़ सूर्य के समान प्रकाशमान होकर चित्त और आत्मा को आलोकित करती है। आपाद तल तक फैले जीवात्मा को समेट कर क्रम से पैरों से मूलाधार में ले आये। वहाँ कुण्डलिनी संवर्त अग्नि के समान प्रज्ज्वलित होकर अपने जीव इन्द्रियों को ग्रसित कर रही है—ऐसी भावना करे। कुम्भकावस्था में विद्युत् के समान चमकती कुण्डलिनी को योगी स्वाधिष्ठान में ले आये। वहाँ पर चिन्तन करे कि कुण्डलिनी ने सबों का ग्रास कर लिया। करोड़ बिजली के समान प्रकाशित उसे मणिपूर में ले आये। वहाँ पर भी पूर्ववत् भावना करे। वहाँ क्षण भर स्थित होकर पूर्ववत् उद्योग मार्गवित् योगी उसे अनाहत में ले आये। वहाँ पर भी वैसा ही आचरण करके कुण्डलिनी को विशुद्धि में ले आये। वहाँ से उसे आज्ञाचक्र में ले आये। वहाँ वह नीर-क्षीर का ग्रसन करती है। क्षीर पीने के बाद कोटि सूर्य के समान प्रभा वाली महाशक्ति वागीश्वरी का भेदन करके ब्रह्म अर्गला का भेदन करती है। तब वह परामृत महासागर में विश्रान्त होती है। वहाँ पर स्थित परम देव शिव परमकारण के साथ शक्ति को मिलाकर उनके ऐक्य की भावना करे।

कालवञ्चनप्रकारः

ज्ञातमुत्क्रान्तिकालं वञ्चयित्वा यदि जीवितुमिच्छेत् तदावरोहं कुर्यात्, इत्यपि तत्रोक्तम्। तद्यथा—

यदि वञ्चितुमुद्युक्तः कालं कालविभागवित्। कालस्तु यावद्व्रजति तावत्तत्र सुखं वसेत् ॥१॥
ब्रह्मद्वारार्गलस्याधो देहं कालप्रयोजनम्। तस्मादूर्ध्वं पदं देयं नहि कालप्रयोजनम् ॥२॥
यदा देव्यात्मनः कालमतिक्रान्तं प्रपश्यति। तदा ब्रह्मार्गलं भित्त्वा शक्तिं मूलपदं नयेत् ॥३॥
शक्तिदेहप्रसूतं तु स्वजीवं चेन्द्रियैः सह। तत्तत्कर्मणि संयोज्य स्वस्थदेहः सुखं व्रजेत् ॥४॥
अनेन देवि योगेन वञ्चयेत् कालमागतम्। इति।

अत्रारोहावरोहाभ्यास एव योगशास्त्रेषु मुख्यो योग इति द्रष्टव्यम्। स चात्र प्रकाशितः।

ज्ञात उत्क्रान्ति काल को वंचित करके यदि जीवित रहने की इच्छा हो तो अवरोहण कराना चाहिये। यदि जीने की

इच्छा हो तो बाल विभागवित् काल के रहने तक वहाँ सुख से रहे। ब्रह्मद्वार अर्गला के नीचे देह काल से प्रभावित होता है; इसलिये काल नहीं चाहता कि उससे ऊपर कोई जाय। यदि देव्यात्मा काल को अतिक्रमित देखता है तब ब्रह्म अर्गला को भेदकर शक्ति को मूलाधार में ले आये। शक्ति देहप्रसूत अपने जीव को इन्द्रियों सहित अपने-अपने कर्मों में लगा दे। स्वस्थ देह में सुखपूर्वक जीवित रहे। इस योग से आगत काल से बचा जा सकता है। यहाँ आरोह-अवरोह का अभ्यास योगशास्त्रों के मुख्य योग में देखना चाहिये।

पञ्चाशद्बुद्धिभेदनिर्णय:

अत्र पञ्चाशद्दलगामिनि चित्ते पञ्चाशद्बुद्धयो जायन्ते। तदुक्तमध्यात्मविवेके—

गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधारं तु चतुर्दलम्। परम: सहजस्तद्वदानन्दो वीरपूर्वक: ॥१॥
योगानन्दश्च तस्य स्यादीशानादिदले फलम्। स्वाधिष्ठानं लिङ्गमूलं षट्पत्रं चक्रमस्य तु ॥२॥
पूर्वादिषु दलेष्वाहु: फलान्येतान्यनुक्रमात्। प्रश्रय: क्रूरता गर्वनाशो मूर्छा तत: परम् ॥३॥
अवज्ञानमविश्वासो जीवस्य चरतो ध्रुवम्। नाभौ दशदलं पद्मं मणिपूरकसंज्ञकम् ॥४॥
सुषुप्तिरत्र तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता पुन:। लज्जा भयं घृणा मोह: क्रुधिताथ विषादिता ॥५॥
हृदयेऽनाहतं चक्रं दलैर्द्वादशभिर्युतम्। लौल्यप्रणाश: कपट: वितर्कोऽप्यनुतापिता ॥६॥
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा समता तत:। क्रमेण दम्भो वैकल्यविवेको हुंकृतिस्तथा ॥७॥
फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो विदु:। कण्ठेऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धि: षोडशच्छदम् ॥८॥
तत्र प्रणव उद्गीथो हुंफट्वौषट्वषट्सुधा। स्वाहा नमोऽमृतं सप्त स्वरा: षड्जादयो मता: ॥९॥
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश। इति।

षोडशच्छदे त्वन्यत्र विशेष उक्त:—

कृपा क्षमार्जवं धैर्यं वैराग्यं च धृतिस्तथा। हास्यं रोमाञ्चनिश्चयौ ध्यानं सुस्थिरता तथा ॥१०॥
गाम्भीर्यमुद्यमं सत्त्वं चौदार्यैकाग्रता तथा। एते पूर्वादिपत्रेषु गुणा:.................. ॥११॥ इति।

'तत्त्वम्पदार्थविभासो द्रष्टव्यो द्विदले पुन:' इति। अत्र वायोरुत्थापनं तु आधारस्वाधिष्ठानयोरन्तरेऽग्निकुण्डं तन्मूले मनो दद्यात्। यत्र यत्र मनस्तत्र तत्र प्राण आयाति। प्राणवायुयोगेनाग्निर्दीप्यते स चोर्ध्वज्वलनस्वभाव:। तस्मिंश्च ज्वालिते वायुरूर्ध्वं गच्छति तत: षट्चक्रभेदो भवति। स्वाधिष्ठानं लिङ्गचक्रं त्रि:प्रदक्षिणीकृत्य त्रिरावृत्त्या, तत्र कुण्डलिनीमिति अत एव वचनादनुमीयते।

अध्यात्मविवेक में पचास दलगामिनी पचास बुद्धियाँ इस प्रकार कही गई हैं—गुदा-लिङ्ग के मध्य में चार दल वाला मूलाधार चक्र है। वहाँ पर परम सहज आनन्द हैं। वीर साधक का योगानन्द ईशानादि दल का फल है। लिङ्गमूल में षड्दल चक्र स्वाधिष्ठान है। इसके पूर्वादि दल से अग्रलिखित फल मिलते हैं। इससे क्रूरता, गर्वनाश, प्रश्रय, मूर्छा, अवज्ञान, अविश्वास में जीव फँसता है। नाभि में दशदल पद्म का नाम मणिपूर है। इससे नींद, तृष्णा, ईर्ष्या, पिशुनता, लज्जा, भय, घृणा, मोह, क्रोध और विषाद होते हैं। हृदय में द्वादशदल वाला अनाहत चक्र है। यहाँ से लौल्य का प्रणाश, कपट, वितर्क, अनुताप, आशा, प्रकाश, चिन्ता, समीहा, समता, दम्भ, विवेक, वैकल्य, हुंकृति आदि गुण संचारित होते हैं। इसके फल पूर्वादि दलों से प्रारम्भ होते हैं। कण्ठ में सरस्वती का स्थान षोडश दल विशुद्धि चक्र है। वहाँ प्रणव, उद्गीथ, हुं, फट्, वौषट्, वषट्, स्वाहा, स्वधा, नम: अमृत, सप्तस्वर, षड्जादि उत्पन्न होते हैं।

षोडश दल के बारे में अन्यत्र भी कहा गया है कि कृपा, क्षमा, आर्जव, धैर्य, वैराग्य, धृति, हास्य, रोमांच, निश्चय, ध्यान, स्थिरता, गाम्भीर्य, उद्यम, सत्व, औदार्य, एकाग्रता—ये पूर्वादि पत्रों के गुण हैं।

यहाँ पर वायु का उत्थापन के लिये मूलाधार स्वाधिष्ठान के बीच में अग्नि कुण्ड के मूल में मन लगाना चाहिये। जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ प्राण जाता हैं। प्राण वायु के योग से अग्नि प्रदीप्त होती है, इसका उर्ध्व ज्वलन स्वभाव है। इसलिये ज्वलित वायु जब ऊपर उठती है तब षट्चक्रों का भेदन होता है। स्वाधिष्ठान लिंग चक्र को तीन प्रदक्षिणा करके तीन आवृत्ति में घेर कर कुण्डलिनी रहती है।

वेधमयी दीक्षा

तदुक्तं दीक्षापटले—

तत्र वेधमयीं दीक्षां वक्ष्ये संसारमोचनीम्। ध्यायेच्छिष्यतनोर्मध्ये मूलाधारे चतुर्दले ॥१॥
त्रिकोणमध्ये विमले तेजस्त्रयविजृम्भिते। वलयत्रयसंयुक्तां तडित्कोटिसमप्रभाम् ॥२॥
शिवशक्तिमयीं देवीं चेतनामात्रविग्रहाम्। सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरां शक्तिं भित्त्वा षट्चक्रमञ्जसा ॥३॥
गच्छन्तीं मध्यमार्गेण दिव्यां परशिवावधि। वादिसान्तदलस्थार्णान् संहरेत्कमलासन ॥४॥

इत्यादिकुण्डल्यनुसारेण वायोरपि चोर्ध्वं गच्छतस्त्रिः परिवृत्तिः। मणिपूरकं नाभिचक्रं गत्वा प्राप्य, अनाहतं हृच्चक्रं तदप्यतिक्रम्य, विशुद्धौ कण्ठप्रदेशे प्राणान् वायून्निरुध्याज्ञामाज्ञाचक्रं भ्रूमध्यवर्त्यनुध्यायेन् अथो नादं ध्यायन्। कीदृशम् आधारमारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं प्रतीयमानं तथोज्ज्वलं, स वै नादः ब्रह्म प्राणात्मा परमात्मैवेति। ते प्राणाः षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकाः प्राक्प्रोक्ताः। ग्रन्थान्तरेषु तु षडुत्तरषट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकाः (२१६०६) इत्यङ्कतः। अन्यत्र ग्रन्थेषु 'अशीतिः षट्शतं चैव सहस्राणि त्रयोदश। लक्षं चैकं च निश्वासा अहोरात्रप्रमाणतः' इति संख्याभेद उक्तः। अङ्कतः (११३६८०) भवन्ति।

दीक्षा पटल में कहा गया है कि अब वेधमयी दीक्षा को कहता हूँ, जो भवमोचनी है। शिष्य के शरीर का चतुर्दल मूलाधार रूप में ध्यान करे। विमल त्रिकोण मध्य में तीन वलय के तेज से युक्त करोड़ बिजली के समान प्रकाशित शिव-शक्तिमयी देवी यहाँ पर चेतनामात्र विग्रह है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर शक्ति षट्चक्रों का भेदन करती हुई मध्य मार्ग से परशिव तक जाती है। मूलाधार के दलों में व श ष स वर्ण से कमलासन को संहत कर लेती है।

कुण्डलिनी के अनुसार वायु भी तीन परिवृत्ति में ऊपर जाता है। नाभि का मणिपूर हृदय का अनाहत, चक्र कण्ठ का विशुद्धि चक्र को भेदन करते हुए भ्रूमध्य के आज्ञा चक्र में आता है। वहाँ नाद का अनुसन्धान करना चाहिये। मूलाधार से चलकर ब्रह्मरन्ध्र तक नाद उज्ज्वल प्रतीत होता है। वह नाद ही ब्रह्म, प्राणात्मा या परमात्मा है। उन प्राणों की संख्या इक्कीस हजार छः सौ है। ग्रन्थान्तर में इनकी संख्या २१६०६ कही गई है। अन्यत्र ग्रन्थों में इनकी संख्या ११३६८० रात-दिन के भेद से होती है।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि उच्छ्वास और निःश्वास में दो अक्षर 'हंस' है। उनमें प्राण हंस नाम से आत्मा के आकार में रहता है। नाभि में उच्छ्वास और हृदय के आगे निःश्वास व्यवस्थित रहता है।

निःश्वाससंख्याभेदः

तन्त्रान्तरे तु—

उच्छ्वासे चैव निःश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम्। तस्मात्प्राणस्तु हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः ॥१॥
नाभेरुच्छ्वासनिःश्वासा हृदयाग्रे व्यवस्थिताः। इति।

गुदं पायुमवष्टभ्य रुद्ध्वा आधारान्मूलाधारचक्राद्वायुं प्राणाख्यमुत्थाप्योर्ध्वमवष्टभ्य, अवष्टम्भनोपायो योगियाज्ञवल्क्येनोक्तः—

दक्षिणेतरगुल्फेन सीवनीं पीडयेद् दृढम्। अधस्तादण्डयोः सूक्ष्मां सव्योपरि च दक्षिणः ॥१॥
जङ्घोर्वोरन्तरं योगी निश्छिद्रं बन्धयेद् दृढम्। समग्रीवशिरःस्कन्धः समपृष्ठः समोदरः ॥२॥
इत्यादि। अत्र कादिमतोक्तश्वासक्रमोऽग्रे वक्ष्यते।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे एकविंशः श्वासः॥२१॥

●

गुदा और लिङ्ग को रुद्ध करके मूलाधार चक्र से वायु को प्राणरूप में उठाकर ऊपर निरुद्ध करे। योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार अवष्टम्भन का उपाय इस प्रकार है—दाँयें-बाँयें गुल्फों से सीवनी को दृढ़ता से दबाये। बाँयें गुल्फ पर दाँयाँ गुल्फ रखे। जांघों और उरुओं को निश्छिद्र दृढ़ बाँधे। ग्रीवा, शिर, कन्धा, पीठ, उदर को सीधा रखे।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में एकविंश श्वास पूर्ण हुआ

●

अथ द्वाविंशः श्वासः

रमामन्त्रोद्धारः

अथ लक्ष्म्यादिमन्त्राणामुद्धारप्रयोगविधिः। कूर्मपुराणे—

श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्। अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

अथोच्यते रमामन्त्रा लक्ष्मीसौभाग्यदा भृशम्। दुर्गत्युद्धारणे शक्तास्त्रिवर्गफलदायकाः ॥१॥
संवर्ताद्वामतः षष्ठं व्योमसप्तमसंयुतम्। तुरीयस्वरचन्द्रार्धकलानादाद्यधिष्ठितम् ॥२॥
एकाक्षरो रमामन्त्रो मनोरथसुरद्रुमः। इति।

संवर्तात् क्षकाराद्वामतो विलोमेन षष्ठं शकारः, व्योमसप्तमोऽपि तथैव, तेन रेफस्तद्युक्तं, तुरीयस्वरः ई, चन्द्रार्धकला अर्धचन्द्रः, नादो बिन्दुः, तेन श्रीं बीजमुक्तम्। तथा—

भृगुरस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दश्चास्य निचृन्मतम्। देवता गदिता लक्ष्मीर्भोगमोक्षफलप्रदा ॥३॥
द्विसव्यनेत्रकर्णेन मन्वन्तस्वरसंयुता। मन्त्रेणैव षडङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥४॥

सव्यनेत्र ईकारः, कर्ण ऊ, कर्णस्यापि सव्यत्वं समासात्। इनो द्वादशस्वरः, मनुश्चतुर्दशस्वरः, अन्त्यो विसर्गः, एतेन श्रांश्रींश्रूंश्रैंश्रौंश्रः इति षडङ्गमन्त्रा उक्ताः।

लक्ष्मी आदि के मन्त्रों का उद्धार एवं प्रयोग विधि—कूर्मपुराण में कहा गया है कि भगवान् की पत्नी का अर्चन करने पर विपुल श्री, पुष्टि, मेधा, यश और बल प्राप्त होता है; इसलिये लक्ष्मी का अर्चन करना चाहिये।

सारसंग्रह में कहा गया है कि अब लक्ष्मी-सौभाग्य देने वाली रमा के मन्त्रों को कहता हूँ। यह दुर्गति से उद्धार करने वाला एवं धर्म, अर्थ और काम को देने वाला है। श्लोक २ के उद्धार करने पर यह एकाक्षर मन्त्र 'श्रीं' है। इसके ऋषि भृगु, छन्द निचृद, देवता भोग-मोक्ष फलप्रदा लक्ष्मी हैं। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से इसका षडंग न्यास किया जाता है।

रमाध्यानम्

ध्यानम्—

पद्मारूढा नवकनकरुक् पद्मयुग्माभयेष्टप्रोद्यद्धस्ता हिमगिरिनिभैर्वेदसंख्यैरिभेन्द्रैः।
हस्तोत्क्षिप्तामृतभृतघटैः सिच्यमानाङ्गयष्टिर्भूयाद्भूत्यै रुचिरमुकुटा क्षौमवस्त्राब्जनेत्रा ॥

दक्षाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वकरद्वयाम्। दक्षिणाभयहस्तां तां वामहस्तवरप्रदाम् ॥

रमा का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

पद्मारूढ़ा नवकनकरुक् पद्मयुग्माभयेष्टप्रोद्यद्धस्ता हिमगिरिनिभैर्वेदसंख्यैरिभेन्द्रैः।
हस्तोत्क्षिप्तामृतघटैः सिच्यमानांगयष्टिर्भूयाभृतत्यै रुचिरमुकुटा क्षौमवस्त्राब्जनेत्रा।।
चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वकरद्वयाम्। दक्षिणाभयहस्तां तां वामहस्तवरप्रदाम्।।

तद्यन्त्रयजनादिप्रयोगः

इति नारायणीयवचनात्। हिमगिरिनिभैरिति श्वैत्यमुक्तं, 'शुभ्राभ्राभेभ' इति दक्षिणामूर्तिवचनात्। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं बहिर्भूबिम्बमालिखेत्। मध्ये बीजं विनिक्षिप्य नव शक्तीः समर्चयेत्॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्। चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरस्रत्रयावृतम्॥१॥

इति पूजाचक्रमुद्धृतम्। तत्रैव—

धर्मादिकल्पिते पीठे नवशक्तिसमन्विते। रमामावाह्य गन्धाद्यैर्यजेत् साधकसत्तमः॥२॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

विभूतिरुन्नतिः कान्तिर्हृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः। व्युष्टिरुत्कृष्टिर्ऋद्धिश्च वसुदिक्षु प्रपूजयेत्॥१॥
मध्ये सिंहासनं पूज्यं सर्वशक्तिमयं प्रिये। इति।

शारदातिलके—

बीजाद्यमासनं दद्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्। सर्वशक्तिप्रदं प्रोक्त्वा ङेन्तञ्च कमलासनम्॥१॥
नम इत्यासनं पूज्यं तत्तद्बीजादिकं शिवम्। इति।

तेन बीजानन्तरं 'सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति पीठमन्त्रो ज्ञेयः। तदुक्तम्—

सर्वशक्तिपदं प्रोक्त्वा ङेऽन्तं च कमलासनम्। नम इत्यासनं पूज्यं तत्तद्बीजादिकं शिवे॥१॥ इति।

पद्मपादाचार्यास्तु—'श्रींश्रीदेव्यासनाय नमः श्रींश्रीदेवीमूर्तये नमः' इत्याहुः। सनत्कुमारः—
संकल्प्याम्भोरुहं शुभ्रं कर्णिकायां यजेच्छ्रियम्। इति।

सारसंग्रहे—

तस्मिन् पीठे समावाह्य देवीं गन्धादिभिर्यजेत्। पुराङ्गानि समभ्यर्च्य वासुदेवादिमूर्तिभिः॥१॥
इभैर्निधियुगेनान्या बलाकाद्याभिरीरिता। लोकेशैरपरावृत्तिस्तदस्त्रैश्च परा स्मृता॥२॥
बलाका विमला चैव कमला वनमालिका। विभीषिका मालिका च शांकरी वसुमालिका॥३॥
पङ्कजद्वयहस्तास्ता मुक्ताहारसमप्रभाः। अनेन विधिना मन्त्री मन्त्रमेतं भजेत्तु यः॥४॥
वस्वन्नसंकुलां लक्ष्मीं स प्राप्नोत्यचिराद् ध्रुवम्।

अत्र वासुदेवादिपद्मनिध्यन्तं द्वितीयावरणम्, 'मूर्तीभचतुष्कनिधियुगैरपरा' (प्रपञ्चसारे १२.१०) इत्याचार्योक्तेः। यत्तु 'आग्नेयादिषु पत्रेषु गुग्गुलुश्च कुरण्टकः। दमकः सलिलश्च' इति नारायणीयवचनं तत्प्रकृतदिक्परम्।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि भृगुऋषये नमः। मुखे निचृच्छन्दसे नमः। हृदि श्रियै देवतायै नमः। गुह्ये शं बीजाय नमः। पादयोः ईं शक्तये नमः। नाभौ रं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्, श्रैं कवचाय हुं, श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, श्रः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयावृतमष्टदलद्वयमर्चापीठं निर्माय, प्राग्वत् पुरतो निधायार्घ्यस्थापनादिपरतत्त्वार्चान्ते, ॐ विभूत्यै नमः, रत्यै नमः, कान्त्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, कीर्त्यै नमः, संनत्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्ट्यै नमः, मध्ये ऋद्ध्यैः नमः, इति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन पीठशक्तीः संपूज्य, श्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः, इति समस्तपीठं संपूज्यावाहनाद्यङ्गपूजान्तेऽन्तरालाष्टदले देव्यग्रादिचतुर्दलेषु—ॐ वासुदेवाय नमः, सङ्कर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः, इति संपूज्याग्नेयादिविदिक्षु दमकाय नमः, सलिलाय नमः, गुग्गुलवे नमः, कुरुण्टकाय नमः, इति संपूज्य, देवीदक्षिणदलाग्रे ॐ शङ्खनिधये नमः, वामदलाग्रे ॐ पद्मनिधये नमः, इति संपूज्य, द्वितीयाष्टदले— ॐ बलाकायै नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ कमलायै नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ विभीषिकायै नमः, ॐ

मालिकायै नमः, ॐ शाङ्कर्यै नमः, ॐ वसुमालिकायै नमः, इति संपूज्य लोकपालार्चादि सर्वं समापयेत् इति। तथा—

जपेद्भास्करलक्षं च तत्सहस्रं हुनेत्ततः। पद्मैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैस्तिलैर्वा श्रीफलैरथ ॥५॥
त्रिभिर्वा मधुराक्तैश्च जुहुयाद्विजितेन्द्रियः। तर्पणादि ततः कुर्याद् द्विजार्चान्तं प्रसन्नधीः ॥६॥ इति।

भास्करलक्षं द्वादशलक्षम्। तत्सहस्रमित्युक्तेर्दशांशो होमः। बैल्वैः समिद्वरैरित्याचार्यचरणाः। त्रिभिरिति एकैकेन सहस्रचतुष्टयं न तु मिलितैस्तेषां तु द्रव्यान्तरत्वेन त्रिभिर्होमासंभवादिति। तदुक्तं भट्टचरणैः—नैवं व्रीहिभिरिष्टं स्याद्यवैर्न च यथाश्रुतैः। मिश्रैरिज्येत चेदिति 'मिश्राणां विध्यदर्शना'दिति च, तर्हि त्रिमधुराक्तं विरुद्धमिति चेत् न 'सर्वं त्रिमधुरोपेतं होमद्रव्यमुदाहृतम्' इति वचनात् तद्योगस्य पशुपुरोडाशावदानानामुपस्तरणाभिघाराज्ययोगवदविरुद्धत्वादिति।

रमा-यन्त्र—दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि अष्टदल कमल बनाकर बाहर भूपुर बनावे। मध्य में बीज लिखकर नव शक्तियों का पूजन करे। सारसंग्रह में कहा गया है कि उज्ज्वल कर्णिका और केसर से युक्त दो अष्टदल कमल बनाकर बाहर चार द्वारयुक्त तीन भूपुर बनावे। धर्मादि कल्पित नव शक्ति समन्वित पीठ में रमा का आवाहन करके गन्धादि से पूजन करे।

दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि आठ दिशाओं के दलों में विभूति, उन्नति, कान्ति, हृष्टि, कीर्ति, सन्नति, व्युष्टि, उत्कृष्टि और ऋद्धि की पूजा करके मध्य में सिंहासन पर सर्वशक्तिमयी की पूजा करे।

शारदातिलक में कहा गया है कि आद्य बीज से आसन देकर मूल से मूर्ति की कल्पना करे। सर्वशक्तिकमलासनाय नमः से पीठपूजा करे। पद्मपादाचार्य के अनुसार पीठपूजन का मन्त्र है—श्रीं श्रीदेव्यासनाय नमः श्रीं श्रीदेवीमूर्तये नमः। सनत्कुमार में कहा गया है कि संकल्प करके शुभ्र कमलकर्णिका में श्री का पूजन करे।

सारसंग्रह में कहा गया है कि उस पीठ में देवी का पूजन गन्धादि से करे। पहले षडङ्ग पूजन करे, तब वासुदेवादि मूर्तियों का पूजन करे। तब ऐरावत, निधि, अन्य बलाकादि, लोकपालों एवं उनके अस्त्रों का पूजन करे। आठ शक्तियाँ हैं—बलाका, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, कालिका, शाङ्करी एवं वसुमालिका। शक्तियों के हाथों में दो-दो कमल हैं। ये मुक्ताहार के समान प्रभा वाली हैं। इस विधि से साधक जब इस मन्त्र का जप करता है तो उसे वस्त्र, अन्न से सुशोभित लक्ष्मी की प्राप्ति अल्प काल में होती है।

प्रयोग प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक करने के पश्चात् मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि भृगुऋषये नमः, मुखे निचृच्छन्दसे नमः, हृदि श्रियै देवतायै नमः, गुह्ये शं बीजाय नमः, पादयोः ईं शक्तये नमः, नाभौ रं कीलकाय नमः। इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करके पूर्ववत् विनियोग बोलकर हृदयादि षडङ्ग न्यास इस प्रकार करे—श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्, श्रैं कवचाय हुं, श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, श्रः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करके पूर्ववत् ध्यान करने के पश्चात् मानस पूजन कर अर्चापीठ को अपने सामने बनाकर उसपर अर्घ्यस्थापन आदि करके अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पीठ शक्तियाँ का पूजन इस प्रकार करे—ॐ विभूत्यै नमः, रत्यै नमः, कान्त्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, कीर्त्यै नमः, संनत्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्ट्यै नमः, मध्ये ऋद्ध्यैः नमः। 'श्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से समस्त पीठ का पूजन कर आवाहन-अंगपूजन आदि करके भीतरी अष्टदल में देवी के आगे से चारो दलों में इस प्रकार पूजन करे—ॐ वासुदेवाय नमः, सङ्कर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः। आग्नेयादि कोणों में दमकाय नमः, सलिलाय नमः, गुग्गुलवे नमः, कुरुण्टकाय नमः, से पूजन कर देवी के दाहिने दलों में ॐ शङ्खनिधये नमः, वामदलाग्रे ॐ पद्मनिधये नमः, से पूजन कर द्वितीय अष्टदल में—ॐ बलाकायै नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ कमलायै नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ विभीषिकायै नमः, ॐ मालिकायै नमः, ॐ शाङ्कर्यै नमः, ॐ वसुमालिकायै नमः, से पूजन कर लोक पालों का अर्चन कर पूजा का समापन करे।

मन्त्र का बारह लाख जप करे। उसका दशांश बारह हजार हवन त्रिमधुरयुक्त कमल या तिल या श्रीफल से या तीनों को मिलाकर करे। इसके बाद तर्पण करे।

विनियोगफलम्

ततः सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेन्निजवाञ्छितम्। वक्षोजदध्ने पयसि तिष्ठन्नर्कगतां श्रियम्॥७॥
संस्मृत्य मनुमेनं च जपेल्लक्षत्रयावधि। सोऽचिरेणैव कालेन दारिद्र्यान्मुच्यते नरः॥८॥
मधुसूदनगेहस्थबिल्वाध उपविश्य च। त्रिलक्षं प्रजपेन्मन्त्री वत्सराद्वाञ्छितप्रदः॥९॥
अधिकं वसुसंघातं लभते नान्यथाचिरात्। अशोकेध्मचिते वह्नौ सघृतैस्तण्डुलैर्हुनेत्॥१०॥
मन्त्री त्रिभुवनं सर्वं वशयत्येव नान्यथा। खादिरैः शकलैः सम्यगेधितेऽग्नौ यथाविधि॥११॥
तण्डुलैस्त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः। तेन राजकुलं वश्यं धनदादर्थवान् भवेत्॥१२॥
अर्कवह्नौ हुनेन्मन्त्री सुशुद्धैः शालितण्डुलैः। नियुतं राज्यलक्ष्मीं च राजपुत्रो लभेद् ध्रुवम्॥१३॥
त्रिस्वादुयुक्तैर्नलिनैर्लक्षमेकं हुनेत् सुधीः। अलक्ष्मीसहितो मर्त्यो लक्ष्मीं प्राप्नोति निश्चितम्॥१४॥
धनधान्यादिसंपत्त्या तोषयेत्ताञ्च साधकः। करुणार्द्रं सनाथा सा कुलं तस्य न मुञ्चति॥१५॥
ब्राह्मणः स्वगृहे बिल्वं समारोप्य च वर्धयेत्। श्रीसूक्तं च जपन्नेष तत्पत्रैर्जुहुयात्ततः॥१६॥
त्रिस्वादुयुक्तैः कुसुमैः फलैश्चापि समिद्वरैः। स्कन्धभेदैस्तस्य नरस्तन्मूलैश्चापि संहुनेत्॥१७॥
बिल्वमिश्रहविष्याशी मण्डलात्प्राक् स्वयं रमा। प्रत्यक्षा च भवेत्तस्य कथमश्रीः कुले भवेत्॥१८॥

इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से साधक अपना वांछित सिद्ध करे। वक्षोज दही, दूध में अर्कगत श्री का स्मरण करके तीन लाख तक इस मन्त्र का जप करे तो थोड़े ही दिनों में मनुष्य दरिद्रता से मुक्त हो जाता है। विष्णु मन्दिर के पास बेल के नीचे बैठकर तीन लाख जप करे तो एक वर्ष में वांछित फल प्राप्त होता है। आठ लाख से अधिक जप करने पर अल्प काल में वांछित प्राप्त करता है। अशोक काष्ठ की अग्नि में घी और चावल से हवन करे तो साधक तीनों लोकों को वश में कर लेता है। खैरं की लकड़ी से सम्यक् प्रज्वलित अग्नि में त्रिमधुराक्त चावल के हवन करने से राजकुल वश में होता है और इससे साधक कुबेर के समान धनी हो जाता है। अकवन की लकड़ी में शुद्ध शालि तण्डुल से दश हजार हवन करने से राजपुत्र राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करता है। त्रिमधुराक्त कमल से एक लाख हवन करने पर दरिद्र भी लक्ष्मी को प्राप्त करता है और वह धन-धान्यादि सम्पत्ति से साधक को सन्तुष्ट करती है, उसे सनाथ करती है और उसके कुल को नहीं छोड़ती है। ब्राह्मण अपने घर में बेल का वृक्ष लगाकर उसे बढ़ावे और श्रीसूक्त का जप करते हुये उसी बेलपत्र से हवन करें। त्रिमधुराक्त उसके फूलों-फलों से, उसकी समिधा से या उसके मूल से हवन करे। बेलमिश्रित हविष्य का भोजन चालीस दिनों तक करे तो लक्ष्मी प्रत्यक्ष दर्शन देती है और उसके कुल में धन की कभी कमी नहीं होती।

यन्त्रान्तरोद्धारः

श्रीयन्त्रसारे—

कर्णिकायां साध्यनामगर्भं तारं विलिख्य च। एवा पित्रे ऋचः पादचतुष्कं चापि तद्दले॥१॥
अष्टपत्रे यूयमिति दिक्ष्वेवेन्द्रादि चाश्रिषु। पादा लेख्यास्ततो बाह्यदलषोडशके क्रमात्॥२॥
आलिखेत्षोडशदले त्वं सोमाद्यस्य चाप्यृचः। त्रीण्यक्षराणि प्रथमे द्वितीये सप्त सप्त च॥३॥
तृतीये च चतुर्वर्णांस्तुरीये पञ्च पञ्चमे। षष्ठे षट् चतुरो वर्णान् सप्तमेऽष्ट दलेऽष्टमे॥४॥
प्रजापते ऋचो वर्णांश्चतुरो नवमे दले। दशमे च दले वर्णान् पञ्च चैकादशेऽपि षट्॥५॥
द्वादशे चतुरो वर्णान् दले चापि त्रयोदशे। (चतुर्दशे चतुर्वर्णान् सप्त पञ्चदशे दले)॥६॥
षोडशे चापि षड्वर्णान् विलिख्य च दले बहिः। आवेष्ट्य लिप्या श्रीबीजं विलिखेद्भूपुरास्त्रिषु॥७॥
यन्त्रं ऋक्पञ्चकस्यैतद्धनधान्यधरासुतैः। गोगजाश्वाविमहिषसस्यभूषादिसंकुलाम्॥८॥
लक्ष्मीं समावहेद्रम्यां पुत्रपौत्रादिगामिनीम्। इति।

अस्यार्थः—तत्र चर्तुदलकमलकर्णिकामध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तद्दलेषु, 'एवापित्रे' इति ऋचः

पादचतुष्टयं स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन प्रतिदलमेकं पादं विलिख्य, तद्बहिरष्टदलं कमलं कृत्वा तस्य दिग्दलेषु 'यूयं' इत्याद्यृचः पादचतुष्टयं, कोणदलेषु 'एवेन्द्राग्नी' इत्याद्यृचः पादचतुष्टयं विलिख्यं, तद्बहिः षोडशदलं कमलं कृत्वा तद्दलेषु 'त्वं सोम' इत्यादि ऋग्द्वयस्य प्रथमदले त्रीण्यक्षराणि, द्वितीये सप्त, तृतीये सप्त, चतुर्थे चत्वारि, पञ्चमे पञ्च, षष्ठे षट्, सप्तमे चत्वारि, अष्टमेऽष्ट, 'प्रजापते न त्वेद' इति ऋचो नवमे चत्वारि, दशमे पञ्च, एकादशे षट्, द्वादशे चत्वारि, त्रयोदशेऽपि चत्वारि, चतुर्दशे चत्वारि, पञ्चदशे सप्त, षोडशे षडक्षराणि चेति विभज्य विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तरालवीथ्याम् अकारादिक्षकारान्तान् मातृकार्णान् सबिन्दुकान् वेष्टनरूपेण विलिख्य, तद्बहिश्चतुरस्रं कृत्वा तत्कोणेषु श्रीबीजं लिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। ऋक्पञ्चकं तु ऋग्वेदे—वामदेवस्य बृहस्पतिः त्रिष्टुप्। 'एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्'॥१॥ 'यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः। जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम्'॥२॥ एवेन्द्राग्नी इत्यस्य कुत्सः इन्द्राग्नी त्रिष्टुप्। 'एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः'॥ गौतमस्य त्रिष्टुप्। 'त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्। तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥४॥ प्रजापते इति हिरण्यगर्भ ऋषिः को देवता त्रिष्टुप्छन्दः। 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्'॥५॥ इति।

श्रीयन्त्रसार में कहा गया है कि पहले चतुर्दल कमल बनावे। उसके बाहर, अष्टदल कमल, उसके बाहर षोडश दल कमल, उसके बाहर दो वृत्त और उसके बाहर तीन चतुरस्र भूपुर बनावे। चतुर्दल कमलकर्णिका के मध्य में 'ॐ' के गर्भ में साध्य नाम लिखे। चारो दलों में मूलोक्त 'एवा पित्रे' ऋचा के चार पदों में से एक-एक पद लिखे। अष्टदल कमल के पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तर वाले दलों में मूलोक्त 'यूयम' ऋचा के चार पदों को एक-एक कर लिखे। कोण के दलों में मूलोक्त 'एवेन्द्राग्नि' ऋचा के एक-एक पद लिखे। षोडश दल कमल के सोलह दलों में मूलोक्त 'त्वं सोम' ऋचा के अक्षरों को लिखे। लिखने का क्रम इस प्रकार होगा कि प्रथम दल में तीन अक्षर, द्वितीय में सात, तृतीय में सात, चतुर्थ में चार, पञ्चम में पाँच, षष्ठ में छः, सप्तम में चार और अष्टम में आठ अक्षर रहें। मूलोक्त 'प्रजापते न त्वदे' ऋचा के अक्षरों में से नवम में चार, दशम में पाँच, एकादश में छः, द्वादश में चार, त्रयोदश में चार, चतुर्दश में चार, पञ्चदश में सात और षोडश में छः अक्षर लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल में अ से क्ष तक की मातृका को सानुस्वार लिखे। सबसे बाहर चतुरस्र के कोणों में 'श्रीं' लिखे। इन पाँच ऋचाओं से निर्मित यन्त्र से धन-धान्य, भूमि, पुत्र, गाय, हाथी, घोड़े, भैंस, सस्य भूषादि से समन्वित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और वह उसके कुल में पुत्र-पौत्रादि तक विद्यमान रहती है।

श्रीयन्त्रसारे—

मध्ये तारं साध्ययुक्तं श्रियं कोणेषु षट्स्वपि। अष्टपत्रे केसरोद्यत् स्वरद्वन्द्वे क्रमेण च॥१॥
या लक्ष्मीरित्यृचो वर्णांश्चतुरश्चतुरो बहिः। अश्वदाया ऋचा हल्भिश्च संवेष्ट्य कुगृहाश्रिषु॥२॥
श्रियं समालिखेद्यन्त्रं स्थापितं यत्र मन्दिरे। धनैर्धान्यैश्च विभवैरन्यैश्चाश्वगवादिभिः॥३॥
आपूरयन्ती सततं तत्रैव रमते रमा। इति।

अस्यार्थः—अष्टदलपद्मोदरे षट्कोणं कृत्वा तन्मध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, षट्कोणेषु श्रीबीजं विलिख्याष्टदलकेसरेषु द्वन्द्वशः स्वरानालिख्याष्टदलेषु 'या लक्ष्मीः' इत्यृचो वर्णांश्चतुराश्चतुरो विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयान्तरालद्वयेऽन्तर्गतान्तराले श्रीसूक्ते अग्रे वक्ष्यमाण—'अश्वदायै गोदायै' इति ऋचा संवेष्ट्य तद्बहिर्गतान्तराले कादिक्षान्तवर्णैरावेष्ट्य तद्बहिश्चतुरस्रं कृत्वा तत्कोणेषु श्रीबीजं लिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदम्। 'या लक्ष्मीः सिन्धुसंभवा भूतिर्धेनु पुरूवसुः। पद्मा विश्वा वसुर्देवी सदा नो जुषतां गृहे॥' इति ऋक्।

श्रीयन्त्रसार में कहा गया है कि महले षट्कोण बनावे। उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर तीन वृत्त

बनावे। उसके बाहर चतुरस्र बनावे। षट्कोण के मध्य में 'ॐ' के उदर में साध्य नाम लिखे। छः कोणों में 'श्रीं' लिखे। अष्टदल कमल के आठ दलों में सोलह स्वरों में से दो-दो को लिखे। दलों के बाहर 'या लक्ष्मी:' ऋचा के चार-चार अक्षरों को लिखे। उसके बाहर वृत्तों के पहले अन्तराल में 'अश्वदायै गोदायै' ऋचा लिखे। उसके बाहरी अन्तराल में 'क' से 'क्ष' की मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर चतुरस्र के कोणों में 'श्रीं' लिखे। यह यन्त्र बनाकर पूजन कर जिस घर में इसे स्थापित किया जाता है, उस घर में लक्ष्मी सदा धन-धान्य, वैभव, घोड़े, गाय आदि को प्रदान करती रहती है और स्वयं भी वहीं रमण करती है।

लक्ष्मीमन्त्रान्तर-तत्प्रयोगविधयः

तथा—

सद्याद्यं बिन्दुसहितं द्वितीयं भुवनेश्वरी ॥४॥
तृतीयं च रमाबीजं चतुर्थं कामराजकम्। समुद्रवर्णो धर्मार्थकाममोक्षफलो मतः ॥५॥

सद्याद्य ऐ, बिन्दुयुतं तेन ऐं, अन्यत् प्रसिद्धम्। तथा—

ऋषिर्भृगुर्निचृत्पूर्वमनुष्टुप् छन्द ईरितम्। देवता कमला प्रोक्ता सर्वसंपत्करी शुभा ॥६॥
पूर्वमन्त्रवदेवास्य षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।

अथ ध्यानम्—

माणिक्याभा हरगिरिनिभैः कुञ्जरेन्द्रैश्चतुर्भिर्नासाग्रोद्यन्मणिमयघटाम्भोभिरासिच्यमाना।
अम्भोजस्था वरसरसिजद्वन्द्वकाभीतिहस्ता लक्ष्मीः पायदमरनिकरैः सेविताङ्घ्रयम्बुजा सा ॥६॥

आयुधध्यानं प्राग्वत्।

पूर्वोदिते रमापीठे यजेद् देवीं च पूर्ववत्। अर्कलक्षं जपेन्मन्त्री नियताशी च संहुनेत् ॥७॥
तत्सहस्रं सरोजैश्च रक्तैस्त्रिस्वादुसंयुतैः। पूर्वानुक्तप्रयोगांश्च कुर्यान्मन्त्री यथाविधि ॥८॥
साधको मनुवर्यस्य निधिभिः सेव्यते स्वयम्।

प्रयोगः सुगमः। तथा—

कामिकापञ्चमं कालो अन्त्यस्वरविभूषितः। वर्गादिः क्ष्वेडमचला वरुणो दीर्घयुक् भृगुः ॥९॥
अक्षियुक् धान्तपवनसद्याद्याश्च द्विठावधिः। दशाक्षरो निगदितो मन्त्रः प्रोक्तफलप्रदः ॥१०॥ इति।

कामिकापञ्चमं न, कालो म, अन्त्यस्वरो विसर्गस्तेन मः, वर्गादिः क, क्ष्वेडं म, अचला ल, वरुणो व, दीर्घयुक् वा, भृगुः स अक्षियुक् सि, धान्तं न, पवनो य, सद्याद्य ऐ तेन न्यै, द्विठः स्वाहा। तथा—

ऋष्याद्या दक्षसविराट्कमलाः समुदीरिताः। देवी च पद्मिनी विष्णुपत्नी च वरदा मता ॥११॥
रूपान्ता कमला चाभिर्ङेनमोन्ताभिरुक्तवत्। पञ्चाङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥१२॥ इति।

शारदायाम्—'नमोन्ता प्रणवादिकाः' इत्यङ्गमन्त्रा उदिताः। ध्यानं तु—

तडित्पुञ्जाभासा कमलयुगदानाभयकरा शरीरोद्यद्भासा भुवनविवरं भासयति या।
सरोजस्था काञ्चीमणिमुकुटमञ्जीररुचिरा श्रिये भूयाल्लक्ष्मीः कुचकलशभारानततनुः ॥१३॥

आयुधध्यानं प्राग्वत्।

रमापीठे पुरा प्रोक्ते यजेल्लक्ष्मीं यथाविधि। आदावङ्गानि तद्बाह्ये बलाक्याद्यष्टशक्तयः ॥१४॥
तद्बाह्ये लोकपालाश्च तदस्त्राणि ततो बहिः। एवमभ्यर्चयेल्लक्ष्मीं भवेत् साक्षाद्धनाधिपः ॥१५॥

अथ प्रयोगः—प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षाय ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदि श्रीकमलायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा मूलमन्त्रं करयोर्व्यापय्य, ॐ

देव्यै नमः हृदयाय नमः, ॐ पद्मिन्यै० शिरसे०, ॐ विष्णुपत्न्यै० शिखायै०, ॐ वरदायै० कवचाय०, ॐ कमलरूपायै० अस्त्राय०, इति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य, नेत्रवर्जं हृदयादिपञ्चाङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानाद्यङ्गपूजान्ते प्राग्वदष्टदले बलाक्याद्यष्टशक्तीः संपूज्य इन्द्राद्यर्चादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति।

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं—लक्ष्मी के ये चार बीजमन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले होते हैं। इस मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द निचृत् पूर्व अनुष्टुप्, देवता सर्वसम्पत्करी शुभा लक्ष्मी हैं। पूर्व मन्त्र के समान ही षडंग न्यास श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

माणिक्याभा हरगिरिनिभैः कुञ्जरेन्द्रैश्चतुर्भिर्नासाग्रोद्यन्मणिमयघटाम्भोभिरासिच्यमाना।
अम्भोजस्था वरसरसिजद्वन्द्वकाभीतिहस्ता लक्ष्मीः पायदमरनिकरैः सेविताङ्घ्रयम्बुजा सा।।

पूर्व मन्त्र के समान ही आयुध ध्यान करने के पश्चात् पूर्वोक्त रमा पीठ में पूर्ववत् देवी की पूजा करे। बारह लाख मन्त्र जप करे। नियत भोजन करे और हवन बारह हजार त्रिमधुरात्त लाल कमल से पूर्वानुक्रम योग से करे। इस श्रेष्ठ मन्त्र के साधक की निधियाँ स्वयं सेवा करती हैं।

अन्य मन्त्र—श्लोक ९ एवं १० के उद्धार करने पर रमा का दशाक्षर मन्त्र बनता है—नमः कमलवासिन्यै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दक्ष, छन्द विराट् एवं देवता कमला पद्मिनी विष्णुपत्नी हैं। दूसरा मन्त्र है—ॐ कमलवासिन्यै नमः। जाति युक्त से पञ्चाङ्ग न्यास करे। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

तडित्पुञ्जाभासा कमलयुगदानाभयकरा शरीरोद्यद्भासा भुवनविवरं भासयति या।
सरोजस्था काञ्चीमणिमुकुटमञ्जीररुचिरा श्रिये भूयाल्लक्ष्मीः कुचकलशभारानततनुः।।

पूर्ववत् आयुध ध्यान करे। पूर्वोक्त रमापीठ में लक्ष्मी का पूजन करे। पहले षडङ्ग पूजन करे तब बलाकादि आठ शक्तियों की पूजा करे और उसके बाहर लोकपालों की पूजा करे उसके बाहर उनके आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार की लक्ष्मीपूजा से साधक साक्षात् कुबेर हो जाता है।

प्रयोग—पूर्ववत् योगपीठ न्यास करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि दक्षाय ऋषये नमः। मुखे विराट् छन्दसे नमः। हृदि श्रीकमलायै देवतायै नमः। इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करके पूर्ववत् विनियोग करे। तब पञ्चाङ्ग न्यास करे—ॐ देव्यै नमः हृदयाय नमः। ॐ पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा। ॐ विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट्। ॐ वरदायै नमः कवचाय हुम्। ॐ कमलरूपायै नमः अस्त्राय फट्। इन्हीं मन्त्रों से करन्यास भी करे। इसमें नेत्र में न्यास न करने से पञ्चाङ्ग न्यास होता है। ध्यानांग पूजा के अन्त में बलाकादि आठ शक्तियों की, इन्द्रादि दश दिक्पालों की और उनके आयुधों की पूजा करे।

तथा—

पंक्तिलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः। तद्दशांशं सरसिजैस्त्रिस्वाद्वक्तैर्हुनेत्सुधीः ।।१६।।
नद्यां समुद्रगामिन्यां कण्ठदघ्ने जले स्थितः। लक्षत्रयं जपेन्मन्त्री भवेदर्थान्वितो नरः ।।१७।।
नन्द्यावर्तप्रसूनैश्च जुहुयादुत्तराह्वभे। रमां सम्पूज्य साहस्रं तावद्वैल्वैर्मधुप्लुतैः ।।१८।।
फलैर्हुनेत्पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वा सिताम्बुजैः। शुक्रवारे श्वेतपुष्पैर्मासं यो जुहुयात्सुधीः ।।१९।।
संवत्सराद्धनं पूर्णं लभते नात्र संशयः। किं बहूक्तेन भजते मनुमेनं जितेन्द्रियः ।।२०।।
स वाञ्छितार्थांल्लभते वसुधान्यसमृद्धियुक् । इति।

हविष्याशी जितेन्द्रिय रहकर पंक्तिलक्ष मन्त्र का जप करे। उसका दशांश त्रिमधुरात्त कमलों से हवन करे। समुद्रगामिनी नदी में कण्ठ तक जल में खड़े होकर तीन लाख जप करे तो मनुष्य धनवान होता है। उत्तरा नक्षत्र में नन्द्यावर्त फूलों से हवन करे। लक्ष्मी की पूजा करके मधुप्लुत वल्ली से हवन एक हजार करे। पूर्णिमा में फल से हवन करे या पञ्चमी में श्वेत कमल

से हवन करे। शुक्रवार में श्वेत पुष्पों से एक माह तक हवन करे तो छ: महीनों में धन का पूर्ण लाभ होता है, इसमें संशय नहीं है। अधिक क्या कहा जाय; जो जितेन्द्रिय रहकर इस मन्त्र का जप करता है, वह अपने वांछित भूमि, धन, समृद्धि आदि को प्राप्त करता है।

तथा—

वाक्शक्तिश्रीकामखं च साग्निसद्यान्तसर्गयुक्। चतृतीयं च वर्गादितृतीयं केवलश्च तः ॥२१॥

लोहितोऽग्नियुतो वामश्रुतियुग् भृगुरीरितः। तुर्यवर्गादिपवनसद्याद्यहृदयावधि ॥२२॥

द्वादशार्णो महालक्ष्मीमन्त्रः प्रोक्तस्तु सूरिभिः। प्रणवाद्योऽयमेव स्यात्सर्वसिद्धिकरो मनुः ॥२३॥ इति।

वाक् वाग्बीजं, शक्तिः भुवनेश्वरीबीजं, कामस्तद्बीजं, खं ह, स स्वरूपं, अग्नी रेफः, सद्यान्त औ, सर्गो विसर्गः, एभिः पिण्डितं ह्स्रौः, च—तृतीयं ज, वर्गादितृतीयं ग, केवलश्च तः तकारः स्वररहितः, लोहितः प, अग्नियुक् सरेफः तेन प्र, वामश्रुतियुक् ऊकारयुक्तः भृगुः स तेन सू, तुर्यवर्गादि त, पवन य, सद्याद्य ऐ, तेन त्यै, हृदयं नमः, प्रणवाद्यस्त्रयोदशाक्षरः। तथा—

ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्रीमहालक्ष्म्यः समीरिताः। संशोध्य मनुना पाणी प्रणवाद्यं हृदन्तकम् ॥२४॥

अङ्गुलीषु क्रमान्मन्त्री विन्यसेद्बीजपञ्चकम्। मन्त्रशेषं न्यसेन्मन्त्री (तलयोरुभयोरपि ॥२५॥

मूर्धादि चरणं यावन्मन्त्रेण व्यापकं न्यसेत्। मूर्धाक्षिवक्षोगुह्याङ्घ्रौ पञ्च बीजानि विन्यसेत् ॥२६॥

शेषं सप्तार्णकं मन्त्री) विन्यसेद्धृदि धातुषु। पञ्चबीजैः पञ्चमन्त्रान् शिष्टैः षष्ठं तु कल्पयेत् ॥२७॥

चतुर्थ्यन्तैर्ज्ञानमुखैर्युक्तं वापि षडङ्गकम्। ज्ञानैश्वर्ये शक्तिबले वीर्यं तेजश्च षट् क्रमात् ॥२८॥

लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—मूलोक्त तीन श्लोकों का उद्धार करने पर तेरह अक्षरों का लक्ष्मी का मन्त्र होता है—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः जगत्प्रसूत्यै नमः। इस मन्त्र के से ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता महालक्ष्मी हैं। ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौं के पहले ॐ और बाद में नमः लगाकर अंगुलि में न्यास करे। मन्त्रशेष से करतल करपृष्ठ में न्यास करे। मूल मन्त्र से मस्तक से पैरों तक व्यापक न्यास करे। मूर्धा, आँख, वक्ष, गुह्य और पैरों में पाँच बीजों का न्यास करे। शेष सात वर्णों को सप्त धातु का न्यास हृदय में करे। पाँच बीजों से पाँच मन्त्र और अवशिष्ट से छठा मन्त्र कल्पित करके षडङ्ग न्यास ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तेज के साथ क्रम से करे।

प्रयोग—पूर्ववत् प्रातःकृत्यादि से प्रारम्भ कर योगपीठ न्यास तक करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। तब न्यास करे।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। पूर्ववत् विनियोग करे। मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके कर न्यास करे। अंगुष्ठयोः ऐं नमः। तर्जन्यों ह्रीं नमः। मध्यमयोः श्रीं नमः। अनामिकयोः क्लीं नमः। कनिष्ठकयोः ह्स्रौं नमः। करतलयोः जगत्प्रसूत्यै नमः।

मन्त्रवर्ण न्यास—मूर्ध्नि ऐं नमः। चक्षुषोः ह्रीं नमः। वक्षसि श्रीं नमः। गुह्ये क्लीं नमः। पादयोः ह्स्रौः नमः। हृदय में सात धातुओं का न्यास करे—त्वचि जं नमः। रक्ते गं नमः। मांसे अं नमः। मेदसि सूं नमः। अस्थ्नि त्यैं नमः। मज्जायां नं नमः। शुक्रे मं नमः।

हृदयादि न्यास—ऐं ज्ञानाय नमः हृदयाय नमः। ह्रीं ऐश्वर्याय नमः शिरसे स्वाहा। श्रीं शक्तये नमः शिखायै वषट्। क्लीं बलाय नमः कवचाय हुं। ह्स्रौः वीर्याय नमः नेत्राभ्यां वौषट्। जगत्प्रसूत्यै तेजसे नमः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

समण्डपादिदेवीध्यानं यजनादिप्रयोगश्च

एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री चिन्तयेदिष्टदेवताम्। आदौ स्मरेत्समुद्यानं सर्वर्तुप्रतिशोभितम् ॥२९॥

वञ्जुलैर्नागरङ्गैश्च रसालैः श्रीद्रुमैरपि । तालैस्तमालैर्हिन्तालैः शालैश्च बकुलैरपि ॥३०॥
कर्कन्धुबन्धुजीवैश्च चम्पकैरुपशोभितम् । मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलमण्डितम् ॥३१॥
अशोकपाटलानागकोविदारमनोरमम् । मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धिकम् ॥३२॥
द्राक्षावल्लीनागवल्लीमाधवीदेवदारुभिः । नमेरुभिर्लवङ्गैश्च बकुलैस्तिलकैस्तथा ॥३३॥
शोभितं कर्णिकारैश्च चन्दनैः रक्तचन्दनैः । वञ्जुलैर्मातुलुङ्गैश्च दाडिमीलकुचैः शुभैः ॥३४॥
नारिकेलैश्च खर्जूरैः पूगैः कुरवकैर्वृतम् । मालतीकेतकीजातीपारन्तीतुलसीवृतम् ॥३५॥
नन्द्यावर्तैर्दमनकैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलम् । अमन्दैः पिचुमन्दैश्च मन्दारैरुपशोभितम् ॥३६॥
विशिष्टैः पनसैरुच्चैः शाखोटैः कुटजैर्गणैः । अवेगपवनस्पृष्टसुमनोगन्धमञ्जुलम् ॥३७॥
महासरस्तस्य मध्ये स्मरेन्मन्त्री मनोरमम् । वरटाहंससङ्घाद्यचक्रकारण्डकोज्ज्वलम् ॥३८॥
भ्रमद्भ्रमरमालाभिरलंकृतचतुर्दिशम् । केकिकेकारवाकीर्णं लक्ष्मणासारसैर्वृतम् ॥३९॥
फुल्लैः सरसिजैः रम्यैः कह्लारैः कैरवैरपि । नीलेन्दीवरसङ्घैश्च सुगन्धिकुसुमैर्वृतम् ॥४०॥
सर्वर्तुशोभिकल्पद्रुवनमण्डितमुज्ज्वलम् । पुलिनं तत्र तन्मध्ये मण्डपं रत्नकुट्टिमम् ॥४१॥
समुद्यदर्कसंदोहकिरणद्युतिभास्वरम् । हिमरश्मिकरव्रातसिक्तामृतसुशीतलम् ॥४२॥
प्रोल्लसद्गालितस्वर्णप्राकारसुमनोहरम् । नानारत्नौघरचितचतुर्द्वारसमन्वितम् ॥४३॥
नवरत्नमयप्रोद्यदरराष्टकशोभितम् । नूतनोद्यन्महारत्नै रचितोत्तुङ्गगोपुरम् ॥४४॥
तप्तगालितहेमोद्यद्दण्डध्वजसमूहकम् । वैडूर्यादिमहारत्नरचितस्तम्भराजितम् ॥४५॥
संतप्तस्वर्णरचितगवाक्षशतसङ्कुलम् । हेमदण्डस्फुरद् दीपसहस्रसुमनोहरम् ॥४६॥
नानाविधक्षौमवस्त्ररचिताभिश्च काञ्चनैः । सक्षुद्रघण्टिकायुक्तपताकाभिरथावृतम् ॥४७॥
शरद्राकासुधारश्मिदुकूलरचितैः शुभैः । विचित्रवसनोद्भूतैर्वृतं चन्द्रातपैरपि ॥४८॥
काञ्चनोर्वीमणिव्रातकुट्टिमालंकृतं शुभम् । घनसारागुरुस्वम्बुकस्तूरीकुङ्कुमैरपि ॥४९॥
तमालैर्द्रव्य(व)जातैश्च सुगन्धिभिरथेतरैः । आमोदितचतुर्द्वारं मण्डपं प्रविचिन्तयेत् ॥५०॥
(तदन्तः पारिजातस्य मूले सिंहासनं नवम् । नानारत्नगणाकीर्णं तत्र देवीं विचिन्तयेत् ॥)
बालभास्करसत्कान्तिं शशिशेखरमण्डिताम् । मुक्ताहारोज्ज्वलां रम्यां रत्नाकल्पविभूषिताम् ॥५१॥
हस्ताम्भोजैश्च बिभ्राणां नूतनां शालिमञ्जरीम् । पद्मद्वयं कौस्तुभं च सस्मितास्यसरोरुहाम् ॥५२॥
विकचोत्पलसंशोभिलोचनत्रयसंयुताम् । क्वणन्नूपुरसंफुल्लरक्तोत्पलपदद्वयाम् ॥५३॥
नितम्बबिम्बविलसद्रशनादाममञ्जुलाम् । बलित्रयलसद्वेदिमध्यदेशसुशोभिताम् ॥५४॥
गम्भीरावर्तह(भृ)न्नाभिह्रदमण्डलमण्डिताम् । यक्षकर्दमसंलिप्तपीनोन्नतघनस्तनीम् ॥५५॥
कुम्भिकुम्भोद्भवप्रोद्यन्मुक्तादामविराजिताम् । क्षौमोत्तरासङ्गवतीं पुष्पदामसुभूषिताम् ॥५६॥
गालितस्वर्णखचितवैडूर्याढ्याङ्गदोज्ज्वलाम् । काञ्चनोद्यत्पद्मरागमणिसंबद्धकङ्कणाम् ॥५७॥
नानाविधलसद्रत्नमुद्रिकालंकृताङ्गुलीम् । कम्बुकण्ठकलारावां स्वर्णग्रैवेयराजिताम् ॥५८॥
विचित्रनानालङ्कारालंकृताङ्गीं शुचिस्मिताम् । उद्यदर्कप्रभाभास्वद्रत्नताटङ्कशोभिताम् ॥५९॥
कर्णपूरीकृतस्वर्णबद्धरत्नाङ्कुशां शुभाम् । प्रवालविलसत्कान्तिरुचिराधरपल्लवाम् ॥६०॥
शेखरप्रोल्लसद्रम्यदशनावलिशोभिताम् । निर्लाञ्छनशरद्राकाताराधिपशुभाननाम् ॥६१॥
पञ्चसायककोदण्डविलासाधिकभ्रूयुगाम् । बिभ्राणां नासिकां प्रोद्यत्तिलपुष्पजयोद्यताम् ॥६२॥
शीतांशुशकलाकाररुचिरालिकराजिताम् । घनसौगन्ध्यसंपन्नमृगनाभिविशेषकाम् ॥६३॥
मनाक्कुञ्चितसुस्निग्धनीलमञ्जुलमूर्धजाम् । पारिजातद्रुकुसुमगन्धवाहिसुमूर्धजाम् ॥६४॥

(अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटाङ्कितमस्तकाम्) । तप्तहाटकसंबद्धनानारत्नौघशेखराम् ॥६५॥
सौन्दर्यभूमेरवधिं तेजसां जन्मभूमिकाम् । विलासलक्ष्मीभवनं महालक्ष्मीं विचिन्तयेत् ॥६६॥

वामाधःकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम्।

पुराप्रोक्ते रमापीठे देवीं सम्यक् प्रपूजयेत् । दद्याद् बीजेनासनं च स्वाणुना मूर्तिकल्पना ॥६७॥
दक्षभागे यजेद् देव्या गणपं चान्यतस्तथा । सुमनोञ्जलिहस्तं च पुष्पधन्वानमर्चयेत् ॥६८॥
अङ्गानि पूजयेदादौ यथास्थानेषु मन्त्रवित् । अष्टपत्रेष्विमाः पूज्या उमा श्रीश्च सरस्वती ॥६९॥
दुर्गा धरणिगायत्र्यौ देव्युषा चेति शक्तयः । नानालङ्करणाढ्याः स्युरम्भोजद्वयपाणयः ॥७०॥
अङ्घ्रिप्रक्षालनार्थञ्च प्रोद्यते जह्नुसूर्यजे । पूजनीये प्रयत्नेन कराभ्यां धृतचामरौ ॥७१॥
निधी पूज्यौ च वरुणं पश्चिमे छत्रधारिणम् । परितश्च यजेद्राशीन् ग्रहान्नव ततोऽर्चयेत् ॥७२॥
चर्तुदन्तान् दिग्गजांश्च यजेदाशासु मन्त्रवित् । लोकपालांस्तदस्त्राणि तत्तद्बाह्ये यजेत् सुधीः ॥७३॥
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च ते क्रमात् ॥७४॥

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वत् प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि ब्रह्मणे ऋषये: नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुत्कीर्त्य (मूलमन्त्रेण करयोर्व्यापकं कृत्वा, अङ्गुष्ठयोः ऐं नमः, तर्जन्योः ह्रीं०, मध्यमयोः श्रीं०, अनामिकयोः क्लीं०, कनिष्ठिकयोः ह्स्रौः०, करतलयोः जगत्प्रसूत्यै नमः। मूर्ध्नि ऐं नमः, चक्षुषोः ह्रीं०, वक्षसि श्रीं०, गुह्ये क्लीं०, पादयोः ह्स्रौः०, हृदि सप्तधातुषु—त्वचि जं नमः, रक्ते गं०, मांसे अं०, मेदसि सूं०, अस्थ्नि त्यैं०, मज्जायां नं०, शुक्रे मं नमः, इति विन्यस्य,) ऐं ज्ञानाय नमः हृदयाय नमः। ह्रीं ऐश्वर्याय नमः शिरसे स्वाहा। श्रीं शक्तये नमः शिखायै वषट्। क्लीं बलाय नमः कवचाय हुं। ह्स्रौः वीर्याय नमः नेत्राभ्यां वौषट्। जगत्प्रसूत्यै तेजसे नमः अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं मूलमन्त्राभिमृष्टयोः करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततः सकेसरमष्टदलकमलं तद्बहिर्द्वादशदलकमलं तद्बहिर्नवदलं कमलं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुतचतुरस्त्रत्रयमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायां देव्या दक्षिणे गणपतये नमः वामे कामदेवाय इति संपूज्य, प्राग्वत् षडङ्गानि संपूज्याष्टदले उमायै नमः, श्रियै०, सरस्वत्यै०, दुर्गायै०, धरिण्यै०, गायत्र्यै, देव्यै, उषायै०, इति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन संपूज्य, देव्या दक्षिणचरणसमीपे गङ्गायै नमः, वामसमीपे यमुनायै नमः। देवीदक्षिणे शङ्खनिधये नमः। वामे पद्मनिधये नमः, इति संपूज्य, द्वादशदले मेषाय नमः, वृषाय० मिथुनाय०, कर्काय० सिंहाय० कन्यायै० तुलायै० वृश्चिकाय० धनुषे० मकराय० कुम्भाय० मीनाय नमः। तद्बहिर्नवदले रवये नमः, सोमाय० मङ्गलाय० बुधाय० बृहस्पतये० शुक्राय० शनैश्चराय० राहवे० केतुभ्यो नमः। तद्बहिश्चतुरस्रकमल-योरन्तराले देव्यग्राद्यष्टदिक्षु ऐरावताय नमः, पुण्डरीकाय० वामनाय०, कुमुदाय० अञ्जनाय० पुष्पदन्ताय० सार्वभौमाय० सुप्रतीकाय नमः। इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य, प्राग्वद्वीथीद्वये दिगीशान् तदस्त्राणि च समभ्यर्च्य धूपदीपादिशेषं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

जपेद्भास्करलक्षं च नियताशीर्यतव्रतः । तद्दशांशं प्रजुहुयाद् घृतैस्त्रिस्वादुसंयुतैः ॥७५॥
पद्मै रमाद्रुमफलैः प्रत्येकमयुतं हुनेत् । वासितैः शुचिभिस्तोयैस्तर्पयेदयुतद्वयम् ॥७६॥ इति।

अत्र घृतैर्दशांशहोमं विधाय तद् दशांशतर्पणादि निर्वर्त्य पश्चादयुतद्वयहोममयुतद्वयतर्पणं च विदध्यात्, इत्यन्यमन्त्रेभ्यो विशेषः।

इस प्रकार के न्यास के बाद साधक इष्टदेवता का चिन्तन करे। सबसे पहले सभी प्रकार से शोभित उद्यान का स्मरण करे। वह उद्यान वञ्जुल, नागरङ्ग, आम्र, श्रीद्रुम, ताल, तमाल, हिन्ताल, शाल, बकुल, कर्कन्धु, बन्धुजीव एवं चम्पक से सुशोभित है। मन्द-मन्द दोलायमान कर्पूर एवं केले की टहनियों से घिरा है। अशोक, पाटला, नागकेसर, कोविदार वृक्षों से मनोरम है। मल्लिका, यूथिका, कुन्द एवं मदयन्ती से सुगन्धित है। द्राक्षा, वल्ली, नागवल्ली, माधवी, देवदारु, नमेरु, लवंग,

बकुल, तिलक, कर्णिकार, चन्दन, रक्तचन्दन, वञ्जुल, मातुलुंग, दाडिम एवं लकुच से सुशोभित है। नारिकेल, खजूर, सुपाडी, कुरवक, मालती, केतकी, जाती, पारन्ती एवं तुलसी से चारो ओर से घिरा है। नन्द्यावर्त, दमनक, समस्त ऋतुपुष्प, पिचुमन्द एवं मन्दार से बाहर से घिरा है। विशिष्ट प्रकार के कटहल एवं ऊँचे कुटज वृक्षों के गन्धों से आप्लावित है। उसके मध्य में वरटा, हंस, चक्र एवं कारण्डक पक्षियों से उज्ज्वल, चारो ओर भ्रमरों से गुंजायमान, केकी-केका के आवाजों से परिपूर्ण, लक्ष्मणा एवं सारस से घिरा, कल्हार-कैरव आदि के विकसित पुष्पों के सुगन्ध से रमणीय महासरोवर है। वह सरोवर सभी ऋतुओं में शोभायमान कल्पवृक्ष से घिरा है। उसके मध्य में रत्ननिर्मित मण्डप है। उदीयमान सूर्य की किरणों से प्रकाशमान, चन्द्रकिरणों के सदृश अत्यन्त शीतल, स्वर्णप्राकारों से अत्यन्त मनोहर, अनेक रत्नों से निर्मित चार द्वारों से युक्त, नूतन रत्नों से निर्मित आठ गवाक्षों से सुशोभित, अमूल्य रत्ननिर्मित गोपुर से अलंकृत, स्वर्णदण्ड में ध्वजों से सुशोभित, वैडूर्य आदि रत्नों से सुसज्जित खम्भों वाला, स्वर्ण रचित सैकड़ों खिड़कियों वाला, स्वर्णदण्ड पर प्रज्जवलित हजार दीपों वाला, धवल वस्त्रों से रचित पताकाओं से ढ़का हुआ, रात्रि में शीतवारण हेतु सफेद वस्त्रों से आवृत, स्वर्ण मेखला एवं करधनी से अलंकृत धनसार-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम-तमाल आदि विविध सुगन्धि द्रव्यों से सुगन्धित, चार द्वारों से युक्त वह मण्डप है। उस मण्डप में पारिजतवृक्ष के नीचे अनेक रत्नों से सुसज्जित सिंहासन पर देवी विराजमान हैं। उनका चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये—

बालभास्करसत्कान्तिं शशिशेखरमण्डिताम् । मुक्ताहारोज्ज्वलां रम्यां रत्नाकल्पविभूषिताम् ।।
हस्ताम्भोजैश्च बिभ्राणां नूतनां शालिमञ्जरीम् । पद्मद्वयं कौस्तुभं च सस्मितास्यसरोरुहाम् ।।
विकचोत्पलसंशोभिलोचनत्रयसंयुताम् । क्वणन्नूपुरसंफुल्लरक्तोत्पलपदद्वयाम् ।।
नितम्बबिम्बविलसद्रशनादाममञ्जुलाम् । बलित्रयलसद्वेदिमध्यदेशसुशोभिताम् ।।
गम्भीरावर्तह(भृ)न्नाभिह्रदमण्डलमण्डिताम् । यक्षकर्दमसंलिप्तपीनोन्नतघनस्तनीम् ।।
कुम्भिकुम्भोद्भवप्रोद्यन्मुक्तादामविराजिताम् । क्षौमोत्तरासङ्गवतीं पुष्पदामसुभूषिताम् ।।
गालितस्वर्णखचितवैडूर्याढ्याङ्गदोज्ज्वलाम् । काञ्चनोद्यत्पद्मरागमणिसंबद्धकङ्कणाम् ।।
नानाविधलसद्रत्नमुद्रिकालंकृताङ्गुलीम् । कम्बुकण्ठकलारावां स्वर्णग्रैवेयराजिताम् ।।
विचित्रनानालङ्कारालंकृताङ्गीं शुचिस्मिताम् । उद्यदर्कप्रभाभास्वद्रत्नताटङ्कशोभिताम् ।।
कर्णपूरीकृतस्वर्णबद्धरत्नाङ्कुशां शुभाम् । प्रवालविलसत्कान्तिरुचिराधरपल्लवाम् ।।
शेखरप्रोल्लसद्रम्यदशनावलिशोभिताम् । निर्लाञ्छनशरद्राकाताराधिपशुभाननाम् ।।
पञ्चसायककोदण्डविलासाधिकभ्रूयुगाम् । बिभ्राणां नासिकां प्रोद्यत्तिलपुष्पजयोद्यताम् ।।
शीतांशुशकलाकाररुचिरालिकराजिताम् । घनसौगन्ध्यसंपन्नमृगनाभिविशेषकाम् ।।
मनाक्कुञ्चितसुस्निग्धनीलमञ्जुलमूर्धजाम् । पारिजातद्रुकुसुमगन्धवाहिसुमूर्धजाम् ।।
(अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटाङ्कितमस्तकाम्) । तप्तहाटकसंबद्धनानारत्नौघशेखराम् ।।
सौन्दर्यभूमेरवधिं तेजसां जन्मभूमिकाम् । विलासलक्ष्मीभवनं महालक्ष्मीं विचिन्तयेत् ।।

तदनन्तर निचले बाँयें हाथ से प्रारम्भ करके निचले दाहिने हाथ तक उनके आयुधों का चिन्तन करे।

पहले अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर दशदल कमल बनावे। उसके बाहर नव दल कमल इसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर बनावे। इस पूजाचक्र के मध्य में देवी की पूजा करे। देवी के दाहिने गणपतये नमः, बाँयें कामदेवाय नमः से पूजा करे। पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करे। अष्टदल में—उमायै नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, दुर्गायै नमः, धारिण्यै नमः, गायत्र्यै नमः, देव्यै नमः, उषायै नमः से अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से पूजा करे। देवी के दाँयें चरण के निकट गंगायै नमः, वाम चरण के समीप यमुनायै नमः, देवी के दाँयें भाग में शङ्खनिधये नमः, बाँयें भाग में पद्मनिधये नमः, द्वादश दल में अपने आगे से प्रदक्षिणक्रम से मेषाय नमः, वृषाय नमः, मिथुनाय नमः, कर्काय नमः, सिंहाय नमः, कन्यायै नमः, वृश्चिकाय नमः, धनुषे नमः, मकराय नमः, कुम्भाय नमः, मीनाय नमः से पूजन करे। नव दल में रवये नमः, सोमाय नमः, मंगलाय नमः, बुधाय नमः, बृहस्पतये नमः, शुक्राय नमः, शनैश्चराय नमः, राहवे नमः, केतवे नमः से पूजन करे। चतुरस्र और नवदल के बीच में ऐरावताय नमः, पुण्डरीकाय नमः, वामनाय नमः, कुमुदाय नमः, अंजनाय नमः, पुष्पदन्ताय नमः, सार्वभौमाय नमः,

सुप्रतीकाय नमः से पूजन करे। चतुरस्र की दो वीथियों में पूर्ववत् इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों की पूजा करे। तब धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजन करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे। व्रतपूर्वक नियत भोजन करते हुये बारह लाख मन्त्र-जप करे। उसका दशांश घी एवं त्रिमधुराक्त कमल एवं बेलफल में से प्रत्येक से दश-दश हजार हवन करे। पवित्र सुगन्धित जल से बीस हजार तर्पण करे। यहाँ पर घी से दशांश हवन करके दशांश तर्पण करे, इसके बाद अन्य से बीस हजार हवन करके बीस हजार तर्पण करे यह आशय है।

यथाकामं होमद्रव्यविधिः

तथा—

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री गुरुभक्तो दृढव्रतः। कुर्यात्काम्यानि कर्माणि स्वाभीष्टानि च मन्त्रवित् ॥७७॥
आज्याप्लुताभिर्दूर्वाभिरायुष्कामो हुनेन्नरः। सहस्रं दशरात्रं च समिद्धे हव्यवाहने ॥७८॥
शताह्वाभिर्गुडूचीभिरष्टोत्तरसहस्रकम्। सप्ताहं जुहुयाज्जीवेद् वत्सराणां शतं सुधीः ॥७९॥

शताह्वाभिर्दूर्वाभिः।

दीर्घायुश्च घृताभ्यक्तैस्तिलैः प्रजुहुयाद्बुधः। आरोग्यकामो जुहुयादारभ्यार्कदिनं सुधीः ॥८०॥
दशांशं प्रत्यहं चापि सर्पिरक्तान् समिद्वरान्। कण्ठदघ्ने जले स्थित्वा महालक्ष्मीमनुस्मरन् ॥८१॥

समिद्वरानर्कजान्।

अष्टाधिकसहस्रं च प्रोर्ध्वबाहुर्जपेन्मनुम्। स वाञ्छितार्थं लभते आरोग्यमपि साधकः ॥८२॥
अन्वहं जुहुयादष्टसहस्रं शालिभिर्ध्रुवम्। सोऽचिराल्लभते लक्ष्मीं महतीं साधकोत्तमः ॥८३॥

अष्टसहस्रमष्टाधिकसहस्रमित्यर्थः।

इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध होने पर गुरुभक्त एवं दृढ़व्रती साधक काम्य कर्मों को अपने अभीष्ट सिद्धि के लिये करे। गाय के घी से सिक्त दूर्वा के हवन से आयु की वृद्धि होती है। इस प्रकार का हवन दश रातों तक हव्यवाहन समिधा में करे। सात दिनों तक गुरुच से एक हजार आठ हवन करे। एक सप्ताह तक इस हवन से साधक सौ वर्षों तक जीवित रहता है। दूर्वा से हवन करने पर भी यही फल होता है। दीर्घायु के लिये घृताभ्यक्त तिल से हवन करे। आरोग्य की कामना से बारह दिनों तक हवन करे। प्रतिदिन दशांश हवन गोघृत एवं अकवन काष्ठ से करे। कण्ठ तक जल में खड़े होकर महालक्ष्मी का स्मरण करे। ऊर्ध्व बाहु होकर एक हजार आठ मन्त्रजप करे। ऐसा करने वाला साधक वांछित प्राप्ति के साथ आरोग्य भी प्राप्त करता है। प्रतिदिन एक हजार आठ हवन शालि चावल से करे तो वह थोड़े ही दिनों में बहुत धन प्राप्त करता है।

रमालताप्रसूनैर्वा नन्द्यावर्तसमुद्भवैः। श्वेतसर्षपकैराज्यप्लुतैर्वा जुहुयाद्बुधः ॥८४॥
प्रथीयसीं रमामाप्नोत्यचिरात्साधको ध्रुवम्। मान्यते च तथा सर्वैर्जन्तुभिर्नान्यथात्र च ॥८५॥
नालिकेररजोयुक्तैर्मरिचैर्जीरकान्वितैः। गुडयुक्तैर्घृतपक्वैरपूपैर्जुहुयात् सुधीः ॥८६॥
संयतः प्रत्यहं चाष्टशतं पायसभुग् द्विजः। मण्डलाच्च ध्रुवं साक्षाद् भवेद्वैश्रवणस्तथा ॥८७॥
गुडमिश्रहविष्यस्य होमादन्नसमृद्धिमान्। अष्टोत्तरसहस्रं च जपासूनानि संहुनेत् ॥८८॥
संगृह्य तद्भस्म मन्त्री नागवल्लीरसेन च। सहितं तिलकं कुर्यात्सर्ववश्यं भवेद् ध्रुवम् ॥८९॥
पलाशोत्थसमिद्भिश्च कुसुमैर्जुहुयात्तथा। वश्या भवेयुर्मुखजा वशिनस्तस्य मन्त्रिणः ॥९०॥
जातिकाकुसुमैर्मन्त्री राजानं वशमानयेत्। जुहुयादरुणाम्भोजैर्वैश्याः स्युस्तेन वश्यगाः ॥९१॥
नीलोत्पलानां होमेन वश्याश्चरणसंभवाः। वशयेत् प्रमदा विद्वान् मधूककुसुमैर्घृतैः ॥९२॥

रमालता के फूलों या नन्द्यावर्त फूलों या आज्य प्लुत श्वेत सरसो से हवन करे। इससे साधक को बहुत धन मिलता है और सभी जीवों का वह मान्य हो जाता है; यह कथन अन्यथा नहीं है। नारियल चूर्ण, मरिच, जीरा, गुड़युक्त घृत और पक्व पूओं से प्रतिदिन संयत होकर पायस का भोजन करते हुये एक सौ आठ हवन करे तो चालीस दिनों में साधक साक्षात् कुबेर

हो जाता है। गुड़मिश्रित हविष्य के हवन से साधक अन्न से समृद्ध होता है। एक हजार आठ अड़हुल के फूलों से हवन करके उसके भस्म को इकट्ठा करके पान के रस में घोलकर तिलक करे तो सबों को वश में कर लेता है। पलाश की समिधा में पलाशफूलों से हवन करने पर सामने आने पर मन्त्री उसके वश में होते हैं। जातिपुष्प के हवन से राजा और मन्त्री वश में होते हैं। लाल कमल के हवन से वैश्य वश में होते हैं। नील कमल के हवन से शूद्र वश में होते हैं। महुआ के फूल और घी के हवन से प्रमदायें वश में होती हैं।

अभिषेकविधि:

नवकोष्ठात्मकं सम्यङ्मण्डलं रचयेत्सुधीः। मध्ये यन्त्रं च रुचिरं कल्पयेच्च यथाविधि ॥९३॥

यन्त्रं वक्ष्यमाणम्।

तेषु कोष्ठेषु नवसु विन्यसेत्कलशान्नव। शुभांश्चन्दनकाश्मीरलिप्तसर्वाङ्गकान् नवान् ॥९४॥
कूर्चतण्डुलसंयुक्तान् सर्वदृष्टिमनोहरान्। पूजयेच्च यथावत्तान् वासितैस्तीर्थपुष्करैः ॥९५॥
कर्षस्वर्णेन रचितं नवरत्नसमन्वितम्। कर्णिकामध्यविलसद्यन्त्रं पद्मं तु कारयेत् ॥९६॥
मध्यस्थकलशे रम्यं यथावत्तद्विनिक्षिपेत्। पञ्चरत्नानि सर्वेषु कलशेषु विनिक्षिपेत् ॥९७॥

पञ्चरत्नानि तु—

वज्रं मुक्ताफलं नीलं पद्मरागं तथैव च। मरकतेन समायुक्तं पञ्चरत्नमिदं विदुः ॥१॥

इति पुराणोक्तानि। तथा—

पटीरोशीरकाश्मीरचन्द्रागुरुतमालकम्। जातीकक्कोलसंयुक्तं संपिष्येत् तानि भागशः ॥९८॥
कलशेषु च सर्वेषु यथाविधि विलोडयेत्। सदाभद्रा च दूर्वा च देवी श्रीश्च मधुव्रता ॥९९॥
अपामार्गस्य पत्राणि मुशली वज्रिवल्लरी। चक्रप्रियङ्गुव्रीहींश्च मुद्गगोधूमतण्डुलान् ॥१००॥
शालिमाषांश्च सतिलान्यवान् प्रक्षिप्य निक्षिपेत्। कदलीनारिकेलश्रीधात्रीलकुचभूरुहाम् ॥१०१॥
फलानि पद्मबकुलजातिसौगन्धिकानि च। मल्लिकाचम्पकाशोकपुंनागोत्थानि निक्षिपेत् ॥१०२॥
पुष्पाणि केतकीं तद्वत्तुलसीपल्लवानि च। न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षचैत्यानां ब्रह्मकूर्चकम् ॥१०३॥
प्रक्षिप्य घटवक्त्राणि च्छादयेद्धूपकैः शुभैः। साक्षतै सफलैस्तांश्च वेष्टयेत् क्षौमवाससा ॥१०४॥

नव कोष्ठात्मक मण्डल बनावे। मध्य में यथाविधि रुचिर यन्त्र बनावे। उन नव कोष्ठों में नव कलशों को स्थापित करे। कलशों को कुङ्कुम, चन्दन के लेप से शोभित करे। उसे पञ्चगव्य एवं तण्डुल से युक्त करके सब प्रकार से सुन्दर बनावे। उनमें सुवासित तीर्थजल भरे और विधिवत् पूजा करे। कर्ष भर सोने से निर्मित नव रत्नजटित पद्म यन्त्र बनावे। उसे मध्य कलश में डाले। शेष आठ कलशों में पञ्चरत्न डाले। पञ्चरत्न में हीरा, मोती, नीलम, पद्मराग, पन्ना आते हैं। चन्दन, बालछड़, कुङ्कुम, केसर, कपूर, अगर, तमाल, जायफल, कक्कोल बराबर-बराबर लेकर पीसे। सभी कलशों के जल में उसे मिला दे। मुस्ता, दूर्वा, सहदेवी, अपराजिता, भृंगराज, चिड़चिड़ा पत्र, तालमूली, इन्द्रवारुणी, चकवड, कंगुनी, धान, मूँग, गेहूँ, चावल, शालि, उड़द, तिल, यव डाले। केला, नारियल, बेल, आमला, लकुच वृक्षों के फल, कमल, बकुल, जाति, सौगन्धिक, मल्लिका, चम्पा, अशोक, पुनाङ्ग के फूलों को डाले। केतकी, तुलसी, वट, गूलर, पाकड़ और ब्रह्मकूर्च को कलशों में डाले। कलशों में वस्त्र लपेट कर अक्षत छोड़े और फलसहित रेशमी वस्त्र लपेटे।

तेषु मध्यस्थकलशे समावाह्य महेश्वरीम्। महालक्ष्मीं चन्दनाद्यैरुपचारैश्च संयजेत् ॥१०५॥
शिष्टेष्वष्टसु कुम्भेषु ह्युमाद्याः क्रमतो यजेत्। सुगन्धैश्चन्दनैः पुष्पैर्मनोज्ञैर्धूपदीपकैः ॥१०६॥
भक्ष्यभोज्यनिवेद्यैश्च यथाविधि यजेत्सुधीः। संस्पृश्य तान् घटान् मन्त्री त्रिसहस्रं मनुं जपेत् ॥१०७॥
ततः साध्यं समानीय संयतं स्थण्डिले शुभे। सुपीठे तं निवेश्याथ तस्मिन्साध्ये तु योजयेत् ॥१०८॥
मनोहरैरलङ्कारैर्विविधैर्वसनैरपि। आदरात्तमलंकृत्य सुरक्तं सुमनोवृतम् ॥१०९॥

सुवासिनीभिर्योषाभिरर्चितानां द्विजन्मनाम्। सहस्रैर्वचनैः सर्ववाद्यानां निनदैः सह ॥११०॥
वेदघोषेण च सह लग्ने चैव सुशोभने। तेषु मध्यस्थितं कुम्भं समुद्धृत्य गुरुः स्वयम् ॥१११॥
मूलमन्त्रं जपन् सिञ्चेत्साध्यशीर्षे ततोऽपरैः। कलशैः पूर्ववत्सिक्त्वा हस्तेनास्य शिशोः शिरः ॥११२॥
संस्पृशन् वेदगदितामाशिषं च प्रयच्छति। कल्याणमस्तु च सदा संपदश्च निराकुलाः ॥११३॥
प्रसीदतु महालक्ष्मीः सकला देवता अपि। रक्षन्तु त्वां सर्वदैव विजयोऽस्तु सुखी भव ॥११४॥
इत्थं दत्त्वाशिषः पश्चाद्वाससी परिधाप्य च। आचन्तः प्रणमेत्सम्यग्यथाविधि गुरुं शिशुः ॥११५॥
नानाविधैश्च वसनैर्नानालङ्करणैरपि । धनैर्धान्यै रत्नगोभिर्महिषीभिश्च दासकैः ॥११६॥
दासीभिर्देवताबुद्ध्या गुरुं संतोषयेत्सुधीः। नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्लेह्यचोष्यैस्तथेतरैः ॥११७॥
दीनान्धकृपणैः सार्धं भोजयेच्च द्विजन्मनः। ततः स्वमन्दिरे कुर्यादुत्सवं बन्धुभिः सह ॥११८॥
षट्त्रिद्व्येकाहरम्यं च ततः स नृवरः स्वयम्। कृतार्थं मन्यते सम्यगात्मानं नान्यथात्र हि ॥११९॥
राजा शत्रून् विजयतेऽभिषिक्तश्च यथाविधि। राजपुत्रश्च राज्येप्सुराचिरादाप्नुयात्पदम् ॥१२०॥
वन्ध्याभिषिक्ता रमणी ह्यचिराद्वाञ्छितं सुतम्। महामतिं च लभते नात्र कार्या विचारणा ॥१२१॥
महाभयेषु भूतादिनिमित्तोत्थभयेषु च। कृत्याद्रोहादिदोषे च प्रकुर्यादभिषेचनम् ॥१२२॥
अभिषेकेणामुना च नृणां भवति निश्चितम्। सर्वसंपच्च सौभाग्यं सर्वामयशमस्तथा ॥१२३॥
सर्वापद्वारणं चैव सर्वसौख्यानि निश्चितम्।

पाटीरश्चन्दनः। उशीरो वालकम्। काश्मीरं कुङ्कुमं केसरमिति प्रसिद्धम्। चन्द्रः कर्पूरः। तमालकं पत्रजम्। जाती जातीफलं, कक्कोलं कोल इति प्रसिद्धम्। भागशः समभागेन। सदाभद्रा मुस्ता। देवी सहदेवी। श्रीरपरजिता। मधुव्रता भृङ्गराजः। मुशली तालमूली। वह्निवल्लरी इन्द्रवारुणी। प्रियङ्गुः काङ्गुनी। श्रीः बिल्वः। धात्री आमलकी, लकुचो बडहर इति प्रसिद्धः। बकुलः बैलसरीति प्रसिद्धः। प्लक्षः पाकडिति प्रसिद्धः। चैत्यो ग्रामप्रसिद्धिहेतुभूतो महावृक्षः। ब्रह्मकूर्चं पञ्चगव्यं। भूपकैराच्छादनपात्रैः।

उनमें से सबों के बीच वाले कलश में महेश्वरी महालक्ष्मी का आवाहन करके चन्दनादि उपचारों से पूजन करे। शेष आठ कलशों में क्रमशः उमा, श्री, सरस्वती, दुर्गा, धारिणी, गायत्री, देवी, उषा का यजन क्रमशः सुगन्ध, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, भक्ष्य, भोज्य, नैवेद्य से विधिवत् करे। उन कलशों को स्पर्श करके तीन हजार मन्त्रजप करे। तब साध्य को लाकर शुभ्र स्थण्डिल के सुन्दर पीठ पर बैठाये। मनोहर अलंकार एवं विविध वस्त्रों से सादर उसे अलंकृत करे। सुरक्त सुमनोवृत्त सुवासिनी स्त्रियों द्वारा ब्राह्मणों का अर्चन कराये। सहस्र नाम का पाठ सभी बाजों के साथ करे। वेद घोष के साथ सुन्दर लग्न में मध्यस्थ कुम्भ से गुरु स्वयं मूल मन्त्र जपते हुए साध्य के शिर पर जल गिराये। स्नान के बाद शिष्य के शिर पर हाथ रखे। वेदघोष के साथ आशीष के रूप में कहे—तुम्हारा कल्याण हो एवं सम्पत्तियों की वृद्धि हो। महालक्ष्मी के साथ सभी देवता तुम पर प्रसन्न हों और सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें। सर्वदा तुम्हारी जय हो। इस प्रकार का आशीष देकर वस्त्र पहनाये। शिष्य आचमन करके गुरु को प्रणाम करे। शिष्य गुरु को देवता मानकर विविध वस्त्र, अलंकरण, धन-धान्य, रत्न, गाय-भैंस, दास-दासी प्रदान कर सन्तुष्ट करे। नाना प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य पदार्थ का अन्य द्विजों के साथ गरीबों एवं अन्धों को भी भोजन कराये। इसमें कृपणता न करे। तब अपने घर में बान्धवों के साथ उत्सव छः, तीन, दो, एक दिन तक मनाये। तब साधक अपने को कृतार्थ माने। इस प्रकार यथाविधि अभिषिक्त राजा शत्रुओं पर विजय पाता है, राजपुत्र शीघ्र राज्य पाता है। अभिषिक्त वन्ध्या स्त्री को पुत्र प्राप्त होता है। महाबुद्धि मिलती है। अभिषेक से भूत-प्रेतों के भय-कृत्यादि दोष से मनुष्य मुक्त हो जाता है। समस्त सम्पत्ति, सौभाग्य एवं यश प्राप्त करते हुये सभी आपदाओं का निवारण करते हुये सभी सुख प्राप्त करता है।

महालक्ष्मीयन्त्रान्तरम्

तथा—

श्रीमायाकामयुक्तं प्रणवगतमथो साध्यमालिख्य मध्ये
किञ्जल्केषूक्तबीजत्रितयमपि लिखेद् युग्मशश्चार्कपत्रे।
मन्त्रार्णान् षोडशारं स्वरलसितदलं कादियुक्पत्रमूलं
हक्षोद्यत्कोणभूमीगृहयुगलवषट्प्रान्ततूर्णावृतं स्यात् ॥१२४॥

यन्त्रमेतन्महालक्ष्म्याः प्रोक्तं संपत्करं परम्। सर्वसौभाग्यदं चापि सर्वदुःखविमोचनम् ॥१२५॥
आपन्निवारणं प्रोक्तं कि बहूक्तेन सर्वदम्। इति।

अस्यार्थः—द्वादशदलं पद्मं विरच्य तत्कर्णिकायां प्रणवं विलिख्य तस्योदरे श्रीमायाकामबीजानि (साध्यनाम च विलिख्य तत्केसरेषु प्रोक्तश्रीमायाकामबीजानि) प्रतिकेसरमेकैकमिति बीजत्रयस्याष्टावृत्त्या चतुर्विंशतिकेसरेष्वपि विलिख्य, द्वादशपत्रेषु मूलमन्त्रस्य वर्णानेकैकशो विलिख्य, तद्बहिः षोडशदलं पद्मं कृत्वा तत्केसरेषु ककारादिसकारान्तान् वर्णान् द्वात्रिंशतं द्वन्द्वशो विलिख्य दलेषु षोडश स्वरान् विलिख्य, तद्बहिश्चतुरस्रद्वयेनाष्टकोणं कृत्वा, तत्कोणेषु प्रतिकोणं हक्षौ विलिख्य वषडन्तया त्वरिताविद्यया वेष्टयेत्। अत्र त्वरिताविद्यावेष्टने तु अष्टकोणाद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा तयोरन्तरालवीथ्यां यथोक्तया त्वरिताविद्यया वेष्टयेदिति संप्रदायः। एतद्यन्त्रमुक्तफलदम्। तथा—

तारश्रीशक्तिलक्ष्मीकसूर्याः शिवयुता धरा। चतुराननसूर्यौ न दीर्घयुक्तः पुरन्दरः ॥१२६॥
उपान्त्यः शिवयुग्वायुर्लोहितोऽग्नियुतो भृगुः। चतुर्थस्वरयुक्थान्तः पुनरेतत्त्रयं वदेत् ॥१२७॥
बीजत्रयं महालक्ष्मि हृदन्तो गदितो मनुः। सर्वदो वै महालक्ष्म्या मन्त्रराजः प्रकीर्तितः ॥१२८॥ इति।

तारः प्रणवः श्रीः श्रीबीजं, शक्तिर्भुवनेशी, लक्ष्मीः श्रीबीजं, क स्वरूपं, सूर्यो मकारः, शिव ए, धरा ल तेन ले, चतुराननः क, सूर्यो म, दीर्घयुक्तः पुरन्दरः ला, उपान्त्यो ल, शिव ए, वायु य, तेन ये। लोहितः प, अग्निः रेफस्तेन प्र, भृगुः स, चतुर्थस्वर ई तेन सी, थान्तो द, पुनरेतत्त्रयं प्रसीदेति। बीजत्रयं श्रीशक्ति-लक्ष्मीबीजानि। महालक्ष्मि स्वरूपं, हृदन्तो नमोऽन्तः। अत्र केचित् लक्ष्मीशब्दं चतुर्थ्यन्तत्वेनेच्छन्ति, 'महालक्ष्म्यै' इत्येवोद्धरन्ति। तथाच प्रपञ्चसारे 'समहालक्ष्म्यै हृदिन्दिरामन्त्रः' इति (१२.२७)।

महालक्ष्मी—श्लोक १२६-१२८ के उद्धार करने पर सत्ताईस अक्षरों का महालक्ष्मी का मन्त्र यह होता है—ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः।

महालक्ष्मी यन्त्र निर्माण के क्रम में पहले द्वादश दल कमल बनावे। उसकी कर्णिका में ॐ के गर्भ श्रीं ह्रीं श्रीं साध्य नाम लिखे। प्रत्येक केसर में तीन बीजों की आठ आवृत्ति से निर्मित्त २४ अक्षरों में से दो-दो अक्षर बारह केसरों में लिखे। द्वादश पत्रों में मूल मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखे। उसके बाहर षोड़श दल बनावे। उसके दलों में क से स तक के बत्तीस वर्णों में से दो-दो वर्ण केसर में लिखे। दलों में एक-एक स्वर को लिखे। उसके बाहर दो भूपुर बनावे। उनके आठ कोनों में ह-क्ष लिखे। त्वरिता विद्या में 'वषट्' उसे जोड़कर वेष्टित करे। महालक्ष्मी के इस यन्त्र को परम सम्पत्कर कहा गया है। यह सर्वसौभाग्यदायक और सर्व दुःख-विमोचक है एवं आपत्ति-निवारक है। अधिक क्या कहा जाय; यह सबकुछ है।

मन्त्रराजध्यानप्रयोगविधिः

सारसंग्रहे—

त्रिबीजपुटितैर्मन्त्रवर्णैः पञ्चाङ्गमीरितम्। त्रीष्वग्निवह्निवेदैश्च ततो देवीं विचिन्तयेत् ॥१॥

इषुः ५ अग्निः ३ वेदः ४। ध्यानम्—

सिन्दूरारक्तकान्तिः सरसिजवसतिश्चारुलावण्यभूमि-
र्हस्ताब्जै रत्नपात्रं सरसिजयुगलं दर्पणं संवहन्ती।
दासीभिश्चाभिवीता मणिमयमुकुटा हारसत्कुण्डलाढ्या
काञ्चीप्रोद्यन्नितम्बाङ्गदलसितभुजा श्रेयसे वोऽस्तु लक्ष्मीः ॥२॥

वामाधःकरमारभ्य दक्षिणाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानं दक्षाधस्तादारभ्य वा।

पूर्वोदिते यजेत्पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना। पुराङ्गानि यजेत्पश्चात् श्रीधरादींस्ततः सुधीः ॥३॥
श्रीधरश्च हृषीकेशो वैकुण्ठो विश्वरूपकः। वासुदेवादयश्चेमे चत्वारः समुदीरिताः ॥४॥
भारत्यादिभिरन्या स्याद्भारती पार्वती तथा। चान्द्री शची च संप्रोक्ता दमकाद्यान् यजेद्गजान् ॥५॥
यजेद्बाणान् महालक्ष्म्या अनुरागादिकान् बहिः। अनुरागो विसंवादो विजयो वल्लभो मदः ॥६॥
हर्षो बलश्च तेजश्च यजेल्लोकेश्वरान् बहिः। तदायुधानि तद्बाह्ये पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥७॥
एवं संपूज्येल्लक्ष्मीं यो मर्त्यो विधिनामुना। तत्र नित्यं महालक्ष्मीर्वर्धते न जहाति तम् ॥८॥ इति।

अथ प्रयोगः—प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षप्रजापतये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुत्कीर्त्य, श्रींह्रींश्रीं कमले श्रींह्रींश्रीं हृदयाय नमः। श्रींह्रींश्रीं कमलालये श्रींह्रींश्रीं शिरसे स्वाहा। श्रींह्रींश्रीं प्रसीद श्रींह्रींश्रीं शिखायै वषट्। श्रींह्रींश्रीं प्रसीद श्रींह्रींश्रीं कवचाय हुं। श्रींह्रींश्रीं महालक्ष्म्यै श्रींह्रींश्रीं अस्त्राय फट्। इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् मूलाभिमृष्टयोः करयोरङ्गुष्ठादिकनिष्ठिकान्तास्वङ्गुलीषु विन्यस्य, नेत्रवर्जं हृदयादिषु च न्यसेत्। ततो ध्यानमानस-पूजान्तेऽष्टदलकमलत्रयं चतुर्द्वारयुतचतुरस्रत्रयावृतं पूजाचक्रमुद्धृत्य, अर्घ्यस्थापनाद्यङ्गपूजान्तेऽन्तरष्टदलेषु ॐ श्रीधराय नमः। हृषीकेशाय नमः। वैकुण्ठाय०। विश्वरूपाय०। वासुदेवाय०। संकर्षणाय०, प्रद्युम्नाय० अनिरुद्धाय०, इति देव्यग्रादि प्रादक्षिण्येन संपूज्य, द्वितीयेऽष्टदले दिक्पत्रेषु भारत्यै नमः। पार्वत्यै०। चान्द्र्यै०। शच्यै०। आग्नेयादिषु पत्रेषु दमकाय नमः, सलिलाय०, गुग्गुलवे०, कुरण्टकाय०, इति संपूज्य, तृतीयेऽष्टदले अनुरागाय नमः। विसं-वादाय०, विजयाय०, वल्लभाय०, मदाय०, हर्षाय०, बलाय०, तेजसे०, इति संपूज्य प्राग्वद् दिगीशादि शेषं समापयेत् इति। दक्षिणामूर्तिसंहितायां तु—अङ्गैः प्रथमावरणं, भारत्यादिचतसृभिः श्रीधरादिभिश्चतुर्भिश्च द्वितीयम्, अनुरागादिभिस्तृतीयं, ततो लोकेशास्तद्धेतयश्च इति पञ्चावरणमुक्तम्। दक्षिणामूर्तिः—

लक्षं जपेत् फलैर्बैल्वैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः। दशांशं संस्कृते वह्नौ प्राक्प्रोक्तेनैव वर्त्मना ॥१॥ इति।

एष जपः कृतयुगपरः।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः। चन्दनाक्तैः सरसिजैर्लक्षं प्रजुहुयात् सुधीः ॥२॥
लभते नृपतिर्वैरिसाम्राज्यं समरं विना। महालक्ष्मीमनुं चैव जपन् राजसभां व्रजेत् ॥३॥
तत्र संमान्यते नित्यं नात्र कार्या विचारणा। सहदेवी रमा दूर्वा क्रान्ता भद्रा मधुव्रता ॥४॥
शक्रवल्ली चाञ्जलिनी मुशली हरिचन्दनम्। घनसारं चन्दनञ्च कक्कोलं रोचनं च रुक् ॥५॥
मायूरकेसरां सर्वं पिष्ट्वा सम्यग् हरिद्रया। सञ्जप्तं मनुना सम्यगष्टोत्तरसहस्रतः ॥६॥
अनेन तिलकं कृत्वा सर्ववश्यं भवेद् ध्रुवम्।

रमा श्रीलता। क्रान्ता अपराजिता। हरिचन्दनं रक्तचन्दनम्। 'हरिर्ना कपिले त्रिषु' इति कोशात्। घनसारः कर्पूरः। रुक् कुष्ठम्।

सारसंग्रह में कहा गया है कि पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करे—
श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः।

श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा।
श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं शिखायै वषट्।
श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं कवचाय हुम्।
श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्।

पञ्चाङ्ग न्यास के बाद इस प्रकार ध्यान करे—

सिन्दूरारक्तकान्तिः सरसिजवसतिश्चारुलावण्यभूमिर्हस्ताब्जै रत्नपात्रं सरसिजयुगलं दर्पणं संवहन्ती।
दासीभिश्चाभिवीता मणिमयमुकुटा हारसत्कुण्डलाढ्या काञ्चीप्रोद्यन्नितम्बाङ्गदलसितभुजा श्रेयसे वोऽस्तु लक्ष्मीः।।

पूर्वोक्त प्रकार से आयुधों का ध्यान करे। तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि दक्षप्रजापतये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। इसके बाद पूर्ववत् विनियोग करके षडङ्ग न्यास करे—श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः। श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा। श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं शिखायै वषट्। श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं कवचाय हुं। श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्। मूल मन्त्र से हाथों को मलकर अंगूठे से कनिष्ठा तक न्यास करे और नेत्र छोड़कर हृदयादि न्यास करे। तब ध्यान करके मानस पूजा करे। तब पूर्वोक्त पूजाचक्र बनाकर अर्घ्य स्थापन से अंगपूजा तक करे। पूजाचक्र में तीन अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर चार द्वारयुक्त तीन चतुरस्र बनावे। अंगपूजा करे। प्रथम आवरण से पहले अष्टदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से ॐ श्रीधराय नमः। ॐ हृषीकेशाय नमः। ॐ वैकुण्ठाय नमः। ॐ विश्वरूपाय नमः। ॐ वासुदेवाय नमः। ॐ संकर्षणाय नमः। ॐ प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अनिरुद्धाय नमः—इस प्रकार पूजन करे।

द्वितीय आवरण में द्वितीय अष्टदल के दिक्पत्रों में भारत्यै नमः। पार्वत्यै नमः। चान्द्र्यै नमः। शच्यै नमः। आग्नेयादि पत्रों में—दमकाय नमः। सलिलाय नमः। गुग्गुलवे नमः। कुरण्टकाय नमः—इस प्रकार पूजन करे।

तृतीय आवरण में तृतीय अष्टदल में अनुरागाय नमः। विसंवादाय नमः। विजयाय नमः। वल्लभाय नमः। मदाय नमः। हर्षाय नमः। बलाय नमः। तेजसे नमः—इस प्रकार पूजन करे। प्रथम भूपुर रेखा में इन्द्रादि दश दिक्पाल का पूजन चतुर्थावरण में एवं द्वितीय भूपुर में उनके आयुध पूजन पञ्चम आवरण में किया जाता है।

दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि एक लाख जप करे। दशांश हवन मधुराक्त विल्वफल से करे। हवन संस्कृत अग्नि में पूर्वोक्त प्रकार से करे। जप की संख्या यहाँ सत्ययुग हेतु कही गई है; कलियुग में इसका चौगुना अर्थात् चार लाख जप करना चाहिये।

इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से मन्त्री अपना इष्ट साधन करे। चन्दनाक्त कमल से एक लाख हवन करे तो राजा को युद्ध के बिना ही साम्राज्य मिलता है। महालक्ष्मी मन्त्र का जप करके राज्यसभा में जाने से साधक नित्य सम्मानित होता है। सहदेवी, बेल, दूर्वा, अपराजिता, मुस्ता, भृंगराज, इन्द्रवल्ली, हाथाजोड़ी, हरिचन्दन, घनसार, चन्दन, कक्कोल, गोरोचन, कुष्ठ, मायूरकेसरी और हल्दी को मिलाकर पीसकर बनाये गये लेप को एक सौ आठ जप से मन्त्रित करके उससे तिलक लगावे तो सभी वश में होते हैं।

चतुर्दशैकादशार्णादिमन्त्रोद्धारः

सारसंग्रहे—

प्रणवं शुद्धवासान्ते से हृदन्ते महापदम्। ङेन्तश्रीहृन्मनुः प्रोक्तश्चतुर्दशभिरक्षरैः ॥१॥

शुद्धवास स्वरूपं। से स्वरूपं। हृन्नमः। महा स्वरूपं। ङेन्ता श्रीः श्रियै। हृन्नमः।

मनोः पदैश्च पञ्चाङ्गं पूर्ववद् ध्यानपूजनम्। जपस्त्रिलक्षमेतस्य पद्मैर्होमो दशांशतः ॥२॥

पूर्ववत् महालक्ष्मीमन्त्रवत्। जपः कलियुगपरः। तेनर्ष्यादिकमपि तत्रोक्तं ज्ञेयम्। तथा—

यौतौमौतभये प्रोक्त्वा श्रियै श्रीर्नम इत्यथ। एकादशार्णो मन्त्रोऽयं जमदग्निर्मुनिर्मतः ॥३॥
यौतौमौतभये स्वरूपं, श्रियै श्रीर्नम इत्यपि स्वरूपम्।

त्रिष्टुप् छन्दो रमादेवी देवता परिकीर्तिता। आद्यषण्मन्त्रवर्णैश्च हृदन्तैर्हृद्द्विठान्तकैः ॥४॥
शिरः शिखा वषट् भूयो हृत्(र्हुं)प्रान्तैः कवचं मतम्। श्रियै नेत्रं श्रीर्नमोऽस्त्रं विदध्याद्ध्यानमुक्तवत् ॥५॥

ध्यानमित्युपलक्षणम्। पूजादिकमपि तथा ज्ञेयम्। अथ प्रयोगः—प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि जमदग्नये ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः, हृदि श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, यौतौमौतभये नमः हृदयाय नमः, यौतौमौतभये स्वाहा शिरसे स्वाहा, यौतौमौतभये वषट् शिखायै वषट्, यौतौमौतभये हुं कवचाय हुं। श्रियै नेत्रत्रयाय वौषट्। श्रीर्नमः अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रान् प्राग्वत् करयोर्हृदयादिषु च विन्यस्य शेषं महालक्ष्मीवत् सर्वं कुर्यात्। तथा—

नित्यं द्वादशसाहस्रं सप्तरात्रं मनुं जपेत्। तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकस्य न संशयः ॥६॥

अत्र होमो नोक्तः। तथापि पूर्वोक्तमन्त्रहोमद्रव्यैर्जपदशांशतो होमः कार्यः, इति सांप्रदायिकाः। तथा—
लक्ष्मीं सुवर्णाब्जकरां ध्यात्वा मन्त्रमिमं जपेत्। अष्टोत्तरसहस्रं च स लभेद्वाञ्छितां श्रियम् ॥७॥
जपन्नष्टशतं विश्वं तिलकाद्वशयेद् ध्रुवम्। मासत्रयं तथा जप्त्वा ग्रामं मन्त्री समाप्नुयात् ॥८॥

तथा—
पद्मप्रभेपदं पद्मसुन्दरीति पदं वदेत्। पद्मर्षेऽग्निवधूर्मन्त्रश्चतुर्दशभिरक्षरैः ॥९॥
मन्त्रोद्धारस्तु सुगमः।

पदैश्चतुर्भिः सर्वेण पञ्चाङ्गं गदितं मनोः। जपपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ॥१०॥

पूर्ववदेकादशाक्षरोक्तवत्। 'इयं सिद्धा महाविद्या भक्तानां कल्पवल्लिका'। एतेन पुरश्चरणमपि तत्रोक्तमेव। अथ शक्तिलक्ष्मीमन्त्रः स तु वक्ष्यमाणत्रिपुटामन्त्र एव (२२ श्वा०) यजनविधिरपि तत्रोक्त एव ज्ञेयः।

श्री लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—सारसंग्रह के मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर लक्ष्मी का चौदह अक्षरों का मन्त्र होता है—ॐ शुद्धवाससे नमो महाश्रियै नमः।

मन्त्र के पाँच पदों—१. ॐ, २. शुद्धवाससे, ३. नमः, ४. महाश्रियै, ५. नमः से हृदय, शिर, शिखा, कवच और अस्त्र में पञ्चाङ्ग न्यास करे। पूर्ववत् ध्यान-पूजन के बाद तीन लाख मन्त्र जप करे। दशांश कमलों से हवन करे।

लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—श्लोक तीन के उद्धार करने पर ग्यारह अक्षरों का मन्त्र होता है—यौतौमौतभये श्रियै श्रीः नमः।

पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि जमदग्नये ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः। पूर्ववत् विनियोग करे। षडङ्ग न्यास करे—यौतौमौतभये नमः हृदयाय नमः। यौतौमौतभये स्वाहा शिरसे स्वाहा। यौतौमौतभये वषट् शिखायै वषट्। यौतौमौतभये हुं कवचाय हुम्। श्रियै नेत्रत्रयाय वौषट्। श्रीः नमः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे। शेष सब महालक्ष्मी के समान करे। सात रातों तक नित्य बारह हजार जप करे तो मन्त्र सिद्ध होता है। यहाँ पर हवन उक्त नहीं है; फिर भी पूर्वोक्त पूर्वोक्त मन्त्र एवं हवन द्रव्यों से दशांश हवन करना चाहिये।

हाथों में सुवर्ण धारण करने वाली लक्ष्मी का ध्यान करते हुए इस मन्त्र का एक हजार आठ जप करे तो वांछित धन मिलता है। तिलक को एक सौ आठ जप से मंत्रित करके लगाने से विश्व वश में होता है। तीन महीनों तक जप करने से मन्त्री को ग्राम मिलता है।

श्लोक ९ का उद्धार करने पर लक्ष्मी का चौदह अक्षरों का मन्त्र होता है—पद्मप्रभे पद्मसुन्दरि पद्मेशि स्वाहा। मन्त्र के चार पदों से और पूरे मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करे। जप-पूजादि सभी पूर्वोक्त एकादशाक्षरी मन्त्र के समान करे। यह सिद्ध महाविद्या भक्तों के लिये कल्पवल्लरी के समान होती है। शक्तिलक्ष्मी मन्त्र पूर्वोक्त त्रिपुटा मन्त्र को ही कहते हैं।

साम्राज्यलक्ष्मीमन्त्रयन्त्रादिप्रयोगः

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

अथ वक्ष्ये महादेवि सर्वसाम्राज्यदेवताम्। यस्या आराधनाद्विष्णुरभूल्लक्ष्मीपतिः स्वयम्॥१॥
चन्द्रः समदनं क्ष्मेशो वह्निदीर्घाक्षिमण्डितः। बिन्द्वक्रूरेष्वरीयुक्तो विद्येयं वैष्णवी प्रिये॥२॥
श्रीबीजं संपुटं कुर्यात् सर्वसाम्राज्यदायिनी। इति।

चन्द्रः स, मदनं ककारः, क्ष्मा लकारः, ईशो हकारः, वह्नी रेफः, दीर्घाक्षी ईकारः, बिन्दुशब्देन नादो गृह्यते जनकजन्ययोस्तयोरभेदात्। नादबिन्द्वोर्जनकजन्यत्वम्। तत्र शारदातिलके—'आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः' (१.७) इति। अक्रूरेश्वरी बिन्दुः एतेन मायोद्धृता। तथा—

ऋषिर्हरिस्तथा छन्दो गायत्री चास्य संमता॥३॥
देवता मोहिनी लक्ष्मीः सर्वसाम्राज्यदायिनी। बीजं कूटं समाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते॥४॥
षड्भिः कूटं स्वरैर्भित्त्वा षडङ्गानि प्रविन्यसेत्। अतसीपुष्पसंकाशां रत्नभूषणभूषिताम्॥५॥
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः। षड्भिः कराभ्यां देवेशि वरदाभयशोभिताम्॥६॥

ध्यायेदिति शेषः। वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोरपरे, तदाद्यधःस्थयोरितरे इत्यायुधध्यानम्। तथा—

……………………यन्त्रोद्धारं शृणु प्रिये। त्रिकोणं चाष्टपत्रं च भूबिम्बं च ततो लिखेत्॥७॥
चतुर्द्वारोपशोभाढ्यं यन्त्रमेतत्समालिखेत्। अस्मिन् समावाह्य देवीं पूजयेदुपचारकैः॥८॥
पूर्ववत् परमेशानि षडङ्गावरणं यजेत्। गायत्री चैव सावित्री सरस्वत्यग्रकोणतः॥९॥
क्रमेण पूजयेन्मन्त्री ब्राह्म्याद्याश्च स्वरैः पृथक्। अष्टपत्रेषु भूबिम्बे चैकोच्चारेण पूजयेत्॥१०॥
अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमो लिखेत्। अनेन मनुना पश्चादिन्द्रादीन् पूजयेत्ततः॥११॥
पुनर्देवीं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। वटुकक्षेत्रपालेभ्यो योगिनीभ्यो बलिं हरेत्॥१२॥

अत्र वटुकक्षेत्रपालेभ्य इति बहुवचनं गणेशस्यापि ग्रहणार्थम्। तेन वटुकक्षेत्रपालगणेशेभ्य इत्यर्थः। अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि हरये ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीसर्वसाम्राज्यलक्ष्म्यै देवतायै नमः, गुह्ये सकलह्रींबीजाय नमः, पादयोः श्रींशक्तये नमः, इति विन्यस्य ममेत्यादि प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, सकलां हृदयाय नमः, सकलीं शिरसे स्वाहाः, सकलूं शिखायै वषट्, सकलैं कवचाय हुं, सकलौं नेत्रत्रयाय वौषट्, सकलः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रैः प्राग्वत् करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तं लक्ष्मीपीठमभ्यर्च्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, त्रिकोणाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ गायत्र्यै नमः, सावित्र्यै नमः, सरस्वत्यै नमः, इति सम्पूज्याष्टदलेषु प्राग्वत् ब्राह्म्याद्याः संपूज्य, चतुरस्रे 'अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमः' इति देवीं परितः संपूज्य लोकेशार्चादि प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

एवमष्टभुजां ध्यात्वा त्रिलक्षं प्रजपेत् सुधीः। तद्दशांशेन पद्मैस्तु हुनेत् साम्राज्यसिद्धये॥१३॥
जितेन्द्रियः सन् विधिवत्……………। इति।

अत्र विधिवदित्यनेन तर्पणादिब्राह्मणभोजनान्तं कर्तव्यमित्युक्तम्।

सर्वसाम्राज्य लक्ष्मी मन्त्र—दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि हे महादेवि! अब मैं साम्राज्य देवता को कहता हूँ, जिसके आराधन से स्वयं विष्णु लक्ष्मीपति हुए हैं। श्लोक २ का उद्धार करने पर साम्राज्यलक्ष्मी का मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—श्रीं सकलह्रीं श्रीं। यह विद्या सर्वसाम्राज्यदायिनी है।

प्रात:कृत्यादि से योगपीठ न्यास तक की क्रिया के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि हरये ऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये श्रीसर्वसाम्राज्यलक्ष्म्यै देवतायै नम:। गुह्ये सकलह्रीं बीजाय नम:। पादयो: श्रीं शक्तये नम:। तदनन्तर पूर्ववत विनियोग करके षडङ्ग न्यास करे—सकलां हृदयाय नम:। सकलीं शिरसे स्वाहा। सकलूं शिखायै वषट्। सकलैं कवचाय हुम्। सकलौं नेत्रत्रयाय वौषट्। सकल: अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे। तब निम्नवत् ध्यान करे—

अतसीपुष्पसंकाशां रत्नभूषणभूषिताम्। शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करै:।।
षड्भि: कराभ्यां देवेशि वरदाभयशोभिताम्।

पूजन यन्त्र—पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर अष्टपत्र कमल बनावे। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त भूपुर बनावे। यन्त्र के मध्य में देवी की और षडंगों की पूजा करे। त्रिकोण के कोणों में गायत्र्यै नम:, सावित्र्यै नम:, सरस्वत्यै नम: से पूजा करे। अष्टदल में ब्राह्मी आदि मातृकाओं की पूजा करे। चतुरस्र में 'अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नम:' से देवी के आगे पूजा करे। तब इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करे। पुन: देवी की पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्यादि से करके वटुकयोगिनी, गणेश, क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करे। तदनन्तर अष्टभुजा का ध्यान करके साधक जितेन्द्रिय रहकर तीन लाख मन्त्रजप करे और उसका दशांश कमल से हवन करे तो साम्राज्य सिद्ध होता है।

सप्तार्णमन्त्र:

तथा सारसंग्रहे—

हृदयं पद्मतनया संबुद्ध्यन्तो रमामनु:। सप्तार्णो गदितश्चास्य षडङ्गान्यमुनैव हि ।।१।।

नमो हृ०, पद्मतनये शि०, नम: शिखा०, पद्मतनये कवचा०, नमो नेत्रा०, पद्मतनये अस्त्रा०। 'ध्यान-पूजाहुतार्चादि पूर्ववच्चास्य कीर्तितम्' इति। पूर्ववदेकाक्षरोक्तवत्।

लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार रमा का सप्ताक्षरी मन्त्र है—नम: पद्मतनये। इसके षडङ्ग न्यास दूसरे मन्त्रों के समान ही होते हैं। नमो हृदयाय नम:। पद्मतनये शिरसे स्वाहा। नम: शिखायै वषट्। पद्मतनये कवचाय हुम्। नमो नेत्रत्रयाय वौषट्। पद्मतनये अस्त्राय फट्। ध्यान-पूजा-हवन-अर्चा पूर्ववत् एकाक्षर मन्त्र के समान ही करना चाहिये।

श्रीसूक्तविधानम्

तथा—

रमामन्त्रेषु यो भक्त: श्रीसूक्तं स जपेत्सुधी:। विधानं वक्ष्यते सम्यक् पञ्चदशर्चकस्य हि ।।१।।
हिरण्यवर्णामित्यस्या ऋचो लक्ष्मीर्मुनिर्मत:। छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातमन्यासां मुनय: क्रमात् ।।२।।
आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रा अमी मता:। तामआवहजाताश्वपूर्वामित्यनयोर्मत: ।।३।।
छन्दोऽनुष्टुप्च कांसोस्मितामस्या बृहती मतम्। चन्द्रां प्रभादित्यवर्णामनयोस्त्रिष्टुबीरितम् ।।४।।
उपैतु मां क्षुत्पिपासा गन्धद्वारां दुरेति च। मनस: कर्दमेनाप: सृजन्त्यार्द्रां च सप्तमी ।।५।।
आर्द्रां पुष्करिणीमासामष्टर्चां च प्रकीर्तितम्। छन्दोऽनुष्टुप्तथा ताम आवहास्या: प्रकीर्तितम् ।।६।।
प्रस्तारपङ्क्ति: सर्वासां देवते श्रीर्विभावसु:। मूर्धाक्षिकर्णनासास्यगलदोर्हृत्स्तनाभिषु ।।७।।
गुह्यपायूरुयुग्जानुजङ्घापत्सु न्यसेदृच:। हिरण्मयी च चन्द्रा च तृतीया रजतस्त्रजा ।।८।।
हिरण्याद्या स्त्रजा त्वन्या हिरण्या च तथापरा। हिरण्यवर्णा चैताभि: कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ।।९।।

एताभिश्चतुर्थीनमोन्ताभि:। 'एताभिर्ङेनमोन्ताभिरङ्गकल्पनमीरितम्' इति मन्त्रतन्त्रप्रकाशवचनात्। ध्यानम्—

संरक्तोद्यत्सरसिजरज:पुञ्जवर्णा कराब्जैरिष्टाभीती कमलयुगलं धारयन्ती मनोज्ञा।
सम्यक् शोणप्रवरनलिने संस्थिता चारुभूषा भूयाद्भूत्यै भुवनजननी श्रीरियं रत्नमौलि: ।।१०।।

एकाक्षरोक्तवदायुधध्यानम्।

यजेद् देवीं पुरा प्रोक्ते पीठे आवाह्य मन्त्रवित्। यजेदङ्गानि पद्माद्या लोकपालाः सहेतयः ॥११॥
आवाहनं चासनं स्यादर्घ्यपाद्याचमानि च। मधुपर्काभिषेकौ च वस्त्रालङ्कारचन्दनम् ॥१२॥
पुष्पं धूपं दीपभोज्ये प्रोद्वासनमथापि च। एतानि मन्त्रवित् कुर्यादृक्पञ्चदशकेन हि ॥१३॥
पद्माद्या पद्मवर्णान्या पद्मस्थार्द्रा तुरीयका। तर्पयन्ती सतृप्तान्या ज्वलन्ती सप्तमी मता ॥१४॥
स्वर्णप्राकारसंज्ञेयमष्टमी समुदाहृता। इति।

अथ प्रयोगः—प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते प्रणवेन श्रीबीजेन वा प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि आनन्दक-र्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः। मुखे अनुष्टुप्बृहतीत्रिष्टुबनुष्टुप्प्रस्तारपङ्क्तिभ्यश्छन्दोभ्यो नमः। हृदि श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यां नमः, इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, हिरण्मय्यै नमः हृदयाय नमः, चन्द्रायै नमः शिरसे स्वाहा, रजतस्रजायै नमः शिखायै वषट्, हिरण्यस्रजायै नमः कवचाय हुं, हिरण्यायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, हिरण्यवर्णायै नमः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य, शिरसि ॐहिरण्यवर्णामित्यादि० नमः। नेत्रयोः ॐताम्म आवह० नमः। कर्णयोः ॐ अश्वपूर्वां० नमः। नासायां ॐकांसोस्मितां० नमः। मुखे ॐचन्द्रां० नमः। गले ॐआदित्यवर्णे० नमः। बाह्वोः ॐउपैतु मां० नमः। हृदि ॐक्षुत्पिपासा० नमः। नाभौ ॐगन्धद्वारां नमः। गुह्ये ॐमनसः० नमः। गुदे ॐ कर्दमेन० नमः। ऊर्वोः ॐआपः सृजन्ति० नमः। जान्वो ॐआर्द्रां० नमः। जङ्घयोः ॐआर्द्रां० नमः। पादयोः ॐताम्म० नमः। एवमेता ऋचः प्रणवादिनमोन्ता विन्यस्य ध्यानमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुतं चतुरस्रत्रयावृतमष्टदलकमलं पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतो निधायार्घ्यस्थापनादिपीठार्चनान्ते,

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१॥
इत्यृचा प्राग्वदावाहनीयमुद्रयावाह्य आवाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय,

ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥२॥
श्रीरेतत्त आसनं नमः।

ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीजुषताम्॥३॥
श्रीरेतत्त अर्घ्यं स्वाहा।

ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥४॥
श्रीरेतत्ते पाद्यं नमः।

ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनेमिं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥५॥
श्रीरेतत्ते आचमनीयं सुधा।

ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तराश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥६॥
श्रीरेष ते मधुपर्क्कः सुधा। ततः पूर्ववदाचनीयम्।

ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिं वृद्धिं ददातु मे ॥७॥
श्रीरेतत्ते स्नानं नमः।

ॐ क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीर्नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वा निर्णुद मे गृहात् ॥८॥
श्रीरेते ते वाससी नमः। ततः पूर्ववदाचमनीयम्।

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥९॥
श्रीरेतानि ते भूषणानि नमः।

ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥
श्रीरेष ते गन्धो नमः।

ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभ्रम कर्दम। श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥
श्रीरेतत्ते पुष्पं वौषट्। इति पुष्पान्तानुपचारानुपचर्य्य पूर्ववदङ्गानि संपूज्याष्टदले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन, ॐ पद्मायै नमः, ॐ पद्मवर्णायै नमः, ॐ पद्मस्थायै नमः, आर्द्रायै नमः, तर्पयन्त्यै नमः, तृप्तायै नमः, ज्वलन्त्यै नमः, स्वर्णप्राकारायै नमः, इति संपूज्य प्राग्वल्लोकपालांस्तदायुधानि च संपूज्य,

ॐ आपः सृजन्ति स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥
श्रीरेष ते धूपो नमः।

ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१३॥
श्रीरेष ते दीपो नमः।

ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्। सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१४॥
श्रीरेतत्ते नैवेद्यं नमः। ततः पुनराचमनादिकं दत्त्वा ताम्बूलादि सर्वं प्राक्पूजा प्रकरणोक्तप्रकारेण कृत्वा,

ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् बिन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥

श्रीः क्षमस्व, इति विसृज्य शेषं प्राग्वत्कृत्वा समापयेदिति। अत्र सर्वेषूपचारेषु प्राग्वत् पूजाप्रकरणोक्तप्रकारेण यत्र यद्यत् कर्तव्यं तत्र तत्तत् सर्वं कुर्यात्।

श्रीसूक्त विधान—लक्ष्मीमन्त्रों में जो श्रीसूक्त जपता है, उस अर्चक के लिये विधान को सम्यक् रूप से कहता हूँ। हिरण्यवर्णाम् ऋचा के ऋषि लक्ष्मी और छन्द अनुष्टुप् है। क्रमश: आनन्दकर्दम और चिक्लीत श्रीपुत्र ऋषि ताम आवह जातवेद और अश्वपूर्वां मन्त्र के हैं। इनका भी छन्द अनुष्टुप् है। कांसोस्मिता का छन्द वृहती है। चन्द्रांप्रभासा एवं आदित्य-वर्णा के छन्द त्रिष्टुप् हैं। उपैतु मां, क्षुत्पिपासा, गन्धद्वारां दुराधर्षां, मनसः, कर्दमेन, आप: सृजन्ति, आर्द्रां पुष्करिणीं, आर्द्रां यष्करिणी—इन आठ ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् है। ताम्म आवाह का छन्द प्रस्तारपंक्ति है। इन सबों के देवता लक्ष्मी हैं। इन पन्द्रह ऋचाओं का न्यास मूर्धा, आँख, कान, नाक, गला, हृदय, नाभि, गुह्य, पायु, उरु, जानु, जंघा में करे। हिरण्मयी, चन्द्रा, रजतस्रजा, हिरण्या आद्या, हिरण्या, अपरा, हिरण्यवर्णां से षडङ्ग न्यास करे। इनके चतुर्थी रूप के साथ नम: लगाकर न्यास करे। इनका ध्यान इस प्रकार करे—

संरक्तोद्यत्सरसिजरज:पुञ्जवर्णा कराब्जैरिष्टाभीती कमलयुगलं धारयन्ती मनोज्ञा।
सम्यक् शोणप्रवरनलिने संस्थिता चारुभूषा भूयाद्भूत्यै भुवनजननी श्रीरियं रत्नमौलि:।।

एकाक्षरोक्त आयुध-ध्यान के समान आयुध-ध्यान करे।

पहले अष्टदल कमल बनाये। उसके बाहर चार द्वारयुक्त तीन भूपुर बनाकर पूजन यन्त्र बनाये। उसे पूर्ववत् योगपीठ पर स्थापित करे। ॐ श्रीं से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्य: ऋषिभ्यो नम:। मुखे अनुष्टुप् बृहती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् प्रस्तारपंक्तिश्छन्दोभ्यो नम:। हृदि श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यां नम:। इसके बाद पूर्ववत् विनियोग कहकर षडङ्ग न्यास करे—हिरण्मय्यै नम: हृदयाय नम:। चन्द्रायै नम: शिरसे स्वाहा। रजतस्रजायै नम: शिखायै वषट्। हिरण्यस्रजायै नम: कवचाय हुम्। हिरण्यायै नम: नेत्रत्रयाय वौषट्। हिरण्यवर्णायै नम: अस्त्राय फट्।

ऋचा न्यास—शिर पर—ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह नमः। आँखों में—ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् नमः। कानों में—ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीजुषताम् नमः। नासिका में—ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्। पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् नमः। मुख में—ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्। तां पद्मनेमिं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि नमः। गले में—ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तराश्च बाह्या अलक्ष्मीः नमः। भुजाओं में—ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिं वृद्धिं ददातु मे नमः। हृदय में—ॐ क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीर्नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वा निर्णुद मे गृहात् नमः। नाभि में—ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् नमः। गुह्य में—ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः नमः। गुदा में—ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभ्रम कर्दम। श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्ममालिनीम् नमः। ऊरुओं में—ॐ आपः सृजन्ति स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुल नमः। जानुओं में—ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह नमः। जांघों में—ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्। सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह नमः। पैरों में—ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् बिन्देयं पुरुषानहम् नमः। इस ऋचान्यास के बाद ध्यान और मानस पूजा करे। तदनन्तर अपने आगे अर्घ्य-स्थापन कर पीठपूजा करे।

श्रीसूक्त की प्रथम ऋचा से आवाहनी मुद्रा दिखाते हुये देवी का आवाहन कर आवाहन से परमीकरण तक की मुद्राओं को दिखाकर क्रमशः द्वितीय ऋचा से आसन, तृतीय से अर्घ्य, चतुर्थ से पाद्य, पञ्चम से आचमनीय, षष्ठ से मधुपर्क, सप्तम से स्नान, अष्टम से वस्त्र, नवम से आभूषण, दशम से गन्ध और एकादश से पुष्प अर्पण कर षडङ्ग पूजन पूर्ववत् यन्त्रमध्य में करे। अष्टदल में अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजा करे—ॐ पद्मायै नमः। ॐ पद्मवर्णायै नमः। ॐ पद्मस्थायै नमः। ॐ आर्द्रायै नमः। ॐ तर्पयन्त्यै नमः। ॐ तृप्तायै नमः। ॐ ज्वलन्त्यै नमः। ॐ स्वर्णप्राकारायै नमः। अष्टदल में पूजा के बाद पूर्ववत् भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करे। तदनन्तर बारहवीं ऋचा से धूप, तेरहवीं से दीपक, एवं चौदहवीं से नैवेद्य अर्पण के बाद पुनः आचमनीय ताम्बूलादि सब कुछ पूर्ववत् अर्पण करके पन्द्रहवीं ऋचा से श्रीः क्षमस्व कहकर विसर्जन करके शेष क्रिया पूर्ववत् करके पूजा का समापन करे।

तथा—

प्रारभ्य शुक्लप्रतिपद्यावदेकादशी भवेत् ॥१५॥
तावद् द्वादशसाहस्रं जपन् निश्चलमानसः। ब्रह्मचर्यरतः शुद्धवस्त्रदन्तादिकः सुधीः ॥१६॥
पद्मैस्त्रिमधुरोपैतैर्घृताक्तेन पयोन्धसा। श्रीसमिद्भिः सर्पिषा च प्रत्येकं त्रिशतं हुनेत् ॥१७॥
श्रीसमिद्भिर्बिल्वसमिद्भिः।

द्वादश्यां द्वादशैवाथ विप्रांश्चैव तु भोजयेत्। तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रो नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥

अत्र द्वादशसाहस्रमृचां न तु सूक्तस्य, इति संप्रदायः। एकादशभिर्दिनैः सूक्तस्य द्वादशसाहस्रावृत्तेरसंभवादशक्यत्वाच्च। तदा त्वेकादशभिर्दिनैरष्टशतावृत्तिः सूक्तस्य कार्या। तत्राष्टदिनपर्यन्तं प्रत्यहं त्रिसप्तत्यावृत्तिः सूक्तस्य कार्या, अनन्तरदिनत्रये द्वासप्तत्यावृत्तिः प्रत्यहं कार्या, तेन द्वादशसाहस्रमृचामावृत्तिर्भवतीति। तथा—

कुन्दमन्दारकुमुदमालतीपद्मकेतकाः। नन्द्यावर्तद्वयं जाती कह्लारं चम्पकं तथा ॥१९॥
रक्तोत्पलादिपुष्पाणि लक्ष्म्याश्चातिप्रियाणि हि। स्नानकाले च तैः सूक्तैरभिषिञ्चेत्त्रिशः सुधीः ॥२०॥
यावज्जपेद्रविमुखस्तर्पयेत् तावदेव तु। पूर्वोक्तविधिना सम्यक्पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥२१॥
त्रिवारं प्रत्यहं मन्त्री जुहुयाच्च यथाविधि। षण्मासं यः करोत्येवं साक्षाल्लक्ष्मीपतिः स्वयम् ॥२२॥

विकचन्मात्र एवाब्जे नवनीतं प्रविन्यसेत्। मध्ये सकेसरे पद्मे सम्यक्पत्रान्तरालके ॥२३॥
सुसमिद्धेऽनले तच्च समुद्धृत्य हुनेत्सुधीः। अन्त्यर्चाष्टोत्तरशतं जपंश्च भृगुवासरैः ॥२४॥
चत्वारिंशद्भिरस्य स्यान्महालक्ष्मीरचञ्चला। तुरीयर्चा च जुहुयाद् घृतेनैकादशाहुतीः ॥२५॥
एवं कुर्वत एवास्य षण्मासात्स्यान्महेन्दिरा। प्रधानतर्पणान्ते च संतर्प्याः शक्तयस्त्विमाः ॥२६॥
प्रणवाद्या हृदन्ताश्च श्रीर्लक्ष्मीर्वरदायिका। विष्णुपत्नी च वसुदा रूपाप्यन्या हिरण्यतः ॥२७॥
स्वर्णमालिन्यपि परा ततः स्याद्रजतस्रजा। सुवर्णादिगृहा स्वर्णप्राकारा पद्मवासिनी ॥२८॥
पद्महस्तप्रिया मुक्तालङ्कारा सूर्यकापरा। चन्द्रा विश्व(बिल्व)प्रियेश्वर्यौ भुक्तिश्चापि प्रमुक्तियुक् ॥२९॥
विभुर्वृद्धिः समृद्धिश्च तुष्टिः पुष्टिर्धनाद्यदा। भुवनेशी च शुद्धा स्याद्योगिनी भोगदा मता ॥३०॥
धात्री विधात्री द्वात्रिंच्छक्तयः समुदीरिताः। द्वात्रिंशद्भिश्च पूजान्ते मन्त्री मन्त्रैर्बलिं हरेत् ॥३१॥
मन्त्रैर्नाममन्त्रैः, श्रीरेष ते बलिर्नमः इत्यादिभिः।

शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ करके एकादशी तक बारह हजार ऋचा का जप करे। जपकाल में ब्रह्मचर्य रहे। शुद्ध वस्त्र धारण करे और दाँतों को शुद्ध रखे। त्रिमधुराक्त कमल, घृताक्त पयोन्धसा बेल की समिधा और गोघृत से क्रमशः तीन-तीन सौ आहुति प्रदान करे। द्वादशी तिथि में बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध होता है।

बारह हजार जप एक-एक ऋचाओं का करना चाहिये, न कि सम्पूर्ण श्रीसूक्त का; क्योंकि ग्यारह दिनों में सूक्त का बारह हजार बार जप असम्भव भी है और अशक्य है। आठ दिनों तक प्रतिदिन सूक्त की ७३ आवृत्ति और आगे के तीन दिनों तक बहत्तर आवृत्ति करने से १२ हजार आवृत्ति ऋचा की होती है।

श्री लक्ष्मी के अतिप्रिय पुष्प हैं—कुन्द, मन्दार, कुमुद, मालती, कमल, केतकी, नन्द्यावर्तद्वय, जाती, कल्हार, चम्पा, लाल कमल। स्नान के समय उपर्युक्त सूक्तों से तीन-तीन बार अभिषिञ्चन करे। जब तक जप करे तब तक सूर्य की ओर मुख करके बैठे। तर्पण भी वैसे ही करे। पूर्वोक्त विधि से परमेश्वरी की पूजा सम्यक् रूप से करे। प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में हवन करे। छः महीनों तक ऐसा करने से साधक साक्षात् लक्ष्मीपति हो जाता है। अविकसित कमल के केसर में तथा पत्तों में मक्खन भरकर प्रज्वलित अग्नि में हवन करे। अर्चा के अन्त में शुक्रवार को एक सौ आठ जप करे। चालीस दिनों तक ऐसा करने से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। चौथी ऋचा से घृत की ग्यारह आहुति प्रदान करे तो छः महीनों में महालक्ष्मी प्राप्त होती है। प्रधान तर्पण के बाद इनकी शक्तियों का इस प्रकार तर्पण करे—ॐ श्रियै नमः। लक्ष्म्यै नमः। वरदायिकायै नमः। ॐ विष्णुपत्न्यै नमः। ॐ वसुदायै नमः। ॐ हिरण्याय नमः। ॐ रूपायै नमः। ॐ स्वर्णमालिन्यै नमः। ॐ रजतस्रजायै नमः। ॐ सुवर्णादिगृहाय नमः। ॐ स्वर्णप्राकाराय नमः। ॐ पद्मवासिन्यै नमः। ॐ पद्महस्तप्रियायै नमः। ॐ मुक्तालंकारायै नमः। ॐ सूर्यकापरायै नमः। ॐ चन्द्रायै नमः। ॐ बिल्वप्रियेश्वर्यै नमः। ॐ भुक्त्यै नमः। ॐ मुक्त्यै नमः। ॐ भूत्ये नमः। ऋद्ध्यै नमः। ॐ समृद्ध्यै नमः। ॐ तुष्ट्यै नमः। ॐ पुष्ट्यै नमः। ॐ धनदायै नमः। ॐ आढ्यदायै नमः। ॐ भुवनेश्यै नमः। ॐ शुद्धायै नमः। ॐ योगिन्यै नमः। ॐ भोगदायै नमः। ॐ धात्र्यै नमः। ॐ विधात्र्यै नमः। इन बत्तीस शक्तियों की पूजा के बाद साधक नाममन्त्रों से बलि प्रदान करे।

श्रीमन्त्रजापिनां नियमाः

श्रीमन्त्रजापिनां केचिदुच्यन्ते नियमा इह। तैलाभ्यक्तश्च नाश्नीयान्नग्नस्तोये न संविशेत् ॥३२॥
अशुचिर्न स्वपेत्क्वापि त्वभ्यङ्गादशुचिर्भवेत्। लवणं तिलसम्भूतं नाश्नीयात्केवलं सुधीः ॥३३॥
लिम्पेद्धरिद्रां वक्त्रे नो नानृतं प्रवदेत्क्वचित्। कदाचिन्मलिनो न स्याद्भुवं नैवालिखेद्वृथा ॥३४॥
श्रीफलाम्बुजसद्रोणान्न मूर्धनि च धारयेत्। तथा च निर्मलाचारः शुक्लः शुद्धमना भवेत् ॥३५॥
शुद्धमाल्यानुलेपश्च शुद्धाभरणभूषितः। श्वेतवस्त्रपरीधानः शुद्धदेहः स्वलंकृतः ॥३६॥
उत्कृष्टगन्धानुलेपः शुद्धदन्तश्च सन्नखः। विष्णुभक्तश्च विमलरम्यशय्यो भवेत्सुधीः ॥३७॥

निन्दितान्वयसंभूतां दुष्टां च कलहप्रियाम्। दुष्टयोनिमनिष्टां च रोगग्रहनिषेविताम् ॥३८॥
अन्यासक्तामशक्तां च कृष्णाङ्गीं सुबृहत्तनुम्। अतिह्रस्वां सुदीर्घां च विरस्यां भोगलोलुपाम् ॥३९॥
अन्यपुरुषलोलां च काकाक्षीं राजयोषितम्। रजस्वलामेकचारां योषितं न स्पृशेदपि ॥४०॥
शान्तः शुचिस्मितो वाग्मी मधुरालापवान् भवेत्। दयार्द्रचित्त आचार्यदेवातिथ्यर्चनारतः ॥४१॥
गुर्वग्निपूजानिरतः पुण्यशीलो दृढव्रतः। नित्यस्नायी पश्चिमाशामुखाशी शीलवान् भवेत् ॥४२॥
वर्णाश्रमरतः स्वीयदारतुष्टोऽल्पभाषणः। एतादृशैश्च नियमैर्युक्तो लक्ष्मीं लभेत सः ॥४३॥ इति।

नारायणीये—
नाजिघ्रेन्नाक्रमेच्चाब्जं तद्बीजं न च भक्षयेत्। न स्यान्मलिष्टो न च्छिन्द्याद्बिल्वं भूमौ शयीत सः ॥१॥
लवणामलके वर्ज्ये नागादित्यतिथौ क्रमात्। पञ्चम्यामुत्तरे च स्त्री वर्ज्या प्रत्यङ्मुखोऽशने ॥२॥
नागादित्यतिथी पञ्चमीसप्तम्यौ।

बिल्वैर्न मार्जयेद्दन्तान् त्रिसंध्यं प्रणमेच्च तान्। प्रातर्भक्ष्यास्तिलास्ते च धार्या लक्ष्मीं च भक्षयेत् ॥३॥
धारयेन्मूर्ध्नि तत्पुष्पमुत्तरे मुधरान्नभुक्। पायसं बिल्वबीजं च भक्षयेच्छुक्लपर्वणि ॥४॥

शुक्लपर्वणि पूर्णिमायाम्। शारदातिलके (८.१६३)—
शयीत शुद्धशय्यायां तरुण्या सह नान्यथा। (नग्नो नावतरेदम्भस्तैलाभ्यक्तो न भक्षयेत् ॥१॥
हरिद्रां न मुखे लिम्पेन्न स्वपेदशुचिः क्वचित्। न वृथा विलिखेद्भूमिं न बिल्वं द्रोणमम्बुजम् ॥२॥
धारयेन्मूर्ध्नि नैवाद्याल्लोणं तैलं च केवलम्।) मलिनो च भवेज्जातु कुत्सितान्नं न भक्षयेत् ॥३॥
द्रोणपङ्कजबिल्वानि पद्भ्यां जातु न लङ्घयेत्। सहदेवीमिन्द्रवल्लीं श्रीदेवीं विष्णुवल्लभाम् ॥४॥
कन्याम्बुजप्रवालं च धारयेन्मूर्ध्नि सर्वदा।

श्रीदेवी श्रीलता। विष्णुवल्लभा अपराजिता। कन्या कुमारी। प्रयोगसारे—
धान्यगोगुरुहुताशनराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम्।
नोत्तरापरशिरा न च नग्नो नार्द्रपाणिचरणः श्रियमिच्छन् ॥१॥ इति।

श्रीमन्त्रजापियों के लिये कुछ नियम यहाँ कहे जा रहे हैं। श्रीमन्त्र का जप करने वालों को तेल लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये, नंगे होकर जल में प्रवेश नहीं करना चाहिये, कभी अपवित्रावस्था में शयन नहीं करना चाहिये। तेल लगाने से शरीर अपवित्र होता है। नमक और तिलपिष्ट का भोजन नहीं करना चाहिये। मुख में हल्दी नहीं लगाना चाहिये, कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। कभी मलिन नहीं रहना चाहिये। भूमि पर व्यर्थ नहीं लिखना चाहिये। श्रीफल कमल द्रोण सहित शिर पर धारण नहीं करना चाहिये। निर्मल आचार और शुद्ध मन से रहे। माला-लेप शुद्ध हो, वस्त्राभूषण शुद्ध हो। श्वेत वस्त्र धारण करे। अलंकृत देह को शुद्ध रखे। गन्ध-अनुलेप शुद्ध हो। दाँतों और नखों को स्वच्छ रखे। विष्णुभक्त विमल रम्य शय्या पर शयन करे। निन्दित कुलोत्पन्न, दुष्टा, कलहप्रिया, दुष्ट योनि, अनिष्टा, रोग-ग्रह से पीड़ित, परपुरुष में कामासक्ता, कृष्णांगी, बहुत मोटी, बहुत छोटी, बहुत लम्बी, भोगलोलुपा, अन्य पुरुष को चाहने वाली, काकाक्षी, राजयोषिता, रजस्वला, एकचारा स्त्रियों का स्पर्श न करे। शान्त, पवित्र मुस्कानयुक्त, वाग्मी, मधुरभाषी बनकर रहे। दयार्द्रचित्त, आचार्य एवं देवता के अर्चन में संलग्न, गुरु एवं अग्नि की पूजा में निरत, पुण्यात्मा, दृढ़व्रती, नित्य स्नान करने वाला, पश्चिम तरफ मुख करके भोजन करने वाला और शीलवान बने। वर्णाश्रम में रत, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट होकर अल्पभाषी रहे। इस प्रकार के नियमों से युक्त मनुष्य को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

नारायणीय में कहा गया है कि कमल को न सूँघे, न उसे तोड़े और न ही उसके बीजों को खाये, न उसे मले। भूमि पर गिरे बिल्व को न फोड़े। नमक और आमला पञ्चमी और सप्तमी को न खाये। पञ्चमी के बाद स्त्रीप्रसंग न करे। पश्चिम की

ओर मुख करके भोजन न करे। बेल का दतुवन न करे। तीनों सन्ध्या में बेलवृक्ष को प्रणाम करे। सबेरे जो तिल खाता है, वह अपने धन का भक्षण करता है। तिलपुष्प को मूर्धा पर धारण करे, तब मीठा भोजन करे। शुक्ल पक्ष के पर्वों (पूर्णिमा) में खीर और बिल्वबीज खाये।

शारदातिलक में कहा गया है कि शुद्ध शय्या पर तरुणी के साथ शयन न करे। जल में नंगे न उतरे। तेल लगाकर खाना न खाये। मुख में हल्दी न लगावे। अपवित्र अवस्था में शयन न करे। भूमि पर व्यर्थ न लिखे। बेल, द्रोण, कमल को मूर्धा पर धारण न करे। केवल नमक तेल पहले न खाये। मैल-कुचैल न रहे। कुत्सित अन्न का भक्षण न करे। द्रोण, कमल, बेल को पैर से न लाँघे। सहदेवी, इन्द्रवल्ली, श्रीलता, अपराजिता, कुमारी, कमल, मूंगा सर्वदा शिर पर धारण करे।

प्रयोगसार में कहा गया है कि धान्य, गाय, गुरु, अग्नि, मनुष्य के ऊपर शयन न करे। उत्तर तरफ शिर करके भी न सोये। श्री की इच्छा हो तो भीगे पैर और हाथ होने पर न सोये।

श्रीसूक्तयन्त्रविधि:

यन्त्रसारे—

श्रीबीजं साध्यसंयुक्तं कर्णिकायां विलिख्य च। वस्वादित्यद्व्यष्टसंख्यपत्रेष्वपि यथाक्रमम्॥१॥
श्रीसूक्तस्याप्यर्धमर्धमृचामालिख्य तद्बहि:। य: शुचि: प्रयतो भूत्वेत्यृचा मातृकयापि च॥२॥
संवेष्ट्य च धराबिम्बकोणेषु श्रियमालिखेत्। श्रीसूक्तयन्त्रमेतत्तु धारयेद्यो यथाविधि॥३॥
पुत्रारोग्यधराधान्यधनगोसस्यशालिनीम्। लब्ध्वातिबहुलां लक्ष्मीं जीवेच्च शरदां शतम्॥४॥
इदमेव ताम्रपट्टे विलिख्य जप्त्वा च सिक्तसंपातम्। संस्थाप्याङ्गनभूमौ लक्ष्मीमावाह्य साधु संपूज्य॥५॥
भूय: परिवारयुतां बलिं हरेद्भूतलं समीकृत्य। यस्मिन्नेव क्रियते वर्धन्ते तत्र संपदो नित्यम्॥६॥
पुत्रैर्दारैर्विभवैर्भृत्यैरिष्टैर्धनैश्च धान्यैश्च। नागै रथैस्तुरङ्गैर्वृषभैर्गोभिश्च संख्यया हीनै:॥७॥
रमयन्ती गेहेऽस्मिन् विहरत्याभूतसंप्लवं लक्ष्मी:। इति।

अस्यार्थ:—अष्टदलकमलं कृत्वा तत्कर्णिकायां श्रीबीजं साध्यसहितं विलिख्याष्टदलेषु 'हिरण्यवर्णा'-मित्यारभ्य 'तामिहोपह्वये श्रिय'मित्यन्तमृचामर्धमर्धमालिख्य, तद्बहिर्द्वादशदलकमलं कृत्वा तद्दलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'चन्द्रां प्रभासा'मित्यारभ्य 'मयि श्रीर्श्रियतां यश' इत्यन्तमृचामर्धमर्धमालिख्य तद्बहि: षोडशदलकमलं कृत्वा तद्दलेषु पूर्ववत् श्रीसूक्तस्य ऋचामर्धमर्धमालिख्य अन्त्यदलद्वये 'य: शुचि:' इत्यर्धद्वयं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाभ्यन्तरवीथ्यां 'य: शुचि: प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्। श्रिय: पञ्चदशर्चं च श्रीकाम: सततं जपेत्' इत्यृचा संवेष्ट्य बहिर्वीथ्यां मातृकया संवेष्ट्य तद्बहिश्चतुरस्रं विलिख्य तत्कोणेषु श्रीबीजमालिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

यन्त्रसार में कहा गया है कि पहले अष्टदल कमल बनावे। उसकी कर्णिका में 'श्रीं' के साथ साध्य नाम लिखे। आठ दलों में 'हिरण्यवर्णां' से लेकर 'तामिहोपह्वये श्रियम्' तक की चार-चार ऋचाओं के आधे-आधे भागों को लिखे। उसके बाहर द्वादश दल कमल बनावे। बारह दलों में अपने आगे के दल से प्रारम्भ करके 'चन्द्रां प्रभासां०' से 'मयि श्री: श्रयतां यश:' तक की छ: ऋचाओं के आधा-आधा भागों को लिखे। उसके बाहर षोडश दल कमल बनाकर उसके दलों में श्रीसूक्त के ११ से १६ ऋचा के आधे-आधे भागों को लिखे। शेष दलों में 'य: शुचि' के आधा-आधा भागों को लिखे। इसके बाहर तीन वृत्त बनावे। पहले अन्तराल में १६वीं ऋचा लिखे, दूसरी वीथि में मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर चतुरस्र बनाकर उसके कोनों में श्रीं श्रीं लिखे।

इस श्रीसूक्त यन्त्र को जो विधिवत् धारण करता है, उसे पुत्र, आरोग्य, भूमि, धान्य, धन, गो, सस्यशालिनी भूमिसहित बहुत धन मिलता है और सौ वर्षों तक वह जीवित रहता है। इस यन्त्र को ताम्रपत्र पर लिखकर जप से मन्त्रित करके घी के सम्पात से सिक्त आंगन की भूमि पर स्थापित करके उसमें लक्ष्मी का आवाहन करके सम्यक् रूप से पूजन करके परिवारसहित

बलि देकर भूमि में स्थापित कर दे तो उसकी सम्पत्ति नित्य बढ़ती है। उसके पुत्र, स्त्री, वैभव, नौकर, इष्ट, धन, धान्य, हाथी, रथ, घोड़ा, गाय अगणित होते हैं। उसके घर में लक्ष्मी प्रलय काल तक रमण करती रहती है।

नवरात्रे महालक्ष्मीपूजाप्रयोग:

अथाश्विननवरात्रे वेदोक्तप्रकारेण महालक्ष्मीपूजनं वक्ष्यते। तत्र ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय श्रीगुरुस्मरणकुण्डलिनीध्यानाजपासंकल्पशौचदन्तधावनस्नानमन्त्रस्नानतिलकधारणवैदिकसन्ध्यानन्तरतान्त्रिकसन्ध्यासूर्यार्घ्यदेवर्षिपितृतर्पणानि विधाय, स्वासने समुपविश्य भूशुद्धिदीपनाथवन्दनविघ्नोत्सारणकरशुद्धिदिग्बन्धनाग्निप्राकारत्रयशान्तिपाठभूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठामातृकान्यासादियोगपीठन्यासान्तं विधाय, मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा गणपतिकुलदेवताब्राह्मणादीन् नमस्कृत्य,

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः। द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा। संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥
शुल्काम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै श्रीगणाधिपतये नमः॥
यत्र योगीश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥

इति मङ्गलं कृत्वा, अद्याश्विने मासि चैत्रे वा अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहममुकदेवशर्म्मा श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीतिपूर्वकदुरितनिवारणक्षेमस्थैर्यायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिकामः प्रतिपदमारभ्य नवमीपर्यन्तमिष्टदेवतास्वरूपिण्याः श्रीमहालक्ष्म्याः षोडशोपचारपूजां तदङ्गभूतश्रीसूक्तचण्डीपाठतद्दशांशहोमांश्च निर्विघ्नार्थं गणपतिपूजनं च करिष्ये, इति संकल्प्य ततो रक्ताक्षतादिभिरष्टदलकमलं पीठे विरच्य, तत्र—ॐ भूर्भुवःस्वर्महागणपते सिद्धिबुद्धिसहित सवाहन सायुध सपरिवार इहागच्छ,

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज। सिद्धिबुद्धिप्रदे त्र्यक्ष लक्षलाभयितः पितः॥
नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज। भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः॥
आवाहये त्वां पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः। इहागत्य गृहाण त्वं पूजां कर्तुश्च रक्ष मे॥
आवाह्यैवं गणेशानं पूजाद्रव्यैः प्रपूजयेत्।

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपम श्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणः ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्। इति मन्त्रेणावाहनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्क्कं पुनराचमनीयं स्नानं वसनमाभरणानि गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणनमस्कारान् समर्प्य, हस्तद्वये नारिकेलादिकमर्घ्यपात्रस्थं सपुष्पं गृहीत्वोत्थाय प्रार्थयेत्—

रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष त्र्यक्ष त्रैलोक्यरक्षक। भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो। वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद॥
अनेन फलदानेन फलदोऽस्तु सदा मम।

इति फलं दत्त्वा प्रार्थयेत्।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतिपक्षविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नम:। विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ॥
भक्तिप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक।

इति नमस्कृत्य।

त्वं विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति भक्तप्रियेति फलदेति सुखप्रदेति।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥

इति सम्यक् प्रार्थ्य, ऋत्विग्वरणं कृत्वा यवान् वापयित्वा तन्मध्ये कलशस्थापनं कुर्यात्। तद्यथा—

ॐ मही द्यौ: पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभि:॥ इति भूमिं स्पृष्ट्वा। ॐ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशिनी। यच्छा न: शर्म सप्रथा। इति भूमिं प्रार्थ्य। मृत्तिके हर मे पापं० इति मृत्तिकां क्षिप्त्वा। ॐ ओषधय: संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तँ राजन् पारयामसि। इति यवान् क्षिप्त्वा। ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दव:। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा न: सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयि:। इति तत्र कलशं निधाय। ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि। वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि। वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद। इति जलेन पूरयित्वा। ॐ या ओषधी: पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहँ शतं धामानि सप्त च। इति सर्वौषधी: स्थापयित्वा। ॐ स्योना पृथिवि नो भवा नृक्षरा निवेशिनी। यच्छा न: शर्म सप्रथा। इति पञ्चमृत्तिका निक्षिप्य। ॐ ओषधय: संवदन्ते० इति यवान् निक्षिप्य। ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुष: परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च। इति दूर्वा नि:क्षिप्य। ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्। इति पञ्चपल्लवान्नि:क्षिप्य। ॐ या: फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणी:। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहस:। इति फलं क्षिप्त्वा। ॐ परि वाजपति: कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे। इति पञ्चरत्नानि नि:क्षिप्य। ॐ हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। इति हिरण्यं दत्त्वा। ॐ युवा सुवासा: परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमान:। तन्धीरास: कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त:। इति रक्तवस्त्रेण सूत्रेण वावेष्ट्य। ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्। इति गन्धं दत्त्वा। ॐ पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो। इत्युपरि धान्यपूर्णपात्रं विन्यस्य तदुपरि नारिकेलफलं संस्थाप्य। ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भि:। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशँसमान आयु: प्रमोषी:। इति मन्त्रेण वरुणावाहनं कृत्वा तेनैव मन्त्रेण षोडशोपचारै: पूजयेत्।

आश्विन नवरात्र में वेदोक्त प्रकार से महालक्ष्मी पूजन—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर श्रीगुरु का स्मरण, कुण्डलिनी ध्यान, अजपा सङ्कल्प, शौच, दन्तधावन, स्नान, मन्त्रस्नान, तिलकधारण, वैदिक सन्ध्या, तान्त्रिक सन्ध्या, सूर्यार्घ्य, देव-ऋषि-पितृ तर्पणादि करके आसन पर बैठकर भूशुद्धि, दीपनाथ-वन्दन, विघ्नोत्सारण, करशुद्धि, दिग्बन्ध, अग्निप्राकारत्रय, शान्तिपाठ, भूत-शुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, मातृका न्यास, योगपीठ न्यास करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके गणपति, कुलदेवता, ब्राह्मणादि को नमस्कार करके मंगल पाठ करे—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णक:। लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायक:॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजानन:। द्वादशैतानि नामानि य: पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा। संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

शुल्काम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये।।
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै श्रीगणाधिपतये नमः।।
यत्र योगीश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्।।
सर्वेष्वारम्भकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः।।
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि।।

इस मंगल पाठ के बाद महालक्ष्मीपूजन-हेतु संकल्प करे। संकल्प के बाद लाल अक्षत से अष्टदल कमल पीठ बनावे। उसमें 'ॐ भूर्भुवः स्वः महागणपते सिद्धिबुद्धिसहित सवाहन सायुध सपरिवार इहागच्छ' कहकर निम्नलिखित श्लोकों का पाठ करे—

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज। सिद्धिबुद्धिप्रदे त्र्यक्ष लक्षलाभयितः पितः।।
नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज। भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः।।
आवाहये त्वां पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः। इहागत्य गृहाण त्वं पूजां कर्तुश्च रक्ष मे।।

इस प्रकार आवाहन करके गणेश जी की पूजाद्रव्यों से पूजा करे। ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपम श्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणः ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्—इस मन्त्र से आवाहन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नान, वस्त्र, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, नमस्कार का समर्पण करे। दोनों हाथों में नारियल आदि के अर्घ्य पात्र में जल-फूल लेकर प्रार्थना करे—

रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष त्र्यक्ष त्रैलोक्यरक्षक। भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्।।
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो। वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद।।
अनेन फलदानेन फलदोऽस्तु सदा मम।

तदनन्तर निम्न श्लोकों को पढ़ते हुये नमस्कार करे—

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतिपक्षविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ।।
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ।।
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः। विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।।
भक्तिप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ।

इस प्रकार से नमस्कार के बाद निम्न श्लोक का पाठ करे—

त्वं विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति भक्तप्रियेति फलदेति सुखप्रदेति।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव।।

इस प्रकार सम्यक् प्रार्थना करके ऋत्विकों का वरण करके यव वपन कर उसके मध्य में कलश स्थापित करे। कलश-स्थापन की विधि इस प्रकार है—

ॐ मही द्यौः पृथिवी चन इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः—पढ़कर भूमि का स्पर्श करे।

ॐ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशिनी। यच्छा नः शर्म सप्रथा—पढ़कर भूमि की प्रार्थना करें।

'मृत्तिके हर मे पाप०' से मिट्टी डाले।

ॐ ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तँ राजन् पारयामसि—से यव मिलावे।

ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः—से उस पर कलश रखे।

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि। वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि। वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद—से कलश में जल भरे।

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहँ शतं धामानि सप्त च—से कलश में सर्वौषधि डाले।

ॐ स्योना पृथिवि नो भवा नृक्षरा निवेशिनी। यच्छा नः शर्म सप्रथा—से पञ्चमृत्तिका डाले।

ॐ ओषधयः संवदन्ते०—से यव डाले।

ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च—से दूर्वा डाले।

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्—से पञ्चपल्लव डाले।

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः—से फल डाले।

ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे—से पञ्चरत्न डाले।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम—से सोना डाले।

ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः—से लालवस्त्र और सूत लपेटे।

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्—से गन्ध डाले।

ॐ पूर्णादर्वि परायत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो धान्य—से पूर्ण पात्र के ऊपर नारियल रखे।

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशँसमान आयुः प्रमोषीः—वरुण का आवाहन कर इसी मन्त्र से षोडशोपचार पूजन करे।

ततः—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर॥

इति क्रों इत्यङ्कुशमुद्रया च रविमण्डलात् तीर्थान्याकृष्य,

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः। आयान्तु लक्ष्मीपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः॥

इत्यावाह्य, चन्दनाक्षतपुष्पमाल्यादिभिः कलशमलंकृत्य,

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तु संस्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।

इति कलशमभिमन्त्र्य,

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ। उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्॥

त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः। त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥

शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः। आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः॥

**त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः। त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ॥
सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।**

इति प्रार्थयेत्।

तदनन्तर 'ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर' कहकर अंकुश मुद्रा दिखाते हुये सूर्यमण्डल से तीर्थों को लाकर 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु। सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः। आयान्तु लक्ष्मीपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः' से तीर्थावाहन करके चन्दन-अक्षत-पुष्प-माला आदि से कलश को अलंकृत करके 'ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तु संस्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः। कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः। अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः' मन्त्र से कलश को अभिमन्त्रित कर निम्न मन्त्र से कलश की प्रार्थना करे—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ। उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्।।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः। त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः। आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः।।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः। त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव।।
सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।

इत्थं कलशस्थापनं विधाय मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, ॐ अस्य श्रीसूक्तस्य, शिरसि आनन्दकर्दम-चिक्लीतश्रीपुत्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः। हृदि श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यां नमः। मुखे अनुष्टुब्बृहतीत्रिष्टुबनुष्टुप्प्रस्तार-पङ्क्तिभ्यश्छन्दोभ्यो नमः इति विन्यस्य मम सकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यायुरारोग्याभिवृद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ हिरण्यायै नमो हृदयाय नमः। ॐ चन्द्रायै नमः शिरसे स्वाहा। ॐ रजतस्रजायै नमः शिखायै वषट्। ॐ हिरण्यस्रजायै नमः कवचाय हुं। ॐ हिरण्यायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हिरण्यवर्णायै नमः अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। शिरसि हिरण्यवर्णां०। नेत्रयोः ताम्म आवह०। कर्णयोः अश्वपूर्वां०। नासिकायां कांसोस्मितां०। मुखे चन्द्रां प्रभा०। गले आदित्यवर्णे०। बाह्वोः उपैतु मां०। हृदि क्षुत्पिपासा०। नाभौ गन्धद्वारां०। गुह्ये मनसः काम०। गुदे कर्दमेन०। ऊर्वोः आपः सृजन्ति०। जान्वोः आर्द्रां०। जङ्घयोः आर्द्रां०। पादयो ताम्म आवह०। इति विन्यस्य, श्रांश्रींश्रूंश्रैंश्रौंश्रः इत्यपि षडङ्गानि विन्यस्य प्रागुक्तरीत्या स्वहृत्कमले देवीं ध्यायेत्।

**अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिमुकुटविचित्रालङ्कृता कल्पजातैः भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः ॥**

इति ध्यात्वा मानसोपचारैराराध्यार्घ्यादिस्थापनान्ते 'ॐह्रींहंसः सोऽहं स्वाहा' इति मन्त्रेणात्मपूजां विधाय पीठपूजामारभेत्। ॐ मण्डूकाय नमः। ॐ कालाग्निरुद्राय नमः। एवं ॐ मूलप्रकृत्यै०। आधारशक्त्यै० कूर्माय०, अनन्ताय०, वराहाय०, पृथिव्यै०, सुधासमुद्राय०, श्वेतद्वीपाय०, स्वर्णपर्वताय०, नन्दनोद्यानाय०, कल्पवृक्षवनाय०, स्वर्णप्राकाराय०, करुणतोयपरिखायै०, स्वर्णमण्डपाय नमः। पूर्वद्वारे—द्वारश्रियै नमः, इन्द्राय, ब्रह्मणे०, सत्त्वाय०, ऋग्वेदाय०, आत्मने०, कालतत्त्वाय०, अम्बिकायै०, इन्द्राण्यै०, वेदमात्रे०, शैलपुत्र्यै०, ब्रह्मचारिण्यै०, चण्ड-घण्टायै०, स्कन्दमात्रे० कात्यायन्यै०, कालरात्र्यै०, गौर्य्यै नमः। ततो दक्षिणद्वारे—द्वारश्रियै नमः। यमाय०, शान्तायै०, सिद्धायै०, क्षमायै० विष्णवे०, यजुर्वेदाय०, रजसे०, विद्यातत्त्वाय०, जगन्मात्रे०, मायायै०, शिवायै०, शान्त्यै०, प्रभायै०, ह्रींकारायै०, क्लींकारायै०, मायाशक्त्यै०, वीरायै०, प्रवीरायै०, अन्तरात्मने०, दण्डधराय नमः। ततः पश्चिमद्वारे—द्वारश्रियै नमः, वरुणाय०, रुद्राय०, सामवेदाय०, तमसे०, आदित्याय०, वारुण्यै०, शंखायुधायै०, हंसवाहिन्यै०, जगज्जीवायै०, जगद्बीजायै०, षोडशकलायै०, पूर्णकलशाय०, चित्रिण्यै०,

चित्रमालायै०, चित्रायै०, चामुण्डायै नमः। तत उत्तरद्वारे—द्वारश्रियै नमः, कपालधारिण्यै०, भक्तवत्सलायै०, हूँकारायै०, क्षांकारायै०, विमलरूपायै०, ईशानाय०, पार्वत्यै०, ब्रह्मणे०, अथर्वणवेदाय०, धात्रे०, ज्योत्स्नायै०, कल्याण्यै०, शर्वाण्यै०, चन्द्रकलायै०, चन्द्रवदनायै०, विभूत्यै०, परमविभूत्यै०, भस्मधारिण्यै०, पावनायै०, गङ्गायै०, भागीरथ्यै०, गोदावर्य्यै०, प्रवरायै०, प्रणतायै०, क्रांकारायै०, क्रींकारायै०, क्रौंकारायै०, सर्वबीजात्मने०, बीजप्रवाहिन्यै नमः। ततो मध्ये—रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय०, धर्माय०, ज्ञानाय, वैराग्याय०, ऐश्वर्याय०, अधर्माय०, अज्ञानाय०, अवैराग्याय०, अनैश्वर्याय०, श्वेतच्छत्राय०, चिच्छक्त्यै०, मायाशक्त्यै०, आनन्दकन्दाय०, संविन्नालाय०, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो०, विकारमयकेसरेभ्यो०, पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै०, अं अर्कमण्डलाय०, मं वह्निमण्डलाय०, सं सोममण्डलाय०, सं सत्त्वाय०, रं रजसे०, तं तमसे०, आं आत्मने०, अं अन्तरात्मने०, पं परमात्मने०, ह्रीं ज्ञानात्मने, आत्मतत्त्वाय०, मायातत्त्वाय०, विद्यातत्त्वाय०, कलातत्त्वाय०, परतत्त्वाय नमः। इति संपूज्य, केसरेषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये च—ॐ विभूत्यै नमः, उन्नत्यै०, कान्त्यै०, हृष्ट्यै०, कीर्त्यै०, सन्नत्यै०, व्युष्ट्यै०, उत्कृष्ट्यै, मत्यै०, ऋद्ध्यै०, इति संपूज्य, ॐश्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति समस्तपीठं संपूज्य मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीलक्ष्मीमूर्तिं परिकल्पयामि नमः' इति कलशोपरि मूर्तिं परिकल्प्य घटामसृक्करां लक्ष्मीं दुर्गां देवीं व्यवस्थिताम्। स्थापयामि महादेवीं सर्वसौभाग्यदायिनीम्।

इति संस्थाप्य स्वहृत्कमले प्राग्वद् देवीं ध्यात्वा देव्यास्तेजो दीपाद् दीपान्तरमिव वहन्नसापुटाध्वना पुष्पाञ्जलावानीय—

एह्येहि देवदेवेशि परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं च इहावह॥
महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि॥

इत्यावाह्य, आवाहनादिदशमुद्राः प्रदर्श्य ध्यायेत्।

लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरङ्गधामेश्वरीं दासीभूतसमस्तदेवनिकरां लोकैकदीपाङ्कुराम्।
श्रीमन्मन्दकटाक्षलब्धविभवब्रह्मेन्द्रगङ्गाधरां तां त्रैलोक्यकुटुम्बिनी सरसिजां(गां) वन्दे मुकुन्दप्रियाम्॥

इति ध्यात्वा मूलमन्त्रेण दीपिन्या मालिन्याद्यर्घोदकेन च त्रिवारं प्रोक्षयित्वा विधाय पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा—
ॐ दुर्गे कात्यायनि देवि शाम्भवि शङ्करप्रिये। मया भक्त्या कृतां पूजां गृहाण त्वं महेश्वरि॥
हिरण्यवर्णां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै० नमः, आवाहनं समर्पयामि इति दद्यात्॥

इस प्रकार कलश को स्थापित करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके शिरसि आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्यो नमः। हृदि श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यां नमः। मुखे अनुष्टुप् बृहती त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, प्रस्तार पंक्तिभ्यश्छन्दोभ्यो नमः से न्यास करके 'मम सकुटुम्बस्य क्षेम-स्थैर्य-आयु-आरोग्य-अभिवृद्धये विनियोगः' कहकर षडङ्ग न्यास करे—ॐ हिरण्यायै नमः हृदयाय नमः, ॐ चन्द्रायै नमः शिरसि स्वाहा, ॐ रजतस्रजायै नमः शिखायै वषट्, ॐ हिरण्यस्रजायै नमः कवचाय हुं, ॐ हिरण्यायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हिरण्यवर्णायै नमः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार षडङ्ग मन्त्रों से करन्यास भी करे। तदनन्तर शिरसि हिरण्यवर्णां०। नेत्रयोः ताम्म आवह०। कर्णयोः अश्वपूर्वां० नासिकायां कांसोस्मिता० मुखे चन्द्रां प्रभासां०। गले आदित्यवर्णे, बाह्वोः उपैतु मा०। हृदि क्षुत्पिपासा०, नाभौ गन्धद्वारां०, गुह्ये मनसः काममाकूतिं० गुदे कर्दमेन०, ऊर्वोः आपः सृजन्ति, जान्वोः आर्द्रां०, जंघयोः आर्द्रां०, पादयोः ताम्म आवह०, से न्यास करे। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से भी षडङ्ग न्यास करके पूर्वोक्त रीति से अपने हृदय में देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिमुकुटविचित्रालङ्कृता कल्पजातैः भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः॥

ध्यान के बाद मानसोपचार पूजन करे। अर्घ्य स्थापन करे। 'श्रीं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' से आत्मपूजा करके पीठपूजा इस प्रकार करे—ॐ मण्डूकाय नमः, ॐ कालाग्निरुद्राय नमः, ॐ मूलप्रकृत्यै नमः, आधारशक्त्यै नमः, कूर्माय नमः,

अनन्ताय नमः, वराहाय नमः, पृथिव्यै नमः, सुधासमुद्राय नमः, श्वेतद्वीपाय नमः, स्वर्णपर्वताय नमः, नन्दनोद्यानाय नमः, कल्पवृक्षवनाय नमः, स्वर्णप्राकाराय नमः, करुणतोयपरिखायै नमः, स्वर्णमण्डपाय नमः। पूर्व द्वार पर इनका पूजन करे—द्वारश्रियै नमः, इन्द्राय नमः, ब्रह्मणे नमः, सत्त्वाय नमः, ऋग्वेदाय नमः, आत्मने नमः, कालतत्त्वाय नमः, अम्बिकायै नमः, इन्द्राण्यै नमः, वेदमात्रेनमः, शैलपुत्र्यै नमः, ब्रह्मचारिण्यै नमः, चण्डघण्टायै नमः, स्कन्दमात्रे नमः, कात्यायन्यै नमः, कालरात्र्यै नमः, गौर्य्यै नमः। तदनन्तर दक्षिण द्वार पर इस प्रकार पूजन करे—द्वारश्रियै नमः। यमाय नमः, शान्तायै नमः, सिद्धायै नमः, क्षमायै नमः, विष्णवे नमः, यजुर्वेदाय नमः, रजसे नमः, विद्यातत्त्वाय नमः, जगन्मात्रे नमः, मायायै नमः, शिवायै नमः, शान्त्यै नमः, प्रभायै नमः, ह्रींकारायै नमः, क्लींकारायै नमः, मायाशक्त्यै नमः, वीरायै नमः, प्रवीरायै नमः, अन्तरात्मने नमः, दण्डधराय नमः। तदनन्तर पश्चिम द्वार पर इस प्रकार पूजन करे—द्वारश्रियै नमः, वरुणाय नमः, रुद्राय नमः, सामवेदाय नमः, तमसे नमः, आदित्याय नमः, वारुण्यै नमः, शंखायुधायै नमः, हंसवाहिन्यै नमः, जगज्जीवायै नमः, जगद्बीजायै नमः, षोडशकलायै नमः, पूर्णकलशाय नमः, चित्रिण्यै नमः, चित्रमालायै नमः, चित्रायै नमः, चामुण्डायै नमः। तदनन्तर उत्तर द्वार पर इस प्रकार पूजन करे—द्वारश्रियै नमः, कपालधारिण्यै नमः, भक्तवत्सलायै नमः, हूँकारायै नमः, क्षांकारायै नमः, विमलरूपायै नमः, ईशानाय नमः, पार्वत्यै नमः, ब्रह्मणे नमः, अथर्वणवेदाय नमः, धात्रे नमः, ज्योत्स्नायै नमः, कल्याण्यै नमः, शर्वाण्यै नमः, चन्द्रकलायै नमः, चन्द्रवदनायै नमः, विभूत्यै नमः, परमविभूत्यै नमः, भस्मधारिण्यै नमः, पावनायै नमः, गङ्गायै नमः, भागीरथ्यै नमः, गोदावर्य्यै नमः, प्रवरायै नमः, प्रणतायै नमः, क्रांकारायै नमः, क्रींकारायै नमः, क्रौंकारायै नमः, सर्वबीजात्मने नमः, बीजप्रवाहिन्यै नमः। तदनन्तर मध्य में इनका पूजन करे—रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः, धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः, अधर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः, श्वेतच्छत्राय नमः, चिच्छक्त्यै नमः, मायाशक्त्यै नमः, आनन्दकन्दाय नमः, संविन्नालाय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकारमयकेसरेभ्यो नमः, पञ्चाशद्वर्ण-बीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः, अं अर्कमण्डलाय नमः, मं वह्निमण्डलाय नमः, सं सोममण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने, आत्मतत्त्वाय नमः, मायातत्त्वाय नमः, विद्यातत्त्वाय नमः, कलातत्त्वाय नमः, परतत्त्वाय नमः। इस प्रकार पूजन करके केसरों में, पूर्वादि आने दिशाओं में एवं मध्य में ॐ विभूत्यै नमः, उन्नत्यै नमः, कान्त्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, कीर्त्यै नमः, सन्नत्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्ट्यै नमः, मत्यै नमः, ऋद्ध्यै नमः, इस प्रकार पूजन कर 'ॐश्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से समस्त पीठ का पूजन कर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'श्रीलक्ष्मीमूर्तिं परिकल्पयामि नमः' मन्त्र से समस्त पीठ की पूजा करके मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीलक्ष्मीमूर्तिं परिकल्पयामि नमः' से कलश पर मूर्ति कल्पित करके निम्न मन्त्र के द्वारा उसे स्थापित करे—

स्थापयामि महादेवीं सर्वसौभाग्यदायिनीम्।

तदनन्तर हृदय कमल में पूर्ववत् देवी का ध्यान करके देवी के तेज को दीप से दीप जलाने की तरह प्रवहमान नासापुट से पुष्पाञ्जलि में लाकर निम्न मन्त्र से उनका आवाहन करे—

एह्येहि देवदेवेशि परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं च इहावह।।
महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।

इस प्रकार आवाहन करके आवाहनादि दश मुद्रा दिखाकर इस प्रकार ध्यान करे—

लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरङ्गधामेश्वरीं दासीभूतसमस्तदेवनिकरां लोकैकदीपाङ्कुराम्।
श्रीमन्मन्दकटाक्षलब्धविभवब्रह्मेन्द्रगङ्गाधरां तां त्रैलोक्यकुटुम्बिनी सरसिजां(गां) वन्दे मुकुन्दप्रियाम्।।

ध्यान करके मूल मन्त्र, दीपिनी, मालिनी और अर्घ्य जल से तीन बार प्रोक्षण करके प्राण-प्रतिष्ठा करके हाथों में पुष्पाञ्जलि लेकर ॐ दुर्गे कात्यायनि देवि शाम्भवि शङ्करप्रिये। मया भक्त्या कृतां पूजां गृहाण त्वं महेश्वरि। हिरण्यवर्णां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै० नमः, आवाहनं समर्पयामि' कहकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।

ॐ तप्तकाञ्चनवर्णाभं मुक्तामणिविराजितम्। अमलं कमलं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम्॥
ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नामे देव्यै०, श्रीमहासरस्वत्यै नमः श्रीरेतत्ते आसनं नमः।

स्वागतं कुशलं पृच्छे महादेव्यै महेश्वरि । सुस्वागतं त्वया भद्रे कृपया भक्तवत्सले ॥
ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महासरस्वत्यै नम: श्रीरेतत्ते स्वागतं नम:।
ॐ गङ्गादितीर्थसंभूतं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् । पाद्यं ददाम्यहं तुभ्यं नमस्ते कमलालये ॥
अश्वपूर्वां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेतत्ते पाद्यं नम:।

अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रे प्रपूरितम् । अर्घ्यं ददाम्यहं तुभ्यं प्रसीद त्वं सुरेश्वरि ॥
कांसोस्मितां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, लोकमात्रे नम: श्रीरेष तेऽर्घ्य: स्वाहा।

ॐ सर्वलोकस्य या माता या माता लोकपाविनी । ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्म्यै प्रयत्नत: ॥
चन्द्रां प्रभासां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, वरदायै नम: श्रीरेतत्ते आचमनीयं सुधा ।

कपिलादधि कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम् । स्वर्णपात्रस्थितं देवि मधुपर्क्कं गृहाण मे ॥
आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नम:, श्रीरेष ते मधुपर्क्क: सुधा ।

ॐ कर्पूरवासितं वारि निर्मलं शुद्धिहेतुकम् । गृहाण परमेशानि पुनराचमनीयकम् ॥
आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नम: श्रीरेतत्त आचमनीयं नम:।

ॐ एहि पादुकया देवि स्नानार्थं स्नानमण्डपम्। स्नानशाटीं गृहीत्वा तु स्नानासनसमागता ॥
सुगन्धितैलगव्यादिपञ्चामृतजलादिकम् । सुगन्धिश्लक्ष्णचूर्णं च तथोद्वर्तनकादिकम् ॥
नानातीर्थोद्भवं तोयं स्नानीयं च गृहाण मे ।

आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नम:, श्रीरेतत्ते स्नानीयं नम:। आपो हि ष्ठेति मलापकर्षणम् ।

ॐ पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् । पञ्चामृतं मयानीतं गृहाण परमेश्वरि ॥
आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भद्रायै नम:, श्रीरेतत्ते पञ्चामृतस्नानं नम:। पुरुषसूक्तेन शुद्धोदकेन स्नानम्। जातवेदसे०, इति पुनराचमनीयम् ।

ॐ दिव्याम्बरं नवं श्वेतं क्षौमं चातिमनोहरम् । त्रैलोक्यजननि देवि दीयमानं गृहाण मे ॥
उपैतु मां०, जातवेदसे, नमो देव्यै०, श्रीलक्ष्म्यै नम: एतत्ते वस्त्रयुग्मं नम:।

एहि देवि विभूषार्थं नेपथ्यागारमुत्तमम् । विभूषासनमास्थाय तथादर्शं विलोक्य च ॥
केशप्रसाधनं कृत्वा भूषणान्यङ्गसात् कुरु । रत्नकङ्कणवैडूर्यमुक्ताहारादिकानि च ॥
सुप्रसन्ने महालक्ष्मि भूषणानि गृहाण मे ।
क्षुत्पिपासा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, हिरण्यायै नम: श्रीरेतानि ते भूषणानि नम:।

एहि देवि निजं स्थानं सिंहासनमनुत्तमम् । पूजाचक्रं समास्थाय गन्धं देव्यङ्गसात् कुरु ॥
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमाद्यै: समन्वितम् । कस्तूरीरोचनायुतं गन्धं देवि गृहाण मे ॥
गन्धद्वारां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेष ते गन्धो नम:।

शुद्धमुक्ताफलाभैस्तैरक्षतै: शशिसंनिभै: । सर्वाधिपे महालक्ष्मीर्द्योतयामि सुभक्तित: ॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, देव्यै नम: श्रीरेतत्ते अक्षता: नम: ।

हरिद्रां च मयानीतां देवि कल्याणदायिनि । सौभाग्यवर्धनां नित्यं गृहाण हरिवल्लभे ॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, हरिप्रियायै नम: श्रीरेतत्ते हारिद्रं नम:।

कुङ्कुमं शोभनं दिव्यं सर्वदा सर्वदा मङ्गलप्रदम्। मयानीतं महादेवि तुभ्यं दास्यामि सुन्दरि॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, मङ्गलायै नमः श्रीरेतत्ते कुङ्कुमं नमः।

सिन्दूरं शुभदं नित्यं महाशक्तिप्रियं सदा। प्रयच्छामि महादेवि सर्वसौभाग्यदायिनि॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महादेव्यै नमः श्रीरेतत्ते सिन्दूरं नमः।

मालतीमल्लिकादीनि नवानि कुसुमानि च। एकनाथे प्रयच्छामि पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्॥
मनसः काममाकूतिं०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, एकनाथायै नमः। श्रीरेतानि पुष्पाणि वौषट्।

रक्तैः श्वेताम्बुजैः पुष्पैर्मल्लिकादिविचित्रितैः। पुष्पमालां प्रयच्छामि प्रसीद त्वं सुरेश्वरि॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेषा ते पुष्पमाला नमः।

सुगन्धं शीतलं शुभ्रं नानागन्धसमन्वितम्। प्रीत्यर्थं तव देवेशि सच्चूर्णं प्रतिगृह्यताम्॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सुभगायै नमः श्रीरेतत्ते परिमलद्रव्यं नमः।

'ॐ तप्तकाञ्चनवर्णाभं मुक्तामणिविराजितम्। अमलं कमलं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम्। ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नामे देव्यै०, श्रीमहासरस्वत्यै नमः श्रीरेतत्ते आसनं नमः' कहकर आसन प्रदान करे। 'स्वागतं कुशलं पृच्छे महादेव्यै महेश्वरि। सुस्वागतं त्वया भद्रे कृपया भक्तवत्सले। ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महासरस्वत्यै नमः श्रीरेतत्ते स्वागतं नमः' कहकर स्वागत करे। 'ॐ गङ्गादितीर्थसंभूतं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम्। पाद्यं ददाम्यहं तुभ्यं नमस्ते कमलालये। अश्वपूर्वां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेतत्ते पाद्यं नमः' कहकर पाद्य प्रदान करे।

'अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रे प्रपूरितम्। अर्घ्यं ददाम्यहं तुभ्यं प्रसीद त्वं सुरेश्वरि। कांसोस्मितां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, लोकमात्रे नमः श्रीरेष तेऽर्घ्यः स्वाहा कहकर अर्घ्य प्रदान करे।

'ॐ सर्वलोकस्य या माता या माता लोकपाविनी। ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्म्यै प्रयत्नतः। चन्द्रां प्रभासां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, वरदायै नमः श्रीरेतत्ते आचमनीयं सुधा' कहकर आचमनीय प्रदान करे।

'कपिलादधि कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम्। स्वर्णपात्रस्थितं देवि मधुपर्क्कं गृहाण मे। आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नमः, श्रीरेष ते मधुपर्क्कः सुधा' कहकर मधुपर्क प्रदान करे।

'ॐ कर्पूरवासितं वारि निर्मलं शुद्धिहेतुकम्। गृहाण परमेशानि पुनराचमनीयकम्। आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नमः श्रीरेतत्त आचमनीयं नमः' कहकर आचमनीय प्रदान करे।

ॐ एहि पादुकया देवि स्नानार्थं स्नानमण्डपम्। स्नानशाटीं गृहीत्वा तु स्नानासनसमागता। सुगन्धितैलगव्यादिपञ्चामृतजलादिकम्। सुगन्धिश्लक्ष्णचूर्णं च तथोद्वर्तनकादिकम्। नानातीर्थोद्भवं तोयं स्नानीयं च गृहाण मे। आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नमः, श्रीरेतत्ते स्नानीयं नमः' कहकर स्नानीय प्रदान करे।

'आपो हिष्ठा०' से मलापकर्षण करे।

'ॐ पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम्। पञ्चामृतं मयानीतं गृहाण परमेश्वरि। आदित्यवर्णे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भद्रायै नमः, श्रीरेतत्ते पञ्चामृतस्नानं नमः कहकर पञ्चामृत स्नान समर्पित करे।

पुरुषसूक्त से शुद्धोदक से स्नान करावे एवं जातवेदसे० मन्त्र से पुनराचमनीय प्रदान करे।

'ॐ दिव्याम्बरं नवं श्वेतं क्षौमं चातिमनोहरम्। त्रैलोक्यजननि देवि दीयमानं गृहाण मे। उपैतु मां०, जातवेदसे, नमो देव्यै०, श्रीलक्ष्म्यै नमः एतत्ते वस्त्रयुग्मं नमः से वस्त्रों का जोड़ा प्रदान करे।

'एहि देवि विभूषार्थं नेपथ्यागारमुत्तमम्। विभूषासनमास्थाय तथादर्शं विलोक्य च। केशप्रसाधनं कृत्वा भूषणान्य-

ङ्गसात् कुरु। रत्नकङ्कणवैडूर्यमुक्ताहारादिकानि च। सुप्रसन्ने महालक्ष्मि भूषणानि गृहाण मे। क्षुत्पिपासा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, हिरण्यायै नम: श्रीरेतानि ते भूषणानि नम: कहकर आभूषण प्रदान करे।

'एहि देवि निजं स्थानं सिंहासनमनुत्तमम्। पूजाचक्रं समास्थाय गन्धं देव्यङ्गसात् कुरु। चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमाद्यै: समन्वितम्। कस्तूरीरोचनायुतं गन्धं देवि गृहाण मे। गन्धद्वारां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेष ते गन्धो नम:' कहकर गन्ध समर्पित करे।

'शुद्धमुक्ताफलाभैस्तैरक्षतै: शशिसंनिभै:। सर्वाधिपे महालक्ष्मीर्द्योतयामि सुभक्तित:। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, देव्यै नम: श्रीरेतत्ते अक्षता: नम:' कहकर अक्षत चढ़ावे।

'हरिद्रां च मयानीतां देवि कल्याणदायिनि। सौभाग्यवर्धनां नित्यं गृहाण हरिवल्लभे। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, हरिप्रियायै नम: श्रीरेतत्ते हारिद्रं नम:' कहकर हरिद्रा-समर्पण करे।

'कुङ्कुमं शोभनं दिव्यं सर्वदा मङ्गलप्रदम्। मयानीतं महादेवि तुभ्यं दास्यामि सुन्दरि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, मङ्गलायै नम: श्रीरेतत्ते कुङ्कुमं नम:' कहकर कुंकुम समर्पित करे।

'सिन्दूरं शुभदं नित्यं महाशक्तिप्रियं सदा। प्रयच्छामि महादेवि सर्वसौभाग्यदायिनि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महादेव्यै नम: श्रीरेतत्ते सिन्दूरं नम:' कहकर सिन्दूर चढ़ावे।

'मालतीमल्लिकादीनि नवानि कुसुमानि च। एकनाथे प्रयच्छामि पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्। मनस: काममाकूतिं०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, एकनाथायै नम:। श्रीरेतानि पुष्पाणि वौषट्—कहकर पुष्प चढ़ावे।

'रक्तै: श्वेताम्बुजै: पुष्पैर्मल्लिकादिविचित्रितै:। पुष्पमालां प्रयच्छामि प्रसीद त्वं सुरेश्वरि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेषा ते पुष्पमाला नम:' कहकर पुष्पमाला चढ़ावे।

'सुगन्धं शीतलं शुभ्रं नानागन्धसमन्वितम्। प्रीत्यर्थं तव देवेशि सच्चूर्णं प्रतिगृह्यताम्।
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सुभगायै नम: श्रीरेतत्ते परिमलद्रव्यं नम:' कहकर अबीर-गुलाल आदि चढ़ाये।

अथाङ्गपूजा—ॐ चञ्चलायै नमः पादौ पूजयामि। ॐ चपलायै नमः गुल्फौ०। कान्त्यै नमः जानुनी०। मङ्गलायै नमः जङ्घे०। भद्रकाल्यै नमः ऊरू०। कमलिन्यै नमः कटिं०। शिवायै नमः नाभिं०। क्षमायै नमः उदरं०। गौर्यै नमः हृदयं०। सिंहवाहिन्यै नमः स्तनद्वयं०। स्कन्दमात्रे नमः भुजद्वयं०। कम्बुकण्ठायै नमः कण्ठं०। सरस्वत्यै नमः मुखं०। सुवासिन्यै नमः नासिकां०। स्वर्णकुण्डलायै नमः कर्णद्वयं०। चण्डिकायै नमः नेत्रद्वयं०। शिवायै नमः ललाटं०, कुमार्यै नमः शिरः०। सर्वरूपायै नमः सर्वाङ्गं पूजयामि, इति संपूज्याष्टोत्तरशतनामभिः पूजयेत्।

अंगपूजा—ॐ चञ्चलायै नम: पादौ पूजयामि। ॐ चपलायै नम: गुल्फौ पूजयामि। कान्त्यै नम: जानुनी पूजयामि। मङ्गलायै नम: जङ्घे पूजयामि। भद्रकाल्यै नम: ऊरू पूजयामि। कमलिन्यै नम: कटिं पूजयामि। शिवायै नम: नाभिं पूजयामि। क्षमायै नम: उदरं पूजयामि। गौर्यै नम: हृदयं पूजयामि। सिंहवाहिन्यै नम: स्तनद्वयं पूजयामि। स्कन्दमात्रे नम: भुजद्वयं पूजयामि। कम्बुकण्ठायै नम: कण्ठं पूजयामि। सरस्वत्यै नम: मुखं पूजयामि। सुवासिन्यै नम: नासिकां पूजयामि। स्वर्णकुण्डलायै नम: कर्णद्वयं पूजयामि। चण्डिकायै नम: नेत्रद्वयं पूजयामि। शिवायै नम: ललाटं पूजयामि, कुमार्यै नम: शिर: पूजयामि। सर्वरूपायै नम: सर्वाङ्गं पूजयामि मन्त्रों से देवी के सर्वांग पूजन के बाद एक सौ आठ नामों से उनका पूजन करे।

महालक्ष्मीशतनाम

ॐ अस्य श्रीमहालक्ष्म्या अष्टोत्तरशतनाममन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं श्रीमहालक्ष्मीमष्टोत्तरशतनामभिः पूजयिष्ये। ततः श्रीबीजषट्केन षडङ्गन्यासं कृत्वा 'लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रे'ति

ध्यात्वा पुष्पैरक्षतैर्वा पूजयेत्। तद्यथा—ॐ महालक्ष्म्यै नमः; एवं महाकाल्यै०, महासरस्वत्यै० महाकन्यायै०, महागौर्य्यै०, महादेव्यै० भक्तानुग्रहकारिण्यै० स्वप्रकाशात्मरूपिण्यै०, महामायायै०, महेश्वर्यै० (१०) वागीश्वर्यै०, जगद्धात्र्यै०, कालरात्र्यै०, त्रिलोचनायै०, भद्रकाल्यै०, कपालिन्यै०, महाशौर्यायै०, त्रिलोकात्मिकायै०, सिद्धलक्ष्म्यै०, क्रियालक्ष्म्यै० (२०) लोकमार्गप्रदायिन्यै०, अरूपायै०, सुरूपायै०, विश्वरूपिण्यै०, पञ्चभूतात्मिकायै०, देवमात्रे०, सुरेश्वर्यै०, दारिद्र्यध्वंसिन्यै०, वीणापुस्तकधारिण्यै०, सर्वशक्त्यै० (३०), ब्रह्मात्मिकायै०, अष्टाङ्गरूपिण्यै०, नवदुर्गात्मिकायै०, अष्टभैरव्यै०, गङ्गायै०, शारदायै०, वेण्यै०, सर्वशास्त्रधारिण्यै०, समुद्रवसनायै०, ब्रह्माण्डमणिमेखलायै० (४०), अवस्थात्रयनिर्मुक्तायै०, गणत्रयविवर्जितायै०, योगध्यानैकसंन्यासिन्यै०, योगध्यानैकपरायणायै०, देवत्रयविशोकायै०, वेदान्तज्ञानरूपिण्यै०, पद्मावत्यै०, विशालाक्ष्यै०, नागयज्ञोपवीतिन्यै०, सूर्यचन्द्रार्धमासायै० (५०), ग्रहनक्षत्ररूपिण्यै०, वेदिकायै०, वेदरूपिण्यै०, गिरिसंभवायै०, कैवल्यदायै०, विशृंखलायै०, सूर्यमण्डलसंस्थितायै०, सोममण्डलमध्यस्थायै० वायुमण्डलसंस्थितायै०, वह्निमण्डलसंस्थितायै० (६०), शक्तिमण्डलसंस्थितायै०, चक्रिकायै०, चक्रमध्यस्थितायै०, चक्रमार्गप्रदायिन्यै०, सर्वसिद्धान्तमार्गयायिन्यै०, षड्वर्गवर्जितायै०, प्रत्यक्षादिप्रमावृतायै०, विद्यामूर्तायै० त्रैलोक्यमोहिन्यै०, विद्यायै० (७०), चर्मदायै०, रक्षायै०, ब्रह्मस्थापितरूपायै०, कैवल्यज्ञानगोचरायै०, करुणायै०, मधुकैटभमर्दिन्यै०, अचिन्त्यलक्षणायै०, गोप्यै०, सदाभक्ताघनाशिन्यै० (८०), महारमायै० परमेश्वर्यै०, सुसिद्धलक्ष्म्यै०, महाकालिन्द्यै०, सद्योजातायै०, वामदेव्यै०, अघोरायै०, तत्पुरुषायै०, ईशानरूपिण्यै०, एकाक्षरदेव्यै० (९०), योगिन्यै०, योगध्यानपराक्रमायै०, श्रीसिद्धलक्ष्म्यै०, श्रियै०, कमलायै०, कमलालयायै०, पद्मायै०, नलिनयुग्मकराम्बुजायै०, शैलपुत्र्यै०, ब्रह्मचारिण्यै० (१००), चण्डघण्टायै०, कूष्माण्ड्यै०, स्कन्दमात्रे०, कात्यायन्यै०, कालरात्र्यै०, महागौर्यै०, सिद्धिदायै०, सर्वात्मिकायै नमः (१०८) इति संपूज्य, कर्णिकायां—श्रां हृदयाय नमः। श्रीं शिरसे स्वाहा नमः। श्रूं शिखायै वषट् नमः । श्रैं कवचाय हुं नमः। श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नमः। श्रः अस्त्राय फट् नमः। ततोऽष्टदलेषु—पूर्वादि, ॐ पद्मासनायै नमः, ॐ पद्मवर्णायै०, ॐ पद्मस्थायै०, ॐ आर्द्रायै०, ॐ तर्पन्त्यै०, ॐ तृप्तायै०, ॐ ज्वलन्त्यै०, ॐ स्वर्णप्राकारायै नमः। ततो दलाग्रेषु—ब्राह्म्यै नमः, माहेश्वर्यै०, कौमार्यै०, वैष्णव्यै० वाराह्यै०, इन्द्राण्यै०, चामुण्डायै०, महालक्ष्म्यै नमः। ततो भूपुरे—लं इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः। एवं रं अग्नये०, टं यमाय०, क्षं निर्ऋतये० वं वरुणाय०, वं वायवे०, सं कुबेराय०, हौं ईशानाय०, आं ब्रह्मणे०, ह्रीं अनन्ताय नमः। तद्बहिः—वं वज्राय नमः, शं शक्तये०, दं दण्डाय०, खं खड्गाय०, आं पाशाय०, क्रों अङ्कुशाय०, गं गदायै०, शं शूलाय०, पं पद्माय०, चं चक्राय नमः इति संपूज्य देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा,

ॐ दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम्। भक्त्या दत्तं मया देवि प्रसीद त्वं महेश्वरि॥
कर्दमेन०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै नमः श्रीरेष ते धूपो नमः।

ॐ कर्पूरवर्तिसंयुक्तं गोघृतेन समन्वितम्। दीपं गृहाण देवेशि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥
आपः सृजन्ति०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै नमः श्रीरेष ते दीपो नमः।

ॐ नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्। षड्रसै रचितं दिव्यं घृतेन परिपूरितम्॥
आर्द्रां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पूर्णमालिन्यै नमः श्रीरेतत्ते नैवेद्यं सुधा। मध्ये पानीयम्। उत्तरापोशनम्। पुनराचमनीयम्।

ॐ कर्पूरचन्दनोन्मिश्रं दिव्यगन्धसमन्वितम्। करोद्वर्तनकं नित्यं गृहाण परमेश्वरि॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, माहेश्वर्यै नमः श्रीरेतत्ते करोद्वर्तनं नमः।

ॐ पूगीफलैः सकर्पूरैर्नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
आर्द्रां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पिङ्गलायै नमः श्रीरेतत्ते ताम्बूलं नमः ।
जातवेदसे०, नमो देव्यै नमः श्रीरेतत्ते सुवर्णपुष्पं नमः।

ॐ इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्त्व । तेन मे सकलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सिद्धिदायै नमः श्रीरेतत्ते फलम्।

ॐ त्वं सूर्यचन्द्ररत्नानि विद्युदग्निस्त्वमेव हि । नीराजनं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ॥
ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, यमुनाद्रिवासिन्यै नमः। श्रीरेतत्ते नीराजनम्। गौरीर्मिमाय०, जातवेदसे० प्रणो देवी०, समस्तश्रीसूक्तं पठित्वा श्रीरेतत्ते नैवेद्यं नमः। ॐ महाकाल्यै नमः, महालक्ष्म्यै नमः, महासरस्वत्यै नमः श्रीरेतत्ते मन्त्रपुष्पं नमः। ॐ सर्वस्वरूपे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महाकाल्यै नमः श्रीरेतानि प्रदक्षिणानि। ॐ सर्वतः पाणिपादं ते०, यः शुचिः प्रयतो०,

नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्तेऽस्तु हरिप्रिये । नमस्तेऽस्तु जगद्धात्रि नमस्ते शिववल्लभे ॥
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महामायायै नमः श्रीरेतानि ते वन्दनानि। पद्मप्रिये०, या साम्प्रतं०, पद्मासनस्था०, या माया मधुकैटभ०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेषा ते प्रार्थना। ततः श्रीसूक्तं चण्डीपाठ-लक्ष्मीहृदयादिकं पाठयित्वा 'गुह्ये'त्यादिना जपं समर्पयेत्, इति लक्ष्मीपूजा।

सर्वप्रथम इस प्रकार विनियोग करे—अस्य श्री महालक्ष्म्या अष्टोत्तरशतनाममन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहालक्ष्मीः देवता श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं श्रीमहालक्ष्मीमष्टोत्तरशतनामभिः पूजयिष्ये। इसके बाद श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से षडङ्ग न्यास एवं कर न्यास करे। 'लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रे' से ध्यान करके पुष्प अथवा अक्षत से इस प्रकार पूजा करे—ॐ महालक्ष्म्यै नमः, महाकाल्यै नमः, महासरस्वत्यै नमः, महाकन्यायै नमः, महागौर्य्यै नमः, महादेव्यै नमः, भक्तानुग्रहकारिण्यै नमः, स्व-प्रकाशात्मरूपिण्यै नमः, महामायायै नमः, महेश्वर्यै नमः, वागीश्वर्यै नमः, जगद्धात्र्यै नमः, कालरात्र्यै नमः, त्रिलोचनायै नमः, भद्रकाल्यै नमः, कपालिन्यै नमः, महाशौर्यायै नमः, त्रिलोकात्मिकायै नमः, सिद्धलक्ष्म्यै नमः, क्रियालक्ष्म्यै नमः, लोकमार्गप्रदायिन्यै नमः, अरूपायै नमः, सुरूपायै नमः, विश्वरूपिण्यै नमः, पञ्चभूतात्मिकायै नमः, देवमात्रे नमः, सुरेश्वर्यै नमः, दारिद्र्यध्वंसिन्यै नमः, वीणापुस्तकधारिण्यै नमः, सर्वशक्त्यै नमः, ब्रह्मात्मिकायै नमः, अष्टाङ्गरूपिण्यै नमः, नवदुर्गात्मिकायै नमः, अष्टभैरव्यै नमः, गङ्गायै नमः, शारदायै नमः, वेण्यै नमः, सर्वशास्त्रधारिण्यै नमः, समुद्रवसनायै नमः, ब्रह्माण्डमणिमेखलायै नमः, अव-स्थात्रयनिर्मुक्तायै नमः, गणत्रयविवर्जितायै नमः, योगध्यानैकसंन्यासिन्यै नमः, योगध्यानैकपरायणायै नमः, देवत्रयविशोकायै नमः, वेदान्तज्ञानरूपिण्यै नमः, पद्मावत्यै नमः, विशालाक्ष्यै नमः, नागयज्ञोपवीतिन्यै नमः, सूर्यचन्द्रार्धमासायै नमः, ग्रहनक्षत्ररूपिण्यै नमः, वेदिकायै नमः, वेदरूपिण्यै नमः, गिरिसंभवायै नमः, कैवल्यदायै नमः, विश्रृंखलायै नमः, सूर्यमण्डलसंस्थितायै नमः, सोममण्डलमध्यस्थायै नमः, वायुमण्डलसंस्थितायै नमः, वह्निमण्डलसंस्थितायै नमः, शक्तिमण्डलसंस्थितायै नमः, चक्रिकायै नमः, चक्रमध्यस्थितायै नमः, चक्रमार्गप्रदायिन्यै नमः, सर्वसिद्धान्तमार्गयायिन्यै नमः, षड्वर्गवर्जितायै नमः, प्रत्यक्षादिप्रमावृतायै नमः, विद्यामूर्तायै नमः, त्रैलोक्यमोहिन्यै नमः, विद्यायै नमः, चर्मदायै नमः, रक्षायै नमः, ब्रह्मस्थापितरूपायै नमः, कैवल्यज्ञानगोचरायै नमः, करुणायै नमः, मधुकैटभमर्दिन्यै नमः, अचिन्त्यलक्षणायै नमः, गोप्त्र्यै नमः, सदाभक्ताघनाशिन्यै नमः, महारमायै नमः, परमेश्वर्यै नमः, सुसिद्धलक्ष्म्यै नमः, महाकालिन्द्यै नमः, सद्योजातायै नमः, वामदेव्यै नमः, अघोरायै नमः, तत्पुरुषायै नमः, ईशानरूपिण्यै नमः, एकाक्षरदेव्यै नमः, योगिन्यै नमः, योगध्यानपराक्रमायै नमः, श्रीसिद्धलक्ष्म्यै नमः, श्रियै नमः, कमलायै नमः, कमलालयायै नमः, पद्मायै नमः, नलिनयुग्मकराम्बुजायै नमः, शैलपुत्र्यै नमः, ब्रह्मचारिण्यै नमः, चण्डघण्टायै नमः, कूष्माण्ड्यै नमः, स्कन्दमात्रे नमः, कात्यायन्यै नमः, कालरात्र्यै नमः, महागौर्यै नमः, सिद्धिदायै नमः, सर्वात्मिकायै नमः। यन्त्र की कर्णिका में श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा नमः, श्रूं शिखायै वषट् नमः, श्रैं कवचाय हुं नमः, नेत्रत्रयाय वौषट् नमः श्रः अस्त्राय फट् नमः कहकर षडङ्ग पूजा करे। अष्टदल में पूर्व से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से ॐ पद्मासनायै नमः ॐ

पद्मवर्णायै नमः, ॐ पद्मस्थायै नमः, ॐ आर्द्रायै नमः, ॐ तर्पन्यत्यै नमः, ॐ तृप्तायै नमः, ॐ ज्वलन्त्यै नमः, ॐ स्वर्णप्राकारायै नमः कहकर आठ दलों की पूजा करे। आठ दलों के अग्रभाग में ब्राह्म्यै नमः एवं ॐ स्वर्णप्राकारायै नमः से पूजन करे तदनन्तर दलों के अग्रभाग में ब्राह्म्यै नमः, माहेश्वर्यै नमः, कौमार्यै नमः, वैष्णव्यै नमः, वाराह्यै नमः, इन्द्राण्यै नमः, चामुण्डायै नमः, महालक्ष्म्यै नमः तक कहकर इन आठ की पूजा करे। भूपुर में लं इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः' रं अग्नये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, टं यमाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, क्षं निर्ऋतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, वं वरुणाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, वं वायवे सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, सं कुबेराय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, हौं ईशानाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, आं ब्रह्मणे सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, ह्रीं अनन्ताय नमः कहकर दश दिक्पालों की पूजा करे। भूपुर के बाहर वं वज्राय नमः शं शक्तये नमः, दं दण्डाय नमः, खं खड्गाय नमः, आं पाशाय नमः, क्रों अङ्कुशाय नमः, गं गदायै नमः, शं शूलाय नमः, पं पद्माय नमः, चं चक्राय नमः कहकर दश आयुधों की पूजा करे। तब देवी को पुष्पाञ्जलि अर्पित करे।

इसके बाद 'ॐ दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम्। भक्त्या दत्तं मया देवि प्रसीद त्वं महेश्वरि। कर्दमेन०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै नमः श्रीरेष ते धूपो नमः' कहकर धूप दिखावे।

'ॐ कर्पूरवर्तिसंयुक्तं गोघृतेन समन्वितम्। दीपं गृहाण देवेशि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते। आपः सृजन्ति०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै नमः श्रीरेष ते दीपो नमः' कहकर दीप दिखावे।

'ॐ नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्। षड्रसै रचितं दिव्यं घृतेन परिपूरितम्। आर्द्रां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पूर्णमालिन्यै नमः श्रीरेतत्ते नैवेद्यं सुधा' कहकर नैवेद्य प्रदान करे। मध्य में पानीय, उत्तरापोशन एवं पुनराचमनीय प्रदान करे।

'ॐ कर्पूरचन्दनोन्मिश्रं दिव्यगन्धसमन्वितम्। करोद्वर्तनकं नित्यं गृहाण परमेश्वरि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, माहेश्वर्यै नमः श्रीरेतत्ते करोद्वर्तनं नमः' कहकर करोद्वर्तन प्रदान करे।

'ॐ पूगीफलैः सकर्पूरैर्नागवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्। आर्द्रां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पिङ्गलायै नमः श्रीरेतत्ते ताम्बूलं नमः' कहकर ताम्बूल प्रदान करे।

जातवेदसे, नमो देव्यै नमः श्रीरेतत्ते सुवर्णपुष्पं नमः कहकर सुवर्णपुष्प प्रदान करें।

'ॐ इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्त्व। तेन मे सकलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सिद्धिदायै नमः श्रीरेतत्ते फलम्' कहकर फल प्रदान करे।

'ॐ त्वं सूर्यचन्द्ररत्नानि विद्युदग्निस्त्वमेव हि। नीराजनं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि। ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, यमुनाद्रिवासिन्यै नमः। श्रीरेतत्ते नीराजनम्' कहकर आरती करे।

तब गौरीर्मिमाय० जातवेदसे० प्रणो देवी, समस्त श्रीसूक्त पढ़कर श्रीरेतत्ते नैवेद्यं नमः' कहकर नैवेद्य प्रदान करे। ॐ महाकाल्यै नमः, महालक्ष्म्यै नमः, महासरस्वत्यै नमः, श्रीरेतत्ते मन्त्रपुष्पं नमः कहकर पुष्प देवे। ॐ सर्वस्वरूपे, जातवेदसे० नमो देव्यै० महाकाल्यै नमः श्रीरेतत्ते प्रदक्षिणानि कहकर प्रदक्षिणा करे, ॐ सर्वतः पाणिपादं ते० यः शुचिः प्रयतो, नमस्ते स्तु·····शिव वल्लभे। जातवेदसे० नमो देव्यै० महामायायै नमः श्रीरेतानि ते वन्दनानि कहकर वन्दना करे। पद्मप्रिये० या साम्प्रतं पद्मासनास्था० या माया मधुकैटभ० जातवेदसे० नमो देव्यै० श्रीरेषा ते प्रार्थना कहकर प्रार्थना करे। तब श्री सूक्त चण्डी पाठ लक्ष्मीहृदयादिक का पाठ करके गुह्येत्यादि के द्वारा जप का समर्पण करे।

लक्ष्मीहृदयस्तोत्रम्

अथ लक्ष्मीहृदयम्। अस्य श्रीलक्ष्मीहृदयस्य शिरसि भार्गवाय ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुबादिच्छन्देभ्यो नमः। हृदये महालक्ष्म्यै देवतायै नमः। इति विन्यस्य ममालक्ष्मीपरिहारपूर्वकदीर्घायुर्नैरुज्यमहैश्वर्यफलावाप्त्यर्थं लक्ष्मीहृदयपाठे

विनियोग:, इति कृत्वाञ्जलिर्वदेत्। तत: श्रांश्रीमिति मन्त्रै: षडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्।

हस्तद्वयेन कमले धारयन्तीं तु लीलया। हारनूपुरसंयुक्तां लक्ष्मीं देवीं विचिन्तये ॥१॥

लक्ष्मीहृदय (अथर्वण रहस्योक्त)

ऋष्यादि न्यास—शिरसि भार्गवाय ऋषये नम:। मुखे त्रिष्टुबादिच्छन्देभ्यो नम:। हृदये महालक्ष्मी देवतायै नम:।

विनियोग—हाथ जोड़कर इस प्रकार कहे—ममालक्ष्मीपरिहारपूर्वकदीर्घायु: नैरुज्यमहैश्वर्यफलावाप्त्यर्थं लक्ष्मीहृदय-पाठे विनियोग:। तब श्रां श्रीं से षडङ्ग न्यास एवं करन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

हस्तद्वयेन कमले धारयन्तीं तु लीलया। हारनूपुरसंयुक्तां लक्ष्मीं देवीं विचिन्तये।।

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलाङ्गीम्।
बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मे दधानामाद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम् ॥२॥
श्रीमत्सौभाग्यजननीं स्तौमि लक्ष्मीं सनातनीम्। सर्वकामफलावाप्तिसाधनैकसुखावहाम् ॥३॥
नमामि नित्यं देवेशि त्वया प्रेरितमानस:। त्वदाज्ञां शिरसा धृत्वा भजामि परमेश्वरीम् ॥४॥
समस्तसम्पत्सुखदां महाश्रियं समस्तसौभाग्यकरीं महाश्रियम्।
समस्तकल्याणकरीं महाश्रियं भजाम्यहं ज्ञानकरीं महाश्रियम् ॥५॥
विज्ञानसम्पत्सुखदां सनातनीं विचित्रवाग्भूतिकरीं महेश्वरीम्।
मनोहरानन्तसुभोगदायिनीं नमाम्यहं भूतिकरीं हरिप्रियाम् ॥६॥
समस्तभूतान्तरसंस्थिता त्वं समस्तभूतेश्वरि विश्वरूपे।
तन्नास्ति यत्त्वद् व्यतिरिक्तवस्तु त्वत्पादपद्मं प्रणमाम्यहं श्री: ॥७॥
दारिद्र्यदु:खौघतमोपहन्त्री त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व।
दीनार्तिविच्छेदनहेतुभूतै: कृपाकटाक्षैरभिषिञ्च मां श्री: ॥८॥
अम्ब प्रसीद करुणासुधयार्द्रदृष्ट्या मां त्वत्कृपाद्रविणगेहमिमं कुरुष्व।
आलोकनप्रणयिहृद्गतशोकहन्त्री त्वत्पादपद्मयुगलं प्रणमाम्यहं श्री: ॥९॥
शान्त्यै नमोऽस्तु शरणागतरक्षणायै कान्त्यै नमोऽस्तु कमनीयगुणाश्रयायै।
क्षान्त्यै नमोऽस्तु दुरितक्षयकारणायै धात्र्यै नमोऽस्तु धनधान्यसमृद्धिदायै ॥१०॥
शक्त्यै नमोऽस्तु शशिशेखरसंस्तुतायै रत्यै नमोऽस्तु रजनीकरसोदरायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु भवसागरतारकायै मत्यै नमोऽस्तु मधुसूदनवल्लभायै ॥११॥
लक्ष्म्यै नमोऽस्तु शुभलक्षणलक्षितायै सिद्ध्यै नमोऽस्तु शिवसङ्घसुपूजितायै।
धृत्यै नमोऽस्त्वमितदुर्गतिभञ्जनायै गत्यै नमोऽस्तु वरसद्गतिदायिकायै ॥१२॥
देव्यै नमोऽस्तु दिवि देवगणार्चितायै भूत्यै नमोऽस्तु भुवनार्तिविनाशिकायै।
दान्त्यै नमोऽस्तु धरणीधरवल्लभायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥१३॥
सुतीव्रदारिद्र्यविदु: खहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते सर्वभयापहन्त्र्यै।
श्रीविष्णुवक्ष:स्थलसंस्थितायै नमो नम: सर्वविभूतिदायै ॥१४॥
जयतु जयतु लक्ष्मीर्लक्षणालंकृताङ्गी जयतु जयतु पद्मा पद्मसद्माभिवन्द्या।
जयतु जयतु विद्या विष्णुवामाङ्कसंस्था जयतु जयतु सम्यक्सर्वसम्पत्करी श्री: ॥१५॥
जयतु जयतु देवी देवसङ्घाभिपूज्या जयतु जयतु भद्रा भार्गवी भाग्यरूपा।
जयतु जयतु नित्या निर्मलज्ञानवेद्या जयतु जयतु सत्या सर्वभूतान्तरस्था ॥१६॥
जयतु जयतु रम्या रत्नगर्भान्तरस्था जयतु जयतु शुद्धा शुद्धजाम्बूनदाभा।
जयतु जयतु कान्ता कान्तिमद्भासिताङ्गी जयतु जयतु शान्ता शीघ्रमायाहि सौम्ये ॥१७॥

यस्याः कलायाः कमलोद्भवाद्या रुद्राश्च शक्रप्रमुखाश्च लेखाः ।
जीवन्ति सर्वेऽपि सशक्तयस्ते प्रभुत्वमापुः परमायुषस्ते ॥१८॥
लिलेख निटिले विधिर्मम लिपिं विसृज्यान्तरं त्वया विलिखितव्यमेतदिति तत्फलावाप्तये ।
तदन्तर इह स्फुटं कमलवासिनि श्रीरिमां समर्पय स्वमुद्रिकां सकलभाग्यसंसूचिकाम् ॥१६॥
तदिदं तिमिरं भाले स्फुटं कमलवासिनि । श्रियं समुद्रजां देहि सर्वभाग्यस्य सूचिकाम् ॥२०॥
कलया ते यथा देवि जीवन्ति सचराचराः । तथा संपत्करी लक्ष्मि सर्वदा संप्रसीद मे ॥२१॥
यथा विष्णौ ध्रुवे नित्यं स्वकलां संन्यवेशयः । तथैव स्वकलां लक्ष्मिर्मयि सम्यक् समर्पय ॥२२॥
सर्वसौख्यप्रदे देवि भक्तानामभयप्रदे । अचलां कुरु यत्नेन कलां मयि निवेशिताम् ॥२३॥
सदास्तां मद्भाले परमपदलक्ष्मीः स्फुटकला सदा वैकुण्ठश्रीर्निवसतु कला मे नयनयोः ।
वसेन्मर्त्ये लोके मम वचसि लक्ष्मीर्वरकला श्रियः श्वेतद्वीपे निवसतु कला मे स्वकरयोः ॥२४॥
तावन्नित्यं ममाङ्गेषु क्षीराब्धौ श्रीकला वसेत् । सूर्याचन्द्रमसौ यावद्यावल्लक्ष्मीपतिः श्रिया ॥२५॥
सर्वमङ्गलसंपूर्णा सर्वैश्वर्यसमन्विता । आद्यादिश्रीर्महालक्ष्मीः त्वत्कला मयि तिष्ठतु ॥२६॥
अज्ञानतिमिरं हन्तुं शुद्धज्ञानप्रकाशिका । सर्वैश्वर्यप्रदा मेऽस्तु त्वत्कला मयि सुस्थिरा ॥२७॥
अलक्ष्मीं हरतु क्षिप्रं तमः सूर्यप्रभा यथा । वितनोतु मम श्रेयस्त्वत्कला मयि संस्थिता ॥२८॥
ऐश्वर्यमङ्गलोत्पत्तिस्त्वत्कला या निधीयते । मयि तस्मात्कृतार्थोऽस्मि पात्रमस्मि स्थितेस्तव ॥२९॥
भवदावेशभाग्यार्हो भाग्यवानस्मि भार्गवि । त्वत्प्रसादात्पवित्रोऽहं लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥३०॥
पुनासि मां त्वं कलयैव यस्मादतः समागच्छ ममाग्रतस्त्वम् ।
परं पदं श्रीर्भव सुप्रसन्ना मय्यच्युतेन प्रविशादिलक्ष्मि ॥३१॥
श्रीवैकुण्ठस्थिते लक्ष्मि समागच्छ ममाग्रतः । नारायणेन सह मां कृपादृष्ट्यावलोकय ॥३२॥
सत्यलोकस्थिते लक्ष्मि त्वं ममागच्छ सन्निधिम् । वासुदेवेन सहिता प्रसीद वरदा भव ॥३३॥
श्वेतद्वीपस्थिते लक्ष्मि शीघ्रमागच्छ सुव्रते । विष्णुना सहिते देवि जगन्मातः प्रसीद मे ॥३४॥
क्षीराम्बुधिस्थिते लक्ष्मि समागच्छ समाधवे । त्वत्कृपादृष्टिसुधया सततं मां विलोकय ॥३५॥
रत्नगर्भस्थिते लक्ष्मि परिपूर्णे हिरण्मयि । समागच्छ समागच्छ तिष्ठस्व पुरतो मम ॥३६॥
स्थिरा भव महालक्ष्मि निश्चला भव निर्मले । प्रसन्ने कमले देवि प्रसन्नहृदया भव ॥३७॥
श्रीधरे श्रीमहाभूते त्वदन्तःस्थं महानिधिम् । शीघ्रमुद्धृत्य पुरतः प्रदर्शय समर्पय ॥३८॥
वसुन्धरे श्रीवसुधे वसुदोग्ध्रि कृपामयि । त्वत्कुक्षिगतसर्वस्वं शीघ्रं मे सम्प्रदर्शय ॥३९॥
विष्णुप्रिये रत्नगर्भे समस्तफलदे शिवे । त्वद्गर्भगतहेमादीन् प्रदर्शय प्रदर्शय ॥४०॥
रसातलगते लक्ष्मि शीघ्रमागच्छ मत्पुरः । न जाने परमं रूपं मातर्मे सम्प्रदर्शय ॥४१॥
आविर्भव मनोवेगाच्छीघ्रमागच्छ मे पुरः । मा वत्स भैरिहेत्युक्त्वा कामं गौरिव रक्ष माम् ॥४२॥
देवि शीघ्रं समागच्छ धरणीगर्भसंस्थिते । मातस्त्वद् भृत्यभृत्योऽहं मृगये त्वां कुतूहलात् ॥४३॥
उत्तिष्ठ जागृहि त्वं मे समुत्तिष्ठ सुजागृहि । अक्षयान् हेमकलशान् सुवर्णेन सुपूरितान् ॥४४॥
निक्षेपान्मे समाकृष्य समुद्धृत्य ममाग्रतः । समुन्नतोन्नता भूत्वा समृद्ध्यैहि धरान्तरात् ॥४५॥
मत्सन्निधिं समागच्छ मदाहितकृपारसात् । प्रसीद श्रेयसां दोग्ध्रि लक्ष्मि मे नयनाग्रतः ॥४६॥
अत्रोपविश्य लक्ष्मि त्वं स्थिरा भव हिरण्मयि । सुस्थिरा भव संप्रीत्या प्रसन्ना वरदा भव ॥४७॥
आनीतांस्तांस्त्वया देवि निधीन् मे संप्रदर्शय । अद्य क्षणेन सहसा दत्त्वा संरक्ष मां सदा ॥४८॥
मयि तिष्ठ तथा नित्यं यथेन्द्रादिषु तिष्ठसि । अभयं कुरु मे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥४९॥

समागच्छ महालक्ष्मि शुद्धजाम्बूनदप्रभे। प्रसीद पुरत: स्थित्वा प्रणतं मां विलोकय ॥५०॥
लक्ष्मि भुवि गता भासि यत्र यत्र हिरण्मयी। तत्र तत्र स्थिता त्वं मे तव रूपं प्रदर्शय ॥५१॥
क्रीडसि त्वं च बहुधा परिपूर्णकृपामयि। मम मूर्धनि ते हस्तमविलम्बितमर्पय ॥५२॥
फलद्भाग्योदये लक्ष्मि समस्तपुरवासिनि। प्रसीद मे महालक्ष्मि परिपूर्णमनोरथे ॥५३॥
अयोध्यादिषु सर्वेषु नगरेषु समास्थिते। वैभवैर्विविधैर्युक्ता समागच्छ बलान्विता ॥५४॥
समागच्छ समागच्छ ममाङ्गे भव सुस्थिरा। करुणारसनि:ष्यन्दनेत्रद्वयविलासिनि ॥५५॥
संनिधत्स्व महालक्ष्मि त्वत्पाणिं मम मस्तके। करुणासुधया मां त्वमभिषिञ्च स्थिरं कुरु ॥५६॥
दीनस्य मस्तके हस्तं मम त्वं कृपयार्पय। आद्यादिश्रीर्महालक्ष्मि विष्णुवामाङ्कसंस्थिते ॥५७॥
भवभीतिपरित्रस्तभक्तत्राणपरायणे। प्रत्यक्षीकुरु रूपं मे रक्ष मां शरणागतम् ॥५८॥
सर्वराजगृहाल्लक्ष्मि समागच्छ गुणान्विता। स्थित्वा तु पुरतो मेऽद्य प्रसादेनाभयं कुरु ॥५९॥
प्रसीद मे महालक्ष्मि सुप्रसीद महाशिवे। अचला भव सुप्रीत्या सुस्थिरा भव मद्गृहे ॥६०॥
यावत्तिष्ठन्ति देवाश्च यावत्त्वन्नाम तिष्ठति। यावद्विष्णुश्च यावत्त्वं तावत्कुरु कृपां मयि ॥६१॥
चान्द्री कला यथा शुक्ले वर्धते सा दिने दिने। तथा दया ते मय्येव वर्धतामभिवर्धताम् ॥६२॥
यथा वैकुण्ठनगरे यथा वै क्षीरसागरे। तथा मद्भवने तिष्ठ स्थिरं श्रीर्विष्णुना सह ॥६३॥
योगिनां हृदये नित्यं यथा तिष्ठसि विष्णुना। तथा मद्भवने तिष्ठ स्थिरं श्रीर्विष्णुना सह ॥६४॥

नारायणस्य हृदये भवती यथास्ते नारायणोऽपि तव हृत्कमले यथास्ते।
नारायणस्त्वमपि नित्यमुभौ तथैव तौ तिष्ठतां हृदि ममापि दयावति श्री: ॥६५॥
विज्ञानवृद्धिं हृदये कुरु श्री: सौभाग्यसिद्धिं कुरु मे गृहे श्री:।
दयासुपुष्टिं कुरुतां मयि श्री: सुवर्णवृद्धिं कुरु मे करे श्री: ॥६६॥
न मां त्यजेथा: श्रितकल्पवल्लि सद्भक्तिचिन्तामणिकामधेनो।
विश्वस्य मातर्भव सुप्रसन्ना गृहे कलत्रेषु च पुत्रवर्गे ॥६७॥
आद्यादिमाये त्वमजाण्डबीजं त्वमेव साकारनिराकृतिस्त्वम्।
त्वया धृताश्चाब्जभवाण्डसंघाश्चित्रं चरित्रं तव देवि विष्णो: ॥६८॥

ब्रह्मरुद्रादयो देवा वेदाश्चापि न शक्नुयु:। महिमानं तव स्तोतुं मन्दोऽहं शक्नुया कथम् ॥६९॥
अम्ब त्वद्वत्सवाक्यानि सूक्तासूक्तानि यानि च। तानि स्वीकुरु सर्वज्ञे दयालुत्वेन सादरम् ॥७०॥
भवतीं शरणं गत्वा कृतार्था: स्यु: पुरातना:। इति संचिन्त्य मनसा त्वामहं शरणं व्रजे ॥७१॥
अनन्तानन्तसुखिनस्त्वद्भक्तास्त्वत्परायणा:। इति वेदप्रमाणाद्धि देवि त्वां शरणं व्रजे ॥७२॥
तव प्रतिज्ञा मद्भक्ता न नश्यन्तीत्यपि क्वचित्। इति संचिन्त्य संचिन्त्य प्राणान् सन्धारयाम्यहम् ॥७३॥
त्वदधीनस्त्वहं मातस्त्वत्कृपा मयि विद्यते। यावत्सम्पूर्णकाम: स्यां तावद्देहि कृपानिधे ॥७४॥
क्षणमात्रं न शक्नोमि जीवितुं त्वत्कृपां विना। न जीवन्तीह जलजा जलं त्यक्त्वा जलग्रहा: ॥७५॥
हिता हि पुत्रवात्सल्याज्जननी प्रस्नुतस्तनी। वत्सं त्वरितमागत्य संप्रीणयति वत्सला ॥७६॥
यदि स्यां तव पुत्रोऽहं मातस्त्वं यदि मामकी। दयापयोधरस्तन्यसुधाभिरभिषिञ्च माम् ॥७७॥
मृग्यो न गुणलेशोऽपि मयि दौषैकमन्दिरे। पांसूनां वृष्टिबिन्दूनां दोषाणां च न मे मिति: ॥७८॥
पापिनामहमेवाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणी:। दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये ॥७९॥
विधिनाहं न सृष्टश्चेन्न स्यात्तव दयालुता। आमयो वा न सृष्टश्चेदौषधस्य वृथोदय: ॥८०॥
कृपा मदग्रजा किं ते ह्यहं वा किं तदग्रज:। विचार्य देहि मे वित्तं तव देवि दयानिधे ॥८१॥

माता पिता त्वं गुरु सद्गतिः श्रीस्त्वमेव संजीवनहेतुभूता।
अन्यं न मन्ये जगदेकनाथे त्वमेव सर्वं मम देवि सत्यम् ॥८२॥
आद्यादिलक्ष्मीर्भव सुप्रसन्ना विशुद्धविज्ञानसुखैकदोग्ध्रि।
अज्ञानहन्त्रि त्रिगुणातिरिक्ता प्रज्ञाननेत्रे भव सुप्रसन्ना ॥८३॥
अशेषवाग्जाड्यमलापहारिणि नवं नवं स्पष्टसुवाक्प्रदायिनि।
ममैहि जिह्वाग्रसुरङ्गनर्तकी भव प्रसन्ना वदने च मे श्रीः ॥८४॥
समस्तसम्पत्सुविराजमाना समस्ततेजःसु विराजमाना।
विष्णुप्रिये त्वं भव दीप्यमाना वाग्देवता मे भवने प्रसन्ना ॥८५॥
भक्त्या नतानां सकलार्थदे त्वं प्रभासुलावण्यदयासुदोग्ध्रि।
सुवर्णदे त्वं सुमुखी भव श्रीर्हिरण्मये मे भव सुप्रसन्ना ॥८६॥
सर्वार्थदा सर्वजगत्प्रसूतिः सर्वेश्वरी सर्वभयापहन्त्री।
सर्वोन्नता त्वं सुमुखी भव श्रीर्हिरण्मये मे वदने प्रसन्ना ॥८७॥
समस्तविघ्नौघविनाशकारिणी समस्तविघ्नोद्धरणे विचक्षणा।
अनन्तसौभाग्यसुखप्रदायिनी हिरण्मये मे वदने प्रसन्ना ॥८८॥
देवि प्रसीद दयनीयतमाय मह्यं देवादिनाथभवदेवगणाभिवन्द्ये।
मातस्तथैव भव सन्निहिता दृशोर्मे पत्या समं मम मुखे भव सुप्रसन्ना ॥८९॥
मा वत्स भैरभयदानकरोऽर्पितस्ते मौलौ ममेति मयि दीनदयानुकम्पे।
मातः समर्पय मुदा करुणाकटाक्षं माङ्गल्यबीजमहिमानुसृतं ममान्तः ॥९०॥
कटाक्ष इह कामधुक्तव ममास्तु चिन्तामणिः करः सुरतरुः सदा नवनिधिस्त्वमेवेन्दिरे।
भवेत्तव दयारसो रसरसायनं त्वन्वहं मुखं तव कलानिधिर्विविधवाञ्छितार्थप्रदम् ॥९१॥
यथा रसस्पर्शनतोऽयसोऽपि सुवर्णता स्यात्कमले तथा ते।
कटाक्षसंस्पर्शनतो जनानाममङ्गलानामपि मङ्गलत्वम् ॥९२॥
देहीति नास्तीति वचः प्रवेशाद्भीतो रमे त्वां शरणं प्रपन्नः।
अतः सदास्मिन्नभयप्रदा त्वं सहैव पत्या मम सन्निधेहि ॥९३॥
कल्पद्रुमेण मणिना सहिता सुरम्या श्रीस्ते कला मयि रसेन रसायनेन।
आस्तां यतो मम च दृक्शिरपाणिपादस्पृष्टाः सुवर्णवपुषः स्थिरजङ्गमाः स्युः ॥९४॥
आद्यादिविष्णोः स्थिरधर्मपत्नी त्वमम्ब पत्या मम सन्निधेहि।
आद्यादिलक्ष्मीस्त्वदनुग्रहेण पदे पदे मे निधिदर्शनं स्यात् ॥९५॥
आद्यादिलक्ष्मीहृदयं पठेद्यः स राज्यलक्ष्मीमचलां तनोति।
महादरिद्रोऽपि भवेद्धनाढ्यस्तदन्वये श्रीः स्थिरतां प्रयाति ॥९६॥
यस्य स्मरणमात्रेण तुष्टा स्याद्विष्णुवल्लभा। तस्याभीष्टं ददात्याशु तं पालयति पुत्रवत् ॥९७॥
इदं रहस्यं हृदयं सर्वकामफलप्रदम्। जपः पञ्चसहस्रं तु पुरश्चरणमुच्यते ॥९८॥
त्रिकालमेककालं वा नरो भक्तिसमन्वितः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां श्रियम् ॥९९॥
महालक्ष्मीं समुद्दिश्य निशि भार्गववासरे। इदं श्रीहृदयं जप्त्वा पञ्चवारं धनी भवेत् ॥१००॥
अनेन हृदयेनान्नं गर्भिण्या अभिमन्त्रितम्। ददाति तत्कुले पुत्रो जायते श्रीपतिः स्वयम् ॥१०१॥
नरेणाप्यथवा नार्या लक्ष्मीहृदयमन्त्रिते। जले च पीते तद्वंशे मन्दभाग्यो न जायते ॥१०२॥

य आश्विने मासि च शुक्लपक्षे रमोत्सवे मन्निहितैकभक्त्या ।
पठेत्तथैकोत्तरवारवृद्ध्या लभेत सौवर्णमयीं च वृद्धिम् ॥१०३॥
ए एकभक्तोऽन्वहमेकवर्षं विशुद्धधीः सप्ततिवारजापी ।
स मन्दभाग्योऽपि रमाकटाक्षाद्भवेत् सहस्राक्षशताधिकश्रीः ॥१०४॥
श्रीशाङ्ग्रिभक्तिं हरिदासदास्यं प्रसन्नमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम् ।
गुरोः स्मृतिं निर्मलबोधबुद्धिं प्रदेहि मे देहि परं पदं श्रीः ॥१०५॥
पृथ्वीपतित्वं पुरुषोत्तमत्वं विभूतिवासं विविधर्द्धिसिद्धिम् ।
संपूर्णसिद्धिं बहुवर्षभोग्यां प्रदेहि मे देहि पुनः पुनस्त्वम् ॥१०६॥
वागर्थसिद्धिं बहुलोकवश्यं वयःस्थिरत्वं ललनासुभोगम् ।
पौत्रादिलब्धिं सकलार्थसिद्धिं प्रदेहि मे भार्गवि जन्मजन्मनि ॥१०७॥
(सुवर्णवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः कल्याणवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ।
विभूतिवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः सौभाग्यवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ॥
ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं कोटिबालार्कभासां विद्युद्वर्णाम्बिरवरधरां भूषणाढ्यां सुशोभाम् ।
बीजापूरं सरजिसयुगं बिभ्रतीं स्वर्णपात्रे भर्त्रा युक्तां मुहुरभयदां शश्वदप्यच्युतश्रीः ॥१०८॥
इत्यथर्वणरहस्ये लक्ष्मीहृदयस्तोत्रं संपूर्णम्।

ध्यान के पश्चात् मूलोक्त श्लोक संख्या २ से ९५ तक के लक्ष्मीहृदय स्तोत्र का पाठ करे।

लक्ष्मीहृदय पाठ का फल—आद्यादि लक्ष्मी हृदय का पाठ जो करता है, उसे अचला राज्यलक्ष्मी मिलती है, महादरिद्र भी धनाढ्य हो जाता है और उसके कुल में लक्ष्मी स्थिर रहती है। हृदय स्तोत्र के स्मरण से विष्णुप्रिया तुष्ट होती है और पाठ करने वाले को अभीष्ट देकर उसे पुत्र के समान पालती है। रहस्यमय यह हृदय सर्वकामफलप्रदायक है। पाँच हजार जप से इसका पुरश्चरण होता है। तीनों सन्ध्याओं में या एक सन्ध्या में जो मनुष्य भक्तिसहित इसका पाठ करता है या पाठ करवाकर सुनता है, उसे बहुत धन मिलता है। महालक्ष्मी को लक्ष्य में रखकर भृगुवार की रात्रि में इस श्रीहृदय का पाँच बार जप करने से साधक धनी होता है। इस हृदय स्तोत्र से अभिमन्त्रित अन्न जिस गर्भवती स्त्री को खिलाया जायेगा, उसके कुल में विष्णु स्वयं पुत्र बनकर आते हैं। जो नर या नारी हृदय से मन्त्रित जल पीते हैं, उनके कुल में मन्दभाग्य कोई नहीं होता। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष के नवरात्र में जो एक शाम खाकर प्रतिदिन एक-एक पाठ अधिक करता है अथवा पैंतालीस पाठ करता है, उसके यहाँ नित्य सोने की वृद्धि होती है। प्रतिदिन एक बार खाना खाकर जो सत्तर पाठ एक वर्ष तक करता है, वह मन्दभाग्य भी लक्ष्मी की कृपा से एक सौ हजार से भी अधिक श्री सम्पदा का स्वामी होता है। तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

श्रीशाङ्ग्रिभक्तिं हरिदासदास्यं प्रसन्नमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम्। गुरोः स्मृतिं निर्मलबोधबुद्धिं प्रदेहि मे देहि परं पदं श्रीः।।
पृथ्वीपतित्वं पुरुषोत्तमत्वं विभूतिवासं विविधर्द्धिसिद्धिम्। संपूर्णसिद्धिं बहुवर्षभोग्यां प्रदेहि मे देहि पुनः पुनस्त्वम्।।
वागर्थसिद्धिं बहुलोकवश्यं वयःस्थिरत्वं ललनासुभोगम्। पौत्रादिलब्धिं सकलार्थसिद्धिं प्रदेहि मे भार्गवि जन्मजन्मनि।।
(सुवर्णवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः कल्याणवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः। विभूतिवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः सौभाग्यवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः।।)
ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं कोटिबालार्कभासां विद्युद्वर्णाम्बिरवरधरां भूषणाढ्यां सुशोभाम्।
बीजापूरं सरजिसयुगं बिभ्रतीं स्वर्णपात्रे भर्त्रा युक्तां मुहुरभयदां शश्वदप्यच्युतश्रीः।।

दुर्गामन्त्रोद्धारस्तद्ध्यानादि

सारसंग्रहे—

अथोच्यन्ते महामन्त्रा दुर्गायाः वाञ्छितार्थदाः । त्रिवर्गफलमोक्षाप्तिदायका विजयप्रदाः ॥१॥

सद्यः सदण्डी हृल्लेखा सधृतिह्लादिनीन्दुयुक् । अत्रीन्धिके विसर्गः स्मृतिप्रतिष्ठे श्रिया सह ॥२॥
धूम्रार्चिः स्यात् टपंक्त्यर्णस्तन्द्रानन्तेऽष्टवर्णकः । दुर्गामनुः समाख्यातो भजतां सर्वकामदः ॥३॥

सद्य ओ, दण्डी अनुस्वारस्तद्युक्तस्तेन प्रणवः, हृलेखा भुवनेश्वरीबीजं, धृतिरुकारो, ह्लादिनी दकारः, इन्दु अनुस्वारस्तेन दुं, अत्रिर्दकारः, इन्धिका उकारः, विसर्गयुक्तस्तेन दुः, स्मृतिर्गकारः, प्रतिष्ठा आ तेन गा, श्रीः ऐकारः, धूम्रार्चिर्यकारः, तेन यै, टंपक्त्यर्णो नकारः, तन्द्रा म, अनन्तो विसर्गः, तस्यात्र 'ससजुषो रु'रिति रेफः, तेन दुर्गा इत्यस्य सन्धिस्तेन दुर्गायै इति मन्त्रे बोद्धव्यम्।

मुनिः प्रोक्तो नारदाख्यो गायत्रं छन्द ईरितम् । दुर्गा च देवता प्रोक्ता दृष्टादृष्टफलप्रदा ॥४॥
षड्दीर्घयुक्तैराद्यन्तैर्मनुपूर्वषडर्णकैः । जातियुक्तैः षडङ्गानि मनोरस्य प्रकल्पयेत् ॥५॥

तेन ॐ ह्रींदुंदुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः, इत्यादिषडङ्गमन्त्रा उन्नेयाः। तदुक्तमाचार्यचरणैः—'तारो माया च दुर्गायै ह्रामाद्यन्ताङ्गकल्पना' इति। चकारः दुं समुचिनोतीति पद्मपादाचार्यः। ध्यानम्—

सिंहासनां मरकतद्युतिमिन्दुचूडां शङ्खं ह्यरिं करतलैदर्धतीं शरासम् ।
बाणं त्रिनेत्रलसितां भवदुःखहन्त्रीं दुर्गां नमामि मणिभूषणभूषिताङ्गीम् ॥६॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्। तथा—

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं चतुरस्त्रत्रयावृतम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं कुङ्कुमादिभिरुद्धरेत् ॥७॥
कुर्याच्च पीठपूजायां नवशक्तिसमर्चनम् । ताश्च प्रभा समाया सजया सूक्ष्मा विशुद्धा स्यात् ॥८॥
नन्दिन्या सुप्रभया विजया सर्वादिसिद्धिर्नवमी । एकवह्निशरक्लीवहीनैरज्भिः प्रपूजयेत् ॥९॥

एकेति अइउऋऋऌॡ इति सप्तस्वररहितैरज्भिः आईऊएऐओऔअंअः इति नवभिः स्वरैः सहिता नवशक्तयः पूज्या इत्यर्थः।

दुर्गा मन्त्रोद्धार—सारसंग्रह में कहा गया है कि अब वांछित फल, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षप्रद तथा विजयप्रदायक दुर्गामन्त्र को कहा जाता है। श्लोक २, ३ का उद्धार करने पर आठ अक्षरों का दुर्गा का मन्त्र इस प्रकार स्फुरित होता है— ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता कहे गये हैं। यह मन्त्र दृष्ट-अदृष्ट समस्त फलों को देने वाला है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां नमः शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां कवचाय हुं, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां अस्त्राय फट्। यह न्यास आद्य शंकराचार्य और पद्मपादाचार्य के अनुसार करणीय है। न्यास के बाद इस प्रकार ध्यान करे—

सिंहासनां मरकतद्युतिमिन्दुचूडां शङ्खं ह्यरिं करतलैदर्धतीं शरासम्।
बाणं त्रिनेत्रलसितां भवदुःखहन्त्रीं दुर्गां नमामि मणिभूषणभूषिताङ्गीम्।।

तदनन्तर ऊपर वाले बाँयें हाथ से प्रारम्भ करके उनके आयुधों का ध्यान करे।

पूजन यन्त्र—पहले दो अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर चतुरस्र कुङ्कुम आदि से बनावे। पीठ पूजा में नव शक्तियों की पूजा करे। उनके नाम हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया, सर्वसिद्धि। इनके पहले आं ईं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः—इन नव स्वरों में से क्रमशः एक-एक लगाकर पूजन करे। जैसे आं प्रभायै नमः, ईंमायायै नमः इत्यादि।

सिंहमनोरुद्धारः

तारो वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च महापदम् । सिंहाय वर्मास्त्रनतिप्रान्तः सिंहाणुरीरितः ॥१०॥
आसनं मनुनानेन दद्यान्मूलेन कल्पयेत् ।

वर्म हुं, अस्त्रं फट्, नतिर्नमः।

मूर्तिमावाह्य तस्यां तां पूजयेच्चन्दनादिभि: । प्रथमावृतिरङ्गैः स्याज्जयादिभि: परा परा ॥११॥
शङ्खादिकैरायुधै: स्याच्चतुर्थीन्द्रादिभि: परा । तदायुधैश्च दुर्गाया: पूजनं समुदीरितम् ॥१२॥
सजया विजया कीर्ति: प्रीति: प्रभा समीरिता श्रद्धा । मेधा श्रुति: स्वनामाद्यक्षरपूर्वा: समभ्यर्च्या: ॥१३॥
अरिदरगदासिपाशाङ्कुशशरधनूंष्यायुधानि गदितानि । इत्थं दुर्गामन्त्रं यो भजते स नर इन्दिरां लभते ॥१४॥

सिंह मन्त्र—मूलोक्त श्लोक १० के उद्धार करने पर सिंह मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय फट् नम:।

इस मन्त्र से दुर्गा को आसन प्रदान करे। मूल मन्त्र से कल्पित मूर्ति को आवाहित कर उसमें चन्दनादि से पूजन करे। उसी में अंगपूजा, आयुध-पूजा एवं लोकपाल पूजन करे। तदनन्तर जया-विजया आदि का पूजन करे। शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, शर एवं धनुष इनके आयुध कहे गये हैं। इस दुर्गा मन्त्र का जो जप करता है, वह लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

पूजाप्रयोगविधानम्

अथ प्रयोग:—तत्र प्रातरुत्थाय योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ॐ नारदाय ऋषये नम:, मुखे गायत्रीछन्दसे नम:, हृदये श्रीदुर्गायै देवतायै नम:, इति विन्यस्य कृताञ्जलिर्मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग: इत्युक्त्वा, ॐ ह्रींदुंर्गायै ह्रां हृदयाय नम:, ॐ ह्रींहुंदुर्गायै ह्रीं शिरसे० इत्यादिषडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे चन्दनादिभिरन्तर्बहिर्विभागेनाष्टदलकमलं कृत्वा तद्वहिश्चतुर्द्वारयुक्तचतुरश्रत्रयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् स्वपुरत: संस्थाप्यार्घ्यस्थापनादिपरतत्त्वार्चान्तं विधाय, अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन आं प्रभायै नम:, ईं मायायै०, ऊं जयायै०, एं सूक्ष्मायै०, ऐं विशुद्धायै०, ओं नन्दिन्यै०, औं सुप्रभायै०, अं विजयायै०, मध्ये अ: सर्वसिद्ध्यै नम:, इति संपूज्य, 'ॐ वज्र-नखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नम:' इति पीठस्य मध्ये समभ्यर्च्यावाहनादिपुष्पोचारान्ते प्राग्वदङ्गानि संपूज्यान्तरष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ जं जयायै नम:, ॐ विं विजयायै०, ॐ किं कीर्त्यै०, ॐ प्रिं प्रीत्यै०, ॐ प्रं प्रभायै०, ॐ श्रं श्रद्धायै०, ॐ में मेधायै०, ॐ श्रुं श्रुत्यै नम:, इति संपूज्य, बाह्याष्टदलेषु ॐ शंखाय नम:, चक्राय०, गदायै०, खड्गाय०, पाशाय०, अङ्कुशाय०, शरेभ्य:०, धनुषे नम:, इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य, प्राग्वद् वीथीद्वये लोकपालतदस्त्रार्चादि सर्वं समापयेत्।

प्रयोग—प्रात: उठकर योगपीठ न्यास तक की क्रिया करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि ॐ नारदाय ऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये श्रीदुर्गायै देवतायै नम:। तब हाथ जोड़कर कहे—मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग:। तदनन्तर षडङ्ग न्यास करे—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नम:, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां शिरसे स्वाहा इत्यादि। इसी प्रकार करन्यास और हृदयादि न्यास करे। ध्यान-मानस पूजन के बाद सोने आदि के पत्र पर चन्दनादि से एक अष्टदल कमल के बाहर दूसरा अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर बनाकर पूजाचक्र का निर्माण करे। उसे पूर्ववत् अपने आगे स्थापित करके अर्घ्य स्थापन करे। परतत्त्वान्त तक पीठपूजा करे। अष्टदल के केसरों में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजा करे—आं प्रभायै नम:। ईं मायायै नम:। ऊं जयायै नम:। एं सूक्ष्मायै नम:। ऐं विशुद्धायै नम:। ओं नन्दिन्यै नम:। औं सुप्रभायै नम:। अं विजयायै नम:। मध्य में अ: सर्वसिद्ध्यै नम: से पूजन करे। इसके बाद पीठमध्य में पूजा करे—ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नम:। पीठपूजा के बाद आवाहन से लेकर पुष्पोपचार तक षडङ्ग पूजन करे। अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पूजा करे—ॐ जं जयायै नम:। ॐ विंविजयायै नम:। ॐ किं कीर्त्यै नम:। ॐ प्रिं प्रीत्यै नम:। ॐ प्रं प्रभायै नम:। ॐ श्रं श्रद्धायै नम:। ॐ में मेधायै नम:। ॐ श्रुं श्रुत्यै नम:। बाहरी अष्टदल में इस प्रकार पूजा करे—ॐ शंखाय नम:। ॐ चक्राय नम:। ॐ गदायै नम:। ॐ खड्गाय नम:। ॐ पाशाय नम:। ॐ अंकुशाय नम:। ॐ शरेभ्यो नम:। ॐ धनुषे नम:। तदनन्तर पूर्ववत् भूपुर की वीथिद्वय में लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

तथा—

जितेन्द्रियो हविष्याशी वसुलक्षं जपेन्मनुम्। तत्सहस्रं तिलैः स्वादुलोलितैर्वा पयोन्धसा॥१५॥
जुहुयादेधिते वह्नौ तर्पणादि ततश्चरेत्।

वसुलक्षमष्टलक्षं, स्वादु त्रिमधु।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् सुधीः॥१६॥
यथोक्तेन विधानेन नव कुम्भान् मनोरमान्। पञ्चरत्नसमायुक्तान् नवस्थानेषु विन्यसेत्॥१७॥
मन्त्री दुर्गां यजेन्मध्ये त्वन्यत्र च जयादिकाः। चन्दनाद्यैः समभ्यर्च्य धूपदीपैश्च मन्त्रवित्॥१८॥
अभिषिञ्चेत्प्रियं साध्यं राजानं वा शिशुं बुधः। विजयश्रीसमायुक्तो राजा भवति नान्यथ॥१९॥
भूतापस्मारवेतालपिशाचाद्यैर्वियुज्यते। वन्ध्या च ललना पुत्रं विनीतं प्राप्नुयाच्छुभम्॥२०॥
आमयान्मुच्यते मर्त्यो दीर्घायुश्च न संशयः। अनेनैव विधानेन जनानामनुरञ्जनम्॥२१॥
एवं दुर्गामनुं मर्त्यो यो भजेद्विधिनामुना। स दीर्घायुश्च दुरितं जयेत्सुविजितामयः॥२२॥

जितेन्द्रिय एवं हविष्यभोजी रहकर आठ लाख मन्त्रजप करे। आठ हजार हवन त्रिमधुराक्त तिल से प्रज्वलित अग्नि में करे। तदनन्तर तर्पण आदि करे। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से साधक प्रयोग करे। यथोक्त विधान से सुन्दर नव घड़ों को नव स्थान में रखकर उनमें पञ्चरत्न डाले, जल भरे। बीच वाले घड़े में दुर्गा का पूजन करे। शेष आठ घटों में जयादि का पूजन चन्दनादि धूप-दीप से करे। इस जल से प्रिय साध्य राजा या बालक का अभिषेक करे तो राजा युद्ध में विजयी होता है। भूत-अपस्मार-वेताल-पिशाच आदि पीड़ित को छोड़कर भाग जाते हैं। वन्ध्या या ललना विनीत पुत्र प्राप्त करती है। मनुष्य निरोग होकर दीर्घायु का भोग करता है। इस विधान से जनकल्याण भी होता है। इस विधि से जो दुर्गा का भजन-पूजन-जप करता है, वह दीर्घ काल तक जीवित रहकर सदा विजयी रहता है।

दौर्गयन्त्रविधिः

पद्मे तारगतां शक्तिं ससाध्यां तद्दलेष्वथ। मन्त्रवर्णांल्लिखेदष्टौ त्रिष्टुब्मन्त्रेण वेष्टयेत्॥२३॥
मातृकार्णैर्बहिर्वीतं चतुरश्रेण वेष्टयेत्। दौर्गं यन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं परम्॥२४॥
अपस्मारमहाभूतक्षुद्रज्वरनिवारणम्। नृणां विजयदं स्त्रीणां पुत्रदं नात्र संशयः॥२५॥ इति।

अस्यार्थः—अष्टदलपद्मं कृत्वा तन्मध्ये तारं तस्योदरे शक्तिबीजं तदुदरे साध्यनाम च विलिख्य, तद्दलेषु मन्त्रवर्णानेकैकशो विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाऽन्तर्वीथ्यां, 'जातवेदसे सुनवामे'ति त्रिष्टुब्मन्त्रेण संवेष्ट्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यात्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। पूर्वोक्तनवकुम्भस्थापनमस्मिन्नेव यन्त्रे ज्ञेयम्।

अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में ॐ, ॐ के मध्य में ह्रीं और 'ह्रीं' के उदर में साध्य नाम लिखे। उसके दलों में अष्टाक्षर दुर्गा मन्त्र के अक्षरों को लिखे। अष्टदल के बाहर तीन वृत्त लिखे। पहली वीथि में 'जातवेदसे सुनवाम' के अक्षरों को लिखकर वेष्टित करे। बाहरी वीथि में मातृका वर्णों को लिखे। इसके बाहर चतुरस्र बनावे। यह दुर्गा यन्त्र सर्वसिद्धिकर है। इससे अपस्मार-महाभूत एवं क्षुद्रज्वर का निवारण होता है। यह पुरुषों को विजयी बनाता है और नारियों को पुत्र देता है। इसी यन्त्र में पूर्वोक्त नव कलशों को स्थापित करना चाहिये।

महिषमर्दिनीमन्त्रप्रयोगः

नारायणीये—

विषं हि मज्जा कालोऽग्निरत्रिनिष्ठो निठद्वयम्। मन्त्रो महिषमर्दन्याः प्रोक्तो वस्वक्षरात्मकः॥१॥

विषं म, हि स्वरूपं, मज्जा ष, कालो म, अग्निः र, अत्रिनिष्ठो दकारस्थस्तेन र्द, नि स्वरूपं, ठद्वयं स्वाहा।

मार्कण्डेयो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः। सुरासुरनता देवी प्रोक्ता महिषमर्दनी॥२॥

शारदातिलके (११.२२)—

महिषमर्दिनि हुंफट् हृदयं परिकीर्तितम्। महिषशत्रूत्सादि हुंफट् शिरोऽङ्गं समुदीरितम् ॥१॥
महिषं भीषयद्वन्द्वं हुंफडन्त: शिखामनु:। महिषं हनयुग्मान्ते देवि हुंफट् तनुच्छदम् ॥२॥
महिषान्ते सूदनि हुंफडन्तं चास्त्रमीरितम्। मन्त्रैरेतैर्जातियुक्तै: पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥३॥
गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डिताम्। नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ॥४॥
शंखचक्रकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकान्। तर्जनीमपि बिभ्रतीं निजबाहुभि: शशिशेखराम् ॥५॥

दक्षाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यध:स्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्। ईशानशिवे तु—

ध्यायेत् श्यामां महादुर्गां सर्वाभरणभूषिताम्। जटामुकुटशोभाढ्यां स्फुरच्चन्द्रकलान्विताम् ॥१॥
पीताम्बरधरां देवीं पीनोन्नतकुचद्वयाम्। शङ्खचक्रलसद्धस्तां तदध: खड्गखेटकौ ॥२॥
बाणचापौ च तदध: सशूलां तर्जनीमध:।

तर्जनीति तर्जनीमुद्रा। तल्लक्षणं यथा—'तर्जन्येकाकिनी ऊर्ध्वं शेषा: संनमितास्त्वध:। मुद्रेयं तर्जनी प्रोक्ता वक्तृश्रोत्रोस्तु भीतिदा' इति सारसंग्रहोक्ता।

महिषमर्दिनी मन्त्र—नारायणीय के श्लोक का उद्धार करने पर महिषमर्दिनी का आठ अक्षरों का यह मन्त्र स्पष्ट होता है—महिषमर्दिनि स्वाहा। इसके ऋषि मार्कण्डेय, छन्द गायत्री और देवता सुरासुरनुता देवी महिषमर्दिनी हैं।

शारदातिलक के अनुसार पञ्चाङ्ग न्यास—महिषमर्दिनी हुं फट् हृदयाय नम:। महिषशत्रूत्सादि हुं फट् शिरसे स्वाहा। महिषं भीषय भीषय हुं फट् शिखायै वषट्। महिषं हन हन हुं फट् कवचाय हुं। महिषसूदनि हुं फट् अस्त्राय फट्। जातियुक्त मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करे। इसके बाद निम्नवत् ध्यान करे—

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डिताम्। नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम्।।
शंखचक्रकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकान्। तर्जनीमपि बिभ्रतीं निजबाहुभि: शशिशेखराम्।।

ऊपरी दाहिने हाथ से प्रारम्भ करके ऊपरी बाँयें हाथ तक दश आयुधों को ध्यान करे। ईशानशिव के अनुसार इनका ध्यान इस प्रकार है—

ध्यायेत् श्यामां महादुर्गां सर्वाभरणभूषिताम्। जटामुकुटशोभाढ्यां स्फुरच्चन्द्रकलान्विताम्।।
पीताम्बरधरां देवीं पीनोन्नतकुचद्वयाम्। शङ्खचक्रलसद्धस्तां तदध: खड्गखेटकौ।।
बाणचापौ च तदध: सशूलां तर्जनीमध:।

इनके आयुधों में शङ्ख, चक्र, खड्ग, ढाल, बाण-धनुष एवं त्रिशूल आते हैं।

तत: पूर्वोदिते पीठे यजेन्महिषमर्दिनीम् ॥३॥
प्रथमावृतिरङ्गै: स्याद् दुर्गाद्याभि: परा परा। ध्यानोक्तैरायुधैर्याद्यैर्लोकपालै: परीरिता ॥४॥
तदायुधै: पञ्चमी स्यादेवं पूजा समीरिता। दुर्गाद्या वरवर्णिन्या ह्यार्या च कनकप्रभा ॥५॥
कृत्तिका ह्यभयाद्या च प्रदा कन्या स्वरूपिका। दीर्घस्वराद्या: क्रमत: पूजयेन्मन्त्रवित्तम: ॥६॥ इति।

दीर्घाद्या: क्लीवान्त्यरहितदीर्घस्वराद्या:। नारायणीये पूर्वे पटलेऽनन्तत्र्यब्धियोन्यादीत्युक्त्वोत्तरपटले आद्यै: स्वरै: क्रमादित्युक्तम्। आद्यै:—आईऊएऐओऔअं इति परस्परैरिति टीका। याद्यैर्यादिभिर्हान्तैरिति।

अथ प्रयोग:—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि मार्कण्डेयाय ऋषये नम:, मुखे गायत्रीछन्दसे नम:, हृदये श्रीमहिषमर्दिन्यै देवतायै नम:, इति विन्यस्य विनियोगमुत्कीर्य, महिषमर्दिनीहुंफट् हृदयाय नम:। महिषशत्रूत्सादिहुंफट् शिरसे स्वाहा। महिषं हेषय २ हुंफट् शिखायै वषट्। महिषं हनहन देवि हुंफट्

कवचाय हुं। महिषसूदनि हुंफट् अस्त्राय फट्। इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् मूलमन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योरङ्गुष्ठादिकनिष्ठिकान्तास्वङ्गुलिषु विन्यस्य, नेत्ररहितेषु हृदयादिपञ्चाङ्गेषु विन्यस्य, ध्यानमानसपूजान्ते पूर्वमन्त्रोक्तं पूजाचक्रं निर्मायार्घ्यस्थापनाद्यङ्गपूजान्ते तदष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन आं दुर्गायै नमः, ईं वरवर्णिण्यै नमः, ऊं आर्यायै०, एं कनकप्रभायै०, ऐं कृत्तिकायै०, ओं अभयप्रदायै०, औं कन्यायै०, अं स्वरूपायै नमः, इति संपूज्य, द्वितीयेऽष्टदले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन यं शङ्खाय नमः, रं चक्राय०, लं खड्गाय०, वं खेटकाय०, शं बाणाय०, षं बाणासनाय०, सं शूलाय०, हं तर्जन्यै नमः, इति संपूज्य दिगीशार्चादि शेषं प्राग्वत् समापयेदिति।

ध्यान के पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर महिषमर्दिनी का पूजन करे। पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि मार्कण्डेयाय ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये महिषमर्दिन्यै देवतायै नमः। तदनन्तर ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः कहकर पञ्चाङ्ग न्यास करे। महिषमर्दिनि हुं फट् हृदयाय नमः। महिषशत्रूत्सादि हुं फट् शिरसे स्वाहा। महिषं हेषय हेषय हुं फट् शिखायै वषट्। महिषं हन हन देवि हुं फट् कवचाय हुं। महिषसूदनि हुं फट् अस्त्राय फट्। इन्हीं पञ्चाङ्ग मन्त्रों से अंगूठे से कनिष्ठा तक की अंगुलियों में न्यास करे। नेत्ररहित हृदयादि पञ्चाङ्ग में न्यास करे ध्यान करके मानस पूजा करे। पूर्वमन्त्रोक्त पूजाचक्र बनाकर अर्घ्य स्थापन करके अंगपूजा करे। तब अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पूजा करे। प्रथम अष्टदल में इस प्रकार पूजन करे—आं दुर्गायै नमः, ईं वरवर्णिन्यै नमः, ऊं आर्यायै नमः, एं कनकप्रभायै नमः, ऐं कृत्तिकायै नमः, ओं अभयप्रदायै नमः, औं कन्यायै नमः, अं स्वरूपायै नमः। द्वितीय अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से यं शङ्खाय नमः, रं चक्राय नमः, लं खड्गाय नमः, वं खेटकाय नमः, शं बाणाय नमः, षं बाणासनाय नमः, सं शूलाय नमः, हं तर्जन्यै नमः। तत्पश्चात् लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

तथा—

प्रजपेद्वसुलक्षं च तत्सहस्रं तिलैर्हुनेत्। एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ॥७॥
तिलहोमाद्वशीकारो नृणां स्त्रीणां भवेद् ध्रुवम्। आमयान्मुच्यते मर्त्यः सद्यः सर्षपहोमतः ॥८॥
पद्महोमात्तथा राज्ञः संग्रामे विजयो भवेत्। दूर्वाहोमेन मर्त्यानां रोगशान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥९॥
ब्रह्मवृक्षोत्थकुसुमैर्लभते पुष्टिमुत्तमाम्। धान्यहोमेन धान्याप्तिः काकपक्षहुतेन च ॥१०॥
विद्वेषो जायते लोके ह्यत्यन्तं सुहृदोरपि। शत्रुर्गच्छति पञ्चत्वं सत्यं मरिचहोमतः ॥११॥
एवं यो भजते देवीं दुर्गां महिषमर्दिनीम्। स नाशयेत् क्षुद्रभूतचौरादीन् दर्शनादपि ॥१२॥ इति।

आठ लाख मन्त्र जप करे। आठ हजार तिल से हवन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर मन्त्री उसका प्रयोग करे। तिल के हवन से नर-नारी वश में होते हैं। सरसों के हवन से मनुष्य निरोग होता है। कमल के हवन से राजा युद्ध में विजयी होता है। दूर्वा के हवन से मनुष्यों का रोग छूट जाता है। पलाशफूलों के हवन से उत्तम पुष्टि होती है। धान्य के हवन से धान्य मिलता है। कौआ के पंख के हवन से लोगों में विद्वेष होता है; साथ ही परम मित्रों में भी द्वेष हो जाता है। मरिच के हवन से शत्रु की मृत्यु होती है। इस प्रकार महिषमर्दिनी दुर्गा देवी को जो भजता है; उसे देखते ही क्षुद्र, भूत, चोर आदि भाग जाते हैं।

सारसंग्रहे—

वेदादिर्दुर्गासम्बुद्धिद्वितयं वह्निरन्त्यगः। टपञ्चमः सनयनः कृशानुगृहिणी ततः ॥१॥
पङ्क्त्यक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः।

वेदादिः प्रणवः। दुर्गासम्बुद्धिद्वितयं दुर्गे दुर्गे इति। वह्नी रेफः। अन्त्यगः क्षकारः, टपञ्चमो णकारः सनयन इकारसहितस्तेन णि। कृशानुगृहिणी स्वाहा। शारदातिलके—'तारो दुर्गेयुगं रक्तमन्त्यं ढान्तं सलोचनम्' इत्युद्धृतं, तत्र सलोचनमिति ढान्तस्य च विशेषणमिति द्वयोरपीकारयोग उक्तस्तट्टीकाकृता अपेक्षितार्थद्योतनिकाकारेण। तेन क्षिणि इति केचिद्वदन्ति, तन्न रम्यम्। 'तारो दुर्गेद्वयं वह्निरन्त्यं ढान्तं सदृक् शिरः' इति नारायणीयवचनात्।

सारसंग्रह के मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा। यह दशाक्षर मन्त्र है। भजन करने पर यह मन्त्र सभी सिद्धियों को देने वाला है। शारदातिलक, नारायणीय और कालिका पुराण के अनुसार भी मन्त्र का स्वरूप यही है।

नारायणीय के अनुसार इसके ऋषि नारद, छन्द विराट् और देवता भोग-मोक्ष देने वाली जयदुर्गा हैं। तार आदि पाँच पदों और पूरे मन्त्र से अंगन्यास करना चाहिये।

जयदुर्गामन्त्र:

वह्निभार्या स्वर: षष्ठो ढान्त: प्रान्त्योऽग्निरेव च। दुर्गे द्विरिति सोंकारो दुर्गामन्त्र: स्मृतो बुधै: ॥

इति कालिकापुराणाच्च। अत्र षष्ठ: स्वर इकार: सप्तस्वराङ्गीकारात्। ह्रस्वदीर्घयोरेकत्वात् व्युत्क्रमेण इकारस्य षष्ठत्वात् सन्निधिस्थेन ढान्तेनैव अस्यान्वये जाते केवलप्रान्तप्रतीतेरुक्तशारदातिलकस्यापि लाघवादेकस्यैव सलोचनमिति पदं विशेषणमित्यर्थ:। अत्र व्युत्क्रमेण मन्त्रोद्धारो बोद्धव्य:। तथा नारायणीये—

नारदो मुनिराख्यातो विराट्छन्द उदाहृतम्। जयदुर्गा देवता स्याद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥१॥
ताराद्यै: पञ्चभिर्मन्त्रपदै: सर्वेण संमता। जातियुक्तैरङ्गक्लृप्ति: ··························॥२॥

शारदातिलके—

दुर्गे च हृदयं प्रोक्तं दुर्गे शिर इतीरितम्। दुर्गायै स्याच्छिखा वर्म भूतरक्षणि कीर्तितम् ॥१॥
तारादि दुर्गे-द्वितयं रक्षण्यस्त्रं प्रकीर्तितम्।

इति षडङ्गमन्त्रा उक्ता:। अत्र केचित् तारादीति वर्मान्तमन्त्रमस्त्रान्तर्वदन्ति। वस्तुतस्तु तयोरुक्तमध्ये तदन्तर्भाव इति तत्त्वम्। ध्यानम्—

जलदद्युतिमिन्दुकिरीटां चक्रदरासिरुज: करपद्मै:।
दधतीं नयनत्रययुक्तां सिंहगतां प्रणमेज्जयदुर्गाम् ॥१॥

रुक् त्रिशूलम्। वामोर्ध्वादिवामाध: करान्तमायुधध्यानम्। दक्षोर्ध्वादितदधोऽन्तं वा। तथा—

दौर्गे पीठे यजेद् देवीमुक्तमार्गेण मन्त्रवित्। प्रजपेत् पञ्चलक्षं च तद्दशांशं हुनेद् घृतै: ॥१॥

उक्तमार्गेण प्रथमाष्टाक्षरोक्तमार्गेण।

शारदातिलक के अनुसार दुर्गे से हृदय, दुर्गे से शिर, दुर्गायै से शिखा, रक्षिणि से कवच और ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि से अस्त्र का न्यास करे। इसका ध्यान इस प्रकार है—

जलदद्युतिमिन्दुकिरीटां चक्रदरासिरुज: करपद्मै:। दधतीं नयनत्रययुक्तां सिंहगतां प्रणमेज्जयदुर्गाम्।।

दुर्गापीठ में अष्टाक्षर मन्त्रोक्त विधि से साधक दुर्गा का पूजन करे। पाँच लाख मन्त्र का जप करे। उसका दशांश घी से हवन करे।

तर्पणादि तत: कुर्यात्तत: सिद्धो भवेन्मनु:। तत: सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्सुधी: ॥२॥
इमं मन्त्रं जपन् भूय: प्रविशेच्छत्रुसङ्गरम्। अशेषेण रिपुं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥३॥
विवादे व्यवहारादौ जप्तो विजयदो भवेत्। अनयास्त्राणि विद्धानि शस्त्राणि सुबहून्यपि ॥४॥
सुजप्तानि च सङ्ग्रामे सम्यग्विजयदानि च। इति।

हवन के बाद तर्पण करे तब मन्त्र सिद्ध होता है। इस सिद्ध मन्त्र से साधक प्रयोग करे। इस मन्त्र को जपते हुए यदि शत्रुसेना में प्रवेश करे तो पूरी शत्रुसेना का संहार कर देता है। व्यवहार-विवाद में इसके जप से विजय होती है। इस मन्त्र से अस्त्र-शस्त्रों को मन्त्रित करके युद्ध में जाने पर जीत होती है।

सारसंग्रहे—

तारो हृन्मन्त्रतो दुर्गेद्वयं रक्षणि च द्विठः । द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तो मुन्याद्यं पूर्ववच्चरेत् ॥१॥
व्यस्तेन च समस्तेन मन्त्रेणाङ्गानि षट् क्रमात् । ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ॥२॥

द्विठः स्वाहाकारः। पूर्ववद् दुर्गाष्टाक्षरवत्। तथा—

प्रणवो हृद्भगवती ज्वालामालिनी गृध्रगः । णलोहितो रिवृते च द्विठान्तः परिकीर्तितः ॥३॥
द्वाविंशत्यर्णको मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ।

हृन्नमः। लोहितः प। द्विठः स्वाहा। अन्यानि पदानि स्वरूपाणि।

त्रिचतुष्पञ्चवस्वर्णैर्मिश्रैर्मन्त्रार्णकैः क्रमात् ॥४॥
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् । अन्यच्छूलिनिदुर्गावत् सर्वमस्य प्रकल्पयेत् ॥५॥ इति।

दुर्गा का अन्य मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार दुर्गा का अन्य मन्त्र है—ॐ नमः दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा। बारह अक्षर का यह मन्त्र है। इसका ऋष्यादि न्यास पूर्ववत् किया जाता है। मन्त्र के छः पदों से षडङ्ग न्यास किया जाता है। ध्यान ही पूजनादि सभी पूर्ववत् ही करना चाहिये।

दुर्गा का अन्य मन्त्र—नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा। यह बाइस अक्षरों का दुर्गा का मन्त्र सर्वकामफलप्रद है।

मन्त्र के ३,४,५,८,२ वर्णों से पञ्चाङ्ग न्यास करे और शेष समस्त विधियाँ शूलिनी दुर्गा के समान करे।

शूलिनिदुर्गामन्त्रप्रयोगः

अथ शूलिनिदुर्गाविधिर्लिख्यते। सारसंग्रहे—

अथ शूलिनिदुर्गाया मनुं वक्ष्ये यथाविधि । चतृतीयं सुधायुक्तं धरा ह्येतद्द्वयं ततः ॥६॥
मरुत्पञ्चम च वामश्रुतीनां भूमिरक्षियुक् । दीर्घा तृतीयस्वरयुक् त-तृतीयश्च कर्णयुक् ॥७॥
ष्टग्रव्योम च वर्मास्त्रवह्नियोषावसानकः । अयं शूलिनि दुर्गायास्तिथिवर्णो मनुर्मतः ॥८॥

चतृतीयं ज, सुधा व, तद्युक्तं तेन ज्व, धरा ल, एतद्द्वयं ज्वलज्वल इति। मरुत्पञ्चम श, वामश्रुतिः ऊ तेन शू। भूमिर्ल, अक्षि इ तेन लि। दीर्घा न, तृतीयस्वर इ तेन नि। ततृतीयो द, कर्ण उ तेन दु। ष्टग्र स्वरूपं। व्योम ह, वर्म हुं, अस्त्रं फट्, वह्नियोषा स्वाहा।

मुनिर्दीर्घतमाच्छन्दः ककुबुक्तं च देवता । शूलिन्याह्वा महादुर्गा क्षुद्रदुष्टविनाशिनी ॥९॥
दुर्गे स्याद् हृदयं शीर्षं वरदे विन्ध्यवासिनी । शिखा वर्मासुरान्ते च मर्दन्यन्ते ततो वदेत् ॥१०॥
युद्धप्रिये पदं पश्चात् त्रासय-द्वयमीरितम् । पञ्चाङ्गमन्त्रा उद्दिष्टा एवं न्यस्तस्य मन्त्रिणः ॥११॥
रक्षाकृद्बहुदोषघ्नमङ्गकर्म भवेद् ध्रुवम् । एवं न्यस्तशरीरोऽसौ ध्यायेद् दुर्गां सुरैर्नुताम् ॥१२॥

पञ्चाङ्गमन्त्रानाह—'दुर्गे स्याद्धृदय'मित्यादि। तेन शूलिनि इत्यादावन्ते देवसिद्धेत्यादि। तदुक्तं नारायणीये—

एवमादौ शूलिनीति पदं तारादिकं वदेत् । अवसाने तु सर्वेषां देवसिद्धसुपूजिते ॥१॥
नन्दिनीरक्षयुग्मं च महायोगेश्वरीमपि । वर्मास्त्रबीजे चामूनि ग्रहरक्षाकराणि हि ॥२॥
पञ्चाशदावृतिन्यासाज्ज्वरस्तीव्रोऽपि नश्यति ।

तारादित्वं च ज्वरप्रयोगे। तथा—

नीलाम्भोधरकान्तिमिन्दुमुकुटां सिंहाधिरूढां करैः शूलं बाणमसिं ह्यरिं दरगदाचापान् सपाशाञ्शुभैः ।
विभ्राणामसिखेटयुक्चतसृभिः कन्याभिराराद्वृतां नानाभूषणभूषितां त्रिनयनां दुर्गां भजे शूलिनीम् ॥

दक्षिणाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम्।

दुर्गापीठे पुरा प्रोक्ते ध्यात्वा देवीं प्रपूजयेत् ॥३॥
वक्ष्यमाणेन विधिना पुराङ्गानि प्रपूजयेत्। दुर्गादिभिर्द्वितीया स्यादायुधैश्चापरा स्मृता ॥४॥
दिशाधिनाथैर्वज्राद्यैरेवमर्चा समीरिता। दुर्गा च वरदा विन्ध्यवासिन्यसुरमर्दिनी ॥५॥
प्रोक्ता युद्धप्रिया देवसिद्धसुपूजितापि च। नन्दिन्या समहायोगेश्वरीति गदिताश्च ताः ॥६॥

आयुधानि तु—'चक्रदरासिगदाशरशरासनत्रिशिखपाशकानि विदुः'।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दीर्घतमसे ऋषये नमः। मुखे ककुप् छन्दसे नमः। हृदि शूलिनीदुर्गायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य विनियोगमुक्त्वा, शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते, हृदयाय नमः। शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजिते, शिरसे स्वाहा। शूलिनि विन्ध्यवासिनि देवसिद्धसुपूजिते, शिखायै वषट्। शूलिन्यसुरमर्दिनि देवसिद्धसुपूजिते, कवचाय हुं। शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय देवसिद्धसुपूजिते, अस्त्राय फट्। इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् मूलमन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योरङ्गुष्ठादिकनिष्ठास्वङ्गुलीषु विन्यस्य हृदयादिषु नेत्ररहितेषु पञ्चाङ्गेषु च विन्यस्य, ध्यानादिपञ्चाङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ दुं दुर्गायै नमः, एवं वरदायै०, विन्ध्यवासिन्यै०, असुरमर्दिन्यै०, युद्धप्रियायै०, देवसिद्धसुपूजितायै० नन्दिन्यै०, महायोगेश्वर्यै नमः, इति संपूज्य, द्वितीयाष्टदले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ चक्राय नमः, शंखाय०, खड्गाय०, गदायै०, बाणाय०, चापाय०, शूलाय०, पाशाय०, इति संपूज्य दिगीशार्चादि शेषं प्राग्वत् समापयेत्। तथा—

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः। आज्येन प्राज्यहविषा तर्पणादि ततश्चरेत् ॥७॥
आराध्य विप्रान् विधिवद्भक्त्याभ्यर्च्य गुरुं ततः। एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् मनसीप्सितान् ॥८॥
विदधीत विधानेन गुरोराज्ञापुरःसरम्। शूलाद्यायुधसंयुक्तामुग्रां स्वं शूलिनीं तथा ॥९॥
विचिन्त्य प्रजपेन्मन्त्रं ग्रस्तं स्पृष्ट्वा विधानतः। तमाविश्य क्षणं सर्वं वदेत्पश्चाद्विनश्यति ॥१०॥
मन्त्रावृत्त्या तदानीं च भूतसङ्घः पलायते। स्मृत्वात्मरोगिणोर्मध्ये शूलिनीमायुधैर्वृताम् ॥११॥
जपतो विद्रवन्त्याशु ग्रहा अवशविग्रहाः। दुःसर्पवृश्चिकाद्युत्थं बहुपात्कुक्कुरोद्भवम् ॥१२॥
लूतिकादिककीटोत्थं विषं नाशयति क्षणात्। निशिते सायके देवीमाधायैव च शूलिनीम् ॥१३॥
क्षेमङ्करीं पूजयित्वा मनुमेनं जपेत्सुधीः। परायुधानि गृह्णाति सेना निश्चेष्टका भवेत् ॥१४॥
तिलयुक्तैः सर्षपैश्च वैरिणो नामसंयुतैः। लक्षं प्रजुहुयाच्छत्रुरामयाविष्टविग्रहः ॥१५॥
यमातिथित्वमायाति नात्र कार्या विचारणा। त्रिस्वाद्वक्तैस्तिलैरष्टसहस्रं प्रत्यहं हुनेत् ॥१६॥

अष्टसहस्रमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः।

शक्तिरस्याप्रतिहता वत्सरात् प्राग्भवेदलम्। घृतेनाष्टशतं मन्त्री जुहुयाद्वाञ्छितं लभेत् ॥१७॥
वत्सरात् प्राग्दूर्वया च मधुरत्रययुक्तया। सम्यगष्टोत्तरशतं जुहुयादीप्सितं लभेत् ॥१८॥
छुरिकाखड्गनाराचाः सञ्जप्ता मनुनामुना। संपातघृतसिक्ताश्च संग्रामेऽहतशक्तयः ॥१९॥
अष्टोत्तरशतं मन्त्री गुलिका गोमयस्य च। जुहुयात्सप्तदिवसैरिष्टौ द्विष्टौ स्त आदरात् ॥२०॥
अस्पृष्टभूम्यन्तरिक्षे गृहीत्वा गोमयं शुभम्। त्रिसहस्रमितं जप्त्वा ययासोर्द्वारि संखनेत् ॥२१॥
तस्य संस्तम्भनं मङ्क्षु भवेन्नैवात्र संशयः। सेनामुखे निखातं च सेनास्तम्भं करोत्यलम् ॥२२॥
ग्रामं वा नगरं गच्छन् संस्मरेदम्बिकां सुधीः। पानीयान्नकरीं चैव प्रसन्नां प्रजपेन्मनुम् ॥२३॥
तर्पयित्वा प्रविष्टस्तं प्राप्नुयादिष्टभोजनम्। सह च भृत्यवर्गेण साधको नात्र संशयः ॥२४॥
अर्कवृक्षसमिद्भिश्च त्रिमध्वक्ताभिरुक्तवत्। जुहुयाद्रविसाहस्रं यानुद्दिश्य तु साधकः ॥२५॥
भवन्त्येव हि ते वश्यास्तथाश्वत्थसमिद्वरैः। प्रसन्नचेताश्च तिलैः पूर्वकर्मणि वा हुनेत् ॥२६॥
दुर्गाकल्पोदितान् सर्वान् प्रयोगान् साधयेत्सुधीः।

यन्त्रव्यतिरिक्तानिति।

शूलिनी दुर्गा—सार संग्रह के श्लोकों का उद्धार करने पर शूलिनी दुर्गा का पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र होता है—ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रह हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा, छन्द ककुब्, देवता क्षुद्र-दुष्टविनाशिनी महादुर्गा शूलिनी हैं। पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करे—शूलिनि दुर्गा हुं फट् हृदयाय नमः। शूलिनि वरदे हुं फट् शिरसे स्वाहा। शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् शिखायै वषट्। शूलिनि असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् कवचाय हुं। शूलिनि देवि सिद्धपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगीश्वरि हुं फट् अस्त्राय फट्। इस प्रकार पचास बार न्यास करने से तेज बुखार भी छूट जाता है और अन्य बहुत दोषों से रक्षा होती है। इस प्रकार का न्यास करके देवपूजिता दुर्गा का ध्यान निम्नवत् करे—

नीलाम्भोधरकान्तिमिन्दुमुकुटां सिंहाधिरूढां करैः शूलं बाणमसिं ह्यरिं दरगदाचापान् सपाशाञ्शुभैः।
विभ्राणामसिखेटयुक्चतसृभिः कन्याभिराराद्वृतां नानाभूषणभूषितां त्रिनयनां दुर्गां भजे शूलिनीम्।।

पूर्वोक्त दूर्गा पीठ में ध्यान करके देवी की पूजा करे। विहित क्रम से पहले अंगों की पूजा करे।

प्रयोग—पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि दीर्घ- तमसे ऋषये नमः। मुखे ककुप्छन्दसे नमः। हृदये शूलिनीदुर्गायै देवतायै नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः से विनियोग करके षडङ्ग न्यास करे—शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते हृदयाय नमः। शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजिते शिरसे स्वाहा। शूलिनि विन्ध्यवासिनि देवसिद्धसुपूजिते शिखायै वषट्। शूलिन्यसुरमर्दिनि देवसिद्धसुपूजिते कवचाय हुम्। शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय देवसिद्धसुपूजिते अस्त्राय फट्। इस पञ्चाङ्ग न्यास से करन्यास पञ्चाङ्ग न्यास करे। ध्यान करके पञ्चाङ्ग पूजन करे। प्रथम अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पूजन करे—ॐ दुं दुर्गायै नमः। ॐ वरदायै नमः। ॐ विन्ध्य-वासिन्यै नमः। ॐ असुरमर्दिन्यै नमः। ॐ युद्धप्रियायै नमः। ॐ देवसिद्धपूजितायै नमः। ॐ नन्दिन्यै नमः। ॐ महायोगेश्वर्यै नमः। द्वितीय अष्टदल में स्वाग्रादि प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजन करे—ॐ चक्राय नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ बाणाय नमः, ॐ चापाय नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ पाशाय नमः। भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके आयुधों की पूजा करें।

वर्णलक्ष के अनुसार पन्द्रह लाख मन्त्र का जप करे। दशांश हवन करे। हवन गाय के घी से और गोघृत मिश्रित खीर से करके तर्पण करे। विप्रों की पूजा विधिवत् करके गुरु की पूजा भक्ति से करे। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से इच्छित प्रयोग गुरु से प्राप्त विधि के अनुसार करे। शूल आयुधों से युक्त क्रुद्ध शूलिनी का चिन्तन करते हुये पीड़ित को स्पर्श करके मन्त्र जप करे तो पीड़ित में आविष्ट भूतादि सब कुछ बतलाकर नष्ट हो जाता है। इस मन्त्र की आवृत्ति से भूतों का समूह भाग जाता है। रोगी और अपने मध्य में शूलिनी के आठ आयुधों के बराबर आठ आवृत्ति के जप से अवशविग्रह ग्रह तुरन्त द्रवित होते हैं। विषैले सर्प, बिच्छू से उत्पन्न उत्पात कुत्तों से उत्पन्न उत्पात, लूतिकादि कीटोत्थ विष का नाश तुरन्त हो जाता है। रात में बाण में शूलिनी का चिन्तन करते हुए क्षेमंकरी की पूजा करके इस मन्त्र का जप करे तो ये बाण शत्रुसेना के आयुधों को ग्रहण करके सेना को निश्चेष्ट कर देता है। तिल और सरसों को मिलाकर वैरी के नामसहित मन्त्र से एक लाख हवन करे तो शत्रु रोगग्रस्त हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। त्रिमधुराक्त तिल से एक हजार आठ हवन करने पर एक वर्ष में अप्रतिहत शक्ति प्राप्त होती है। घी से एक सौ आठ हवन करने पर वांछित लाभ होता है। एक वर्ष तक त्रिमधुराक्त दूर्वा से प्रतिदिन एक हजार आठ हवन करने से अभीष्ट सिद्ध होता है।

छूरिका, खड्ग, नाराच को इससे मन्त्रित करने के समय हवन के सम्पात घृतबुन्दों से सिक्त करने से संग्राम में अप्रतिहत शक्ति मिलती है। गोबर की एक सौ आठ गोलियों से सात दिनों तक हवन करने से द्वेषी आदर करने लगता है। गाय के गोबर को भूमि पर गिरने के पहले हाथ में लेकर उसे तीन हजार जप से मंत्रित करके जिसके द्वार पर गाड़ दिया जाय, उसका स्तम्भन हो जाता है। शत्रुसेना के सामने गाड़ देने से सेना का स्तम्भन हो जाता है। ग्राम या नगर में जाकर साधक अम्बिका का स्मरण करे कि माँ अन्न-पानी देने वाली प्रसन्न है और मन्त्र का जप करके तर्पण करके प्रवेश करे तो उसे मनोनुकूल

भोजन मिलता है और नौकर-चाकर मिलते हैं। अकवन की समिधा को त्रिमधुराक्त करके तीन हजार हवन जिसके उद्देश्य से किया जाता है, वह उसके वश में हो जाता है। पीपल की समिधा से अथवा तिल से प्रसन्न चित्त से हवन करे तो कार्य पूर्ण होता है। दुर्गा कल्पोक्त सभी प्रयोगों को साधक करे।

वनदुर्गाप्रयोगविधि:

तथा सारसंग्रहे—

अथातो वनदुर्गाया: प्रोच्यते मन्त्र उत्तम:। धृतिश्च कामिकाद्वन्द्वं तुष्टियुग् वृषठान्तक: ॥१॥
रमेषुस्वरयुक्ता च परा विष्णुयुताक्षियुक्। प्रज्ञा जया तुष्टिबिन्दुयुक्ता हंसश्च बालयुक् ॥२॥
लोहितो नेत्रसहितो मन्त्रषष्ठाक्षरं वदेत्। क्लिन्ना सदण्डी वसुधा विषं पङ्क्तिस्वरार्णयुक् ॥३॥
प्रभा महाकालश्रोत्रशूर: स्थ्यर्धेन्दुयुग्घरि:। मरुन्मुक्त्यक्षिणी सन्ध्या क्यम सन्ध्याक्य विन्दुमत् ॥४॥
सूक्ष्मा कान्तियुता शुद्धिर्दीर्घकाले स्वरान्विता। विश्वमूर्ति: प्रभा बाल: कामिकेयुग् वृषघ्नक: ॥५॥
वैकुण्ठो वसुधा चाग्निकान्ता मनुरयं मत:। प्रवरो वनदुर्गाया: ससप्तत्रिंशदर्णक: ॥६॥

धृतिरुकार:। कामिकाद्वन्द्वं त्त। तुष्टियुग् इकारयुक्तं तेन त्ति। वृष: ष स एव ठान्तस्तेन ष्ठ। रमा प इषुस्वर उ तद् युक्तस्तेन पु। परा रेफ: विष्णुयुत उकारयुतस्तेन रु। अक्षियुक् प्रज्ञा षि। जया क तुष्टिरिकार: बिन्दुरनुस्वारस्तेन किं। हंस: स बालयुग् वकारयुक्तस्तेन स्व। लोहित: प नेत्रसहित इकारयुक्तस्तेन पि। मन्त्रषष्ठाक्षरं षि। क्लिन्ना भ। सदण्डीवसुधा यं। विषं म पंक्तिस्वरार्णयुक् तेन मे। प्रभा स। महाकालो म श्रोत्र उ तेन मु। शूर: प। स्थि स्वरूपं। अर्धेन्दुयुग्घरि: तं। मरुत् य। मुक्त्यक्षिणी दि। सन्ध्या श। क्यम स्वरूपं। सन्ध्या श। क्य बिन्दुमत् क्यं। सूक्ष्मा व कान्तियुतस्तेन वा। शुद्धि: त। दीर्घकालेस्वरान्विता मकारएकारयुक्तो नकारस्तेन न्मे। विश्वमूर्ति: भ। प्रभा ग। बालो व। कामिकेयुक् तकार-इकारयुक् तेन ति। वृषघ्न: श। वैकुण्ठो म। वसुधा य। अग्निकान्ता स्वाहा। अत्र वा तन्मे इत्यक्षराणि कीलकानि। ईशानसंहितायाम्—'गुणबीजं समुद्धृत्य उत्तिष्ठेति पदं तत:' इत्यादि। 'एवमेषा महाविद्या निष्कीला सर्वसिद्धिदा। गुणान्ते भुवनेशानी दुर्गाबीजं नियोजयेत्। मनोरन्ते त्रयं बीजं मुक्त्वा चान्ते विलोमत:। पूर्वोक्तबीजत्रितयं योजयेत् क्रौञ्चदारण॥' बीजत्रयं प्रणवमायादुर्गाबीजानि विलोमत: दुर्गामायाप्रणवक्रमेण। एतावता आदौ बीजपञ्चकमनन्तरं मन्त्रस्तदनु विलोमेन त्रिबीजमिति मन्त्र: सिद्ध:। तथा—

आरण्यको मुनि: प्रोक्तोऽत्यनुष्टुप्छन्द ईरितम्। वनदुर्गा देवतास्य सर्वशत्रुविघातिनी ॥७॥
ऋत्वब्ध्यष्टाष्टर्तु-बाणमितैर्मन्त्रार्णकै: क्रमात्। जातियुक्तै: षडङ्गानि मनोरस्य प्रकल्पयेत् ॥८॥
पादाष्टसन्धिके गुदे लिङ्गाधारोदरेषु च। पार्श्वयुग्मे हृदि कुचद्वन्द्वे कण्ठेऽष्टसन्धिषु ॥९॥
करयोर्वदने नासागण्डदृक्कर्णयुग्मके। भ्रूमध्ये मूर्धनि मनोर्वर्णान् न्यसेद्यथाविधि ॥१०॥

ध्यानम्—

विद्युद्दामप्रभाभां कनकसरसिजे संस्थितां सत्रिनेत्रां
हस्ताम्भोजैर्वहन्तीमरिदरवरदाभीतिसंज्ञा: क्रमेण।
स्वर्णोद्यत्कान्तिवस्त्रां शशिकलितलसद्रत्नचूडां प्रसन्नां
पार्श्वोद्यत्सन्मृगेन्द्रां हृदि वनवसतिं दावदुर्गां स्मरेऽहम् ॥११॥

दक्षाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यध:स्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेद्भक्तितत्पर:। पूर्वोदिते शुभे दौर्गे पीठे दुर्गां प्रपूजयेत् ॥१२॥
पूर्वमङ्गानि पूज्यानि तत्र आर्यादिकान् यजेत्। चक्राद्यस्त्राणि मातृश्च लोकेशानायुधानि च ॥१३॥
आर्या दुर्गा भद्रा सभद्रकाल्यम्बिका क्षेम्या। वेदाद्या गर्भाख्या क्षेमङ्कर्यष्टमी प्रोक्ता ॥१४॥

चक्रशङ्खासिखेटेषुधनू-रुग्नृकरोटिकाः । तदायुधानीरितानि दुर्गापूजामीरितम् ॥१५॥
रुक् त्रिशूलम्। नृकरोटिर्नृकपालम्।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि आरण्यकाय ऋषये नमः। मुखे अत्यनुष्टुप्छन्दसे नमः। हृदि श्रीवनदुर्गादेवतायै नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुत्कीर्त्य, उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः। किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा। भयं मे समुपस्थितं शिखायै वषट्। यदि शक्यमशक्यं वा कवचाय हुं। तन्मे भगवति नेत्रत्रयाय वौषट्। शमय स्वाहा अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदयादिषडङ्गेषु च विन्यस्य, दक्षपादाङ्गुलीमूले उं नमः। गुल्फे त्तिं नमः। जानुनि ष्ठं नमः। ऊरुमूले पुं नमः। वामपादाङ्गुलीमूले रुं नमः। गुल्फे षिं नमः। जानुनि किं नमः। ऊरुमूले स्वं नमः। गुदे पिं नमः। लिङ्गे षिं नमः। मूलाधारे भं नमः। उदरे यं नमः। दक्षपार्श्वे में नमः। वामपार्श्वे सं नमः। हृदि मुं नमः। दक्षस्तने पं नमः। वामस्तने स्थिं नमः। कण्ठे तं नमः। दक्षकराङ्गुलिमूले यं नमः। दक्षमणिबन्धे दिं नमः। कूर्परे शं नमः। बाहुमूले क्यं नमः। वामकराङ्गुलिमूले मं नमः। मणिबन्धे शं नमः। कूर्परे क्यं नमः। बाहुमूले वां नमः। मुखे तं नमः। दक्षनासापुटे न्में नमः। वामे भं नमः। दक्षगण्डे गं नमः। वामे वं नमः। दक्षनेत्रे तिं नमः। वामे शं नमः। दक्षकर्णे मं नमः। वामे यं नमः। भ्रूमध्ये स्वां नमः। शिरसि हां नमः इति विन्यस्य प्राग्वद् ध्यानमान-सपूजान्तेऽष्टदलकमलत्रयात्मकं प्राग्वत् पूजाचक्रं निर्मायार्घ्यस्थापनाद्यङ्गपूजान्ते प्रथमेऽष्टदले—आर्यायै नमः। दुर्गायै नमः। भद्रायै नमः। भद्रकाल्यै नमः। अम्बिकायै नमः। क्षेम्यायै नमः। वेदगर्भायै नमः। क्षेमङ्कर्यै नमः। द्वितीयेऽष्टदले—चक्राय नमः। शङ्खाय नमः। खड्गाय नमः। खेटकाय नमः। बाणाय नमः। चापाय नमः। शूलाय नमः। कपालाय नमः। तृतीयेऽष्टदले—प्राग्वद् ब्राह्म्याद्याः संपूज्य दिगीशार्चादि सर्वं पूर्ववत् समापयेत् इति। नारायणीये—

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः। ब्राह्म्याद्यास्तिलदुग्धान्नैर्दुर्गां सञ्चिन्त्य चानले ॥१॥
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा। धनधान्यादिभिः सम्यक्तोषयित्वा निजं गुरुम् ॥२॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री वाञ्छितार्थान् प्रसाधयेत्।

वनदुर्गा—सारसंग्रह के मूलोक्त श्लोकों के उद्धार करने पर वनदुर्गा के सैंतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं। यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा।

पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि आरण्यकाय ऋषये नमः। मुखे अत्यनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदि श्रीवनदुर्गादेवतायै नमः। पूर्ववत् ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः कहकर विनियोग करे। षडङ्ग न्यास करे—उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः। किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा। अयं मे समुपस्थितं शिखायै वषट्। यदि शक्यमशक्यम् वा कवचाय हुं। तन्मे भगवति नेत्रत्रयाय वौषट्। शमय स्वाहा अस्त्राय फट्। इन्हीं षडङ्ग मन्त्रों से करन्यास और षडङ्ग न्यास करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—दक्षपादाङ्गुलिमूले उं नमः। गुल्फे त्तिं नमः। जानुनि ष्ठं नमः। उरुमूले पुं नमः। वामपादाङ्गुलि-मूले रुं नमः। गुल्फे षिं नमः। जानुनि किं नमः। उरुमूले स्वं नमः। गुदे पिं नमः। लिङ्गे षिं नमः। मूलाधारे भं नमः। उदरे यं नमः। दक्षपार्श्वे में नमः। वामपार्श्वे सं नमः। हृदि मुं नमः। दक्षस्तने पं नमः। वामस्तने स्थिं नमः। कण्ठे तं नमः। दक्ष-कराङ्गुलिमूले यं नमः। दक्षमणिबन्धे दिं नमः। कूर्परे शं नमः। बाहुमूले क्यं नमः। वामकरांगुलिमूले मं नमः। मणिबन्धे शं नमः। कूर्परे क्यं नमः। बाहुमूले वां नमः। मुखे तं नमः। दक्षनासापुटे न्में नमः। वामनासापुटे भं नमः। दक्षगण्डे गं नमः। वामे वं नमः। दक्षनेत्रेतिं नमः। वामे शं नमः। दक्षकर्णे मं नमः। वामे यं नमः। भ्रूमध्ये स्वां नमः। शिरसि हां नमः। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

विद्युद्दामप्रभाभां कनकसरसिजे संस्थितां सत्रिनेत्रां हस्ताम्भोजैर्वहन्तीमरिदरवरदाभीतिसंज्ञाः क्रमेण।
स्वर्णोद्यत्कान्तिवस्त्रां शशिकलितलसद्रत्नचूडां प्रसन्नां पार्श्वोद्यत्सन्मृगेन्द्रां हृदि वनवसतिं दावदुर्गां स्मरेऽहम्।।

मानस पूजा करके पूर्ववत् कमलत्रयात्मक पूजाचक्र बनाकर अर्घ्य स्थापन करे। अंगपूजन करे। तब प्रथम अष्टदल में आर्यायै नमः, दुर्गायै नमः, भद्रायै नमः, भद्रकाल्यै नमः, अम्बिकायै नमः, क्षेम्यायै नमः, वेदगर्भायै नमः, क्षेमङ्कर्यै नमः। द्वितीय अष्टदल में चक्राय नमः, शंखाय नमः, खड्गाय नमः, खेटकाय नमः, बाणाय नमः, चापाय नमः, शूलाय नमः, कपालाय नमः। तृतीय अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। भूपुर में दिक्पालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

नारायणीय में कहा गया है कि चार लाख मन्त्र जप करे। दशांश हवन तिल से करे। ब्राह्मी आदि को तिल, दूध, अन्न से अग्नि में दुर्गा का चिन्तन करते हुए आहुति प्रदान करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन करावे। अपने गुरु को धन-धान्यादि देकर सम्यक् रूप से सन्तुष्ट करे। इस प्रकार के सिद्ध मंन्त्र से साधक वांछितार्थ साधन करे।

प्रयोगभेदेन ध्यानभेदः

दुर्गाप्रयोगभेदेन चिन्तयेद्वनवासिनीम् ॥३॥

श्रिये च दुर्गां महिषोत्तमाङ्गस्थितां च दूर्वादलरुग् (भां) वहन्तीम्।

सचक्रशङ्खासिसखेटबाणचापान् भुजैस्तर्जनिकां वहन्तीम् (त्रिशूलम्) ॥४॥

शङ्खचक्रकृपाणखेटकबाणधनूंषि शूलवत्। पुंस्कपालसऋष्टिकान् मुसलकुन्तनन्दकान् ॥५॥

सत्करैर्वलयसद्गदाभिण्डिपालकशक्तिकान्। बिभ्रतीं जलदद्युतिं महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ॥६॥

पावकोल्लसितद्युतिं हृदि भीमसिंह(समा)गताम्। श्यामलां कमलस्थितां नयनत्रयोल्लसितां शुभाम् ॥७॥

व्याघ्रचर्मसदंशुकामहिबद्धकुन्तलशोभिताम्। चन्द्रशोभितशेखरां सुरदानवाभयभीतिदाम् ॥८॥

प्रजपेत्प्रत्यहं मन्त्री स्वरक्षायै शतं ह्यथ। सहस्रं वा तदन्ते च प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥९॥

यद्यदुद्दिश्य च मनुं सहस्रं वायुतं जपेत्। अचिराल्लभते तत्तदसाध्यमपि साधकः ॥१०॥

प्रातःस्नायी न्यासपूर्वं स्मरन् देवीमनन्यधीः। नित्यं सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं साधकसत्तमः ॥११॥

ज्वरसर्पग्रहोत्थांश्च दोषान् प्रशमयेत् सुधीः।

दुर्गा के प्रयोगभेद से वनदुर्गा का ध्यान भी अलग-अलग कहा गया है, जो मूल के श्लोक ४,५,६,७,८ में द्रष्टव्य है। मन्त्री अपनी रक्षा के लिये प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ जप करे अथवा एक हज़ार जप के बाद प्रयोग करे। जिस उद्देश्य से एक हजार या दश हजार मन्त्रजप साधक करता है, वह अल्प काल में ही असाध्य होने पर भी प्राप्त होता है। प्रातः स्नान करके न्यास करे। एकाग्र बुद्धि से देवी का स्मरण करे। नित्य एक हजार जप करे तो ज्वर-ग्रह दोष का शमन होता है।

काम्यद्रव्ययजनविधानम्

हुनेदारण्यकतिलै राजिकाभिश्च वा हुनेत् ॥१२॥

अपामार्गसमिद्भिश्च नाशयेत्सकलामयान्। अपस्मारादिकान् मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥१३॥

न्यग्रोधोत्थसमिद्भिर्वा सशुङ्गाभिर्हुनेत् सुधीः। अयुतं सर्वसम्पत्त्यै सर्वापन्मुक्तयेऽपि च ॥१४॥

ग्रहादिशान्त्यै च तथा ह्यभिचारादिशान्तये। अर्कवृक्षसमुद्भूतैर्जुहुयाच्च समिद्वरैः ॥१५॥

आरभ्य रविवारं च तद्द्वयं प्रत्यहं सुधीः। दशाहतो वाञ्छितार्थसिद्धिर्भवति नान्यथा ॥१६॥

त्र्यहं वा सप्तरात्रं वा चेध्मैः सारसमुद्भवैः। एकैकं शकलं मन्त्री हुनेद्वाञ्छितसिद्धये ॥१७॥

त्रिंशच्छरान् शिताग्रांश्च निधाय जुहुयाद्बुधः। कटुतैलैः सहस्रं वा ह्ययुतं तदनन्तरम् ॥१८॥

संपाततैलेन शरान् समभ्युक्ष्य यथाविधि। पूर्ववत् प्रजपेन्मन्त्रं तान् शरानथ भूपतिः ॥१९॥

शुद्धाचारश्च धीरश्च धन्वी संयतमानसः। गृहीत्वा परसेनाया मध्ये गच्छेदभीः क्षिपेत् ॥२०॥

सा धावति दिशः सर्वाः संभ्रान्ता विह्वला तदा। स आगत्य पुनर्भूयो गुरुं धान्यैर्धनैरपि ॥२१॥

वस्त्रालङ्करणैश्चैव तोषयेज्जयदायिनम्। अष्टाधिकशतेनाथ सञ्जप्तं शवभस्म च ॥२२॥

निक्षिपेद्यस्य शिरसि स विद्विष्टो भवेज्जनैः। देशाद्देशान्तरं चैव काकवद् भ्रमते सदा॥२३॥
कारस्करद्रुमोत्थैश्च पत्रैर्वायुनिपातितैः। सहस्रं जुहुयात्पादरजोभिः सह वैरिणः॥२४॥
उच्चाटोऽस्य भवेत्सद्यो विषवृक्षसमुद्भवैः। पुष्पैर्हुनेत्सहस्रं च सेना संस्तम्भयेद्बुधः॥२५॥
तावद्भिस्तस्य पत्रैश्च मन्त्री सेना निवर्तयेत्। विषवृक्षसमुद्भूतां शत्रोः प्रतिकृतिं शुभाम्॥२६॥
कृत्वा प्रतिष्ठितप्राणां खण्डं खण्डं कृतैर्निशि। कृष्णपक्षचतुर्दश्यां काकोलूकवसाप्लुतैः॥२७॥
तद्गात्रैर्विपिने होमः कर्तव्योऽष्टसहस्रकम्। चतुर्दशीत्रयादेवं नाशमेति रिपुर्ध्रुवम्॥२८॥
उलूकवायसपक्षैः सवसारक्तसंयुतैः। होमाद्रिपुर्नाशमेति ह्युन्मत्तसमिधं तथा॥२९॥
होमान्मत्तो रिपुर्नूनं भवत्येव सहस्रतः। वैरिणः प्रतिमां कृत्वा सम्यक्संस्थापितानिलाम्॥३०॥
विषत्रिकटुकालिप्तां सम्यगुष्णे जले क्षिपेत्। प्रजपेच्च मनुं सद्यो ज्वराक्रान्तो भवेद्रिपुः॥३१॥
दुग्धाभिषेकतः शान्तिर्भवत्यस्य न संशयः। प्रतिमां विषवृक्षोत्थां निःक्षिपेदुष्णवारिणि॥३२॥
उन्मादश्च रिपोः सद्यः पूर्ववच्छान्तिरीरिता। सूर्यबिम्बेऽन्तरारक्तां शूलतर्जनिकाकराम्॥३३॥
ध्यात्वायुतं प्रजप्याथ मारयेद्रिपुसञ्चयम्। असिखेटकरार्कस्था क्रुद्धा सा वनवासिनी॥३४॥
संस्मृता मन्त्रजापे तु शमयेच्छत्रुसञ्चयम्। शरधनुष्करां सिंहस्थितां पावकसन्निभाम्॥३५॥
संस्मृत्य मन्त्रं प्रजपन् क्षिप्रमुच्चाटयेदरीन्। कारस्करद्रुसमिधामयुतं जुहुयात् सुधीः॥३६॥
रोगिणः करिणः सर्वे जायन्ते ह्यचिरात्सदा। विषवृक्षोत्थितैः पत्रैरमी नाशं प्रयान्ति च॥३७॥

जंगली तिल, राई का हवन अपामार्ग की समिधा में करे तो सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इससे मृगी आदि रोगों का भी नाश हो जाता है। वटवृक्ष की समिधा और पाकड़ की समिधा से दश हजार हवन करने पर सभी सम्पत्ति प्राप्त होती है और सभी आपदाओं से मुक्ति मिलती है। ग्रहपीड़ा-शान्ति, अभिचारादि शान्ति के लिये अकवन की समिधा से हवन करे। रविवार से आरम्भ करके दश दिनों तक प्रतिदिन हवन करने से वांछित सिद्धि मिलती है। अन्यथा नहीं। तीन दिन सा सात रात तक प्रज्वलित अग्नि में इनके एक-एक खण्ड से हवन करे तो वांछित सिद्धि होती है। तीस नुकीले तीरों से हवन कड़ुवा तेल में डुबोकर एक हजार या दश हजार करे, सम्पात तेल से शरों को अभ्युक्षित करके पूर्ववत् मन्त्रजप से मन्त्रित करे। शुद्धाचारी संयत मन से उन बाणों को लेकर शत्रुसेना के बीच में जाकर छिपा दे, तब वह सेना व्याकुल और भ्रमित होकर सभी दिशाओं में भागने लगती है। तब वह गुरु के पास आकर धन-धान्य से और वस्त्र-अलंकार से जपदायी को सन्तुष्ट करे। चिताभस्म को एक सौ आठ मन्त्रजप से मन्त्रित करके लोगों के शिर पर छींटे दे तो उनमें परस्पर विद्वेष हो जाता है और वह एक देश से दूसरे देश में कौआ के समान भ्रमण करता है। हवन से भूमि पर गिरे कारस्कर के पत्तों के साथ वैरी के पाँव की धूलि मिलाकर एक हजार हवन करे तो इससे वैरी का उच्चाटन तुरन्त होता है। विषवृक्ष धतूरे के फूलों से एक हजार हवन करने से सेना का स्तम्भन होता है। उसके पत्तों से भी उतने ही हवन से सेना को मार भगाता है। विषवृक्ष की लकड़ी से वैरी की प्रतिमा बनाकर प्राणप्रतिष्ठा करे, उसे टुकड़े-टुकड़े करके कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के रात में कौआ और उल्लू की चर्वी से प्लुत करके जंगल में आठ हजार हवन करे, तीन चतुर्दशी में ऐसा करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। उल्लू और कौआ के पंखों को उनके रक्त और चर्बी से प्लुत करके हवन करने से शत्रु का नाश होता है। उन्मत्त की समिधा से एक हजार हवन करने से शत्रु का नाश होता है। वैरी की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे, उसमें त्रिकटु का लेप लगावे और उसे गर्भ जल में डुबा दे। तदनन्तर मन्त्र जप करे तो शत्रु तुरन्त बुखार से पीड़ित होता है। दूध से अभिषेक करने पर बुखार छूट जाता है। सूर्य बिम्ब में हाथ की तर्जनी से शूल बनाकर लाल रंग का ध्यान करके दश हजार मन्त्र जप करे तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है। वनदुर्गा के हाथों में तलवार-ढाल के साथ उसके क्रुद्ध रूप का स्मरण करके मन्त्र जप करे तो शत्रु का शमन होता है। हाथों में बाण-धनुष लिए हुए सिंह पर सवार अग्नि के समान वर्ण की वनदुर्गा का स्मरण करते हुए मन्त्र जप करे तो शत्रु का उच्चाटन शीघ्र होता है। कारस्कर द्रुम की समिधा से दश हजार हवन करे तो वैरी के सभी हाथी रोगग्रस्त हो जाते हैं। विषवृक्ष के पत्रों के हवन से उनका नाश होता है।

तद्वृक्षसुमनोभि: स्यादुच्चाट: करिणां ध्रुवम् । राजवृक्षसमिद्धिर्वा रोगा नश्यन्ति दन्तिनाम् ॥३८॥
विषवृक्षप्रसूनैश्च त्रिमध्वक्तैस्तु मानव:(वारण:) । वशीभवेत्तथा शीघ्रं पत्रैरानित्यशोभितै:(कोद्भवै:) ॥३९॥
त्रिस्वाधुयुक्तै: करिणो ह्यतिमत्ता भवन्ति च । अभ्यङ्ग: पञ्चगव्येन लोके रक्षाकर: पर: ॥४०॥
करिणां मनुजप्तोऽयं प्रोक्तो मन्त्रविदुत्तमै: । सर्पिस्तिलानित्यकैस्तु राजिकापञ्चगव्यकै: ॥४१॥
दुग्धतण्डुलकैश्चैव प्रत्येकं च सहस्रत: । जुहुयादिभसङ्घानां वृद्धिर्भवति नान्यथा ॥४२॥
महान्तं विष(द्विज)वृक्षञ्च छित्वा निर्भिद्य पञ्चधा । दिक्क्रमेणैव पञ्चैवमायुधानि प्रकल्पयेत् ॥४३॥
सम्यक् शिल्पविदा शङ्खो नन्दकश्चक्रशार्ङ्गकौ । कौमोदकीति क्रमेण प्रोक्तमायुधपञ्चकम् ॥४४॥
निक्षिप्य पञ्चगव्ये तु जपेन्मन्त्रसहस्रकम् । तावच्चाज्येन जुहुयात् संपातं तत्र पातयेत् ॥४५॥
भूयश्च पूर्वसंख्याकं जपं कुर्याद्विचक्षण: । विदध्यादायुधान् पञ्च पञ्चगव्यप्रपूरितान् ॥४६॥
मध्यायुधे स्वा(मध्यावटेष्वा)युधानि निक्षिपेत् (तत्र-तत्र च ।
बलिं हरेत् समीकृत्य तन्मन्त्रैर्मन्त्रिणा तथा ॥४७॥
कार्या रक्षा राष्ट्रपुरग्रामाणामेवमेव च । यत्रेयं विहिता रक्षा लक्ष्मी:) तत्र च वर्धते ॥४८॥
धनधान्यसमृद्धि: स्याद्रिपुचौरभयं न च । पद्मैर्नृपं वशीकुर्यात् तत्पत्नीरुत्पलैरपि ॥४९॥
ब्राह्मणान् कुमुदैर्हुत्वा कह्लारैर्विश एव च । शूद्राँल्लवणहोमेन ग्रामं जातिप्रसूनकै: ॥५०॥
चक्रशङ्खगदाम्भोजहस्तं सञ्चिन्तयेच्छुभम् । रविबिम्बे मुकुन्दं च मनुं व्यत्यस्तलिङ्गकम् ॥५१॥
प्रजपेच्चाथ पुरुषभगवत्पदयोरथ । सर्वसिद्धिकर: प्रोक्त: प्रकारोऽयं सुमन्त्रिभि: ॥५२॥
साध्यनामाक्षरै: सम्यग्विदर्भितमनुं लिखेत् । यन्त्रे(पत्रे) तत: कुलालस्य करलग्नं प्रगृह्य मृत् ॥५३॥
तया कृता या प्रतिमा तस्याश्च हृदि संन्यसेत् । संस्थाप्य स्वाभिमुख्ये तां सप्ताहं प्रजपेन्मनुम् ॥५४॥
संध्यात्रये शतं चाष्टाधिकं वश्यो भवेत्तु स: । व्रीहीन् हुनेदष्टशतं प्रत्यहं वत्सराद्भवेत् ॥५५॥
व्रीहिमान् गोपयोभिश्च पशुमान् भवति ध्रुवम् । घृतहोमान्मन्त्रिण: स्यात् काञ्चनाप्तिर्महीयसी ॥५६॥
दध्ना सर्वसमृद्धि: स्यादन्नैरन्नसमृद्धियुक् । मधुहोमेन रत्नानां निधिर्भवति नान्यथा ॥५७॥
दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्मन्त्री भवति निश्चितम् । श्वेतगुञ्जा: समानीय कुडवप्रमिता: शुभा: ॥५८॥
एतन्मन्त्रसुजप्ताश्च विकिरेच्छत्रुसैन्यके । स्वयं मन्त्री सुगुप्त: सन् तेनासौ वैरिणश्चमू: ॥५९॥
ज्वरादिकैर्महारोगै: पीडिता स्यान्मृताचिरात् । सेनाधिपतिमुख्यानां परस्परविरोधत: ॥६०॥
एतदुपद्रवैर्नानाविधनाशं प्रयाति च ।

विषवृक्ष के फूल भी उच्चाटनकारक होते हैं। राजवृक्ष की समिधा से हाथियों का रोग नष्ट होता है। विषवृक्ष के फलों को त्रिमधुराक्त करके हवन करने से हाथी और मनुष्य शीघ्र वश में होते हैं। त्रिमधुराक्त पत्तों के हवन से हाथी अति मत्त हो जाते हैं। पञ्चगव्य के मालिश से लोकरक्षा होती है। उत्तम मन्त्रज्ञों का कथन है कि इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित गोघृत, तिल, राजि, पञ्चगव्य, दूध, चावल—प्रत्येक से एक हजार हवन करने से हाथियों की संख्या में वृद्धि होती है। विषवृक्ष को पाँच भागों में चीरकर दिशाक्रम से शिल्पी से पाँच आयुध—शंख, नन्दक, चक्र, शार्ङ्ग, कौमोदकी बनवावे। इन्हें पञ्चगव्य में डालकर एक हजार मन्त्र जप करे, एक हजार हवन करे और संपातबून्द उन पर गिरावे। इसके बाद फिर एक हजार मन्त्र जप करे। पञ्चगव्य पूरित पात्र में आयुधों को डुबोये। उनके मन्त्रों से बलि प्रदान करे। इससे ग्राम-पुरी-नगर-राष्ट्र की रक्षा होती है। जहाँ ये स्थापित रहते हैं, वहाँ धन की वृद्धि होती है और धन-धान्य समृद्धि होती है एवं शत्रु और चोरों का भय नहीं रहता। कमल के हवन से राजा को, उत्पल के हवन से रानी को, कुमुद के हवन से ब्राह्मणों को, कल्हार के हवन से वैश्य को एवं शूद्र को नमक के हवन से तथा जातिपुष्प के हवन से ग्राम को वश में किया जा सकता है। सूर्य-बिम्ब में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त मुकुन्द का चिन्तन करते हुए मन्त्र का जप करे। रथ पर भगवत्पद का चिन्तन करते हुए जप करने से सभी

सिद्धियों के साथ आरोग्य प्राप्त होता है। साध्य नाम के अक्षरों से विदर्भित मन्त्र पत्र में लिखे। कुम्हार के हाथों में लगी मिट्टी लेकर उससे प्रतिमा बनावे। उसके हृदय में मन्त्रलिखित पत्ते को गाड़ दे। उस प्रतिमा को अपने सामने रखकर एक सप्ताह तक मन्त्र तीनों सन्ध्याओं में एक सौ आठ बार जपे। तब साध्य वश में हो जाता है। साल भर तक चावल से प्रतिदिन एक सौ आठ हवन करे तो भण्डार चावल से भरा रहता है और गोपों के गायों की संख्या बढ़ती है। घृत के हवन से साधक को बहुत सोना मिलता है। दही के हवन से सभी समृद्धियाँ मिलती हैं। अन्न के हवन से अन्न की समृद्धि होती है। मधु के हवन से रत्नों का खजाना मिलता है। दूर्वा के हवन से मन्त्री दीर्घायु होता है। एक कुड़व = ३२० ग्राम श्वेत गुंजा को मन्त्रित करके शत्रुसेना में स्वयं मन्त्री गुप्त रूप से विखेर दे तो वैरी सेना ज्वरादि महारोगों में पीड़ित होकर थोड़े ही दिनों में समाप्त हो जाती है और मुख्य सेनापतियों में परस्पर विरोध हो जाता है। इस उपद्रव से नाना प्रकार का नाश होता है।

वनदुर्गायन्त्रोद्धारः वनदुर्गास्तोत्रञ्च

तारे शक्तिं ससाध्यां लिखतु रविदले मध्यतः पत्रमूले
मर्दिन्या वर्णयुग्मं दलमनु विलिखेद्वह्निशो मूलवर्णान्।
अन्त्ये प्र(चा)न्त्येकबीजं बहिरथ लिपिभिर्भूपुरद्वन्द्वसंस्थं
दुर्गाया यन्त्रमेतद्युवतितनयदं सर्वरक्षाकरं स्यात्॥५९॥
सर्वसंपत्करं नृणां सर्वसौभाग्यपुष्टिदम्। राज्यलक्ष्मीविहीनानां भूपतीनां च राज्यदम्॥६०॥
आमयग्रस्तनृणां च रोगशान्तिकरं परम्। जपहोमाज्यसंपातसाधितं यत्नमुत्तमम्॥६१॥
प्रोक्तं च वनदुर्गायाः सर्वदं नात्र संशयः। इति।

अस्यार्थः—द्वादशदलपद्मं विरच्य तन्मध्ये तारं तस्योदरे शक्तिं तदन्तः साध्यनाम च विलिख्य, तत्केसरेषु महिषमर्दिन्यष्टाक्षरमन्त्रस्य त्रिरावृत्त्या प्रतिकेसरं वर्णद्वयं वर्णद्वयमालिख्य, मूलमन्त्रस्य वर्णान् प्रतिदलं त्रिश आलिख्यान्तिमाक्षरमन्तिमदले विलिख्य पद्माद्बहिर्वृत्तद्वयं विरच्य तयोरन्तरालवीथ्यां प्रत्यक्षरं सबिन्दुकां मातृकां विलिख्य तद्बहिश्चतुरस्रद्वयसंपुटरूपेणाष्टकोणेन वेष्टयेत्, एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवेत्। नारायणीये—'अत्रिरत्र समाख्यातस्तद्बीजं शिवसर्गवान्'। अत्रिः दकारः शिव उ सर्गो विसर्गः तेन दुः। तद्बीजं तस्या दुर्गाया बीजम्। (अस्य) कश्यप ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीदुर्गा देवता, षड् दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि बीजेन सविसर्गेण। सर्वत्र अष्टकमलदले दूर्वाश्यामां त्रिनेत्रां शूलबाणचक्रशंखखड्गखेटधनुःकपालानि दक्षिणाधःकरक्रमेण धारयन्तीं ध्यायेत्। लक्षजपे दशांशहोमः पूजादिकं वनदुर्गावज्ज्ञेयम्। अयं लक्षजपः कृतयुगपरः। अथ स्तोत्रम्—

यत्कर्मधर्मनिलयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः यज्ञादिपुण्यमखिलं सकलं त्वयैव।
त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते नित्यं त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये॥१॥
पाथोऽधिनाथतनयापतिरेष शेषपर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब सोऽपि व्याघूर्णमाननयनः शयनं चकार॥२॥
तत् कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभाख्यौ।
तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं त्वन्मायया कवलितौ विलयं गतौ तौ॥३॥
यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरं च।
यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्दं तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या॥४॥
यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां भस्मीबभूव स रणे तव हुंकृतेन।
सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः॥५॥
केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां हन्तुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ।
तौ दुर्मदौ सपदि चाम्बरतुल्यमूर्तेर्मातस्तवासिकुलिशात् पतितौ विशीर्णौ॥६॥

दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम ।
भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयांचकार सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितेन ।।७।।
चित्रं तदेतदमरैरपि ये न जेयाः शस्त्राभिघातपतिताद्रुधिरादपर्णे ।
भूमौ बभूवुरमिताः प्रतिरक्तबीजास्तेऽपि त्वयैव गगने गिलिताः समस्ताः ।।८।।
आश्चर्यमेतदतुलं यदभूत् सुरारी त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनहृष्टपाणी ।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम् ।।९।।
त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिंस्तस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम् ।।१०।।
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापनिर्वापणप्रणयिनीं प्रणमज्जनेषु ।
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापसंवर्द्धनप्रणयिनीं विपदि स्थितेषु ।।११।।
वामे करे तदितरे च तथोपरिष्टात् पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलुङ्गम् ।
खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानि ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव ।।१२।।
यद्वारुणात् परमिदं यदि मानवस्ते बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम् ।
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दुनादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति ।।१३।।
आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं कर्मार्पणं तव विसर्जनमत्र देवि ।
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे ।।१४।।
अन्तःस्थिताप्यखिलजन्तुषु जन्तुरूपा विद्योतसे बहिरिवाखिलविश्वरूपा ।
का भूरिशब्दरचना वचनाधिका सा दीनं जनं जननि मामव निष्प्रपञ्चम् ।।१५।।

द्वादश दल कमल बनाकर बीच में 'ॐ' लिखे। उसके गर्भ में 'ह्रीं' के साथ साध्य नाम लिखे। दलों में महिष-मर्दिनी के अष्टाक्षर मन्त्र की तीन आवृत्ति से २४ अक्षरों में से प्रत्येक में दो-दो अक्षर लिखे। मूल मन्त्र के वर्णों में से प्रत्येक दल में तीन-तीन वर्णों को लिखे। अन्तिम वर्ण को अन्तिम दल में लिखे। कमल के बाहर दो वृत्त बनाकर अन्तराल वीथि में सानुस्वार मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर दो चतुरस्र में आठ कोण बनावे। यह यन्त्र सब कुछ देने वाला होता है।

नारायणीय में कहा गया है कि इसके ऋषि कश्यप, छन्द गायत्री, श्रीदुर्गा देवता हैं। दां दीं दूं दैं दौं दः से षडङ्ग करे। अष्टदल कमल में दुर्गा का ध्यान करे—दूर्वा सदृश श्याम वर्ण वाली, तीन नेत्र वाली, शूल-बाण-चक्र-शङ्ख-ढाल-धनुष-कपाल को धारण करने वाली है। एक लाख जप करे। वनदुर्गा का पूजादि हवन करे। यह एक लाख जप सत्ययुग-परक है। कलियुग में चार लाख जप करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। तदनन्तर मूलोक्त दुर्गा स्तोत्र का पाठ करे।

एतत् पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि चण्डीचरित्रमतुलं भुवि यस्त्रिकालम् ।
श्रीमान् सुखी च विजयी सुभगः कृती स्यात् त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्ती ।।१६।।
श्रीसिद्धनाथापरनामधेयः श्रीशम्भुनाथो भुवनैकनाथः ।
तस्य प्रसादात् सकलागमश्रीः पृथ्वीधरस्तोत्रमिदं चकार ।।१७।।

जो प्रतिदिन तीनों समय दनुजान्तकारी चण्डी चरित का पाठ करता है, वह संसार में सुखी, विजयी, सुभग, कृतीत्यागी, चिरन्तन वपु, कवि, चक्रवर्ती होता है। श्रीसिद्धनाथ नाम से ख्यात, भुवन के एकमात्र स्वामी शम्भुनाथ की कृपा से सभी आगमों के सारस्वरूप यह पृथ्वीधर स्तोत्र बनाया।

नवार्णविधानोक्तलक्ष्मीपूजापद्धतिः

अथ नवार्णविधानोक्तमहालक्ष्मीपूजा लिख्यते। तत्र प्रातःकृत्यादिमातृकान्यासान्तं विधाय मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं

कृत्वा, शिरसि ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः । मुखे गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्देभ्यो नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीमहाकालीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः। गुह्ये परमशिवलिङ्गाय बीजाय नमः। पादयोः कालीशिवदूतीप्रजापतिभ्यः शक्तिभ्यो नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः। इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ॐ ऐंह्रींक्लीं हृदयाय नमः, एवं षडङ्गन्यासं विदध्यात्। अत्रैकादशन्यासेषु मातृकान्यासः प्रथमः। षडङ्गन्यासो द्वितीयः। ततः— ॐ ह्रीं ब्रह्माणी मे पूर्वे पातु। ॐ ह्रीं महालक्ष्मीर्मे ईशान्यां पातु। ॐ ह्रीं व्योमश्वरी मे ऊर्ध्वं पातु। ॐ ह्रीं सप्तद्वीपेश्वरी मे मध्यं पातु। ॐ ह्रीं नागेश्वरी मेऽधः पातुः। इति तृतीयो न्यासः। ततः—ॐ ह्रीं मम पूर्वाङ्गं नन्दजा पातु नमः। एवं ॐ ह्रीं दक्षिणाङ्गं रक्तदन्तिका०, ॐ ह्रीं पश्चिमाङ्गं शाकम्भरी०, ॐ ह्रीं वामाङ्गं दुर्गा०, ॐ ह्रीं मूर्धादिपादान्तं भीमा०, ॐ ह्रीं पादादिमूर्धान्तं भ्रामरी पातु नमः। इति चतुर्थो न्यासः। पादादिनाभिपर्यन्तं ॐ ह्रीं ब्रह्मा पातु नमः। नाभेः कण्ठपर्यन्तं ॐ ह्रीं विष्णुः पातु नमः। कण्ठाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं ॐ ह्रीं रुद्रः पातु नमः। पादद्वये ॐ ह्रीं हंसः पातु नमः। नेत्रयोः ॐ ह्रीं वृषभः पातु नमः। सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं गजाननः पातु नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ॐ ह्रीं हरिः पातु नमः। मध्यदेहे ॐ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः। मस्तके ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः। पादयोः ॐ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः। करयोः ॐ ह्रीं सिंहाय नमः। नेत्रयोः ॐ ह्रीं परमहंसाय नमः। पादयोः ॐ ह्रीं महिषसहितप्रेताय नमः। सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं महेशाय नमः। पुनः सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं चण्डिकायै नमः। इति षष्ठो न्यासः। ततो ब्रह्मरंध्रे ॐ ऐं नमः। दक्षिणकर्णे ॐ ह्रीं नमः। वामकर्णे ॐक्लीं नमः। दक्षिणनेत्रे ॐचां नमः। वामनेत्रे ॐमुं नमः। दक्षनासायां ॐण्डां नमः। वामनासायां ॐयैं नमः। मुखे ॐविं नमः। लिङ्गे ॐ च्चें नमः। इति सप्तमो न्यासः। ततो गुदे ॐऐं नमः। लिङ्गे ॐ ह्रीं नमः। मुखे ॐक्लीं नमः। वामनासायां ॐचां नमः। दक्षनासायां ॐमुं नमः। वामनेत्रे ॐण्डां नमः। दक्षनेत्रे ॐयैं नमः। वामकर्णे ॐविं नमः। दक्षकर्णे ॐ च्चें नमः। इत्यष्टमो न्यासः। स्वपूर्वाङ्गे मूर्धादिपादान्तं मूलमन्त्रमुच्चार्य नमः। एवं दक्षिणपार्श्वे, पृष्ठभागे, वामभागे, पुनर्वामे, पृष्ठे, दक्षभागे, पूर्वाङ्गे व्यापकत्वेन न्यसेत्, इति नवमो न्यासः। ततो मूलमन्त्रमुच्चार्य हृदयाय नमः। इत्येवं षडङ्गन्यासं कुर्यात्। इति दशमो न्यासः। 'खड्गिनी शूलिनी घोरा' इत्येकं श्लोकं कृष्णवर्णं ध्यात्वा सर्वाङ्गे व्यापकम्। 'शूलेन पाहि नो देवि' इत्यादि 'रक्ष सर्वतः' इत्यन्तं श्लोकचतुष्टयं बालार्कवर्णं ध्यायन् व्यापकम्। 'सर्वस्वरूपे सर्वेशि' इत्यादि 'चण्डिके त्वां नता वयम्' इत्यन्तं श्लोकपञ्चकं शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यायन् सर्वाङ्गे व्यापकं न्यसेत्। इति एकादशो न्यासः।

नवार्ण विधानोक्त महालक्ष्मी पूजा—सर्वप्रथम प्रातःकृत्य से मातृकान्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः । मुखे गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्देभ्यो नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीमहाकालीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः। गुह्ये परमशिवलिङ्गाय बीजाय नमः। पादयोः कालीशिवदूतीप्रजापतिभ्यः शक्तिभ्यो नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके अभीष्टसिद्धि के लिये विनियोग करके ॐ ऐंह्रींक्लीं हृदयाय नमः, इत्यादि से षडङ्गन्यास करे। तदनन्तर मातृका न्यास करके षडङ्ग न्यास करे। तत्पश्चात् ॐ ह्रीं ब्रह्माणी मे पूर्वे पातु। ॐ ह्रीं महालक्ष्मीर्मे ईशान्यां पातु। ॐ ह्रीं व्योमश्वरी मे ऊर्ध्वं पातु। ॐ ह्रीं सप्तद्वीपेश्वरी मे मध्यं पातु। ॐ ह्रीं नागेश्वरी मेऽधः पातुः। यह तृतीय न्यास होता है। तदनन्तर ॐ ह्रीं मम पूर्वाङ्गं नन्दजा पातु नमः, ॐ ह्रीं दक्षिणाङ्गं रक्तदन्तिका पातु नमः, ॐ ह्रीं पश्चिमाङ्गं शाकम्भरी पातु नमः, ॐ ह्रीं वामाङ्गं दुर्गा पातु नमः, ॐ ह्रीं मूर्धादिपादान्तं भीमा पातु नमः, ॐ ह्रीं पादादिमूर्धान्तं भ्रामरी पातु नमः। यह चतुर्थ न्यास होता है। तदनन्तर पादादिनाभिपर्यन्तं ॐ ह्रीं ब्रह्मा पातु नमः। नाभेः कण्ठपर्यन्तं ॐ ह्रीं विष्णुः पातु नमः। कण्ठाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं ॐ ह्रीं रुद्रः पातु नमः। पादद्वये ॐ ह्रीं हंसः पातु नमः। नेत्रयोः ॐ ह्रीं वृषभः पातु नमः। सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं गजाननः पातु नमः। यह पञ्चम न्यास होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मरन्ध्रे ॐ ह्रीं हरिः पातु नमः। मध्यदेहे ॐ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः। मस्तके ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः। पादयोः ॐ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः। करयोः ॐ ह्रीं सिंहाय नमः। नेत्रयोः ॐ ह्रीं परमहंसाय नमः। पादयोः ॐ ह्रीं महिषसहितप्रेताय नमः। सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं महेशाय नमः। पुनः सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं चण्डिकायै नमः। यह षष्ठ न्यास होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मरंध्रे ॐ ऐं नमः। दक्षिणकर्णे ॐ ह्रीं नमः। वामकर्णे ॐक्लीं नमः। दक्षिणनेत्रे ॐचां नमः। वामनेत्रे ॐमुं नमः। दक्षनासायां ॐण्डां नमः। वामनासायां ॐयैं नमः। मुखे ॐविं नमः। लिङ्गे ॐ च्चें नमः।

यह सप्तम न्यास होता है। तदनन्तर गुदे ॐऐं नमः। लिङ्गे ॐ ह्रीं नमः। मुखे ॐक्लीं नमः। वामनासायां ॐचां नमः। दक्षनासायां ॐमुं नमः। वामनेत्रे ॐण्डां नमः। दक्षनेत्रे ॐयैं नमः। वामकर्णे ॐविं नमः। दक्षकर्णे ॐ च्चें नमः—यह अष्टम न्यास होता है। तदनन्तर स्वपूर्वाङ्गे मूर्धादिपादान्तं मूलमन्त्रमुच्चार्य नमः। इसी प्रकार दक्षिण पार्श्व, पृष्ठभाग, वामभाग, पुनः वाम भाग, पृष्ठ, दक्षभाग, पूर्वाङ्ग में व्यापक न्यास नवम न्यास होता है। तदनन्तर मूल मन्त्र से षडङ्ग न्यास दशम न्यास होता है। तदनन्तर 'खड्गिनी शूलिनी घोरा' से कृष्ण वर्ण का ध्यान करते हुये, 'शूलेन पाहि नो देवि' से बाल सूर्यवर्ण का ध्यान करते हुये एवं 'सर्वस्वरूपे सर्वेशे' से 'चण्डिके त्वां नता वयम्' तक पाँच श्लोकों से शुभ्र वर्ण का ध्यान करते हुये व्यापक न्यास एकादश न्यास होता है।

महालक्ष्म्यादीनां ध्यानानि

अथ स्वहृदये वक्ष्यमाणं पूजापीठं विभाव्य तन्मध्ये मूलमन्त्रस्य बीजत्रयं ध्यात्वा मध्यबीजे श्रीमहालक्ष्मीं सर्वदेवशरीरतैजसोद्भूतां ध्यायेत्—

सर्वदेवशरीरेभ्यो याविर्भूतामितप्रभा। विचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ॥१॥
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी। अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ॥२॥
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात्। अक्षमाला च कमलं बाणासी मुसलं गदा ॥३॥
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः। शक्तिर्दण्डश्चर्म चापः पानपात्रं कमण्डलुः ॥४॥
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्। सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ॥५॥
पूजयन् सर्वदेवानां लोकानां च प्रभुर्भवेत्।

इति महालक्ष्मीं ध्यात्वा प्रथमबीजे महाकालीं ध्यायेत्।

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा। विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥१॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपा त्वभून्नृप। रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियाम् ॥२॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रपाशभुशुण्डिभृत्। परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥३॥
एषा सा वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया। आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥४॥

इति महाकालीं ध्यात्वा महालक्ष्म्या वामभागे सरस्वतीं तृतीयबीजे ध्यायेत्—

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणान्विता। साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिवर्हिणी ॥१॥
दधानाष्टभुजा बाणान् मुसलं चक्रशूलभृत्। शङ्खं च लाङ्गलं घण्टां कार्मुकं वसुधाधिप ॥२॥
एषा संपूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति।

इति महासरस्वतीं च ध्यात्वा वक्ष्यमाणपीठपूजापुरःसरं महालक्ष्मीं साङ्गां सावरणां मानसोपचारैः स्वमूलाधारे आत्मादिचतुष्टयरूपं चतुरश्रं कुण्डल्यग्निसमुज्ज्वलं ध्यात्वा, मूलमन्त्रमुच्चार्य 'अहन्तां जुहोमि स्वाहा' पुनर्मूलमुच्चार्य 'असत्यं जुहोमि स्वाहा' इत्येवं अहन्तापैशुन्यकामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणि सुषुम्णास्रग्युक्तमनःस्रुवेण पृथक् पृथग् हुत्वा, निर्दग्धनिखिलवैरिगणः स्थिरचित्तो मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य बाह्यपूजां समारभेत्।

तदनन्तर अपने हृदय में पूजापीठ की कल्पना करके उसके मध्य में तीन बीजों का ध्यान कर मध्य बीज में समस्त तेजः समन्वित श्रीमहालक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करे—

सर्वदेवशरीरेभ्यो याविर्भूतामितप्रभा। विचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा।।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी। अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात्। अक्षमाला च कमलं बाणासी मुसलं गदा।।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः। शक्तिर्दण्डश्चर्म चापः पानपात्रं कमण्डलुः।।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्। सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप।।

इससे देवी की पूजा करके सभी देवता संसार के स्वामी हो गये हैं। महाकाली का ध्यान 'क्लीं' बीज में इस प्रकार किया जाता है—

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा। विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया।।
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपा त्वभून्नृप। रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियाम्।।
खड्गबाणगदाशूलचक्रपाशभुशुण्डिभृत्। परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ।।

यह वैष्णवी माया कालरात्रि दुरत्यया है। आराधना करने पर साधक के वश में संसार के चराचरों को कर देती है।

महाकाली का ध्यान करके महालक्ष्मी के वाम भाग में महासरस्वती का ध्यान तृतीय बीज से करे—

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणान्विता। साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिवर्हिणी।।
दधानाष्टभुजा बाणान् मुसलं चक्रशूलभृत्। शङ्खं च लाङ्गलं घण्टां कार्मुकं वसुधाधिप।।

भक्ति से पूजा करने पर यह सर्वज्ञत्व प्रदान करती है। महासरस्वती के ध्यान के बाद विहित पीठ की पूजा करे। तब महालक्ष्मी का सांग सावरण पूजन मानसोपचारों से करे। अपने मूलाधार चक्र में आत्मादि चतुष्टय रूप चतुरस्र में कुण्डलिनी अग्नि का ध्यान ज्वलित रूप में करे। मूल मन्त्र बोलकर 'अहंता जुहोमि स्वाहा' कहे। फिर मूल मन्त्र के साथ 'असत्यं जुहोमि स्वाहा' कहे। इसी प्रकार अहन्ता, पैशुन्य, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य का हवन सुषुम्नारूपी स्रुव और मनरूपी श्रुवा में अलग-अलग करे। सभी वैरियों के निर्दग्ध होने पर स्थिर चित्त से मूल मन्त्र का जप यथाशक्ति करे। जप समर्पित करके बाह्य पूजा आरम्भ करे।

तत्र स्वर्णादिपीठे कुङ्कुमादिना षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं तल्लग्नं सकेसरमष्टदलं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुतं चतुरश्रत्रयं रचयेत्, इति पूजाचक्रं निर्माय, षट्कोणमध्ये वाग्भवमायाकामराजबीजत्रयं पङ्क्त्याकारेण विलिख्य स्वाग्रादिषट्कोणेषु प्रादक्षिण्येन च अकारादिबीजषट्कं विलिखेत्। ततोऽर्घ्यादिपात्राण्यासाद्य पूजोपकरणानि संप्रोक्ष्य 'ॐह्रींहंसः सोहं स्वाहा' इति मन्त्रेण स्वशरीरं गन्धादिभिरलंकृत्य, स्वात्मानं देवीरूपं विभाव्य प्राग्वत् मूलाधारे चतुरस्रं कुण्डलिरूपमग्निं सञ्चिन्त्य, मूलं०

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा ॥

एवं पापं जुहोमि स्वाहा, इत्थं पुण्यपापकृत्याकृत्यसङ्कल्पविकल्पधर्मान् हुत्वा, पुनर्मूलं०

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम् । धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहम् ॥

अधर्मं जुहोमि स्वाहा, इति पूर्णाहुतिं हुत्वा देवीरूपमात्मानं ध्यात्वा मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य, पूजापीठमर्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य, षट्कोणे ॐकारपीठाय नमः। अष्टदले ॐ पूर्णगिरिपीठाय नमः। चतुरश्रे— ॐ कामपीठाय नमः। इति संपूज्य, पीठाद्बहिश्चतुर्दिक्षु ॐ गंगणेशाय नमः, ॐ क्षंक्षेत्रपालाय नमः, ॐ दुंदुर्गायै नमः, ॐ वंवटुकाय नमः, इति संपूज्याग्न्यादिकोणेषु ॐ जंजयायै नमः, ॐ विंविजयायै०, ॐ जंजयन्त्यै०, ॐ अंअपराजितायै नमः। पद्मनालमूले आं आधारशक्त्यै नमः, कूं कूर्माय नमः, शें शेषाय० पृं पृथिव्यै०, नां नालाय०, पं पद्माय०, इति संपूज्याष्टदलकर्णिकायां षट्कोणाद्बहिः ॐ विं विष्णुमायायै नमः, एवं चें चेतनायै०, बुं बुद्ध्यै०, निं निद्रायै०, क्षुं क्षुधायै०, इति पञ्चशक्तीः संपूज्य, दक्षिणदिशि ॐ छां छायायै नमः, शं शक्त्यै०, तृं तृष्णायै०, क्षां क्षान्त्यै०, जां जात्यै०, लं लज्जायै०, इति शक्तिषट्कं संपूज्य, पश्चिमदिशि ॐ शां शान्त्यै नमः, श्रं श्रद्धायै०, कां कान्त्यै०, लं लक्ष्म्यै०, धृं धृत्यै०, वृं वृत्यै०, इति शक्तिषट्कं संपूज्य, उत्तरदिशि ॐ स्मृं स्मृत्यै नमः, दं दयायै०, तुं तुष्ट्यै०, पुं पुष्ट्यै०, मां मात्रे०, भ्रां भ्रान्त्यै०, इति शक्तिषट्कं संपूजयेदिति प्रादक्षिण्येन त्रयोविंशतिदेवताः संपूज्य, मध्यबीजे मूलं०, 'श्रीमहालक्ष्म्या मूर्तये नमः' इति मूर्तिं संपूज्य, कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय हृदयकमले यथोक्तरूपां साङ्गां सावरणां महालक्ष्मीं ध्यात्वा, तत्तेजोरूपतामादाय सुषम्णावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा प्रवहन्नासारन्ध्रेण पुष्पाञ्जलौ संयोज्य मूलेन तत्तेजः समानीय,

ध्यायामि मनसा दुर्गां नाभिमध्ये व्यवस्थिताम्। आवाहयेत्ततो दुर्गां संसारभयतारिणीम् ॥१॥
कल्याणजननीं सत्यां कामदां करुणाकराम्। अनन्तशक्तिसम्पन्नां दुर्गामावाहयाम्यहम् ॥२॥
महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥३॥
इति पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेणावाह्य, आवाहनादिनवमुद्राः प्रदर्श्य,

देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥४॥
इति प्रार्थ्य,

ॐ दुर्गे देवि सुरेशानि ज्ञानमार्गप्रदे शिवे। आसनं मम भूत्यर्थं गृहाण त्वं सुरेश्वरि ॥५॥
इत्यासनम्।

ॐ स्वागतं कुशलं पृच्छे महादेवि महेश्वरि। सुस्वागतं त्वया भद्रे कृपया भक्तवत्सले ॥६॥
इति स्वागतम्।

जगत्पूज्ये त्रिलोकेशि दैत्यदानवभञ्जनि। अष्टाङ्गार्घ्यं गृहाण त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ॥७॥
इत्यर्घ्यम्।

कात्यायनि महादुर्गे चामुण्डे शङ्करप्रिये। पाद्यं गृहाण देवेशि भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥८॥
इति पाद्यम्।

सर्वलोकस्य या माता या माता लोकपावनी। ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्म्यै प्रयत्नतः ॥९॥
इत्याचमनीयम्।

कपिलादधि कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम्। स्वर्णपात्रस्थितं देवि मधुपर्कं गृहाण मे ॥१०॥
इति मधुपर्कम्।

कर्पूरवासितं वारि निर्मलं शुद्धिहेतुकम्। गृहाण परमेशानि पुनराचमनीयकम् ॥११॥
इति पुनराचमनीयम्।

ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि। स्नानं गृहाण देवेशि तीर्थोदकविभूषितम् ॥१२॥
इति स्नानम्।

वस्त्रं स्वच्छं महार्हं वै पट्टसूत्रविनिर्मितम्। गृहाण सुभगे देवि मे दुकूलं सुरार्चिते ॥१३॥
इति वस्त्रम्।

सुरासुरशिरोरत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजे। अलङ्कारान् गृहाण त्वं नानारत्नविभूषितान् ॥१४॥
इति अलङ्कारः।

श्रीखण्डागुरुकर्पूररोचनानाभिसंयुतम्। गृहाण गन्धं मे देवि सर्वकामफलप्रदे ॥१५॥
इति चन्दनम्।

नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभिताम्। प्रयच्छामि महादेवि गृहाणं त्वं सुरेश्वरि ॥१६॥

इति पुष्पाणि। इति पुष्पान्तानुचारानुपचर्य, श्रीभगवति परिवारपूजार्थमनुज्ञां देहि इति प्रार्थ्य, मध्ये प्रथमबीजे ॐ महासरस्वत्यै नमः। तृतीयबीजे ॐ महाकाल्यै नमः। महालक्ष्म्याः पृष्ठे ब्रह्मसरस्वतीभ्यां नमः। महासरस्वतीपृष्ठे रुद्रगौरीभ्यां नमः। महाकल्याः पृष्ठे हृषीकेशलक्ष्मीभ्यां नमः। महालक्ष्म्या वामाग्रे मं महिषासुराय नमः। दक्षाग्रे सिं सिंहाय नमः, इति संपूज्य षट्कोणेषु पूर्वादि ॐ नन्दजायै नमः, ॐ रक्तदन्तिकायै०, ॐ शाकम्भर्य्यै०, ॐ दुर्गायै०, ॐ भीमायै०, ॐ भ्रामर्य्यै नमः इति संपूज्य, षट्कोणाद्बहिः कर्णिकायामेवं षडङ्गानि संपूज्य, अष्टदलेषु

ब्राह्म्याद्यमातृकाः संपूज्य, चतुरस्रे प्रथमवीथ्यामिन्द्रादीन्, द्वितीयवीथ्यां वज्रादीन् संपूज्य, मूलं० साङ्गायै सपरिवारायै श्रीमहालक्ष्म्यै नमः इति पुष्पाञ्जलीन् दद्यात्।

गुग्गुलं घृतसंयुक्तमगुर्वादिसमाहितम्। दशाङ्गं गृहाण धूपं भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥१७॥
इति धूपम्।

रक्तसूत्रलसद्वर्ति गोघृतेन च पूरितम्। दीपं गृहाण देवेशि नमस्त्रैलोक्यसुन्दरि ॥१८॥
इति दीपम्।

दिव्यान्नं रससंपुष्टं नानाभक्ष्यैस्तु संस्कृतम्। चोष्यपेयसमायुक्तमन्नं देवि गृहाण मे ॥१९॥
इति नैवेद्यम्। इति नैवेद्यं समर्प्य देवीं भुञ्जानां भावयन् मूलं दशवारं जपित्वा शुद्धोदकं देव्यै निवेद्य, स्मार्ताग्नौ मूलेन पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वा षडङ्गमन्त्रैः षडाहुतीः, आवरणदेवतानामेकैकामाहुतिं हुत्वा पूजास्थानमागत्य, स्ववामाग्रे त्रिकोणमण्डलेऽन्नव्यञ्जनयुतं साधारबलिपात्रं निधाय 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट्' सर्वभूतेभ्य एष बलिर्नमः। इति मन्त्रेण बलिमुत्सृज्य देव्यै उत्तरापोशानादिकं दत्त्वा, ततः

गृहाण देवि ताम्बूलं कर्पूरेण सुवासितम्। पूगीफलसमायुक्तं सचूर्णं मुखमण्डनम् ॥२०॥
इति ताम्बूलम्।

मङ्गले कालिके दुर्गे महिषासुरसूदनि। नीराजनं मया दत्तं गृहाण सुरसुन्दरि ॥२१॥
इति नीराजनम्।

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सकलासुरनाशिनि। पुष्पाञ्जलिं गृहाण त्वं मया दत्तं सुरार्चिते ॥२२॥
इति पुष्पाञ्जलिः।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके दुर्गे कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२३॥
इति नमस्कारः।

मया जन्मसहस्रेषु अर्जितं पापसञ्चयम्। तत्सर्वं नाशय क्षिप्रं प्रदक्षिणपदे पदे ॥२४॥
इति प्रदक्षिणम्।

पूजायाः सद्गुणार्थं तु दक्षिणा दीयते मया। तां गृहाण महेशानि पूजां मे सफलां कुरु ॥२५॥
इति हिरण्यम्।

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे पापहारिणि। यशो देहि धनं देहि तव भक्तिं च देहि मे ॥२६॥
इति प्रार्थना। ततो मूलमन्त्रं यथाशक्तिं जपित्वा जपं समर्प्य सप्तशतीपाठं कुर्यात्।

सोने आदि के पीठ पर कुङ्कुमादि से षट्कोण बनावे। उसके बाहर संलग्न वृत्त में अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर वृत्त बनावे। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन चतुरस्र बनावे। इस प्रकार के पूजाचक्र को बनाकर षट्कोण के मध्य में ऐं ह्रीं क्लीं पंक्ति के आकार में लिखे। षट्कोण में अपने आगे के कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से अकारादि छः बीजों को लिखे। तब अर्घ्यादि पात्रों को स्थापित करे। पूजा उपकरणों का प्रोक्षण करे। 'ॐ ह्रीं हंसः सोहं स्वाहा' से अपने शरीर में चन्दनादि लगावे। अपने को देवीरूप का मानकर पूर्ववत् मूलाधार में चतुरस्र कुण्डलिरूप अग्नि का चिन्तन करे। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्, पापं जुहोमि स्वाहा। इसी प्रकार पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प आदि का हवन करे।

फिर मूल मन्त्र प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहम्। अधर्मं जुहोमि स्वाहा' से पूर्णाहुति देकर अपने को देवीरूप मानकर मूल मन्त्र का जप यथाशक्ति करे। जप समर्पण करे।

पूजा पीठ का अर्घ्य जल से प्रोक्षण करे। षट्कोण में ॐ कारपीठाय नम:। अष्टदल में ॐ पूर्णगिरिपीठाय नम:। चतुरस्र में ॐ कामपीठाय नम: से पूजा करे। पीठ के बाहर चारो दिशाओं में ॐ गं गणेशाय नम:, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नम:, ॐ दुं दुर्गायै नम:, ॐ वं वटुकाय नम: से पूजा करे।

अग्न्यादि कोणों में ॐ जं जयायै नम:, ॐ विं विजयायै नम:, ॐ जं जयन्त्यै नम:, ॐ अं अपराजितायै नम: से पूजा करे। पद्मनाल के मूल में आं आधारशक्तये नम:, कूं कूर्माय नम:, शें शेषाय नम:, पृं पृथिव्यै नम:, नां नालाय नम:, पं पद्माय नम: पूजा करे।

अष्टदल कर्णिका में षट्कोण के बाहर ॐ विं विष्णुमायायै नम:, चें चेतनायै नम:, बुं बुद्ध्यै नम:, निं निद्रायै नम:, क्षुं क्षुधायै नम:—इन पाँच शक्तियों की पूजा करे। दक्षिण दिशा में ॐ छां छायायै नम:, शं शक्त्यै नम:, तृं तृष्णायै नम:, क्षां क्षान्त्यै नम:, जां जात्यै नम:, लं लज्जायै नम:—इन छ: शक्तियों की पूजा करे। पश्चिम दिशा में ॐ शां शान्त्यै नम:, श्रं श्रद्धायै नम:, कां कान्त्यै नम:, लं लक्ष्म्यै नम:, धृं धृत्यै नम:, वृं वृत्यै नम:—इन छ: शक्तियों की पूजा करे। उत्तर दिशा में ॐ स्मृं स्मृत्यै नम:, दं दयायै नम:, तुं तुष्ट्यै नम:, पुं पुष्ट्यै नम:, मां मात्रे नम:, भ्रां भ्रान्त्यै नम:—छ: शक्तियों की पूजा करे। इस प्रकार तेईस देवताओं की पूजा करके मध्य में बीज में मूल श्रीमहालक्ष्म्या मूर्तये नम: से पूजा करे। पुष्पाञ्जलि लेकर हृदय कमल में यथोक्त रूप की सांगा सावरणा महालक्ष्मी का ध्यान करके उसके तेज रूप को लेकर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर प्रवहमान नासाछिद्र से पुष्पाञ्जलि में संयोजित कर मूल मन्त्र से उस तेज को लाकर आवाहन करे—

ध्यायामि मनसा दुर्गां नाभिमध्ये व्यवस्थिताम्। आवाहयेत्ततो दुर्गां संसारभयतारिणीम्।।
कल्याणजननीं सत्यां कामदां करुणाकराम्। अनन्तशक्तिसम्पन्नां दुर्गामावाहयाम्यहम्।।
महापद्मवनान्त:स्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।

तदनन्तर 'ॐ दुर्गे देवी०' से आसन, 'ॐ स्वागतं कुशलं०' से स्वागत, 'ॐ जगत्पूज्ये०' से अर्घ्य, 'ॐ कात्या-यनि० से पाद्य, 'ॐ सर्वलोकस्य०' से आचमन, 'कपिलादधि०' से मधुपर्क, 'कर्पूरवासितं०' से आचमनीय, 'ज्ञानमूर्ते०' से स्नान, 'वस्त्रं स्वच्छं' से वस्त्र, 'सुरासुर०' से आभूषण, श्रीखण्डागुरु०' से चन्दन एवं 'नानापुष्प०' से उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुये पुष्पाञ्जलि प्रदान कर देवी का आवाहन करके आवाहनादि नव मुद्राओं का प्रदर्शन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव।।

पुष्प उपचारों से पूजा करके परिवार-पूजन की आज्ञा मांगे—श्रीभगवति परिवारपूजार्थमनुज्ञां देहि। मध्य में प्रथम बीज में ॐ महासरस्वत्यै नम:, तृतीय बीज में ॐ महाकाल्यै नम:, महालक्ष्मी के पीछे ब्रह्मसरस्वतीभ्यां नम:, महासरस्वती के पीछे रुद्रगौरीभ्यां नम:, महाकाली के पीछे हृषीकेशलक्ष्मीभ्यां नम:, महालक्ष्मी के वामाग्र में मं महिषासुराय नम:, एवं दक्षाग्र में सिं सिंहाय नम: से पूजा करे।

षट्कोणों में पूर्वादि क्रम से ॐ नन्दजायै नम:, ॐ रक्तदन्तिकायै नम:, ॐ शाकम्भर्यै नम:, ॐ दुर्गायै नम:, ॐ भीमा नम:, ॐ भ्रामर्यै नम: से पूजा करे।

षट्कोण के बाहर कर्णिका में षडङ्गों की पूजा करे। अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करें। चतुरस्र की प्रथम वीथि में इन्द्रादि की एवं द्वितीय वीथि में वज्रादि आयुधों की पूजा करे। मूल सांगायै सपरिवारायै महालक्ष्म्यै नम: से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। 'गुग्गुलं०' से धूप, 'रक्तसूत्रलसद्वर्तिं०' से दीप एवं 'दिव्यान्नं०' से नैवेद्य अर्पित करे।

नैवेद्य देकर भावना करे कि देवी भोजन कर रही है। मूल मन्त्र का दश बार जप कर देवी को शुद्धोदक प्रदान करे। स्मार्त अग्नि में पच्चीस आहुति मूल मन्त्र से देवे। षडङ्ग मन्त्र से छ: आहुति देवे। आवरण देवताओं को एक-एक आहुति प्रदान करे। पूजा स्थान में आकर अपने वाम भाग में त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें साधार अन्न व्यञ्जनयुक्त बलिपात्र रखे। 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्य: सर्वभूतेभ्यो हुं फट् सर्वभूतेभ्य: एष बलिर्नम:' से बलि उत्सर्ग करके देवी को उत्तरापोशानादि प्रदान करने

के पश्चात् 'गृहाण देवि०' से ताम्बूल, 'मङ्गले कालिके०' से आरती, 'दुर्गे देवि०' से पुष्पाञ्जलि, 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये०' से नमस्कार, 'मया जन्मसहस्रेषु०' से प्रदक्षिणा, 'पूजायाः सद्गुणार्थं०' से सुवर्ण प्रदान कर 'महिषघ्नि महामाये०' से प्रार्थना करे। तब यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप कर जपसमर्पण करके दुर्गासप्तशती का पाठ करे।

तत्र अद्येत्यादिसङ्कल्पं कृत्वा, प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, महाकाली देवता, रक्तदन्तिका बीजं, नन्दा शक्तिः, अग्निस्तत्त्वं प्रथमचरित्रजपे विनियोगः। मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, महालक्ष्मीर्देवता, दुर्गा बीजं, शाकम्भरी शक्तिः, वायुस्तत्त्वं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः। उत्तमचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, महासरस्वती देवता, भ्रामरी बीजं, भीमा शक्तिः, सूर्यस्तत्त्वं उत्तम चरित्रजपे विनियोगः, इति विन्यस्य पठेत्। पूजा-यन्त्रस्य चतुरस्राद्बहिः प्राच्यां ॐ ह्रीं उड्याणपीठाय नमः, मुण्डेश्वरनाथाय नमः, मुण्डाम्बापादुकां पूजयामि नमः। एवं आग्नेये ॐ ह्रीं मातृकापीठाय०, मातृकाचक्रेश्वरनाथाय०, मातृकाम्बापा०। दक्षिणे ॐ ह्रीं जालन्धरपीठाय०, जालामुखनाथाय०, जालाम्बापा०। नैर्ऋत्ये ॐ ह्रीं कोलापुरपीठाय०, कोलापुरेश्वरनाथाय०, कोलाम्बापा०। पश्चिमे ॐ ह्रीं पूर्णगिरिपीठाय नमः, पूर्णेश्वरनाथाय०, पूर्णाम्बापा०। वायव्ये ॐ ह्रीं चौहारपीठाय०, चौहारनाथाय०, चौहाराम्बापा०। उत्तरे ॐ ह्रीं कोलगिरिपीठाय०, कोलनाथाय०, कोलाम्बापा०। ऐशान्यां ॐ ह्रीं कामरूपपीठाय०, कामरूपनाथाय०, कामाम्बापा०। मध्ये ॐ ह्रीं योगिनीपीठाय नमः। तत आग्नेयादिकोणेषु वेतालान् पूजयेत्, अग्निमुखाय नमः, प्रेतवाहनाय० ज्वालामुखाय नमः, धूम्राक्षाय नमः। ततो मध्ये षट्कोणेषु गुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो०, परमेष्ठिगुरुभ्यो०, गणेशाय०, हरये०, हराय नमः। ततो मध्ये देवीपृष्ठभागे महालक्ष्मीहृषीकेशाभ्यां नमः, सरस्वतीव्रिरिञ्चिभ्यां०, उमामहेश्वराभ्यां०। दक्षिणे कालाय०, रुद्राय०, महासिंहाय०। वामे मृत्यवे०, मध्ये विजयाय०, गणपाय०, महिषाय०, चण्डिकायै०। उत्तरे कालाय०, दक्षिणे यमाय नमः। इति संपूज्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।

अथ जातवेदसादिमन्त्राः—ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय पूर्वोक्तवद्गुरुध्यानाजपास्नानसंध्याभूतशुद्ध्यादिमातृकान्यासान्तं विधाय, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा मन्त्रन्यासान् कुर्यात्। अस्य श्रीजातवेदसे-महामन्त्रस्य मरीचिकश्यप ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, जातवेदसेऽग्निस्वरूपिणी दुर्गा देवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगः। मरीचिकश्यपऋषये नमः शिरसि, त्रिष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, जातवेदसेऽग्निस्वरूपिणी दुर्गादेवतायै नमो हृदि, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु। जातवेदसे हृदयाय नमः, सुनवाम सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, निदहाति वेदः शिखायै वषट्, स नः पर्षदति कवचाय हुं, दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्, सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्। एवमङ्गलीन्यासः।

ॐ जां नमो दक्षपादाङ्गुष्ठे। ॐ तं नमो वामे। ॐ वें नमो दक्षगुल्फे। ॐ दं नमो वामे। ॐ सें नमो दक्षजङ्घायां। ॐ सुं नमो वामायां। ॐ नं नमो दक्षजानुनि। ॐ वां नमो वामे। ॐ मं नमो दक्षोरौ। ॐ सों नमो वामे। ॐ मं नमो दक्षकट्यां। ॐ अरां नमो वामायां। ॐ तीं नम अन्धुनि। ॐ यं नमो नाभौ। ॐ तों नमो हृदि। ॐ निं नमो दक्षस्तने। ॐ दं नमो वामस्तने। ॐ हों नमो दक्षपार्श्वे। ॐ तिं नमो वामपार्श्वे। ॐ वें नमो पृष्ठे। ॐ दः नमो दक्षस्कन्धे। ॐ सं नमो वामे। ॐ नः नमो मध्ये। ॐ पं दक्षबाहुमूले। ॐ रं नमो वामे। ॐ षं नमो दक्षोपबाहौ। ॐ दं नमो वामे। ॐ तिं नमो दक्षकूर्परे। ॐ दुं नमो वामे। ॐ र्गां नमो दक्षप्रकोष्ठे। ॐ णिं नमो वामे। ॐ विं नमो दक्षमणिबन्धादितलान्ते। ॐ श्वां नमो वामे। ॐ नां नमो मुखे। ॐ वें नमो दक्षनासिकायां। ॐ वं नमो वामायां। ॐ सिं नमो दक्षनेत्रे। ॐ न्धुं नमो वामे। ॐ दुं नमो दक्षकर्णे। ॐ रिं नमो वामे। ॐ तां नमो ललाटे। ॐ त्यं नमो मस्तिष्के। ॐ ग्निः नमो मूर्ध्नि। इत्यक्षरन्यासः।

जात शिखायां। वेदसे ललाटे। सुनवाम कर्णयोः। सोमं नासिकायां। अराती चक्षुषोः। यत ओष्ठयोः। नि दन्तेषु। दहाति तालुनि। वेदः जिह्वायां। स ग्रीवायां। नः बाह्वोः। पर्षत् स्तनयोः। अति हृदये। दुः कुक्षौ। गाणि नाभौ।

विश्वा पृष्ठे। नावा पायौ। इव वृषणयोः। सिन्धुं शिश्ने। दुः कट्योः। इता ऊर्वोः। अति जङ्घयोः। अग्निः पादयोः। अग्नी रक्षतु। इति पदन्यासे सृष्टिः। ततः समग्रमन्त्रेण व्यापकं विन्यस्य,

जातवेदसे पादयोः। सुनवाम अङ्गुलीषु। सोमं जानुनोः। अरातीयतो ऊर्वोः। नि गुह्ये। दहाति कट्योः। वेदः नाभौ। स हृदये। नः पृष्ठे। पर्षत् बाह्वोः। अति कण्ठे। दुर्गाणि वक्त्रे। विश्वा चक्षुषोः। नावेव नासिकयोः। सिन्धुं कर्णयोः। दुरिता ललाटे। अति मुकुटे। अग्निः मूर्ध्नि।

पादयोः विष्णवे नमः। हृदि ब्रह्मणे नमः। मूर्ध्नि परमात्मने नमः। शिखायां सप्तऋषिभ्यो नमः। नासिकायां सप्तवायुभ्यो नमः। चक्षुषोः शशिभास्कराभ्यां नमः। श्रोत्रयोः अश्विनीयदेवभ्यां नमः। जिह्वायां सरस्वत्यै नमः। वाचि अग्नये नमः। दन्तेषु मरुद्भ्यो नमः। कण्ठे देवेभ्यो नमः। हृदि वरुणाय नमः। उदरे हव्यवाहनाय नमः। कुक्षौ पृथिव्यै नमः। कट्यां नवग्रहेभ्यो नमः। नाभौ मेरवे नमः। अस्त्रे जातवेदसे नमः। शिखायां आज्यस्थाल्यै नमः। शिरसि आज्याय नमः। नेत्रयोः ज्योतिषे नमः। कवचे बर्हिषे नमः। उद्यन्तः शक्तिः ज्वलन्तः प्रहरणं बद्धगोधाङ्गुलित्राणं,

यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः। तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाम्यहम्॥

आयातु दुर्गा दुर्गरूपा अभयं मे ददातु तां दुर्गां कुमारीमृषिभिश्च पूजितां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ दुर्गायै नमः, ॐ याम्यै०, ॐ रौद्र्यै०, ॐ आदित्यायै०, ॐ कात्यायन्यै०, ॐ गौर्य्यै०, ॐ धात्र्यै०, ॐ शक्त्यै०, ॐ चामुण्डायै०, ॐ सरस्वत्यै०, इति नवशक्तियुक्तां,

शङ्खं खेटं तथा बाणान् वामे चाभयदायिनीम्। धनुश्चक्रं तथा पात्रं दक्षिणे सुवरप्रदम्॥
चक्रखड्गशराञ्छूलं लोहमुष्टिं च तोमरम्। वलयं भिण्डिपालं च दधानां चोत्तरे भुजे॥
परिघं चाङ्कुशं चैव धारयन्तीं त्रिलोचनाम्। सिध्यन्ति सर्वकार्याणि निश्चितं हि द्विजोत्तम॥
ऋग्वेदसंस्तुता देवी कश्यपेन प्रकीर्तिता। जातवेदःप्रभां देवीं भुक्तिमुक्तिविधायिनीम्॥

मेरुपर्वतकुम्भां व्याघ्रानुसारिणीं सिंहचतुर्मुखवाहिनीमष्टादशभुजां शुक्लवस्त्रां शुक्लवासिनीं सर्वाभरणभूषितां जातवेदसेदेवीं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः संपूज्य, तदेव देवीस्वरूपं स्वात्मानमित्यभेदभावनां कृत्वा रक्षाषडङ्गं कुर्यात्। ॐ हरहरिणि मालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणिभ्यां स्वाहा हृदयाय नमः। अग्नितेजोज्वालामालिनि शिरसे स्वाहा। चन्द्रतेजोज्वालामालिनि शिखायै वषट्। ब्रह्मतेजोज्वालामालिनि कवचाय हुं। आदित्यतेजोज्वालामालिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। विष्णुतेजोज्वालामालिनि सर्वतेजोज्वालामालिनि ज्वलज्वालामालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणि देवि दह जातवेदससम्भूते स्वाहा अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं कृत्वा,

'ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमं सुरासुरैर्द्विजगणैः पिशाचोरगराक्षसैः रात्रौ भये समुत्पन्ने अरातीयतो निदहाति वेदः राजद्वारे भये घोरे संग्रामे शत्रुसङ्कटे सर्वं रक्षति दुरितं सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा महद्भये समुत्पन्ने स्मरन्ति च पठन्ति सर्वं तरति दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः' इति पठन् स्वात्मानं स्वप्रकाशचिदानन्दमग्नं देवतामयं ध्यात्वा मूलषडङ्गं कुर्यात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि हृदयाय नमः। सोममरातीयतो हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिरसे स्वाहा। निदहाति वेदः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिखायै वषट्। स नः पर्षदति हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि कवचाय हुं। दुर्गाणि विश्वा नावेव हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। सिन्धुं दुरितात्यग्निः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं कृत्वा मन्त्रेण सर्वाङ्गं व्याप्य, स्ववामभागे कलशस्थापनं कृत्वा, स्वदक्षिणभागे शङ्खं संस्थाप्य मध्येऽर्घ्यादिपञ्चपात्राणि संस्थाप्य, देवीसूक्तेन देवीमभिषिच्य पीठपूजां कुर्यात्। ॐ कालाग्निरुद्राय नमः। मण्डूकाय०, आधारशक्त्यै०,

कूर्माय०, अनन्ताय०, वराहाय०, पृथिव्यै०। एवमुपर्युपरि संपूज्य, क्षीरसमुद्राय नमः, श्वेतद्वीपाय०, कल्पवृक्षाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः। आग्नेयादि धर्माय०, ज्ञानाय०, वैराग्याय०, ऐश्वर्याय०, एते पादरूपिणः। अधर्माय०, अज्ञानाय०, अवैराग्याय०, अनैश्वर्याय०, एते सिंहासनगात्ररूपिणः, इति सम्पूज्य, तदुपरि ह्रीं मायायै०, ह्रीं चिच्छक्त्यै०। तदुपरि आनन्दकन्दाय०, संविन्नालाय०, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो०, विकारमयकेसरेभ्यो०, पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै०। तदधः अं अर्कमण्डलाय०, सं सोममण्डलाय०, रं वह्निमण्डलाय०, सं सत्त्वाय०, रं रजसे०, तं तमसे०, अं अन्तरात्मने०, आं आत्मने०, पं परमात्मने०, ह्रीं ज्ञानात्मने, आत्मतत्त्वाय०, मायातत्त्वाय०, विद्यातत्त्वाय०, कलातत्त्वाय०, मध्ये परमतत्त्वाय०, इति संपूज्य केसरेषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये च पीठशक्तीः प्रपूजयेत्। ह्रीं जं जयायै०, ह्रीं विं विजयायै०, ह्रीं भं भद्रायै०, ह्रीं, भं भद्रकाल्यै०, ह्रीं सु सुमुख्यै०, ह्रीं दुं दुर्मुख्यै०, ह्रीं व्यां व्याघ्रमुख्यै०, ह्रीं सिं सिंहमुख्यै०, मध्ये—ह्रीं दुं दुर्गायै०, इति संपूज्य 'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' इति पीठं संपूज्य, तदुपरि मूलमन्त्रमुच्चरन् देवीयन्त्रं संस्थाप्यावाहनं कुर्यात्।

यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः। तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाम्यहम्॥

इत्यावाह्य आवाहिता भव, आस्थापिता भव, सन्निरोधिता भव, संमुखी कृता भव, अवगुण्ठिता भव, सकलीकृता भव, परमीकृता भव, अमृतीकृता भव, इत्युच्चरन् तत्तन्मुद्राः प्रदर्शयेत्। ध्यानम्—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत्॥

इति ध्यात्वा, मूलमन्त्रेणार्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्कादिषोडशोपचारपूजां कृत्वा आवरणपूजामारभेत्।

उसमें प्रारम्भ में संकल्प करके प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, महाकाली देवता, रक्तदन्तिका बीजं, नन्दा शक्तिः, अग्निस्तत्त्वं प्रथमचरित्रजपे विनियोगः। मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, महालक्ष्मीर्देवता, दुर्गा बीजं, शाकम्भरी शक्तिः, वायुस्तत्त्वं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः। उत्तमचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, महासरस्वती देवता, भ्रामरी बीजं, भीमा शक्तिः, सूर्यस्तत्त्वं उत्तम चरित्रजपे विनियोगः इस प्रकार न्यास करके पाठ करे। पूजायन्त्र के चतुरस्र के बाहर पूर्व दिशा में ॐ ह्रीं उड्याणपीठाय नमः, मुण्डेश्वरनाथाय नमः, मुण्डाम्बापादुकां पूजयामि नमः। इसी प्रकार आग्नेय कोण में ॐ ह्रीं मातृकापीठाय०, मातृकाचक्रेश्वरनाथाय०, मातृकाम्बापा०। दक्षिण में ॐ ह्रीं जालन्धरपीठाय०, जालामुखनाथाय०, जालाम्बापा०। नैर्ऋत्य में ॐ ह्रीं कोलापुरपीठाय०, कोलापुरेश्वरनाथाय०, कोलाम्बापा०। पश्चिम में ॐ ह्रीं पूर्णगिरिपीठाय नमः, पूर्णेश्वरनाथाय०, पूर्णाम्बापा०। वायव्य में ॐ ह्रीं चौहारपीठाय०, चौहारनाथाय०, चौहाराम्बापा०। उत्तर में ॐ ह्रीं कोलगिरिपीठाय०, कोलनाथाय०, कोलाम्बापा०। ईशान कोण में ॐ ह्रीं कामरूपपीठाय०, कामरूपनाथाय०, कामाम्बापा०। मध्य में ॐ ह्रीं योगिनीपीठाय नमः। तदनन्तर आग्नेयादि कोणों में वेतालादि की पूजा करे। अग्निमुखाय नमः, प्रेतवाहनाय नमः, ज्वालामुखाय नमः, धूम्राक्षाय नमः। तदनन्तर मध्य षट्कोण में गुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो०, परमेष्ठिगुरुभ्यो०, गणेशाय०, हरये०, हराय नमः। तदनन्तर मध्य में देवी के पृष्ठ भाग में महालक्ष्मीहृषीकेशाभ्यां नमः, सरस्वतीविरिञ्चिभ्यां०, उमामहेश्वराभ्यां०। दक्षिण में कालाय०, रुद्राय०, महासिंहाय०। बाँयें मृत्यवे०, मध्य में विजयाय०, गणपाय०, महिषाय०, चण्डिकायै०। उत्तर में कालाय०, दक्षिण में यमाय नमः।

इस प्रकार पूजा करके योनिमुद्रा दिखावे।

जातवेदसादि मन्त्र—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर पूर्वोक्त रूप में गुरु, ध्यान, अजपा जप, स्नान, सन्ध्या, भूतशुद्धि, मातृका न्यास करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके मन्त्रन्यास करे।

अस्य श्रीजातवेदसे महामन्त्रस्य मरीचिकश्यप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः जातवेदसे अग्निस्वरूपिणी दुर्गा देवता ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः—इस प्रकार विनियोग करे। मरीचिकश्यपऋषये नमः शिरसि, त्रिष्टुप्छन्दसे नमः मुखे, जातवेदसे अग्निस्वरूपिणी

दुर्गादेवतायै नमो हृदि, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगाय नम: सर्वांगे—इस प्रकार न्यास करके षडङ्ग न्यास करे—जातवेदसे हृदयाय नम:, सुनवाम सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, निदहाति वेद: शिखायै वषट्, स न: पर्षदति कवचाय हुं, दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्, सिन्धुं दुरितात्यग्नि: अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—ॐ जां नमो दक्षपादाङ्गुष्ठे। ॐ तं नमो वामे। ॐ वें नमो दक्षगुल्फे। ॐ दं नमो वामे। ॐ सें नमो दक्षजङ्घायां। ॐ सुं नमो वामायां। ॐ नं नमो दक्षजानुनि। ॐ वां नमो वामे। ॐ मं नमो दक्षोरौ। ॐ सों नमो वामे। ॐ मं नमो दक्षकट्यां। ॐ अरां नमो वामायां। ॐ तीं नम अन्धुनि। ॐ यं नमो नाभौ। ॐ तों नमो हृदि। ॐ निं नमो दक्षस्तने। ॐ दं नमो वामस्तने। ॐ हों नमो दक्षपार्श्वे। ॐ तिं नमो वामपार्श्वे। ॐ वें नमो पृष्ठे। ॐ दं: नमो दक्षस्कन्धे। ॐ सं नमो वामे। ॐ नं: नमो मध्ये। ॐ पं दक्षबाहुमूले। ॐ रं नमो वामे। ॐ षं नमो दक्षोपबाहौ। ॐ दं नमो वामे। ॐ तिं नमो दक्षकूपरे। ॐ दुं नमो वामे। ॐ र्गां नमो दक्षप्रकोष्ठे। ॐ णिं नमो वामे। ॐ विं नमो दक्षमणिबन्धादितलान्ते। ॐ श्वां नमो वामे। ॐ नां नमो मुखे। ॐ वें नमो दक्षनासिकायां। ॐ वं नमो वामायां। ॐ सिं नमो दक्षनेत्रे। ॐ न्धुं नमो वामे। ॐ दुं नमो दक्षकर्णे। ॐ रिं नमो वामे। ॐ तां नमो ललाटे। ॐ त्यं नमो मस्तिष्के। ॐ ग्निं: नमो मूर्ध्नि।

मन्त्रपद न्यास—जात शिखायां। वेदसे ललाटे। सुनवाम कर्णयो:। सोमं नासिकायां। अराती चक्षुषो:। यत ओष्ठयो:। नि दन्तेषु। दहाति तालुनि। वेद: जिह्वायां। स ग्रीवायां। न: बाह्वो:। पर्षत् स्तनयो:। अति हृदये। दु: कुक्षौ। गाणि नाभौ। विश्वा पृष्ठे। नावा पायौ। इव वृषणयो:। सिन्धुं शिश्ने। दु: कट्यो:। इता ऊर्वो:। अति जङ्घयो:। अग्नि: पादयो:। पूरे मन्त्र से व्यापक न्यास करे। यह सृष्टि न्यास है।

मन्त्रपद न्यास—जातवेदसे पादयो:। सुनवाम अङ्गुलीषु। सोमं जानुनो:। अरातीयतो ऊर्वो:। नि गुह्ये। दहाति कट्यो:। वेद: नाभौ। स हृदये। न: पृष्ठे। पर्षत् बाह्वो:। अति कण्ठे। दुर्गाणि वक्त्रे। विश्वा चक्षुषो:। नावेव नासिकयो:। सिन्धुं कर्णयो:। दुरिता ललाटे। अति मुकुटे। अग्नि: मूर्ध्नि।

पादयो: विष्णवे नम:। हृदि ब्रह्मणे नम:। मूर्ध्नि परमात्मने नम:। शिखायां सप्तऋषिभ्यो नम:। नासिकायां सप्तवायुभ्यो नम:। चक्षुषो: शशिभास्कराभ्यां नम:। श्रोत्रयो: अश्विनीयदेवभ्यां नम:। जिह्वायां सरस्वत्यै नम:। वाचि अग्नये नम:। दन्तेषु मरुद्भ्यो नम:। कण्ठे देवेभ्यो नम:। हृदि वरुणाय नम:। उदरे हव्यवाहनाय नम:। कुक्षौ पृथिव्यै नम:। कट्यां नवग्रहेभ्यो नम:। नाभौ मेरवे नम:। अस्त्रे जातवेदसे नम:। शिखायां आज्यस्थाल्यै नम:। शिरसि आज्याय नम:। नेत्रयो: ज्योतिषे नम:। कवचे बर्हिषे नम:। उद्यन्त: शक्ति: ज्वलन्त: प्रहरणं बद्धगोधाङ्गुलित्राणं, यस्या सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिन:। तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाम्यहम् कहकर आवाहन करे। आयातु दुर्गा दुर्गरूपा अभयं मे ददातु। तां दुर्गां कुमारीमृषिभिश्च पूजितां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ दुर्गायै नम:, ॐ याम्यै नम:, ॐ रौद्र्यै नम:, ॐ आदित्यायै नम:, ॐ कात्यायन्यै नम:, ॐ गौर्यै नम:, ॐ धात्र्यै नम:, ॐ शक्त्यै नम:, ॐ चामुण्डायै नम:, ॐ सरस्वत्यै नम:—इन नव शक्तियों से युक्त दुर्गा का ध्यान इस प्रकार करे—

शङ्खं खेटं तथा बाणान् वामे चाभयदायिनीम्। धनुश्चक्रं तथा पात्रं दक्षिणे सुवरप्रदम्।।
चक्रखड्गशराञ्छूलं लोहमुष्टिं च तोमरम्। वलयं भिण्डिपालं च दधानां चोत्तरे भुजे।।
परिघं चाङ्कुशं चैव धारयन्तीं त्रिलोचनाम्।

इस प्रकार यह ध्यान करने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। देवी की स्तुति ऋग्वेद ने की है और कश्यप ने उसे प्रतिपादित किया है। अग्नि के समान देवी की प्रभा है। वे भोग-मोक्ष देने वाली हैं। मेरु पर्वत के समान स्तनों वाली, व्याघ्र का अनुसरण करने वाली, चतुर्मुखी, सिंह पर सवार, अट्ठारह भुजाओं वाली, शुक्ल वस्त्र एवं परिधान वाली, समस्त आभरणों से भूषित, जातवेद से देवी का ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे। तब अपने को देवीस्वरूप मानकर देवी से ऐक्य भावना करके रक्षा षडङ्ग करे। ॐ हरहरिणि मालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणिभ्यां स्वाहा हृदयाय नम:। अग्नितेजोज्वालामालिनि शिरसे स्वाहा। चन्द्रतेजोज्वालामालिनि शिखायै वषट्। ब्रह्मतेजोज्वालामालिनि कवचाय हुं। आदित्यतेजोज्वालामालिनि नेत्रत्रयाय

वौषट्। विष्णुतेजोज्वालामालिनि सर्वतेजोज्वालामालिनि ज्वलज्वालामालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणि देवि दह जातवेदससम्भूते स्वाहा अस्त्राय फट्।

'ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमं सुरासुरैर्द्विजगणैः पिशाचोरगराक्षसैः रात्रौ भये समुत्पन्ने अरातीयतो निदहाति वेदः राजद्वारे भये घोरे संग्रामे शत्रुसङ्कटे सर्वं रक्षति दुरितं सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा महद्भये समुत्पन्ने स्मरन्ति च पठन्ति सर्वं तरति दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः' पढ़कर अपने को स्वप्रकाश चिदानन्दमग्न देवतामय मानकर मूल से षडङ्ग करे।

ॐ जातवेदसे सुनवाम हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि हृदयाय नमः। सोममरातीयतो हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिरसे स्वाहा। निदहाति वेदः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिखायै वषट्। स नः पर्षदति हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि कवचाय हुं। दुर्गाणि विश्वा नावेव हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। सिन्धुं दुरितात्यग्निः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि अस्त्राय फट् से षडङ्ग करके मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे। अपने वाम भाग में कलश-स्थापन करे। दक्षिण भाग में शङ्ख स्थापित करे। मध्य में अर्घ्यादि पाँच पात्रों को स्थापित करे। देवी सूक्त से देवी का अभिषेक करके पीठपूजा करे।

ॐ कालाग्निरुद्राय नमः, मण्डूकाय नमः, आधारशक्त्यै नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, वराहाय नमः, पृथिव्यै नमः—इस प्रकार ऊपर-ऊपर पूजन करके क्षीरसमुद्राय नमः, श्वेतद्वीपाय नमः, कल्पवृक्षाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः से पूजन करे। आग्नेयादि कोणों में सिंहासन के पादरूप में इस प्रकार पूजन करे—धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः सिंहासन के शरीररूप में इनकी पूजा करे—अधर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः। उसके ऊपर ह्रीं मायायै नमः से पूजन करे। ह्रीं चिच्छक्त्यै नमः से पूजन करे। उसके ऊपर आनन्दकन्दाय नमः, संविन्नालाय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकारमयकेसरेभ्यो नमः, पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः से पूजन करे। उसके नीचे अं अर्कमण्डलाय नमः, सं सोममण्डलाय नमः, रं वह्निमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, अं अन्तरात्मने नमः, आं आत्मने नमः, पं परमात्मने नमः—इस प्रकार पूजा के बाद केसर में पूर्वादि आठ दिशा और मध्य में पीठ शक्तियों की पूजा करे। ह्रीं जं जयायै नमः, ह्रीं विं विजयायै नमः, ह्रीं भं भद्रायै नमः, ह्रीं भं भद्रकाल्यै नमः, ह्रीं दुं दुर्मुख्यै नमः, ह्रीं सुं सुमुख्यै नमः, ह्रीं व्यां व्याघ्रमुख्यै नमः, ह्रीं सिं सिंहमुख्यै नमः, मध्य में ह्रीं दुर्गायै नमः; इसके बाद ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः से पीठपूजा के बाद मूल मन्त्र बोलकर देवीयन्त्र को स्थापित करके इस प्रकार आवाहन करे—

यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः। तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाम्यहम्।।

तब कहे—आवाहिता भव, आस्थापिता भव, सन्निरोधिता भव, सम्मुखीकृता भव, अवगुण्ठिता भव, सकलीकृता भव, परमीकृता भव, अमृतीकृता भव। साथ-साथ इनकी मुद्राओं को दिखाये। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत्।।

ध्यान के पश्चात् मूल मन्त्र से अर्घ्य पाद्य आचमनीय मधुपर्कादि षोड़श उपचारों से पूजा करके आवरण पूजा करे।

यथा आग्नेयकोणे जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः। ईशानकोणे सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्ये निदहाति वेदः शिखायै वषट्। वायव्ये स नः पर्षदति कवचाय हुं। मध्ये दुर्गाणि विश्वानावेव नेत्रत्रयाय वौषट्। पूर्वादिचतुर्दिक्षु सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्। इति षडङ्गपूजाप्रथमावरणम्।

ततोऽष्टदलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन जातवेदसे नमः, सप्तजिह्वाय नमः, हव्यवाहनाय०, अश्वोदरजाय०, वैश्वानराय०, कौमारतेजसे०, विश्वमुखाय०, देवमुखाय नमः। इति द्वितीगावरणम्।

ततः पत्राग्रेषु पूर्वादिचतुर्दिक्षु ॐ पृथिव्यात्मने०, सलिलात्मने०, अग्न्यात्मने०, वाय्वात्मने०। आग्नेयादिकोणेषु निवृत्त्यै०, प्रतिष्ठायै०, विद्यायै०, शान्त्यै नमः। इति तृतीयावरणम्।

ततः पूर्वादिकोणेषु (दिग्विदिक्षु) प्रादक्षिण्येन वचनात्मिकाभिमुखीभ्योऽधोमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः०, ॐ जां जागरायै०, ॐ तं तपनायै०, ॐ वें वेदगर्भायै०, ॐ दं दहनरूपिण्यै०, ॐ सें सेन्दुखण्डायै०। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः, ॐ सुं सुम्भहन्त्र्यै०, ॐ नं नभश्चारिण्यै०, ॐ वां वागीश्वर्यै०, ॐ मं मन्दवाहायै०, ॐ सों सोमरूपायै०। षाट्कोशिकमयात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ मं मनोजवायै०, ॐ मं मरुद्वेगायै०, ॐ रां रात्र्यै०, ॐ तीं तीव्रकोपायै०, ॐ यं यशोवत्यै०, ॐ तों तोयात्मिकायै०। षडूर्म्यात्मिकाभिमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ निं नित्यायै०, ॐ दं दयावत्यै०, ॐ हां हारिण्यै०, ॐ तिं तिरस्क्रियायै०, ॐ वें वेदमात्रे०, ॐ दः दमनप्रियायै०। सप्तधात्वात्मिकाभिमुखीभ्य उभयमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ सं समाराध्यायै०, ॐ नंः नन्दिन्यै०, ॐ पं पराक्यै०, ॐ रं रिपुमर्दिन्यै०, ॐ षं षष्ठ्यै०, ॐ दं दण्डिन्यै०, ॐ तिं तिग्मायै०। पञ्चभूतात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ दुं: दुर्गायै०, ॐ गां गायत्र्यै०, ॐ णिं निरवद्यायै०, ॐ विं विशालाक्ष्यै०, ॐ श्वां श्वासोद्वाहायै०। कर्मेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ॐ नां नादिन्यै०, ॐ वें वेदनायै०, ॐ वं वह्निगर्भायै०, ॐ सिं सिंहवाहाह्वयायै०, ॐ धुं धुर्यायै०। ज्ञानेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ॐ दुं दुर्विषयायै०, ॐ रिं रिरंसायै०, ॐ तां तापहारिण्यै०, ॐ त्यं त्यक्तदोषायै०, ॐ ग्निं: निःसपत्नायै०। एताः प्रज्वलत्केशवदनाः भीमदंष्ट्रा भयापहा ध्येयाः। इति चतुर्थावरणम्।

ततस्तद्बहिः पूर्वादिदले लं इन्द्राय०, रं अग्नये०, मं (टं) यमाय०, क्षं निर्ऋतये०, वं वरुणाय०, यं वायवे०, सं कुबेराय०, हौं ईशानाय०। इति पञ्चमावरणम्।

ततस्तद्बहिः वं वज्रायुधाय०, शं शक्त्यायुधाय०, दं दण्डायुधाय०, खं खड्गायुधाय०, पां पाशायुधाय०, क्रों अङ्कुशायुधाय०, गं गदायुधाय०, शूं शूलायुधाय०। इति षष्ठावरणम्।

एवं संपूज्य नैवेद्यादिकं निवेद्य आरात्रिकापुष्पाञ्जल्यन्तं समर्प्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा यथाशक्ति जपित्वा 'गुह्याति०' इति मन्त्रेण जपफलं समर्प्य पूर्वोक्तमन्त्रैर्दिक्पालेभ्यो बलिं हरेत्। एवं गायत्रीजपद्विगुणसहितचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि जपित्वा तिलसर्षपचित्रमूलसमिद्भिरुडम्बरप्लक्षाश्वत्थसमिद्भिराज्याक्तहविष्यान्नेन दशांशतो होतव्यं, कृतपुरश्चरणो भवति। तत आग्नेयास्त्राधिकारी भवति।

अग्निकोण में जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः। ईशानकोण में सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्य कोण में निदहाति वेदः शिखायै वषट्। वायव्य कोण में स नः पर्षदति कवचाय हुं। मध्य में दुर्गाणि विश्वानावेव नेत्रत्रयाय वौषट्। पूर्वादि चारो दिशाओं में सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्। षडङ्ग पूजा में यह प्रथम आवरण की पूजा होती है।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं में प्रादक्षिण्य क्रम से जातवेदसे नमः, सप्तजिह्वाय नमः, हव्यवाहनाय नमः, अश्वोदरजाय नमः, वैश्वानराय नमः, कौमारतेजसे नमः, विश्वमुखाय नमः, देवमुखाय नमः से द्वितीय आवरण की पूजा करे।

तदनन्तर पत्रों के आगे पूर्वादि चारो दिशाओं में ॐ पृथिव्यात्मने नमः, सलिलात्मने नमः, अग्न्यात्मने नमः, वाय्वात्मने नमः से पूजा करे। आग्नेयादि कोणों में निवृत्त्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः से पूजन कर तृतीय आवरण की पूजा सम्पन्न करे।

तदनन्तर पूर्वादि कोणों में प्रादक्षिण्य क्रम से वचनात्मिकाभिमुखीभ्योऽधोमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः, ॐ जां जागरायै नमः, ॐ तं तपनायै नमः, ॐ वें वेदगर्भायै नमः, ॐ दं दहनरूपिण्यै नमः, ॐ सें सेन्दुखण्डायै नमः, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः, ॐ सुं सुम्भहन्त्र्यै नमः, ॐ नं नभश्चारिण्यै नमः, ॐ वां वागीश्वर्यै नमः, ॐ मं मन्दवाहायै नमः, ॐ सों सोमरूपायै नमः, षाट्कोशिकमयात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ मं मनोजवायै नमः, ॐ मं मरुद्वेगायै नमः, ॐ रां रात्र्यै नमः, ॐ तीं तीव्रकोपायै नमः, ॐ यं यशोवत्यै नमः, ॐ तों

तोयात्मिकायै नमः, षडूर्म्यात्मिकाभिमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ निं नित्यायै नमः, ॐ दं दयावत्यै नमः, ॐ हां हारिण्यै नमः, ॐ तिं तिरस्क्रियायै नमः, ॐ वें वेदमात्रे नमः, ॐ दः दमनप्रियायै नमः, सप्तधात्वात्मिकाभिमुखीभ्य उभयमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ सं समाराध्यायै नमः, ॐ नंः नन्दिन्यै नमः, ॐ पं पराक्यै नमः, ॐ रं रिपुमर्दिन्यै नमः, ॐ षं षष्ठ्यै नमः, ॐ दं दण्डिन्यै नमः, ॐ तिं तिग्मायै नमः, पञ्चभूतात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ दुंः दुर्गायै नमः, ॐ गां गायत्र्यै नमः, ॐ णिं निरवद्यायै नमः, ॐ विं विशालाक्ष्यै नमः, ॐ श्वां श्वासोद्वाहायै नमः, कर्मेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ॐ नां नादिन्यै नमः, ॐ वें वेदनायै नमः, ॐ वं वह्निगर्भायै नमः, ॐ सिं सिंहवाहाह्वयायै नमः, ॐ धुं धुर्यायै नमः, ज्ञानेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ॐ दुं दुर्विषयायै नमः, ॐ रिं रिरंसायै नमः, ॐ तां तापहारिण्यै नमः, ॐ त्यं त्यक्तदोषायै नमः, ॐ ग्निं निःसपत्नायै नमः, ये सभी चमकते केश एवं मुख वाली, भयानक दाँतों वाली एवं भय का नाश करने वाली हैं। इनका पूजन चतुर्थ आवरण में होता हैं।

तत्पश्चात् उसके बाहर पूर्वादि दलों में लं इन्द्राय नमः, रं अग्नय नमः, मं (टं) यमाय नमः, क्षं निर्ऋतये नमः, वं वरुणाय नमः, यं वायवे नमः, सं कुबेराय नमः, हौं ईशानाय नमः से पञ्चम आवरण में पूजन करे।

उसके बाहर वं वज्रायुधाय नमः, शं शक्त्यायुधाय नमः, दं दण्डा युधाय नमः, खं खड्गायुधाय नमः, पां पाशायुधाय नमः, क्रों अङ्कुशायुधाय नमः, गं गदायुधाय नमः, शूं शूलायुधाय नमः से षष्ठ आवरण का पूजन करे।

इस प्रकार पूजन कर नैवेद्य आदि चढ़ाकर आरती कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे, यथाशक्ति मन्त्र जप करे, जप समर्पित करे। पूर्वोक्त मन्त्रों से दिक्पालों को बलि प्रदान करे। गायत्री जप के साथ चौवालीस हजार मन्त्र जप करे, दशांश हवन तिल सरसो चित्रमूल समिधा गूलर पाकड़ पीपल गोघृत से सिक्त हविष्यान्न से करे। इस प्रकार पुरश्चरण पूर्ण होता है। तब आग्नेयास्त्र में साधक का अधिकार होता है।

आग्नेयमन्त्रप्रयोगः

आग्नेयमभिधास्यामि मन्त्रं सर्वार्थसाधनम्। मारीचः कश्यपः प्रोक्तो मुनिरस्य महामनोः ॥१॥
त्रिष्टुप्छन्दो देवतात्र जातवेदोऽग्निरीरितः। नवभिः सप्तभिः षड्भिः सप्तभिः पुनरष्टभिः ॥२॥
सप्तभिः मूलमन्त्रार्णैः षडङ्गविधिरीरितः। अङ्गुष्ठगुल्फजङ्घासु जानुनोरूरुयुग्मके ॥३॥
कट्यन्धुनाभिषु हृदि स्तनयोः पार्श्वयोः द्वयोः। पृष्ठतः स्कन्धयोर्मध्ये बाहुमूलोपबाहुषु ॥४॥
प्रकूर्परप्रकोष्ठेषु मणिबन्धतलेष्वपि। मुखनासाक्षिकर्णेषु मस्तमस्तिष्कमूर्धसु ॥५॥
क्रमेण विन्यसेद्वर्णान् मन्त्री मन्त्रसमुद्भवान्। शिखाललाटनयनकर्णौष्ठरसनास्वथ ॥६॥
सकण्ठबाहुहृत्कुक्षिकटिगुह्योरुजानुषु। जङ्घयोः पादयोर्न्यसेत्पदान्यस्य मनोः सुधीः ॥७॥

'विद्युद्दामसमप्रभां' इत्यादिध्यानम्।

तदुक्तं शारदायाम् (२१.३५)—

शारदातिलक के अनुसार आग्नेयास्त्र मन्त्र सर्वार्थसाधक है। आग्नेयास्त्र मन्त्र के ऋषि मरीचिपुत्र कश्यप, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता जातवेद अग्नि हैं। मन्त्र के नव, सात, छः, सात, आठ, सात अक्षरों से षडङ्ग करे। अंगूठा, गुल्फ, जंघा, जानु, उरुयुग्म, कटि, नाभि, हृदय, स्तन, पार्श्वद्वय, कन्धा, मध्य, बाहु, मूल, उपबाहु, कूर्पर, मणिबन्ध, करतल, मुख, नाक, आँख, कान, मस्तक, मूर्धा में क्रमशः मन्त्रवर्णों का न्यास करे। मन्त्र के पदों का न्यास शिखा, ललाट, आँख, कान, ओठ, जीभ, कण्ठ, बाहु, हृदय, कुक्षि, कटि, गुह्य, उरु, जानु, जंघा, पैरों में करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत्॥

मन्त्रवर्णसहस्राणि जपेन्मन्त्रं विशालधीः। तदन्ते तिलसिद्धार्थचित्रमूलैः समिद्वरैः ॥८॥
क्षीरद्रुमाणामाज्येन हविष्यान्नैर्घृतप्लुतैः। चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतसमन्वितम् ॥९॥

चतु:सहस्रं जुहुयादर्चिते हव्यवाहने। मण्डले सर्वतोभद्रे षट्कोणाङ्कितकर्णिके ॥१०॥
विधिना वक्ष्यमाणेन पीठं देव्याः प्रपूजयेत्। जयाख्यां विजयां भद्रां भद्रकालीमनन्तरम् ॥११॥
सुमुखीं दुर्मुखीसंज्ञां पश्चाद्व्याघ्रमुखीं पुनः। अथ सिंहमुखीं दुर्गां नव शक्तीः प्रपूजयेत् ॥१२॥
आसनं सिंहमन्त्रेण दद्यादुक्तेन देशिकः। प्रणवानन्तरं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च ॥१३॥
महासिंहाय वर्मास्त्रनतिः सिंहमनुः स्मृतः। मूर्तिं संकल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य पूजयेत् ॥१४॥
षडङ्गानि यथापूर्वं केसरेष्वर्चयेत् सुधीः। ग्न्यादिपादाष्टकोत्पन्ना मूर्तयोऽर्च्या बहिः पुनः ॥१५॥
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः। अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ॥१६॥
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखस्ततः। ततो भूसलिलाग्नीरानात्मनेन्तात्रमोन्वितान् ॥१७॥
चतुर्दिक्षु समभ्यर्चेत्कोणेषु तत्कलाः पुनः। पूर्वादिदिक्षु संपूज्या जार्णाद्याः सार्णशक्तयः ॥१८॥
जागरा तपना वेदगर्भा दहनरूपिणी। सेन्दुखण्डा सुम्भहन्त्री नभश्चारिण्यनन्तरम् ॥१९॥
वागीश्वरी मन्दवाहा सोमरूपा मनोजवा। मरुद्वेगा रात्रिसंज्ञा तीव्रकोपा यशोवती ॥२०॥
तोयात्मिका पुनर्नित्या दयावत्यपि हारिणी। तिरस्क्रिया वेदमाता तत्परा दमनप्रिया ॥२१॥
समाराध्या नन्दिनी च पराकी रिपुमर्दिनी। षष्ठी च दण्डिनी तिग्मा दुर्गा गायत्र्यनन्तरम् ॥२२॥
निरवद्या विशालाक्षी श्वासोद्वाहा च नादिनी। वेदना वह्निगर्भाख्या सिंहवाहाह्वया तथा ॥२३॥
धुर्या दुर्विषया पश्चाद्रिरंसा तापहारिणी। त्यक्तदोषा निःसपत्ना चत्वारिंशच्चतुर्युताः ॥२४॥
लोकपालांस्ततोऽभ्यर्चेद्वज्राद्यायुधसंयुतान्। इत्थं जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः ॥२५॥
आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात्तद्विधानमिहोच्यते।

अस्य श्री आग्नेयास्त्रमन्त्रस्य मरीचिपुत्रकश्यप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः उग्रकृत्या देवता शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगः। प्रतिलोममन्त्रेण करशुद्धिं कृत्वा 'ग्निस्त्यतारिदु धुंसि' अस्त्राय फट्। 'ववेना श्वाविणि र्गादु' नेत्रत्रयाय शिरसे स्वाहा। 'तिदषरप नः स' कवचाय हुं। दःवे तिहादनि' शिखायै वषट्। 'तोयतीराममसो' शिरसे स्वाहा। 'मवानसु सेदवेतजा' हृदयाय नमः। इति षडङ्गं कृत्वा, अक्षरन्यासपदन्यासान् प्रतिलोमेन कृत्वा गुरूपदिष्टमार्गेण ध्यात्वा, ब्रह्मास्त्रद्विगुणजपसहितं प्रतिलोममन्त्रं चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रसंख्याकं जप्त्वा पञ्चगव्येन पक्त्वा चरुणा दशांशेन होमः कार्यः। अस्त्रसिद्धिर्भवति।

प्रत्येक वर्ण पर एक हजार जप करे। तब तिल, सरसों, चित्रमूल, दूध वाले वृक्षों की समिधा, गोघृत, घृतप्लुत, हविष्यान्न से चार हजार चार सौ चौवालीस हवन करे। सर्वतोभद्र मण्डल में अंकित षट्कोण कर्णिका में विधिपूर्वक पीठ में देवी की पूजा करे। नव शक्तियों की पूजा करे; वे हैं—जया, विजया, भद्रा, भद्रकाली, सुमुखी, दुर्मुखी, व्याघ्रमुखी, सिंहमुखी और दुर्गा। सिंह मन्त्र से आसन प्रदान करे। सिंह मन्त्र है—ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट्। मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके आवाहन-पूजन करे। केसर में पूर्ववत् षडङ्ग पूजा करे। तब मन्त्र पद से उत्पन्न आठ मूर्तियों की पूजा करे। तब जातवेदा, सप्तजिह्वा, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेज, विश्वमुख, देवमुख नामक अग्नि की पूजा करे। तब भूमि, जल, अग्नि, वायु की पूजा चारो दिशाओं में करे। कोनों को कला की पूजा करे। पूर्वादि दिशाओं में जकार से सकार तक की शक्तियाँ पूज्य हैं। ये जागरा, तपना, वेदगर्भा, दहनरूपिणी, सेन्दुखण्डा, सुम्भहन्त्री, नभश्चारिणी, वागीश्वरी, मन्दवाहा, सोमरूपा, मनोजवा, मरुद्वेगा, रात्रिसंज्ञा, तीव्रकोपा, यशोवती, तोयात्मिका, नित्या, दयावती, हारिणी, तिरस्क्रिया, वेदमाता, तत्परा, दमनप्रिया, नन्दिनी, पराकी, रिपुमर्दिनी, षष्ठी, दण्डिनी, तिग्मा, दुर्गा, गायत्री, निरवद्या, विशालाक्षी, श्वासोद्वाहा, नंन्दिनी, वेदना, वह्निगर्भा, सिंहवाहा, धुर्या, दुर्विषया, रिरंसा, तापहारिणी, त्यक्तदोषा, निःसपत्ना—कुल चौवालीस हैं। इसके बाहर इन्द्रादि दश लोकपालों और वज्रादि उनके दश आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार जप आदि से यह मन्त्र सिद्ध होता है। अग्न्यास्त्र के अधिकारी होने के बाद उसके विधान का वर्णन किया जाता है।

इसका विनियोग इस प्रकार किया जाता है—अस्य श्री आग्नेयास्त्रमन्त्रस्य मरीचिपुत्रकश्यप, ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः उग्रकृत्या देवता, शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगः। प्रतिलोम मन्त्र से करशुद्धि करके—ग्निस्त्यतारिदु धुंसि अस्त्राय फट्, 'वनेना श्वाविणि र्गादु नेत्रत्रयाय वौषट्। तिदषरप नः स कवचाय हुं, दःवे तिहादनि शिखायै वषट्। तोयतीराममसो शिरसे स्वाहा। मवानसु सेदवेतजा हृदयाय नमः—इस प्रकार षडङ्ग न्यास के बाद प्रतिलोम अक्षर न्यास पद न्यास करे। गुरु के बतलाये मार्ग से ध्यान करे। ब्रह्मास्त्र के दुगुने जपसहित प्रतिलोम मन्त्र का ४४४४ संख्या में जप करे। पञ्चगव्य में पकाये गये चरु से दशांश हवन करे। तब यह आग्नेयास्त्र सिद्ध होता है।

आग्नेयास्त्रप्रयोगविधिः

तथा—

आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमोच्चरितो मनुः ॥२६॥

पूर्वोक्ता एव मुन्याद्या मन्त्रस्यास्य प्रकीर्तिताः। प्रतिलोमक्रमादस्य षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥२७॥
वर्णन्यासपदन्यासान् विदध्यात्प्रतिलोमतः। ध्यानभेदान् विजानीयाद्गुर्वादेशान्न चान्यथा ॥२८॥
पूर्ववज्जपक्लृप्तिः स्याज्जुहुयात् पूर्वसंख्यया। पञ्चगव्यसुपक्वेन चरुणा तस्य सिद्धये ॥२९॥
अर्चनं पूर्ववत् कुर्याच्छक्तेस्तु प्रतिलोमतः। सर्वत्र देशिकः कुर्याद् गायत्र्या द्विगुणं जपम् ॥३०॥
क्रूरकर्माणि कुर्वीत प्रतिलोमविधानतः। शान्तिकं पौष्टिकं कर्म कर्तव्यमनुलोमतः ॥३१॥
प्रयोगकाले प्रजपेदष्ट पादान् विलोमतः। साधितो जायते पश्चान्मन्त्रोऽयं विधिनामुना ॥३२॥
ग्न्यादिपञ्चाक्षरः पादो ज्ञेयो ज्ञानेन्द्रियात्मकः। धुमाद्योऽन्यः पञ्चवर्णः स्मृतः कर्मेन्द्रियात्मकः ॥३३॥

जातवेद मन्त्र के विलोम उच्चारण को आग्नेयास्त्र कहते हैं। इसके ऋषि आदि पूर्वोक्त हैं। इसके प्रतिलोम क्रम से षडङ्ग करे। वर्ण न्यास पदन्यास भी प्रतिलोम क्रम से ही करे। इसके ध्यान भिन्न-भिन्न हैं; अतः गुरु के आदेशानुसार ध्यान करे। पूर्वोक्त संख्या में जप करके उक्त संख्या में हवन पञ्चगव्य में पकाये गये चरु से करे, तब सिद्धि प्राप्त होती है। अर्चन पूर्ववत् प्रतिलोमतः करे। देशिक सर्वत्र मन्त्र जप का दुगुना गायत्री जप करे। प्रतिलोम विधान से क्रूर कर्म करे। शान्ति पुष्टि कर्म अनुलोम क्रम से करे। प्रयोग के समय आठ पदों का जप विलोम क्रम से करे। इस विधि से यह मन्त्र साधित होता है। ग्न्यादि पञ्चाक्षर पद ज्ञानेन्द्रियात्मक हैं। धुमादि अन्य पाँच वर्ण कर्मेन्द्रियात्मक हैं।

श्वाद्यस्तृतीयः पञ्चार्णः पञ्चभूतमयः स्मृतः। त्याद्यः सप्ताक्षरः पादश्चतुर्थो धातुरूपकः ॥३४॥
दःपूर्वः पञ्चमः पाद ऊर्मिरूपः षडक्षरः। तोवर्णादिः षडर्णोऽन्यः षाट्कोशिकमयो मतः ॥३५॥
सोपूर्वः पञ्चवर्णोऽन्यः शब्दादिमय ईरितः। सेवर्णाद्यष्टमो ज्ञेयः पञ्चार्णो वचनादिकः ॥३६॥
एवं तत्त्वसमायोगात् पादक्लृप्तिरुदीरिता। तत्तत्पादाक्षरोत्पन्नास्तावत्यो वर्णदेवताः ॥३७॥
प्रधानमूर्तिप्रतिमाः स्वस्ववर्णोदितप्रभाः। प्रज्वलत्केशवदना भीमदंष्ट्रा भयापहाः ॥३८॥
देवता इन्द्रियोत्पन्ना ऊर्ध्वदृष्टय ईरिताः। देवता भूतपादोत्थास्तिर्यग्वक्त्राः प्रकीर्तिताः ॥३९॥
धातुरूपाक्षरोद्भूता उभयाननशोभिताः। ऊर्मिजा ऊर्ध्ववदनाः कोशोत्थास्तिर्यगाननाः ॥४०॥
एताः सर्वाः स्मृताः क्लीवा इन्द्रियार्थोद्भवाः स्त्रियः। अधस्तिर्यङ्मुखोपेता ईरिता वर्णदेवता ॥४१॥
अभिमुख्यः स्मृता सौम्ये पराङ्मुख्योऽन्यकर्मणि। आभ्योऽसंख्याः समुत्पन्ना देवता ज्वलिताननाः ॥४२॥
याभिर्मन्त्री दहेच्छत्रो राज्यं सगिरिकाननम्। अस्त्रं मनुष्यनक्षत्रेष्वारभेत विचक्षणः ॥४३॥
आसुरीषु प्रयुञ्जीत देवतारासु संहरेत्। पूर्वोत्तरत्रयं पश्चाद्भरण्यार्द्राथ रोहिणी ॥४४॥
इमानि मानुष्याण्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः। ज्येष्ठाशतभिषामूलधनिष्ठाश्लेषकृत्तिकाः ॥४५॥
चित्रामघाविशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः। अश्विनी रेवती पुष्यस्वाती हस्तः पुनर्वसुः ॥४६॥
अनुराधा मृगशिरः श्रवणं देवतारकाः। उपक्रमेत नन्दासु रिक्तास्वस्त्रं विसर्जयेत् ॥४७॥

श्वादि तृतीय पञ्चवर्ण पञ्चभूतमय हैं। त्यादि सप्ताक्षर चौथा पाद शरीर के सप्तधातुरूप हैं। दः पूर्व पञ्चाक्षर पञ्चम पाद उर्मिरूप हैं। षडक्षर तोवर्णादि छः कोशरूप हैं। सो पूर्व पाँच वर्ण शब्दादिरूप हैं। सेवर्णादि अष्टम पाँच वर्ण वचनादि हैं। इस प्रकार के तत्त्वसमायोग से पदक्लृप्ति कही गयी है। उस पाद के अक्षरों से उत्पन्न देवता हैं। प्रधान मूर्ति प्रतिमा स्व-स्ववर्णोदित प्रभा है। इसके केश और मुख भयानक हैं। इन्द्रियोत्पन्न देवता ऊर्ध्व दृष्टि वाली है। भूतपादोत्थ देवता तिर्यक् मुख वाली है। धातुरूप अक्षरों से उद्भूत दो मुख वाली है। ऊर्मिजा ऊर्ध्वमुखी है। कोशोत्थ तिर्यक्मुखी है। ये सभी क्लीब हैं। इन्द्रियार्थोद्भवा स्त्री हैं। वर्ण देवता नीचे-ऊपर मुख वाले हैं। अभिमुख देवता सौम्य कर्म में प्रयोजनीय हैं। अन्य कर्मों में पराङ्मुख देवता होते हैं। असंख्य देवता ज्वलितमुखी हैं। ज्वलितानना देवता से मन्त्री शत्रु के राज्य को पर्वत-जंगलों के साथ जला सकता है। अस्त्र का आरम्भ मानव गण के नक्षत्रों में करे। आसुरी नक्षत्र में साधना प्रारम्भ करने से देवता तुरन्त संहार करता है। तीनों पूर्वा उत्तरा भरणी आर्द्रा रोहिणी को मनीषियों ने मानुष्य नक्षत्र कहा है। ज्येष्ठा शतभिषा मूल धनिष्ठा आश्लेषा कृत्तिका चित्रा मघा विशाखा के देवता राक्षस हैं। अश्विनी रेवती पुष्य स्वाती हस्त पुनर्वसु अनुराधा मृगशिरा श्रवण के देवता देवगण हैं। नन्दा रिक्ता तिथियों में अस्त्र का विसर्जन करे।

भद्रास्वाहरणं कुर्याज्जयास्वत्यन्तमुत्तमम्। उपक्रमो भौमवारे शनिवारे विसर्जनम्॥४८॥
प्रतिसंहरणं वारे गुरोः शुक्रस्य वा भवेत्। भानुना मोक्षसंहारौ कुर्यात्पक्षद्वये सुधीः॥४९॥
स्थिरेषु राशिष्वारम्भश्चरेषु स्याद्विसर्जनम्। अस्त्रसंहरणं कुर्यादुभयेषु विचक्षणः॥५०॥
कृष्णपक्षेऽनलेनास्त्रं विसृजेच्छशिना पुनः। शुक्लपक्षे क्रमादस्त्रं पुनरात्मनि संहरेत्॥५१॥
पश्चिमाभिमुखो भूत्वा कर्म सर्वत्र कारयेत्। नक्षत्रवृक्षशकलान् साध्याख्याकर्मसंयुतान्॥५२॥
तत्तन्मन्त्राक्षरोपेतान् मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया। जुहुयादेधिते वह्नौ मारयेद्रिपुमात्मनः॥५३॥
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशीम्। धत्तूरविषवृक्षाक्षभूरुहोत्थान् समिद्वरान्॥५४॥
राजीतैलेन संयुक्तान् पृथक्सप्तसहस्रकम्। जुहुयात्संयतो भूत्वा रिपुर्यमपुरं व्रजेत्॥५५॥
सप्तरात्रं प्रजुहुयात् सिद्धार्थस्नेहलोलितैः। आर्द्रवस्त्रो विष्टिकाले मरिचैर्मनुनामुना॥५६॥
निगृह्यते ज्वरेणारिः प्रलयाग्निसमेन सः। तालपत्रे समालिख्य शत्रुनाम यथाविधि॥५७॥
आग्नेयास्त्रेण संवेष्ट्य कुण्डमध्ये निखातयेत्। जुहुयान्मरिचैः क्रुद्धो ज्वराक्रान्तः स जायते॥५८॥
तदादाय क्षिपेत्तोये शीतले स वशो भवेत्। पिष्ट्वापामार्गबीजानि मरीचमधुसंयुतम्॥५९॥
अत्युष्णे लवणे तोये निःक्षिप्य क्वाथयेत्ततः। ऋक्षवृक्षप्रतिकृतेर्हृदये वदने नसि॥६०॥
किंचित्किञ्चित्क्षिपेत्तोयं दर्व्या कारस्कारोत्थया। आग्नेयमुच्चरन् मन्त्री सोऽचिराज्ज्वरितो भवेत्॥६१॥
क्वथितेऽम्भसि तां क्षिप्त्वा हन्याच्छत्रुमयत्नतः। तीक्ष्णस्नेहेन संलिप्तां शत्रोः प्रतिकृतिं निशि॥६२॥
तापयेदेधिते वह्नौ प्रतिलोममनुं जपन्। ज्वरेण बाध्यते सद्यो मासादस्य मृतिर्भवेत्॥६३॥

भद्रा में आहरण करे। जया तिथि भौमवार में उत्क्रम करे और शनिवार में विसर्जन करे। गुरु या शुक्रवार में प्रतिसंहरण करे। मोक्ष-संहार दोनों पक्षों में करे। स्थिर राशि में आरम्भ करे और चर राशि में विसर्जन करे। उभय राशि में अस्त्र संहरण करे। कृष्ण पक्ष में अग्नि में एवं शुक्ल पक्ष में चन्द्र में अस्त्र का विसर्जन करे। पश्चिम दिशा में मुख करके सभी कार्य करे। नक्षत्र वृक्ष खण्ड साध्य नाम संयुक्त उनके मन्त्राक्षरों के साथ मन्त्र वर्ण संख्या के बराबर प्रज्वलित अग्नि में हवन करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। कृष्णाष्टमी से प्रारम्भ करके कृष्ण चतुर्दशी तक धत्तूर विषवृक्ष नक्षत्र वृक्ष की समिधा को राजी तैल से सिक्त करके सात हजार हवन संयत होकर करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। तेल लोलित सरसों से सात रातों तक हवन करे। गीले वस्त्र में विष्टि काल में मरिच से हवन करे तो शत्रु की मृत्यु ज्वर से हो जाती है। ताड़पत्र पर शत्रुनाम लिखकर आग्नेयास्त्र मन्त्र से वेष्टित करे और कुण्ड में गाड़ दे। उस कुण्ड में क्रुद्ध मुद्रा में मरिच से हवन करे तो शत्रु ज्वराक्रान्त होता है। उस ताड़पत्र को कुण्ड से बाहर निकालकर शीतल जल में डुबो दे तो ज्वर उतर जाता है। अपामार्ग बीज मरीच और मधु को मिलाकर

पीसकर इसे गरम नमकीन जल में डालकर क्वाथ बनावे। नक्षत्र वृक्ष की प्रतिकृति बनाकर उसके हृदय, मुख और नाक में कुछ-कुछ क्वाथ डाले। कारस्कर लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में आग्नेयास्त्र उच्चारण करके हवन करे तो शत्रु ज्वराक्रान्त हो जाता है। क्वाथ जल में उसे डाल दे तो शत्रु की मृत्यु होती है। शत्रु की प्रतिकृति में कड़ुआ तेल लगाकर रात में प्रज्वलित अग्नि में तपावे और प्रतिलोम मन्त्र जप करे तो शत्रु बुखार से एक माह में मर जाता है।

सामुद्रे सलिले हिङ्गुविषजीरकलोलिते। क्वथिते पुत्तलीं साध्यनक्षत्रतरुनिर्मिताम् ॥६४॥
अधोवक्त्रां विनिक्षिप्य यष्ट्या विषतरूत्थया। तच्छिरस्ताडनं कुर्वञ्जपेदस्त्रं विलोमतः ॥६५॥
सप्ताहान्मरणं याति शत्रुर्ज्वरविमोहितः। आदित्यरथनागेन्द्रग्रस्ताङ्‌घ्रिं तद्विषाहतम् ॥६६॥
नग्नं तैलेन लिप्ताङ्गं दग्धं भानुमरीचिभिः। अधोमुखं निजरिपुं ध्यात्वा क्वथितवारिणा ॥६७॥
तापयेद्भानुमालोक्य शत्रुर्मृत्युप्रियो भवेत्। बिभ्रतीं मुसलं शूलं ध्यायन् कालघनप्रभाम् ॥६८॥
कार्पासबीजैर्निम्बस्य पत्रैर्मेषीघृतप्लुतैः। हुत्वा विद्वेषयेच्छत्रूनस्त्रेणानेन देशिकः ॥६९॥
बिभ्राणां तर्जनीं शूलं ध्यात्वा दुर्गां भयङ्करीम्। महिषीघृतसंप्लुतैर्पल्लवैर्विषवृक्षजैः ॥७०॥
हुत्वा रिपोः क्षणात्सेनामुच्चाटयति मन्त्रवित्। ध्यात्वा देवीं पुरा प्रोक्तां चतुर्भिर्मरिचान्वितैः ॥७१॥
अजारुधिरसंयुक्तैर्जुहुयाद् दिवसत्रयम्। रिपोरुच्चाटनं कुर्यात्सेनाया नात्र संशयः ॥७२॥
असिशूलकरां दुर्गां ज्वलन्तीं प्रलयाग्निवत्। ध्यात्वा सर्षपतैलाक्तैर्बीजैर्धत्तूरसंभवैः ॥७३॥
हुत्वा विमोहयेच्छत्रून् मरिचैर्वा ससर्षपैः। कालाञ्जननिभां दुर्गां शूलखड्‌गधरां स्मरेत् ॥७४॥
नक्षत्रवृक्षसंभूतैर्व्रणकृत् स्नेहलोलितैः। समिद्वरैः प्रजुहुयाद्धन्यान्मासेन वैरिणम् ॥७५॥

समुद्र जल में हींग, विष, जीरा मिलाकर क्वाथ बनावे। साध्य नक्षत्र वृक्ष की पुत्तली बनावे। उस पुत्तली को क्वाथ में उलटा लटकाकर विषवृक्ष की छड़ी से पुत्तली के शिर पर मारे और अस्त्र मन्त्र का विलोम जप करे तो शत्रु ज्वर-ग्रस्त होकर एक सप्ताह में मर जाता है। हाथों में मुशल और शूल लिये हुए काले बादल के समान प्रभा वाली देवी का ध्यान करे। कपाल बीज एवं नीम की पत्ती को काजल और घी से प्लुत करके अस्त्र मन्त्र से हवन करे तो शत्रुओं में विद्वेष होता है। एक हाथ की तर्जनी को उठाये हुए दूसरे में त्रिशूल लिये भयंकर दुर्गा का ध्यान करे। विषवृक्ष के पत्तों को भैंस के घी से प्लुत करके हवन करे तो शत्रुसेना का तुरन्त उच्चाटन होता है। देवी का पूर्वोक्त ध्यान करके चारो मरिचान्वित बकरी के खून से संयुक्त करके तीन दिनों तक हवन करे तो शत्रुसेना का उच्चाटन होता है। हाथों में तलवार-शूलधारिणी प्रलयाग्नि के समान ज्वलित दुर्गा का ध्यान करके सरसों तेल से प्लुत धत्तूर बीजों से हवन करे तो शत्रु मोहित होता है। कालाञ्जन के समान शूल खड्‌गधारिणी दुर्गा का स्मरण करके मरिच सरसों को नक्षत्र वृक्ष के तेल से लोलित करके हवन करे तो एक महीने में वैरी मर जाता है।

सिंहारूढां प्रधावन्तीं धावमानं रिपुं प्रति। शरान् कार्मुकनिर्मुक्तान् वह्निज्वालासमाकुलान् ॥७६॥
मुञ्चन्तीं संस्मरन् दुर्गां तर्पयेदुष्णवारिणा। भानुबिम्बं समालोक्य रिपोरुच्चाटनं भवेत् ॥७७॥
अतिदुर्गामयोयष्टिगदाहस्तां विचिन्तयेत्। विद्युद्दामसमानाभां महिषीघृतसंप्लुतैः ॥७८॥
पुलाकैर्जुहुयान्निम्बवैभीतिकसमिद्वरैः। कोद्रवैरथवा शत्रोः सेनायाः स्तम्भनं भवेत् ॥७९॥
आत्तपाशाङ्कुशां रक्तां गाणिदुर्गामनुं स्मरेत्। लोणैः समधुरैः साध्यवृक्षकाष्ठेधितेऽनले ॥८०॥
जुहुयान्निशि सप्ताहान्मन्त्रविद्वशयेन्नृपान्। पाशाङ्कुशधरां रक्तां विश्वदुर्गां विचिन्तयेत् ॥८१॥
फलिनीकुसुमैः फुल्लैश्चन्दनाम्भःसमुक्षितैः। जुहुयान्निशि यो मन्त्री तस्य विश्वं वशं भवेत् ॥८२॥
शरच्चन्द्रनिभां देवीं विगलत्परमामृताम्। पाशाङ्कशधरां ध्यात्वा सिन्धुदुर्गां समिद्वरैः ॥८३॥
वैतसैर्मधुरासिक्तैर्जुहुयाद् वृष्टिसिद्धये। कपालं त्रिशिखं पाशमङ्कुशं बिभ्रतीं करैः ॥८४॥
जपाकुसुमसङ्काशामग्निदुर्गां विचिन्तयेत्। हुत्वा लवणपुत्तल्या मधुरत्रययुक्तया ॥८५॥

आकर्षेद्वाञ्छितान् साध्यान् मन्त्रविन्नात्र संशयः। अतिदुर्गेयमित्याद्या फडन्ता त्रिष्टुबीरिता ॥८६॥
दुर्वर्णान्ता च गाण्याद्या गाणिदुर्गा समीरिता। विश्वाद्या ण्यक्षरान्ता सा विश्वदुर्गा समीरिता ॥८७॥
सिन्ध्वाद्या सा वकारान्ता सिन्धुदुर्गा निगद्यते। त्यन्तामग्न्यादिकामेनाग्निदुर्गां विदुर्बुधाः ॥८८॥

सिंह पर सवार दुर्गा शत्रुसेना की ओर दौड़ती हुई अग्निज्वाला के समान तीर और कार्मुक छोड़ती हुई का स्मरण करते हुए गर्म जल से तर्पण सूर्यबिम्ब को देखते हुए करे तो शत्रु का उच्चाटन होता है। हाथों में छड़ी और गदाधारिणी विद्युद्दाम समानाभा अति दुर्गा का चिन्तन करते हुए भैंस के घी से प्लुत पुलाक, नीम, पाकड़ की समिधा अथवा कोदो से हवन करे तो शत्रुसेना का स्तम्भन होता है। पाश रक्तवर्णा अंकुशयुक्त दुर्गा के मन्त्र का स्मरण करे। नमक और मीठा से साध्य वृक्ष काष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में रात में हवन करे तो एक सप्ताह में राजाओं में विद्वेष हो जाता है। पाशांकुशधारिणी लाल विश्व-दुर्गा का चिन्तन करे। फलिनी कुसुम को चन्दन जल से समुक्षित करके रात में हवन करे तो साधक के वश में सारा संसार हो जाता है। शरत् चन्द्र के समान देवी अमृत वरसाती हुई पाश-अंकुशधारिणी सिन्धुदुर्गा का ध्यान करे। वेत को मधुराक्त करके अग्नि में हवन करे तो वर्षा होती है। कपाल-त्रिशूल-पाश-अंकुशधारिणी अड़हुल फूल के वर्ण वाली अग्निदुर्गा का चिन्तन करते हुए मधुरत्रययुक्त नमक की पुत्तली से हवन करे तो वांछित साध्य का आकर्षण होता है। फडन्त त्रिष्टुप् अतिदुर्गा हैं। दुर्वर्णान्ता गाणि आदि गाणिदुर्गा हैं। विश्व के आदि स्वरूप यक्षरान्त विश्वदुर्गा हैं। सिन्ध्वाद्या वकारान्त सिन्धुदुर्गा हैं। त्यन्ता अग्न्यादि को अग्निदुर्गा कहते हैं।

अङ्गणे स्थण्डिलं कृत्वा सुगन्धिकुसुमादिभिः। देवीमभ्यर्चयेन्नित्यं प्रागुक्तेनैव वर्त्मना ॥८९॥
आहरेद्रात्रिषु बलिं चरूणा तस्य सिद्धये। कृत्यारोगग्रहद्रोहभूतादीन् नाशयेदयम् ॥९०॥
यथावदग्निमाराध्य गन्धपुष्पैर्मनोहरैः। स्थित्वा तस्याग्रतो मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥९१॥
जपोऽयं सर्वसिद्ध्यै स्यान्नात्र कार्या विचारणा। लवणैर्मधुरासिक्तैः जुहुयात्पश्चिमामुखः ॥९२॥
मन्त्रार्णसंख्यया मन्त्री रिपुमात्मवशं नयेत्। शालीन् प्रक्षाल्य संशोध्य शुद्धान् कुर्वीत तण्डुलान् ॥९३॥
पाचित्वा पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने। चरुं पचेज्जपन् मन्त्रमवतार्य पुनः सुधीः ॥९४॥
अर्चयित्वा विशदधीर्देवीमग्नौ यथा पुरा। जुहुयाच्चरुणा तेन साज्येनाष्टसहस्रकम् ॥९५॥
पात्रे संपातनं कुर्यात्साध्यं तत्प्राशयेत्पुनः। शिष्टं तं निखनेद् द्वारि सम्पातं प्राङ्गणान्तरे ॥९६॥
कृत्यारोगा विनश्यन्ति सहभूतग्रहामयैः। परैरुत्पादिता कृत्या पुनस्तानेव भक्षयेत् ॥९७॥
व्रीहिभिर्हविषा क्षीरैः पयोवृक्षसमिद्वरैः। आज्यैर्मधुत्रयोपेतैरेतैर्दशशतं पृथक् ॥९८॥
जुहुयात्सम्पदां भूमिः साधको भवति ध्रुवम्। भास्करे मेषराशिस्थे मन्त्रज्ञोऽनुगुणे दिने ॥९९॥
नद्यां समुद्रगामिन्यां स्नात्वा मन्त्री यथाविधि। उद्धृत्यादाय सिकताः संशोध्य परिशोधयेत् ॥१००॥
न्यस्त ताः पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने। भर्जयेन्मनुना सिद्ध्यै दर्व्या ब्रह्मतरूत्थया ॥१०१॥
सिंहमेषधनुःस्थेऽर्के कृष्णपक्षेऽष्टमीतिथौ। विशाखाकृत्तिकामूलहस्तोत्तरमघास्वथ ॥१०२॥
रोहिण्यां श्रवणे वारौ मन्दवाक्पतिदेवतौ। विहायान्येषु कुर्वीत सिकतास्थापनं सुधीः ॥१०३॥
गृहग्रामादिराष्ट्राणं रक्षार्थं सिकताः शुभाः। प्रस्थाढकघटोन्माना मध्यादिष्ववटेष्विमाः ॥१०४॥
नवसु प्रक्षिपेज्जप्तास्तेषु संपूजयेत्क्रमात्। मध्यादिदेवीमस्त्राणि कपालान्तानि देशिकः ॥१०५॥
चक्रं शङ्खमसिं खेटं बाणं चापं त्रिशूलकम्। कपालं स्वस्वमन्त्रेण संपूज्यान्ते बलिं हरेत् ॥१०६॥
नक्षत्रग्रहराशीनां लोकेशानां बलिं हरेत्। विहिता यत्र रक्षेयं वर्धन्ते तत्र सम्पदः ॥१०७॥
क्षुद्रग्रहमहारोगचोरभूतसरीसृपाः। अमुना विलयं यान्ति विधिना नात्र संशयः ॥१०८॥
सिकतानां विशुद्धानां विकारकुडवं सुधीः। पञ्चगव्ययुतं पात्रे ब्रह्मवृक्षेण निर्मिते ॥१०९॥
निक्षिप्य विधिना यत्र स्थापयेत्तत्र सम्पदः। दिने दिने प्रवर्धन्ते कालविष्ट्यादिभिः सह ॥११०॥
महोत्पाता विनश्यन्ति कृत्याद्रोहमहाग्रहाः। चरुं गव्यात्मना कुर्यात्स्थापनं विधिनामुना ॥१११॥
गोमूत्रं प्रस्थमानं स्याद्गोमयाम्भस्तदर्धकम्। आज्यात्सप्तगुणं क्षीरं गोमूत्रात्त्रिगुणं दधि ॥११२॥

गोमूत्रेण समं सर्पिः सर्वं वा सममुच्यते। गावः स्युः कपिलाः श्वेतश्यामधूम्रारुणप्रभाः ॥११३॥
अभावे गदिताः सर्वाः सर्वं वा कपिलोद्भवम्। एकोनपञ्चाशत्कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः ॥११४॥
विहाय कोणकोष्ठानि शक्त्याद्यं जातवेदसम्। लिखित्वा मध्यकोष्ठादि पूजयेत्तत्र देवताम् ॥११५॥
कृत्वा होमं ससम्पातं निखनेत्तद्यथा पुरा। दद्याद्बलिं यथापूर्वमस्य पूर्वोदितं फलम् ॥११६॥
मध्ये मायामष्टकोष्ठेषु पादानष्टौ कृत्वा मातृकार्णैः प्रवीतम्।
भूबिम्बस्थं सर्वभूतामयघ्नं रक्षायुःश्रीकीर्तिदं यन्त्रमेतत् ॥११७॥
आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादानकर्मणी। यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याधीनं जगत्त्रयम् ॥११८॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे द्वाविंशः श्वासः ॥२२॥

●

आंगन में स्थण्डिल बनाकर सुगन्धित फूलों से देवी की पूजा नित्य पूर्वोक्त मार्ग से करे। रात में चरु की बलि प्रदान करे। इससे कृत्या रोग, ग्रह, द्रोह, भूतादि पीड़ा का नाश होता है। गन्ध, सुन्दर फूलों से यथाविधि अग्नि की पूजा करके उसके आगे बैठकर एकाग्र बुद्धि से मन्त्रजप करे। इस जप से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। मधुर-सिक्त नमक से पश्चिममुख बैठकर हवन मन्त्रवर्णों की संख्या के बराबर करे तो शत्रु वश में हो जाता है। शालि चावल को धोकर सुखाकर शुद्ध करे। संस्कृत अग्नि में पञ्चगव्य में उसे पकावे। चरु पकाते समय मन्त्रजप करे। उसे अग्नि पर से उतार कर देवी अग्नि का पूर्ववत् अर्चन करे। उससे एक हजार आठ हवन करे। पात्र में सम्पात करे और साध्य को खिलाये। शेष भाग को उसके द्वार पर गाड़ दे। इससे कृत्या रोग नष्ट होते हैं। ग्रह-भूतपीड़ा भी छूट जाती है। दूसरे द्वारा किये कृत्या के प्रयोग नष्ट हो जाते हैं। दूध में चावल डालकर दूध वाले पेड़ की लकड़ी से पकावे, उसमें आज्य मधुत्रय मिलाकर एक हजार हवन करे तो साधक को भूमि-सम्पत्ति मिलती है। मेष राशि में जब सूर्य हो तब रविवार में समुद्रगामिनी नदी में स्नान करके यथाविधि बालू लेकर उसे संशोधित करे। उसे पञ्चगव्य में डालकर संस्कृत अग्नि में पकावे तो द्रव्य सिद्ध होता है। सिंह, मेष, धनु में जब सूर्य हो तब कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में विशाखा, कृत्तिका, मूल, हस्त, मघा, रोहिणी, श्रवण होने पर शनि या गुरुवार को छोड़कर अन्य दिनों में सिकता स्थापन करे। गृह ग्राम राष्ट्र की रक्षा के लिये सिकता शुभ होती है। प्रस्थ आढक मान का वट वृक्ष का नव घट बनवाकर उसमें जप करके जल आदि डाले। बीच वाले घट में देवी की पूजा करे। शेष आठ में देवी के आयुधों की पूजा करे। आयुधों में चक्र, शङ्ख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, त्रिशूल, कपाल की पूजा उनके मन्त्रों से करे। अन्त में बलि प्रदान करे। नवग्रह, राशियों और दिक्पालों को बलि प्रदान करे। यह जहाँ स्थापित रहता है, वहाँ रक्षा होती है और सम्पदा बढ़ती है। क्षुद्र ग्रह, महारोग, चोर, भूत, सर्प सभी वहाँ से भाग जाते हैं। विशुद्ध सिकता एक कुडव लेकर पञ्चगव्य के साथ ब्रह्मवृक्ष के पात्र में डाले। उसे जहाँ स्थापित किया जाता है, वहाँ सम्पदा दिनोदिन बढ़ती है। कालविष्ट्यादि के साथ महा उत्पात नष्ट होते हैं। कृत्या द्रोह महाग्रह भी शान्त हो जाते हैं। पञ्चगव्य में चरु पकाकर विधिवत् इस मन्त्र से स्थापित करे। इसमें गोमूत्र प्रस्थ भर, गोबर उसका आधा, उसका आधा गोघृत, उसका सातगुणा दूध गोमूत्र का त्रिगुना दही, गोमूत्र के बराबर गोघृत सबों को मिलावे। यह सब कपिला गाय का होना चाहिये। ब्रह्म वृक्ष के पटरे पर उनचास कोष्ठ बनाकर चारो कोनों के चार कोष्ठों को छोड़कर आदि शक्ति जातवेद के अक्षरों को लिखे। मध्य कोष्ठ से प्रारम्भ करके देवता का पूजन करे। हवन करे। सम्पात करे और उसे पूर्ववत् गाड़ दे। बलि प्रदान करे। तब पूर्वोक्त फल मिलते हैं। इस यन्त्र के मध्य में ह्रीं लिखे। आठ कोष्ठों में मन्त्र के आठ पदों को लिखे। भूपुर में मातृका वर्णों को लिखे। यह सभी भूतों और रोगों का विनाशक है। इससे रक्षा होती है एवं आयु, धन और कीर्ति की प्राप्ति होती है। जो इस आग्नेयास्त्र को जानता है, गुरु को दान-दक्षिण देता है, उसके अधीन तीनों लोक होते हैं।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव
नारायण-कृत भाषा-भाष्य में द्वाविंश श्वास पूर्ण हुआ

●

अथ त्रयोविंशः श्वासः

दिनास्त्रकृत्यास्त्रविधानम्

तथा (२२.१)—

अथो दिनास्त्रं कृत्यास्त्रं वक्ष्ये शत्रुविमर्द्धनम्। अतिदुर्गामनुं प्राहुर्दिनास्त्रं मन्त्रवित्तमाः ॥१॥
प्रतिलोममिमं मन्त्रं कृत्यास्त्रं च प्रचक्षते। दिनास्त्रस्य षडङ्गादीन् प्रतिलोमोदितान् विदुः ॥२॥

(इममतिदुर्गामन्त्रं, स तु—अतिदुर्गाणि इत्यारभ्य पर्षदित्यन्तम्। प्रतिलोममिति तर्षप इत्यादि र्गादुतिअ इत्यन्तम्। दिनास्त्रस्य कृत्यास्त्रस्येति शेषः, प्रतिलोमोदितानि षडङ्गानि त्वाग्नेयास्त्रवदेव। आदिपदेन वर्णन्यासपदन्यासवर्णशक्तिपूजासु प्रातिलोम्यं सूच्यते। तच्चात्र पञ्चाद्यक्षरादिमन्त्राक्षरपर्यन्तं क्रमेण, न तु क्रमेण त्रिष्टुप् मन्त्रस्य प्रातिलोम्यम्।)

भानुबिम्बगतं शत्रुमधोवक्त्रं विषाहतम्। मूलादुत्थितया ग्रस्तं कुण्डल्या भावयन् सुधीः ॥३॥
मूलाधारे क्षिपेत्सद्यः प्रस्फुरत्कालपावके। दिनत्रयाज्ज्वराक्रान्तो रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ॥४॥
दिनास्त्रप्रतिविद्धाङ्गं स्वाधिष्ठानगतं रिपुम्। पञ्चवायुसमिद्धेन वह्निना दग्धविग्रहम् ॥५॥
ध्यायेन्मनुं जपेत्सद्यः स भवेद्यमवल्लभः। मणिपूरगतं शत्रुमग्निना दीप्तविग्रहम् ॥६॥
ध्यायन् दिनास्त्रं प्रजपेत्स मृत्युग्रासतां व्रजेत्। अनाहताहितः शत्रुर्निर्दग्धो मन्त्रवह्निना ॥७॥
पाशेन बद्ध्वा शीघ्रेण नीयते यमकिङ्करैः। विशुद्धस्थानगो वैरी दिनबाणेन पीडितः ॥८॥
अधोमुखः स्मृतस्तूर्णं परासुः स्याद्दिनत्रयात्। आज्ञायां निहितं शत्रुं दहेद्दिनाग्निना धिया ॥९॥
पुत्रमित्रकलत्रादीन् हित्वा मृत्युमुपाश्रयेत्। नाभिमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन् बिम्बे दिनेशितुः ॥१०॥
वैरिणं दग्धसर्वाङ्गं मन्त्रमष्टोत्तरं शतम्। जपेत्सप्तदिनादर्वाग् यमलोकं स गच्छति ॥११॥
आरवारं समारभ्य सप्ताहं प्रजपेन्मनुम्। सूर्योदयं समारभ्य यावदस्तमयो भवेत् ॥१२॥
सन्निपातज्वराविष्टो यमग्रस्तो भवेदरिः। स्थित्वा दुर्गालये मन्त्री त्रिरात्रं वर्जिताशनः ॥१३॥
दिनबाणेन विद्धाङ्गं वैरिणं प्रविचिन्तयन्। जपेन्मनुमिमं शत्रुर्ज्वरितो मरणं व्रजेत् ॥१४॥
स्पृष्ट्वा दुर्गां जपेन्मन्त्रमनश्नंस्त्रिदिनं स्मरन्। शूलप्रोतं निजरिपुं दिनास्त्रेण प्रपीडितम् ॥१५॥
ज्वरेण महताविष्टो जायतेऽसौ यमातिथिः।

अब शत्रुविमर्दक दिनास्त्र और कृत्यास्त्र को कहता हूँ। मन्त्रज्ञानियों के अनुसार अतिदुर्गा मन्त्र दिनास्त्र होता है और इसके प्रतिलोम को कृत्यास्त्र कहते हैं। दिनास्त्र के षडङ्ग आदि न्यास प्रतिलोम के अनुसार होते हैं।

दिनास्त्र मन्त्र—अतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः स नः पर्षत। अनुलोम दो पाद।

कृत्यास्त्र मन्त्र—तर्षप नः स ग्नित्यतारिदुन्धुसि ववेनाश्वावि णिर्गादुतिअ—प्रतिलोम।

दिनास्त्र का प्रतिलोम कृत्यास्त्र होता है। षडङ्ग, वर्णन्यास, पदन्यासवर्ण शक्ति की पूजा में प्रतिलोम क्रम का आश्रयण करना चाहिये। यहाँ पर पाँच आद्य अक्षर से प्रारम्भ करके मन्त्राक्षर तक क्रम से प्रतिलोम करना चाहिये, न कि त्रिष्टुप् मन्त्र का प्रतिलोम करना चाहिये।

साधक भावना करे कि शत्रु विषाहत सूर्यबिम्व में अधोमुख स्थित है। मूलाधार से उठकर कुण्डलिनी उसे ग्रस्त कर लेती है और मूलाधार की प्रज्ज्वलित अग्नि में पटक देती है। इससे शत्रु ज्वराक्रान्त होकर तीन दिनों में यमलोक सिधार जाता

है। दिनास्त्र से प्रतिविद्ध अंगों वाला शत्रु स्वाधिष्ठान में जाकर पाँच वायु से प्रज्वलित अग्नि में दग्ध विग्रह हो जाता है। ऐसा ध्यान करते हुये मन्त्र का जप करे तो वह तुरन्त यमराज का प्रिय हो जाता है। मणिपूर में जाकर अग्नि से दीप्त विग्रह शत्रु का ध्यान करके दिनास्त्र का जप करे तो वह मृत्यु का ग्रास हो जाता है। अनाहत में जाकर शत्रु मन्त्र की अग्नि में जल जाता है। यमदूत उसे पाश से बाँधकर शीघ्र ले आते हैं। विशुद्धि चक्र में जाकर वैरी दिनबाण से पीड़ित होता है, उसके अधोमुख होने का चिन्तन करे तो तीन दिनों में आज्ञा में शत्रु निहत होकर दिनाग्नि से जल जाता है। वह पुत्र, मित्र, कलत्र को छोड़कर मृत्यु के आश्रय में चला जाता है। सात दिनों तक मन्त्र जप करने से यमलोक में चला जाता है। मंगलवार से प्रारम्भ करके एक सप्ताह तक मन्त्र का जप करे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक मन्त्र का जप करे। इससे शत्रु सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होकर यमलोक में चला जाता है। दुर्गा मन्दिर में बैठकर तीन रात तक निराहार रहकर दिनास्त्र से विद्ध अंगों वाले शत्रु का चिन्तन करके इस मन्त्र का जप करे तो शत्रु बुखार से ग्रस्त होकर यमराज का अतिथि हो जाता है।

रविमण्डलगं शत्रुं दष्टं तद्रथपन्नगैः ॥१६॥
विषाग्निदग्धसर्वाङ्गं ध्यायनुष्णेन वारिणा। तर्पयेद्दिनबाणेन स्यादसौ यमवल्लभः ॥१७॥
रविबिम्बादागतया ज्वालया ग्रस्तविग्रहम्। रिपुं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं स क्रीडति यमान्तिके ॥१८॥
ग्रहग्रस्तार्कबिम्बस्थं विद्धं मन्त्रमयैः शरैः। प्रतिपद्य निजं शत्रुं जपेदयुतमस्त्रवित् ॥१९॥
रिपुं नयति शीघ्रेण यमदूतो यमालयम्। प्रलयानलसंकाशकालरात्रिमिवापराम् ॥२०॥
शूलपाशधरां घोरां सिंहस्कन्धनिषेदुषीम्। सवितुर्मण्डलान्तःस्थां रक्तनेत्रत्रयोद्गतैः ॥२१॥
विस्फुलिङ्गैर्निर्दहन्तीं रिपुमाकुलविग्रहम्। स्पष्टदंष्ट्राधरां नृत्यद् भ्रूकुटीभीषणाननाम् ॥२२॥
तर्जयन्तीं निजं शत्रुं तर्जन्या भीमरूपया। दंष्ट्रामयूखजालेन द्योतयन्तीं दिगन्तरम् ॥२३॥
शूलेन वैरिणो वक्षो दारयन्तीं भयङ्करीम्। जपेद्दिनत्रयं मन्त्री मारयेद्रिपुमात्मनः ॥२४॥
अस्त्रमन्त्रकृतन्यासः प्रलयाग्निसमप्रभः। रक्तवस्त्रधरां क्रुद्धां रक्तनेत्रत्रयान्विताम् ॥२५॥
सिंहाधिरूढां धावन्तीं धावमानं रिपुं प्रति। खड्गेन तच्छिरश्छित्वा क्षणाद्व्योमस्थलं गताम् ॥२६॥
ध्यात्वा दुर्गां जपेन्मन्त्रं त्रिदिनं वर्जिताशनः। अननैव विधानेन रिपुर्मृत्युप्रियो भवेत् ॥२७॥
कर्माण्येतानि कुर्वीत दिवसे न तु रात्रिषु। इति।

शत्रु को सूर्यमण्डल में रथ के सर्पों के विष से सर्वांग दग्ध देखते हुये गर्म जल से तर्पण दिनास्त्र के द्वारा करे तो शत्रु यमराज का प्रिय हो जाता है। सूर्य बिम्व से आगत ज्वाला से शत्रु को ग्रस्त विग्रह देखकर मन्त्र का जप करे तो वह यमलोक में चला जाता है। सूर्यमण्डल में शत्रु को ग्रहग्रस्त मन्त्ररूपी बाणों से विद्ध कल्पित करके एक हजार मन्त्र का जप करे तो शत्रु को यमदूत शीघ्र यमलोक में ले जाते हैं। प्रलयानल के समान, दूसरी कालरात्रि के समान शूल-पाशधारिणी, भयंकरी, सिंह पर सवार देवी सूर्यमण्डल में स्थित है। उसके लाल नेत्रों से निकलती चिनगारियों से शत्रु दग्ध होकर व्याकुल हो रहा है। अपने ओठों को काटती हुई भयंकर मुख-नयनों वाली देवी शत्रु को भयंकर तर्जनी से मार रही है। ऐसा ध्यान करके तीन दिनों तक साधक जप करे तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है। अस्त्र-मन्त्र से न्यास करके प्रलयाग्नि के समान प्रभा वाली सिंह पर सवार देवी भागते हुए शत्रु के पीछे दौड़ती हुई तलवार से शत्रु का शिर काट कर तुरन्त आकाश में चली गयी, इस प्रकार का ध्यान करते हुए निराहार रहकर तीन दिनों तक मन्त्र का जप करे तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है। ये सभी कर्म दिन में करने चाहिये; रात में नहीं करने चाहिये।

अथ रात्रिकृत्यम्

पश्चिमामुखलिङ्गस्य सजीवं महिषं पुरः ॥२८॥
निखाय तस्य शिरसि कुण्डं कृत्वा त्रिकोणकम्। तस्मिन् समेधिते वह्नौ यथावद्देशिकोत्तमः ॥२९॥
सत्रिकोणान् ससाध्यक्षसाध्यनामसमन्वितान्। अजारक्तेन संसिक्तान् कारस्करसमिद्वरान् ॥३०॥

सहस्रं जुहुयाद्देवीं ध्यात्वा सवितृमण्डले। प्रलयाग्निसमां घोरां द्वात्रिंशद्भुजशोभिताम् ॥३१॥
उद्यदायुधसंदीप्तां नृत्यन्तीं सिंहमस्तके। महादंष्ट्रां महाभीमां ज्वलत्केशीं नदन्मुखीम् ॥३२॥
रक्तार्द्रमांसवदनां घूर्णितोग्रत्रिलोचनाम्। अनेन विधिना शत्रुर्महाज्वरनिपीडितः ॥३३॥
विमुञ्चति निजं देहं पुत्रमित्रादिभिः सह। ऊर्ध्वमुष्णाम्भसो मन्त्री लम्बयित्वा भुजङ्गमम् ॥३४॥
भानुबिम्बगतां दुर्गां सहस्रादित्यसन्निभाम्। सहस्रपाणिचरणां सहस्राक्षिशिरोमुखीम् ॥३५॥
सहस्रनागबद्धाङ्गीं त्रासयन्तीं जगत्त्रयम्। ध्यायन्ननेन सर्पास्ये तर्पयेदुष्णवारिणा ॥३६॥
संयतः कालपाशेन वैरी मुञ्चेत्स्वजीवितम्। मध्याह्नार्कायुतप्रख्यां नदन्तीं नरसिंहवत् ॥३७॥
घोरसिंहसमासीनां महाभीषणदर्शनाम्। शूलप्रोताहितां ध्यायञ्जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥३८॥
तर्पयेदुष्णतोयेन सर्पवक्त्रे दिनत्रयम्। यमस्य भुवनं गच्छेदरातिर्नात्र संशयः ॥३९॥
ऋक्षवृक्षप्रतिकृतिं प्रतिष्ठितसमीरणाम्। उष्णोदके विनिक्षिप्य विषाढ्ये विधिना ततः ॥४०॥
अर्केन्द्वनलसंकाशां खड्गखेटकधारिणीम्। नयनत्रयनिर्गच्छद्विस्फुलिङ्गशताकुलाम् ॥४१॥
सिंहस्था सर्पभूषाढ्यां त्रैलोक्यभयकारिणीम्। खड्गकृत्ताहितां ध्यायन् प्रजपेदयुतं मनुम् ॥४२॥
विधानेनामुना शत्रुर्ग्रस्तो भवति मृत्युना।

रात्रिकृत्य—पश्चिममुख लिङ्ग के आगे जीवित भैंसे का शिर काटकर गाड़ दे। त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें प्रज्वलित अग्नि में तीनों कोणों में साध्य अक्ष एवं साध्य नाम-सहित बकरे के रक्त से सिक्त कारस्कर समिधा से एक हजार हवन करे। सूर्यमण्डल में देवी का ध्यान प्रलयाग्नि के समान, भयंकर बत्तीस भुजाओं से शोभित, असीम प्रकाशमान आयुध, सिंह के मस्तक पर नाचती हुई, महादंष्ट्रा, महाभीमा, ज्वलत्केशी, नाद करती हुई, रक्तार्द्र मांसमुखी, घूर्णित उग्र तीन नेत्रों वाली है, ऐसा ध्यान करने से शत्रु महाज्वर से पीड़ित होकर पुत्र-मित्रों के साथ अपना देह छोड़ देता है।

गर्म जल के ऊपर साधक साँप को लटका दे। दुर्गा सूर्यमण्डल में हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान है, उसके हजार हाथ-पैर एवं हजार आँख, शिर तथा मुख हैं, उसके शरीर में हजार सर्प लिपटे हुए हैं, वह संसार को भयभीत कर रही हैं—ऐसा ध्यान करके सर्प के मुख में गर्म जल से तर्पण करे। इससे वैरी कालपाश से बँधकर अपना प्राण त्याग देता है। दोपहर के हजार सूर्य-जैसे तेज प्रकाश से युक्त, नरसिंह जैसी गरजती हुई, भयंकर शेर पर सवार, देखने में महा भयंकर, वैरी को त्रिशूल भोंकती हुई देवी का ध्यान करते हुए एकाग्रता से मन्त्र जप करके गर्म जल से तर्पण सर्प के मुख में तीन दिनों तक करे तो शत्रु यमलोक में चला जाता है; इसमें संशय नहीं है। शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी से प्रतिमा बनाकर प्राण-प्रतिष्ठा करके गर्म जल से स्थापित करके उसे विधिवत् विषाक्त करे। सूर्य-सोमाग्नि के समान, खड्ग-ढाल धारण करने वाली, तीन नेत्रों से निकलती सैकड़ों चिनगारियों से युक्त, सिंह पर सवार, सर्वाभरणयुक्त, तीनों लोकों को भयभीत करने वाली, शत्रु पर खड्ग प्रहार करती हुई देवी का ध्यान करते हुए दश हजार मन्त्र का जप करे। ऐसे मन्त्र के विधान से शत्रु मृत्युग्रस्त होता है।

प्रकल्प्य दुर्गायतने त्रिकोणं कुण्डमुत्तमम् ॥४३॥
तत्र संज्वालिते वह्नौ महिषीशकृता कृताम्। पुत्तलीमजरक्ताक्तां प्रतिष्ठितसमीरणाम् ॥४४॥
छित्वा च्छित्वा प्रजुहुयादजरक्तान्वितां निशि। ध्यात्वा दुर्गां प्रनृत्यन्तीं महिषोरःस्थलान्तरे ॥४५॥
शूलेन महिषस्याङ्गं भिन्दतीं घोरदर्शनाम्। अट्टहासैरजस्रोत्थैर्भीषणां सुरसेविताम् ॥४६॥
प्रलयानलसंकाशां भ्रमन्नेत्रत्रयान्विताम्। संदष्टाधरसंभिन्नां दंष्ट्राभीममुखाम्बुजाम् ॥४७॥
खड्गखेटकयुक्ताभिः कन्यकाभिः समावृताम्। अनेन विधिना शत्रुः प्रयाति यममन्दिरम् ॥४८॥
दिनास्त्रमेवं विहितं शत्रुनिग्रहकारणम्।

दुर्गा के मन्दिर में त्रिकोण कुण्ड बनावे। उसमें अग्नि प्रज्वलित करे। भैंस के गोबर की पुत्तली बनाकर उसे बकरे के खून से रंग कर प्राण-प्रतिष्ठा करे। उसके टुकड़े-टुकड़े करके उन टुकड़ों को बकरे के खून से प्लुत करके हवन करे।

ध्यान करे कि दुर्गा भैंसे के वक्ष पर नाच रही है, शूल से महिष के अंग का भेदन कर रही है, देखने में भयंकर है, भीषण अट्टाहास कर रही है, देवों से सेवित है, उसके तीनों नेत्र प्रलयाग्नि के समान चक्कर काट रहे हैं, ओठों को चबाती हुई भयंकर दाँतों से युक्त मुखकमल है, हाथों में ढाल-तलवार ली हुई है एवं कन्याओं से घिरी है—इस प्रकार का ध्यान करके जप करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। शत्रुनिग्रह के लिये इस दिनास्त्र का प्रयोग किया जाता है।

कृत्यास्त्रचोदितान् कुर्यात्प्रयोगान् मन्त्रवित्तमः ॥४९॥
आधारादुद्गतां देवीं कुण्डलीं सर्परूपिणीम्। सुषुम्नारन्ध्रमार्गेण यातां व्योमस्थलं ततः ॥५०॥
मुखेन शत्रुमादाय निवृत्तां स्वगृहं प्रति। ज्वलत्कालानलोद्दीप्तां विचिन्त्य प्रजपेन्मनुम् ॥५१॥
सप्तभिर्वासरैः शत्रुर्मृत्युमाप्नोति मोहितः। अङ्गारवारे चित्यग्नौ सर्षपस्नेहलोलितम् ॥५२॥
सिद्धार्थकुडवं जप्त्वा जुहुयात्पक्षमात्रतः। कृत्यास्त्रज्वालया दग्धो रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ॥५३॥
चतुर्दश्यामर्धरात्रे चितास्थीन्यत्र साधकः। व्रणतैलविलिप्तानि चिताग्नौ जुहुयात्ततः ॥५४॥
अनेन विधिना शत्रुर्मृत्युमेष्यति कातरः। तुषास्थिनिर्मितां शत्रोर्व्रणतैलपरिप्लुताम् ॥५५॥
प्रतिमां स्थापितप्राणां जुहुयान्निशि साधकः। छित्वा च्छित्वाजरक्तेन सप्ताहान्म्रियते रिपुः ॥५६॥
श्मशानवालुकाः स्पृष्ट्वा साक्षता नियुतं जपेत्। विकिरेत्तास्तडागादौ कृत्यास्त्रक्वथितं जलम् ॥५७॥
तदीयं पीतमचिरान्निहन्ति सकलाञ्जनान्। कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां प्रजप्तैः प्रेतभस्मभिः ॥५८॥
महिष्याज्येन लुलितैस्तन्मन्त्राक्षरसंख्यया। निर्माय गुलिकामेनां सम्यग्जप्तसमीरणाम् ॥५९॥
चितिकाष्ठैधिते वह्नौ जुहुयाद् दृढमानसः। चतुर्दशीत्रयादर्वाक् शत्रुर्मृत्युप्रियो भवेत् ॥६०॥
श्मशानभस्म सिद्धार्थान् पञ्चगव्ये विनिक्षिपेत्। महिषस्थां स्मरन् देवीं कालाग्निसदृशप्रभाम् ॥६१॥
भर्जयेत् प्रजपन्मन्त्रं विषकाष्ठैश्चितानले। दुर्गागारे प्रजुहुयादनेनायुतमस्त्रवित् ॥६२॥
पुनरादाय तद्भस्म सेनायां वैरिणः क्षिपेत्। सा सेना बहुधा भिन्ना ज्वररोगविमोहिता ॥६३॥
आयुधानि परित्यज्य युधकाले पलायते। गेहग्रामादिषु क्षिप्तं कुर्यादुच्चाटनं क्षणात् ॥६४॥
सप्तारवारे गुलिका दुर्गावेश्मसु शर्कराः। सप्त माहेन्द्रदिग्वर्जं गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम् ॥६५॥
माहिषीपञ्चगव्येषु भर्जयेत्तां यथापुरा। भूयो जपित्वा विकिरेद्गेहग्रामपुरेष्विमाः ॥६६॥
स देशो नश्यति क्षिप्रं दग्धो मन्त्रभवाग्निना।

कृत्यास्त्र—मन्त्रज्ञ साधक को ही कृत्यास्त्र का प्रयोग करना चाहिये। सर्परूपिणी देवी कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर सुषुम्ना मार्ग से व्योमस्थल सहस्रार में जाती है और मुख में शत्रु को लेकर अपने स्थान पर लौट जाती है। कालानल के समान प्रज्वलित उसका चिन्तन करते हुए मन्त्र का जप करे तो सात दिनों में शत्रु मर जाता है। मंगलवार में चिता की अग्नि में सरसों तेल में लोलित ३२० ग्राम सिद्धार्थ से मन्त्र-जप के साथ हवन एक पक्ष तक करने से कृत्यास्त्र ज्वाला से दग्ध शत्रु मर जाता है। चतुर्दशी की आधी रात में चिता की अग्नि में व्रणतैल-विलिप्त अस्थि से हवन करे तो शत्रु कातर होकर मर जाता है। तुषास्थि से निर्मित शत्रु की मूर्ति को व्रण तैल से लिप्त करके प्राण-प्रतिष्ठा करे। रात में उसे टुकड़ा-टुकड़ा करके बकरे के खून के साथ हवन करे तो एक सप्ताह में शत्रु की मृत्यु हो जाती है। श्मशान के बालू में अक्षत मिलावे, उसे स्पर्श किए हुए एक लाख मन्त्र का जप करे। उस बालू को कृत्यास्त्र क्वथित जल में मिलाकर तालाब आदि में बिखेर दे। उस तालाब के जल को जो पीते हैं, वे सभी अल्प काल में ही मर जाते हैं। कृष्ण पक्ष की मंगलवारी चतुर्दशी में प्रेतभस्म को भैंस के घी से लोलित करे और मन्त्राक्षर संख्या में मन्त्रजप से मन्त्रित करे। इसकी गोली बनावे। सम्यक् जप करे। चिताकाष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में दृढ़ता से हवन करे। तीन चतुर्दशी में ऐसा करने से शत्रु की मृत्यु होती है। श्मशान भस्म और सरसों को पञ्चगव्य में डाले। महिष पर सवार देवी का स्मरण कालाग्नि प्रभा के समान करे। विषकाष्ठ की चिताग्नि में मन्त्र जपते हुए उसे भूँजे। दुर्गा मन्दिर में इससे दश हजार हवन करे। भस्म को लेकर वैरी की सेना में बिखेर दे। वह सेना ज्वर से मोहित

होकर इधर-उधर छितरा जाती है और युद्ध के समय आयुध छोड़कर सैनिक भाग जाते हैं। इस भस्म को गृह में या ग्राम में विखेरने से शीघ्र उच्चाटन होता है। सात मंगलवार को दुर्गा मन्दिर में गुड़ की सात गोलियाँ लेकर पूर्व दिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं में रखकर जप करे, भैंस के पञ्चगव्य में उसे पूर्ववत् पकावे। मन्त्रित करके घर, गाँव या नगर में बिखेर दे तो वह देश शीघ्र ही मन्त्र से उत्पन्न अग्नि में नष्ट हो जाता है।

ब्रह्मदण्डीं मर्कटिकां करक्रोशनिकात्रयम् ॥६७॥
भौमवारस्य गुलिके गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम्। चतुर्दश्यां रिपोर्गेहे निखनेत्प्रजपेन्मनुम् ॥६८॥
सार्धं पुत्रकलत्राद्यैरुच्चाटो जायते रिपोः। एकैकं वा जपेन्मन्त्री मण्डलात्तत्फलं लभेत् ॥६९॥
षड्बिन्दुखण्डं पुत्तल्यां निखनेदोदनाप्लुतम्। स्पृष्ट्वा तां प्रजपेदस्त्रं कृष्णाष्टम्यां निशार्धतः ॥७०॥
शत्रुनामसमायुक्तं श्मशाने निखनेदिमाम्। प्रणश्यति रिपुः शीघ्रं सकुटुम्बः सबान्धवः ॥७१॥
कपालशकलान् मन्त्री कृत्यास्त्राक्षरसंख्यकान्। संस्पृशन् प्रजपेन्मन्त्रं प्राणस्थापनपूर्वकम् ॥७२॥
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां श्मशाने विषवृक्षजे। जुहुयादजरक्ताक्तान् कृत्यास्त्रज्वालया हतः ॥७३॥
रिपुर्यमपुरं गच्छेन्महाज्वरविमोहितः। अजारक्तेन संपूर्णे कलशे निक्षिपेदहिम् ॥७४॥
कपालेन पिधायैनं छादयेद्रक्तवाससा। पूजयेद्रक्तपुष्पाद्यैः स्पृष्ट्वा तमयुतं जपेत् ॥७५॥
भौमवारे निशामध्ये कारस्करसमेधिते। श्मशानवह्नौ जुहुयाद्गच्छेद्यमपुरं रिपुः ॥७६॥
साध्यनक्षत्रवृक्षेण कृत्वा कुम्भं प्रपूरयेत्। माहिषैः पञ्चगव्यैस्तं बिडालं तत्र निक्षिपेत् ॥७७॥
जपपूजादिकं सर्वं यथापूर्वं समाचरेत्। कारस्करैधिते वह्नौ कृत्यास्त्रेण समेधिते ॥७८॥
अयुतं व्रणतैलेन हुत्वा चान्ते घटं पुनः। आमस्तकं समुद्धृत्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥७९॥
जुहुयाद्विधिनानेन त्रिदिनैर्म्रियते रिपुः। सुन्दरं महिषीवत्समेकरात्रमुपोषितम् ॥८०॥
पाययेन्महिषीसर्पिः प्रस्थं मन्त्रेण मन्त्रितम्। कुशैः स बद्धसर्वाङ्गं स्थापितप्राणमञ्जसा ॥८१॥
कारस्करैधिते वह्नौ व्रणतैलेन मन्त्रवित्। होमं कृत्वायुतं वत्सं जुहुयाद्यतमानसः ॥८२॥
एकेन दिवसेनारिर्गच्छेद्यमपुरं सुखी। त्रिकोणकुण्डे निहिते वह्नौ मन्त्रेण दीपिते ॥८३॥
अर्चिते गन्धपुष्पाद्यैरयुतं जुहुयात्क्रमात्। राजीभल्लातकतिलतैलैः सप्तदिनं ततः ॥८४॥
प्रसूतिसमयं प्राप्तां महिषीं स्थापितानिलाम्। पूजितां गन्धपुष्पाद्यैः स्पृशन् कूर्चेन तां जपेत् ॥८५॥
मस्तकाद्योनिपर्यन्तं धिया वत्समनुस्मरन्। आकृष्य हस्ते पतितं जुहुयादेधितेऽनले ॥८६॥
एवं कृते समुत्पन्ना कृत्या दीप्ता हुताशनात्। भक्षयेदचिराच्छत्रुमीरश्वरेणापि रक्षितम् ॥८७॥
पुनरग्नौ विशत्येषा कर्तारमनुकाङ्क्षिणी। एवंविधानि कर्माणि यः कुर्यान्मन्त्रवित्तमः ॥८८॥
स जपेदात्मरक्षार्थं मन्त्रान् मृत्युञ्जयादिकान्।

ब्रह्मदण्डी, मर्कटिका, करक्रोशनिका—तीनों के पिष्ट से भौमवार को गोली बनाकर मन्त्र का जप करे। चतुर्दशी में उसे शत्रुगृह में गाड़ कर मन्त्र जप करे तो शत्रु का पुत्र-कलत्रसहित उच्चाटन हो जाता है या एक-एक के लिये अलग-अलग जप करे तो चालीस दिनों में उक्त फल प्राप्त होता है। षड्बिन्दु खण्ड पुत्तली को भात में रखकर गाड़ दे। उसे स्पर्श करते हुए अस्त्रमन्त्र का जप कृष्ण अष्टमी की आधी रात तक करे। शत्रु का नाम लिखकर उसे श्मशान में गाड़ दे। इससे शत्रु शीघ्र कुटुम्ब-बन्धुओं के साथ नष्ट हो जाता है। साधक मन्त्राक्षर के बराबर खोपड़ी का टुकड़ा करे, प्राण-प्रतिष्ठा करके उन्हें स्पर्श करते हुये मन्त्र-जप करे। कृष्ण पक्ष की भौमवारी चतुर्दशी में श्मशान विषवृक्ष की अग्नि में बकरे के खून से सिक्त करके हवन करे तो शत्रु कृत्यास्त्र ज्वाला से हत होकर महाज्वर से मोहित होकर मर जाता है। बकरे के खून से पूर्ण कलश में सर्प डाल दे, उसे कपाल से ढककर लाल वस्त्र से ढक दे। लाल फूलों से उसकी पूजा करे। उसे स्पर्श किए हुए दश हजार जप करे। मंगलवार को आधी रात में कारस्कर की लकड़ी को श्मशान की अग्नि से प्रज्वलित करके हवन करे तो शत्रु की मृत्यु

हो जाती है। साध्य नक्षत्रवृक्ष से कुम्भ बनाकर उसमें भैंस के पञ्चगव्य भरे। उसमें विड़ाल को डाल दे। पूर्ववत् जप-पूजादि करे। कारस्कर की लकड़ी को कृत्यास्त्र से जलाकर व्रणतैल से दश हजार हवन करे; तब घट को मस्तक तक ले जाकर एकाग्रता से मन्त्र-जप करे और विधिवत् हवन करे तो तीन दिनों में शत्रु मर जाता है। भैंस के सुन्दर बच्चे को एक रात निराहार रखकर एक प्रस्थ भैंस के दूध को मन्त्रित करके उसे उस दूध को पिला दे। उसका सर्वांग कुश से बाँध दे। कारस्कर की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में दश हजार हवन उस बच्चे से करे। इससे एक ही दिन में शत्रु मर जाता है। त्रिकोण कुण्ड में पहले की अग्नि को मन्त्र से प्रज्वलित करे। गन्ध-पुष्पादि से उसका अर्चन करे। दश हजार हवन क्रमशः राई, भल्लातक, तिलतैल से सात दिनों तक करे। गर्भवती भैंस को बच्चा देने के समय खड़ा करे। गन्ध, पुष्पादि से पूजा करे। कूर्च से उसे स्पर्श किए हुए माथा से योनि तक जप करे। बुद्धि से बच्चे का स्मरण करके योनि से बाहर होने पर हाथों पर रोक ले। प्रज्वलित अग्नि में उसका हवन करे। ऐसा करने से अग्नि से दीप्त कृत्या उत्पन्न होती है। वह तुरन्त शत्रु को ईश्वर से भी रक्षित होने पर खा जाती है और स्वयं फिर अग्नि में समा जाती है; तदनन्तर कर्ता के बुलाने पर ही आती है। जो मन्त्रज्ञ इस विधि से कर्म करता है, उसे अपनी रक्षा के लिये मृत्युञ्जय आदि मन्त्र का जप अवश्य करना चाहिये।

लवणदुर्गामन्त्राणां विनियोगादि

अथ लवणदुर्गामन्त्राः । एषां श्रीलवणदुर्गामन्त्राणां अङ्गिरसऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप् छन्दसे नमो मुखे। अग्निरात्रिदुर्गाभद्रकालीदेवताभ्यो नमो हृदये। ह्रींबीजाय नमो गुह्ये। क्रोंशक्तये नामे जान्वोः। आंकीलकाय नमः पादयोः। मम सकलजगद्वशार्थं जपे विनियोगः सर्वाङ्गेषु। ॐ चिटि चिटि हृदयाय नमः, चण्डालि शिरसे स्वाहा, महाचण्डालि शिखायै वषट्, अमुकं मे कवचाय हुं, वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। एवमङ्गुलीन्यासः।

अथाक्षरन्यासः—ॐ ॐ नमो मूर्ध्नि, ॐ चिं नमो भाले, ॐ टिं नमो दक्षनेत्रे, ॐ चिं नमो वामनेत्रे, ॐ टिं नमो दक्षकर्णे, ॐ चं नमो वामकर्णे, ॐ ण्डां नमो दक्षनासिकायां, ॐ लिं नमो वामनासिकायां, ॐ मं नमो मुखे, ॐ हां नमश्चिबुके, ॐ च नमः कण्ठे, ॐ ण्डां नमो हृदि, ॐ लिं नमो दक्षस्तने, ॐ अं नमो वामस्तने, ॐ मुं नमः कुक्षौ, ॐ कं नमो नाभौ, ॐ में नमो दक्षकट्यां, ॐ वं नमो वामकट्यां, ॐ शं नमो मेढ्रे, ॐ मां नमः पार्श्वयोः, ॐ नं नमः ऊरुद्वये, ॐ यं नमो जानुयुगे, ॐ स्वां नमो जङ्घायुगे, ॐ हां नमः पादद्वये, इत्यक्षरन्यासः। ध्यानम्—

नवकुङ्कुमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम्।
स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ॥१॥
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्।
कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि ॥२॥
नीलाञ्जनाभामरिशङ्खशूलखट्वाङ्गहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्।
भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गां भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम् ॥३॥
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिभ्रती चन्द्रकलावतंसा।
पिङ्गोर्ध्वकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ॥४॥

इति ध्यात्वा।

ऋक्पञ्चकं जपेत् सम्यगयुतं तद्दशांशतः। हविषा घृतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले ॥५॥
एवं कृतपुरश्चर्यः प्रयोगे कुशलो भवेत्। अग्निर्यामवती ध्येयौ वश्याकर्षणकर्मणोः ॥६॥
स्मरेद् दुर्गां भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्मणि। इति।

लवण दुर्गा मन्त्र—इन लवण मन्त्रों का विनियोग इस प्रकार किया जाता है—अस्य श्रीलवणदुर्गामन्त्रस्य अङ्गिरस ऋषये नमः, शिरसि अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, अग्निरात्रिदुर्गाभद्रकालीदेवताभ्यो नमः हृदये, ह्रीं बीजाय नमो गुह्ये, क्रों शक्तये

नमो जान्वो:, आं कीलकाय नम: पादयो:, मम सकलजगद्वशार्थं जपे विनियोग: सर्वांगेषु। इनका अंगन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ चिटि चिटि हृदयाय नम:, चण्डालि शिरसे स्वाहा, महाचण्डालि शिखायै वषट्, अमुकं मे कवचाय हुं, वश-मानय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। इसी प्रकार अंगुलिन्यास भी किया जाता है।

मन्त्रवर्ण न्यास—मन्त्रवर्णन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ ॐ नमो मूर्ध्नि, ॐ चिं नमो भाले, ॐ टिं नमो दक्षनेत्रे, ॐ चिं नमो वामनेत्रे, ॐ टिं नमो दक्षकर्णे, ॐ चं नमो वामकर्णे, ॐ ण्डां नमो दक्षनासिकायां, ॐ लिं नमो वामनासिकायां, ॐ मं नमो मुखे, ॐ हां नमश्चिबुके, ॐ च नम: कण्ठे, ॐ ण्डां नमो हृदि, ॐ लिं नमो दक्षस्तने, ॐ अं नमो वामस्तने, ॐ मुं नम: कुक्षौ, ॐ कं नमो नाभौ, ॐ में नमो दक्षकट्यां, ॐ वं नमो वामकट्यां, ॐ शं नमो मेढ्रे, ॐ मां नम: पार्श्वयो:, ॐ नं नम: ऊरुद्वये, ॐ यं नमो जानुयुगे, ॐ स्वां नमो जङ्घायुगे, ॐ हां नम:। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

नवकुङ्कुमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम्। स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम्।।
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्। कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि।।
नीलाञ्जनाभामरिशङ्खशूलखट्वाङ्गहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्। भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गां भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम्।।
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिभ्रती चन्द्रकलावतंसा। पिङ्गोर्ध्वकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली।।

इस प्रकार ध्यान करके ऋक्पंचक का जप दश हजार करे। उसका दशांश हवन घृतसिक्त हविष्य से अर्चित अग्नि में करे। इस प्रकार पुरश्चरण करने के बाद साधक प्रयोग का अधिकारी होता है। वश्य-आकर्षण कर्म में यामवती अग्नि का ध्यान करना चाहिये। मारण कर्म में दुर्गा भद्रकाली का स्मरण करना चाहिये।

अथ प्रयोग:—ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय गुरुनमस्कारस्नानसन्ध्यामातृकान्यासपात्रासादनान्तं कर्म समाप्य, पीठे मण्डूकादिकमलान्तं संपूज्य केसरेषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये च पीठशक्ति: पूजयेत्।

भीषणी बहुरूपा च तीक्ष्णदंष्ट्रा मदोत्कटा। स्मरणी मोहिनी कान्ता कमण्डलुधरा परा ।।७।।

इति क्रमेण भीं भीषण्यै नम: इत्यादि संपूज्य तत्कर्णिकायां 'ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम:' इति पीठमनुं विन्यस्य तदुपरि षट्कोणाष्टदलकमलभूगृहयन्त्रं विभाव्य मध्ये इष्टदेवतामावाह्य षोडशोपचारै: पूजां कृत्वा षट्कोणेषु पूर्वादि, ॐ चिटि चिटि हृदयाय नम:। इति रीत्या षडङ्गानि संपूज्य, अष्टदलेषु पूर्वादि—

शूलहस्ता विकेशी च दारुण लवणप्रिया। परा कराला अत्युग्रा तामसी चाष्ट सिद्धय: ।।८।।

ॐ शूं शूलहस्तायै नम:, इति रीत्या संपूज्य, केसरेषु पूर्वादि—

उत्कटो विकटाक्षश्च शूलहस्तो महाबल:। अग्निजिह्व: खड्गधर: कपाली तारणप्रिय: ।।९।।

ॐ उं उत्कटाय नम:, इति रीत्या संपूज्य, पत्राग्रेषु पूर्वादि ॐ अं आं असिताङ्गभैरवसहितब्राह्म्यै नम:, ॐ इं ईं रुरुभैरवसहितमाहेश्वर्यै नम:, ॐ उं ऊं चण्डभैरवसहितकौमार्यै नम:, ॐ ऋं ॠं क्रोधभैरवसहितवैष्णव्यै नम:, ॐ लृं लॄं उन्मत्तभैरवसहितवाराह्यै नम:, ॐ एं ऐं कपालिभैरवसहितेन्द्राण्यै नम:, ॐ ओं औं भीषणभैरवसहितचामुण्डायै नम:, ॐ अं अ: संहारभैरवसहितमहालक्ष्म्यै नम:, इति संपूज्य, भूगृहे लोकपालान् संपूज्य बहिर्वज्राद्यायुधानि संपूज्य, षडावरणसहितामिष्टदेवतां संपूज्याष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा 'गुह्यातिगुह्य' इति मन्त्रेण तेजोरूपं फलं देव्या हस्ते समर्पयेत्। दशसहस्रजप: पुरश्चरणम्। साज्येन हविषा दशांशहोम:।

ब्राह्म मुहूर्त में उठकर गुरु को नमस्कार करे। स्नान-सन्ध्या-मातृका न्यास-पात्रासादन करके पीठ में मण्डूक से कमला तक की पूजा करे। केसर में, पूर्वादि आठों दिशाओं और मध्य में पीठशक्तियों की पूजा करे। ये नव शक्तियाँ भीषणी, बहुरूपा, तीक्ष्णदंष्ट्रा, मदोत्कटा, स्मरणी, मोहिनी, कान्ता, कमण्डलुधरा एवं परा हैं। कमलकर्णिका में ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम:—इस पीठमन्त्र से पूजा करने के बाद उसके ऊपर षट्कोण, अष्टदल और भूपुर यन्त्र की भावना करके मध्य में इष्ट देवता

का आवाहन करके उसकी षोडशोपचार से पूजा करे। षट्कोणों में पूर्वादि क्रम से षडङ्ग पूजन ॐ चिटि चिटि हृदयाय नमः— इस रीति से षडङ्ग पूजा करे।

अष्टदल में इनकी पूजा करे—शूलहस्ता, विकेशी, दारुणा, लवणप्रिया, परा, कराला, अत्युग्रा और तामसी। इनका पूजा मन्त्र है—ॐ शूं शूलहस्तायै नमः इत्यादि। केसर में पूर्वादि क्रम से उत्कट, विकटाक्ष, शूलहस्त, महाबल, अग्निजिह्व, खड्गधर, कपाली, तारणप्रिय की पूजा करे। इनका पूजन मन्त्र होगा—ॐ उं उत्कटाय नमः इत्यादि। पत्रों के अग्रभागों में ॐ अं आं असिताङ्गभैरवसहितब्राह्म्यै नमः, ॐ इं ईं रुरुभैरवसहितमाहेश्वर्यै नमः, ॐ उं ऊं चण्डभैरवसहितकौमार्यै नमः, ॐ ॠं क्रोधभैरवसहितवैष्णव्यै नमः, ॐ लृं लॄं उन्मत्तभैरवसहितवाराह्यै नमः, ॐ एं ऐं कपालिभैरवसहितेन्द्राण्यै नमः, ॐ ओं औं भीषणभैरवसहितचामुण्डायै नमः, ॐ अं अः संहारभैरवसहित महालक्ष्म्यै नमः। इस प्रकार पूजा करके भूपुर में इन्द्रादि दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करे। छः आवरणों सहित इष्टदेवता की पूजा करके एक हजार आठ मन्त्र का जप करे और कृत मन्त्र-जप को समर्पित करे। दश हजार जप से पुरश्चरण पूर्ण होता है। जप का दशांश हवन करे।

लवणमन्त्रविधानम्

अथो लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते। ऋगाद्या कथिता पूर्वं लवणाम्भसि-पूर्विका ॥१॥
लवणादि द्वितीया स्याद् दहाद्या परिकीर्तिता। तं दग्ध्वाद्या चतुर्थी स्याद्या ते-पूर्वादि पञ्चमी ॥२॥
अङ्गिरा मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतः । अग्नी रात्रिः पुनर्दुर्गा भद्रकाली च देवताः ॥३॥
चिटिमन्त्राक्षरैः कुर्यात्षडङ्गानि समाहितः। पञ्चभिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ॥४॥
पञ्चवर्णैः शिखा प्रोक्ता कवचं करणाक्षरैः। पञ्चभिर्नेत्रमुदितं युगलेनास्त्रमीरितम् ॥५॥
तारश्चिटिद्वयं पश्चाच्चाण्डालि तदनन्तरम्। महत्पदाद्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम् ॥६॥
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः। चतुर्विंशत्यक्षरात्मा सर्वकामफलप्रदः ॥७॥

नवकुङ्कुमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम्।
स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ॥८॥
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्।
कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि ॥९॥
नीलाञ्जनाभामरिशंखशूलखट्वाङ्गहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्।
भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गां भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम् ॥१०॥
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिभ्रती चन्द्रकलावतंसा।
पिङ्गोर्ध्वकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ॥११॥

लवण मन्त्र का विधान—अब लवण मन्त्र का विधान कहता हूँ। ऋक्पंचक में प्रथम लवणाम्भसि पूर्वक, द्वितीय लवणादिपूर्वक, तृतीय दह आदि, तं दग्ध्वा आदि चतुर्थ और स्याद्या ते आदि पञ्चम लवण मन्त्र है। इसके ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप्, देवता अग्निरात्रि दुर्गा भद्रकाली है। चिटि मन्त्राक्षरों से षडङ्ग करे। जैसे—ॐ चिटि चिटि हृदयाय नमः, चण्डालि शिरसे स्वाहा, महाचण्डालि शिखायै वषट्, अमुकं मे कवचाय हुं, वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा अस्त्राय फट्। मन्त्र है— ॐ चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। यह चौबीस अक्षरों का मन्त्र सर्व काम-फलप्रदायक है। षडङ्ग आदि करने के पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—

नवकुङ्कुमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम्। स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम्।।
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्। कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि।।
नीलाञ्जनाभामरिशंखशूलखट्वाङ्गहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्। भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गां भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम्।।
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिभ्रती चन्द्रकलावतंसा। पिङ्गोर्ध्वकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली।।

ऋक्पञ्चकं जपेत् सम्यगयुतं तद्दशांशतः। हविषा घृतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले ॥१२॥
एवं कृतपुरश्चर्यः प्रयोगे कुशलो भवेत्। अग्निर्यामवती ध्येयौ वश्याकर्षणकर्मणोः ॥१३॥
स्मरेद् दुर्गां भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्मणि। जानुप्रमाणे सलिले स्थित्वा निशि जपेन्मनुम् ॥१४॥
अनेन वाञ्छितः साध्यः किङ्करो जायतेऽचिरात्। नाभिमात्रोदके स्थित्वा जपेन्मन्त्रमिमं सुधीः ॥१५॥
अष्टोत्तरसहस्रं यस्तस्य साध्यो वशे भवेत्। ऋक्पञ्चकं जपेन्मन्त्री कण्ठमात्रोदके स्थितः ॥१६॥
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनामुना। विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम् ॥१७॥
निःक्षिप्य क्षारसंमिश्रे जले तत्क्वथयेन्निशि। वश्यो भवति साध्योऽस्य नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥
तालपत्रे लिखित्वैनं भद्रकालीगृहे खनेत्। वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥१९॥
ताम्रपत्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम्। तापयेत् खादिरे वह्नौ मासाद्वश्यो भवेन्नरः ॥२०॥
त्रिकोणकुण्डमापाद्य सम्यक् शास्त्रोक्तलक्षणम्। तस्मिन् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने ॥२१॥
प्रक्षाल्य गव्यदुग्धेन संशोध्य लवणं सुधीः। सुचूर्णितं तज्जुहुयात्सप्ताहाद्वशयेज्जनान् ॥२२॥
दधिमध्वाज्यसंसिक्तैः सैन्धवैर्जुहुयात्तथा। वशयेत्सकलान् देशानचिरात्किमु पार्थिवान् ॥२३॥
विशुद्धलवणं प्रस्थं विभक्तं पञ्चधा पृथक्। एकैकया प्रजुहुयादृचा पञ्चाहमादरात् ॥२४॥
यस्य नाम्ना स वश्यः स्यादनेनैव न संशयः।

ऋक्पंचक का सम्यक् जप दश हज़ार करे। उसका दशांश हवन ज्वलित अग्नि में घृतसिक्त हविष्य से करे। इस प्रकार के पुरश्चरण करने पर प्रयोग का अधिकार मिलता है। वश्य-आकर्षण में यामवती अग्नि का ध्यान करे। मारण कर्म में दुर्गा भद्रकाली का स्मरण करे। रात में घुटने तक जल में खड़े होकर मन्त्र का जप करे। एक हजार आठ जप से साध्य वश में होता है। कण्ठ तक जल में खड़े होकर ऋक्पंचक का जप सात दिनों तक करे तो राजा वश में होते हैं। साध्य नाम विदर्भित मन्त्र को ताड़ पत्र पर लिखे। क्षारमिश्रित जल में उसे डालकर क्वाथ बनावे। इससे साध्य वश में होता है। इसे ताड़पत्र पर लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में गाड़ दे तो सभी जीवों को वश में करने का यह उत्तम प्रयोग है। ताम्र पत्र पर साध्य नाम विदर्भित मन्त्र को लिखकर खैर के लकड़ी की अग्नि पर तपावे तो एक माह में साध्य वश में होता है। सम्यक् शास्त्रोक्त लक्षण का त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें संस्कृत अग्नि में हवन करे। हवन के लिये नमक को गाय के दूध से धोकर सुखाकर महीन चूर्ण करे। इस नमक से हवन करने पर एक सप्ताह में लोग वश में होते हैं। दही, मधु, आज्यसिक्त सेन्धा नमक से हवन करने पर सभी देश के मनुष्य अल्प काल में वश में हो जाते हैं। एक प्रस्थ = ३२ तोला बराबर ३२० ग्राम को पाँच भाग करे। एक भाग से पाँच दिनों तक हवन करे। जिसके नाम से हवन किया जाता है, वह निस्सन्देह रूप से वश में हो जाता है।

शुद्धं लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम् ॥२५॥
ऊनपञ्चाशदाहुत्या वशं नयति वाञ्छितम्। नित्यं शुद्धेन लोणेन हुत्वा शत्रून् वशं नयेत् ॥२६॥
मधुरत्रयसंयुक्तैर्लवणैः साधुचूर्णितैः। जुहुयाद् वशयेन्नारीर्नरान् नरपतीनपि ॥२७॥
मन्त्रं कृष्णतृतीयादि प्रजपेद्यावदष्टमी। पुत्तलीः पञ्च कुर्वीत साङ्गोपाङ्गाः समाः शुभाः ॥२८॥
एका साध्यद्रुमेण स्यादन्या पिष्टमयी मता। चक्रिहस्तमृदान्या स्यादन्या सिक्थमयी स्मृता ॥२९॥
लवणं पोतसंभूतं चूर्णितं परिशोधितम्। कुडवं प्रोक्षयेत्क्षीरदध्याज्यमधुभिः क्रमात् ॥३०॥
गुडाज्यमधुभिः सम्यङ्मिश्रितेनामुना ततः। कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम् ॥३१॥
प्राणमन्त्रकृतं यन्त्रमासां हृदि विनिःक्षिपेत्। आसु प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् कुसुमादिभिः ॥३२॥
पश्चात् कृष्णाष्टमीरात्रौ याममात्रे गते सति। विधाय मातृकान्यासं मन्त्रन्यासमनन्तरम् ॥३३॥
चिटिमन्त्रसमुद्भूतान् चतुर्विंशतिसंख्यकान्। ताराद्यान् विन्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः ॥३४॥
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्नासास्यचिबुकेष्वथ। कण्ठहृत्स्तनयुग्मेषु कुक्षौ नाभौ कटिद्वये ॥३५॥

मेढ्रे पायौ प्रविन्यस्य शिष्टवर्णचतुष्टयम्। ऊरुद्वये जानुयुगे जङ्घायुग्मे पदद्वये ॥३६॥
एवं विन्यस्तसर्वाङ्गो रक्तमाल्यानुलेपनः। रक्तवस्त्रधरः शुद्धः पुत्तलीं दारुणा कृताम् ॥३७॥
अधोमुखीं खनेत्कुण्डे पिष्टजामासनादधः। मृन्मयीं प्रतिमां पाददेशे न्यस्येत्तथात्मनः ॥३८॥
मधूच्छिष्टमयीं व्याम्नि कुण्डस्योर्ध्वं प्रलम्बयेत्। लवणेन कृतां पश्चात्पुत्तलीं संस्पृशञ्जपेत् ॥३९॥
ऋक्पञ्चकं यथान्यायमष्टोत्तरसहस्रकम्। संहृत्या चिटिमन्त्रार्णान् पुनस्तस्यास्तनौ न्यसेत् ॥४०॥
अङ्गुष्ठसन्धिप्रपदजङ्घाजानूरुपायुषु। लिङ्गदेशे पुनर्नाभौ जठरे हृदयाम्बुजे ॥४१॥
स्तनद्वये कन्धरायां चिबुके वदने पुनः। घ्राणयोः कर्णयोरक्ष्णोर्ललाटे मूर्धनि न्यसेत् ॥४२॥

मधुरान्वित शुद्ध नमक से हवन उनचास आहुतियों से करे तो वांछित व्यक्ति वश में हो जाता है। शुद्ध नमक के नित्य हवन से शत्रु वश में होते हैं। मधुरत्रय से युक्त नमक के महीन चूर्ण से हवन करने पर नारी-नर-नृपति वश में होते हैं। कृष्ण पक्ष की तृतीया से अष्टमी तक मन्त्र का जप करे। तदनन्तर साध्य वृक्ष की लकड़ी से या लकड़ी के पिष्ट से सांगोपांग सुन्दर पाँच पुत्तली बनावे। दूसरे मत से एक साध्य वृक्ष से, दूसरी पिष्ट से, तीसरी कुम्हार के हाथ की मिट्टी से, चौथी सिक्थ से एवं पाँचवीं पुत्तली नमक से बनावे। एक कुडव = ३२० ग्राम नमक-चूर्ण लेकर दही-दूध-गोघृत से प्रोक्षण करे। उसमें गुड़ आज्य मधु मिलाकर मिश्रित करे। उससे सर्वावयव शोभित पुत्तली बनावे। प्राण-प्रतिष्ठित यन्त्र को इसके हृदय में घुसेड़ दे। इसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके पुष्पादि से पूजा करे। तब कृष्णाष्टमी की एक प्रहर रात बीतने पर मातृका न्यास के बाद मन्त्रन्यास करे। चिटि मन्त्र के चौबीस अक्षरों से अंगों में न्यास करे। न्यास मूर्धा, ललाट, नेत्र, कान, नाक, चिबुक, कण्ठ, हृदय, दोनों स्तन, कुक्षि, नाभि, कटिद्वय, लिङ्ग, पायु में करे। शेष चारो वर्णों का न्यास दोनों उरु, दोनों घुटनों, दोनों जांघों एवं दोनों पैरों में करे। इस प्रकार न्यास करके लाल माला, अनुलेप, लाल वस्त्र पहनाकर पुत्तली को शुद्ध दारुण आकृति का बनाकर अधोमुख स्थापित करे। कुण्ड बनाकर नीचे पिष्ट का आसन दे। मिट्टी की प्रतिमा अपने पैरों के नीचे रखे। मोम की पुत्तली कुण्ड के ऊपर लटकावे। तब नमक की मूर्ति को स्पर्श करके ऋक्पंचक का एक हजार आठ जप करे। चिटि मन्त्र के अक्षरों को पुत्तली के स्तनों में न्यस्त करे। फिर मन्त्राक्षरों का न्यास पैर, अंगुष्ठमूल, जंघा, घुटना, गुदा, लिङ्ग, नाभि, पेट, हृदय, दोनों स्तन, दोनों कन्धा, चिबुक, मुख, नाक, कान, नेत्र, ललाट, मूर्धा में करे।

प्रतिमाप्रमाणम्

तत्प्रतिमाप्रमाणं तु—
आयामः पादयोस्तस्या आकट्याच्चतुरङ्गलम्। पादोनद्व्यङ्गुलात् कुक्षिस्तावदेवाङ्गुलोदरम् ॥१॥
अङ्गुलद्वयमावक्त्रात्कण्ठदेशस्य मानकम्। शिरसो वक्ष्यमाणं स्यात्सार्धद्वयमिहाङ्गुलम् ॥२॥
इति द्वादशाङ्गुलप्रमाणप्रतिमेत्यर्थः।

अग्निमादाय संदीप्य साध्यनक्षत्रदारुभिः। तस्मिन्नभ्यर्च्य मन्त्रोक्तां देवतां रूप्यपात्रके ॥४३॥
कुशीतराजिपुष्पाद्भिर्दत्त्वार्घ्यं प्रणमेत्सुधीः। मन्त्रैरेतैः प्रयोगादावन्ते संयतमानसः ॥४४॥
ॐ त्वमनेनाप्यमित्रघ्न निशायां हव्यवाहन। हविषा मन्त्रजप्तेन तृप्तो भव तया सह ॥४५॥
जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ। स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रहन् ॥४६॥
ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्। महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे कामदा भव ॥४७॥
तमोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते। त्रियामे पुरुषं हत्त्वा वशमानय देवि मे ॥४८॥
दुर्गे दुर्गादिरहिते दुर्गसंरोधनाकुले। चक्रशंखधरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्करि ॥४९॥
नमस्ते दह शत्रुं मे वशमानय चण्डिके। शाकंभरि महादेवि शरणं मे भवानघे ॥५०॥
भद्रकालि भवाभीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनि। सपत्नान् मे हन हन दह शोषय तापय ॥५१॥
शूलासिशक्तिवज्राद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय। महादेवि महाकालि रक्षास्मानक्षरात्मिके ॥५२॥

प्रतिमा का प्रमाण—पैर से लेकर कमर तक चार अंगुल लम्बी, पौने दो अंगुल की कुक्षि, उतनी ही लम्बाई का उदर, मुख से कण्ठ तक दो अंगुल एवं शिर से मुख तक ढाई अंगुल की लम्बाई मूर्ति की होनी चाहिये। इसका अर्थ यह है कि प्रतिमा की लम्बाई बारह अंगुल होती है। अग्नि लाकर साध्य नक्षत्र की लकड़ी से प्रज्वलित करे। उसमें मन्त्रोक्त देवता रूप का अर्चन करे। कुश, राजिपुष्प से अर्घ्य देकर प्रणाम करे। इस मन्त्र से आद्यन्त प्रयोग संयत मन से करे। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—

जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ। स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रहन्।।
ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्। महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे कामदा भव।।
तमोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते। त्रियामे पुरुषं हत्त्वा वशमानय देवि मे।।
दुर्गे दुर्गादिरहिते दुर्गसंरोधनाकुले। चक्रशंखधरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्करि।।
नमस्ते दह शत्रुं मे वशमानय चण्डिके। शाकंभरि महादेवि शरणं मे भवानघे।।
भद्रकालि भवाभीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनि। सपत्नान् मे हन हन दह शोषय तापय।।
शूलासिशक्तिवज्राद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय। महादेवि महाकालि रक्षास्मानक्षरात्मिके।।

साध्यं संस्मृत्य निर्भिद्य पुत्तलीं सप्तधा ततः। ऋक्पञ्चकं समुच्चार्य जुहुयादेधितेऽनले ।।५३।।
प्रथमो दक्षिणः पादस्तत्करस्तदनन्तरम्। शिरस्तृतीयमाख्यातं वामहस्तस्ततः परम् ।।५४।।
मध्यादूर्ध्वं पञ्चमः स्यादधोऽङ्गः षष्ठ ईरितः। सप्तमो वामपादः स्यादेवं भागक्रमः स्मृतः ।।५५।।
सप्तसप्तविभागो वा प्रोक्तेष्वेषु यथाविधि। हुत्वैवमर्चयित्वाग्निं प्रणमेद् दण्डवत्ततः ।।५६।।
यजमानो धनैर्धान्यैः प्रीणयेद्गुरुमात्मनः। अनेन विधिना मन्त्री वशयेत्ससुरासुरान् ।।५७।।
किं पुनर्मनुजान् भूपानमात्यान् वारयोषितः। मारणे पूर्वसंप्रोक्तं पुत्तलीनां चतुष्टयम् ।।५८।।
निवेशयेद्यथापूर्वं साधकेन्द्रो विधानवित्। अपरां वक्ष्यमाणेन विधानेन प्रकल्पयेत् ।।५९।।
वराहपारावतविट्तिलत्र्यूषणरामठैः। व्रणकृन्निम्बसिद्धार्थसाध्यवामांघ्रिरेणुभिः ।।६०।।
माहिषीमूत्रसंपिष्टैः पूर्वोक्तलवणान्वितैः। विधाय पुत्तलीं सम्यक् प्राणस्थापनमाचरेत् ।।६१।।
जपपूजादिकं सर्वं कुर्यात् प्रागुक्तवर्त्मना। ततः पूर्वोदिते कुण्डे रात्रौ प्रज्वलितेऽनले ।।६२।।
दुर्गां वा भद्रकालीं वा समाराध्य यथाविधि। धारयेन्निशितं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधकः ।।६३।।
वामपादं समारभ्य दक्षिणाङ्घ्र्यवसानकम्। छित्वा छित्वा प्रजुहुयान्निराहारो जितेन्द्रियः ।।६४।।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशीम्। अनेनैव विधानेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ।।६५।।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण मारयेद्रिपुमात्मनः।

साध्य का स्मरण करके पुत्तली का सात टुकड़ा करे। ऋक्पंचक का उच्चारण करके प्रज्वलित अग्नि में हवन करे। पहले दाँयाँ पैर, तब हाथ, तब शिर, तब बाँयाँ हाथ-तल, मध्य भाग, छठे में अधो अंग, सप्तम में बाँयाँ पैर—इसी क्रम से हवन करे। पुत्तली के सात भागों से यथाविधि हवन करे, अग्नि का अर्चन करे, प्रणाम करे। यजमान अपने गुरु को धन-धान्य से प्रसन्न करे। इस विधि से प्रयोग करने पर साधक सुर-असुरों को भी वश में कर सकता है; तब मनुष्यों, नृपों, अमात्यों, वेश्याओं को वश में करना कौन-सा कठिन कार्य है।

मारण के लिये पूर्वोक्त प्रथम चार पुत्तलियों को रखे। इन्हें साधक यथापूर्व निवेशित करे। पाँचवीं पुत्तली विहित विधान से बनावे। सूअर-कबूतर का विट, तिल, त्र्यूषण, रामठ, छिद्रित निम्ब, सरसों, साध्य के बाँयें पैर के नीचे की धूलि को भैंस के मूत्र में पीसकर उसमें पूर्वोक्त लवण मिलावे। उससे पुत्तली बनावे। सम्यक् प्राण-प्रतिष्ठा करे। पूर्वोक्त मार्ग से जप-पूजादि सब कुछ करे। तब पूर्वोदित कुण्ड में रात में प्रज्वलित अग्नि में दुर्गा भद्रकाली की पूजा यथाविधि करे। बाँयें हाथ में तेज हथियार ग्रहण करे। वाम पाद से आरम्भ कर दक्षिण पाद तक मूर्ति का टुकड़ा करे। निराहार जितेन्द्रिय रहकर हवन करे। कृष्णाष्टमी से चतुर्दशी तक इस विधान से हवन करे। तीन सप्ताह तक इस प्रयोग से साधक अपने शत्रु को मार डालता है।

लवणमन्त्रास्तेषां मन्त्रदेवताध्यानानि च

अथ लवणमन्त्राः—

लवणम्भसि तीक्ष्णोऽस्युग्रोऽसि हृदयं तव। लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता ॥१॥
लवणे हूयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः। लवणं पचति पाच लवणं छिन्दति भिन्दति ॥२॥
अमुष्य दह गात्राणि दह मांसं दह त्वचम्। दह त्वगस्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मज्जिकां दह ॥३॥
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे। नगरे लोहप्राकारे कृष्णसर्पशतार्गले ॥४॥
तं दग्ध्वानय मे शीघ्रमग्रे लोणस्य तेजसा। वशमायातु लवणमन्त्रशक्तिपुरस्कृतः ॥५॥
या ते रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च। या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा ॥५॥

एतेषु ऋगादिषु प्रणवान् सयोज्य प्रणवपाशादि त्र्यक्षरादि चिटिमन्त्रसमेतं ऋक्पञ्चकं जपेत्। अथवा सर्वेषु ऋगादिषु चिटिमन्त्रादौ च आवरणदेवतादिषु च प्रणवपाशादित्र्यक्षरं योजयेत्।

पिप्पलादमते अथ लवणमन्त्राः—

लवणाम्भसि तिक्तोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव। लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य जलं पिता ॥१॥
लवणं दहति पचति लवणं छिन्धि भिन्दति। लवणे हूयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः ॥२॥
अमुकस्य दह गात्राणि दह मांसं दह्यनलम्। दह त्वगस्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मज्जिकां दह ॥३॥
यदि वसति योजनशते नदीनां च शतान्तरे। स दग्ध्वा च स मे शीघ्रमग्नेर्लवणतेजसा ॥४॥
या ते रात्रिर्महारात्रिर्यातिरात्रिर्महानिशा। या रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च ॥५॥

ह्रीं चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा, इति लवणमन्त्राः। अस्याङ्गिरा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, अग्निरात्रिदुर्गाभद्रकाल्यो देवताः, मन्त्रस्य हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः लवणाम्भसि—लवणे हूयमाने—दह त्वगस्थिं—संदग्ध्वा—या ते रात्रिरित्येतैः पञ्चमन्त्रैः पञ्चाङ्गानि। अथवा चिटिमन्त्राक्षरैः पञ्चत्रिपञ्च-चतुष्पञ्चद्विसंख्याकैः क्रमात् षडङ्गानि। ध्यानम्—

अरुणोऽरुणपङ्कजसंनिषण्णः स्रुवशक्तिवराभययुक्तकरः।
अमितार्चिरजातगतिर्विलसन्नयनत्रितयोऽवतु वो दहनः ॥१॥
नीलतरांशुककेशकलापा नीलतनुर्निबिडस्तनभारा।
साङ्कुशपाशसशूलकपाला यामवती भवतोऽवतु नित्यम् ॥२॥
करकमलविराजच्चक्रशंखासिशूला परिलसितकिरीटा पातितानेकदैत्या।
त्रिनयनलसिताङ्गी तिग्मरश्मिप्रकाशा पवनसखनिभाङ्गी पातु कात्यायनी वः ॥३॥
सुरौद्रसितदंष्ट्रिका त्रिनयनोर्ध्वकेशोल्वणा कपालपरशूल्लसड्डमरुका त्रिशूलोज्ज्वला।
घनाघननिभा रणद्रुचिरकिङ्किणीमालिका भवद्विभवसिद्धये भवतु भद्रकाली चिरम् ॥४॥

इति ध्यानम्। अयुतजपः पुरश्चरणम्। अत्यन्तानियतस्य त्रिसहस्रजपः पुरश्चरणम्। आज्यचरुणा दशांशहोमः। अष्टमीमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं रात्रिषु प्रतिदिनं कुडवपरिमितलवणचूर्णैर्मधुरत्रयोपेतैरष्टोत्तरं द्विशतं जुहुयात्। एवं सप्तरात्रहोमेन साध्यो दासवद्वश्यो भवति। प्रयोगकाले मन्त्रस्यामुकपदस्थाने साध्यनाम निक्षिप्य जुहुयात् प्रजपेच्च।

लवण मन्त्र—मूलोक्त श्लोक १-६ लवण मन्त्र के ऋक्पंचक हैं। इन ऋचाओं के पहले ॐ प्रणवपाश त्र्यक्षरादि चिटि मन्त्र के साथ जोड़कर ऋक्पंचक का जप करे या सभी ऋचाओं के पहले चिटि मन्त्र जोड़कर जप करे। आवरण देवताओं के पूजन में पहले प्रणव पाशादि त्र्यक्षर जोड़ना चाहिये।

पिप्पलाद के मत से ऋक्पंचक में श्लोक १-५ हैं। चिटि मन्त्र है—ह्रीं चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। इसमें २४ अक्षर हैं। इस चिटि मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप्, देवता अग्नि रात्रि दुर्गाभद्रकाली, हलो बीज एवं स्वर शक्तियाँ हैं। लवणाम्भसि, लवणे हूयमाने, दह त्वगस्थि, संदग्ध्वा, या ते रात्रि—इन पाँच मन्त्रों से पञ्चाङ्ग न्यास करे। अथवा चिटि मन्त्र के ५, ३, ५, ४, ५, २ अक्षरों से षडङ्ग न्यास करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

अरुणोऽरुणपङ्कजसंनिषण्णः स्रुवशक्तिवराभययुक्तकरः। अमितार्चिरजातगतिर्विलसन्नयनत्रितयोऽवतु वो दहनः।।
नीलतरांशुककेशकलापा नीलतनुर्निबिडस्तनभारा। साङ्कुशपाशसशूलकपाला यामवती भवतोऽवतु नित्यम्।।
करकमलविराजच्चक्रशंखासिशूला परिलसितकिरीटा पातितानेकदैत्या।
त्रिनयनलसिताङ्गी तिग्मरश्मिप्रकाशा पवनसखनिभाङ्गी पातु कात्यायनी वः।।
सुरौद्रसितदंष्ट्रिका त्रिनयनोर्ध्वकेशोल्वणा कपालपरशूल्लसड्डमरुका त्रिशूलोज्ज्वला।
घनाघननिभा रणद्रुचिरकिङ्किणीमालिका भवद्विभवसिद्धये भवतु भद्रकाली चिरम्।।

इसके दश हजार जप से इसका पुरश्चरण होता है। अत्यन्त अनियत का पुरश्चरण तीन हजार जप से होता है। आज्य खीर से दशांश हवन होता है। अष्टमी से आरम्भ करके चतुर्दशी तक रात में प्रतिदिन ३२० ग्राम नमक चूर्ण मधुरत्रय मिलाकर दो सौ आठ हवन करे। इस प्रकार सात रातों तक हवन करने से साध्य दासवत् होता है। प्रयोग के समय अमुक के स्थान में साध्य नाम जोड़कर जप करे और हवन करे।

साध्यनक्षत्रवृक्षाः

साध्यनक्षत्रवृक्षास्तु—

कारस्कारोऽथ धात्री स्यादुडुम्बरतरुः पुनः। जम्बूः खदिरकृष्णाख्यौ वंशपिप्पलसंज्ञकौ ।।१।।
नागरोहिणनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ। अम्बष्टबिल्वार्जुनाख्यविशङ्कतमहीरुहाः ।।२।।
वकुलः शम्बरः सर्जो वञ्जुलः पानसार्ककौ। शमीकदम्बाम्रनिम्बमधूका ऋक्षशाखिनः ।।३।। इति।

साध्य नक्षत्र वृक्ष—कारस्कर, आमला, गूलर, जामुन, कृष्ण खैर, बाँस पिप्पल, नाग, रोहिण, पलाश, पाँकड़, अम्बष्ठ, बेल, अर्जुन, विशंकत, वकुल, शम्बर, सर्ज, वंजुल, कटहल, अकवन, शमी, कदम्ब, आम, नीम, महुआ—ये २७ वृक्ष सत्ताईस नक्षत्रों के कहे गये हैं।

अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रविधानम्

अथान्नपूर्णेश्वरीमन्त्राः ज्ञानार्णवे (९ पं० १५ श्लो०)—

तारं च भुवनेशानी श्रीबीजं कामराजकम्। हृदन्ते भगवत्यर्णान् माहेश्वरिपदं वदेत्।।
अन्नपूर्णेऽग्निजाया च विद्येयं विंशदक्षरी।

तारं प्रणवः, भुवनेशानी मायाबीजं, श्रीबीजं श्रीमिति, कामराजकं क्लीं, हृन्नमः, भगवति स्वरूपं, माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वरूपं, अग्निजाया स्वाहाकारः। अत्र माहेश्वर्यन्नपूर्णे इति पदयोर्न संधिर्विंशदक्षरीत्युक्तेः। तथा (१-१९)—

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्यानुष्टुप् छन्दोऽभिधीयते। अन्नपूर्णेश्वरी देवी देवता परिकीर्तिता ।।१।।
बीजं तु भुवनेशानी श्रीबीजं शक्तिरुच्यते। कीलकं कामराजं स्यात्षडङ्गानि ततः परम् ।।२।। इति।

दक्षिणामूर्तिः (१६ पं० ७ श्लो०)—

षड्दीर्घस्वरसंभिन्नां हृल्लेखां कुरु पार्वति। एभिरङ्गानि विन्यस्य वर्णन्यासमथाचरेत् ।।१।।
ब्रह्मरन्ध्रे च सीमन्ते भालभ्रूमध्ययोर्नसि। वक्त्रे कण्ठे च हृदये कुक्षिनाभिषु लिङ्गके ।।२।।
आधारे स्फिग्द्वये चोरुद्वये जानुद्वये तथा। पादयोर्देवदेवेशि (पदन्यासं ततश्चरेत् ।।३।।
नवद्वारेषु देवेशि पदन्यासः उदाहृतः।

ज्ञानार्णवे तु (९-२३)—

पदानि नव देवेशि) नवद्वारेषु विन्यसेत्। मूर्धादिगुदपर्यन्तं पुनस्तेषु वरानने ॥४॥
गुदादिब्रह्मरन्ध्रान्तं पदानां नवकं न्यसेत्।

गुदः पर्यन्तो दशमो येषां ब्रह्मरन्ध्रादीनामित्यर्थः। तेन ब्रह्मरन्ध्रादिलिङ्गपर्यन्तं नव पदानि विन्यस्य पुनर्गुदादिदक्षनेत्रान्तानि तान्येव पदानि न्यसनीयानीति।

ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयमूलाधारेष्वनुक्रमात् । चतुर्बीजानि विन्यस्य स्वरेष्वन्यान् प्रविन्यसेत् ॥
गोलकं च ततो देवि विन्यसेद्विधिवत् प्रिये।

गोलकं व्यापकम्। 'मूलेन व्यापकं न्यासं कुर्याद् देहस्य सिद्धये' इति दक्षिणामूर्त्येकवाक्यात्। स्वरेषु स्वरन्यासस्थानेषु। ध्यानम्—

तप्तकाञ्चनसंकाशां बालेन्दुकृतशेखराम्। नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥१॥
चित्रवस्त्रपरीधानां शफराक्षीं त्रिलोचनाम्। सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतघटस्तनीम् ॥२॥
नृत्यन्तमीशमनिशं दृष्ट्वानन्दमयीं पराम्। सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यां नितम्बिनीम् ॥३॥
अन्नदानरतां नित्यं भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम्।

अन्नदानरतामित्यनेन वामहस्तेऽन्नपात्रं दक्षिणहस्ते दर्वीं धृतवतीति ज्ञेयम्।

अथवा दक्षिणे हस्ते दर्वीं ध्यायेत्सुवर्णजाम्। दुग्धान्नभरितं पात्रं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥
वामहस्ते महेशानि.....................।

इति संहितोक्तेः।

ज्ञानार्णवे (९-२५)—

त्रिकोणं च चतुष्पत्रं वसुपत्रं ततः परम्। कलापत्रं च भूबिम्बं सचतुर्द्वारमालिखेत् ॥१॥

भूबिम्बं चतुरस्रत्रयात्मकं, चतुरस्रत्रयं च कुर्यात्। चतुर्द्वारोपशोभितमिति संमोहनपञ्चरात्रात्। एतत्सर्वदैवतपरं ज्ञेयम्। 'सर्वेष्वेव विधातव्यं पूजाचक्रेषु भूगृह'मिति स्वयमभिधानात्।

सिंहासनस्य परितः पीठदेवीः समर्चयेत्। सिंहासने दक्षिणे तु कथिताः पीठनायिकाः ॥२॥
ता एव पूजिताः पीठे वामाद्याः परमेश्वरि।

वामाद्याः शैवपीठशक्तयः। अथवा—

समभ्यर्च्य जयाद्यास्तु पीठशक्तीर्नव क्रमात्। पीठं च पीठमन्त्रेण हृल्लेखाद्याः प्रपूजयेत् ॥१॥

इति संमोहनतन्त्रवचनात्। 'जयादिनवशक्तीश्च पूजयेत्तदनन्तरम्' इति सारसंग्रहवचनात्। पूर्वोक्त-भुवनेश्वरीपीठस्य जयादिनवशक्तयः, तत्पीठमन्त्रश्च वा ग्राह्यः।

अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्र—ज्ञानार्णव में पठित मूलोक्त श्लोक के उद्धार करने पर बीस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र इस प्रकार होता है—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप्, देवता अन्नपूर्णेश्वरी देवी, बीज ह्रीं, शक्ति श्रीं एवं कीलक क्लीं कहे गये हैं। इसका षडङ्ग न्यास ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—दक्षिणामूर्ति में कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्र, सीमन्त, भाल, भ्रूमध्य, नासा, मुख, कण्ठ, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, आधार, स्फिक् द्वय, जानुद्वय और पैरों में मन्त्रवर्ण न्यास करना चाहिये। नव द्वारों में पदन्यास करे।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि मन्त्र के नव पदों का नव द्वारों में न्यास करे। मूर्धा से गुदा तक और गुदा से मूर्धा तक विधिवत् न्यास करे अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से लिङ्ग तक नव पदों का न्यास करे। पुनः गुदा से दक्ष नेत्र तक उन्हीं पदों का न्यास

करे। ब्रह्मरन्ध्र मुख हृदय मूलाधार में चार पदों का न्यास करे। अन्य का न्यास मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक गोलक न्यास करे। गोलक न्यास अर्थात् व्यापक न्यास करे। इस प्रकार न्यास सम्पन्न करने के बाद ध्यान करे—

तप्तकाञ्चनसंकाशां बालेन्दुकृतशेखराम्। नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम्।।
चित्रवस्त्रपरीधानां शफराक्षीं त्रिलोचनाम्। सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतघटस्तनीम्।।
नृत्यन्तमीशमनिशं दृष्ट्वानन्दमयीं पराम्। सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यां नितम्बिनीम्।।
अन्नदानरतां नित्यं भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम्।

अथवा इस प्रकार ध्यान करे कि देवी के दाहिने हाथ में दर्वी अर्थात् सुवर्ण की कलछी और बाँयें दूध-अन्न से परिपूर्ण दिव्य रत्ननिर्मित पात्र है। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि त्रिकोण के बाहर चतुर्दल पद्म, उसके बाहर अष्टदल कमल, तब षोडशदल कमल, तब चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर से यन्त्र बनाये। सिंहासन के चारो तरफ पीठशक्तियों की पूजा करे। सिंहासन के दाँयें भाग में पीठनायिका की पूजा करे। पीठ में वामादि की पूजा करे। सम्मोहन तन्त्र में कहा गया है कि जया आदि नव पीठशक्तियों की पूजा पीठमन्त्र हल्लेखा से करे।

तथा (९-३४)—

एवं ध्यात्वा यजेद् देवीं षडङ्गावरणं यजेत्। तारं प्रासादबीजं च हृच्छिवाय ततः परम्।।१।।
सप्ताक्षरी महाविद्या अनया देवि पूजयेत्। गोक्षीरधामधवलं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।।२।।
प्रसन्नवदनं शान्तं नीलकण्ठविराजितम्। कपर्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कम्बुसन्निभम्।।३।।
नृत्यन्तमीश्वरं देवं त्रिकोणाग्रे सुरेश्वरि। ॐ नमः पदमाभाष्य ततो भगवतेपदम्।।४।।
ततो वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतिस्तथा। ङेन्तं भूमिपतित्वं च मे देहि च ददापय।।५।।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वराहस्य वरानने। अनया विद्यया देवि वामकोणे प्रपूजयेत्।।६।।
ॐ नमः पदमाभाष्य ङेन्तं नारायणं लिखेत्। नारायणं दक्षकोणे क्रमेण परिपूजयेत्।।७।।
वामदक्षिणयोः पूज्ये भूश्रियौ परमेश्वरि। एकेन मनुना देवि कथयामि तवानघे।।८।।
अन्नमहि पदं चान्नं मे देह्यन्नाधिपान्तिके। तये ममान्नमाभाष्य प्रदापय ततः परम्।।९।।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः संपुटीकृत्य पूजयेत्। ग्लौमात्मकेन रमया वामदक्षिणयोः क्रमात्।।१०।।
ततश्चतुर्दले पूज्याः पश्चिमादिक्रमेण तु। तारेण परविद्यां च भुवनेशीं तदात्मना।।११।।
कमलां रमया भद्रे कामेन सुभगां यजेत्। वसुपत्रे महेशानि ब्राह्म्याद्याः पश्चिमादितः।।१२।।
षोडशारे महेशानि चन्द्रमण्डलरूपिणीः। कलाः षोडश संपूज्याः पश्चिादिक्रमेण हि।।१३।।
अमृता मानदा पुष्टिस्तुष्टिः प्रीती रतिस्तथा। ह्रीश्च श्रीश्च सुधा रात्रिर्ज्योत्स्ना हैमवती तथा।।१४।।
छाया च पूर्णिमा नित्या अमावास्या तु षोडशी। शेषैर्वर्णैः प्रपूज्याश्च अन्नपूर्णान्तिशब्दकाः।।१५।।
चतुरस्रे लोकपालान् क्रमेण परिपूजयेत्। इति।

इस प्रकार ध्यान करके देवी का पूजन करे। तब षडङ्ग आवरण की पूजा करे। 'ॐ हौं नमः शिवाय' इस सप्ताक्षर मन्त्र से देवी की पूजा करे। गोदुग्ध-सदृश धवल वर्ण, पञ्चमुख, त्रिलोचन, प्रसन्नमुख, शान्त, नीलकण्ठ से सुशोभित देव का कोणाग्र में पूजन करे। वाम कोण में 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वर्पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नमः' से वराह की पूजा करे। दक्ष कोण में 'ॐ नमो नारायणाय नारायणाय नमः' से नारायण की पूजा करे। त्रिकोण में देवी के वाम भाग में 'ग्लौं अन्नमह्यन्नं मे देहि अन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय ग्लौं भूम्यै नमः' से भूदेवी की पूजा करे। देवी के दक्षिण भाग में 'श्रीं अन्नमह्यन्नं मे देहि अन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रियै नमः' से पूजा करे। चतुर्दल में देवी के आगे से ॐ परविद्यायै नमः, ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः, श्रीं कमलायै नमः, क्लीं सुभगायै नमः से चार देवियों को पूजा करे।

अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। षोडश दल कमल में चन्द्रमण्डलरूपिणी सोलह कलाओं की

पूजा पश्चिमादि के क्रम से करे। इन सोलह कलाओं के नाम इस प्रकार हैं—अमृता, मानदा, पुष्टि, तुष्टि, प्रीती, रति, ह्रीं, श्रीं, सुधा, रात्रि ज्योत्स्ना, हैमवती, छाया, पूर्णिमा, नित्या, आमावस्या। शेष वर्णों से अन्नपूर्णा की पूजा करे। चतुरस्र में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करे।

अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रप्रयोगः

अथ प्रथमप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ क्लीं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य ममान्नसमृद्धये जपे विनियोगः। इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हुं। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यस्य, शिरसि ॐ नमः। सीमन्ते ह्रीं उदरे वं नमः। नाभौ तिं नमः। लिङ्गे मां नमः। आधारे हें नमः। दक्षस्फिजि श्वं नमः। वामे रिं नमः। दक्षोरौ अं नमः। वामोरौ त्रं नमः। दक्षजानुनि पूं नमः। वामे र्णैं नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामे हां नमः। इति वर्णन्यासः।

ततो ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः। दक्षनेत्रे ह्रीं०। वामे श्रीं०। दक्षश्रोत्रे क्लीं०। वामे नमो०। दक्षनासारन्ध्रे भगवति०। वामे माहेश्वरि०। मुखे अन्नपूर्णे०। लिङ्गे स्वाहा०। इति विन्यस्यैतान्येव पदानि गुदलिङ्गमुखवामदक्षनासारन्ध्रवामदक्षिणश्रोत्रवामदक्षनेत्रेषु। इति पदन्यासः।

ततो ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः। मुखे ह्रीं नमः। हृदये श्रीं नमः। मूलाधरे क्लीं नमः। इति विन्यस्य शिष्टं षोडशस्वरन्यासस्थानेषु न्यसेत्। ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तभुवनेश्वरीपीठं समभ्यर्च्या-वाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, त्रिकोणाग्रे 'ओं हौं नमः शिवाय शिवाय नमः' इति मन्त्रेण नृत्यन्तं शिवं संपूज्य, वामकोणे 'ॐ नमों भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वर्पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नमः' इति वराहं संपूज्य, दक्षकोणे 'ॐ नमो नारायणाय नारायणाय नम' इति संपूज्य, त्रिकोणाभ्यन्तरे देव्या वामभागे 'ग्लौं अन्नमह्यन्नं मे देहि अन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं भूम्यै नमः' इति संपूज्य, दक्षभागे 'श्रीं अन्नमह्यन्नं मे देहि अन्नधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रिये नमः' इति संपूज्य, चतुर्दलेषु देव्यग्रादितः—ॐ परविद्यायै नमः। ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः। श्रीं कमलायै नमः। क्लीं सुभगायै नमः। ततोऽष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः संपूज्य, षोडशदलेषु देव्यग्रादि प्रादक्षिण्येन नं अमृतायै अन्नपूर्णायै० मों मानदायै अन्नपूर्णायै० भं पुष्ट्यै अन्नपूर्णायै० गं तुष्ट्यै अन्नपूर्णायै० वं प्रीत्यै अन्नपूर्णायै० तिं रत्यै अन्नपूर्णायै० मां ह्रियै अन्नपूर्णायै० हें श्रियै अन्नपूर्णायै० श्वं स्वधायै अन्नपूर्णायै० रिं रात्र्यै अन्नपूर्णायै० अं ज्योत्स्नायै अन्नपूर्णायै० त्रं हैमवत्यै अन्नपूर्णायै० पूं छायायै अन्नपूर्णायै० र्णैं पूर्णिमायै अन्नपूर्णायै० स्वां नित्यायै अन्नपूर्णायै० हां अमावास्यायै अन्नपूर्णायै नमः। तद्बहिश्चतुरस्रे प्राग्वदिन्द्रादीन् संपूज्य शेषं समापयेदति।

प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ क्लीं कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके अपनी अन्नसमृद्धि के लिये विनियोग बोलकर इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे—ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हुं। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करके वर्णन्यास करे—शिरसि ॐ नमः। सीमन्ते ह्रीं उदरे वं नमः। नाभौ तिं नमः। लिङ्गे मां नमः। आधारे हें नमः। दक्षस्फिजि श्वं नमः। वामे रिं नमः। दक्षोरौ अं नमः। वामोरौ त्रं नमः। दक्षजानुनि पूं नमः। वामे र्णैं नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामे हां नमः।

तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः। दक्षनेत्रे ह्रीं नमः। वामे श्रीं नमः। दक्षश्रोत्रे क्लीं नमः। वामे नमो नमः। दक्षनासारन्ध्रे भगवति नमः। वामे माहेश्वरि नमः। मुखे अन्नपूर्णे नमः। लिङ्गे स्वाहा नमः—इस प्रकार न्यास कर इन्हीं पदों से गुदा, लिङ्ग, मुख, वाम नासा, दक्ष नासा, वाम कर्ण, दक्षिण कर्ण, वाम नेत्र, दक्षिण नेत्र में पदन्यास करे।

तत्पश्चात् ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नम:। मुखे ह्रीं नम:। हृदये श्रीं नम:। मूलाधरे क्लीं नम—इस प्रकार न्यास करके सोलह स्वरों का न्यास करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके ध्यान-आत्मपूजन-भुवनेश्वरी पीठपूजा करके आवाहन-पुष्पोपचारादि के उपरान्त पूर्ववत् अंगपूजन कर त्रिकोणाग्र में 'ओं हौं नम: शिवाय शिवाय नम:'—इस मन्त्र से नृत्य करते शिव की पूजा कर वाम कोण में 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुव:स्वर्पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नम:' इससे वराह की पूजा कर दक्षकोण में 'ॐ नमो नारायणाय नारायणाय नम' से पूजन कर त्रिकोण के भीतर देवी के वाम भाग में 'ग्लौं अन्नमह्यन्नं मे देहि अन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं भूम्यै नम:' से पूजन कर दक्षिण भाग में 'श्रीं अन्नमह्यन्नं मे देहि अन्नधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रिये नम:' से पूजन कर चतुर्दल में देवी के आगे से ॐ परविद्यायै नम:। ह्रीं भुवनेश्वर्यै नम:। श्रीं कमलायै नम:। क्लीं सुभगायै नम: से पूजन करे। तदनन्तर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन कर षोड़श दल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नम:, मों मानदायै अन्नपूर्णायै नम:, भं पुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नम:, गं तुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नम:, वं प्रीत्यै अन्नपूर्णायै नम:, तिं रत्यै अन्नपूर्णायै नम:, मां ह्रियै अन्नपूर्णायै नम:, हें श्रियै अन्नपूर्णायै नम:, श्वं स्वधायै अन्नपूर्णायै नम:, रिं रात्र्यै अन्नपूर्णायै नम:, अं ज्योत्स्नायै अन्नपूर्णायै नम:, त्रं हैमवत्यै अन्नपूर्णायै नम:, पूं छायायै अन्नपूर्णायै नम:, र्णैं पूर्णिमायै अन्नपूर्णायै नम:, स्वां नित्यायै अन्नपूर्णायै नम:, हां अमावास्यायै अन्नपूर्णायै नम: से पूजन करे। तदनन्तर उसके बाहर चतुरस्र में पूर्ववत् इन्द्रादि की पूजा कर पूजा का समापन करे।

दक्षिणामूर्तिः (१६.१७)—

लक्षं जपेत् सनियमो दशांशेन तु होमयेत्। रम्यपायससर्पिर्भ्यां सिद्धिदा भवति ध्रुवम् ॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः। अन्नपूर्णेश्वरी देवी पूजितान्नसुवर्णदा ॥१॥
अनया विद्यया जातः कुबेरो धननायकः। अन्नपूर्णेश्वरी नाम सर्वसम्पत्समृद्धिदा ॥२॥ इति।

तथा—

बीजहीनेयमेव स्यात् षोडशार्णा तथा परे। मायाद्या साथ ताराद्या मता सप्तदशाक्षरा ॥१॥
मायातारादिका चान्या गदिताष्टादशार्णका। मुन्याद्याः पूर्वमुदिता माययाङ्गक्रिया मता ॥२॥
अर्चनाङ्गेन्द्रवज्राद्यैः साधयेत् पूर्ववच्च ताः।

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतोत्थात् सुतदुहितृकलत्रोपद्रवेणानुयातम्।
विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं सकलभुवनमातस्त्राहि मामोंनमस्ते ॥३॥

माहेश्वरीमाश्रितकल्पवल्लीमहं भवोच्छेदकरीं भवानीम्।
क्षुधार्तजायातनयाद्युपेतस्त्वामन्नपूर्णे शरणं प्रपद्ये ॥४॥
दारिद्र्यदावालनदह्यमानं पाह्यन्नपूर्णे गिरिराजकन्ये।
कृपाम्बुधौ मज्जय मां त्वदीये त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिम् ॥५॥
इत्यन्नपूर्णास्तुतिरत्नमेतच्छ्लोकत्रयं यः पठतीह भक्त्या।
तस्मै ददात्यन्नसमृद्धिमम्बा श्रियं च विद्यां च यशश्च भुक्तिम् ॥६॥

दक्षिणामूर्ति में कहा गया है कि नियम से रहकर एक लाख जप करे। दशांश हवन पायस और गोघृत से करे। ऐसा करने से निश्चित सिद्धि प्राप्त होती है। सारसंग्रह के अनुसार इसके बाद पूर्वोक्त विधि से तर्पण करे। इस प्रकार की पूजा से अन्नपूर्णेश्वरी देवी अन्न और सोना देती है। इस विद्या से साधक कुबेर जैसा धननायक होता है। अन्नपूर्णेश्वरी का नाम ही समस्त सम्पत्तियों और समृद्धियों को देने वाला है।

अन्नपूर्णा के अन्य मन्त्र—१. षोडशाक्षर—नम: भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। २. सप्तदशाक्षर—ह्रीं भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। ३. सप्तदशाक्षर—ॐ भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। ४. अष्टादशाक्षर—ह्रीं ॐ भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। इन मन्त्रों के ऋष्यादि पूर्ववत् ही है। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्र: से षडङ्ग न्यास किया जाता है। अर्चन में इन्द्रादि दिक्पाल और उनके वज्र आदि आयुधों का अर्चन पूर्ववत् करना चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार स्तुति करे—

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतोत्थात् सुतदुहितृकलत्रोपद्रवेणानुयातम्।
विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं सकलभुवनमातस्त्राहि मामोंनमस्ते।।
माहेश्वरीमाश्रितकल्पवल्लीमहं भवोच्छेदकरीं भवानीम्। क्षुधार्तजायातनयाद्युपेतस्त्वामन्नपूर्णे शरणं प्रपद्ये।।
दारिद्र्यदावालनदह्यमानं पाह्यन्नपूर्णे गिरिराजकन्ये। कृपाम्बुधौ मज्जय मां त्वदीये त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिम्।।

तीन श्लोकों वाले इस अन्नपूर्णा स्तोत्र का पाठ जो भक्तिसहित करता है, उसे माता अन्न-समृद्धि-धन-विद्या-यश और भोग प्रदान करती है।

अन्नप्रदामन्त्रविधानम्

अन्नप्रदाख्यमन्त्रस्य पूर्वोक्तस्योच्यते विधिः। ऋषिर्ब्रह्मा समाख्यातश्छन्दश्चातिकृतिर्मतम् ॥७॥
देवते भूश्रियौ प्रोक्ते धनधान्यप्रदे शुभे। वेदेषुषण्मुनिद्वन्द्वमितैर्मन्त्रार्णकैः पृथक् ॥८॥
पञ्चाङ्गानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि मन्त्रवित्।
क्षीराब्धौ रजतोच्चवप्रकनकद्वीपे सुराद्ये शुभे कल्पद्रुव्रजशोभिते मणिमये सद्वित्तपस्याग्रतः।
आसीने वसुधाश्रियौ धनसमूहान् संसृजन्त्यौ मुहुर्भक्ताय प्रविचिन्तयेद्दिनमुखे धान्यान्नसंपत्तये ॥९॥
आवाह्य वैष्णवे पीठे देवीं गन्धादिभिर्यजेत्। पुराङ्गानि यजेद्वाह्ये दिक्षु भूतानि संयजेत् ॥१०॥
आद्यानि चत्वारि पुनर्विदिक्षु पूजयेदिमाः। निवृत्त्याद्याश्चतस्त्रस्तु बलाक्याद्यास्ततः परम् ॥११॥
इन्द्रादयस्तदस्त्राणि चैवं पूजा समीरिता। इति।

अन्नप्रदा मन्त्र की पूर्वोक्त विधि को कहता हूँ। इसके ऋषि ब्रह्म, छन्द अतिकृति एवं देवता धन-धान्य प्रदान करने वाली भूमि और लक्ष्मी हैं। मन्त्र के ४,५,६,७,२ अक्षरों से पञ्चाङ्ग न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

क्षीराब्धौ रजतोच्चवप्रकनकद्वीपे सुराद्ये शुभे कल्पद्रुव्रजशोभिते मणिमये सद्वित्तपस्याग्रतः।
आसीने वसुधाश्रियौ धनसमूहान् संसृजन्त्यौ मुहुर्भक्ताय प्रविचिन्तयेद्दिनमुखे धान्यान्नसंपत्तये।।

वैष्णव पीठ पर देवी का आवाहन करके देवी की पूजा गन्धादि से करे। तब अंगपूजा करे। दिशाओं में भूतों की पूजा करे। पहले पूर्वादि चार दिशाओं में पूजा करे, तब विदिशाओं में पूजा करे। अष्टदल के पूर्वादि दिशाओं में ॐ आकाशाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ जलाय नमः से पूजन करके विदिशाओं में ॐ निवृत्त्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः से पूजन करे। द्वितीय अष्टदल में बलाका आदि की पूजा करे। भूपुर में पूर्ववत् इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा करके पूजा का समापन करे।

अन्नप्रदाप्रयोगविधिः

अथ द्वितीयप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अतिकृतिच्छन्दसे नमः। हृदये भूश्रीभ्यां देवताभ्यां नम इति विन्यस्य मम धनधान्यसमृद्धये विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, मूलमन्त्रेणाभिमृष्टयोः पाण्योः अन्नमहि अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। अन्नं मे देहि तर्जनीभ्यां नमः। अन्नाधिपतये मध्यमाभ्यां नमः। ममान्नं प्रदापय अनामिकाभ्यां नमः । स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः। इति विन्यस्य हृदयादिष्वपि नेत्रहीनेषु पञ्चाङ्गेषु न्यसेत्। अन्नमहि हृदयाय नमः। अन्नं मे देहि शिरसे स्वाहा। अन्नाधिपतये शिखायै वषट्। ममान्नं प्रदापय कवचाय हुं। स्वाहा अस्त्राय फट्, ततो ध्यानादिमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुक्चतुरस्र-त्रयवेष्टितमष्टदलकमलद्वयं पूजाचक्रं कृत्वा, प्राग्वत् संस्थाप्य संपूज्य तत्र वक्ष्यमाणवैष्णवपीठं संपूज्य, तत्र भूश्रियौ समावाह्यासनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, प्रथमाष्टदलस्य दिग्दलेषु ॐ आकाशाय नमः। ॐ वायवे नमः। ॐ अग्नये नमः। ॐ जलाय नमः, इति संपूज्य, विदिग्दलेषु ॐ निवृत्त्यै नमः। प्रतिष्ठायै नमः। विद्यायै नमः। शान्त्यै नमः। इति संपूज्य, द्वितीयाष्टदलेष्वेकाक्षरलक्ष्मीप्रकरणोक्तबलाक्याद्यष्टशक्तीः संपूज्य प्राग्वदिन्द्रादिपूजामारभ्य शेषं समापयेदिति। तथा—

नियुतं प्रजपेन्मन्त्रं तद्दशांशं च मन्त्रवित्। जुहुयादाज्यसंपृक्तेनान्नेन च यथाक्रमम् ॥१॥
तर्पणादि ततः कृत्वा विप्रान् संभोज्य यत्नतः। गुरुं सन्तोष्य यत्नेन मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२॥
दिनादौ प्रजपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं सुधीः। क्षेत्रधान्यान्नरत्नौघसमृद्धौ भवति ध्रुवम् ॥३॥ इति।

तदनन्तर प्रात:कृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करने के पश्चात् मूल विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम:। मुखे अतिकृतिच्छन्दसे नम:। हृदये भूश्रीभ्यां देवताभ्यां नम:—इस प्रकार न्यास करके धन-धान्य की समृद्धि हेतु विनियोग करके मूल मन्त्र से हाथों को धोकर अन्नमहि अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। अन्नं मे देहि तर्जनीभ्यां नम:। अन्नाधिपतये मध्यमाभ्यां नम:। ममान्नं प्रदापय अनामिकाभ्यां नम:। स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नम:—इस प्रकार करन्यास कर पञ्चाङ्ग मन्त्रों से हृदयादि न्यास करे—अन्नमहि हृदयाय नम:। अन्नं मे देहि शिरसे स्वाहा। अन्नाधिपतये शिखायै वषट्। ममान्नं प्रदापय कवचाय हुं। स्वाहा अस्त्राय फट्—तदनन्तर ध्यान के बाद मानस पूजन कर चार द्वारयुक्त, तीन चतुरस्र से वेष्टित द. अष्टदल कमल वाला पूजाचक्र बनाकर स्थापन-पूजन करके वहीं पर वैष्णव पीठ की पूजा कर, भू एवं श्री का आवाहन कर पुष्पोपचार पूजन कर, अंगपूजन कर प्रथम अष्टदल की दिशाओं में ॐ आकाशाय नम:। ॐ वायवे नम:। ॐ अग्नये नम:। ॐ जलाय नम: से पूजन कर विदिशाओं में ॐ निवृत्यै नम:। प्रतिष्ठायै नम:। विद्यायै नम:। शान्त्यै नम: से पूजन कर द्वितीय अष्टदल में बलाकादि अष्टशक्तियों का पूजन कर पूर्ववत् इन्द्रादि लोकपालों की पूजा कर शेष पूजा का समापन करे।

एक लाख मन्त्र जप करे। उसका दशांश हवन आज्यमिश्रित अन्न से करे। इसके बाद तर्पण करे। ब्राह्मणभोजन कराये, गुरु को यत्न से सन्तुष्ट करे तो मन्त्रसिद्धि मिलती है। प्रतिदिन सबेरे एक सौ आठ बार मन्त्र जप करे तो खेती की जमीन, धान्य, अन्न, रत्नसमूह, समृद्धि की प्राप्ति होती है।

अश्वारूढामन्त्राः

अथाश्वारूढामन्त्राः। सारसंग्रहे—
योनिर्वियत् सनेत्रं च परमेपदमुच्चरेत्। अस्थिगं मेदयुक्ता च रक्तस्थं दृक् द्विठावपि ॥१॥
प्रणवाद्यो दशार्णोऽयमश्वारूढामनुर्मतः।

योनिरेकारः, वियद्धकारः सनेत्रं इकारयुक्तं तेन हि, परमे स्वरूपं, अस्थि शकारः मेदो वकारः तेन श्व, रक्तं रेफः, दुक् इकारः तेन रि, द्विठः स्वाहाकारः। तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा विराट् छन्दो देवता परिकीर्तिता ॥२॥
अश्वारूढा त्रिभिः पादै प्रणवाद्यैर्द्विरीरितैः। षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥३॥
अश्वारूढां नवशशियुतां भालनेत्रां च दोष्णा पाशाबद्धं मदनविवशं साध्यमाश्वानयन्तीम्।
दक्षेणोद्यत्कनकरचितां वेत्रयष्टीं दधानां बन्धूकाभां मनसि कलये पीनवक्षोजनम्राम् ॥४॥ इति।

तन्त्रराजे तु (३४.३१)—
लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ॥१॥
भल्लां दक्षेण वामेन चर्मयष्टिं समुज्ज्वलाम्। अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम् ॥२॥
हेमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मकृताञ्जलिम्। दासोऽहमिति भाषन्तं पातितं निजपादयोः ॥३॥
..................................स्मरन्।

इति चतुर्भुजध्यानमुक्तम्।

शाक्ते पीठे यजेद् देवीं पुराङ्गानि प्रपूजयेत्। मातृरिन्द्रादिकान् बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः ॥१॥
पूजेयमश्वारूढायाः प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये अश्वारूढायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य वश्यार्थे विनियोगः। इति

कृताञ्जलिरुक्त्वा, एहि हृदयाय नमः। परमेश्वरि शिरसे स्वाहा। स्वाहा शिखायै वषट्। एहि कवचाय हुं। परमेश्वरि नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, (अष्टदलेषु प्राग्वद् ब्राह्म्याद्याः संपूज्य) चतुरस्त्रे लोकपालान् संपूज्य धूपादिशेषं प्राग्वत् समापयेत्।

अश्वारूढा मन्त्र—सारसंग्रह में पठित श्लोक का उद्धार करने पर अश्वारूढ़ा का दशाक्षर मन्त्र होता है—ॐ एहि परमेश्वरि स्वाहा। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट्, देवता अश्वारूढ़ा हैं। मन्त्र के तीन पदों के पहले ॐ लगाकर दो आवृत्ति से षडङ्ग न्यास करने के पश्चात् इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

अश्वारूढां नवशशियुतां भालनेत्रां च दोष्णा पाशाबद्धं मदनविवशं साध्यमाश्वानयन्तीम्।
दक्षेणोद्यत्कनकरचितां वेत्रयष्टीं दधानां बन्धूकाभां मनसि कलये पीनवक्षोजनम्राम्।।

तन्त्रराज के अनुसार चतुर्भुजा का ध्यान करना चाहिये, जो इस प्रकार है—

लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नवदनाम्बुजाम्।।
भल्लां दक्षेण वामेन चर्मयष्टिं समुज्ज्वलाम्। अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम्।।
हेमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मकृताञ्जलिम्। दासोऽहमिति भाषन्तं पातितं निजपादयोः।।

तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये अश्वारूढायै देवतायै नमः। न्सास के पश्चात् वश्य कर्म के लिये विनियोग करके हृदयादि षडङ्ग न्यास इस प्रकार करे—एहि हृदयाय नमः। परमेश्वरि शिरसे स्वाहा। स्वाहा शिखायै वषट्। एहि कवचाय हुं। परमेश्वरि नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्। तदनन्तर करन्यास करके ध्यान के पश्चात् पुष्पोपचार-पूजन कर पूर्ववत् अंगपूजन कर अष्टदल में ब्रह्मी आदि का पूजन कर चतुरस्त्र में लोकपालादि का पूजन कर धूप-दीपादि प्रदान कर पूजा का समापन करे।

तथा—

जपेदयुतसंख्याकं तद्दशांशं हुनेद्घृतैः। तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ।।१।।
इत्थं ध्यात्वैव सकलं विश्वं वशयतेऽचिरात्। आज्यान्नं जुहुयान्मन्त्री लभते वाञ्छितं फलम् ।।२।।
त्रिमध्वक्तैस्तथा लोणैर्हुतैर्वश्या नृपाः किल। प्रोक्तेनैव विधानेन वश्याः स्युर्वनिता अपि ।।३।।
अनया विद्यया सर्पिर्होमः काञ्चनदो मतः। त्रिस्वादुभिः सहस्रं च हुनेत् स्त्रीवश्यसिद्धये ।।४।।
पूर्वोक्तेनैव होमेन नारीमाकर्षयेद् ध्रुवम्। प्रणवाद्यथ मायादिरयमेकादशार्णकः ।।५।।
षड्दीर्घमाययैवास्या षडङ्गविधिरीरितः। इति।

दश हजार जप करे। उसका दशांश हवन घी से करे। पूर्वोक्त विधि से तर्पणादि करे। इस प्रकार के ध्यान करने से अल्प काल में ही साधक सारे संसार को वश में कर लेता है। गोघृत-मिश्रित अन्न के हवन से वाञ्छित फल मिलता है। त्रिमधुराक्त नमक के हवन से राजा वश में होते हैं। इस विधान से वनिता भी वश में होती है। इस विद्या से गाय के घी से हवन करने से सोना मिलता है। मधुरत्रय से हवन करने पर स्त्रियाँ वश में होती हैं। पूर्वोक्त के समान हवन से नारी का आकर्षण होता है। उपर्युक्त मन्त्र में ॐ के बाद ह्रीं लगाने से यह ग्यारह अक्षरों का हो जाता है। ह्रां ह्रीं इत्यादि से षडङ्ग न्यास करना चाहिये।

तथा—

प्रणवं पाशहृल्लेखे ह्यङ्कुशाद्योऽयमीरितः। त्रयोदशार्णको द्वाभ्यामेकेनैकेन युग्मतः ।।६।।
पञ्चभिश्च तथा द्वाभ्यां षडङ्गविधिरीरितः।

पाशः आं, हृल्लेखा ह्रीं, अङ्कुशः क्रों, अयं दशार्णः।

पुरश्चरणमस्याणोः पञ्चलक्षं प्रकीर्तितम्। पूजादिकं स्यादनयोः पूर्वमन्त्रानुसारतः ।।७।।

अन्य मन्त्र—प्रणव ॐ, पाश आं, हल्लेखा ह्रीं। तेरह अक्षर का यह मन्त्र होता है—ॐ आं ह्रीं क्रों एहि परमेश्वरि स्वाहा। मन्त्र के २,१,१,२,५,२ अक्षरों अर्थात् ॐ, आं, ह्रीं, क्रों, एहि, परमेश्वरि, स्वाहा से षडङ्ग करना चाहिये। इसके पाँच लाख जप से पुरश्चरण पूर्ण होता है। पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही इसके पूजादि होते हैं।

अश्वारूढायन्त्रविधिः

कोष्ठानां द्वादशकं कृत्वा मध्यस्थवेदमिते कोष्ठे। प्रणवं साध्यसमेतं शिष्टेषु द्वादशाथ मन्त्रार्णान् ॥८॥
अशेषनारीनरपनरवश्यप्रदं मतम्। अश्वारूढायन्त्रमेतत् पूजितं सर्वकामदम् ॥९॥

केरलीये यन्त्रसारे—

मध्ये शक्तिं ससाध्यां ज्वलनपुरयुगास्रिष्वथो पाशशक्तिं
क्रोंमैंक्लींसौः क्रमेण प्रविलिखतु बहिर्मन्त्रवर्णान् दलेषु।
एकैकं भानुसंख्येष्वपि मदनशरैर्नित्यया मातृकार्णै-
श्चावीतं यन्त्रमेतद्धरणिपुरगतं श्रीकरं वश्यकारि ॥

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये ससाध्यं शक्तिबीजं विलिख्य (तत्कोणेषु आंह्रींक्रोंऐंक्लींसौः इत्येकमेकं बीजं विलिख्य बहिर्द्वादशदलेषु शक्तिरहितद्वादशाक्षराणि एकैकं क्रमेण विलिख्य) बहिर्वृत्तचतुष्टयं कृत्वा प्रथमवीथ्यां पूर्वोक्तैर्बाणबीजैर्द्वितीयवीथ्यां वक्ष्यमाणनित्यक्लिन्नानित्याविद्यया तृतीयवीथ्यां मातृकार्णैश्च निरन्तरं संवेष्ट्य तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्यादितदुक्तफलदं भवति। तथा—

प्रणवो भुवनाधीशा नमो भगपदं वति। माहेश्वर्येहि परमेश्वरि स्वाहान्तिको मनुः ॥
एकविंशार्णकः प्रोक्तः पूजाद्यं चास्य पूर्ववत्।

भुवनाधीशा ह्रीं, अन्यत्सुगमम्। अत्र माहेश्वर्येहिपदयोर्न सन्धिरेकविंशाक्षर इत्युक्तेः।

पूजा यन्त्र—बारह कोष्ठ बनावे। बीच के चार कोष्ठों में प्रणव के साथ साध्य का नाम लिखे। शेष कोष्ठों में मन्त्र के बारह वर्णों को लिखे। इससे सभी नर-नारी वश में होते हैं। अश्वारूढ़ा के इस यन्त्र की पूजा से सभी कामनायें पूरी होती हैं।

केरलीय यन्त्रसार के अनुसार पहले षट्कोण बनावे। बीच में ह्रीं के साथ साध्य नाम लिखे। षट्कोण के छः कोणों में आं ह्रीं क्रों ऐं क्लीं सौः एक-एक को लिखे। इसके बाहर द्वादश दल कमल बनावे। दलों में मन्त्राक्षरों में ह्रीं को छोड़कर शेष बारह अक्षरों को लिखे। इसके बाहर चार वृत्त बनावे। प्रथम वीथि में पूर्वोक्त पाँच बाणबीजों को लिखे। द्वितीय वीथि में नित्यक्लिन्ना विद्या को लिखे। तृतीय वीथि में मातृका वर्णों को लिखे। इसके बाहर चतुरस्र बनावे। इस यन्त्र से भूमि एवं धन मिलता है तथा वशीकरण होता है।

अन्य मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि एहि परमेश्वरि स्वाहा। यह मन्त्र इक्कीस अक्षरों का है। इसकी पूजा आदि पूर्ववत् होते हैं।

गौरीमन्त्रोद्धारः

अथ गौरीमन्त्राः। सारसंग्रहे—

मायां वदेद्गौरि रुद्रदयिते योपदं वदेत्। गेश्वर्यन्ते च वर्मास्त्रद्विठान्तः षोडशाक्षरः ॥१॥

माया ह्रीं, वर्म हुं, अस्त्रं फट्, द्विठः स्वाहा।

अजोऽस्य ऋषिराख्यातोऽनुष्टुप् छन्दश्च देवता। गौरी सौभाग्यसद्वश्यसर्वसंपत्प्रदायिका ॥२॥
षड्दीर्घमायया कुर्यात् षडङ्गानि मनोरथ। हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने ॥३॥
पाशाङ्कुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा स्मरेत्।

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

शाक्ते पीठे यजेद्गौरीं चन्दनाद्यैर्मनोहरैः ॥४॥
अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य सुभगाद्यास्ततो यजेत् । सुभगा ललिता चान्या कामिनी काममालिनी ॥५॥
पाशाङ्कुशौ दर्पणोऽञ्जनशलाकाष्टमी मता । शक्रादयस्तदस्त्राणि गौरीपूजा समीरिता ॥६॥ इति।

प्रपञ्चसारे तु—

धर्मादिकल्पिते पीठे पीठशक्तीरिमा यजेत् । प्रभा ज्ञाना च वाग्वागीश्वरी स्याज्ज्वालिनी परा ॥१॥
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च गुह्यशक्तिश्च ता नव । ह्रस्वत्रयक्लीववर्ज्यस्वराढ्यभृगुणान्विता ॥२॥

ह्रस्वत्रयं अइउ, क्लीवाः ऋॠऌॡ, भृगुः सकारः।

गौंगौरीमूर्तये हृच्च पीठमन्त्रश्च कल्पिते । एवं पीठे यजेद्देवीं चन्दनाद्यैर्मनोहरैः ॥३॥
सुभगायै च विद्मान्ते हेअन्ते काममालि च । न्यै स्याद्धीमहि तन्नो च गौरी स्यात्तु प्रचोदयात् ॥४॥
गायत्र्या त्वनया सर्वानुपचारान् प्रकल्पयेत् । अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य सुभगाद्यास्ततो यजेत् ॥५॥
भृगुः साम्बुः सद्वितुर्यषष्ठार्केन्दुस्वरादिकाः । सुभगा ललिता चान्या कामिनी काममालिनी ॥६॥
दिक्ष्वन्यत्र स्वायुधानि लोकपालैस्तदायुधैः ।

भृगुः सकारः, अम्बु वकारः, द्वि आ, तुर्य ई, षष्ठ ऊ, अर्क ऐ, तेन स्वांस्वीस्वूंस्वैं। आयुधानि दर्पणाञ्जनसाधनपाशाङ्कुशाः।

गौरी मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार गौरी का षोडशाक्षर मन्त्र होता है—ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा। इसके ऋषि अज हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता गौरी हैं, जो सौभाग्य, सद्वश्य और सर्व सम्पत् देने वाली हैं। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से षडङ्ग न्यास किया जाता है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने। पाशाङ्कुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा स्मरेत्।।

शाक्त पीठ में गौरी का पूजन चन्दनादि से करे। पहले षडङ्ग पूजा करे तब सुभगा आदि की पूजा करे। इनकी शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—सुभगा, ललिता, कामिनी, काममालिनी। इनके आयुध—पाश, अंकुश, दर्पण, अंजन, शलाका का पूजन अष्टदल में करे। भूपुर में इन्द्रादि दिक्पालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि कल्पित पीठ पर धर्मादि के साथ इन पीठशक्तियों की पूजा करे—प्रभा, ज्ञाना, वाक्, वागीश्वरी, ज्वालिनी, परा, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री। ये गुह्य नव शक्तियाँ हैं। इन शक्तियों के नाम के पहले अ इ उ ए ऐ ओ औ अं अः स लगाकर पूजा करे।

गौं गौरीमूर्तये नमः—इस पीठमन्त्र से कल्पित पीठ में देवी की पूजा चन्दनादि से करे। 'सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात्'—इस गौरी गायत्री से सभी उपचारों को कल्पित करे। पहले षडङ्ग पूजा करे, तब सुभगा आदि की पूजा करे। सुभगा ललिता कामिनी काममालिनी के पहले क्रमशः स्वां स्वीं स्वूं स्वैं बीज लगावे। अन्यत्र दिशाओं में आयुधों की पूजा करे। आयुधों में पाश, अंकुश, दर्पण, अर्जन की पूजा करे। भूपुर में लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

गौरीमन्त्रप्रयोगः

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अजऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीगौर्यै देवतायै नमः। इति विन्यस्य ममाभीष्टार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रांह्रीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं पीठमभ्यर्च्याष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सां प्रभायै नमः, सीं ज्ञानायै०, सूं वाचे०, सें वागीश्वर्यै०, सैं ज्वालिन्यै०, सों वामायै०, सौं ज्येष्ठायै०, सं रौद्र्यै०, सः गुह्यशक्त्यै नमः। इति संपूज्य, गौं गौरीमूर्तये नमः इति समस्तं पीठं संपूज्यावाहनादिमुद्रादर्शनान्ते 'सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात्' इति गायत्र्या आसना-

दिसर्वानुपचारान् दद्यात्। ततः पुष्पोपचारान्ते पूर्ववदङ्गानि संपूज्याष्टदलेषु दिग्दलेषु ॐ स्वां सुभगायै० ॐ स्वीं ललितायै० ॐ स्वूं कामिन्यै ॐ स्वैं काममालिन्यै। विदिक्षु पाशाय० अङ्कुशाय० दर्पणाय० अञ्जनशलाकायै० इति तदग्रादिप्रादक्षिण्येन संपूज्य तद्बहिश्चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च संपूज्य धूपादि शेषं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेद्घृतैः। तर्पणादि ततः कुर्याद् गुरुं सन्तोष्य यत्नतः ॥१॥
सिद्धे मन्त्रे प्रकुर्वीत मन्त्री काम्यानि नान्यथा। वामाक्षीणां च निशया वामोरौ विलिखेन्निशि ॥२॥
आच्छादयन् वामदोष्णा तन्मनाः प्रजपेन्मनुम्। शतं सहस्रं लोलाक्षीमानयेत्काममोहिताम् ॥३॥
एतन्मन्त्रेण संजप्तं गन्धपुष्पफलादिकम्। दत्तं संसेवितं सर्वजनतावश्यकारकम् ॥४॥

तदनन्तर प्रातः कृत्य से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे— शिरसि अजऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीगौर्यै देवतायै नमः। इस प्रकार न्यास करके अपनी अभीष्टसिद्धि के लिये विनियोग कर ह्रां, ह्रीं आदि से करन्यास एवं षडङ्ग न्यास करके ध्यान, आत्मपूजा कर मण्डूक से परतत्त्व तक पीठ पूजा करके अष्टदल के केसरों में अपने अंगों से प्रदक्षिण क्रम से सां प्रभायै नमः, सीं ज्ञानायै नमः, सूं वाचे नमः, सें वागीश्वर्यै नमः, सैं ज्वालिन्यै नमः, सों वामायै नमः, सौं ज्येष्ठायै नमः, सं रौद्र्यै नमः, सः गुह्यशक्त्यै नमः से पूजन कर गौं गौरीमूर्तये नमः से समस्त पीठ की पूजा करके आवाहनादि मुद्रा दिखाकर 'सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात्' इस गायत्री से आसनादि प्रदान कर पुष्पोपचार-पूजन के बाद पूर्ववत् अंगपूजन कर अष्टदल में ॐ स्वां सुभगायै नमः, ॐ स्वीं ललितायै नमः, ॐ स्वूं कामिन्यै नमः, ॐ स्वैं काममालिन्यै नमः से पूजन करके कोणों में पाशाय नमः, अङ्कुशाय नमः, दर्पणाय नमः, अञ्जनशलाकायै नमः, से पूजन करे। उसके आगे प्रदक्षिण क्रम से पूजन कर चतुरस्र में लोकपालों का आयुध-सहित पूजन कर धूपादि प्रदान कर पूजा का समापन करे।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन घी से करे। तब तर्पण आदि करे। गुरु को सन्तुष्ट करे। साधक सिद्ध मन्त्र से काम्य प्रयोग करे; अन्यथा न करे। रात में वामाक्षी के रज से वाम ऊरु में मन्त्र को लिखे। वामहस्त से उसे ढक दे। साध्या का चिन्तन करते हुए मन्त्रजप एक सौ या एक हजार करे तो साध्या चंचल दृष्टि वाली काममोहित होकर आ जाती है। इस मन्त्र को जप कर गन्ध, पुष्प, फल आदि जिसे दिया जायेगा, वह उसका सेवन करके साधक के वश में हो जाता है।

वशीकरणमन्त्रोद्धारः

तथा—

अथान्यं संप्रवक्ष्यामि समस्तस्त्रीवशंकरम्। कांक्षितस्त्रीवशंशब्दं करिसुदु पृथग् द्वयम् ॥
घेद्वयं वाद्वयं स्त्रींस्वाहेति मन्त्रोऽयमीरितः। एकोनविंशत्यर्णाढ्यो मन्त्रः स्त्रीवश्यदः परः ॥
अस्य पूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत्। अस्याद्यवर्णतस्त्वर्वाक् साध्यनाम प्रयोजयेत् ॥
जपेन्मन्त्रं शतं वापि स वश्यो भवति ध्रुवम्। इति।

सभी स्त्रियों को वश में करने वाला मन्त्र है—कांक्षितस्त्रीवशंकरि सुदु सुदु घेघे वा वा स्त्रीं स्वाहा। इस मन्त्र में उन्नीस अक्षर हैं। यह स्त्री-वश्यकर श्रेष्ठ मन्त्र है। साधक इसकी पूजा आदि पूर्ववत् करे। कांक्षित शब्द के बाद साध्य नाम जोड़कर एक सौ जप करने से साध्या अवश्य वश में होती है।

पद्मावतीमन्त्रः

अथ पद्मावतीमन्त्राः। सारसंग्रहे—

माया सलोहिता द्मावति स्वाहा सप्तवर्णकः। पद्मावत्या मनुः प्रोक्तः सर्ववश्यप्रदायकः ॥१॥

माया भुवनेश्वरीबीजं, लोहितः प, द्मावति स्वरूपम्, स्वाहा स्वरूपम्। तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द उच्यते। पद्मावती देवतास्य ह्रींबीजं शक्तिरस्य तु ॥२॥
स्वाहा स्यान्माययाङ्गानि षड्दीर्घस्वरभिन्नया। कृत्वा देवीं ततो ध्यायेत्साधकः स्थिरमानसः ॥३॥

रक्तोत्पलकरद्वन्द्वामब्जस्थां कमलाननाम्। बन्धूकाभां त्रिनयनां नानाकल्पोज्ज्वलां स्मरेत् ॥४॥
शक्तिपीठे यजेद् देवीं पुराङ्गानि च मातरः। लोकपालांस्तदस्त्राणि पद्मावत्यर्चना मता ॥५॥

प्रयोगः सुगमः। तथा—

पुरश्चरणमस्यैकं लक्षं प्रोक्तं च मन्त्रिभिः। तद् दशांशेन च घृतैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ॥६॥
एनं मनुं यो भजते सुभगः सर्वयोषिताम्।

पद्मावती मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार पद्मावती का सप्ताक्षर मन्त्र है—ह्रीं पद्मावति स्वाहा। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता पद्मावती, ह्रीं बीज एवं शक्ति स्वाहा हैं। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से षडङ्ग न्यास करे। तब स्थिर मन से देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

रक्तोत्पलकरद्वन्द्वामब्जस्थां कमलाननाम्। बन्धूकाभां त्रिनयनां नानाकल्पोज्ज्वलां स्मरेत्।।

शक्तिपीठ में देवी की पूजा करे। पहले षडङ्ग पूजा करे। तब मातृकाओं, लोकपालों, आयुधों की पूजा करके पद्मावती की पूजा करे।

मन्त्रज्ञों के द्वारा इसका पुरश्चरण एक लाख जप से कहा गया है। उसका दशांश हवन घी से करे। इस प्रकार मन्त्र को जो भजते हैं, उनके वश में सभी सुन्दरियाँ होती हैं।

पद्मावतीयन्त्रोद्धारः

षट्कोणान्तर्लिखेच्छक्तिं षट्कोणेषु च संलिखेत् ॥७॥
मन्त्रार्णांश्च ततो बाह्ये लिपिवीतमिदं मतम्। रम्यं पद्मावतीयन्त्रं वश्यदं नात्र संशयः ॥८॥

लिपिवीतं मातृकया। अन्यत् सुगमम्।

षट्कोण के मध्य में ह्रीं लिखे। कोणों में शेष छः अक्षरों को लिखे। उसे बाहर से मातृकाओं से वेष्टित करे। यह सुन्दर पद्मावती यन्त्र वश्यप्रद होता है।

ज्येष्ठलक्ष्मीमन्त्रः

तथा—

वाग्भवं प्रथमं बीजं द्वितीयं भुवनेश्वरी। तृतीयं च रमाबीजं आद्यलक्ष्मीपदं ततः ॥९॥
स्वयंभुवे पदान्ते च प्रवदेद्भुवनेश्वरी। ज्येष्ठायै हृदयं चैव मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ॥१०॥

वाग्भवं ऐं, हृदयं नमः। अन्यत्सुगमम्। तथा—

ऋषिरस्य स्मृतो ब्रह्मा छन्दोऽष्टिः समुदाहृतम्। देवता ज्येष्ठलक्ष्मीश्च श्रीमाये शक्तिबीजके ॥११॥
प्रमृज्य त्रिः करौ विद्वानङ्गन्यासमथाचरेत्। त्रिवेदाब्धीन्द्वग्नियुग्मवर्णैरङ्गानि षट् क्रमात् ॥१२॥
शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु बीजानां त्रितयं न्यसेत्। हृन्नाभ्याधारजान्वङ्घ्रौ पदानां पञ्चकं न्यसेत् ॥१३॥
पद्मासनस्थामरुणामरुणाबरधारिणीम्। कुङ्कुमक्षोदलिप्ताङ्गीं प्रोत्फुल्लकमलेक्षणाम् ॥१४॥
मन्दस्मितमुखीं ज्येष्ठां कलशं वसुपात्रकम्। दधानामूर्ध्वबाहुभ्यां पाशमप्यङ्कुशं तथा ॥१५॥
चिन्तयेत् परया भक्त्या देवीमित्थं प्रपूजयेत्।

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये। तदाद्यधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्। कलशं सुधाढ्यम्।

सम्यग्धर्मादिभिः पीठे मन्त्रवित्परिकल्पयेत्। लोहिताक्षी विरूपाक्षी कमला नीललोहिता ॥१६॥
समदा वारुणी पुष्टिरमोघा विश्वमोहिनी। पूर्वादिदलमूलेषु मध्ये चार्च्याः क्रमादिमाः ॥१७॥
वदेच्च रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलशब्दतः। ज्येष्ठायै धीमहि प्रोक्त्वा तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥१८॥
अनयावाह्य तां ज्येष्ठां पूजयेच्चन्दनादिभिः। अङ्गानि मातृर्लोकेशांस्तदस्त्राणि प्रपूजयेत् ॥१९॥ इति।

अथ प्रयोग:—तत्र प्रात:कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम:। मुखे अष्टिच्छन्दसे नम:। हृदये ज्येष्ठालक्ष्म्यै देवतायै नम:। गुह्ये श्रींबीजाय नम:। पादयो: ह्रींशक्तये नम:, इति विन्यस्य, मूलविद्यया करौ प्रमृज्य, ॐ ऐंह्रींश्रीं हृदयाय नम:। आद्यलक्ष्मी शिरसे स्वाहा। स्वयंभुवे शिखायै वषट्। ह्रीं कवचाय हुं। ज्येष्ठायै नेत्राभ्यां वौषट्। नम: अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्रै: करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं पीठं संपूज्याष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिमध्यान्ते लोहिताक्ष्यै नम:। विरूपाक्ष्यै नम:। कमलायै०, नीललोहितायै०, मदायै०, वारुण्यै०, पुष्ट्यै०, अमोघायै०, विश्वमोहिन्यै०, इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य 'ऐंह्रींश्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम:' इति समस्तं पीठं संपूज्य 'रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि तन्नो लक्ष्मी: प्रचोदयात्' इत्यनया गायत्र्यावाह्य मूलविद्ययासनादिपुष्पोपचारान्तं कृत्वा प्राग्वदङ्गानि संपूज्याष्टदले ब्राह्म्याद्याश्चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च संपूज्य धूपदीपादि शेषं प्राग्वत् समापयेत् इति। तथा—

लक्षं तु प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात् तद् दशांशत:। पायसेन सुशुद्धेन सर्पि:सिक्तेन साधक: ॥२०॥
तर्पणं मार्जनं कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
ज्येष्ठामनुं यो भजते मनुष्य: सन्यासपूजाजपतर्पणैश्च।
भोगानिह प्राप्य बहून् स मर्त्य: परत्र विष्णो: पदमेति नित्यम् ॥२१॥ इति।

ज्येष्ठलक्ष्मी मन्त्र—ज्येष्ठलक्ष्मी का सत्रह अक्षरों का मन्त्र होता है—ऐं ह्रीं श्रीं आद्यलक्ष्मी स्वयंभुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नम:। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द अष्टि, देवता ज्येष्ठा लक्ष्मी, श्रीं शक्ति एवं ह्रीं बीज है। हाथों को तीन बार मलकर अंगन्यास किया जाता है। मन्त्र के ३,४,४,१,३,२ अक्षरों से षडङ्ग न्यास किया जाता है।

प्रात:कृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम:। मुखे अष्टिच्छन्दसे नम:। हृदये ज्येष्ठालक्ष्म्यै देवतायै नम:। गुह्ये श्रींबीजाय नम:। पादयो: ह्रींशक्तये नम:। इस प्रकार न्यास करके मूल मन्त्र से हाथ धोकर षडङ्ग न्यास करे। ॐ ऐंह्रींश्रीं हृदयाय नम:। आद्यलक्ष्मी शिरसे स्वाहा। स्वयंभुवे शिखायै वषट्। ह्रीं कवचाय हुं। ज्येष्ठायै नेत्राभ्यां वौषट्। नम: अस्त्राय फट्। तदनन्तर ध्यान, आत्मपूजन करके मण्डूक से परतत्त्व तक पीठपूजन कर अष्टदल के केसरों में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजन करे—लोहिताक्ष्यै नम:, विरूपाक्ष्यै नम:, कमलायै नम:, नीललोहितायै नम:, मदायै नम:, वारुण्यै नम:, पुष्ट्यै नम:, अमोघायै नम:, विश्वमोहिन्यै नम:। तदनन्तर 'ऐंह्रींश्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम:' से समस्त पीठ का पूजन कर 'रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि तन्नो लक्ष्मी: प्रचोदयात्' इस गायत्री से आवाहन कर मूल विद्या से आसन प्रदान कर पुष्प-पूजन करके पूर्ववत् अंगपूजन कर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का एवं चतुरस्र में लोकपालादि का आयुध-सहित पूजन कर-धूप-दीप प्रदान कर पूजा का समापन करे।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन पायस में गोघृत मिलाकर करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन कराये। न्यास-पूजा-जप-तर्पणसहित जो मनुष्य ज्येष्ठा मन्त्र का जप करते हैं, उसे इस लोक से सभी भोग मिलते हैं और मरने पर वह विष्णु पद को प्राप्त होता है।

त्रिपुरामन्त्र:

सारसंग्रहे—

अथ वक्ष्ये मन्त्रवरं त्रिपुटासंज्ञकं शुभम्। लोकरञ्जनकर्तारं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥१॥
यशस्करं पुत्रपौत्रफलदं कविताकरम्। कमला भुवनेशानी तृतीयश्च मनोभव: ॥२॥
वर्णत्रयात्मा त्रिपुटानामको मन्त्र ईरित:।

कमला श्रीं, भुवनेशानी ह्रीं, मनोभव: क्लीं। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द ईरितम्। शारदातिलके—ऋषि: संमोहन' इत्युक्तम्। आचार्यचरणै: किमपि नोक्तम्। सारसंग्रहे—

भृगु: संमोहनोऽस्यर्षि छन्दो गायत्रमुच्यते ॥३॥
देवता त्रिपुटाख्या स्याद् द्विरुक्तेनाणुनाङ्गकम्। अथवा भुवनेशान्या षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ॥४॥

हेमाभां पारिजातद्रुमरुचिरवने मण्डपे स्वर्णभूमौ
रत्नोद्यत्कुट्टिमेऽधो लसदमरतरोश्चारुसिंहासनोर्ध्वे ।
षट्कोणस्थां स्मरेऽहं कमलयुगगुणानङ्कुशं चापबाणौ
बिभ्राणां हस्तपद्मैर्मणिमयमुकुटां चारुभूषां त्रिनेत्राम् ॥५॥
दूतीभिश्चामरादर्शसमुद्गककरण्डकान् । ताम्बूलं च वहन्तीभिरावृतां परितः शुभाम् ॥६॥

दूतीभिर्घृणिन्यादिभिः। नारायणीये—'सौम्यादि घृणिनीं सूर्यामादित्यां च प्रभावती'मिति। तथा—'पीयूषदृष्ट्या पश्यन्तीं साधकं च मनोहरम्' इति। दक्षिणामूर्तिः—

षट्कोणं पूर्वमालिख्य मध्ये विद्यां लिखेत्सुधीः । वीप्सया तां तु षट्कोणकोणेषु क्रमतो लिखेत् ॥१॥
बाह्ये वसुदलं कुर्याद् दीर्घस्वरविभूषितम् । चतुरस्रं चतुर्द्वारभूषितं मण्डलं लिखेत् ॥२॥

चतुरस्रं चतुरस्रत्रयं, गृहं संमार्ष्टीतिवदेकवचनमुद्दिश्य गतसंख्यापरम्। मध्ये षट्कोणान्तःस्थचतुष्पत्रमध्ये। 'यजेदेनां चतुष्पत्रे षट्कोणस्थाम्बुजे बुधः' इति नारायणीयवचनात्। सारसंग्रहे—

शाक्ते पीठे यजेद् देवीं नवशक्तिसमन्विते । अङ्गानि पूजयेदादौ लक्ष्म्याद्याः कोणषट्कगाः ॥१॥
षट्कोणपार्श्वे च निधी यजेन्मातॄश्च तद्बहिः । लोकपालांश्च रमणीरूपानाराधयेत्क्रमात् ॥२॥
काञ्चनाभां कृशां लक्ष्मीं सवराब्जकरद्वयाम् । स्वर्णाभमरिशंखाह्वगदाब्जसुकरं हरिम् ॥३॥
गुणसृण्यभयाह्वेष्टधारिणीमरुणां शिवाम् । शिवं स्वर्णाभमेणाह्वटङ्काभीतीष्टधारिणम् ॥४॥
स्वर्णाभां नीलकमलकरां सौम्यां रतिं स्मरम् । पाशाङ्कुशौ चापबाणौ धारयन्तं रुचारुणम् ॥५॥
त्रिपुटाह्वमहाविद्यापूजा प्रोक्ता समासतः । इति।

त्रिपुटा मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार त्रिपुटा का कल्याणदायक मन्त्र लोक को आनन्द प्रदान करने वाला, धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को देने वाला, यश प्रदान करने वाला, पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाला एवं कवित्वशक्ति प्रदान करने वाला है। मन्त्र है—श्री ह्रीं क्लीं। इस तीन अक्षर के मन्त्र को त्रिपुट कहते हैं। दक्षिणामूर्ति संहिता के अनुसार इसके ऋषि ब्रह्मा और छन्द गायत्री हैं। शारदातिलक के अनुसार इसके ऋषि सम्मोहन हैं। सारसंग्रह के अनुसार इसके ऋषि भृगु सम्मोहन और छन्द गायत्री हैं। देवता त्रिपुटा हैं। इसकी दो आवृत्ति से षडङ्ग न्यास होता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

हेमाभां पारिजातद्रुमरुचिरवने मण्डपे स्वर्णभूमौ रत्नोद्यत्कुट्टिमेऽधो लसदमरतरोश्चारुसिंहासनोर्ध्वे।
षट्कोणस्थां स्मरेऽहं कमलयुगगुणानङ्कुशं चापबाणौ बिभ्राणां हस्तपद्मैर्मणिमयमुकुटां चारुभूषां त्रिनेत्राम्।।

दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि पहले षट्कोण बनावे। मध्य में विद्या लिखे। षट्कोण के कोनों में दो आवृत्ति से लिखे। इसके बाहर अष्टदल कमल बनावे। इसके दलों से आठ दीर्घ स्वरों को लिखे। इसके बाहर चार द्वारयुक्त तीन चतुरस्र बनावे।

सारसंग्रह के अनुसार नव शक्तियों से युक्त शाक्त पीठ में देवी का पूजन करे। पहले षडङ्ग पूजा करे। छः कोनों में लक्ष्मी आदि की पूजा करे। षट्कोण के पार्श्वों में निधियों की पूजा करे। उसके बाहर अष्टदल में ब्राह्मी आदि मातृकाओं की पूजा करे। उसके बाहर चतुरस्र में शक्तिरूपिणी लोकपालों की पूजा करे। श्लोक ३ से लक्ष्मी-विष्णु का ध्यान करे। श्लोक ४ से गौरी-शिव का ध्यान करे। श्लोक ५ से रति-काम का ध्यान करे। इसे ही समासतः त्रिपुटा महाविद्या पूजा कहते हैं।

त्रिपुटामन्त्रप्रयोगः

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीत्रिपुटादेवतायै नमः। इति विन्यस्य, श्रीं हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। क्लीं शिखायै वषट्। श्रीं कवचाय हुं। ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। क्लीं अस्त्राय फट्, इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यानादिपुष्पोपचारान्तं पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठे कृत्वा प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, चतुर्दले देव्या वामदलमारभ्य

प्रादक्षिण्येन घृणिन्यै०। सूर्यायै०। आदित्यायै०। प्रभावत्यै०। षट्कोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य लक्ष्म्यै०। हरये०। गिरिजायै०। शिवाय०। रत्यै०। अनङ्गजाय० इति संपूज्य, षट्कोणपार्श्वयोर्देवीदक्षिणे शङ्खनिधये नमः। वामे पद्मनिधये नमः, इति संपूज्याष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः संपूज्य दिगीशार्चादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

इति ध्यात्वा मन्त्रमिमं जपेदादित्यलक्षकम्। तत्सहस्रं प्रजुहुयान्मधुराक्तैः समिद्वरैः ॥१॥
श्रीराजवृक्षसंभूतैः सजपाकुसुमैः शुभैः। तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ॥२॥

श्रीवृक्षो बिल्वः। तथा—

लक्ष्मीगौरीसुकन्दर्पबीजानि क्रमतः सुधीः। कृत्वा कलायां तां चेन्दौ तं चाकाशे स्मरेच्च तत् ॥
सिन्दूरवर्णमखिलं त्रैलोक्यं तन्मयत्वतः। स्मृत्वा तदाखिलान् देवान् वशयेत्किं पुनर्नरान् ॥
एवं मनुं यो भजते स लभेत्कवितां पराम्। दिव्यां लक्ष्मीं च सौभाग्यमतुलं लभतेऽचिरात् ॥
बहुकालं च विहरेत् सुस्थिरं भुवि मानवः। इति।

प्रात:कृत्य से योगपीठन्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे गायत्री-छन्दसे नमः। हृदये श्रीत्रिपुटादेवतायै नमः। तदनन्तर इन मन्त्रों से हृदयादि षडङ्ग न्यास करे—श्रीं हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। क्लीं शिखायै वषट्। श्रीं कवचाय हुं। ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। क्लीं अस्त्राय फट्। तदनन्तर ध्यान-पूजन आदि पूर्वोक्त भुवनेश्वरी पीठ में करके पूर्ववत् अंगपूजन कर चतुर्दल में देवी के बाँयें से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजन करे—घृणिन्यै नमः, सूर्यायै नमः, आदित्यायै नमः, प्रभावत्यै नमः। षट्कोण में देवी के आगे स्थित कोण से आरम्भ कर इस प्रकार पूजन करे—लक्ष्म्यै नमः, हरये नमः, गिरिजायै नमः, शिवाय नमः, रत्यै नमः, अनङ्गजाय नमः। षट्कोण के बगल में देवी के दक्षिण भाग में शङ्खनिधये नमः एवं वाम भाग में पद्मनिधये नमः से पूजन कर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन करके लोकपालादि पूजन सम्पन्न कर पूजा का समापन करे।

इस प्रकार ध्यान करके बारह लाख मन्त्र जप करे। बारह हजार हवन त्रिमधुराक्त श्री राजवृक्ष और अड़हुल के फूलों से करे। तर्पण, मार्जन करके ब्राह्मणभोजन करावे।

श्रीं ह्रीं क्लीं बीजों का आकाश में चन्द्रकला के रूप में स्मरण करे। उनके सिन्दूर वर्ण से तीनों लोक व्याप्त हैं, तन्मय हैं—ऐसा स्मरण करने से सभी देवता भी वश में होते हैं, तब मनुष्यों की तो वात ही क्या है। इस प्रकार से मन्त्र को जो भजते हैं, वे श्रेष्ठ वनिता, दिव्य लक्ष्मी, अतुल्य सौभाग्य थोड़े ही दिनों में प्राप्त करते हैं। वे संसार में बहुत समय तक विहार करते रहते हैं।

त्रिपुटामन्त्रान्तरप्रयोगः

प्रपञ्चसारे—पाशश्रीशक्तिस्मरमन्मथशक्तीन्दिराङ्कुशाश्च। पाश आं, स्मरः मन्मथश्च क्लीं क्लीं, इन्दिरा श्रीबीजं, अङ्कशः क्रों। तथा—

ऋष्याद्या अजगायत्रीशक्तयः समुदीरिताः। स्त्रीवश्याकर्षणादौ तु विनियोग उदाहृतः ॥६॥
षड्दीर्घमाययाङ्गानि सर्वैरष्टाङ्गमिष्यते। हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्रास्त्रोदरपृष्ठके ॥७॥
अष्टाङ्गं विन्यसेन्मन्त्री मूलेन व्यापकं न्यसेत्। आनन्दरूपिणीं देवीं पाशाङ्कुशधनुःशरान् ॥८॥
बिभ्रतीं दोर्भिररुणां कुचार्तां हृदि भावयेत्।

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

शाक्ते पीठे यजेद् देवीं हृल्लेखाद्याभिरङ्गकैः। मातृभिर्लोकपालैश्च वज्राद्यैः पञ्चमावृत्तिः ॥९॥ इति।

अथ प्रयोगः—प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अजऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये शक्तये देवतायै नमः, इति विन्यस्य स्त्रीवश्याकर्षणे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रांह्रीं इत्यादिना करषडङ्गन्यासं कृत्वा, हृदये आं नमः। शिरसि श्रीं नमः। शिखायां ह्रीं नमः। कवचस्थाने क्लीं

नमः। नेत्रस्थाने क्लीं नमः। अस्त्रे ह्रीं नमः। उदरे श्रीं नमः। पृष्ठे क्रों नमः, इति विन्यस्य ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते, मध्ये हृल्लेखायै नमः। अग्रे गगनायै०, दक्षिणे रक्तायै०, उत्तरे करालिकायै०, पश्चिमे महोच्छुष्मायै०, इति संपूज्य प्राग्वदङ्गानि संपूज्याष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः संपूज्य चतुरस्रे लोकेशार्चादि प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

अष्टलक्षं जपेत् साज्यैर्दशांशं जुहुयात्तिलैः। तर्पणादि ततः कुर्यादेवं सिद्धो भवेन्मनुः॥ इति।

प्रपञ्चसार के अनुसार इसका अन्य मन्त्र है—आं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रों। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा एवं छन्द गायत्री हैं; स्त्रीवश्य एवं आकर्षण के लिये इसका विनियोग होता है। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से षडङ्ग न्यास और पूरे मन्त्र से अष्टाङ्ग न्यास किया जाता है। हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, उदर, पीठ—इन आठ अंगों में न्यास किया जाता है। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान किया जाता है—

आनन्दरूपिणीं देवीं पाशाङ्कुशधनुःशरान्। बिभ्रतीं दोर्भिररुणां कुचार्तां हृदि भावयेत्।।

ऊपर वाले वाम हस्त से प्रारम्भ करके नीचे वाले बाँयें हाथ तक आयुध का ध्यान करे। शक्तिपीठ में देवी की पूजा करे। ह्रां ह्रीं इत्यादि से षडङ्ग पूजा करे। अष्टदल में अष्ट मातृकाओं की, भूपुर में लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार यहाँ पाँच आवरणों की पूजा होती है।

प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि अजऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये शक्तये देवतायै नमः। इस प्रकार न्यास करके स्त्रीवशीकरण हेतु विनियोग कर ह्रां ह्रीं आदि से करन्यास एवं षडङ्ग न्यास करके इस प्रकार न्यास करे—हृदये आं नमः। शिरसि श्रीं नमः। शिखायां ह्रीं नमः। कवचस्थाने क्लीं नमः। नेत्रस्थाने क्लीं नमः। अस्त्रे ह्रीं नमः। उदरे श्रीं नमः। पृष्ठे क्रों नमः। तदनन्तर ध्यान-पूजन कर मध्य में हृल्लेखायै नमः। आगे गगनायै नमः, दक्षिण में रक्तायै नमः, उत्तर में करालिकायै नमः, पश्चिम में महोच्छुष्मायै नमः से पूजन कर पूर्ववत् अंगपूजन कर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन कर चतुरस्र में लोकपालों का पूजन कर पूजा का समापन करे।

इस मन्त्र का आठ लाख जप करे। दशांश हवन तिल से करे और तर्पण करे तब मन्त्र सिद्ध होता है।

नित्यक्लिन्नामन्त्रोद्धारादि

अथ नित्यक्लिन्नाप्रयोगः। सारसंग्रहे—

भुजङ्गेशसमारूढा लक्ष्मीर्लोलाक्षिसंयुता। श्रीमुखीविलसच्छीर्षा मेषो नयनसंयुतः॥१॥
पूतना सुमुखीयुक्ता महाकाली समाधवी। सूक्ष्मेण सहिता मेषद्वयं झिण्ठीशसंयुतम्॥२॥
जया च योगिनी चैव रेवतीयुक्च वारुणी। सोर्ध्वकेशी च सहजा खड्गीशं विरजान्वितम्॥३॥
सानन्तो नकुलीशश्च नित्यक्लिन्नामनुर्मतः। एकादशाक्षरः सर्वसौभाग्यैश्वर्यदायकः॥४॥ इति।

भुजङ्गेशो रेफः, लक्ष्मीः हकारः, लोलाक्षी ईकारः, श्रीमुखी बिन्दुः, एतैः ह्रीं। मेषो नकारः, नयनं इकारः, तेन नि। पूतना त, सुमुखी य, तेन त्य। महाकाली क, माधवी ल, सूक्ष्म इ, तेन क्लि। मेषद्वयं नकारद्वयं, झिण्ठीशः ए तेन न्ने। जया म, योगिनी द, रेवती रेफः चकारात्पुनर्दकारः तेन द्र। वारुणी व, ऊर्ध्वकेशी ए तेन वे। सहजा स, खड्गीशो व, विरजा आ तेन स्वा। नकुलीशो ह, अनन्तः आ तेन हा। तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा त्रिष्टुबुक्तं छन्दो मन्त्रस्य देवता। नित्यक्लिन्ना च गदिता चतुर्वर्गफलप्रदा॥५॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—'बीजमाद्यं वह्निजाया शक्तिर्न्ने कीलक'मिति 'विराट्छन्द' इति च।

आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम्। ततो द्वाभ्यां पुनर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वयेन च॥६॥
कुर्याच्छिष्टानि चाङ्गानि करयोश्च न्यसेत्क्रमात्। हृदि दृक्श्रोत्रयोर्द्वन्द्वे त्वचि लिङ्गे च गुह्यके॥७॥
पादयोश्चैव मन्त्रार्णान् विन्यसेन्मन्त्रवित्तमः। अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम्॥८॥
अरुणस्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम्। नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माम्बुमौक्तिकैः॥९॥
विराजमानां मुकुटलसदर्धेन्दुशेखराम्। चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम्॥१०॥

अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम्। ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यां प्राक्प्रोक्तशक्तिपीठके ।।११।।
पद्ममष्टदलं मध्ये वह्निगेहसमन्वितम्। चतुरस्रद्वयं बाह्ये प्राक्प्रत्यग्द्वारसंयुतम् ।।१२।।
तत्र मध्ये यजेद् देवीं चन्दनादिभिरुत्तमे। कर्णिकायोनिमध्यस्थदेशे वाय्वीशवह्निषु ।।१३।।
नैर्ऋत्यां पुरतो दिक्षु यजेदङ्गानि षट् क्रमात्। क्षोभिणी मोहिनी लोला त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ।।१४।।
नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा। मदद्रवा द्राविणी च द्रविणा चाष्ट पत्रगाः ।।१५।।
मदाविला मङ्गला च मन्मथार्ता मनस्विनी। मोहामोदा मानमयी माया मन्दा मितावती ।।१६।।
द्वारपार्श्वेषु कोणेषु दिक्षु ता दश पूजयेत्। लोकेशानपि तद्बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः ।।१७।। इति।

नित्यक्लिन्ना मन्त्र प्रयोग—सारसंग्रह में पठित श्लोक १-४ के उद्धार करने पर नित्यक्लिन्ना का मन्त्र होता है—ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता चतुर्वर्गफलप्रदा नित्यक्लिन्ना हैं। बीज ह्रीं, स्वाहा शक्ति और न्ने कीलक है।

मन्त्र के आद्य वर्ण से हृदय, फिर दो-दो वर्णों से शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र में न्यास करे। इसी प्रकार कर न्यास करे। मन्त्र वर्णों का न्यास इस प्रकार करे—हृदि ह्रीं नमः, दक्षनेत्रे निं नमः, वामे त्यं नमः, दक्षश्रोत्रे क्लिं नमः, वामे न्नें नमः, दक्षनासायां मं नमः, वामनासायां दं नमः। सर्वांगे द्रं नमः, लिङ्गे वें नमः, गुदे स्वां नमः। पादयोः हां नमः। तदनन्तर मूल विद्या से व्यापक न्यास करे। तब इस प्रकार ध्यान करे—

अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम्। अरुणस्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम्।।
नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माम्बुमौक्तिकैः। विराजमानां मुकुटलसदर्धेन्दुशेखराम्।।
चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम्। अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम्।।

इस प्रकार ध्यान करके पूर्वोक्त शक्तिपीठ पर नित्या की पूजा करे। अष्टदल कमल में त्रिकोण बनावे। इसके बाहर पूर्व-पश्चिम में द्वारयुक्त दो भूपुर बनावे। उसके मध्य में देवी की पूजा चन्दनादि से करे। कर्णिका में, वायव्य, ईशान, वह्नि, नैर्ऋत्य, आगे दिशाओं में षडङ्ग पूजन क्रम से करे। त्रिकोण के तीनों कोनों में क्षोभिणी, मोहिनी, लोला की पूजा करे। अष्टदल में नित्या, निरञ्जना, क्लिन्ना, क्लेदिनी, मदनातुरा, मदद्रवा, द्राविणी, द्रविणा—आठ की पूजा करे। भूपुर के द्वार-पार्श्वों में, कोणों में, दिशाओं में—मदाविला, मङ्गला, मन्मथार्ता, मनस्विनी, मोहा, आमोदा, मानमयी, माया, मन्दा, मितावती—इन दश शक्तियों की पूजा करे। उसके बाहर दश दिक्पालों और उनके दश आयुधों की पूजा करे।

नित्यक्लिन्नाप्रयोगहोमविधिः

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मद कवचाय हुं। द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, हृदि ह्रीं नमः। दक्षनेत्रे निं नमः। वामे त्यं नमः। दक्षश्रोत्रे क्लिं नमः। वामे न्नें नमः। दक्षनासायां मं नमः। वामे दं नमः। सर्वाङ्गे द्रं नमः। लिङ्गे वें नमः। गुदे स्वां नमः। पादयोः हां नमः, इति विन्यस्य मूलविद्यया व्यापकं कृत्वा ध्यानादिषडङ्गपूजान्ते, त्रिकोणे ॐक्षोभिण्यै नमः, मोहिन्यै०, लोलायै०, इति देव्यग्रादिकोणत्रये संपूज्याष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन नित्यायै नमः, निरञ्जनायै०, क्लिन्नायै०, क्लेदिन्यै०, मदनातुरायै०, मदद्रवायै०, द्राविण्यै०, द्राविणायै० इति संपूज्य, चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य वामपार्श्वमारभ्य मदाबिलायै०, मङ्गलायै०, मन्मथार्तायै०, मनस्विन्यै०, मोहायै०, आमोदायै०, मानमय्यै०, मायायै०, मन्दायै०, मितावत्यै०, इति द्वारपार्श्वद्वयाग्नेयदक्षिणनिर्ऋतिपश्चिमद्वारपार्श्वद्वयवायव्योत्तरेशानेषु दश दिक्षु संपूज्य, मध्यरेखायामिन्द्रादीन् सर्वबाह्यरेखायां वज्रादींश्च संपूज्य धूपदीपादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति।

प्रयोग—प्रात:कृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम:। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नम:। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नम:। तदनन्तर चतुर्विध पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये विनियोग करके हृदयादि षडङ्ग न्यास करे—ह्रीं हृदयाय नम:। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मद कवचाय हुं। द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्। तदनन्तर हृदि ह्रीं नम:। दक्षनेत्रे निं नम:। वामे त्यं नम:। दक्षश्रोत्रे क्लिं नम:। वामे न्नें नम:। दक्षनासायां मं नम:। वामे दं नम:। सर्वाङ्गे द्रं नम:। लिङ्गे वें नम:। गुदे स्वां नम:। पादयो: हां नम:—इस प्रकार न्यास करके मूल मन्त्र से व्यापक न्यास कर ध्यान एवं षडङ्ग पूजन कर त्रिकोण में ॐक्षोभिण्यै नम:, मोहिन्यै नम:, लोलायै नम: से पूजन कर अष्टदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से नित्यायै नम:, निरञ्जनायै नम:, क्लिन्नायै नम:, क्लेदिन्यै नम:, मदनातुरायै नम:, मदद्रवायै नम:, द्राविण्यै नम:, द्राविणायै नम: से पूजन कर चतुरस्र में देवी के आगे बाँयें से आरम्भ कर मदाबिलायै नम:, मङ्गलायै नम:, मन्मथार्तायै नम:, मनस्विन्यै नम:, मोहायै नम:, आमोदायै नम:, मानमय्यै नम:, मायायै नम:, मन्दायै नम:, मितावत्यै नम: से दशो दिशाओं में पूजन कर मध्य में इन्द्रादि का एवं सबसे बाहर वज्रादि आयुधों का पूजन कर धूप-दीप समर्पण कर पूजा का समापन करे।

नित्यक्लिन्नामन्त्रप्रयोगहोमविधि:

तथा—

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं मनुमेनं दशांशत:। मधूकपुष्पै: स्वाद्वक्तैर्जुहुयाद् हविषाथवा ॥१८॥
तद्दशांशं तर्पयित्वा जलै: कर्पूरवासितै:। आत्मानमभिषिच्याथ ब्राह्मणान् भोजयेत्तत: ॥१९॥
वित्तभूषाम्बराद्यैश्च संतोष्य गुरुमात्मन:। सिद्धमन्त्र: प्रकुर्वीत प्रयोगान् मन्त्रवित्तम: ॥२०॥
ततो विद्याप्रयोगार्हो नित्यार्चानिरतस्तथा। सहस्रजापी तद्भक्त: कुर्याद्युक्तं न चान्यथा ॥२१॥
पद्मै रक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। तथैव कैरवै रक्तै: राज्ञश्च स्ववशं नयेत् ॥२२॥
समानरूपवत्साया: शुक्लाया गो: पय:प्लुतै:। मल्लिकामालतीजातीशतपत्रैर्हुतैर्भवेत् ॥२३॥
स्वर्णाप्ति: स्तम्भनं शत्रोर्नृपादीनां क्रुधोऽपि वा। आज्याक्तै: करवीरोत्थै: प्रसूनैररुणैर्हुतै: ॥२४॥
रक्ताम्बराणि वनिता भूपमर्त्यं वशं नयेत्। भूषावाहनवाणिज्यसिद्धय: स्यु: स्ववाञ्छिता ॥२५॥
लवणै: सर्षपैर्गौरतिलैर्वापि च होमत:। तत्तैलाक्तैर्निशामध्ये त्वानयेद्वाञ्छितां वधूम् ॥२६॥
तैलाक्तैर्जुहुयात् कृष्णदरपुष्पैर्निशान्तरे। मासादरातिस्तीव्रार्तिज्वरेण परिपीड्यते ॥२७॥

तदनन्तर देवी का ध्यान करके इस मन्त्र का एक लाख जप करे। दशांश हवन त्रिमधुराक्त महुआ के फूलों से करे अथवा हविष्य से करे। हवन का दशांश तर्पण नुपूर से वासित जल से करे। अपना मार्जन करे। ब्राह्मणों को भोजन कराये। अन्न-धन वस्त्रादि से गुरु को सन्तुष्ट करे। तब सिद्ध मन्त्र का प्रयोग करे।

मन्त्र सिद्ध होने के बाद प्रयोग की अर्हता प्राप्त होती है। नित्य अर्चन में लगा रहे। प्रतिदिन एक हजार जप करे। हविष्यान्न भोजन करे; संयम नियम से युक्त करे, अन्यथा न करे। त्रिमधुराक्त लाल कमल के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। उसी प्रकार कैरव के हवन से राजा वश में होता है। उजले बच्चे वाली उजली गाय के दूध से प्लुत मल्लिका, मालती, जाती, शतपत्री के फूलों के हवन से सोना की प्राप्ति तथा शत्रु एवं क्रुद्ध राजा आदि का स्तम्भन होता है। गोघृत से सिक्त लाल कनैल के फूलों से हवन करने पर लाल वस्त्र मिलता है, वनिता तथा राजा वश में होते हैं; वस्त्र, वाहन, व्यापार में सिद्धि आदि स्ववांछित की प्राप्ति होती है। नमक, पीला सरसों, तिल को उसके तेल से सिक्त करके रात में हवन करने से देवी वांछित स्त्री को साधक के समीप ले आती हैं। तैलाक्त शंखपुष्पी से रात में हवन करने से एक महीने में शत्रु तेज बुखार से पीड़ित होता है।

आरुष्करघृताभ्यक्तैस्तद्बीजैर्निशि होमत:। ब्रणा: शरीरे शत्रो: स्युर्दु:साध्याश्च चिकित्सकै: ॥२८॥
तैरेव दलिताङ्गस्तु रिपुर्याति यमालयम्। तथा तत् तैलसंसिक्तैर्बीजैरङ्कोलजैरपि ॥२९॥
मरिचै: सर्षपाज्याक्तैर्निशि होमात्तु मासत:। वाञ्छितां च रमां कामज्वरार्तामानयेद् ध्रुवम् ॥३०॥

मरिचैः सर्षपोपेतैः सप्तरात्रं हुतैर्निशि । दानमानकुलैर्नित्यं दुःप्रापामानयेद्वधूम् ॥३१॥
अन्नाज्यैर्जुहुयान्नित्यं शतमष्टोत्तरं तु वा । तेनान्नपूर्णो भवने भोक्ता च भवति ध्रुवम् ॥३२॥
शालीभिराज्ययुक्ताभिर्होमाच्छालीनवाप्नुयात् । साध्यर्क्षवृक्षसंभूतामिष्टपादरजःकृताम् ॥३३॥
राजीमरिचलोणोत्थां पुत्तलीं जुहुयान्निशि । प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः ॥३४॥
नाभेरधस्ताद् हृदयाद् गलेनाकण्ठतस्तथा । शिरसश्च सुतीक्ष्णेन च्छित्त्वा शस्त्रेण वै क्रमात् ॥३५॥
एवं द्वादशधा होमान्नरनारीनराधिपाः । वश्या भवन्ति सप्ताहादरातिरस्य वाञ्छया ॥३६॥
प्रयाति निधनं चास्य वाञ्छयानन्ययोगतः । पिष्टेन गुडयुक्तेन मरीचैर्जीरकैर्युताम् ॥३७॥
कृत्वा पुत्तलिकां साध्यनामयुक्तामथो हृदि । सनामहोमसंपातघृते संपाच्य तां पुनः ॥३८॥
स्पृशन्निजकराग्रेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम् । अभ्यर्च्य तद्धृताभ्यक्तां भक्षयेत्तद्धिया जपन् ॥३९॥
नरनारीनृपास्तस्य वश्याः स्युर्मरणावधि । तैरेव पिष्टैर्वृत्तं तु कृत्वा तन्मध्यतस्तथा ॥४०॥
साध्यनाम स्फुटं कृत्वा प्राग्वत्संपाच्य भक्षणात् । वश्यास्ते वत्सरं भूयुस्तन्नामार्णान्वितैस्तथा ॥४१॥
कृत्वा विपाच्य खादंस्तु वशयेत्तांस्तदर्धकम् । नारिकेलफलाम्भोभिस्तर्पणाद्वनिता वशाः ॥४२॥
कर्पूरवासितैस्तोयैर्मनुष्याश्च वशे स्थिताः । तर्पणाल्लवणाम्भोभिः सर्वे स्युस्तस्य किङ्कराः ॥४३॥
तथा लवणयुक्तेन तोयेन वनिता वशाः । शुद्धेन वारिणा मासं तदर्धं सप्तवारकम् ॥४४॥
तर्पयेद्यस्य नाम्नैव स तस्य स्याद्वशेऽनिशम् । केतकीवासितैश्चेन्दुयुक्तैः केरफलोदकैः ॥४५॥
तर्पणाद्वनिता वश्या दद्युः प्राणान्निजं धनम् । नमेरुवासितैस्तोयैस्तर्पणाद्भूमिपा वशाः ॥४६॥
चम्पकैर्वासितजलैस्तर्पणं सर्वरञ्जनम् । पाटलीशतपत्राभ्यां वासितैस्तपर्णैर्जलैः ॥४७॥
सर्वलोकचमत्कारकारी भवति नित्यशः । कस्तूरीवासिताम्भोभिस्तर्पणं सर्वसिद्धिकृत् ॥४८॥
इन्दुचन्दनसौरभ्यवासिताम्भःप्रतर्पणम् । वाञ्छितार्थस्य संसिद्धिं मण्डलात्कुरुते ध्रुवम् ॥४९॥
(सिक्थमिश्रजलैराढ्यो धनधान्यादिभिश्चिरम् । गुडामिश्रजलै रात्रौ तर्पणं विघ्ननाशनम् ॥५०॥
चिञ्चाफलरसोपेतैर्जलैर्द्वेषाय तर्पयेत् ।) उष्णोदकैः समरिचैस्तर्पयेद् वैरिमृत्यवे ॥५१॥
केवलोष्णोदकेन स्यात्तीव्रज्वरसमुद्भवः । निम्बपत्ररसोपेतैरम्बुभिस्तर्पणाद् द्विषाम् ॥५२॥
जायतेऽन्योन्यवैरस्यं येन तो नाशमाप्नुयुः । तथैवात्युष्णसलिलैस्तर्पणाद्वैरिणो भृशम् ॥५३॥
अतिसारादिभिर्दोषैरौदरैः क्लेशमाप्नुयुः । वनितानवनीतस्य द्रावकोऽग्निर्जपादिना ॥५४॥
जायते साधको नित्यं कन्दर्पाधिकसुन्दरः । इति।

घृताक्त आरुष्कर और उसके बीज से रात में हवन करने पर शत्रु के शरीर में चिकित्सकों से असाध्य घाव होते हैं और उन घावों से पीड़ित शत्रु की मृत्यु हो जाती है। अंकोल के तेल से सिक्त अंकोलबीज या गोघृत में डुबोये मरिच, सरसों से रात में एक माह तक हवन करने से रमा कामपीड़ित वांछित स्त्री को साधक के पास ले आती है। मरिच सरसों मिलाकर सात रातों तक हवन करने से दुष्प्राप्य दान-मान-कुल की स्त्री को ला देती है। नित्य अन्न और गोघृत के एक सौ आठ हवनकर्त्ता के भवन में अन्नपूर्णा सदा विराजमान रहती हैं और कर्ता उनका भोग करता है। आज्यसिक्त शालि चावल के हवन से शालि चावल मिलता है। साध्य नक्षत्रवृक्ष के पिष्ट में उसके पैरों की धूलि राई, मरिच, नमक मिलाकर पुत्तली बनावे। रात में पुत्तली के पैर, जंघा, घुटना, दोनों उरु, नाभि से नीचे के भाग, हृदय से गला तक एवं गला से शिर तक तेज हथियार से काट-काटकर बारह भागों से बारह हवन करे तो नर-नारी-राजा या शत्रु एक सप्ताह में वश में हो जाते हैं। इस योग से वांछित शत्रु का प्राणान्त भी हो जाता है। साध्य नक्षत्रवृक्ष के पिष्ट में गुड़, मरिच, जीरा मिलाकर पुत्तली बनावे। साध्य का नाम उसके हृदय में लिखे। नामसहित हवन के सम्पात घी में उसे पकावे। उसे स्पर्श करके एक हजार मन्त्र जप करे। उसे घी से अभ्यक्त करके खा जाय और जप करे तो नर-नारी-नृप उसके वश में आजीवन रहते हैं। उसी प्रकार पिष्ट में साध्य नाम स्पष्ट लिखकर

पूर्ववत् पकाकर खाने से साल भर में साध्य उसके वश में हो जाता है। पुत्तली बनाकर पकाकर खाने से छः माह में साध्य वश में होता है। नारियल के जल से तर्पण करने पर वनिता वश में होती है। कपूरवासित जल से तर्पण करने पर मनुष्य वश में होते हैं। नमकीन जल से तर्पण करने पर सभी उसके दास हो जाते हैं। नमकीन जल से तर्पण करने पर वनिता वश में होती है। शुद्ध जल से एक महीना या आधा महीना प्रतिदिन सात बार तर्पण जिसके नाम से किया जाता है, वह वश में हो जाता है। केवड़ा-वासित जल में कपूर केरफल का जल मिलाकर तर्पण करने से वनिता वश में होकर अपना प्राण-धन तक साधक को दे देती है। नमेरु जल से तर्पण करने से राजा वश में होते हैं। चम्पावासित जल के तर्पण से सबों का रञ्जन होता है। गुलाब, शतपत्री-वासित जल से तर्पण करने पर साधक सर्वलोक चमत्कारकारी होता है। कस्तूरी-वासित जल से तर्पण सर्वसिद्धिप्रद होता है। कपूर, चन्दन, गन्ध से वासित जल से चालीस दिनों तक करने से वांछितार्थ सिद्ध होता है। सिक्थ-मिश्रित जल से तर्पण शीघ्र धन-धान्य से आढ्य कर देता है। गुड़ के शर्बत से तर्पण करने पर विघ्नों का नाश होता है। विद्वेषण के लिये चिञ्चाफल रसयुक्त जल से तर्पण करे। वैरी को मारने के लिये गर्म जल में मरिच मिलाकर तर्पण करे। केवल गर्म जल के तर्पण से तेज बुखार लग जाता है। नीम पत्र रसयुक्त जल के तर्पण से वैरियों में परस्पर द्वेष हो जाता है और इससे उनका नाश हो जाता है। बहुत गर्म जल से तर्पण करने पर वैरी अतिसार आदि उदर रोग से भी कष्ट पाते हैं। मक्खन को आग पर तपाकर जप करके खाने से साधक वनिताओं के लिये कामदेव से भी अधिक सुन्दर हो जाता है।

नित्यक्लिन्नामन्त्रान्तरविधिः

तथा—

प्रणवं चाथ हृल्लेखा वाग्बीजं नित्यशब्दतः। क्लिन्ने मदद्रवे वाचं मायामग्निवधूं वदेत् ॥१॥
नित्याक्लिन्नाभिधो मन्त्रः प्रोक्तः पञ्चदशाक्षरः।

हृल्लेखा ह्रीं, वाचम् ऐं, अग्निवधूः स्वाहाकारः। तथा—

ऋषिः संमोहनः प्रोक्तो विराडुक्तं च देवता। नित्यक्लिन्नाभिधा देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥२॥
विना वाग्भवबीजं तु द्विद्वियुग्मेषुयुग्मकैः। समस्तेनाङ्गषट्कं स्यान्नित्यक्लिन्नां स्मरेत्ततः ॥३॥

सुराब्धिमध्ये पृथुलं सुचारु द्वीपं स्मरेत् कल्पतरूपशोभि।
पिकालिभृङ्गावलिमञ्जुनादं मन्देन संसेवितमीरणेन ॥४॥
मनोज्ञवीरुत्कुसुमावकीर्णमुद्यच्छशाङ्कप्रतिमस्वरश्मिम्।
माणिक्यसङ्घामलमण्डपं च सिंहासनं रत्नमयं च तत्र ॥५॥
त्रिकोणमध्यं ललिताष्टपत्रं संचिन्त्य पद्मं स्मर तत्र देवीम्।
शीतांशुचूडामरुणोत्पलाभां करैः सपाशाङ्कुशकल्पवल्लीः ॥६॥
कपालमन्येन च धारयन्तीं द्वाभ्यां कराभ्यां कलनादवीणाम्।
त्रैलोक्यसंमोहनकारिणीं तां नित्यां भजे चारुरुचिं त्रिनेत्राम् ॥७॥ इति।

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये, तदादिमध्ययोरन्ये, तदधस्तनाभ्यां वीणा, इत्यायुधध्यानम्।

इति ध्यात्वा यजेत्पीठं चतुःशक्तियुतं सुधीः। सयोनिकर्णिकं पद्ममष्टपत्रविराजितम् ॥८॥
बहिः पञ्चदलं पद्मं तद्बहिर्दशपत्रकम्। चतुरस्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारविराजितम् ॥९॥
(इति संमोहनपञ्चरात्रोक्तमिति।

चतुर्दले द्राविण्यादीरीशाद्यश्रिषु पूजयेत्। प्रादक्षिण्येन मन्त्रज्ञ उच्यन्ते ता यथाक्रमम्) ॥१०॥
पूर्वा स्याद् द्राविणी वामा ज्येष्ठा साह्लादकारिणी। अपरा क्षोभिणी रौद्री गुह्यशक्तिश्चतुर्थिका ॥११॥
मायाद्यमासनं देयं मूर्तिं मन्त्रेण कल्पयेत्।

द्राविण्याद्यास्तिस्रो वामाद्यानां तिसृणां विशेषणभूताः। 'कोणेष्वैशादिमध्ये च तत्र शक्तीर्न्यसेदिमाः' इति

नारायणीयवचनस्य कोणेषु मध्ये चेत्यर्थः।

नित्यक्लिन्नां तत्र यजेद्वक्ष्यमाणेन वर्त्मना। केसरेष्वङ्गपूजां स्यात्पत्रेष्वेताः प्रपूजयेत्॥
सषण्ठाद्यन्तयुक्स्वरवर्जमष्टस्वरादिकाः ।

सषण्ठाद्यन्तयुक्स्वरवर्जमित्यर्थः। ऋॠऌॡसहितानुस्वारविसर्ग—अआइत्यष्टस्वररहिताः स्वरादिका इत्यर्थः।

नित्य क्लिन्ना का अन्य मन्त्र—नित्यक्लिन्ना का उपर्युक्त मन्त्र के अतिरिक्त दूसरा पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र होता है—ॐ ह्रीं ऐं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द विराट्, देवता चतुर्वर्गफलप्रदा नित्यक्लिन्ना हैं।

षडङ्ग न्यास—ॐ ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मदद्रवे ह्रीं कवचाय हुं। स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्। इस प्रकार अङ्गन्यास करने के बाद निम्नवत् ध्यान करे—

सुराब्धिमध्ये पृथुलं सुचारु द्वीपं स्मरेत् कल्पतरूपशोभि। पिकालिभृङ्गावलिमञ्जुनादं मन्देन संसेवितमीरणेन।।
मनोज्ञवीरुत्कुसुमावकीर्णमुद्यच्छशाङ्कप्रतिमस्वरश्मिम्। माणिक्यसङ्घामलमण्डपं च सिंहासनं रत्नमयं च तत्र।।
त्रिकोणमध्यं ललिताष्टपत्रं संचिन्त्य पद्मं .स्मर तत्र देवीम्। शीतांशुचूडामरुणोत्पलाभां करैः सपाशाङ्कुशकल्पवल्लीः।।
कपालमन्येन च धारयन्तीं द्वाभ्यां कराभ्यां कलनादवीणाम्। त्रैलोक्यसंमोहनकारिणीं तां नित्यां भजे चारुरुचिं त्रिनेत्राम्।।

ऊपरी बाँयें हाथ से लेकर निचले बाँयें हाथ तक उनके आयुधों का ध्यान करे। इस प्रकार ध्यान के बाद चार शक्तियुक्त पीठ पर यजन करे। पूजन यन्त्र में पहले त्रिकोण बनावे। उसमें चतुर्दल बनावे, उसके बाहर अष्टदल कमल, उसके बाहर पञ्चदल कमल, उसके बाहर दशदल कमल बनाकर, उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर बनावे। यह सम्मोहनपञ्चरात्र में कहा गया है। चतुर्दल में ईशानादि से प्रारम्भ कर द्राविण्यादि शक्तियों की पूजा प्रादक्षिण्य क्रम से करे। ये चार शक्तियाँ हैं—द्राविणी, वामा, ज्येष्ठा और क्षोभिणी। इनकी पूजा त्रिकोण के कोणों और मध्य में करे। बिन्दु में ह्रीं से आसन देकर मन्त्र से मूर्ति कल्पित करे। उसमें नित्यक्लिन्ना का पूजन विहित मार्ग से करे। केसर में अंग-पूजा करे। अष्ट पत्रों में नपुंसक वर्ण और उससे युक्त स्वर को छोड़कर आठ स्वरों को नाम के पहले लगाकर पूजा करे।

नित्यक्लिन्नामन्त्रान्तरप्रयोगविधिः

नित्यादिमा सुभद्रा समङ्गला वनचारिणी। सुभगा दुर्भगा स्यान्मनोन्मनी रुद्ररूपिणी॥१२॥
वल्लकीवादनपरा दूत्यो रक्ता मनोहराः। मदमन्थरगामिन्यः सुवेशाश्चारुभूषणाः॥१३॥
अरुणांश्चार्वलङ्कारान् पञ्च कामान् प्रपूजयेत्। व्योमसर्गाढ्यकन्दर्पबीजाद्यांस्ते त्वनङ्गकः॥१४॥
स्मरमन्मथकामाश्च मारः पञ्चम ईरितः। पञ्चपुष्पेषुपाशाह्वसाङ्कुशेक्षुधनुर्भृतः ॥१५॥
पृष्ठभागे तूणयुक्ताः शक्तीस्तत्पार्श्वसंस्थिताः। भूषायुक्ताः स्मेरवक्त्रकमलाः साधु पूजयेत्॥१६॥
सबिन्दुक्लीवौष्ठ्यवर्ज्यस्वरवर्गादिमादिकाः। ता रतिर्विरतिः प्रीतिर्विप्रीतिर्मतिदुर्मती॥१७॥
धृतिः स्याद्विधृतिस्तुष्टिर्वितुष्टिर्दश संस्मृताः। अरुणारुणभूषाढ्या वीणाहस्ताः स्मिताननाः॥१८॥
लोकपालांस्ततो बाह्ये तद्धेतीश्च ततो बहिः। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य ॐ ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै०। मदद्रवे ह्रीं कवचाय०। स्वाहा नेत्रत्रयाय०। ॐ ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य ध्यानादिपरतत्त्वान्तं पञ्चदलकेसरेष्वीशानकोणादि आं द्राविण्यै वामायै०। ईं ह्लादिन्यै ज्येष्ठायै०। ऊं क्षोभिण्यै रौद्र्यै०। ऐं गुह्यशक्त्यै० इति पीठशक्तीः संपूज्य, ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः, इति समस्तं पीठं संपूज्य मूलविद्यया मूर्तिं प्रकल्प्यावाहनादिषडङ्गपूजान्ते अष्टदलेषु इं नित्यायै०। ईं सुभद्रायै०। उं मङ्गलायै०। ऊं वनचारिण्यै०। एं सुभगायै०। ऐं दुर्भगायै० ओं मनोन्मन्यै०। औं

रुद्ररूपिण्यै०, इति संपूज्य, (तद्बहिः पञ्चदलेषु देव्यग्रादि ह्रीं: अनङ्गाय:०। ह्रीं स्मराय०। ह्रीं मन्मथाय०। ह्रीं कामाय०। ह्रीं: माराय०। इति संपूज्य ०) तद्बहिर्दशदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन कं रत्यै०। कां विरत्यै०। किं प्रीत्यै०। कीं विप्रीत्यै०। कुं मत्यै०। कूं दुर्मत्यै०। कों धृत्यै०। कौं विधृत्यै०। कं तुष्ट्यै०। कः वितुष्ट्यै०, इति संपूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति। तथा—

वह्निलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः। घृतेन तर्पणाद्यं च कृत्वा संतोष्य देशिकम् ॥१९॥
धनधान्यादिभिः सम्यक्प्रयागानाचरेत्ततः। एवं मन्त्रोदितान् सम्यक्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ॥२०॥
एवं यः पूजयेद्भक्त्या नित्यक्लिन्नां नरोऽन्वहम्। प्राप्नोति महतीं लक्ष्मी प्रार्थ्यते प्रमदाजनैः ॥२१॥ इति।

प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः। तदनन्तर ॐ ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मदद्रवे ह्रीं कवचाय हुं। स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्—इस प्रकार षडङ्ग मन्त्र से न्यास कर करन्यास कर ध्यानादि के पश्चात् पञ्चदल केशर के ईशानादि कोणों में आं द्राविण्यै वामायै नमः। ईं ह्लादिन्यै ज्येष्ठायै नमः। ऊं क्षोभिण्यै रौद्र्यै नमः। ऐं गुह्यशक्त्यै नमः से पीठशक्ति की पूजा करके ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः से समस्त पीठ की पूजा करके मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर आवाहन से षडङ्ग पूजन तक करके अष्टदल में इं नित्यायै नमः। ईं सुभद्रायै नमः। उं मङ्गलायै नमः। ऊं वनचारिण्यै नमः। एं सुभगायै नमः। ऐं दुर्भगायै नमः। ओं मनोन्मन्यै नमः। औं रुद्ररूपिण्यै नमः से पूजन कर उसके बाहर पञ्चदल में देवी के आगे से ह्रीं: अनङ्गाय: नमः। ह्रीं स्मराय नमः। ह्रीं मन्मथाय नमः। ह्रीं कामाय नमः। ह्रीं: माराय नमः से पूजन करके उसके बाहर दशदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से कं रत्यै नमः। कां विरत्यै नमः। किं प्रीत्यै नमः। कीं विप्रीत्यै नमः। कुं मत्यै नमः। कूं दुर्मत्यै नमः। कों धृत्यै नमः। कौं विधृत्यै नमः। कं तुष्ट्यै नमः। कः वितुष्ट्यै नमः से पूजन कर लोकपालों का पूजन कर पूजा का समापन करे।

इस मन्त्र का तीन लाख जप करे; दशांश हवन घी से करे। तर्पण आदि करके देशिक को धन-धान्यादि से सन्तुष्ट करे। तदनन्तर सम्यक् प्रयोग करे। मन्त्रोदित प्रयोग पूर्वोक्त विधि से करे। जो मनुष्य प्रतिदिन नित्यक्लिन्ना का पूजन भक्तिसहित करता है, उसे महती लक्ष्मी के साथ प्रमदाओं का भोग मिलता है।

वाग्वादिनीक्लिन्नामन्त्रप्रयोगः

तथा—

बालान्त्यहीना नित्यान्ते ह्रस्वं बिन्दुविवर्जितम्। कामबीजं नद्वयं च शिवयुक्च मदौ वदेत् ॥१॥
द्रान्तेऽम्बु शिवयुग्हादिजलानन्ताः सकान्ति खम्। अयं वाग्वादिनीक्लिन्नामन्त्रो द्वादशवर्णकः ॥२॥

बालाविद्या पूर्वोद्धृता सा अन्त्यहीना तृतीयबीजरहिता तेन ऐं क्लीं इति बीजद्वयमुद्धृतम्। नित्य स्वरूपं, कामबीजं ह्रस्वं ह्रस्वेकारयुक्तं बिन्दुविवर्जितं तेन क्लि इति। नद्वयं शिवयुगेकारयुक्तं तेन न्ने इति। मदौ मकारदकारौ, द्र स्वरूपं, अम्बु वकारः, शिव एकारः तद्युक्तं तेन वे इति। हादि सकारः, जलं वकारः, अनन्त आकारस्तैः स्वा इति। सकान्ति खम् आकारयुक्तो हकारः तेन हा इति।

संमोहननिचृन्नित्यक्लिन्ना मुन्यादिका मताः। वागभवेन षडङ्गानि कृत्वा नित्यां विचिन्तयेत् ॥३॥
रक्तां सुरक्तवसनामरुणाङ्गरागां हस्ताम्बुजैः कमलपाशसृणीन् कपालम्।
संबिभ्रतीं त्रिनयनां शशिशेखरां तां नित्यां स्मरेद्धृदि मदाकुलिताङ्गयष्टिम् ॥४॥

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम्।

शाक्ते पीठे यजेद्देवीं प्रोक्तेऽङ्गानि पुरा यजेत्। पूर्वोक्ताश्च ततो ह्यष्टशक्तीर्नित्यादिका यजेत् ॥५॥
अरुणा नीलकमलकपालाढ्यकराम्बुजाः। शतक्रत्वादिकान् बाह्ये वज्रादीनि ततो बहिः ॥६॥

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि संमोहनाय ऋषये

नमः। मुखे निचृच्छन्दसे नमः। हृदये नित्यक्लिन्नानित्यायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य इष्टसिद्धये विनियोगः इत्युक्त्वा, ऐं हृदयाय० इत्यादिकरषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानाङ्गपूजान्ते अष्टदलेषु पूर्वोक्तैकादशाक्षरोक्त-नित्याद्यष्टशक्तीः संपूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति।

वाग्वादिनी क्लिन्ना—वाग्वादिनी क्लिन्ना का मन्त्र है—ऐं क्लीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। वाग्वादिनी क्लिन्ना का यह मन्त्र बारह अक्षरों का है।

इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द निचृद्, देवता नित्यक्लिन्ना हैं। आं ईं ऊँ ऐं औं अः से षडङ्ग करके इस प्रकार नित्या का ध्यान करे—

रक्तां सुरक्तवसनामरुणाङ्गरागां हस्ताम्बुजैः कमलपाशसृणीन् कपालम्।
संबिभ्रतीं त्रिनयनां शशिशेखरां तां नित्यां स्मरेद्धृदि मदाकुलिताङ्गयष्टिम्।।

निचले दाँयें हाथ से शुरु करके निचले बाँयें हाथों तक में आयुधों का ध्यान करे।

प्रयोग—प्रातःकृत्य करके योगपीठ न्यास तक की क्रिया सम्पन्न कर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे निचृच्छन्दसे नमः। हृदये नित्यक्लिन्नानित्यायै नमः। इष्टसिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। ऐं हृदयाय नमः इत्यादि से षडङ्ग करे। ध्यान करके अंगपूजा करे। अष्टदल में पूर्वोक्त एकादशाक्षरोक्त नित्या की आठ शक्तियों की पूजा करे। लोकेशों की पूजा करके पूजा समाप्त करे।

तथा—

सम्बद्ध्यन्ता मता नित्यक्लिन्ना तद्वन्मदद्रवा। कामिकापञ्चमः कालः सविसर्गो दशाक्षरः ।।१।।
नित्यक्लिन्नामनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः ।
सम्बुद्ध्यन्ता नित्यक्लिन्ने, तद्वत् मदद्रवे, कामिकापञ्चमो नकारः कालो म सविसर्गो मः इति।

ऋषिरत्रिस्त्रिष्टुबुक्तं छन्दो नित्या च देवता ।।२।।
नित्यायै हृदयं स्वाहा नित्यायै शिर ईरितम्। क्लिन्नेस्वाहा शिखा नित्यक्लिन्नेन कवचं मतम् ।।३।।
नित्यक्लिन्ने नमश्चास्त्रं ध्यानं पूर्ववदाचरेत्। पूजादिकं चास्य मन्त्री पूर्ववत्परिकल्पयेत् ।।४।। इति।

अथ प्रयोगः—मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि अत्रये ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः, हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य सर्वाभीष्टार्थसिद्धये विनियोगः, इति प्राग्वदुक्त्वा मूलेन करयोर्व्यापकं कृत्वा, नित्यायै हृदयाय नमः। नित्यायै शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने स्वाहा शिखायै०। नित्यक्लिन्ने कवचाय हुं। नित्यक्लिन्ने नमः अस्त्राय फट्, इत्यङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिष्वपि नेत्रहीनेषु पञ्चाङ्गेषु न्यसेत्। ततो ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्वमन्त्रवत् कुर्यात्। तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः। तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ।।५।।
नित्यामन्त्रं जपेद्यः सहुतविधिजपैः सार्चनातर्पणैश्च
स स्याद् दारिद्र्यदुःखामयगणवियुतो वत्सराणां शतं च ।
जीवेद्विश्वं समग्रं वशयति मनुविन्मोहयत्याशु लोकं
देहान्ते मुक्तिमिष्टां परमतिविमलां प्राप्नुयान्नान्यथात्र ।।६।। इति।

नित्यक्लिन्ना का अन्य मन्त्र—नित्यक्लिन्ना का एक अन्य दश अक्षरों का मन्त्र होता है—नित्यक्लिन्ने मदद्रवे नमः। इसके भजन से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास करे। शिरसि अत्रये ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये नित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः। सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः। दोनों हाथों से मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे। षडङ्ग न्यास करे। नित्यायै हृदयाय नमः। नित्यायै शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। नित्यक्लिन्ने कवचाय

हुं। नित्यक्लिन्ने नमः अस्त्राय फट्। यह पञ्चाङ्ग न्यास होता है। इसी प्रकार करन्यास करे। तब ध्यान-पूजनादि पूर्व मन्त्र के समान करे।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। दशांश हवन तिल से करे। पूर्वोक्त विधि से तर्पणादि करे। नित्या मन्त्र का जप, हवन, तर्पण, अर्चन जो करता है, वह एक वर्ष में दरिद्रता, दु:ख, रोग से मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। सारा संसार उसके वश में होता है और देहान्त के बाद मोक्ष प्राप्त करता है, यह कथन अन्यथा नहीं है।

सारसंग्रहे—

प्रणवं भुवनेशानी जलं वह्न्यम्ब्वनन्तयुक्। ङेनतं सिनीपदं हृच्च नववर्णा समीरिता ॥१॥
विद्येयं वह्निवासिन्याः सर्वसौख्यफलप्रदा। यस्याः स्मरणतो वश्यं जायते भुवनत्रयम् ॥२॥ इति।

(जलं व, वह्निः स्वरूपं, अम्बु व, अनन्त आ, तद्युक्तस्तेन वा, ङेन्त सिनी सिन्यै, हृन्नमः।) दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् (२२ प०)—

ऋषिर्वसिष्ठश्छन्दः स्याद्गायत्री देवता त्वियम्। आद्यन्ते बीजशक्ती तु कीलकं मध्यमेव च ॥१॥ इति।

देवता त्वियं वह्निवासिनी। सारसंग्रहे—

विद्याद्वितीयबीजेन दीर्घस्वरयुजा सुधीः। मायान्तेन षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्री कराङ्गयोः ॥३॥
नवाक्षराणि विद्याया नवरन्ध्रेषु विन्यसेत्। व्यापकं च समस्तेन कुर्याद् देव्यात्मसिद्धये ॥४॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम्। चारुस्मेरमुखाम्भोजविलसन्नयनत्रयाम् ॥५॥
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम्। रक्ताब्जकम्बुपुण्ड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलान् ॥६॥
दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृङ्गकम्। पुष्पेषु मातुलुङ्गं च दधानां दक्षिणैः करैः ॥७॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। नवयोनिकर्णिकायां कृत्वा तद्बहिरम्बुजम् ॥८॥
द्वादशच्छदसंयुक्तं विदध्याच्च मनोहरम्। तद्बहिश्चतुरस्रे द्वे द्वारद्वयसमन्विते ॥९॥
पूर्वपश्चिमयोस्तस्मिंश्चक्रे देवीं समर्चयेत्। मध्ये समावाह्य वह्निवासिनीं विश्वविग्रहाम् ॥१०॥
गन्धपुष्पैर्निवेद्यान्तैरुपचारैर्यजेत् क्रमात्। अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य वक्ष्यमाणाश्च शक्तयः ॥११॥
अष्टकोणेषु संपूज्यास्तदग्रात्तु प्रदक्षिणम्। ज्वालिनीविस्फुलिङ्गिन्यो मङ्गला समनोहरा ॥१२॥
कनका कितवा विश्वा विविधा चेति शक्तयः। दलेषु द्वादशस्वेता राशिशक्तीः समर्चयेत् ॥१३॥
मेषां वृषाह्वयां शक्तिं मिथुनां कर्कटामपि। सिंहां कन्यां तुलां कीटां चापां च मकरामपि ॥१४॥
कुम्भां मीनां यजेत्प्राग्वदग्रादारभ्य मन्त्रवित्। चतुरस्रद्वारयुग्मपार्श्वयोः कोणदिक्षु च ॥१५॥
मन्त्रविद्वक्ष्यमाणश्च दश शक्तीः समर्चयेत्। घस्मरा सर्वभक्षा च विश्वा च विविधोद्भवा ॥१६॥
चित्ररूपा निःसपत्ना निरातङ्का च पावनी। अचिन्त्यवैभवा रक्ता दशमी परिकीर्तिता ॥१७॥
लोकपालांस्ततो बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः। पूजेयं वह्निवासिन्याः प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ॥१८॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि वशिष्ठाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीवह्निवासिनीनित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये ॐ बीजाय नमः, पादयोः नमः शक्तये नमः, नाभौ वह्निवासिन्यै कीलकायै नमः, इति विन्यस्य (ह्रींह्रौंमिति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ॐ नमः, वामे ह्रीं, दक्षकर्णे वं, वामे ह्निं, दक्षनसि वां, वामे सिं, मुखे न्यैं, लिङ्गे नं, गुदे मः नमः इति विन्यस्य) मूलविद्यया मूर्धादिपादान्तं व्यापकं कृत्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रमाणोक्तचक्रमुद्धृत्यार्घ्यस्थापना-दिस्वात्मपूजनान्ते भुवनेश्वरीपीठं संपूज्यावाहनादिपुष्पोपचारान्तेऽङ्गानि संपूज्य, अष्टयोनिषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन—ज्वालिन्यै नमः। विस्फुलिङ्गिन्यै०। मङ्गलायै०। मनोहरायै०। कनकायै०। कितवायै०। विश्वायै०। विविधायै नमः। इति अष्टशक्तीः संपूज्य, ततस्तद्बहिर्द्वादशदलेषु प्रादक्षिण्येन मेषायै नमः, वृषायै०, मिथुनायै०, कर्कटायै०, सिंहायै०, कन्यायै०,

तुलायै०, कीटायै०, चापायै०, मकरायै०, कुम्भायै०, मीनायै०, इति राशिशक्तीः संपूज्य, चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिण-भागमारभ्य प्रादक्षिण्येन घस्मरायै०, सर्वभक्षायै०, विश्वायै०, विविधोद्भवायै०, चित्ररूपायै०, निःसपत्नायै०, निरातङ्कायै०, पावन्यै०, अचिन्त्यवैभवायै०, रक्तायै०, इति देव्यग्रद्वारपार्श्वद्वयाग्नेयदक्षिणनिर्ऋतिवायव्यकोणेषु देव्याः पृष्ठभागद्वारपार्श्वादित ईशानकोणावधि संपूज्य तद्बाह्ये लोकपालांस्तदस्त्राणि संपूजयेत्। एतदुक्तफलदं भवति।

वह्निवासिनी मन्त्र—सारसंग्रह में पठित मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर वह्निवासिनी का नव अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार होता है—ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः। वह्निवासिनी की यह विद्या सर्व सौख्यदायिका है। इसके स्मरण-मात्र करने से तीनों लोक वश में होते हैं।

प्रात:कृत्य से योगपीठ न्यास तक करने के बाद मूल विद्या से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास शिरसि वसिष्ठाय ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये वह्निवासिनी नित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ॐ बीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ वह्निवासिन्यै कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके ह्रीं ह्रीं से करन्यास, षडङ्ग न्यास करे। तब मन्त्रवर्ण न्यास करे। दक्षनेत्रे ॐ नमः। वामे ह्रीं नमः। दक्षकर्णे वं नमः। वामे ह्निं नमः। दक्षनसि वां नमः। वामे स्तिं नमः। मुखे न्यैं नमः। लिङ्गे नं नमः। गुदे मः नमः। मूल विद्या से मूर्धा से पैरों तक व्यापक न्यास करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम्। चारुस्मेरमुखाम्भोजविलसन्नयनत्रयाम् ।।
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम्। रक्ताब्जकम्बुपुण्ड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलान् ।।
दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृङ्गकम्। पुष्पेषु मातुलुङ्गं च दधानां दक्षिणैः करैः।।

उपर्युक्त ध्यान के बाद मानस पूजन करे पहले नव त्रिकोण चक्र बनावे। उसके बाहर द्वादश दल कमल बनावे। उसके बाहर दो द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनावे। इसे स्थापित करे। अर्घ्य-स्थापनादि से आत्मपूजा तक की क्रिया करे। भुवनेश्वरी पीठ में देवी का पूजन पुष्पोपचार तक करे। तब कर्णिका में छः अंगों की पूजा करे।

अष्ट त्रिकोण में देवी के आगे से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे—ज्वालिन्यै नमः। विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। मंगलायै नमः। मनोहरायै नमः। कनकायै नमः। कितवायै नमः। विश्वायै नमः। विविधायै नमः। इन आठ शक्तियों की पूजा के बाद द्वादश दल में प्रादक्षिण्य क्रम से मेषायै नमः। वृषायै नमः। मिथुनायै नमः। कर्कटायै नमः। सिंहायै नमः। कन्यायै नमः। तुलायै नमः। कीटायै नमः। चापायै नमः। मकरायै नमः। कुम्भायै नमः। मीनायै नमः से पूजा करे। इन बारह राशिशक्तियों के बाद चतुरस्र में देवी के आगे वाले द्वार के दक्षिण भाग से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से घस्मरायै नमः। सर्वभक्षायै नमः। विश्वायै नमः। विविधोद्भवायै नमः। चित्ररूपायै नमः। निःसपत्नायै नमः। निरातंकायै नमः। पावन्यै नमः। अचिन्त्यवैभवायै नमः। रक्तायै नमः से देवी के आगे वाले द्वार पार्श्वद्वय, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, वायव्य कोणों में पृष्ठभाग द्वारपार्श्वादि से ईशान कोण तक इनकी पूजा करे। इसके बाहर लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे। वह्निवासिनी की यह पूजा समस्त समृद्धियों को देने वाली होती है।

तत्प्रयोगकाम्यहोमविधिः

तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः। तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ।।१९।।
सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत प्रयोगान्निजवाञ्छितान्। काम्यहोमविधिं वक्ष्ये सम्यग्वाञ्छितदायकम् ।।२०।।
शालितण्डुलमाधाय प्रस्थं भाण्डे नवे क्षिपेत्। समानवर्णवत्साया रक्ताया गोः पयस्तथा ।।२१।।
द्विगुणं तत्र निक्षिप्य श्नपयेत् संस्कृतेऽनले। घृतेन सिक्तं सम्यत्तु कृत्वा च ससितं करे ।।२२।।
निधाय विद्यामष्टोर्ध्वशतं जप्त्वा हुनेत्ततः। एवं होमो महालक्ष्मीमावहेत्प्रतिपत्कृतः ।।२३।।
शुक्रवारेष्वपि तथा वर्षान्नृपसमो भवेत्। पञ्चम्यां च विशेषेण प्राग्वद्धोमं समाचरेत् ।।२४।।
तस्यां तिथौ त्रिमध्वक्तैर्मल्लिकाद्यैः सितैर्हुनेत्। अन्नाज्याभ्यां च नियतं हुत्वा त्वाढ्यो भवेन्नरः ।।२५।।

**यद्यद्धि वाञ्छितं वस्तु तानि सर्वाणि सर्वदा। घृतहोमादवाप्नोति तथैव तिलतण्डुलैः ॥२६॥
पञ्चमीषु विशेषेण पूजां कुर्याद् व्रती भवेत्। इति।**

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन घी से करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन करावे। तदनन्तर इस सिद्ध मन्त्र से अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग करे। अब काम्य होम को कहता हूँ, जो सम्यक् वांछित फलदायक है। एक प्रस्थ = १ किलो शालि तण्डुल लेकर नये भाण्ड में रखे। लाल रंग के बछड़े वाली लाल गाय के दूध दो किलो उसमें डालकर संस्कृत आग में पकावे। उसमें घी डाले, शक्कर डाले। सबको मिलाकर १०८ बार विद्या का जप करे और हवन करे। प्रतिपदा में हवन करे तो महालक्ष्मी की कृपा होती है। प्रत्येक शुक्रवार में एक वर्ष तक हवन करे तो होता राजा के समान हो जाता है। विशेषकर पञ्चमी में पूर्ववत् हवन करे। उस तिथि में त्रिमधुराक्त मल्लिकादि उजले फूलों से हवन करे। अन्न और गोघृत के हवन से अन्न और घी से घर भरा रहता है। इच्छानुसार सभी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। घी और तिल चावल के हवन से भी उसी प्रकार के फल मिलते हैं। विशेषकर प्रत्येक पञ्चमी में व्रत रहकर पूजा करे।

वज्रप्रस्तारिणीविद्योद्धारादि

अथ वज्रप्रस्तारिणीप्रयोगः सारसंग्रहे—

**वज्रप्रस्तारिणीविद्यामिन्दिरामन्दिरं शुभम्। वच्मि लोकहितार्थाय यथावच्च समासतः ॥१॥
सर्वनारीनरपतिनरसंमोहकारिणीम् । कान्तारसागरक्रूरदुःखसंघाततारिणीम् ॥२॥
अरुणांक्रोधिनी शान्तियुक्ता सृष्टिक्रियाक्षियुक्। तपञ्चमद्वयं रुद्रयुक्तं ज्ञानामृतेन्दुयुक् ॥३॥
जयेन्द्वग्न्याप्यायनीयुग्दीर्घा विद्येव कामिका। क्षुधावर्ती विषं थान्तं पुनस्तद्वह्निसंयुतम् ॥४॥
उत्कारी शिवयुक्प्रोक्त्वा बीजमाद्यं पुनर्वदेत्। द्वदशार्णा महाविद्या प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ॥५॥**

अरुणा हकारः, अं स्वरूपं, क्रोधिनी रेफः, शान्तिरीकारः, एभिर्मायाबीजमुद्धृतम्। सृष्टिः ककारः, क्रिया लकारः, अक्षि इकारः, एभिः क्लि इति। तपञ्चमद्वयं नकारद्वयं, रुद्र एकारस्तद्युक्तं तेन न्ने। ज्ञानामृता ऐकारः इन्दुरनुस्वारस्तेन ऐं इति। जया ककारः, इन्दुरनुस्वारः, अग्नी रेफः, आप्यायनी ओकारस्तेन क्रों, दीर्घा न विद्या इ तेन नि, कामिका त, क्षुधावती य, तेन त्य। विषं म, थान्तं द, पुनस्तदेव दकारः, वह्नी रेफस्तद्युतं द्र। उत्कारी वकारः, शिव एकारः, तेन वे। आद्यबीजं मायाबीजम्। दक्षिणामूर्तिः (२२ प०)—

द्वादशार्णा पराविद्या ऋषिर्ब्रह्मा च गीयते। गायत्री छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी ॥१॥

परमेश्वरी वज्रेश्वरी। सारसंग्रहे—

**आद्यन्ते बीजशक्ती तु वाग्भवं कीलकं भवेत्। क्लिन्ने हृदयमैं प्रोक्तं शिरश्चैवाङ्कुशं शिखा ॥६॥
नित्य वर्म मद नेत्रं द्रवेऽस्त्रं समुदीरितम्। मायया पुटितानेतानङ्गषट्के प्रकल्पयेत् ॥७॥
प्रत्येकं शक्तिपुटितान् मन्त्रार्णान् दश विन्यसेत्। श्रोत्रनासाकपोलाक्षिनाभिगुह्येष्वनुक्रमात् ॥८॥
ततः संचिन्तयेद् देवीं सर्वसौख्यप्रदायिनीम्। रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमाल्यविभूषणम् ॥९॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। पाशाङ्कुशाविक्षुचापं दाडिमीसायकं तथा ॥१०॥
दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयामदसुशीतलैः। पश्यन्तीं साधकं त्र्यस्त्रषट्कोणाब्जमहीपुरे ॥११॥
चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम्। शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम् ॥१२॥
सिंहासनेऽभितः प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः। वृतां ताभिर्विनोदांश्च यातायातादिभिः सदा ॥१३॥
कुर्वाणामरुणाम्भोधौ चिन्तयेन्मन्त्रनायिकाम्।**

वज्रप्रस्तारिणी विद्या—सारसंग्रह में कहा गया है कि लक्ष्मी के आवासस्वरूप वज्रप्रस्तरिणी विद्या को लोककल्याण के लिये यथावत् कहता हूँ। यह सभी नारियों, राजाओं एवं मनुष्यों को सम्मोहित करने वाली है। जंगल, सागर, क्रूर दुःखसंघ

से पार उतारने वाली है। श्लोक ३-५ का उद्धार करने पर बारह अक्षरों की यह विद्या होती है—ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं। यह विद्या सर्वसिद्धिदा है।

इस द्वादशाक्षरी पराविद्या के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता परमेश्वरी वज्रेश्वरी हैं। ह्रीं बीज, क्लीं शक्ति एवं ऐं कीलक है। षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं क्लिन्ने हृदयाय नम:, ह्रीं क्रों शिरसे स्वाहा, ह्रीं नित्य शिखायै वषट्, ह्रीं मद कवचाय हुं, ह्रीं द्रवे अस्त्राय फट्। मन्त्र के दश वर्णों को ह्रीं से पुटित करके न्यास करे। जैसे—ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रोत्रे ह्रीन्ने ह्रीं नासायां इत्यादि। इसी प्रकार कपोल, आँख, नाभि, गुह्य में न्यास करे। तब सर्व सौख्यप्रदायिनी देवी का निम्नवत् ध्यान करे—

रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमाल्यविभूषणम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।।
पाशाङ्कुशाविक्षुचापं दाडिमीसायकं तथा। दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयामदसुशीतलै:।।
पश्यन्तीं साधकं त्र्यस्रषट्कोणाब्जमहीपुरे। चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम्।।
शक्तिभि: स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम्। सिंहासनेऽभित: प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभि:।।
वृतां ताभिर्विनोदांश्च यातायातादिभि: सदा। कुर्वाणामरुणाम्भोधौ चिन्तयेन्मन्त्रनायिकाम्।।

ध्यानोदिते मण्डले च शक्तिपीठसुशक्तिके ॥१४॥
शोणाब्धिं हेमपोतं च सिंहासनमनन्तरम्। तत्र चक्रं ततो देवीं सम्यगावाह्य पूजयेत् ॥१५॥
अरुणैर्गन्धकुसुमैर्धूपदीपनिवेद्यकै:। अङ्गानि पूजयेदादौ त्रिकोणस्थास्तु पूजयेत् ॥१६॥
इच्छाज्ञानक्रियासंज्ञा: षट्कोणेष्वर्चयेत्तत:। डाकिनीं राकिणीं चैव लाकिनीं काकिनीं तत: ॥१७॥
शाकिनीं हाकिनीं चैव पद्मद्वादशपत्रगा:। हृल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा ॥१८॥
निरञ्जना रागवती तथैव मदनावती। मेखला द्राविणी वेगवती द्वादश शक्तय: ॥१९॥
तत: षोडशपत्रेषु वक्ष्यमाणा: प्रपूजयेत्। कमला कामिनी कल्पा कला कलितकौतुके ॥२०॥
किराता कालकदने कौशिकी कम्बुवाहिनी। कातरा कपटा कीर्ति: कुमारी कुङ्कुमापि च ॥२१॥
चतुरस्रगताश्चापि शक्तीर्वक्ष्ये यथाक्रमात्। भगिनी वेगिनी नागा चपला पेशला सती ॥२२॥
रति: श्रद्धा भोगलोला मदोन्मत्ते मनस्विनी। दिक्षु द्वाराग्रपार्श्वेषु कोणदिक्षु च संस्थिता: ॥२३॥
द्वादशैता महादेव्यश्चतुरस्रेऽभितो यजेत्। यजेदाशाधिपान् बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहि: ॥२४॥
एतत्संपूजनान्मर्त्यो दारिद्र्यान्मुच्यतेऽचिरात्। रोगापमृत्युदौर्भाग्यजरादोषैर्विवर्जित: ॥२५॥
देहान्ते भवभीतेश्च मुच्यते नात्र संशय:। इति।

अथ प्रयोग:—तत्र प्रात:कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम:। मुखे गायत्री छन्दसे नम:। हृदये श्रीवज्रेश्वरीनित्यायै देवतायै नम:। पादयो: ह्रीं शक्तये नम:। नाभौ ऐं कीलकाय नम:, इति विन्यस्य ममेष्टार्थसिद्धये विनियोग:, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रींक्लिन्नेह्रीं हृदयाय नम:। ह्रींऐंह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रींक्रोंह्रीं शिखायै वषट्। ह्रींनित्यह्रीं कवचाय हुं। ह्रींमदह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रींद्रवेह्रीं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, दक्षश्रोत्रे ह्रींक्लिंह्रीं नम:। वामे ह्रींन्नेंह्रीं नम:। दक्षनसि ह्रींऐंह्रीं नम:। वामे ह्रींक्रोंह्रीं नम:। दक्ष कपोले ह्रींनिंह्रीं नम:। वामे ह्रींत्यह्रीं नम:। दक्षनेत्रे ह्रींमंह्रीं नम:। वामे ह्रींदंह्रीं नम:। नाभौ ह्रींद्रंह्रीं नम:। गुह्ये ह्रींवेंह्रीं नम:, इति विन्यस्य मूलविद्यया व्यापकं कृत्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते द्वादशदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां षट्कोणं तन्मध्ये त्रिकोणं, द्वादशदलाद्बहि: षोडशदलं तद्बहिश्चतुरस्रत्रयं चतुर्द्वारयुक्तं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरत: प्राग्वत् संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनादिकमात्मपूजान्तं कृत्वा पीठपूजायां मण्डूकादिपृथिव्यर्चान्ते शोणाब्धौ हेमपोतं तन्मध्ये रत्नसिंहासनं च संपूज्य, धर्मादिषडङ्गपूजान्ते त्रिकोणस्याग्रकोणमारभ्य ॐ इच्छाशक्त्यै नम:। ज्ञानशक्त्यै०। क्रियाशक्त्यै० इति संपूज्य, षट्कोणेषु देव्या वामकोणे डाकिन्यै नम:, दक्षिणे राकिण्यै०। पृष्ठकोणे

लाकिन्यै०। पृष्ठवामकोणे काकिन्यै०। पृष्ठदक्षिणकोणे शाकिन्यै०। देव्यग्रकोणे हाकिन्यै नमः, इति संपूज्य, द्वादशदलेषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन हृल्लेखायै नमः, क्लेदिन्यै०, क्लिन्नायै०, क्षोभिण्यै०, मदनातुरायै०, निरञ्जनायै०, रागवत्यै०, मदनावत्यै०, मेखलायै०, द्राविण्यै०, वेगवत्यै० इति संपूज्य, षोडशदलेषु कमलायै नमः, कामिन्यै०, कल्पायै०, कलायै०, कलितायै०, कौतुकायै०, किरातायै०, कालायै०, कदनायै०, कौशिक्यै०, कम्बुवाहिन्यै०, कातरायै०, कपटायै०, कीर्त्यै०, कुमार्यै०, कुङ्कुमायै० इति संपूज्य, चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य द्वारपार्श्वेषु कोणेषु च प्रादक्षिण्यक्रमेण भगिन्यै०, वेगिन्यै०, नागायै०, चपलायै०, पेशलायै०, सत्यै०, रत्यै०, श्रद्धायै०, भोगलोलायै०, मदायै०, उन्मत्तायै०, मनस्विन्यै० इति संपूज्य, लोकेशार्चादिसर्वं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

मन्त्री लक्षत्रयं जप्त्वा तद्दशांशं हुनेद् घृतैः। आरग्वधप्रसूनैर्वा प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः ॥२६॥
मधूकजैश्च पद्मैर्वा त्रिमध्यक्तैश्च मन्त्रवित्। चन्द्रचन्दनकस्तूरीकाश्मीरसुरभीकृतैः ॥२७॥
तर्पयेद् दिनशस्तद्वत्सलिलैर्भक्तिमान् सुधीः। आत्मानमभिषिच्याथ तर्पयेद् ब्राह्मणानपि ॥२८॥
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु नित्यार्चानिरतस्तथा। गुरुभक्तः प्रकुर्वीत प्रयोगान् निजवाञ्छितान् ॥२९॥

ध्यान में उदित मण्डल में शक्तियों से सम्पन्न शक्तिपीठ में शोणसागर में सोने के जहाज पर सिंहासन पर स्थित देवी का आवाहन करके लाल गन्ध, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा करे। पहले त्रिकोण में अंगों की पूजा करे। त्रिकोण में इच्छा, ज्ञान, क्रिया की पूजा करे। तब षट्कोण में डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी की पूजा करे। इसके बाद द्वादशदल कमल में हृल्लेखा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, क्षोभिणी, मदनातुरा, निरंजना, रागवती, मदनावती, मेखला, द्राविणी, वेगवती बारह शक्तियों की पूजा करे। तब षोडशदल कमल में कमला, कामिनी, कल्पा, कला, कलिता, कौतुका, किराता, काला, कदना, कौशिकी, कम्बुवाहिनी, कातरा, कपटा, कीर्ति, कुमारी एवं कुङ्कुमा की पूजा करे। चतुरस्र में देवी के सामने वाले द्वार पार्श्वों एवं दिक्कोणों में प्रदक्षिण क्रम से भगिनी, वेगिनी, नागा, चपला, पेशला, सती, रति, श्रद्धा, भोगलोला, मदा, उन्मता, मनस्विनी की पूजा करे। तब इन्द्रादि दिक्पालों और उनके आयुधों की पूजा करके पूजन का समापन करे।

तदनन्तर तीन लाख मन्त्र जप करे। दशांश हवन घी आरग्वध फल या वकुल के फूल, महुआ फूल या कमल को त्रिमधुराक्त करके करे। तर्पण, मार्जन करके ब्राह्मणभोजन कराये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर नित्या अर्चन में निरत रहकर साधक गुरुभक्त बनकर अपना वांछित प्रयोग करे।

तत्काम्यहोमद्रव्यविधानम्

सहस्रजापी स्थिरधीर्मन्त्रवीर्यविदात्मवान्। यः सोऽपि काम्यान् कुर्वीत प्रयोगान्नान्यथा क्वचित् ॥३०॥
यदाज्ञानेन मोहेन चापलेनाथ वाचरेत्। अनर्थक्लेशराजादिपीडाः प्राप्नोति निश्चितम् ॥३१॥
अरुणैः पङ्कजैर्होमं कुर्यात्त्रिमधुराप्लुतैः। मण्डलाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम् ॥३२॥
कह्लारैः क्षौद्रसंयुक्तैः पूर्णाद्यं तद्दिनावधि। जुहुयान्नित्यशो भक्त्या सहस्रं विकचैः शुभैः ॥३३॥
तत्तद् दिनेषु पूर्वोक्तान् भोजयेदुक्तरूपतः। तावच्च जप्याद्धोमोऽथ यावत्संख्यं हुतं कृतम् ॥३४॥
चम्पकैः क्षौद्रसंसिक्तैः सहस्रहवनाद् ध्रुवम्। लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन पूर्ववत् ॥३५॥
पाटलैर्घृतसंसिक्तैस्त्रिसहस्रहुतैस्तथा। दर्शादिमासाल्लभते चित्राणि वसनानि च ॥३६॥
कर्पूरचन्दनाद्यानि सुगन्धीनि च मासतः। वस्तूनि लभते हृद्यैरन्यैर्भोगोपयोगिभिः ॥३७॥
शालीभिः क्षीरसिक्ताभिर्मन्त्रविच्च शतं हुनेत्। तेन शालीसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम् ॥३८॥
तिलैर्हुनेन्नवशतं वर्षादारोग्यमाप्नुयात्। स्वजन्मसु त्रिषु तथा दूर्वाभिर्जुहुयात्सुधीः ॥३९॥
निरातङ्को महाभोगः शतं वर्षाणि जीवति। गुडूचीतिलदूर्वाभिः त्रिषु जन्मसु संहुनेत् ॥४०॥

चिरायुः श्रीयशोधान्यभोगपुण्यादिभाग्भवेत्। घृतपायसदुग्धैश्च हुतैस्तेषु त्रिषु क्रमात् ॥४१॥
आयुरारोग्यविभवैः नृपमान्यो भवेत्तथा। सप्तम्यां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभते ध्रुवम् ॥४२॥
दूर्वात्रिकैस्तु प्रादेशमात्रैः त्रिस्वादुसंयुतैः। षण्मासादब्दतो वापि रोगान्मुक्तः सुखी भवेत् ॥४३॥

हजार जपकर्ता, स्थिर बुद्धि, मन्त्रवीर्य का जानकार होने पर ही काम्य प्रयोगों को साधक करे; अन्यथा कभी न करे। यदि अज्ञान से, मोह से या चपलता से कोई प्रयोग करता है तो अनर्थ, क्लेश एवं राजादि से पीड़ा उसे निश्चित रूप से प्राप्त होती है। त्रिमधुराक्त लाल कमल से हवन चालीस दिनों तक करे तो प्रशंसनीय स्वरूप वाली महान् लक्ष्मी प्राप्त होती है। मधुमिश्रित कल्हार के विकसित फूलों से पूर्णिमा से पूर्णिमा तक प्रतिदिन एक हजार हवन करे, पूर्वोक्त ब्राह्मणों को उतने दिनों तक भोजन करावे, जप के बराबर हवन करे तो उक्त फल मिलता है। मधुसिक्त चम्पा के हजार फूलों के हवन से एक माह में एक सौ सोने के सिक्के मिलते हैं। अमावस्या से अमावस्या तक एक महीने घृतसिक्त गुलाब के फूलों से तीन हजार हवन प्रतिदिन करने से विविध भाँति के वस्त्र मिलते हैं। कपूर, चन्दनादि सुगन्ध से एक महीने तक हवन करने से इच्छित वस्तुओं के साथ अन्य उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। दूधसिक्त शालि चावल से मन्त्रोच्चारण के साथ हवन करने से छः महीनों में शालि चावल की समृद्धि प्राप्त होती है। तिल से नव सौ हवन करने पर एक वर्ष में आरोग्य प्राप्त होता है। अपने तीनों जन्मदिनों में दूर्वा से हवन करने पर साधक निरातंक महाभोग भोगते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहता है। तीनों जन्मदिनों में गुरुच, तिल और दूर्वा के हवन से चिरायु, श्री, यश, धन-धान्य, भोग, पुण्यादि से युक्त होता है। घी पायस दूध से हवन तीन जन्मदिनों में क्रम से करने पर आयु-आरोग्य-वैभव के साथ साधक नृपमान्य होता है। सप्तमी में केला के हवन से सौभाग्य प्राप्त होता है। त्रिमधुराक्त बिता भर लम्बा दूर्वात्रिक के हवन से छः माह या एक वर्ष में रोगमुक्त होकर सुखी होता है।

तद् दिनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन्। सहस्रवारं तत्तोयैः स्नानं पानं समाचरेत् ॥४४॥
पाकाद्यमपि तैरेव कुर्याद्रोगविमुक्तये। साध्यर्क्षवृक्षसंचूर्णत्र्यूषणं सर्षपास्तिलाः ॥४५॥
पिष्टञ्च साध्यपादोत्थरजसा च समन्वितम्। कृत्वा पुत्तलिकां तैस्तु हृदये नामसंयुताम् ॥४६॥
प्राग्वच्छित्त्वायसैस्तीक्ष्णैः शस्त्रैः पुत्तलिकां हुनेत्। एवं दिनैः सप्तकैर्वा त्रिभिर्वैकदिनेन वा ॥४७॥
साध्यो वश्यो भवेच्छीघ्रमतिदूरस्थितोऽपि च। तथाविधां पुत्तलिकां कुण्डमध्ये खनेद्भुवि ॥४८॥
उपर्यग्निं निधायात्र विद्यया दिनशो हुनेत्। त्रिसहस्रं त्रियामायां सर्षपैस्तद्रसाप्लुतैः ॥४९॥
शतयोजनदूरादप्यानयेद्वनितां बलात्। तां तु पुत्तलिकामर्धमधूच्छिष्टसमन्विताम् ॥५०॥
कृतप्राणप्रतिष्ठां च श्मशाने निखनेन्निशि। साध्ययोनिं च तत्रैव च्छित्वा दत्त्वा बलिं ततः ॥५१॥
कृत्वाभिषेकं तां विद्यां प्रजपेच्च शतत्रयम्। अरातेरष्टमे राशौ मासान्नानाविधैरपि ॥५२॥
रौगैर्भूतादिसंक्लेशैर्नाशमेति सुनिश्चितम्। यद्यन्तरात्समुद्धृत्य सलिले तां खनेन्निशि ॥५३॥
क्लेशैस्तैः स विनिर्मुक्तः सुखी जीवति भूतले। साध्यवृक्षेण कृत्वा तां सर्षपाज्यनिवेशिताम् ॥५४॥
तोयमध्ये निधायैतत् क्वाथयेदुक्तवासरैः। वैरी घोरज्वरेणार्तः कृते प्राग्वत्सुखी भवेत् ॥५५॥
तामेव चण्डिकागेहे तथा बलियुतां खनेत्। साध्यो नरश्चेन्नारी चेच्छास्तुरायतने खनेत् ॥५६॥
तद्विधानेन सततं शत्रुरुन्मादवान् भवेत्। इति।

सप्तमी को जल का स्पर्श करके हजार बार मन्त्र जप करे और उसी जल से स्नान करे। उसका पान करे एवं उसी से खाना पकावे-खाये तो रोग से छुटकारा होता है। साध्य नक्षत्रवृक्षचूर्ण त्र्यूषण सरसों तिल पिष्ट में साध्य के पदतल की धूल मिलाकर पुत्तली बनावे। उसके हृदय में नाम लिखे। तेज औजार से पुत्तली को पूर्ववत् काट-काटकर सात दिनों तक तीन दिनों तक या एक दिन हवन करे तो साध्य वश में हो जाता है, बहुत दूर रहने वाला भी वश में होता है। उसी प्रकार पुत्तली बनाकर कुण्ड में गाड़ दे, उसके ऊपर आग जलाकर दिन में तीन हजार हवन सरसों के रस से प्लुत सरसों से करे तो सौ योजन दूर रहने वाली वनिता को भी बलपूर्वक ले आती है। पूर्वोक्त प्रकार की पुत्तली में मोम लगाकर प्राण-प्रतिष्ठा करके

रात में श्मशान में गाड़ दे। वहाँ पर साध्य योनि के जीव की बलि काटकर देवे। अभिषेक करे। तीन सौ विद्या का जप शत्रु की अष्टम राशि में करे तो एक महीने के अन्दर शत्रु नाना प्रकार के रोग और भूतादि से पीड़ित होकर मर जाता है एवं यदि श्मशान में गड़ी पुत्तली को निकालकर जल में गाड़ दे तब शत्रु क्लेशमुक्त होकर संसार में सुखी जीवित रहता है। साध्य वृक्ष की पुत्तली बनाकर सरसों और गोघृत उसमें निवेदित करके जल में डाल कर उसका क्वाथ बनावे तो वैरी बुखार से आर्त होता है। पूर्ववत् मूर्ति को जल में डालने से रोगी सुखी होता है। इसी प्रकार चण्डिका मन्दिर में पुत्तली को गाड़कर बलि देने से साध्य नर या नारी पागल होता है। उसी प्रकार शत्रु के घर में पुत्तली गाड़ने से वह उन्मादग्रस्त हो जाता है।

वज्रप्रस्तारिणीमन्त्रान्तरम्

तथा—

अथ वाग्वादिनीक्लिन्नाद्वितीयार्णे तु योजयेत्। माया मेषा द्वादशार्णा वज्रप्रस्तारिणी मता॥१॥

वाग्वादिनी क्लिन्ना पूर्वोक्ता तस्या द्वितीयार्णे द्वितीयार्णस्थाने मायां भुवनेश्वरीबीजं योजयेत्, तत्र स्थितं कामबीजमपास्येत्यर्थः। तथा—

मुनिः स्यादङ्गिरास्त्रिष्टुप् छन्दः प्रोक्तोऽस्य देवता। वज्रप्रस्तारिणी प्रोक्ता सर्वराजवशंकरी॥२॥
बीजेनाद्येन चाङ्गानि कल्पयेत्षट् क्रमात्सुधीः। ध्यानपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत्॥३॥

पूर्ववद्वज्रप्रस्तारिणीवत्। ह्रींह्रीमित्यादिना षडङ्गन्यासः। अन्यत्सुगमम्।

वज्रेश्वरी का अन्य मन्त्र—वज्रेश्वरी का अन्य मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं क्लिन्ने ऐं ह्रीं नित्यमदद्रवे ह्रीं। इसके ऋषि अंगिरा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सर्वराजवशंकरी वज्रेश्वरी हैं। ह्रां ह्रीं ह्रूं से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। ध्यान पूजा आदि सब कुछ पूर्ववत् होता है।

शिवदूतीमनोरुद्धारादि

अथ शिवदूती, सारसंग्रहे—

भुवनेशी चतुर्थ्यन्तशिवदूतीपदं सहृत्। सप्तार्णोऽयं मनुः प्रोक्तः शिवदूत्यास्त्रिवर्गदः॥१॥

भुवनेशी ह्रीं, चतुर्थ्यन्तशिवदूती शिवदूत्यै, हृन्नमः। दक्षिणामूर्तिः (२२ प०)—

ऋषी रुद्रोऽस्या गायत्री छन्दः स्याद्देवता शिवा। आद्यन्ते बीजशक्ती च मध्यं कीलकमुच्यते॥१॥

शिवा शिवदूती। तथा—

षड्दीर्घस्वरयुक्तेन बीजेनाद्येन कल्पयेत्। षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित्॥२॥
तेनैव पुटितैरन्यैर्मन्त्रार्णैर्विन्यसेत् तनौ। श्रोत्रनासाकपोलाक्षिनाभिषु क्रमतः सुधीः॥३॥
षष्ठं मनसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत्। निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम्॥४॥
नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम्। नानाभरणसंभिन्नदेहकान्तिविराजिताम्॥५॥
शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः। पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः॥६॥
दक्षिणैरङ्कुशं खड्गं कुठारं कमलं तथा। दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम्॥७॥
ध्यात्वैवं पूजयेद्देवीं दूतीं दूरितनाशिनीम्। वृत्तद्वयं बहिस्त्र्यस्रं तद्द्वयं षड्दलाम्बुजम्॥८॥
तथा षडस्रमष्टास्रं तद्वदष्टदलाम्बुजम्। भूपुरं वह्निवासिन्याः कृत्वा तन्मध्यगां शिवाम्॥९॥
आवाह्याभ्यर्चयेद्देवीं दूतीं दुर्नीतिवारिणीम्। शाक्ते पीठे गन्धपुष्पैरुपचारैः समाहितः॥१०॥
वृत्तमध्ये द्वितीये च वृत्ते चाङ्गानि पूजयेत्। इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः त्रिषु कोणेषु पूजयेत्॥११॥
शिवां वाणीं दूरसिद्धां त्यैविग्रहवतीमपि। नादां मनोन्मनीं षट्सु पत्रेषु परिपूजयेत्॥१२॥
डाकिन्याद्याः षडस्रेषु सर्वास्त्वग्रात्प्रदक्षिणम्। मूलदेवीसमाकारवर्णायुधसमन्विताः॥१३॥

सुमुखी सुन्दरी सारा सुमना च सरस्वती। समया सर्वगा सिद्धेत्युक्ता अष्टास्त्रशक्तयः ॥१४॥
वागीशी वरदा विश्वा विनदा विघ्नकारिणी। वीरा विघ्नहरा विद्या पूज्याः पत्राष्टके त्विमाः ॥१५॥
विह्वलाकर्षिणी लोला नित्या मदनमालिनी। प्रमोदा कौतुका पुण्या पुराणा चतुरस्त्रगाः॥१६॥
पूज्या बाह्ये लोकपालास्तदस्त्राणि च तद्बहिः। एवं पूजा मया प्रोक्ता शिवदूत्या यथाविधि ॥१७॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि रुद्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीशिवदूतीनित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ शिवदूत्यै कीलकाय नमः, इति विन्यस्य सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति प्राग्वदुक्त्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे चन्दनादिना वृत्तद्वयं कृत्वा (तद्बहिः स्वाभिमुखाग्रं त्र्यस्त्रं तद्बहिः पुनर्वृत्तद्वयं तद्बहिः षड्दलपद्मं) तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिरष्टकोणं तद्बहिरष्टदलं कमलं तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोर्द्वारद्वययुक्तं चतुरस्त्रत्रयमिति पूजाचक्रं, निर्माय, संस्थाप्य अर्घ्यस्थापनादिपुष्पोपचारान्ते वृत्तान्तराले षडङ्गानि प्राग्वत् संपूज्य, त्रिकोणस्याग्रकोणादिप्रादक्षिणेन ॐ इच्छाशक्त्यै नमः। ज्ञानशक्त्यै०। क्रियाशक्त्यै०, इति संपूज्य, षड्दलेषु शिवायै नमः। वाण्यै० दूरसिद्धायै० त्यैविग्रहवत्यै० नादायै० मनोन्मन्यै० इति संपूज्य, षट्कोणेषु देव्यग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन हाकिन्यै नमः। राकिण्यै० शाकिन्यै० लाकिन्यै० काकिन्यै० डाकिन्यै० इति संपूज्य, अष्टकोणेषु सुमुख्यै नमः, सुन्दर्यै० सारायै० सुमनायै० सरस्वत्यै० समयायै० सर्वगायै० सिद्धायै० इति संपूज्य, अष्टदलेषु वागीश्यै नमः, वरदायै० विश्वायै० विनदायै० विघ्नकारिण्यै० वीरायै० विघ्नहरायै० विद्यायै० इति संपूज्य, चतुरस्त्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन विह्वलायै नमः, आकर्षिण्यै० लोलायै० नित्यायै० मदनायै० मालिन्यै० प्रमोदायै० कौतुकायै० पुण्यायै० पुराणायै० इति संपूज्य, लोकपालार्चादि प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात् साधकोत्तमः। तद्दशांशं पयोन्नेन सर्पिरक्तेन मन्त्रवित् ॥१८॥
तर्पयेत्तद्दशांशेन सुगन्धिसलिलैः शुभैः। आत्मानमभिषिच्याथ ब्राह्मणांस्तोषयेद्गुरुम् ॥१९॥

शिवदूती—सारसंग्रह में पठित श्लोक का उद्धार करने पर शिवदूती का सप्ताक्षरी मन्त्र होता है—ह्रीं शिवदूत्यै नमः। दक्षिणामूर्ति के अनुसार इस मन्त्र के ऋषि रुद्र, छन्द गायत्री, देवता शिवा हैं तथा ह्रीं बीज, नमः शक्ति और शिवदूत्यै कीलक है। षडङ्ग न्यास ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से किया जाता है। ह्रीं से पुटित मन्त्रवर्णों का न्यास कान, नाक, कपोल, आँख में होता है। पूरी विद्या से व्यापक न्यास किया जाता है। तदनन्तर निम्नवत् ध्यान करे—

निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम्। नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम्।।
नानाभरणसंभिन्नदेहकान्तिविराजिताम्। शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः।।
पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः। दक्षिणैरङ्कुशं खड्गं कुठारं कमलं तथा।।
दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम्।

ध्यान के पश्चात् मानस पूजन करके सुवर्ण आदि के पट्ट पर चन्दन आदि से दो वृत्त बनाकर, उसके बाहर स्वाभिमुखाग्र त्रिकोण, उसके बाहर पुनः दो वृत्त, उसके बाहर षड्दल कमल, उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टकोण, उसके बाहर अष्टदल कमल, उसके बाहर पूर्व और पश्चिम की ओर द्वारयुक्त तीन चतुरस्त्र वाले पूजाचक्र को बनाकर स्थापित करके अर्घ्य-स्थापन से पुष्पोपचार तक पूजन कर वृत्तों के मध्य में पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करके त्रिकोण के अग्रिम कोण से प्रदक्षिण क्रम से ॐ इच्छाशक्त्यै नमः, ज्ञानशक्त्यै नमः, क्रियाशक्त्यै नमः से पूजन कर छः दलों में शिवायै नमः, वाण्यै नमः, दूरसिद्धायै नमः, त्यैविग्रहवत्यै नमः, नादायै नमः, मनोन्मन्यै नमः, से पूजन कर षट्कोण में देवी के सम्मुखस्थ कोण से प्रदक्षिण क्रम से हाकिन्यै नमः, राकिण्यै नमः, शाकिन्यै नमः, लाकिन्यै नमः, काकिन्यै नमः, डाकिन्यै नमः, पूजन कर अष्टकोण में सुमुख्यै नमः, सुन्दर्यै नमः, सारायै नमः, सुमनायै नमः, सरस्वत्यै नमः, समयायै नमः, सर्वगायै नमः, सिद्धायै नमः, पूजन कर अष्टदलों में वागीश्यै नमः, वरदायै नमः, विश्वायै नमः, विनदायै नमः, विघ्नकारिण्यै नमः, वीरायै नमः, विघ्नहरायै नमः, विद्यायै नमः से पूजन करके चतुरस्त्र में देवी के अग्रस्थित द्वार के दक्षिण भाग से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से विह्वलायै नमः, आकर्षिण्यै

नमः, लोलायै नमः, नित्यायै नमः, मदनायै नमः, मालिन्यै नमः, प्रमोदायै नमः, कौतुकायै नमः, पुण्यायै नमः, पुराणायै नमः से पूजन कर लोकपालादि का अर्चन पूजा का समापन करे।

तदनन्तर एक लाख मन्त्र जप करे। दशांश हवन दूध-घी से सिक्त अन्न से करे। हवन का दशांश तर्पण सुगन्धित जल से करे। मार्जन करे और ब्राह्मणभोजन कराये।

शिवदूतीमन्त्रप्रयोगकाम्यहोमविधिः

एवं संसिद्धमन्त्रस्तु प्रयोगान् कर्तुमर्हति। काम्यहोमविधिं वक्ष्ये सम्यक्सङ्कल्पसिद्धिदम् ॥२०॥
येनासौ वाञ्छितं क्षिप्रमवाप्नोति सुनिश्चितम्। वशयेद्वनिता होमाद् गुग्गुलैस्तिलमिश्रितैः ॥२१॥
नारिकेलसमोपेतैर्गुडैर्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। तथाज्यसिक्तैः कह्लारैः क्षीराक्तैररुणोत्पलैः ॥२२॥
त्रिमध्वक्तैश्चम्पकैश्च प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः। मधूकजप्रसूनैश्च हुतैः कन्यामवाप्नुयात् ॥२३॥
पुंनागजैर्हुतैर्वस्त्राण्याज्यैरिष्टमवाप्नुयात्। माहिषैर्महिषीराजैरजा गव्यैश्च गास्तथा ॥२४॥
अवाप्नोति हुतैः साज्यै रत्नै रत्नानि साधकः। शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं सितसंयुताम् ॥२५॥
हृद्देशे न्यस्तसाध्याख्यां पचेत्तैलाज्ययोर्निशि। तां मन्त्री च दिवा रात्रौ विद्याजप्तां तु भक्षयेत् ॥२६॥
सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नृपोऽथवा। दासवच्च समायाति वित्तं प्राणादि चार्पयेत् ॥२७॥
हयारिपुष्पैररुणैः सितैर्वा जुहुयात्तथा। त्रिसप्तरात्रान्महतीमवाप्नोति श्रियं नरः ॥२८॥
छागमांसैस्त्रिमध्वक्तैर्होमात् स्वर्णमवाप्नुयात्। क्षीराक्तैः शस्यसंपन्नां भुवं प्राप्नोति मण्डलात् ॥२९॥
पद्माक्षैर्हवनाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः। समस्तापत्तारिणीयं मोहिनी विश्वरञ्जिनी ॥३०॥
श्रीकरी शिवदूत्याह्वा प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा। इति।

इस प्रकार से मन्त्रसिद्धि होने पर प्रयोग करने की अर्हता प्राप्त होती है। अब सम्यक् संकल्प सिद्धिप्रद काम्य होम का वर्णन करता हूँ, जिससे वांछित शीघ्र प्राप्त होता है। तिल और गुग्गुल मिलाकर हवन करने से वनिता वश में होती है। नारियल और गुड़ के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। आज्यसिक्त कल्हार, दूधसिक्त लाल कमल, त्रिमधुराक्त चम्पा, बकुल, महुआ के फूलों के हवन से विवाह होता है, कन्या मिलती है। पुन्नाग के हवन से वस्त्र, गोघृत के हवन से इष्ट की प्राप्ति होती है। भैंस के घी से हवन करने पर भैंस, गव्य के हवन से गाय एवं गोघृत और रत्न के हवन से रत्नों की प्राप्ति होती है। शालिचावल के पिष्ट में शक्कर मिलाकर पुत्तली बनावे। पुत्तली के हृदय में साध्य नाम लिखे। रात में तेल और घी में उसे पकावे। साधक उसे खाकर दिन-रात जप करे। सात रातों तक ऐसा करने से नर-नारी या राजा वश में होते हैं; वे दास के समान आते हैं और धन-प्राण अर्पण कर देते हैं। लाल या उजले कनैल से तीन रात या सात रातों तक हवन करने से महती श्री की प्राप्ति होती है। त्रिमधुराक्त बकरे के मांस के हवन से सोना मिलता है। क्षीरसिक्त छाग मांस के हवन से फसलसम्पन्न भूमि चालीस दिनों में मिलती है। तीन दिनों तक कमलगट्टे के हवन से लक्ष्मी मिलती है। सभी दुःखों को छुड़ाने वाली मोहिनी, विश्वरंजिनी, श्रीकरी यह शिवदूती सभी समृद्धियों को प्रदान करती है।

त्वरितामन्त्रोद्धारादि

अथ (त्वरिता) सारसंग्रहे—

त्वरितामन्त्रमथ ते वक्ष्यामि सर्वसिद्धिदम्। सर्वापत्तारकं सर्वसंपत्सन्तानसिद्धिदम् ॥१॥
मूर्धयुग्दन्तपंक्तिश्च हृल्लेखा कवचान्तिका। दक्षदोःकूर्परोष्ठो स्तो वामदोर्मूलकं ततः ॥२॥
तद्दन्त्योष्ठावन्तिमं च भृगुणान्तिमरेफयुक्। सशान्तिः खं वामकर्णबिन्दुयुक्सेस्वरोऽन्तिमः ॥३॥
शक्तिरस्त्रान्तको मन्त्रो द्वादशार्णः समीरितः।

दन्तपंक्तिः ओकारः, मूर्धयुक् बिन्दुयुक्, तेन ओं। हृल्लेखा भुवनेश्वरीबीजं ह्रीं। कवचं हुं। दक्षदोः कूर्परः

खकारः ओष्ठः ए तेन खे। वामदोर्मूलं चकारः, दन्त्योष्ठौ छकारेकारौ ताभ्यां च्छे। अन्तिमः क्षकारः। भृगुः सकारः, णान्तेन तकारेण रेफेण च युक्तः। सशान्तिः ईकारयुतस्तैः स्त्री। खं हकारः, वामकर्णः ऊकारः, बिन्दुरनुस्वारः एतैः हूं। अन्तिमः क्षकारः, स एकारयुक्तस्ताभ्यां क्षे। शक्तिः ह्रीं, अस्त्रं फट्कारः। तथा—

ऋष्याद्या अर्जुनविराट्त्वरिताह्वाः समीरिताः ॥४॥

कूर्माद्यैः सप्तभिः पूर्वपूर्वहीनैः षडङ्गकः। द्वाभ्यां द्वाभ्यां विना मायां कृत्वा मन्वर्णकान्न्यसेत् ॥५॥

कूर्मश्चकारः। द्वाभ्यामित्यनेन 'चच्छे हृत्' च्छेक्षः शिरः, इत्यादि प्रयोगे वक्ष्यते। नारायणीये तु—

नवमादितृतीयान्तं यदस्या वर्णसप्तकम्। तेनाङ्गानि द्विवर्णानि कर्तव्यान्युपदेशतः ॥१॥

उपदेश इत्यनेन पूर्वपूर्वत्यागः सूचितः। तेन 'खेच हृत्, चच्छे शिरः, इत्यादि यथागुरूपदेशं कार्यम्।

कभालकण्ठहृन्नाभिगुह्योरुषु सजानुषु। जङ्घयोः पादयोर्मन्त्री सर्वेण व्यापकं न्यसेत् ॥६॥
लसच्छ्यामतनुं रक्तपङ्कजोद्यत्पदाम्बुजाम्। ताटङ्काङ्गदविद्योतिरशनानूपुरात्मकैः ॥७॥
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः। द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पितोद्यत्सुभूषणाम् ॥८॥
शेषश्च वासुकिर्विप्रौ तक्षककर्कोटकौ नृपौ। वैश्यौ पद्ममहापद्मौ तुर्यौ कुलिकशङ्खपौ ॥९॥

शङ्खपः शङ्खपालः।

पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपिच्छकृतैः शुभैः। वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥१०॥
बर्हिबर्हकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम्। गुञ्जाफललसद्धारविलसत्कुचमण्डलाम् ॥११॥
त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्। वराभयकरां गण्डद्वयीमुकुरशोभिताम् ॥१२॥
तनुमध्यलताभुग्नपृथुलस्तनयुग्मकाम्। अरुणायतसन्नेत्रां सुशोणाधरपल्लवाम् ॥१३॥
विलासमन्दिरं देवीं तरुणीं संस्मरेत्सुधीः। आसने हेमरचिते त्वष्टसिंहवृतेऽभितः ॥१४॥
सरोजमष्टपद्मं स्याद्वृत्तयुग्मं ततो भवेत्। तद्बहिर्भूपुरद्वन्द्वं पश्चिमद्वारसंयुतम् ॥१५॥
मायापीठोदिता अत्र नवशक्तीः प्रपूजयेत्। त्वरितां वक्ष्यमाणेन विधानेनात्र संयजेत् ॥१६॥
अन्त्यं सदण्डी वर्माथ खं सदण्डी सुधा त्रदे। वियद्भान्त्यः सकर्णाग्निरप्येतद्द्वन्द्वकं पुनः ॥१७॥
अन्त्यं सनेत्रार्धचन्द्रो गुलगर्जद्वयं वदेत्। उपान्त्यस्वरयुग्व्योम वर्मान्त्यो दीर्घबिन्दुयुग् ॥१८॥
ङेन्तं पञ्चाननं हृच्च पीठमन्त्र उदाहृतः।

अन्त्यं क्षकारः, सदण्डी सानुस्वारः तेन क्षं। वर्म हुं। खं हकारः सदण्डी सानुस्वारः तेन हं। सुधा वकारः। त्रदे स्वरूपं। वियत् हकारः। भान्त्यः मकारः कर्ण उ तेन मु। अग्नी रेफः अपिशब्दादुकारः तेन रु। पुनरेतद् द्वयं मुरु इति। अन्त्यं क्षकारः, सनेत्रः इकारसहितः अर्धचन्द्रो बिन्दुः तेन क्षिं इति। गुलद्वयं गर्जद्वयं चेत्यर्थः। उपान्त्यस्वरो बिन्दुः, तद्युग्व्योम हकारः तेन हं। वर्म हुं। अन्त्यः क्षकारः, दीर्घः आकारः बिन्दुरनुस्वारः तेन क्षां। ङेन्तं पञ्चाननं पञ्चाननाय। हृत् नमः।

अनेन मनुना दद्यादासनं मूर्तिकल्पना। मूलमन्त्रेण कर्तव्या त्वरितां पूजयेत्ततः ॥१९॥
यथावत् केसरेष्वङ्गपूजा कार्या विपश्चिता। प्रणीतां चैव गायत्रीं यजेत्तत्रैव मन्त्रवित् ॥२०॥

तत्रैव सप्तमाष्टमकेसरेषु। षडङ्गानि संपूज्यावशिष्टकेसरयोर्विपश्चितेत्यनेन षडङ्गपूजायां विशेष उक्तः। यथा अत्र देव्यग्रकेसरमारभ्य प्रादक्षिण्येन षट्सु केसरेषु षडङ्गानि संपूज्यावशिष्टकेसरद्वये शक्तिद्वयं पूजयेदिति। उक्तं च मृडानीतन्त्रे—'अष्टसिंहासने पूज्या दले पूर्वादिकं क्रमात्'। इति 'अङ्गं प्रणीतां गायत्रीं' इति तोतलामतेऽपि। 'यजेत् तत्राष्टपत्रेषु (पूर्वाशाद्यङ्गदेवताः। सौम्ये प्रणीतामैशे च गायत्रीमभिपूजयेत्॥' इति। पद्मपादाचार्यश्च पूर्वादिषट्सु

केसरेषु) षडङ्गानि संपूज्य उत्तरैशानयोरुभयं पूजयेदिति। प्रपञ्चसारे—(१३.३३) हूंकार्याख्या खेचरिचण्डे सच्छेदनी तथा क्षेपणी। भूयः स्त्रियाह्वयाहुंकारीक्षेमङ्कर्यश्च संपूज्याः॥१॥ सश्रीवीजा लोकेशायुधभूष-णान्विता दलाग्रेषु' इति लोकेशवाहनमपि ज्ञेयम्। 'इन्द्रादिलोकपालानां वर्णा वाहायुधैः समाः' इति तोतुलामतात्। तथा—फट्कारी चाप्यग्रे सचापशरधारिणी च तद्बाह्ये॥२॥ सस्वर्णवेत्रयष्ट्यौ द्वाःस्थे पूज्ये पुनर्जयाविजये। कृष्णो बर्बरकेशो लकुडधरः किङ्करश्च तत्पुरतः॥३॥ वर्वरः उद्धूषितः, धूसर इति यावत्। लकुडः गदा। 'कृष्णवर्णो गदापाणि'रिति सारसंग्रहवचनात्। सारसंग्रहे—

किङ्कराय रक्षयुगं त्वरिताज्ञास्थिरो भव। कवचान्ते फट्च वदेदनेन मनुना ततः॥१॥
आरक्तैर्वनसंभूतैर्मनोज्ञैश्च सुगन्धिभिः। धूपदीपादिभिर्नृत्यगीतैः संपूजयेच्छिवाम्॥२॥
एवं पूजां विधायाग्रे जपेद्विद्यां सहस्रकम्। शतं वा कृतहोमस्तु प्राग्वत्पूजां समापयेत्॥३॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अर्जुनाय ऋषये नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये श्रीत्वरितानित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ॐ बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तये नमः, इति विन्यस्य मम सकलपुरुषार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, चक्षे हृदयाय नमः। क्षेच्छः शिरसे स्वाहा। क्षःस्त्री शिखायै वषट्। स्त्रींहुं कवचाय हुं। हुंक्षे नेत्रत्रयाय वौषट्। क्षेफट् अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यानाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्यावाहनादिपुष्पोपचारान्तेऽष्टदलकेसरेषु देव्यग्रादिषट्केसरेषु षडङ्गानि संपूज्य, अन्तिमकेसरयोः—ॐ प्रणीतायै० ॐ गायत्र्यै० इति संपूज्य, अष्टदलेषु—ॐ हूंकार्यै०, खेचर्यै०, चण्डायै०, च्छेदिन्यै०, क्षेपण्यै०, स्त्रियै०, हुंकार्यै०, क्षेमङ्कर्यै०, इति संपूज्य, देव्यग्रे ॐ फट्कार्यै नमः, देव्यग्रद्वारदक्षवामपार्श्वयोः ॐ जयायै०, विजयायै०, इति संपूज्य, द्वाराग्रे एव 'किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञास्थिरो भव हुंफट्' किङ्कराय नमः, इति संपूज्य लोकेशार्चादि प्राग्वत् समापयेदिति। अत्र हुंकार्यादिशक्तीनां लोकेशात्म-कत्वाल्लोकपालार्चा नास्तीति केचित्।

त्वरिता—मूलोक्त सारसंग्रह के श्लोकों का उद्धार करने पर बारह अक्षरों का त्वरिता-मन्त्र होता है—ॐ ह्रीं हुं खेचछेक्षः स्त्री हूं क्षेह्रीं फट्। इसके ऋषि अर्जुन, छन्द विराट् एवं देवता त्वरिता हैं। षडङ्ग न्यास चंछे से हृदय, छेक्षः से शिर इत्यादि में किया जाता है।

नारायणीय में कहा गया है कि खेच से हृदय, चच्छे से शिर इत्यादि में न्यास गुरु के उपदेशानुसार करना चाहिये।

षडङ्ग न्यास—चंक्षे हृदयाय नमः। चेच्छः शिरसे स्वाहा। क्षः स्त्री शिखायै वषट्। स्त्रीं हुं कवचाय हुं। हुं क्षे नेत्रत्रयाय वौषट्। क्षे फट् अस्त्राय फट्। मन्त्रवर्णों का न्यास भाल, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, जंघा, पैरों में करे। पूरे मन्त्र से व्यापक न्यास करे। तदनन्तर निम्नवत् ध्यान करे—

लसच्छ्यामतनुं रक्तपङ्कजोद्यत्पदाम्बुजाम्। ताटङ्काङ्गदविद्योतिरशनानूपुरात्मकैः ।।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः। द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पितोद्यत्सुभूषणाम्।।
शेषश्च वासुकिर्विप्रौ तक्षककर्कोटकौ नृपौ। वैश्यौ पद्ममहापद्मौ तुर्यौ कुलिकशङ्खपौ।।
पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपिच्छकृतैः शुभैः। वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।।
बर्हिबर्हकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम्। गुञ्जाफललसद्धारविलसत्कुचमण्डलाम्।।
त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्। वराभयकरां गण्डद्वयीमुकुरशोभिताम्।।
तनुमध्यलताभुग्नपृथुलस्तनयुग्मकाम्। अरुणायतसन्नेत्रां सुशोणाधरपल्लवाम्।।
विलासमन्दिरं देवीं तरुणीं संस्मरेत्सुधीः। आसने हेमरचिते त्वष्टसिंहवृतेऽभितः।।

पूजन यन्त्र में पहले अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर पश्चिम द्वारयुक्त दो भूपुर बनावे।

भुवनेश्वरी पीठोदित नव शक्तियों की पूजा करे। त्वरिता की पूजा इस मन्त्र से विधिवत् करे—क्षं हुं हं वज्रदेहे घुर घुर हिंगुल हिंगुल गर्ज गर्ज हं हुं क्षां पञ्चाननाय नमः।

ऋषि न्यास—शिरसि अर्जुन ऋषये नमः, मुखे विराट् छन्दसे नमः, हृदि त्वरिता देवतायै नमः।

मन्त्र न्यास—मूर्ध्नि ॐ नमः। भाले हुं नमः। गले खें नमः। हृदि चं नमः। नाभौ छें नमः। गुह्ये क्षं नमः। ऊर्वोः स्त्रीं नमः। जानुनि हुं नमः। जंघयोः क्षं नमः। पादद्वन्द्वे फट् नमः। मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे।

करन्यास—चछे अंगुष्ठाभ्यां नमः। छे क्षः तर्जनीभ्यां स्वाहा। क्षस्त्रीं मध्यमाभ्यां वषट्। स्त्री हुं अनामिकाभ्यां हुं। हुंक्ष कनिष्ठाभ्यां नमः वौषट्। क्षं फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार हृदयादि न्यास करके पूर्ववत् ध्यान करे।

ध्यान के बाद मानस पूजा करके शङ्ख स्थापित करे। सामान्य पद्धति से पीठपूजा करे। केसरों में पूर्वादि क्रम से ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः, ॐ मंगलायै नमः से पूजन करे। मध्य में क्षं हुं हुं वज्र देहे घुर घुर हिंगुल हिंगुल गर्ज गर्ज हं हं क्षां पञ्चाननाय नमः से पूजा करे।

पूर्ववत् ध्यान करे। आवाहन पुष्पाञ्जलि दान तक सभी कर्म समाप्त करके आवरण पूजा आरम्भ करे। अग्न्यादि कोणों में चछे गायत्र्यै हृदयाय नमः, छेक्षः गायत्र्यै शिरसे स्वाहा। क्षस्त्री गायत्र्यै शिखायै वषट्। स्त्री हुं गायत्र्यै कवचाय हुं। हुं क्षे गायत्र्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। दिशाओं में क्षे फट् गायत्र्यै अस्त्राय फट्।

इसके बाद उत्तर दिशा में और ईशान कोण में प्रणीता और गायत्री की पूजा करे। पद्मदलों में श्रीबीज आगे लगाकर हुंकारी, खेचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षेपिणी, स्त्री, हुंकारी और सायुध-भूषणा क्षेमङ्करी की पूजा करे। जैसे—श्रीं हुंकार्यै नमः इत्यादि। तब पद्म के बाहर धनुष-बाणधारिणी फट्कारिणी की पूजा करे। द्वार के दोनों पार्श्वों में ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः से पूजा करे। उसके बाहर किंकराय रक्ष रक्ष त्वरिताऽऽज्ञास्थिरो भव हुं फट् से पूजा करे। इस प्रकार पूजा के बाद देवी के आगे एक हजार जप करे अथवा एक सौ जप करे। हवन करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

मृडानीतन्त्रे—

त्वरिता देवि शब्दान्ते विद्महे तूर्णिमुद्धरेत्। विद्यायै धीमहि प्रोक्ता तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१॥
गायत्री त्वरितायास्तु जपात् सान्निध्यकारिणी।

इति गायत्र्युक्ता। प्रपञ्चसारे (१३.३१)—

दीक्षां प्राप्य गुरोरथ लक्षं जप्याद् दशांशकं जुहुयात्।
बिल्वसमिद्भिस्त्रिमधुरसिक्ताभिः साधकः सुसंयतधीः ॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

एवं संस्मृत्य लक्षैकं प्रजपेन्मनुवित्तमः। मध्वक्तबिल्वसमिधो जुहुयात्तद् दशांशतः ॥१॥
सुगन्धिसलिलैश्चैव तर्पयेत्त्वरितां पराम्। आत्मानमभिषिच्याथ कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥२॥
एवं सिद्धे मनौ तस्मै नरनारीनराधिपाः। नमस्क्रियां प्रकुर्वन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥३॥
देवदानवगन्धर्वयक्षचारणयोषितः। सिद्धविद्याधराणां च योषा ह्यप्सरसस्तथा ॥४॥
विस्पृष्टजघनोरस्काः स्पष्टदोर्मूलमञ्जुलाः। प्रस्खलत्पदविन्यासाः प्रस्पन्दिदशनांशुकाः ॥५॥
रम्यमीषदुन्मिलितनयनेन्दीवराश्च ताः। श्लथमानाङ्गवसनाः श्लथकुञ्चितमूर्धजाः ॥६॥
मन्दस्खलितभाषिण्यः प्रसादाकाङ्क्षया मुहुः। सम्यक् शिरोविरचितनत्यञ्जलय उत्कटम् ॥७॥
पश्य वाचं प्रयच्छाशु ह्याश्लेषसुखमेधि नः। एहि रम्यं सुरोद्यानं रंस्यामोऽत्र निजेच्छया ॥८॥
निरातङ्कं सदेत्यादिवादिनीभिरहर्निशम्। प्रलोभ्यमानो मन्त्रज्ञो यदा विक्रियते न सः ॥९॥

तदैत्य वाञ्छितं तस्मै ददाति त्वरिताखिलम्। सञ्जप्य कर्णयोर्विद्यां यष्ट्या च जपसिद्धया ॥१०॥
संताड्य शीर्षे सहसा मृतमुत्थापयेदसौ।

मृतं सर्पादिदष्टमिति शेषः।

मृड़ानी तन्त्र के अनुसार त्वरिता गायत्री इस प्रकार है—त्वरिता देवि विद्महे त्वरिताविद्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गुरु से दीक्षा प्राप्त करके मन्त्र का एक लाख जप करे। दशांश त्रिमधुराक्त बेल की समिधा से हवन करे। सारसंग्रह में कहा गया है कि इस प्रकार देवी का स्मरण करके साधक एक लाख जप करे। मधुसिक्त बेल की समिधा से दशांश हवन करे। परा त्वरिता का तर्पण सुवासित जल से करे। अपना मार्जन करे और ब्राह्मणभोजन कराये, तब मन्त्र सिद्ध होता है। मन्त्र सिद्ध होने पर साधक को नर-नारी-नृपति नमस्कार करते हैं। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, चारण, वनिता, सिद्ध, विद्याधर, युवतियाँ और अप्सराएँ साधक के प्रसन्नता की इच्छा करती हैं और अपने शिर पर सम्यक् अंजलि बाँधकर कहती हैं कि हम सभी तुम्हारे सुख के लिये हैं, यह सुरों का उद्यान है, तुम अपनी इच्छानुसार इसमें विहार करो। यदि मन्त्रज्ञ निरातंक होकर इन सुन्दरियों के प्रलोभन में नहीं आता तब त्वरिता उसे वांछित वरदान देती है। सर्पदंश से मृत व्यक्ति के कान में यह मन्त्र जप कर जपसिद्ध छड़ी से उसके शिर पर प्रहार करे तो मृतक सहसा जीवित हो उठता है।

तथा—

काम्यहोमविधिं वक्ष्ये यथाविधि विधानवित्। कृत्वा योनिं कुण्डमध्ये समाधायाग्निमत्र ताम् ॥१॥

योनिं स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणम्।

संपूज्य पूर्वविधिना देवतां पूर्ववत् सुधीः। तिलसर्षपगोधूमशालिधान्ययवैर्हुनेत् ॥२॥
त्रिमध्वक्तैरेकशो वा समेतैर्वा समृद्धये। बकुलैश्चम्पकै रक्तकह्लारैररुणोत्पलैः ॥३॥
कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधूकैरिन्दिराप्तये। अशोकैः पाटलैर्बिल्वैर्जातीविचकिलैः सितैः ॥४॥
नवैर्नीलोत्पलैरश्वरिपुजैः कर्णिकारजैः। होमाल्लक्ष्मीं च सौभाग्यमायुर्नित्यं यशो निधिम् ॥५॥
यद्यद्धि वाञ्छितं सर्वं तत्तदाप्नोति निश्चितम्। दूर्वां गुडूचीमश्वत्थं वटमारग्वधं तथा ॥६॥
सिताब्जलक्षकं हुत्वा रोगान्मुक्तो नरोऽचिरात्। इक्षुजम्बूनारिकेलमोचागुडसिता हुनेत् ॥७॥
अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति ध्रुवम्। एतैरुदीरितैराज्यमधुक्षीरप्लुतैर्हुनेत् ॥८॥
एकैकैर्वनिता वश्या यावज्जीवं धनादिभिः। तैस्तैराज्यप्लुतैर्भूपा वश्याः स्युर्हवनात्ततः ॥९॥
क्षीराक्तैस्तैर्हुतैर्मर्त्या वशे तिष्ठन्त्यशेषतः। सर्षपाज्यैर्हुनेन्मृत्युकाष्ठाग्नौ वैरिमृत्यवे ॥१०॥
तदक्तैर्वैरियोन्युत्थमांसैरपि च तत्कृते। प्लक्षेन्धनाग्नौ योन्युत्थक्षतजोत्पाचितं चरुम् ॥११॥
आरुष्करघृतोपेतं फणिशीर्षस्रुचा हुनेत्। कृष्णांशुकशिरोवेष्टः खड्गपाणिश्च रोषवान् ॥१२॥
निशामध्ये हुनेत्सद्यो निहन्तुं वैरिणं हठात्। मृत्युकाष्ठानले तस्य फलैः पत्रैश्च होमतः ॥१३॥

मृत्युः कारस्करः।

सप्तरात्रादरातेस्तु गजाश्वा रोगमाप्नुयुः। चतुरङ्गुलजैर्होमाच्चतुरङ्गबले रिपोः ॥१४॥
सप्ताहाद्रोगदुःखार्तिर्भवत्येव न संशयः। मन्त्रजप्तोदकैः सेकात् क्ष्वेडशान्तिर्भविष्यति ॥१५॥
तज्जप्तयष्टिघाताच्च तज्जप्तचुलुकोदकात्। होमसंख्या यावती स्याज्जपसंख्या च तावती ॥१६॥
तत्कर्णरन्ध्रजापाच्च सद्यो न स्युर्विषग्रहाः। तद्यन्त्रस्थापनं चैव विषभूतादिनाशनम् ॥१७॥
एवमस्यास्तु विद्याया वैभवं को नु वर्णयेत्। तथाप्यनुग्रहात्तस्याः किञ्चिदुक्तं मया त्विदम् ॥१८॥

वैरियोन्युत्थमांसैर्वैरिनक्षत्रयोनिमांसैरित्यर्थः।

काम्य हवन—अब यथाविधि काम्य हवन को कहता हूँ। विधान का ज्ञानी योनिकुण्ड में अग्नि जलाकर उसमें देवता

का पूजन विधिवत् करे। त्रिमधुराक्त तिल, सरसों, गेहूँ, शालि धान्य से हवन प्रत्येक से अलग-अलग करे या सबों को एक साथ मिलाकर करे तो समृद्धि मिलती है। बकुल, चम्पा, लाल कल्हार, लाल कमल, कुमुद, मल्लिका, कुन्द, महुआ से हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अशोक, गुलाब, बेल, जाती, उजला विचकिल, नया नीलकमल, कनैल, कर्णिकार के हवन से लक्ष्मी, सौभाग्य, आयु, नित्य यश, निधि, सभी वांछितार्थ की प्राप्ति होती है। दूब, गुरुच, पीपल, वट, आरग्वध, उजले कमल से एक लाख हवन करने पर मनुष्य थोड़े ही दिनों में निरोग हो जाता है। ईख, जामुन, नारियल, केला, गुड़, शक्कर मिलाकर हवन करने से स्थिर लक्ष्मी का लाभ होता है और दीर्घकाल तक साधक उसका भोग करता है। गोघृत, मधु, दुग्ध से सिक्त ईख, जामुन, नारियल, केला, गुड़ से अलग-अलग हवन करने पर धन आदि के साथ वनिता आजीवन वश में होती है; इन्हीं को केवल आज्य से सिक्त करके हवन करने से राजा वश में होते हैं। इन्हीं को केवल दूध से अक्त करके हवन करने से सभी मनुष्य वश में हो जाते हैं। मृत्युकाष्ठ कारस्कर की अग्नि में सरसों और गोघृत के मिश्रण से हवन करने पर शत्रु की मृत्यु होती है। वैरी योनि के पशु के मांस को क्षीराक्त करके हवन करने से वैरी की मृत्यु होती है। पाकड़ के लकड़ी की अग्नि में वैरी योनि के पशु के दूध में चरु पकाकर हवन करने से और घृतोपेत आरुष्कर का सर्पाकार स्रुचा से शिर पर काली पगड़ी बाँधकर हाथों में तलवार लेकर आधी रात में हवन करे तो वैरी की मृत्यु हठात् हो जाती है। मृत्युकाष्ठ की अग्नि में उसके फल और पत्तों से हवन सात रातों तक आधी रात में करने से शत्रु के हाथी-घोड़े रोगी हो जाते हैं। मृत्युकाष्ठ की चार अंगुल लम्बी समिधा के हवन से शत्रु की चतुरंगिनी सेना एक सप्ताह में रोगी हो जाती है। अभिमन्त्रित जल से अभिषेक करने पर कान की अव्यक्त ध्वनि शान्त हो जाती है। उसके मन्त्र से मन्त्रित छड़ी के आघात से एवं मन्त्रित चुल्लू भर जल के छींटे से हवनसंख्या के बराबर उसके कान में जप से विष नष्ट हो जाता है। उसके यन्त्र के स्थापन से भूत-प्रेतों का नाश होता है। इस प्रकार इस मन्त्र का वैभव अचिन्त्य है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसकी कृपा से मैंने कुछ का वर्णन यहाँ किया है।

नक्षत्रयोनयः

नक्षत्रयोनयस्तु तोतुलामते—

अश्वहस्त्यजसर्पाश्च सर्पिणी च बिडालिका। मेषो भिडालकश्चाखुर्मूषको गौर्वृषस्तथा॥१॥

महिषो व्याघ्रमहिषीव्याघ्रैणीहरिणाः शुनी। वानरो नकुलश्चैव नकुली वानरी तथा॥२॥

सिंहो हयवधूः सिंही छागी हस्तिन्यपि क्रमात्। भानां तु योनयो देवि कथितास्तव सुव्रते॥३॥

अत्र द्वितीयनकुलशब्दोऽभिजिदभिप्रायेणोक्तः, अत एवाष्टाविंशतिरिति।

नक्षत्रयोनियाँ—तोतुलामत के अनुसार अश्विनी से रेवती तक अभिजित् सहित अट्ठाईस नक्षत्रों की योनियाँ इस प्रकार हैं—अश्व, गज, छाग, सर्प, सर्पिणी, मार्जारी, छाग, मार्जार, मूषक, मूषक, गाय, बैल, महिष, व्याघ्र, महिषी व्याघ्र, मृता मृगी, श्वान, मर्कट, नकुल, नकुली, मर्कटी, सिंह, अश्वी सिंही छागी, हस्तिनी।

अनुग्रहयन्त्राणि

सारसंग्रहे—

अथानुग्रहयन्त्राणि वक्ष्यन्तेऽत्र समासतः।
कोष्ठचतुःषष्टिं च लिखित्वा तेषु च शर्वाद्यं कुणपादि।
श्रीमनुमालिख्य शिखाशेषं तूर्णामनुं बाह्येऽमृतवीतम्॥१॥
काञ्चनपट्टेऽच्छे वसने वा संलिखितं च स्थापितमेतत्।
सस्यसमृद्धिदायिन्यः समये स्युस्तत्र वृष्टयः फलदाश्च॥२॥
यन्त्रमिदं चानुग्रहसंज्ञं यत्र निखातममङ्गला वार्ता।
तत्र भवेत् सत्यं न काचिच्छ्रीमनुमेनं संप्रति वक्ष्ये ते॥३॥

विबिन्दुका रमाथ सा विषं च दीर्घसंयुतम् । मरुच्च दीर्घसंयुतो विलोमगानिमान् वदेत् ॥४॥
भृगुश्च कान्तिसंयुतस्तपञ्चमश्च सद्ययुक् । ह्यनन्तयुक् मरुद्भवेत् ज्ञमेयुतं पुनर्वदेत् ॥५॥
इमान्विलोमगांस्ततश्च मा मरुच्च दीर्घयुक् । धरा च वामनेत्रयुग्वसुन्धरा ह्यनन्तयुक् ॥६॥
इमान्विलोमगान् पठेत्ततश्च याज्ञमेयुतम् । वदेच्च लापदंचली सुवैपरीत्यगानिमान् ॥७॥
वदेद्रमामनुर्मतः स सर्वकार्यसाधकः । इति।

चिबिन्दुका रमा श्री इति, सा स्वरूपम्, विषं मकारः, दीर्घः आकारः तेन मा। मरुत् यकारः, दीर्घः आकारस्तेन या। विलोमगान् यामासाश्री। भृगुः सकारः, कान्तिः आ तेन सा इति। तपञ्चमः नकारः, सद्यः ओकारस्तेन नो। अनन्त आ, तद्युक्तो मरुत् यकारः तेन या। ज्ञ स्वरूपं, तत् एयुतं तेन ज्ञे। इमान् विलोमगान् ज्ञेयानोसा। मा स्वरूपं, मरुत् यकारः दीर्घः आ तेन या इति। धरा लकारः, वामनेत्रं ईकारः तेन ली, वसुन्धरा लकारः, अनन्तः आ तेल आ। विलोमगान् लालीयामा। या स्वरूपं, ज्ञ एयुतं एकायुक्तं तेन ज्ञे। ला स्वरूपं, ली स्वरूपं, वैपरीत्यगान् लीलाज्ञेया इति।

अनुग्रह यन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर नव-नव रेखा खींचने से चौंसठ कोष्ठ बनते हैं। उनमें श्रीमन्त्र के अक्षरों को लिखे। यन्त्र सोने के पत्र पर अथवा कपड़े पर बनावे। यह यन्त्र जहाँ स्थापित रहता है, वहाँ की भूमि फसलों से भरी रहती है, समय पर वर्षा होती है, फल-फूल खूब होते हैं। यह अनुग्रह यन्त्र जहाँ रहता है, वहाँ नित्य मांगलिक कार्य होते रहते हैं।

अब श्रीमन्त्र को कहता हूँ। श्लोक ४-७ का उद्धार करने पर बत्तीस अक्षरों का श्रीमन्त्र इस प्रकार होता है—श्री सामाया यामासाश्री सानोयाज्ञे ज्ञेयानोसा, मायालीला लालीमाया याज्ञेलाली लीलाज्ञेया।

यन्त्ररचनाप्रकारः

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—

तत्र प्राक्प्रत्यगायता नव रेखा दक्षिणोत्तरायता नव रेखाश्च कृत्वा चतुष्षष्टिकोष्ठयुतं चतुरस्रं चक्रं परिकल्प्य, तत्र सर्वोपरिगतपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठमारभ्य स्ववामादिदक्षिणान्तक्रमेण पङ्क्तिचतुष्टयगतेषु द्वात्रिंशत्कोष्ठेषु प्रोक्तसर्वतोभद्राख्यलक्ष्मीमन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य, पुनरधोगतपङ्क्तिचतुष्टयेऽपि सर्वाधःपंक्तेः प्रथमकोष्ठं स्वदक्षिणस्थमारभ्य वामान्तमुपर्युपरि पङ्क्तिचतुष्टये तस्यैव मन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य, तद्बहिः प्रागादिषु चतसृषु दिक्षु ईशानादीशान्तं चतुरावृत्त्या तद्बाह्यरेखास्पृष्टां त्वरिताविद्यामन्तर्गतवषट्कारामालिख्य तद्बहिः वमित्यमृतबीजेन वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

चौंसठ कोष्ठ वाले यन्त्र के सबसे ऊपर वाले कोष्ठ से प्रारम्भ करके अपने बाँयें से दक्षिणान्त क्रम से चार पंक्तियों के बत्तीस कोष्ठों में लक्ष्मी मन्त्र के बत्तीस अक्षरों को लिखे। फिर उसके नीचे वाली चार पंक्तियों के बत्तीस कोष्ठों में सबसे नीचे वाली पंक्ति में अपने दाहिने से प्रारम्भ करके वामान्त तक बत्तीस अक्षरों को लिखे। उसके बाहर पूर्वादि चारो दिशाओं में ईशान से ईशान तक के यन्त्र की बाहरी रेखाओं को स्पर्श करते हुए त्वरिता विद्या के अक्षरों को लिखे। उसके बाहर अमृत बीज 'वं' लिखकर वेष्टित करे। यह यन्त्र सर्वकार्यसाधक होता है।

यन्त्रान्तरम्

इतः परं प्रवक्ष्ये ते मनोज्ञं यन्त्रमुत्तमम् । प्राक्प्रत्यगायतैः सूत्रैस्तथा दक्षोत्तरायतैः ॥१॥
दशभिर्दशभिः कुर्यादेकाशीतिपदानि वै । समान्तरालकान्यत्र मध्यकोष्ठे समालिखेत् ॥२॥
ससाध्यं टपरं मन्त्री बिन्दुयुक्तं च तद्बहिः । चतसृष्वपि वीथीषु चतुष्कोष्ठात्मिकासु च ॥३॥
दिग्गतासु क्रमाद्वर्णान् वक्ष्यमाणान् समालिखेत् । चतृतीयं वामकर्णयुक्तं बिन्दुविभूषितम् ॥४॥
विसर्गाढ्यो भृगुस्तोयं श्वेतेशः खेचरी ततः । केवलां च ततः प्राग्वल्लक्ष्मीविद्यां समालिखेत् ॥५॥

उक्तवर्णविहीनेषु कोष्ठेषु मनुवित्तमः। ततस्तूर्णामृतार्णैस्तैर्वेष्टयेद् बहिरुक्तवत् ॥६॥
मूलविद्याक्षराण्येव वषड्युक्तानि मन्त्रिभिः। फट्काररहितानीह तानि प्रोक्तानि चागमे ॥७॥
बहिः कुम्भं विदध्याच्च पद्मं तदधरोत्तरम्। इति।

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यग्दणोदक् च समान्तरालानि दश दश सूत्राण्यास्फाल्य एकाशीतिपदानि विधाय, तत्र मध्यकोष्ठे सबिन्दुकठकारोदरे साध्यनामालिख्य, तत्कोष्ठपार्श्वस्थपूर्वापरायतपङ्क्तिद्वये च संभूय चतसृषु पङ्क्तिषु चतुश्चतुःकोष्ठात्मिकासु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्यक्रमेण 'जूंसः वषट्' इति च प्रतिकोष्ठं प्रतिकोष्ठमेकैकमभ्यन्तरान्निर्गमगत्या विलिख्य, ततः ईशानादिनैर्ऋत्यादिकं च प्रागुक्तश्रीविद्यानुष्ठुबं मध्यवीथिचतुष्टयवर्जमालिख्य सर्वबाह्येऽभितः ईशानादीशान्तं तूर्णामृताक्षराणि चतुरावृत्त्या प्राग्वत्समालिख्य, सर्वमध्यकोष्ठमवष्टभ्य चतुःकोणस्य तूर्णामृताक्षरमानभ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य तद्बाह्येऽङ्गुलमानेन तथा वृत्तान्तरं कृत्वा, अधः उपरि भागे च मध्यतः चतुरङ्गुलान्तरालं वृत्तद्वयं मार्जयित्वा, तदग्रचतुष्टयमानमवक्रं, समान्तरालमुपरि चतुरङ्गलं कुम्भमुखाकारं यथा भवति तथा समुन्नमय्य तत्कुम्भमुखे तिर्यग्रेखाद्वयं प्रसार्य, तत्कुम्भवीथीमध्यम् अन्योन्यस्पृष्टवकारमालया शृङ्खलारूपया अन्तर्मुखया समापूर्य सर्वोपरि बिन्दुं समालिख्य, कुम्भाधस्तात् पद्मं तत्कर्णिकास्थं कुम्भं यथा भवति तथा समालिख्य प्रोक्तक्रमेण मनीषितेषु विनियोगात् प्रोक्तफलानि भवन्ति।

अन्य यन्त्र—इसके बाद उत्तम मनोज्ञ यन्त्र को कहता हूँ। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बराबर दूरी पर दश-दश रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठ बनावे। मध्य कोष्ठ में 'ठ' के उदर में साध्य नाम लिखे। उस कोष्ठ के पार्श्वस्थ पूर्वायतन दो पंक्तियों के चार-चार कोष्ठों में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से 'जूं सः वषट्' प्रतिकोष्ठ में लिखे। तब ईशान से नैर्ऋत्य तक पूर्वोक्त लक्ष्मी विद्या के अक्षरों को बीच के चार कोष्ठों को छोड़कर लिखे। इसके बाहर ईशान से ईशान तक त्वरिता विद्या के अक्षरों को चारो दिशाओं में लिखे। सबसे बीच वाले कोष्ठ को आधार मानकर त्वरिता विद्या के अक्षरों के बाहर एक वृत्त बनावे। उसके बाहर एक अंगुल मान की दूरी पर दूसरा वृत्त खींचे। दोनों वृत्तों के ऊपर और नीचे चार-चार अंगुल वृत्तों को मिटा दे। ऊपर मार्जित स्थानों में कुम्भ का मुख बनावे। कुम्भ के नीचे कमल बनावे। इस यन्त्र से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होते हैं।

यन्त्रान्तरम्

तथा—

कुङ्कुमैर्लाक्षया वापि लिखितं स्वर्णपट्टके। धवले वसने वापि लेखिन्या स्वर्णजातया ॥८॥
संपूज्य जपसंसिद्धं स्थापयेद्यत्र तत्र वै। भवेल्लक्ष्मीरतिस्फीता नीरोगाश्च प्रजास्तथा ॥९॥
गजाश्वपशवस्त्वन्ये प्राणिनः सुखिनो भृशम्। भूतप्रेतपिशाचादिपीडासु बिभृयादिदम् ॥१०॥
अलक्ष्मीशान्तये वश्यसिद्धये सर्वसंपदे। कृत्यामृत्युग्रहक्ष्वेडदुरितेभ्यो विमुक्तये ॥११॥
पुत्रपौत्रैश्वर्यदीर्घायुष्यसंसिद्धयेऽपि च। इति।

अन्य यन्त्र—कुङ्कुम या लाक्षा से स्वर्ण पत्र पर या उजले कपड़े पर सोने की लेखनी से यन्त्र बनावे। पूजा करके उसे जप से सिद्ध करके उसे जहाँ स्थापित किया जाता है, वहाँ-वहाँ लक्ष्मी का वास होता है; प्रजा निरोग रहती है; हाथी-घोड़े और अन्य पशु प्राणी बहुत सुखी रहते हैं; भूत-प्रेत-पिशाच, पीड़ाकारक नहीं होते; दरिद्रता नष्ट होती है; वश्य-सिद्धि होती है; सभी सम्पदा मिलती है; कृत्या, मृत्यु, ग्रह, क्षुद्र पीड़ा से मुक्ति मिलती है एवं पुत्र, पौत्र, ऐश्वर्य के साथ दीर्घायु प्राप्त होती है।

तथा—

पद्मे दशदलयुक्ते मायां साध्याह्वयसहितां च।
ताराद्यर्णांल्लिखेद् दशपत्रे षट्कोणस्थं क्षितिपुरसंस्थं च ॥१२॥
कृत्याद्रोहग्रहविनाशमनन्तचोरव्यालादिकभयहरम्।
जप्तं दोष्णा विधृतमशेषं राज्ञां युद्धे विजयदमुक्तम् ॥१३॥ इति।

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र दशदलपद्मं कृत्वा तत्कर्णिकायां मायाबीजस्योदरे साध्यनामालिख्य, तद्दलेषु मूलविद्यायाः प्रणवादिदशवर्णान् मायाबीजरहितान् विलिख्य, तद्बहिः षट्कोणं कृत्वा तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्यात्। एतदुक्तफलदं भवति। तथा—

विद्याद्यवर्णजठरे साध्यमालिख्य तद्बहिः। अष्टच्छदेषु फड्वर्जमालिखेदष्टवर्णकम् ॥१४॥
कर्णिकास्थं ततोऽब्जं च मायया वेष्टितं ततः। बहिः कुम्भं विदध्याच्च प्रोक्तलक्षणसंयुतम् ॥१५॥
एवमन्यैश्च नवभिर्विद्यावर्णैर्यथाक्रमम्। विदध्यान्नव यन्त्राणि दशानां च फलं त्विदम् ॥१६॥
सर्वरक्षां जयं वश्यं क्ष्वेडहृद्ग्रहनाशनम्। स्तम्भं लक्ष्मीयशोधान्यवासांसि स समाप्नुयात् ॥१७॥

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्राष्टदलं पद्मं विधाय तत्कर्णिकामध्ये विद्याप्रथमहृल्लेखां तदुदरे विद्याद्यभूत-प्रणवं तन्मध्ये साध्यनाम चालिख्य शेषाण्यष्टौ मन्त्राक्षराणि हृल्लेखाद्वयफट्कारविधुराणि क्रमेणाग्रादिप्रादक्षिण्येन अष्टसु दलेषु समालिख्य, तत्पद्मं द्वितीयहृल्लेखया उक्तमन्त्रेणावेष्ट्य तद्बहिः प्राग्वत् सबिन्दुकशृङ्खलितवकाराक्षर-मालोपेतं उपर्यधश्च पद्मद्वयोपेतं च कुम्भं कुर्यात्, एतत्प्रथमयन्त्रम्। एवमस्यैव यन्त्रस्य कर्णिकामध्ये हृल्लेखोदरे विद्यायास्तृतीयाक्षरादीनि शेषाक्षराणि क्रमेणैकमेकं नामगर्भं विन्यस्य तदनन्तरादितत्पूर्वान्तं प्राग्वदेभिरक्षरैर्दलस्थैः पूर्वोक्तेन सार्धं नव यन्त्राणि हृल्लेखामध्ये सनामकं फट्कारं समालिख्य प्रणवविधुरैस्तृतीयादिभिः शेषाक्षरैः प्राग्वद्दलस्थैर्दशमं चेति, एवं दश यन्त्राणि कुर्यादिति।

अन्य यन्त्र—दशदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में ह्रीं के मध्य में साध्य नाम लिखकर, उसके दलों में मूल विद्या के प्रणवादि दश वर्णों को लिखकर उसके बाहर षट्कोण बनाकर उसके बाहर चतुरस्र का निर्माण करे। यह यन्त्र उक्त फलप्रद होता है।

अन्य यन्त्र—पहले अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में विद्या के प्रथम अक्षर ह्रीं के उदर में 'ॐ' लिखे। ॐ के उदर में साध्य नाम लिखे। मन्त्र के शेष आठ अक्षरों को हल्लेखा द्वय फट् को छोड़कर क्रम से आगे से प्रदक्षिण क्रम से आठ दलों में लिखे। अष्टदल कमल को ह्रीं से वेष्टित करे। उसके बाहर कुम्भ बनावे।

इसी प्रकार यन्त्र की कर्णिका में ह्रीं के मध्य में विद्या के तृतीयादि शेष अक्षरों में से प्रत्येक को नाम गर्भ कर लिखे। शेष अक्षरों को दलों में लिखे। इस प्रकार कुल नव यन्त्र बनते हैं और ह्रीं के मध्य में नामसहित फट् लिखकर प्रणवरहित शेष अक्षरों को दलों में लिखने से दशम यन्त्र बनता है। इनके फल क्रमशः सर्व रक्षा, जय, वश्य, क्ष्वेड, हृद्ग्रहनाश, स्तम्भ, लक्ष्मी, यश, धन, वस्त्र आदि की प्राप्ति है।

तथा—

साध्ययुतं तारकमिह मध्ये कोष्ठशते चैकविंशतिसहितेऽत्र।
द्वादशधा शूलमिह शिवाद्यं संलिख्य विंशद्युगवसुशूलम् ॥१८॥
मूलजप्तं यन्त्रवर्यं संपाताज्यसुसंयुतम्। क्ष्वेडग्रहादि हरति जयलक्ष्मीयशःप्रदम् ॥१९॥

अस्यार्थः—प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च द्वादश रेखा विलिख्यैकविंशत्युत्तरशतकोष्ठानि कृत्वा, रेखाग्रेषु सर्वेषु त्रिशूलानि विरच्य, तन्मध्यकोष्ठे ससाध्यं प्रणवं विलिख्येशानकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन, प्रवेशगत्या त्वरिताविद्यां प्रणवद्वितीयहृल्लेखाविधुरां द्वादशावृत्ति लिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

अन्य यन्त्र—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बारह-बारह रेखाओं को खींचकर एक सौ इक्कीस कोष्ठ बनावे। सभी रेखाओं के अग्रभाग में त्रिशूल बनावे। मध्य कोष्ठ में ॐ के उदर में साध्य नाम लिखे। शेष कोष्ठों में ईशान से आरम्भ करके त्वरिता विद्या के ॐ और द्वितीय ह्रीं को छोड़कर दस अक्षरों को बारह बार लिखे। मूल मन्त्र का जप करे और यन्त्र पर घृत सम्पात करे। यह यन्त्र क्ष्वेड, ग्रहादि पीड़ा का नाश करके जय, लक्ष्मी एवं यश प्रदान करता है।

निग्रहाख्ययन्त्रोद्धार:

तथा—

एकाशीतिपदं चक्रं कृत्वा तन्मध्यकोष्ठके। रेफोदरे समालिख्य साध्यनाम यथाविधि ॥२०॥
लिखेद्बीजचतुष्कं तद्वीथीषु च यथा पुरा। वक्ष्यमाणां ततः प्राग्वत्कालीविद्यां समालिखेत् ॥२१॥
चतु:षष्टिपदेष्वीशादिषु च कुणपादिषु। यममन्त्रावृतं बाह्ये वह्निवायुसमावृतम् ॥२२॥
निग्रहाख्यमिदं यन्त्रं सर्वशत्रुनिवर्हणम्। वह्निस्थं पतुरीयं स्याद्वामकर्णेन्दुभूषितम् ॥२३॥
प्रथमं बीजमुदितं संवर्तोऽग्न्यासनेन्दुयुक्। सवामकर्णो ह्यपरं कूर्मान्तार्घीन्दुवह्नियुक् ॥२४॥
तृतीयं व्योमवह्न्यर्घिबिन्दुभिः परमीरितम्। एतद्बीजचतुष्कं तु शत्रुसंहारकारकम् ॥२५॥

पतुरीयं भकार:, वह्निस्थं रेफोपरि स्थितं, वामकर्णमूकार:, इन्दुरनुस्वार: एतैः भ्रूं। संवर्त: क्षकार:, अग्न्यासनेति रेफस्थं, इन्दुरनुस्वार:, वामकर्ण: ऊकार: तेन क्ष्रूं। कूर्मान्त: छ, अर्घी ऊकार:, इन्दुरनुस्वार:, वह्नियुक् सरेफ: एतैः छ्रूं। व्योम हकार:, वह्नी रेफ:, अर्घी ऊकार:, बिन्दुरनुस्वार: एतैः ह्रूं। इति।

विग्रह यन्त्र—ऊपर से नीचे, बाँयें से दाँयें दश रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठों का यन्त्र बनावे। उसके मध्य कोष्ठ में 'र' के उदर में यथाविधि साध्य नाम लिखे। पूर्ववत् उसकी वीथि में चार बीजों को लिखे। तब काली विद्या लिखे। वीथी में लिखे जाने वाले चार बीज हैं—भ्रूं क्ष्रूं छ्रूं ह्रूं। ये चारों बीज शत्रुसंहारकारक होते हैं।

कालीविद्या

तथा—

क्रोधीशः कान्तिमान् शक्रो वामनेत्रं ततः परम्। कालोऽनन्तयुतो वह्निर्विपरीतानिमान् वदेत् ॥२६॥
शक्रो युतश्च लोलाक्ष्या मेषो भान्तश्च सद्ययुक्। संवर्त: पुनरेवैतान् विपरीतान् समुद्धरेत् ॥२७॥
कालोऽनन्तयुतः सोऽथ सद्ययुक् तृतीयकः। झिण्टीयुता पूतना च विपरीतानिमान् वदेत् ॥२८॥
वह्निरन्त्यः पूतना च सा जलस्था वदेदिमान्। विपरीतानियं प्रोक्ता कालीविद्यारिघातिनी ॥२९॥

क्रोधीश: ककार:, कान्तिराकारस्तेन का, शक्रो ल, वामनेत्रं ईकारस्तेन ली। कालो मकार:, अनन्त आकारस्तेन मा। वह्नी र। विपरीतान् रमालीका इति। शक्रो ल, लोलाक्षी ईकार: तेन ली। मेषो नकार:, भान्तो मकार:, सद्य ओकारस्तेन मो। संवर्त: क्ष। विपरीतान् क्षमोनली इति, कालो मकार:, अनन्त आ तेन मा। स एव सद्ययुक् तेन मो। ततृतीयो द, झिण्टी ए तद्युतो दे, पूतना त। विपरीतान् तदेमोमा इति। वह्नी रेफ:, अन्त्य: क्षकार:, पूतना त, सैव जले स्थिता वकारोपरि स्थिता तेन त्व। विपरीतान् त्वतक्षर इति।

काली विद्या—मूलोक्त श्लोक २६ से २९ तक के श्लोकों का उद्धार करने पर काली विद्या इस प्रकार स्पष्ट होती है—कालीमार रमालीका लीनमोक्ष क्षमोनली। मामोदेत तदेमोमा रक्षतत्व त्वतक्षर। यह कालीविद्या शत्रुघातिनी है।

यममन्त्रोद्धार:

तथा—

वायु: कालोऽनन्तयुतो जलं कान्तिसमन्वितम्। सोमश्च खेचरी तोयं कान्तियुक्सा जयान्विता ॥३०॥
वायु: काल: कान्तियुत: खेचरी सद्ययुग्विषम्। सोमेश: खेचरी काल: सद्ययुक्खेचरी विषम् ॥३१॥
कान्तिमज्जलकान्ती च काल: सद्ययुत: पुन:। पतुरीयो वामकर्णयुतोऽग्निर्नेत्रवान् पुन: ॥३२॥
स एव तादृशो भूय: पतुरीयश्च पूर्ववत्। काल: सद्ययुतस्तोयं कान्तियुक् खेचरीद्वयम् ॥३३॥
वह्नि: सवामनेत्रश्च ततस्तोयं च पूतना। तथाविधा पुन: सैव वह्निर्वामाक्षिसंयुत: ॥३४॥
सोमेश: खेचरी चेति यममन्त्र उदाहृत:। सर्वशत्रुक्षयकरो यन्त्रविन्यासत: सदा ॥३५॥

वायुर्यकारः, कालो मकारः अनन्त आकारस्तद्युतो तेन मा। जलं वकारः, कान्तिराकारस्तेन वा। सोम ट, खेचरी ट, तोयं व, कान्ति आ तेन वा। सैव कान्तिर्जयान्विता तेन मा। वायुः यकारः, कालो म, कान्तिरकारास्तेन मा। खेचरी ट, सद्ययुक् ओकारयुतं, विषं मकारस्तेन मो। सोमेशः ट, खेचरी ट, कालो म सद्ययुक् ओकारयुतस्तेन मो। खेचरी ट, विषं मकारः कान्तिमदाकारयुक्तस्तेन मा। जलं व कान्तिः आ तेन वा। कालो म, सद्य ओ तेन मो। पतुरीयो भ, वामकर्णः ऊ तेन भू। अग्निः र, नेत्रं इ तेन रि। सोऽग्निस्तादृशो नेत्रयुत इकारयुक्तस्तेन रि। पतुरीयो भ, पूर्ववत् ऊकारयुक्तस्तेन भू। कालो म, सद्य ओ तेन मो। तोयं व, कान्तिः आ तेन वा। खेचरीद्वयं टट इति, वह्निः र, वामनेत्रं ई तेन री। तोयं व, पूतना त तेन त्व। सैव पूतना तथाविधा तकार एव वकारयुत इत्यर्थः, तेन त्व इति। वह्निः र, वामाक्षि ई तेन री। सोमेशः ट खेचरी ट इति।

यमयन्त्र—मूलोक्त श्लोक ३० से ३४ तक का उद्धार करने पर यममन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—यमावाट टवामाय माटमोट टमोटमा। वामोभूरि रिभूमोवा टटरीत्व त्वरीटट। यह यन्त्र सदा-सर्वदा समस्त शत्रुओं का विनाशकारक होता है।

निग्रहयन्त्ररचनाप्रकारः

अथैतन्निग्रहयन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वद्वेदिकायामेकाशीतिपदोपेतं चक्रं विरच्य, तन्मध्यकोष्ठे सबिन्दुकरेफोदरे साध्यनामालिख्य, प्राग्वत् पार्श्वपङ्क्तिषु चतसृषु चतुष्कोष्ठेषु प्रागुक्तक्रमेण भ्रूंक्ष्रूंछ्रूंह्रूं इति वर्णचतुष्टयं आभ्यन्तरान्निर्गमनगत्या अभितः समालिख्य, अभिचार्यः पुरुषश्चेदन्तःकाल्यनुष्टुभं बहिर्यममन्त्रं, वनिता चेदन्तर्यममन्त्रं बहिःकालीविद्यां च समालिखेत्। लेखने तु ईशानादिकं निर्ऋत्यादिकं च कालीविद्या, अन्यदा तथा यममन्त्रं (विलिख्य अन्यतरं बहिरीशादिनिर्ऋत्यन्तं निर्ऋत्यादीशान्तं च निरन्तरं द्विर्द्विरालिख्य तद्)बहिस्तद्वन्निरन्तरं बिन्दुयुक्तं यकारं रेफं च ईशादीशान्तं यथाक्रममन्तर्बहिर्विभागेन समालिख्य मनीषितेषु विनियुञ्ज्यात्। एतन्निक्षेपे चाभिचार्यः पुरुषश्चेत् काल्यादिशक्तेरायतनेऽग्रे स्त्री चेच्छास्तुरायतने एवाग्रभागे अधस्तान्निखनेदिति संप्रदायः। तथा—

सीसकृते नवपट्टे शावभवे कर्पटके वा। प्रस्तरके वा विषमस्या संलिख्य काकसुपत्रैश्च ॥३६॥
चत्वरके वा कलिवृत्ते स्थापितमेतदरीणां हि। मृत्युकरं व्याधिकरं स्यात्पुत्रस्त्रीवियुतत्वकरं च ॥३७॥ इति।

निग्रह यन्त्र—पूर्ववत् इक्यासी कोष्ठ का यन्त्र बनावे। उसके मध्य कोष्ठ में 'रं' के उदर में साध्य नाम लिखे। पूर्ववत् बगल के चार कोष्ठों की पंक्तियों में भ्रूं क्ष्रूं छ्रूं ह्रूं लिखे। उसके बाद प्रयोग करने वाला यदि पुरुष हो तो अन्दर कालीमन्त्र एवं बाहर यममन्त्र तथा प्रयोक्ता यदि स्त्री हो तो अन्दर यममन्त्र एवं बाहर कालीमन्त्र लिखे।

इस यन्त्र को सीसे पर, नये कपड़े पर या ख़पड़े पर या पत्थर पर कौए के पंख से लिखकर चौराहे पर या कलि वृक्ष के नीचे स्थापित करने से शत्रुओं की मृत्यु, व्याधि होती है और उनके पुत्र-स्त्री का मरण होता है।

तथा—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च नव सूत्राणि पातयेत्। जायन्ते च चतुष्षष्टिः कोष्ठानि सुसमानि च ॥३८॥
मन्त्री तेष्वीशनैर्ऋत्यदिगाद्यं कालिकामनुम्। विलिख्य यममन्त्रेण प्रोक्तबीजद्वयेन च ॥३९॥
वेष्टयित्वा बहिश्चक्रं विषेणैव च लेपयेत्। ब्रह्मदण्ड्या च मर्कट्या लिप्तं जप्तमधोमुखम् ॥४०॥
क्षिप्तं देशादिके यत्र तत्रालक्ष्मीर्गदैः समम्। मारी तु सुस्थिरासाध्या भवेद्देवासुरैरपि ॥४१॥

यन्त्ररचनाक्रमो यथा—तत्र प्राग्वन्नवभिर्नवभिः सूत्रैश्चतुःषष्टिकोष्ठकानि कृत्वा तेष्वीशादिकं निर्ऋत्यादिकं चाभिचार्यः पुरुषश्चेदन्तःकालीविद्यां बहिर्यममन्त्रं च, स्त्री चेदन्तर्यममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च प्राग्वत् समालिख्य प्राग्वत् सबिन्दुयकाररेफाभ्यां संवेष्ट्य प्रोक्तक्रमेण प्रोक्तेषु स्थानेषु स्थापनात् प्रोक्तफलसिद्धिर्भवति। तथा—

अनुक्तेष्वपि नामानि योजयेत् कोष्ठमध्यतः। लवणोषणमेहाम्बुगृहधूमाग्निसंयुतम् ॥४२॥

श्मशानाङ्गारनिम्बोत्थनिर्यासो विषमीरितम्।
ऊषणमूषर इति मनोरमाकारैर्व्याख्यातम्। मेहाम्बु प्रस्रवः, अग्निश्चित्रकम्।

अन्य यन्त्र—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर नव-नव रेखाओं को बराबर दूरी पर खींचने से चौंसठ कोष्ठ बनते हैं। इसमें ईशान से नैर्ऋत्य तक प्रयोक्ता यदि पुरुष हो तो अन्दर काली मन्त्र और बाहर यम मन्त्र लिखे एवं यदि स्त्री हो तो अन्दर यममन्त्र एवं बाहर कालीमन्त्र लिखे। पूरे यन्त्र से यं रं से बाहर से वेष्टित करे। चक्र के बाहरी भाग में ब्रह्मदण्डी और मर्कटी का लेप लगाकर अधोमुख करके जप करे। इस यन्त्र को जिस देश में गाड़ दिया जाता है, वहाँ दरिद्रता और रोग होते हैं तथा ऐसी महामारी होती है, जो देवताओं से भी असाध्य होती है। अनुक्त होने पर भी कोष्ठ मध्य में नमक, ऊष्ण वर्षाजल, रसोईघर का धूआँ एवं चित्रक, श्मशान का अंगार, निम्ब का निर्यास विष मिलाकर साध्य नाम लिखे।

त्रिकण्टकीविद्योद्धारादि

सारसंग्रहे—

खों खेऽन्त्योऽन्त्यकलायुक्तस्त्रिवर्णेयं त्रिकण्टकी। ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं द्विरुक्तार्णैः षडङ्गकम्॥४३॥

खं हकारः उं स्वरूपं तेन हुं। खे स्वरूपं। अन्त्यः क्षकारः अन्त्यकला-विसर्गः तेन क्षः इति।

नाभेर्नीलनिभामधोऽरुणरुचिं कण्ठात् सिताभाननां तुन्दालम्बिभिराननैर्युगमितैर्दंष्ट्रोत्कटैर्भीषणाम्।
दीपद्वन्द्वदरारिहस्तकमलां चन्द्रोल्लसच्छेखरामुद्यद्बालविलोचनां भयहरां देवीं सदा भावयेत्॥४४॥

युगमितैश्चतुर्भिः। दरः शंखः। अरिश्चक्रम्। वामाद्यूर्ध्वयोः शंखचक्रे, अन्ययोरन्यतरे। इत्यायुधध्यानम्।

ततः पूर्वोदितेनाथ वर्त्मनामुं भजेत् सुधीः। वर्णलक्षं जपेदन्ते दशांशेन घृतं हुनेत्॥४५॥
आत्मानं देवतारूपं ध्यात्वा रूपं(बद्ध्वा)करद्वये। शूलमुद्रां ग्रहग्रस्तं स्पृष्ट्वैवं प्रजपेन्मनुम्॥४६॥
आशु ग्रहात् प्रमुच्येत नरो मन्त्रप्रभावतः। इति।

सारसंग्रह के अनुसार त्रिकण्टकी के तीन बीज खं खे क्षः हैं। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् हैं। इसकी दो आवृत्ति से षडङ्ग होता है। त्रिकण्टकी देवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

नाभेर्नीलनिभामधोऽरुणरुचिं कण्ठात् सिताभाननां तुन्दालम्बिभिराननैर्युगमितैर्दंष्ट्रोत्कटैर्भीषणाम्।
दीपद्वन्द्वदरारिहस्तकमलां चन्द्रोल्लसच्छेखरामुद्यद्बालविलोचनां भयहरां देवीं सदा भावयेत्॥

इस प्रकार का ध्यान करके पूजा आदि करे। वर्णलक्ष अर्थात् तीन लाख मन्त्रजप करे। दशांश हवन करे। अपने को देवता रूप मानकर दोनों हाथों से शूलमुद्रा बनाकर ग्रहों से पीड़ित को स्पर्श करके मन्त्र का जप करे। इस मन्त्र के प्रभाव से रोगी तुरन्त निरोग हो जाता है।

मन्त्रान्तरम्

तथा—

ईशयुक् पूर्वमन्त्रान्त्यौ मध्ये योषिद्भवेदियम्। वश्या त्रिकण्टकीविद्या त्र्यर्णा मन्त्रिभिरीरिता॥४७॥

पूर्वमन्त्रान्त्यौ खेक्षः इति वर्णौ ईशयुतावेकारयुक्तौ, एतद्द्वयोर्मध्ये योषित् स्त्री इत्यक्षरं यदि भवेदित्यर्थः। पूर्वोक्तवत्सर्वमस्य कुर्यान्मन्त्री यथाविधि।

पूर्ववत् त्वरितावत्। एतन्मन्त्रद्वयस्यापि ज्ञेयम्।

पूर्व त्र्यक्षर मन्त्र के प्रथम और अन्तिम अक्षरों के बीच में स्त्रीं जोड़ने से त्रिकण्टकी वश्यमन्त्र होता है। इस मन्त्र की सभी क्रियाएँ पूर्वोक्त मन्त्र के समान होती हैं। यथाविधि मन्त्र सिद्ध करके साधना करे।

महामायावैष्णवीमन्त्रस्तत्प्रयोगश्च

अथ महामाया वैष्णवी उत्तरतन्त्रे—

हान्तान्तपूर्वो मान्तश्च नान्तो णान्तस्तथैव च। कैकादश आदिषष्ठः खान्तो विष्णुपुरःसरः॥१॥

एभिरष्टाक्षरैर्मन्त्रः शोणपद्मसमप्रभः । ओंकारं पूर्वतः कृत्वा जप्यः सर्वैस्तु साधकैः ॥२॥

हान्तान्तपूर्वः शकारः, मान्तो यकारः, नान्त पकारः, णान्तस्तकारः, कैकादश टकारः, आदिषष्ठश्चकारः, खान्तः ककारः, विष्णुरकारः, पुरःसर इत्यनेनाकारादिशकारान्तो मन्त्रः उक्तः।

नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्च वैष्णवी । देवता मुनिभिः प्रोक्ता सर्वसिद्धिप्रदा तथा ॥३॥
मूलमन्त्राक्षरैः कुर्यात् त्रिभिस्त्रिभिरनुक्रमात् । एकैकं वर्जयेत् पश्चादङ्गानि षडनुक्रमात् ॥४॥

अकच हृत्, कचट शिरः, इत्यादिप्रणवपूर्वं कुर्यात्। 'अकचैते सप्रणवाः' इति हयशीर्षवचनात्।

ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे । बाह्वोर्गुह्ये पादयोश्च जङ्घयोर्जघने क्रमात् ॥५॥
विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकारं च तथा स्मरेत् । शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीम् ॥६॥
चलत्काञ्चनसंभूतकुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् । स्वर्णरत्नसमुन्नद्धकिरीटसूत्रधारिणीम् ॥७॥
शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् । बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ॥८॥
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् । चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥९॥
दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशं परेण सिद्धसूत्रकम् । बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभतिवरदायिनीम् ॥१०॥
आनम्रनागनासोरुं वृत्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम् । गात्रेण रत्नस्तम्भं च सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥११॥
किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः । पञ्चाननं पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं स्ववाहनम् ॥१२॥
ईदृशीमम्बिकां ध्यात्वा ओंनमः फडिति मस्तके । स्वकीये सुमनो दद्यात्साहमेवं विचिन्त्य च ॥१३॥
पञ्चाननं मण्डलस्य मध्येऽवश्यं प्रपूजयेत् । आवाहनं ततः कुर्याद्गायत्र्या शिरसा सह ॥१४॥
महामायायै विद्महे चण्डिकायै च धीमहि । एवमुक्त्वा ततः पश्चात्तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१५॥
ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धं पुष्पं सधूपकम् । दीपादिकं च दद्यात्तु मोदकं पायसं तथा ॥१६॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यान्मूलमन्त्रेण शोभनम् । एवं संपूज्य मध्ये तु मन्त्रेणाङ्गानि पूजयेत् ॥१७॥
सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् । शैलपुत्रीं चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च ॥१८॥
कालरात्रीं च दिक्पत्रेष्वर्चयेच्चन्दनादिभिः । चण्डिकामथ कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम् ॥१९॥
महागौरीं चाग्निकोणे नैर्ऋत्यादिषु पूजयेत् । ततः संपूज्य लोकेशांस्तदस्त्राणि च मन्त्रवित् ॥२०॥
महामायां नमामीति मूलमन्त्रेण चाष्टधा । पूजयेत्पद्ममध्ये तु सुमनोञ्जलिभिस्तथा ॥२१॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥
सप्तधावर्तनं कृत्वा स्तुतिमेनां तु साधकः । पञ्च प्रणामान् कुर्वीत ऐंह्रींश्रीमिति मन्त्रकैः ॥२३॥
योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि नारदाय ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीवैष्णव्यै महामायायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, अकच हृदयाय नमः। कचट शिरसे स्वाहा। चटत शिखायै वषट्। टतप कवचाय हुं। तपय नेत्रत्रयाय वौषट्। पयश अस्त्राय फट्, इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानानन्तरं 'ॐ नमः फट्' इति स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसपूजादिपरतत्त्वपूजान्ते 'ॐ पञ्चाननाय (नमः' इति पीठमध्ये संपूज्य, महामायायै विद्महे चण्डिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् स्वाहा) इत्यन्तं 'श्रीवैष्णवीहागच्छागच्छ' इत्यावाह्य मूलेन स्थापनादिपरमीकरणान्तं कृत्वा प्राणस्थापनादिपुष्पोपचारान्ते मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, दुं सिद्धसूत्राय नमः ह्रांह्रींह्रौंसः खड्गाय नमः इति देव्या दक्षिणाधऊर्ध्वकरयोः संपूज्याष्टदलेषु देव्यग्रादिचतुर्दलेषु ॐ शैलपुत्र्यै नमः। चण्डघण्टायै० स्कन्दमात्रे० कालरात्र्यै०, आग्नेयादिदलेषु ॐ चण्डिकायै० कूष्माण्ड्यै० कात्यायन्यै० महागौर्यै०

इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य, इन्द्रादिपूजानन्तरं मूलान्ते 'महामायां नमामि' इति पुष्पाञ्जल्यष्टकं देव्यै समर्प्य धूपादिसर्वं प्राग्वत्समर्पयेत्। तथा—

लक्षद्वयं भवेदस्य पुरश्चरणकर्म वै। दशांशहोमश्चाज्येन कर्तव्यस्तर्पणादिकम् ॥२४॥ इति।

तथा—

ॐनमोऽन्ते महामायायै मनुर्वसुवर्णकः। ॐनमोऽन्ते च वैष्णव्यै मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः॥
एतन्मन्त्रद्वयस्यापि सर्वं पूर्वोक्तमाचरेत्। इति।

महामाया वैष्णवी—उत्तर तन्त्र के श्लोक १-२ के उद्धार करने पर महामाया वैष्णवी का अष्टाक्षर मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—अं कं चं टं तं पं यं शं। इसके पहले ॐ लगाने से यह मन्त्र नवाक्षर होता है। साधकों को इसी नवाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् और देवता वैष्णवी कहे गये हैं। यह मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

प्रात:कृत्य से योगपीठ न्यास तक की क्रिया करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि नारद ऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः, हृदये श्रीवैष्णव्यै महामायायै देवतायै नमः। तदनन्तर मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः—इस प्रकार विनियोग करे। अंगन्यास इस प्रकार करे—अकच हृदयाय नमः, कचट शिरसे स्वाहा, चटत शिखायै वषट्, टतप कवचाय हुं, तपय नेत्रत्रयाय वौषट्, पयश अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे। मन्त्रवर्ण न्यास मुख, पीठ, उदर, बाहु, गुह्य, पैरों, जंघों, जघनों में करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीम्। चलत्काञ्चनसंभूतकुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ॥
स्वर्णरत्नसमुन्नद्धकिरीटसूत्रधारिणीम्। शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ॥
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम्। कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्॥
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम्। दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशं परेण सिद्धसूत्रकम्॥
बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभतिवरदायिनीम्। आनम्रनागनासोरुं वृत्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम्॥
गात्रेण रत्नस्तम्भं च सम्यगालम्ब्य संस्थिताम्। किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः॥
पञ्चाननं पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं स्ववाहनम्।

ध्यान के पश्चात् ॐ नमः फट् कहकर अपने शिर पर फूल डाले। मानस पूजन करे। परतत्त्व तक पूजा करे। ॐ पञ्चाननाय नमः से पीठमध्य में पूजा करे। महामायायै विद्महे चण्डिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् स्वाहाश्री वैष्णवीहागच्छा-गच्छ कहकर देवी का आवाहन करे। मूल मन्त्र से स्थापन से परमीकरण तक की क्रिया करे। प्राण-प्रतिष्ठा से लेकर पुष्पोपचार तक की पूजा क्रिया करे। मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देकर प्रणवादि से अंगपूजन करे। दुं सिद्धसूत्राय नमः, ह्रां ह्रीं ह्रीं सः खड्गाय नमः इत्यादि से देवी के हाथों में आयुधों की पूजा करे।

अष्टदल में देव्यग्र चार दलों में ॐ शैलपुत्र्यै नमः, चण्डघण्टायै नमः, ॐ स्कन्दमात्रे नमः, ॐ कालरात्र्यै नमः से पूजन करे। आग्नेयादि दलों में ॐ चण्डिकायै नमः, ॐ कूष्माण्ड्यै नमः, ॐ कात्यायन्यै नमः, ॐ महागौर्यै नमः कहकर प्रदक्षिण क्रम से पूजन करे। इन्द्रादि लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे। पूजा के बाद मूलमन्त्र महामायां नमामि से आठ पुष्पाञ्जलि देकर धूपादि समर्पित करे। श्लोक २२ का साठ बार पाठ करे। पाँच बार प्रणाम करे। प्रणाम 'ऐं ह्रीं श्रीं' मन्त्र से करे। योनिमुद्रा दिखाकर विसर्जन करे।

दो लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। दशांश हवन आज्य से करे। तर्पण-मार्जन आदि करे। वैष्णवी के दो अन्य मन्त्र भी हैं, जो निम्नवत् हैं—

१. ॐ नमो महामायायै—यह अष्टाक्षर है।

२. ॐ नमो वैष्णव्यै—यह षडक्षर हैं।

इन दोनों मन्त्रों का समस्त विधान पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही होता है।

नित्यकर्मादित्यागे निमित्ताभिधानम्

कालिकापुरणे—

अशुचिर्न महामायां पूजयेत्तु कदाचन। अवश्यं तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः ॥१॥
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणं च न विद्यते। सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं व्रजेत् ॥२॥
जानूर्ध्वक्षतजे जाते नित्यकर्माणि संत्यजेत्। नैमित्तिकं तु तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ॥३॥
लोतके तु समुत्पन्ने क्षुरकर्माणि मैथुने। धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि संत्यजेत् ॥४॥
द्रव्यभुक्तेऽप्यजीर्णे च नैव भुक्त्वा च किञ्चन। कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ॥५॥
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद्द्वेषजादृते। नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ॥६॥
जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम्। कामाद्धस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ॥७॥
विशेषतः शिवापूजां प्रतीमपितृको नरः। याद्व्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ॥८॥
महागुरुनिपाते च काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत्। आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धं देवक्रियां तथा ॥९॥
गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना। न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरवि ॥१०॥

स्मरेद् ध्यायेन्मनसा जपेदित्यर्थः। अतिभक्तियुतः सततेष्टदेवतागतचित्तो नित्यमपि नाचरेदित्यर्थः। स्रवदिति वर्तमानमविवक्षितम्।

नाभेरूर्ध्वमधो वापि यस्य क्षरति शोणितम्। अशुचिस्तदहः कर्म कुर्वन्नरकमाप्नुयात् ॥१॥

इति भविष्यपुराणवचनात् मेढ्रादधो जान्वधः नित्यं कुर्यादेवेत्यर्थः लोतकेऽश्रुजले। लोतमस्रुणि चोदितमिति विश्वप्रकाशकोषात्। द्रव्येऽन्नादौ। गूढपादः सर्पः। गण्डूपदः किञ्चुलिकः। आर्त्विज्यम् ऋत्विजमाक्षिप्य तिरस्कृत्य पाणिनेत्युपलक्षणम्। योगार्णवे—

वान्तोद्गारे च क्षतजे लोतके च समुद्भवे। गूढपादस्पर्शने च उपस्थस्पर्शने तथा ॥१॥
रेतःपाते तथा क्षौरे प्रमीतपितृके तथा। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं मनसापि न चाचरेत् ॥२॥

उद्गारे धूमोद्गारे। लोतके क्रन्दनादौ वा।

क्रन्दनादश्रुपाते तु नित्यनैमित्तिकं त्यजेत्। तदेव हर्षात्सञ्जातं कर्म कुर्वन्न दुष्यति ॥१॥

इति मत्स्यपुराणवचनात्। उपस्थस्पर्शोऽकामतः। शौचे 'गृहीतशिश्नश्चोत्थाय' इति तत्स्पर्शोक्तेः। प्रमीतपितृक इत्युपलक्षणम्, तेन मातर्यपि प्रमीतायाम्,

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्। नापि दैवं न वा पैत्र्यं यावत्पूर्णोऽथ वत्सरः ॥२॥

इति देवीपुराणवचनात्। एतत्सर्वं महामायोपासकपरम्। अथवा सकामपरम्। 'अथ सूतकिनां पूजां वदाम्यागमबोधिता'मित्यादिप्राक्पूजाप्रकरणोक्ततत्त्वसारसंहितावचनात्। इति अन्यथा पुरश्चरणप्रकरणे लिखितवचनानां वैयर्थ्यापत्तेः।

कालिकापुराण में कहा गया है कि अपवित्र अवस्था में महामाया की पूजा कदापि न करे। अति भक्तियुक्त मनुष्य मन्त्र का स्मरण अवश्य करे। दाँत से खून निकलने पंर जप न करे। ऐसी अवस्था में सभी मन्त्रों के स्मरण से नरक प्राप्त होता है। घुटनों के ऊपर चोट लगने पर नित्य कर्म न करे। घुटनों के नीचे रक्त गिरने पर नैमित्तिक कर्म न करे। लूता होने पर, बाल कटवाने पर, मैथुन करने पर, खट्टा डकार आने पर, वमन होने पर नित्य कर्म न करे। अधिक खाने से अजीर्ण होने पर और विना खाये कभी भी नित्य कर्म न करे। नित्य कर्म अशौच होने पर भी करे। जैसे जल और भोजन आवश्यक हैं, वैसे ही नित्य कर्म भी सदा करे। जोंक, कीड़ा एवं केंचुली के हाथ से छूने पर नित्य कर्म न करे। विशेषकर शिवा-पूजन पिता के मरने पर एक वर्ष तक न करे। गुरु की मृत्यु होने पर कोई काम्य कर्म न करे। आर्त्विज्य ब्रह्मयज्ञ, श्राद्ध, देवक्रिया,

गुरु का तिरस्कार कर एवं दूसरे विप्र पर प्रहार करके वीर्यस्खलन होने पर भी नित्य कर्म न करे। भविष्यपुराण में कहा गया है कि नाभि से ऊपर अथवा नीचे खून गिरने पर अशौच होता है। उसमें नित्य कर्म करने पर कर्ता नरकगामी होता है।

योगार्णव में कहा गया है कि वमन, डकार, घाव लगने पर, रुदन आदि होने पर, सर्प के स्पर्श होने पर, लिङ्ग के स्पर्श होने पर, वीर्यपात होने पर, पितृसम्बन्धी क्षौर के बाद नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म मनसा भी न करे। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि रुदन और अश्रुपात होने पर नित्य-नैमित्तिक कर्म न करे; लेकिन हर्षजनित रुदन या अश्रुपात होने पर कर्म करने में कोई दोष नहीं होता। माता-पिता की मृत्यु होने पर अशौच होता है। इसमें एक वर्ष तक देवता-पितर की पूजा न करे। ये सभी बातें महामाया की उपासना से सम्बन्धित हैं अथवा सकाम कर्मों के लिये हैं।

ब्रह्मास्त्रविद्याबगलामुखीविधानम्

अथ ब्रह्मास्त्रविद्या, तत्र श्रीभैरवयामले—

श्रीदेव्युवाच

प्रभो त्वं भैरवश्रेष्ठ सर्वतन्त्रानुजीवक। नानारहस्यसारं च त्वत्प्रसादाच्छृणोम्यहम्॥१॥
दिव्यतन्त्रं महातन्त्रं पूर्वपश्चिमसंज्ञकम्। दक्षिणोत्तरमूर्ध्वं च ह्युपाया: कथिता: प्रभो॥२॥
वश्याकर्षणदिव्यानि मारणोच्चाटनादिकम्। विद्वेषं मोहनं चान्यद् द्विविधं कामनादिकम्॥३॥
विस्तारपूर्वं कथितं ज्ञानं न्यासेन तन्मया। इदानीं स्तम्भनं देवं कथयस्व प्रसादत:॥४॥
कथयस्व सुरश्रेष्ठ यद्यहं तव वल्लभा।

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे सर्वतन्त्रार्थसाधिके। न कस्यचिन्मयाख्यातं पृष्टं वापि न केनचित्॥५॥
गुह्याद् गुह्यतरं देवि त्वत्स्नेहात्तु प्रकाश्यते। अथात: संप्रवक्ष्यामि शृणु चैकाग्रमानसा॥६॥
विद्या या परमा गुप्ता महास्तम्भनकारिणी। तारं प्रथममुच्चार्य स्थिरमायामथोच्चरेत्॥७॥
संबोधनपदं देवि वदेच्च बगलामुखीम्। तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्॥८॥
स्तम्भयेति पदं जिह्वां कीलयेति तत: परम्। बुद्धिं विनाशयेत्यस्मात्स्थिरमायां पुनर्लिखेत्॥९॥
लिखेच्च पुनरोंकारं स्वाहेति पदमन्तत:। षट्त्रिंशदक्षरा विद्या महास्तम्भनकारिणी॥१०॥ इति।

ब्रह्मास्त्र विद्या (बगलामुखी)—श्रीभैरवयामल में श्री देवी ने कहा कि हे प्रभो! आप भैरवों में श्रेष्ठ हैं और सभी तन्त्रों के अनुसार कार्य करने वाले हैं। अनेक रहस्यों का सार आपकी कृपा से मैंने सुना। महातन्त्र, दिव्य तन्त्र, पूर्व-पश्चिम, दक्षिणोत्तर को आपने कहा। वश्य, आर्कषण, मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, मोहन और द्विविध कामनात्मक कर्मों को भी विस्तार से कहा और उसे मैंने जान लिया। अब कृपया स्तम्भन के बारे में कहिये। हे देवश्रेष्ठ! इसे कहिये, यदि मैं आपकी प्रिया हूँ।

श्रीभैरव ने कहा—हे महाभागे! आपको साधुवाद देता हूँ कि आप सर्वतन्त्रसाधिका से मैंने जो कुछ नहीं कहा, उसे आप पूछ रही हैं। गुह्य से गुह्यतर रहस्यों को तुम्हारे स्नेहवश मैंने प्रकाशित किया है। अब मैं जो कहता हूँ, उसे एकाग्रता से सुनो। महास्तम्भनकारिणी यह विद्या परम गुप्त है। श्लोक ७-१० का उद्धार करने पर छत्तीस अक्षरों की महास्तम्भकारिणी विद्या इस प्रकार स्पष्ट होती है—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।

स्थिरमायाबीजोद्धार:

जयद्रथयामले—

पूर्वोक्तमायाबीजे तु व्योमरेफान्तरालके। भूबीजं योजयेदषा स्थिरमाया प्रकीर्तिता॥१॥

मायाबीजे भुवनेश्वरीबीजे भूबीजं लकारं, सुगममन्यत् (तन्त्रान्तरे 'वह्निहीनेन्द्रयुग्माया स्थिरमाया प्रकीर्तिता' इति मतान्तरम्।) भुवनेश्वरीबीजस्य सर्वेषु स्थलेषु उद्धृतत्वात् पूर्वोक्तेत्युक्ति:।

गजानां च रथानां च दुर्जनान् शीघ्रकारिणः। स्तम्भयेच्च महावाचं बृहस्पतिमुखोद्गताम् ॥१२॥
महापर्वतवृक्षाणां सरितां सागरव्रजाम्। चतुष्पदां पक्षिणां च सर्पाग्निवायुविद्युताम् ॥१३॥
स्तम्भयेत्पञ्च दिव्यानि मानुष्येषु च का कथा। त्रैलोक्यस्तम्भिनी विद्या देवी श्रीबगलामुखी ॥१४॥

तारं प्रणवं, स्थिरमायां ह्लीबीजं, संबोधनपदं बगलामुखि, सर्वदुष्टानां स्वरूपं, वाचं स्वरूपं, मुखं स्वरूपं, पदं स्वरूपं, स्तम्भय स्वरूपं, जिह्वां कीलय स्वरूपं, बुद्धिं विनाशय स्वरूपं, स्थिरमायां प्राग्वद्बीजं, प्रणवमोंकारं स्वाहा स्वरूपम्।

जयद्रथयामल के अनुसार पूर्वोक्त माया बीज ह र के अन्तराल में 'ल'कार जोड़ने से स्थिर मायाबीज बनता है। वृहस्पति के मुख से निःसृत वाणी हाथियों, रथों, दुर्जनों का शीघ्र स्तम्भन होता है। महान् पर्वतों, वृक्षों, सागरगामी नदियों, चतुष्पदों, पक्षियों, सर्पों, अग्नियों, वायुओं एवं विद्युतों का भी स्तम्भन इस मन्त्र के प्रभाव से होता है; फिर मनुष्यों के बारे में तो कहना ही क्या है। देवी श्री बगलामुखी की यह विद्या त्रैलोक्य का स्तम्भन करने वाली है।

पूजाविधिः

तथा—

नारायण ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दश्च बगलामुखी। देवता गदिता देवि त्रैलोक्यस्तम्भकारिणी ॥१५॥
स्थिरमाया भवेद्बीजं शक्तिः स्वाहा समीरिता। विनियोगस्तु विख्यातः पुरुषार्थचतुष्टये ॥१६॥
स्थिरमाया च हृदयं शिरश्च बगलामुखी। सर्वदुष्ट शिखां न्यस्य कवचं स्तम्भयान्तिकम् ॥१७॥
जिह्वां कीलय नेत्रे च बुद्धिं विनाशयास्त्रकम्।

सर्वदुष्ट इति समग्रपदस्य ग्रहणं तेन सर्वदुष्टानां शिखायै इति। स्तम्भयान्तिकमित्यनेन वाचं मुखं पदं स्तम्भय इति पदचतुष्टयं कवचे प्रोक्तम्। सुगममन्यत्।

मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नसोः। गण्डयोरोष्ठयोर्वक्त्रे चिबुके च गले प्रिये ॥१८॥
दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु मन्त्रवर्णान् न्यसेत्क्रमात्। एवं न्यासविधिः प्रोक्तस्ततो ध्यानं शृणु प्रिये ॥१९॥
यस्याः स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात्। गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसुप्रभाम् ॥२०॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्। मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम् ॥२१॥
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम्। हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ॥२२॥
पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम्। एवं ध्यात्वा च देवेशि शत्रुस्तम्भनकारिणीम् ॥२३॥
महाविद्यां महामायां साधकेष्टफलप्रदाम्।

दक्षिणाध उत्तरयोर्मुद्गरपाशौ, वामाध उत्तरयोर्जिह्वावज्रे, जिह्वां साधकविपक्षजनस्येति, 'धृतमुद्गरवैरिजिह्वा'-मिति वचनात्।

इस मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द अनुष्टुप्, देवता त्रैलोक्य स्तम्भनकारिणी बगलामुखी है। बीज 'ह्लीं' है और शक्ति स्वाहा है। पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिये इसका विनियोग होता है। ह्लीं से हृदय में, बगलामुखि से शिर में, सर्वदुष्ट से शिखा में, स्तम्भय से कवच में, जिह्वां कीलय से नेत्र में बुद्धिं विनाशय से अस्त्र में न्यास किया जाता करे।

मन्त्रवर्णों का न्यास—मूर्धा, ललाट, भ्रूमध्य, नेत्र, श्रोत्र, नाक, कपोल, ओष्ठ, मुख, चिबुक, गला, सन्धियों में और आगे मन्त्रवर्णों का न्यास किया जाता है। इस प्रकार न्यास के बाद निम्नवत् ध्यान किया जाता है—

यस्याः स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात्। गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसुप्रभाम्।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्। मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।।
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम्। हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम्।।

पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम्। एवं ध्यात्वा च देवेशि शत्रुस्तम्भनकारिणीम्।।
महाविद्यां महामायां साधकेष्टफलप्रदाम्।

इस प्रकार का ध्यान करने से देवेशी शत्रुस्तम्भनकारिणी महाविद्या महामाया साधक को अभीष्ट फल देती है। देवी के नीचले दाँयें हाथ में मुद्गर एवं ऊपर वाले हाथ में पाश है। नीचले बाँयें हाथ में शत्रु की जीभ और ऊपर वाले हाथ में वज्र है।

श्रीदेव्युवाच

ध्यानं तु कथितं देव महाश्चर्यप्रदायकम्। इदानीं कथयस्वेश पूजनं विधिपूर्वकम्।।२४।।

श्रीभैरव उवाच

पूजनं शृणु देवेशि साधके सिद्धिदायकम्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं पूजनं त्रिविधं प्रिये।।२५।।
भूप्रदेशे मनोरम्ये पुष्पामोदैः सुधूपिते। गोमयेनाथ संलिप्ते पुष्पप्रकरशोभिते।।२६।।
मण्डपे विधिवत्तत्र आसनं तु समर्चयेत्। सौवर्णे वाथ रौप्ये वा पैत्तले वाथ भूर्जके।।२७।।
कर्पूरागरुकस्तूरीश्रीखण्डकुङ्कुमैरपि। लिखेद्यन्त्रं प्रयत्नेन लेखिन्या हेमतारया।।२८।।
मध्ये योनिं समालिख्य तद्बाह्ये तु षडस्रकम्। तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बाह्ये षोडशच्छदम्।।२९।।
चतुरस्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारोपशोभितम्। इति।

श्री देवी ने कहा—हे देव! आपने महान् आश्चर्यप्रदायक ध्यान को कहा है। अब पूजन विधि का वर्णन सम्यक् रूप से कीजिये। श्री भैरव ने कहा—हे देवि! अब साधकों के लिये सिद्धिदायक पूजन-विधि को सुनो। नित्य-नैमित्तिक-काम्य—तीनों प्रकार के पूजनों को कहता हूँ। मनोरम भूप्रदेश में फूलों से सुगन्धित, धूपित, गोबर से लिपी, पुष्पों से शोभित मण्डप में विधिवत् आसन की पूजा करे। सोना या चाँदी या पीतल या भोजपत्र पर कपूर, अगर, कस्तूरी, चन्दन, कुङ्कुम से यन्त्र लिखे। लेखनी सोने की हो। पहले त्रिकोण बनावे, उसके बाहर षट्कोण, तब अष्टदल, तब षोडश दल कमल, तब चार द्वारों से युक्त तीन चतुरस्र बनावे।

अत्र तु—

यत्र नोक्तं महादेवि पीठं वा पीठशक्तयः। तत्र मायोदितं पीठं ज्ञेयं ता एव शक्तयः।।३०।।
तद्बीजेनैव पीठं च यजेन्मायाणुनाथ वा।

इति श्रीशिवयामलवचनाद्भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य तत्र श्रीबगलामुखीमन्यां वा देवीमनुक्तपीठं यजेत्। मायाणुना भुवनेशीबीजेन। तथा—

तत्रावाह्य यजेद् देवीं सुपीतैरुपचारकैः। अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य यथास्थानं महेश्वरि।।३१।।
पूर्वद्वारे गणेशं च दक्षिणे वटुकं यजेत्। पश्चिमे योगिनीः पूज्याः क्षेत्रपालं तथोत्तरे।।३२।।
ईशानादिनिर्ऋत्यन्तं गुरुपङ्क्तिं समर्चयेत्।

ईशानादीति तन्त्रेषु षडङ्गपूजाक्रमे अग्नीशासुरवायव्येत्युक्तक्रमस्य कल्पितप्राच्यनुसारादीशानस्यादिभूत-माग्नेयं तदारभ्य निर्ऋतिदिक्पर्यन्तं गुरुपङ्क्तिं पूजयेदित्यर्थः। तदा तु यथास्थितवायव्यादीशानान्तं गुरुपङ्क्तिपूजा कार्येत्यायातम्।

हे महादेवि! जहाँ पर पीठ अथवा पीठशक्तियाँ नहीं कही गई हैं, वहाँ पर शिवयामल के वचनानुसार भुवनेश्वरी पीठ और उनकी शक्तियों का उनके बीजमन्त्रों अथवा भुवनेशी-बीज से यजन करना चाहिये। उक्त पीठ पर देवी का आवाहन करके पीले उपचारों से प्रथमतः अंगपूजा करे। पूर्व द्वार पर गणेश की, दक्षिण द्वार पर वटुक की, पश्चिम द्वार पर योगिनियों की एवं उत्तर द्वार पर क्षेत्रपाल की पूजा करे। तदनन्तर ईशान कोण से प्रारम्भ कर नैर्ऋत्य कोण तक गुरुपंक्ति का अर्चन करना चाहिये।

बगलामुखीप्रयोगः

तथा—

बगला पूर्वपत्रे तु स्तम्भिनी च ततः परम् ॥३३॥

जम्भिनी मोहिनी वश्या अचला च चला तथा। दुर्द्धरा कल्मषा धीरा कल्पना कालकर्षिणी ॥३४॥
भ्रामिका मन्दगमना भोगाख्या चैव योगका। एताः षोडशपत्रेषु गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत् ॥३५॥
षोडशस्वरसंयुक्ताः संप्रदायात् कुलागमे। यजेच्च पत्रमध्येषु कल्पितु चाष्टपत्रके ॥३६॥
ब्रह्माण्याद्याष्ट पूर्वादौ वाहनाकल्पसंयुताः। स्थिरमायाबीजपूर्वाः परिपूज्याः कुलागमे ॥३७॥
डादिहान्ताः षडस्त्रेषु पूज्याः षड्धातुमातृकाः। लोकेशांश्च तदस्त्राणि पूजयेद्बाह्यतः प्रिये ॥३८॥
योनिमध्ये मूलदेवीं त्रिरञ्जलिभिरर्चयेत्। धूपदीपसुनैवेद्यैर्गन्धताम्बूलदीपकैः ॥३९॥
नीराज्य विधिवत्पश्चाज्जपसङ्ख्यां निवेदयेत्। बलित्रयं ततो दद्यात् पीतान्नादीनि साधकः ॥४०॥

बलित्रयमित्युपलक्षणं बलिपञ्चकं दद्यादित्यर्थः।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि नारायणऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये बगलामुख्यै देवतायै नमः। नाभौ ह्लींबीजाय नमः। गुह्ये स्वाहा शक्तये नमः। पादयोः पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगाय नमः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्लीं हृदयाय नमः। बगलामुखि शिरसे स्वाहा। सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्। वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं। जिह्वां कीलय नेत्राभ्यां वौषट्। बुद्धिं विनाशय अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, शिरसि ॐ नमः। ललाटे ह्लीं नमः। भ्रूमध्ये बं नमः। दक्षनेत्रे गं नमः। वामे लां नमः। दक्षश्रोत्रे मुं नमः। वामे खिं नमः। दक्षनसि सं नमः। वामे र्वं नमः। दक्षगण्डे दुं नमः। वामे ष्टां नमः। ऊर्ध्वोष्ठे नां नमः। अधरोष्ठे वां नमः। मुखे चं नमः। चिबुके मुं नमः। गले खं नमः। दक्षबाहुमूले पं नमः। मध्ये दं नमः। मणिबन्धे स्तं नमः। अङ्गुलिमूले म्भं नमः। अग्रे यं नमः। वामबाहुमूले जिं नमः। मध्ये ह्वां नमः। मणिबन्धे कीं नमः। अङ्गुलिमूले लं नमः। अग्रे यं नमः। दक्षोरुमूले बुं नमः। जानुनि द्धिं नमः। गुल्फे विं नमः। अङ्गुलिमूले नां नमः। अग्रे शं नमः। वामोरुमूले यं नमः। जानुनि ह्लीं नमः। अङ्गुलिमूले स्वां नमः। अग्रे हां नमः, इति विन्यस्य ध्यानाद्यात्मपूजान्ते पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठं संपूज्य तत्र नवशक्तिपूजान्ते 'ह्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति समस्तं पीठं संपूज्या-वाहनादिषडङ्गपूजान्ते देव्यग्रद्वारमारभ्य प्रादक्षिण्येन चतुर्द्वारेषु, गणेशाय नमः। वटुकाय नमः। योगिनीभ्यो नमः। क्षेत्रपालाय नमः। इति संपूज्य, स्ववामभागे कल्पितप्राच्यनुसारेणाग्नेयादिनिर्ऋत्यन्तं गुरुभ्यो नमः। परमगुरुभ्यो नमः। परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। परापरगुरुभ्यो नमः। अस्मद्गुरुभ्यो नमः। इति गुरुपङ्क्तिं संपूज्य, षोडशदलेषु देव्य-ग्रादिप्रादक्षिण्येन अं बगलायै नमः स्तम्भिन्यै०, इं जम्भिन्यै०, ईं मोहिन्यै०, उं वश्यायै०, ऊं अचलायै०, ऋं चलायै०, ॠं दुर्द्धरायै०, ऌं कल्मषायै०, ॡं धीरायै०, एं कल्पनायै०, ऐं कालकर्षिण्यै०, ओं भ्रामिकायै०, औं मन्दगमनायै०, अं भोगायै०, अः योगायै नमः, इति संपूज्य। अष्टदलेषु प्रादक्षिण्येन—ह्लीं ब्रह्माण्यै नमः, माहेश्वर्यै नमः इत्यादि स्थिरमायाबीजाद्या अष्ट मातृः संपूज्य, अन्तःषट्कोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन डां डाकिन्यै नमः। रां राकिण्यै नमः। लां लाकिन्यै नमः। कां काकिन्यै नमः। शां शाकिन्यै नमः। हां हाकिन्यै नमः, इति संपूज्य, मध्ये देवीं पुनस्त्रिर्मूलविद्यया संपूज्य लोकेशपूजादि सर्वं नित्यहोमान्तं कृत्वा बालाप्रकरणोक्तवद्बलित्रयं दत्त्वा शेषं प्राग्वत् समापयेदिति।

प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक की क्रिया करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। तदनन्तर ऋष्यादि न्यास करे— शिरसि नारायण ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये बगलामुख्यै देवतायै नमः। नाभौ ह्लीं बीजाय नमः। गुह्ये स्वाहा शक्तये नमः। पादयोः पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगाय नमः। कर-षडङ्ग न्यास करे—ह्लीं हृदयाय नमः। बगलामुखि शिरसे स्वाहा।

सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्। वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्। जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्। बुद्धिं विनाशय अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—शिरसि ॐ नम:। ललाटे ह्लीं नम:। भ्रूमध्ये बं नम:। दक्षनेत्रे गं नम:। वामे लां नम:। दक्ष-श्रोत्रे मुं नम:। वामे खिं नम:। दक्षनसि सं नम:। वामे र्वं नम:। दक्षगण्डे दुं नम:। वामे ष्टां नम:। ऊर्ध्वोष्ठे नां नम:। अधरोष्ठे वां नम:। मुखे चं नम:। चिबुके मुं नम:। गले खें नम:। दक्षबाहुमूले पं नम:। मध्ये दं नम:। मणिबन्धे स्तं नम:। अंगुलि-मूले म्भं नम:। अग्रे यं नम:। वामबाहुमूले जिं नम:। मध्ये ह्वां नम:। मणिबन्धे कीं नम:। अंगुलिमूले लं नम:। अग्रे यं नम:। दक्षोरुमूले बुं नम:। जानुनि द्धिं नम:। गुल्फे विं नम:। अंगुलिमूले नां नम:। अग्रे शं नम:। वामोरुमूले यं नम:। जानुनि ह्लीं नम:। अंगुलिमूले स्वां नम:। अग्रे हां नम:। इसके बाद ध्यान आदि से आत्मपूजा तक पूर्वोक्त भुवनेश्वरी पीठ पर करे। उसमें नव शक्तियों की पूजा के बाद 'ह्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम:' से समस्त पीठ की पूजा करे। तब देवी का आवाहन करके षडङ्ग पूजा के बाद देवी के आगे वाले द्वार से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से चारो द्वारों में गणेशाय नम:, वटुकाय नम:, योगिनीभ्यो नम:, क्षेत्रपालाय नम: से पूजा करे। अपने वाम भाग में कल्पित पूर्व से आग्नेयादि नैर्ऋत्य तक गुरुभ्यो नम:, परमगुरुभ्यो नम: परमेष्ठिगुरुभ्यो नम:, परापरगुरुभ्यो नम:, अस्मद् गुरुभ्यो नम: से गुरुपंक्तियों की पूजा करे।

षोडशदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से अं बगलायै नम:, आं स्तम्भिन्यै नम:, इं जम्भिन्यै नम:, ईं मोहिन्यै नम:, उं वश्यायै नम:, ऊं अचलायै नम:, ऋं चलायै नम:, ॠं दुर्द्धरायै नम:, ऌं कल्मषायै नम:, ॡं धीरायै नम:, एं कल्पनायै नम:, ऐं कालकर्षिण्यै नम:, ओं भ्रामिकायै नम:, औं मन्दगमनायै नम:, अं भोगायै नम:, अ: योगायै नम:—इस प्रकार पूजन करे।

अष्टदल में प्रादक्षिण्य क्रम से ह्लीं ब्रह्माण्यै नम:, माहेश्वर्यै नम: इत्यादि स्थिर मायाबीज से अष्टमातृका का पूजनकर भीतरी षट्कोणों में देवी के आगे से प्रदक्षिणक्रम से डां डाकिन्यै नम:, रां राकिण्यै नम:, लां लाकिन्यौ नम:, कां काकिन्यै नम:, शां शाकिन्यै नम:, हां हाकिन्यै नम: से पूजा करे। मध्य में देवी की तीन मूल विद्या से पूजन कर भूपुर में लोकेशों और उनके आयुधों की पूजा करे। तब धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, ताम्बूल, दीपक, नीराजन करके जप का विधिवत् निवेदन करे। पवि-त्रारोपण करके दमनक देवी की पूजा करे। नित्य होम करके बाला प्रकरणोक्त विधि से पीले अन्न आदि से तीन बलि प्रदान करे।

तथा—

साधनं संप्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै। सर्वपीतोपचारेण पीताम्बरधरो नर: ॥४१॥
जपमाला च देवेशि हरिद्राग्रन्थिसंभवा। पीतमासनमारूढ: पीतध्यानपरायण: ॥४२॥
पीतपुष्पार्चनं नित्यमयुतं जपमाचरेत्। दशांशेन कृतो होम: पीतद्रव्यै: सुशोभितै: ॥४३॥
तर्पणादि तत: कुर्यान्मन्त्र: सिध्यति मन्त्रिण:। साध्यसंज्ञां समुच्चार्य स्तम्भयेति तत: परम् ॥४४॥
गतिस्तम्भकरी विद्या अरिस्तम्भनकारिणी। मेधां प्रज्ञां च शस्त्रादीन् देवमानवपन्नगान् ॥४५॥
स्तम्भयेच्च महाविद्या सत्यं सत्यं वरानने।

साधकों के हित के लिये अब इसका साधन कहता हूँ। इसके पूजा के उपचार पीले होते हैं। साधक स्वयं पीला वस्त्र पहने। हरिद्राग्रन्थि की जपमाला हो। पीले आसन पर बैठे। पीत वर्ण का ध्यान करे। नित्य पीले फूलों से पूजा करे। दश हजार जप करे। दशांश हवन पीले द्रव्यों से करे। तब तर्पणादि करे तो मन्त्र सिद्ध होता है। साध्य का नाम उच्चारण करके 'स्तम्भय' कहने पर स्तम्भन होता है। यह विद्या शत्रु की गति को स्तम्भित करती है। यह शत्रु की मेधा, प्रज्ञा, शस्त्र, देव, मानव एवं सर्पों का स्तम्भन करती है। यह सत्य है, सत्य है।

साधनादिनिर्णय:

श्रीदेव्युवाच

अधुना साधनं देव शीघ्रप्रत्ययकारकम्। मन्त्रयन्त्रौषधजपहुताद्यै: कथयस्व मे ॥४६॥

साधनं कामितार्थस्य, मन्त्रसाधनस्य प्रागेवोक्तत्वात्।

श्रीभैरव उवाच

शृणु प्राज्ञे महागुप्तं प्रकटीक्रियतेऽधुना। एकान्ते निर्जने रम्ये शुचौ देशे गृहेऽपि वा ॥४७॥
कुण्डं सलक्षणं कृत्वा मेखलात्रयशोभितम्। योनिर्वितस्तिमात्रा तु षट्कर्माण्यत्र साधयेत् ॥४८॥
नानाविधासने देवि क्रमोद्दिष्टं समाचरेत्। मधुरत्रितिलाज्येन वश्यलाभानि साधयेत् ॥४९॥
तथाकर्षणकामस्तु लोणं त्रिमधुरान्वितम्। निम्बपत्रैस्तैलयुक्तं विद्वेषणकरं परम् ॥५०॥
हरितालं हरिद्रां च लवणेनैव संयुतम्। स्तम्भने होमयेद्देवि प्रज्ञां चैव गतिं मतिम् ॥५१॥

स्तम्भयेदिति शेषः।

राजिकाष्ठस्य सारेण माहिष्या रुधिरेण च। रिपूणां मारणे देवि श्मशानाग्नौ हुनेन्निशि ॥५२॥

राजिकाष्ठसारः आसुरीस्नेहः।

गृध्राणामपि काकानां गृहधूमयुतेन वै। पक्षेण जुहुयाद् देवि (शत्रोरुच्चाटनाय वै ॥५३॥
दूर्वाङ्कुरामृतावल्लीखण्डाश्च चतुरङ्गुलाः। लाजांस्त्रिमधुयुक्तांश्च सर्वरोगोपशान्तये ॥५४॥
लक्षमेकं जपेद् देवि) ब्रह्मचारी दृढव्रतः। पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धशैलमये गृहे ॥५५॥
सङ्गमे च महानद्योर्निशायामपि साधयेत्। श्वेतब्रह्मतरोर्मूलपादुकां चैव कारयेत् ॥५६॥
अलक्तेन तु रागेण रञ्जिता च हरिद्रया। षट्त्रिंशदक्षरीविद्या लक्षैकेन तु मन्त्रिता ॥५७॥
शतयोजनमात्रं तु मनश्चिन्तितमात्रतः।

गच्छेदिति शेषः।

श्री देवी ने कहा—हे देव! अब आप शीघ्र प्रत्ययकारक मन्त्र-यन्त्र-औषध-जप-हवनादि के साधन को कहिये।

श्री भैरव ने कहा कि हे प्राज्ञे! सुनो, महागुप्त को अब मैं प्रकट करता हूँ। एकान्त निर्जन रम्य पवित्र देश में या अपने घर में सभी लक्षणों से युक्त कुण्ड बनावे। उसे तीन मेखला से सुशोभित करे। एक वित्ता लम्बी योनि बनावे। उसमें षट्कर्म की साधना करे। नाना प्रकार की क्रमोद्दिष्ट साधना करे। त्रिमधुर मिश्रित तिल, घी से वश्य कर्म में हवन करे। आर्कषण के लिये त्रिमधुराक्त नमक से हवन करे। विद्वेषण के लिये तैलाक्त नीम की पत्तियों से हवन करे। स्तम्भन में हरताल नमक हल्दी मिलाकर हवन करे। इससे वैरी की प्रज्ञा, गति, मति का स्तम्भन होता है। राजिकाष्ठसार एवं भैंस का रुधिर से श्मशान में हवन रात में करने से शत्रु की मृत्यु होती है। शत्रु के उच्चाटन के लिये गीध के पंख, कौआ के पंख में रसोई घर की कालिख मिलाकर हवन करे। दूर्वाङ्कुर गुरुच का चार अंगुल का खण्ड लावा और त्रिमधु मिलाकर हवन करने से सभी रोग नष्ट होते हैं। ब्रह्मचारी दृढव्रती होकर पर्वतशिखर पर, जंगल में या सिद्ध प्रस्तर-गृह में एक लाख जप करे। महानदियों के संगम में महानिशा में साधना करे। श्वेत फूल वाले पलाश की पादुका बनवावे। उसे अलता, राग और हल्दी से रंगे। छत्तीस अक्षरों की विद्या के एक लाख जप से उसे मन्त्रित करे तो इच्छा करते ही वह सौ योजन दूर ले जाता है।

रसं मनःशिलां तालं माक्षिकेण समन्वितम्। पिष्ट्वाभिमन्त्र्य लक्षैकं सर्वाङ्गे लेपनं कृतम् ॥५८॥
अदृश्यकारकं देवि लोके च महदद्भुतम्। सुरभेरेकवर्णाया धारोष्णं क्षीरमाहरेत् ॥५९॥
शर्करामधुसंयुक्तं त्रिवारं तेन मन्त्रितम्। पाययित्वा तु हरते विषं स्थावरजङ्गमम् ॥६०॥
दारिद्र्यमोचनं देवि लक्षमेकं जपेन्नरः। दशांशेन कृतो होमः एभिर्द्रव्यैः पृथक्पृथक् ॥६१॥
लक्ष्मीयुक्तो भवेद्देवि दारिद्र्यं नाशयेद् ध्रुवम्।

मैनसिल के रस, हरताल एवं मधु को एक में पीसकर उसे एक लाख जप से मन्त्रित करे। सारे शरीर में उसका लेप करे तो साधक अदृश्य हो जाता है। संसार में यह महा अद्भुत है। एक वर्ण की गाय के धारोष्ण दूध में शक्कर और मधु मिलावे। तीन मन्त्रजप से उसे मन्त्रित कर उसका पान करे तो विष से पीड़ित व्यक्ति के स्थावर-जंगम विष का प्रभाव

समाप्त हो जाता है। दरिद्रता से छुटकारा के लिए एक लाख जप करे। दशांश हवन इन द्रव्यों से पृथक्-पृथक् करे। इससे मनुष्य की दरिद्रता समाप्त हो जाती है और वह लक्ष्मीयुक्त होता है।

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कामनां यन्त्रतः पराम् ॥६२॥
पटे वाप्यथ पाषाणे साध्यसंज्ञां तु कारयेत्। आद्यन्ते स्थिरमायां च हरिद्रातालकैर्लिखेत् ॥६३॥
उन्मत्तरससंयुक्तैर्गाढं त्रिवलयं लिखेत्। गर्भस्तम्भं गतिस्तम्भं चमत्कारकरी परा ॥६४॥
करोतीति शेषः।

अब कामनाप्रदायक अन्य यन्त्र बतलाता हूँ। कपड़े या पत्थर पर साध्य का नाम लिखे। मन्त्र के आरम्भ में और अन्त में 'ह्रीं' लगाकर हल्दी-हरताल एवं उन्मतरस के गाढ़े घोल से तीन आवृति में मन्त्र लिखे। इससे गर्भ का स्तम्भन एवं गतिस्तम्भनरूप चमत्कार होता है।

भूर्जपत्रे समालिख्य तालोन्मत्तनिशारसैः। षट्कोणं तस्य मध्ये तु विद्यां वलयतो लिखेत् ॥६५॥
साध्यसंज्ञां विद्यया वेष्टयेदित्यर्थः।

साध्यसंज्ञां ततो देवि पीतसूत्रेण वेष्टयेत्। चक्रं भ्राम्यत्कुलालस्य विपरीतं तु मृत्तिकाम् ॥६६॥
वृषभं कारयेत्तस्या विलिप्तं तालकेन च। तन्मध्ये निक्षिपेद्यन्त्रमारूढं वृषभोपरि ॥६७॥
नासायां निक्षिपेद्रज्जुं पीतवस्त्रेण वेष्टयेत्। बाह्योपचारपूजाभिः स्वगृहे तु प्रपूजयेत् ॥६८॥
अर्चयेत्तं चतुष्कालं साध्यनामात्र साधकः। दुष्टानां स्तम्भयेद्वक्त्रं साक्षाद्वाचस्पतेरपि ॥६९॥
अधोमुखं श्मशानस्थं दृढं खर्परमानयेत्। गृहीत्वा वामहस्तेन श्मशानाङ्गारकैर्लिखेत् ॥७०॥
दक्षहस्तेन देवेशि लिखेन्नाम प्रयत्नतः। सप्तधा तु ठकारेण पूरकेणाभिमन्त्रयेत् ॥७१॥
तन्मध्ये विलिखेद्बीजं त्रिवलीकारतः प्रिये। षष्ठ्यन्तसाध्यनामान्ते मुखं स्तम्भय चालिखेत् ॥७२॥
बाह्ये न्यस्तं महाबीजं चतुःसंख्यं समालिखेत्। साध्यनामाक्षरं देवि चाभिमन्त्र्याथ विद्यया ॥७३॥
षष्ठ्यन्तं साधकं चोक्त्वा साध्ये संबोधनं वदेत्। मा भुंक्ष्वेति पदं पश्चाद्वदेदाम्रेडितान्वितम् ॥७४॥
पीतोपचारैः संपूज्य मुखस्तम्भनमुत्तमम्। एतद्यन्तं वरारोहे श्मशानवसने लिखेत् ॥७५॥
भेकस्य वदने क्षिप्त्वा पीतसूत्रेण वेष्टयेत्। भूमिष्ठं मण्डलं कृत्वा पीतपुष्पैः समर्चयेत् ॥७६॥
उत्सारोत्सर्गमन्त्रे च पदमुच्चारयेत्स्फुटम्। वामपादेन संपूज्य कुलालोद्भवमृत्तिकाम् ॥७७॥
पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोगः प्रत्ययावहः।

भोजपत्र पर हरताल, धतूर और हल्दी घोल से षट्कोण बनावे। उसके मध्य में साध्य नाम लिखकर विद्या से वेष्टित करे। तब उसे पीले धागे से वेष्टित करे। कुम्हार के चक्र को विपरीत में घुमाकर मिट्टी ग्रहण करे। उससे वृष बनाकर उसे हरताल से लेपित करे। उसके मध्य में वृषभ पर सवार यन्त्र को स्थापित करे। वृषभ के नासा में रस्सी लगावे। उसे पीले वस्त्र से लपेट दे। अपने घर में बाह्य उपचारों से उसकी पूजा करे। चारों समय में साध्य नाम कहकर पूजा करे। तब साक्षात् बृहस्पति के समान मनुष्य का भी मुखस्तम्भन हो जाता है, फिर दुष्टों का तो कहना ही क्या है। श्मशान में अधोमुख पड़े खपड़े को ले आये। उसे बाँयें हाथ से पकड़कर दाँयें हाथ से श्मशान के कोयले से उस पर साध्य नाम लिखे। ठकार के सात पूरक से उसे मन्त्रित करे। उसके मध्य में बीज को त्रिवलि के आकार में लिखे। षष्ठ्यन्त साध्य नाम के बाद मुखं स्तम्भय लिखे। उसके बाहर चार महाबीजों को लिखे। साध्य नामाक्षरों को विद्या से मन्त्रित करे। षष्ठ्यन्त साध्य नाम बोलकर सम्बोधन कहे। तब दो बार भक्षय कहकर पीले उपचारों से पूजा करे। इससे मुख का स्तम्भन होता है। इस यन्त्र को श्मशान के कपड़े पर लिखे। मेढ़क में मुख में इसे रखकर पीले धागे से वेष्टित करे। भूमि पर मण्डल बनाकर पीले फूलों से पूजा करे। उत्सर्ग मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण करके उत्सारण करे। वाम पाद से पूजन कर कुम्हार की मिट्टी से पूरक प्रयोग करे तो कार्य सिद्ध होता है।

आलिखेच्चतुरः पादान् कुब्जत्वात्कुब्जतां गतान् ॥७८॥
अन्योन्यं मिलितत्वेन कृतोऽर्धो(त्वोर्ध्वा)धः समन्ततः। वामदक्षिणसंबन्धात् द्वौ द्वौ पादौ प्रकल्पयेत् ॥७९॥
नाम साध्यस्य षष्ठ्यन्तं गतिं च स्तम्भयेति च। पूर्ववन्मायया नामालिख्य भूबीजमालिखेत् ॥८०॥
पादशाखास्तदग्रेषु तन्मध्ये बीजमालिखेत्। पूर्वोक्तैर्वस्तुभिर्लिख्य पाषाणे वाथ पट्टके ॥८१॥
पूर्वोक्तैः संपुटीकृत्य वेष्टयेत् पीततन्तुभिः। शय्यायाः स्थलसंस्थं च खनेत्खातं प्रयत्नतः ॥८२॥
वामहस्ते न्यसेद्यन्त्रं पीतपुष्पैस्तु पूजयेत्। महादाश्चर्यदं भद्रे रेतःस्तम्भनमुत्तमम् ॥८३॥
श्मशानखर्परं ग्राह्यं श्मशानाङ्गारमाहरेत्। मायाबीजं त्रिधालिख्य साध्यसंज्ञां च मध्यतः ॥८४॥
अपसव्येन वलना रेखात्रिवलयानया। वामहस्तेन निखनेत् खर्परं तदधोमुखम् ॥८५॥
छादयेद्वामपादेन मलोत्सर्गं तथोपरि। स्तम्भनं चैव देवेशि रिपूणां मुखबन्धनम् ॥८६॥
ताटङ्कपत्रमादाय लिखेत्साध्यं तु नामतः। आद्यन्ते विलिखेद्बीजं त्रिविधोत्तरकं लिखेत् ॥८७॥
वामहस्तपुटं कृत्वा करपिण्डीयकण्टकात्। सप्तसंख्याकण्टकानि भित्त्वा चैव पुटीकृतम् ॥८८॥
पृथग्विद्यां च चोच्चार्य नाम साध्यस्य साधकः। भाण्डमध्ये क्षिपेत्तं च सौवीरेण च पूरयेत् ॥८९॥
स्वगृहे बाह्यदेशे तु वायव्ये चैव कोणके। वामहस्ते खनेत् खातं वामपादेन पूरयेत् ॥९०॥
गतिमतिस्तम्भकारः प्रयोगः प्रत्ययावहः।

भग्न होने के कारण भग्नता को प्राप्त चारो पादों को लिखे। उन्हें अन्योन्य मिलित रूप में ऊपर-नीचे करके वाम-दक्षिण सम्बन्ध से दो-दो पादों की कल्पना करे। षष्ठ्यन्त साध्य नाम के साथ गतिं स्तम्भय लिखे। पूर्ववत् माया में नाम लिखकर भूबीज लिखे। पादशाखा के आगे से बीज लिखे। पूर्वोक्त वस्तुओं से पत्थर या कपड़े पर लिखे। पूर्वोक्त मन्त्र से सम्पुटित करके पीले धागे से उसे वेष्टित करे। शय्या के नीचे गड्ढ़ा खोदे, बाँयें हाथ से उसमें यन्त्र रखे। पीले फूलों से उसकी पूजा करे। इससे महान् आश्चर्यदायक वीर्यस्तम्भन होता है। श्मशान का खपड़ा लाकर श्मशान से कोयला लेकर उस पर तीन बार ह्रीं लिखे। उसके बीच में साध्य नाम लिखे। अपसव्य क्रम से त्रिवलि के आकार की तीन रेखाएँ खींचे। बाँयें हाथ से गड्ढा खोदकर उसमें खपड़े को अधोमुख रखे। उसे बाँयें पैर से ढककर उस पर मलोत्सर्ग करे। इस शत्रुओं के मुख का स्तम्भन होता है। ताटंक पत्र लेकर उस पर साध्य नाम लिखे। उसके आदि और अन्त में त्रिविधोत्तरक बीज लिखे। वाम हाथ से ढककर उसकी पिण्डी बनावे। उसमें सम संख्या में काँटे गाड़े और ढक दे। विद्या के साथ साध्य साधक का नाम बोलकर उसे वर्तन में डाल दे। सौवीर से उसे भर दे। अपने घर के बाहर वायव्य कोण में बाँयें हाथ से गड्ढा खोदकर उसमें बाँयें पैर से डाल दे। इससे गति का स्तम्भन होता है।

दिव्यस्तम्भकरं देवि नान्यग्रन्थेष्वपीरितम् ॥९१॥
त्वत्प्रीत्या कथयाम्यद्य शृणु त्वं प्रियमुत्तमम्। यत्र स्थाने भवेद् दिव्यं देवालयगृहेऽपि वा ॥९२॥
तत्र स्थाने लिखेद्विद्यां साधकात्साध्यनामतः। आटरूषस्य पत्राणि परिमृज्य तथोपरि ॥९३॥
स्तम्भयेत्सप्त दिव्यानि कृतदोषोऽपि शुध्यति। उत्तरावारुणीमूलं सप्तविद्याभिमन्त्रितम् ॥९४॥
जलमध्ये तु तत्क्षिप्त्वा तेनैव स्नानमाचरेत्। महाकृतस्य दोषस्य कृतदिव्यो विशुध्यति ॥९५॥
अथवा दीपमार्गेण रात्रौ कृत्वा तु मण्डलम्। भूर्जपत्रे समालिख्य पूर्वोक्तद्रव्यकेण च ॥९६॥
दीपं प्रज्वालयेद्यत्नात्कपिलाज्येन पूरितम्। तावत्तु दीपयेद्दीपं यावद्दिव्यं प्रशाम्यति ॥९७॥
एवं ते कथिता भद्रे कामना प्रत्ययावहा। इयं तु परमा विद्या किमन्यत् परिपृच्छसि ॥९८॥ इति।

दिव्य-स्तम्भन अन्य ग्रन्थों में नहीं है, तुम्हारे प्रेमवश कहता हूँ। दिव्य स्थान में, देवालय में या घर में साधक साध्य नाम के साथ विद्या लिखे। आटरूष के पत्तों को मलकर उस पर रख दे। इससे सात दिव्यों का स्तम्भन होता है एवं कृतदोष भी शुद्ध होते हैं। उत्तरा वारुणी मूल को विद्या के सात जप से मन्त्रित करे, उसे जल में डालकर उसी जल से स्नान करे।

इससे महाकृत्या दोष भी समाप्त हो जाता है। अथवा दीपमार्ग से रात में भोजपत्र पर पूर्वोक्त द्रव्यों से मण्डल लिखे। कपिला गाय के घी से दीपक जलावे। यह दीपक तब तक जलावे जब तक दिव्य की शान्ति न हो। हे देवि! इतने कामप्रदायक प्रयोगों को मैंने कहा। यह परमा विद्या है। अब और क्या पूछना चाहती हो?

जयद्रथयामले—

पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाशाभिमुखस्ततः। लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हरिद्राग्रन्थिमालया॥१॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं जपतो ध्यानतत्परः। प्रियङ्गुपायसैर्वापि पीतपुष्पैश्च होमयेत्॥२॥
कृते होमे दशांशेन सिद्ध्यति बगलामुखी। कुरुते वाग्गतिस्तम्भं दुष्टानां बुद्धिनाशनम्॥३॥
जपहोमप्रयोगेषु मन्त्रं चाप्ययुतं जपेत्।

एतेन पूर्वं पुरश्चरणत्वेनोक्तायुतजपस्तु प्रयोगसिद्ध्यर्थं प्रयोगारम्भकाले कर्तव्यत्वेनोक्त इति प्रतीयते, न तु पुरश्चरणत्वेन। अत एवात्रोभयप्रकारे युक्त इति, तेनैव लक्षजप एव पुरश्चरणम्। अयं लक्षजपः कृतयुगपरः।

जयद्रथयामल में कहा गया है कि पीला वस्त्र पहनकर पूर्वमुख बैठकर हल्दी की माला से एक लाख मन्त्र-जप करे। नित्य ब्रह्मचारी रहकर ध्यान में लगा रहे। प्रियंगु-पुष्प, पायस और पीले फूलों से दशांश हवन करे। इससे बगला सिद्ध होती है और यह शत्रु की बोली, गति को स्तम्भित करती है एवं दुष्टों की बुद्धि का नाश करती है। जप एवं होम प्रयोग में दश हजार मन्त्र का जप करे। पूर्व पुरश्चरण में जो दश हजार जप करना बताया गया है, वह प्रयोग की सिद्धि के लिये प्रयोगारम्भ काल में करने के लिये कहा गया है; न कि पुरश्चरण के लिये कहा गया है। अत: यहाँ भी दोनों ही प्रकार उक्त है। इसलिये पुरश्चरण एक लाख जप से ही होता है। यह एक लाख जप भी सत्ययुग हेतु कहा गया है।

हरिद्राहरितालाभ्यां जुहुयाल्लवणं निशि। स्तम्भयेत्पञ्च दिव्यानि नात्र कार्या विचारणा॥४॥
स्तम्भनेषु च सर्वेषु प्रयोगः प्रत्ययावहः। अथवा पीतपुष्पैर्वा त्रिमध्वक्तैश्च होमयेत्॥५॥
ॐकारयोः संमुखयोरूर्ध्वाधःशिरसोर्लिखेत्। मध्यगं नाम साध्यस्य तद्वाह्ये चाक्षरद्वयम्॥६॥
बीजं द्वितीयवर्गस्य तृतीयं बिन्दुभूषितम्। चतुर्दशस्वरोपेतं संलिखेत् पृथिवीगतम्॥७॥
ठकारेण समावेष्ट्य चतुष्कोणपुटं बहिः। तत्कोणरेखासंसक्तं शूलवज्राष्टकं लिखेत्॥८॥
त्रिशूलमध्यरेखासु पृथ्वीबीजानि पार्श्वयोः। अष्टस्वपि च कोणेषु तदैकैकं समालिखेत्॥९॥
पृथिव्यान्तरपार्श्वे च मातृकोपरि मण्डलम्। आवेष्ट्य च ततः पश्चात्तद्वाह्ये स्थिरमायया॥१०॥
निरोध्याङ्कुशबीजेन नादसंमिलिताङ्घ्रिणा। लिखेत्पूर्वोक्तमावेष्ट्य ठकारं बगलामुखीम्॥११॥
बगलामुखीं तद्विद्याम्।

पाषाणपट्टे वाथ पटे हरिद्रोन्मत्ततालके। गर्भस्तम्भं गतिस्तम्भं लिखित्वा गाढमाक्रमेत्॥१२॥

विवादव्यतिरिक्तेषु स्तम्भनकृत्येषु प्रोक्तं यन्त्रं पटे वा पाषाणे विलिख्य अध ऊर्ध्वं च पाषाणेन निरुध्य स्थापयित्वा तत्र देवीं पूजयेत्। विवादे तु वक्ष्यमाणविधिं कुर्यात्।

विवादे यन्त्रमालिख्य भूर्जे तैरेव वस्तुभिः। कुम्भकारस्य चक्रस्थां भ्रमन्तीं विपरीतगाम्॥१३॥
मृत्तिकां समुपादाय वृषभं कारयेत्ततः। यन्त्रं तदुदरे न्यस्य तालकेन विलिख्य च॥१४॥
तन्नासायां विनिक्षिप्य पीतरज्जुं निजे गृहे। अर्चयित्वा चतुष्कोणे नित्यं पीतोपचारकैः॥१५॥
दुष्टस्य स्तम्भयत्येव मुखं वाचस्पतेरपि। इति।

हल्दी, हरिताल और नमक मिलाकर रात में हवन करने से दिव्यों का भी स्तम्भन होता है। स्तम्भन में सभी प्रयोग सफल होते हैं। अथवा त्रिमधुराक्त फूलों से हवन करे। ॐकार के सामने ऊपर-नीचे शिर पर और मध्य में साध्य का नाम लिखे। उसके बाहर दो अक्षर लिखे। दो अक्षरों में द्वितीय वर्ग का बीज एवं तृतीय बीज सानुस्वर लिखे। चौदह स्वरों से युक्त

ग्लौं लिखे। इसे 'ठ' से वेष्टित करे। चारों कोनों के बाहर कोणों में शूल वज्राष्टक बनावे। त्रिशूल मध्य रेखाओं के पार्श्वों में भूबीज आठों कोनों में एक-एक लिखे। भूपुर के अन्तराल को मातृका से वेष्टित करे। उसके बाहर स्थिर माया लिखे। अंकुश बीज से निरुद्ध पूर्वोक्त ठकार से वेष्टित करे। पत्थर या कपड़े पर हल्दी और धत्तूर से लिखकर गर्भं स्तम्भय गतिं स्तम्भय लिखे, उसपर गाढ़ आक्रमण करे। विवाद में भोजपत्र पर मन्त्र लिखकर कुम्हार के चाक को विपरीत घुमाकर उसी मिट्टी से वृषभ बनावे। हरताल से यन्त्र लिखकर वृषभ के उदर में गाड़ दे। उसके नाक में रस्सी घुसाकर अपने घर में चतुष्कोण में नित्य अर्चन करे तो दुष्ट का स्तम्भन होता है। इससे बृहस्पति का मुख भी स्तम्भित होता है।

तद्यन्त्ररचनाप्रकार:

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकार:—तत्र ऊर्ध्वाधोमस्तकमोंकारद्वयमालिख्य तत्पार्श्वगतमन्योन्यसंमुखमोंकारद्वयमित्येवमोंकारचतुष्टयं विलिख्य, तन्मध्ये साध्यनामालिख्य ओंकारयोरन्योन्यसंमुखयो: पार्श्वद्वये ग्लौं इति धराबीजं विलिख्यैतत्सर्वं वृत्तेन संवेष्ट्य, तद्बहि: पुनर्वृत्तं कृत्वा वृत्तयोरन्तराले मूलं विलिख्य, तद्बहिरष्टकोणं कृत्वा तेष्वाग्नेयादिविदिक्स्थकोणचतुष्टयगतरेखाष्टके प्रतिरेखमेकमेकं वज्रमिति वज्राष्टकं विधाय, दिग्गतकोणचतुष्टयस्थरेखाष्टके त्रिशूलाष्टकं कृत्वा, त्रिकोणोदरेषु त्रिशूलमध्यरेखासु त्रिशूलपार्श्वेषु च प्रागुक्तं धराबीजं विलिख्य, वज्रयुक्तचतुरस्रस्य कोणपार्श्वेषु च तदेव बीजं विलिख्याष्टकोणाद्बहिर्वृत्तचतुष्टयं कृत्वा, तदन्तरालवीथीत्रये सर्वाभ्यन्तरवीथ्यां मातृकया संवेष्ट्य तद्बाह्यवीथ्यां स्थिरमायाबीजेन ह्लींकारेण तद्बाह्यवीथ्यां क्रोमित्यङ्कुशबीजेन संवेष्टयेदिति प्रोक्तविधिना प्रोक्तद्रव्यैर्विलिख्य विनियोगात् प्रोक्तफलसिद्धिर्भवति।

यन्त्ररचना प्रकार—ऊपर-नीचे दो ॐकार लिखे। उन दोनों के सामने दो ॐकार लिखे। इस प्रकार चार ॐकार लिखे। उनके मध्य में साध्य नाम लिखे। ॐकार के अन्योन्य सम्मुख पार्श्वों में धराबीज ग्लौं लिखे। इनको वृत्त से वेष्टित करे। इस वृत्त के बाहर एक और वृत्त बनाकर दोनों के अन्तराल में मूल मन्त्र लिखे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। चारों कोनों की आठ रेखाओं से एक-एक वज्र बनावे। दिग्गत चार कोनों की आठ रेखाओं में त्रिशूल बनावे। त्रिकोण के उदर में त्रिशूल के मध्य रेखाओं में त्रिशूल के पार्श्वों में पूर्वोक्त धराबीज ग्लौं लिखे। वज्रयुक्त चतुरस्र के कोण पार्श्वों में उसी प्रकार बीज लिखे। अष्टकोण के बाहर चार वृत्त बनावे। इनके तीन अन्तरालों में से सबसे पहले वाले अन्तराल में मातृकाओं को लिखे। उसके बाद वाली वीथि में ह्लीं ह्लीं लिखे। उसके बाद वाली वीथि में 'क्रों' बीज लिखे। प्रोक्त द्रव्य से लिखकर विनियोग करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

तथा—

दृढं खर्परमादाय श्मशानस्थमधोमुखम्। वामहस्ते समावेश्य तदङ्गारं तु दक्षिणे॥१६॥

अङ्गारं 'कोइला' इति न त्वग्नि:।

अभिमन्त्र्य ठकारेण सप्तधा कृतपूरक:। तस्योदरगतं बीजं वलयाकारमालिखेत्॥१७॥
साध्यं मध्ये च षष्ठ्यन्तं तन्मुखं स्तम्भयेति च। पृथ्वीबीजानि चत्वारि व्यस्तशीर्षाणि संलिखेत्॥१८॥
तत: परं प्रकुर्वीत यन्त्रं देवेशि पूर्ववत्। साध्यसंबोधनं कृत्वा षष्ठ्यन्तं साधकं लिखेत्॥१९॥
मा भुंक्ष्वेति पदं पश्चात्तद्वदाम्रेडितान्वितम्। पूजयेत् पीतपुष्पाद्यैर्मुखस्तम्भोऽयमुत्तम:॥२०॥
पूर्वद्रव्यै: श्मशानोत्थवसने व्यक्तमालिखेत्। भेकस्य वदने क्षिप्त्वा कीलयेत्पीततन्तुभि:॥२१॥
क्षिप्त्वा क्षोण्यां यजेत्पुष्पै: पीतवर्णैस्तु मण्डले। अनुच्चाराद्धि मन्त्रस्य स्फुटमुच्चारमाचरेत्॥२२॥
पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोग: प्रत्ययावह:। चत्वर: पादानालिख्य भग्नत्वात्कुब्जतां गतान्॥२३॥

भग्नत्वात् त्रुटितत्वाच्चतुर्धा विभक्तत्वादित्यर्थ:।

श्मशान में अधोमुख पड़े खपड़े को बाँयें हाथ में लेकर दाँयें हाथ में कोयला लेकर ठकार से उसे सात बार मन्त्रित करे। खप्पर के उदर में बीज को वृत्त में लिखे। उसके मध्य में षष्ठ्यन्त साध्य नाम के साथ मुखं स्तम्भय और चार पृथ्वी

बीज व्यस्त शीर्ष लिखे। तब पूर्ववत् यन्त्र बनावे। साध्य को सम्बोधित करके साधक नाम षष्ठ्यन्त लिखे। अर्थात् मूल विद्या में सर्वदुष्ट पद की जगह पर अमुकं अमुकस्य मा भुक्ष्व मा भुक्ष्व लिखे। पीले फूलों से पूजा करे। मुख-स्तम्भन का यह उत्तम मन्त्र है। यही यन्त्र पूर्वोक्त हल्दी आदि द्रव्यों से श्मशान के वस्त्र पर बनाकर गोली बनावे। जीवित मेढ़क के मुख में उस गोली को घुसाकर पीले धागे से मजबूती से बाँध दे। उस मेढ़क को भूमि में गड्ढा खोदकर गाड़ दे। उसके ऊपर पीला कपड़ा बिछाकर पूजामण्डल बनावे। उसमें देवी का पूजन पीले फूलों आदि से करे तो अभीष्ट फल मिलता है।

अन्योन्यमिलितत्वेन तं चोर्ध्वाध: समन्तत:। वामदक्षिणसंबन्धं द्वौ पादौ तस्य कल्पयेत् ॥२४॥
आलिखेन्नाम षष्ठ्यन्तं गतिं च स्तम्भयेति च। मध्ये लिखित्वा संलिख्य पृथ्वीबीजानि चाग्रत: ॥२५॥

पादाग्रेष्वित्यर्थ:। अग्रेषु शाखा इति च। 'अग्रत: पादशाखान्ते परं मध्ये तु संलिखेत्'। पादाभ्यां चतुरस्त्रं प्राप्यते इति सांप्रदायिका:।

पटे पाषाणपट्टे वा प्रोक्तैश्चैव त्रिभिस्त्रिभि:। प्राग्वत् संपुटयोगेन बद्ध्वा पीतगुणैर्दृढै: ॥२६॥
गतिस्तम्भो भवत्येवं यन्त्रस्यास्य प्रभावत:।

चार द्वारयुक्त चतुरस्र बनाकर उसके मध्य में अमुकस्य गतिं मतिं मुखं स्तम्भय स्तम्भय लिखे। मूल विद्या को चार भाग करके प्रथम पाद को पूर्व द्वार में, दूसरे पाद को पश्चिम द्वार में, तृतीय पाद को उत्तर द्वार में और चतुर्थ पाद को दक्षिण द्वार में लिखे। अक्षरसमूह को चारो दिशाओं में लिखे। चतुष्पाद के आगे चतुरस्र के चारो कोनों में पूर्वोक्त भूबीज लिखे। पूर्वोक्त द्वारों से यन्त्र को पत्थर पर या कपड़े पर लिखकर पीले धागे से वेष्टित करके उसे दो पत्थरों के बीच में दबा दे। इस यन्त्र के प्रभाव से स्तम्भन होता है।

शिलातालहरिद्राभिर्मेषमूत्रसमन्वितै: ॥२७॥
कोकिलाक्षस्य लेखिन्या निजरक्तपटे लिखेत्। साध्यस्य नाम षष्ठ्यन्तं कुम्भकेन च वायुना ॥२८॥
स्तम्भनं नात्र संदेह: सप्ताहाज्जायते ध्रुवम्। शिलातले हरिद्राभि: करपत्रयुगे लिखेत् ॥२९॥
कोकिलस्य च लेखिन्या स्तम्भने रिपुनाम वा। त्रिकोणै: सुसमावेष्ट्य तद्बाह्ये पार्थिवं पुरम् ॥३०॥
वज्राष्टकै: समोपेतं रेफषोडशसंयुतम्। मायाबीजेन संवेष्ट्य चाङ्कुशेन निरोधितम् ॥३१॥
तद्योगं योजयित्वा तु कटकैर्वलयेत्तत:। क्षिप्त्वा वल्मीकमध्ये तु पाषाणैस्तत्र पूरयेत् ॥३२॥
पश्चात्समारभेद्युद्धं विवादं वापि कारयेत्। गतिस्तम्भो मन:स्तम्भो वाचां स्तम्भस्तथैव च ॥३३॥
जिह्वास्तम्भो विवादे च परास्तो जायते ध्रुवम्। कृष्णकर्पटके यन्त्रं विषरक्तेन संलिखेत् ॥३४॥
विद्याविदर्भितं नाम जलमध्ये विनिक्षिपेत्। सिक्थकेन भृशं वेष्ट्य दिव्यस्तम्भनमुत्तमम् ॥३५॥
स्तम्भयेत्पञ्च दिव्यानि नात्र कार्या विचारणा। अभिन्नं तु तमेवं तु अनेन विधिना भवेत् ॥३६॥
त्रिषु स्थानेषु कर्तव्यं त्रिकोणमायसे लिखेत्। शिखिपिच्छेन तन्मध्ये नाम विद्याविदर्भितम् ॥३७॥
तद्बाह्ये चाग्निबीजेन भावशुद्धोऽपि यो नर:। विषरक्तेन संलिख्य कर्पटे तु श्मशानके ॥३८॥
विदर्भितं यस्य नाम श्मशाने भस्ममृत्तिकाम्। गृहीत्वा चाकृतिं कृत्वा यन्त्रं तद्धृदि संक्षिपेत् ॥३९॥
कण्टकैर्वेधयेत्प्राज्ञ: स्मृत्वा विद्यां पुन: पुन:। वेधिते प्रभवत्यस्य दु:खं स्यादतिवेदना ॥४०॥
सर्वाङ्गैर्म्रियते विद्ध: शूलैश्चैव सुदारुणै:। ब्रह्मास्त्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभं त्रिदशैरपि ॥४१॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्। गुरुभक्ताय दातव्यं वत्सरार्धोषिताय च ॥४२॥ इति।

दृढमित्यादिभिरुत्तम इत्यन्तै: पञ्चभि: श्लोकैर्यन्त्रान्तरमाह—तत्र श्मशानस्थमधोमुखं खर्परमादाय तद्वामहस्ते निधाय दक्षिणहस्तेन श्मशानाङ्गारं गृहीत्वा तद् द्वयं ठकारेण सप्तधाभिमन्त्र्य, तस्मिन् खर्परे तेनाङ्गारेण वृत्तं कृत्वा तन्मध्ये स्थिरमायाबीजं विलिख्य, तन्मध्ये अमुकस्य मुखं स्तम्भयेति विलिख्य बीजपरित: पूर्वोक्तं बीजं चतुर्दिक्षु

मध्यबीजं तद्बहिरष्टकोणादि सर्वं पूर्वोक्तं यन्त्रं कृत्वा क्वचित् संस्थाप्य मूलविद्यायां सर्वदुष्टपदस्थाने अमुकं अमुकस्य मा भुंक्ष्व मा भुंक्ष्वेति पदं दत्त्वा, पीतोपचारैस्तस्मिन् यन्त्रे देवीमावाह्य पूजयेत्, मुखस्तम्भो भवति। इदमेव यन्त्रं पूर्वोक्तहरिद्रादिद्रव्यैः श्मशानवस्त्रे विलिख्य गुलिकीकृत्य, मण्डूकस्य सजीवस्य मुखे विन्यस्य पीतसूत्रेण तन्मुखं दृढं बद्ध्वा, तं मण्डूकं भूमौ खात्वा तदुपरि पीतवर्णं पूजामण्डपं कृत्वा, तत्र देवीं पीतपुष्पादिभिः पूजयेदुक्तफलसिद्धिर्भवति।

चत्वर इत्यादिभिः प्रभावत इत्यन्तैर्यन्त्रान्तरमाह—तत्र चत्वर इति दिव्यत्वात्, अयं यन्त्ररचनाप्रकारः, तत्र चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रं कृत्वा तन्मध्ये अमुकस्य गतिं मतिं मुखं स्तम्भय स्तम्भयेति विलिख्य, मूलविद्यां चतुर्धा विभज्य प्रथमपादमूर्ध्वगत्या पूर्वद्वारान्तं, द्वितीयापदमधोगत्या पश्चिमद्वारान्तं, तृतीयपादं तिर्यग् गत्या उत्तरद्वारान्तं, चतुर्थं पादं तिर्यग् गत्या दक्षिणद्वारान्तमिति मध्यलिखिताक्षरसमुदायस्य चतुर्दिक्षु विलिख्य, चतुष्पादाग्रेषु चतुरस्रस्य चतुष्कोणेषु पूर्वोक्तं भूबीजं विलिखेदिति पूर्वोक्तद्रव्यैर्यन्त्रं पाषाणे वा पट्टे वा विलिख्य, पीतरज्जुभिर्वेष्टयित्वोपर्यधः पाषाणेन निरुध्य स्थापनात् पूजनाच्चोक्तफलसिद्धिर्भवति।

शिलेत्यादिश्लोकाभ्यां पूर्वोक्तस्यैव यन्त्रस्य लेखनद्रव्यविशेषं लेखनी च लेखनसमये कर्तव्यत्वेनोक्तम्। पुनः शिलेत्यादिभिर्ध्रुवमित्यन्तैः पञ्चभिः श्लोकैः पूर्वोक्तयन्त्रे लेखनविशेषेण प्रयोगविशेषमाह—अयमर्थः, तत्र पूर्वोक्तैरेव द्रव्यैः पूर्वोक्तमेव यन्त्रं करपत्रद्वये विलिख्य तच्च स्वरविदर्भितं मध्ये नाम विलिख्य तद्यन्त्रं वृत्तत्रयेणावेष्ट्य तद्बहिश्चतुरस्रं कृत्वा, तद्रेखाचतुष्कोष्ठके वज्राष्टकं कृत्वा, प्रतिवज्रपार्श्वयोः रेफद्वयमिति संभूय रेफषोडशकं सबिन्दुकं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तपञ्चकं कृत्वा तदन्तरालचतुष्टयेऽभ्यन्तराले स्थिरमायाबीजेन संवेष्ट्य, बहिरन्तरालत्रयेऽपि अङ्कुशबीजैर्वेष्टयित्वा, तन्मध्ये मूलविद्यया विदर्भितं साध्यनाम विलिख्य वेष्टयित्वा, वल्मीकमध्ये निःक्षिप्य पाषाणैः पूरयित्वा प्रत्यहं पूजां कारयेत्। राजा स्वकटकैः शत्रुसैन्यं संवेष्ट्य युद्धमारभेत्। विवादकर्ता च विवादं कुर्यात्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

कृष्णेत्यादिश्लोकाभ्यामेतदुक्तं भवति, तत्रैतदेव यन्त्रं कृष्णवस्त्रे विषरक्तमिलितैः पूर्वोक्तद्रव्यैर्विलिख्य (तन्मध्ये मूलविद्यया विदर्भितं साध्यनाम विलिख्य) मधूच्छिष्टेन दृढं संवेष्ट्य जलमध्ये निःक्षिप्य तत्र दिव्यं कारयेत्, कृतदोषोऽपि विशुद्धो भवति।

विषरक्तेनेत्यादिभिः श्लोकैः पूर्वोक्तस्यैव यन्त्रस्य प्रयोगे (विशेषमाह—तत्र श्मशानवस्त्रे पूर्वोक्तं यन्त्रं मूलविद्याविदर्भितसाध्यनामगर्भितं विषयुक्तरक्तेन विलिख्य श्मशान-)-भस्ममृद्भ्यां पुत्तलीं निर्माय तस्या हृदि यन्त्रं निक्षिप्य विद्यां स्मरन् कण्टकैस्तां सर्वाङ्गेषु वेधयेदुक्तफलावाप्तिर्भवति। ततः शत्रुः शीघ्रं म्रियते इति।

शिलाताल एवं हरिद्रा का अजा-मूत्र से घोल बनाकर कोकिलाक्ष की लेखनी से अपने खून से रंगे वस्त्र पर कुम्भक वायु की दशा में साध्य का षष्ठ्यन्त नाम लिखने से एक सप्ताह में निश्चित रूप से स्तम्भन होता है। शिलद्ध ताल एवं हरिद्रा से दो करपत्र पर कोकिल की लेखनी से स्तम्भन अथवा शत्रु का नाम लिखकर उसे त्रिकोण से सम्यक् रूप से वेष्टित करके उसके बाहर राजा को वज्राष्टक एवं सोलह रकार से युक्त कर मायाबीज से वेष्टित कर अंकुश से निरुद्ध करे। तत्पश्चात् उन सबको जोड़कर एक घेरे में करके वल्मीक में डालकर पत्थर से ढ़क दे। तत्पश्चात् युद्ध अथवा विवाद करे तो शत्रु की गति, मन एवं वाणी का स्तम्भन होता है और वह शत्रु राजा युद्ध में पराजित हो जाता है। इसी प्रकार विवाद में जिह्वा का स्तम्भन होने के कारण शत्रु परास्त हो जाता है।

यन्त्र बनाने की विधि यह है कि पूर्वोक्त द्रव्यों से पूर्वोक्त यन्त्र दो करपत्र में लिखे। उसके मध्य में स्वरविदर्भित साध्य नाम लिखे। उस यन्त्र को तीन वृत्तों से वेष्टित करे। उसके बाहर चतुरस्र बनावे। उसके चारों कोनों में दो-दो वज्र के अनुसार आठ वज्र बनावे। प्रत्येक वज्र के पार्श्वों में दो रेफ लिखे, जिससे कुल सोलह रेफ होते हैं। र पर बिन्दु लगावे। उसके बाहर पाँच वृत्त बनावे। उनसे निर्मित चार अन्तरालों में से आभ्यन्तर अन्तराल को ह्रीं से वेष्टित करे। उसके बाद वाले अन्तराल को अंकुश बीज से वेष्टित करे। उसके मध्य में मूल विद्या से विदर्भित साध्य नाम लिखकर वेष्टित करे। इसे दीमक के घर

में गाड़े। उस पर पत्थर रखे। प्रतिदिन पूजा करे। तदनन्तर राजा अपनी सेना से शत्रुसेना को घेर का युद्ध आरम्भ करे। विवादकर्ता विवाद प्रारम्भ करे। इससे पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है अर्थात् गति-स्तम्भन, मनस्तम्भन, वाणी-स्तम्भन एवं जिह्वास्तम्भन होता है तथा विवाद में प्रतिद्वन्द्वी परास्त होता है।

काले खपड़े पर विषरक्त से यन्त्र बनावे। उसमें विद्याविदर्भित साध्य नाम लिखकर पानी में डाल दे। इससे पाँच दिव्यों का स्तम्भन होता है। यह निश्चित होता है।

तीन त्रिकोण मोरपंख से बनावे। उनमें विद्याविदर्भित साध्य नाम लिखे। उसके बाहर अग्निबीज विषरक्त से श्मशान के खपड़े पर लिखे। जिसका नाम विदर्भित हो, उसकी आकृति श्मशान भस्म और मिट्टी से बनाकर उसके हृदय में यन्त्र छिपा दे। उस आकृति में बार-बार विद्या का स्मरण करके काँटे गड़ावे। ऐसा करने से साध्य को बहुत पीड़ा होती हैं। उसके सारे शरीर में काँटे चुभोने से दारुण पीड़ा से उसकी मृत्यु हो जाती है। यह ब्रह्मास्त्र तीनों लोकों में देवताओं को भी दुर्लभ है। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये; किसी को नहीं बतलाना चाहिये। गुरुभक्त और छः मास तक उपवास करने वाले को ही इसे प्रदान करना चाहिये।

बगलामुखीस्तोत्रम्

अथ बगलामुखीस्तोत्रम्। अस्य श्रीबगलामुखीस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान्नारद ऋषिः बार्हच्छन्दांसि बगलामुखी देवता स्थिरमाया बीजं, स्वाहा शक्तिः, कीलय कीलकं, मम संनिहितानां दूरस्थानां दुष्टानां विरोधिनां पदजिह्वा-मुखबुद्धिस्तम्भनार्थे श्रीपरमेश्वरीप्रीत्यर्थे च जपमहं करिष्ये,

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥१॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥२॥
त्रिशूलधारिणीमम्बां सर्वसौभाग्यदायिनीम्। सर्वाभरणशोभाढ्यां देवीं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ॥३॥
पीताम्बरां त्रिनेत्रीं च द्विभुजां हाटकोज्ज्वलाम्। शिलापर्वतहस्ताङ्गीं रिपुस्तम्भां मदोत्कटाम् ॥४॥
वैरिनिर्दलनार्थाय स्मरेत्तां बगलामुखीम्। गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम् ॥५॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्। हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ॥६॥
पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासने स्थिताम्। सानन्दमपि देवेशि अरिस्तम्भनकारिणीम् ॥७॥
मदनस्य रतेश्चैव प्रीतिस्तम्भकरीं पराम्। महाविद्यां महामायां साधकस्य बलप्रदाम् ॥८॥
यस्याः स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात्। वामे पाणावङ्कुशं च तस्याधस्ताद्वरं शुभम् ॥९॥
तस्यैवाधःकरे चाक्षसूत्रं च पद्ममुत्तमम्।
एवं दक्षिणपाणिक्रमतः पाशाभयाक्षसूत्रपद्मानि। केयूराङ्गदकुण्डलभूषां बालां हिमद्युतिसंस्कृतमुकुटाम् ॥१०॥
तरुणादित्यप्रतिमां कौशेयांशुकलग्ननितम्बाम्।
तन्वीं कल्पद्रुमाधो हेमशिलायां प्रमुदितचित्तोल्लसत्कान्तिम् ॥११॥
पञ्चप्रेतसमारूढां भक्तजनविविधकामलीलाम्।
एवंविधां तां बगलां ध्यायेन्मनसि शुद्धेन्दीवरनीलाम् ॥१२॥
चलत्कनककुण्डलोच्छ्वसितचारुगण्डस्थलां लसत्कनकचम्पकद्युतिविराजिचन्द्राननाम्।
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलां स्मरामि बगलामुखीं विमुखिनां मुखस्तम्भिनीम् ॥१॥
पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रत्नोज्ज्वले मण्डपे यः सिंहा-
सनमौलि (गां वि) पातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम्।

स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदाविभ्रमां
नित्यं ध्यायति यान्ति यस्य विलयं सद्योऽम्ब सर्वापदः ॥२॥
मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रं च ते
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं च चित्रं च ते ।
मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे
त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम् ॥३॥
देवि त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधौ यः पीतपुष्पाञ्जलिं
भक्त्या वामकरे निधाय च पुनर्मन्त्री मनोज्ञाक्षरम् ।
पीतध्यानपरोऽथ कुम्भकवशाद्बीजं स्मरेत् पार्थिवं
तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत् तत्क्षणात् ॥४॥
वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा मन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ॥५॥

दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं गर्वस्तम्भकरं परं मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम् ।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुण्यपूर्णामृतं मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥६॥
मातर्भञ्जय मद्विपक्षवदनं जिह्वां बलात्कीलय ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय ।
शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशु गदया गौराङ्गि पीताम्बरे विघ्नौघं बगले हर प्रतिदिनं कारुण्यपूर्णेक्षणे ॥७॥

संकष्टे चौरसृष्टे प्रहरणसमये बन्धने वारिमध्ये विद्या-
वादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम् ।
वश्यत्वे स्तम्भने वा रिपुवधसमये दीर्घसूत्रे रणे वा
गच्छंस्तिष्ठंस्त्रिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशु धीरः ॥८॥

मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये श्रीविद्ये बगले महेशि समये कामेशि वामे रमे ।
मातङ्गि त्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहि माम् ॥९॥
त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसंछेदिनी योषाकर्षणकारिणी च सुमहद्विघ्नौघसंछेदिनी ।
दुष्टोच्चाटनकारिणी जनमनःसंमोहसंदायिनी जिह्वाकीलनवैभवा विजयते ब्रह्मास्त्रविद्या परा ॥१०॥

नित्यं यस्तु मनोहरं स्तवमिमं देव्याः पठेत् सादरं
धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले ।
राजानो वरयोषितोऽथ करिणः सर्पा मृगेन्द्राः खगास्ते वै
यान्ति विमोहितां रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिरा सिद्धयः ॥११॥

अनुदिनमभिरामं साधको यस्त्रिकालं पठति भुवनमातुः पूज्यते देववर्गैः ।
भवति परमकृत्यं तस्य दृष्ट्यैव लोके भवति परमसिद्धा लोकमाता परा च ॥१२॥

विद्या लक्ष्मीः सर्वसौभाग्यमायुः पुत्राः संपद्राज्यमिष्टार्थसिद्धिः ।
मातः श्रेयः सर्ववश्यत्वसिद्धिः प्राप्ता प्राप्ता भूतलेऽस्मिन् नरेण ॥१३॥

यत् कृतं जपसंनाहं गदितं परमेश्वरि । शत्रूणां स्तम्भनार्थाय तद् गृहाण नमोऽस्तु ते ॥१४॥

ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित्॥१५॥
इति श्रीरुद्रयामले बगलामुखीस्तोत्रं संपूर्णम्।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे त्रयोविंश: श्वास:॥२३॥

●

उपर्युक्त स्तोत्रपाठ के पूर्व मूलोक्त विनियोग अवश्य करना चाहिये। इस स्तोत्र के ऋषि भगवान् नारद, छन्द बृहती आदि, देवता बगलामुखी, बीज स्थिरमाया, शक्ति स्वाहा एवं कीलय कीलक है। अपने समीपस्थ एवं दूरस्थ दुर्जनों एवं विरोधियों के पैर, जिह्वा, मुख एवं बुद्धि के स्तम्भन तथा परमेश्वरी बगलामुखी की प्रसन्नता हेतु विनियोग करके जप का संकल्प किया जाता है।

स्तोत्रार्थ—अमृतसागर के मध्य में मणिमण्डप की वेदी पर सिंहासन पर अवस्थित देवी पूर्णत: पीले वर्ण की हैं, वे पीले वस्त्र, पीले आभूषण, पीले फूलों की माला से विभूषित हैं। अपने हाथों में मुद्गर तथा शत्रु की जिह्वा को धारण करने वाली देवी का मैं भजन करता हूँ। अपने बाँयें हाथ से शत्रु की जिह्वा को पकड़ कर उसे पीड़ित करती हुई एवं दाहिने हाथ से उस पर गदा से प्रहार करती हुई दो भुजाओं वाली पीले वस्त्रों से सुशोभित देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

त्रिशूल को धारण करने वाली, समस्त सौभाग्य को प्रदान करने वाली एवं समस्त आभूषणों से अलंकृत माँ बगला का ध्यान कर पूजन करना चाहिये। पीले वस्त्रों वाली, तीन नेत्रों वाली, दो भुजाओं वाली, सुनहरे वर्ण वाली, शिला एवं पर्वत को धारण करने वाली, शत्रु को स्तम्भित करने वाली, मद से परिपूर्ण देवी बगला का शत्रु का दलन करने के लिये स्मरण करना चाहिये। गम्भीर, मदोन्मत्त, स्वर्ण कान्ति के समान प्रभा वाली, चार भुजाओं वाली, तीन नेत्रों वाली, कमलासन पर विराजमान, स्वर्णकुण्डल धारण करने वाली, माथे पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाली, पीले आभूषण एवं वस्त्र धारण करने वाली, स्वर्ण-सिंहासन पर स्थित, प्रसन्न होती हुई भी शत्रु को स्तम्भित करने वाली, मदन एवं रति का स्तम्भन करने वाली, महाविद्यास्वरूपा, महामायास्वरूपा, साधक को बल प्रदान करने वाली, स्मरणमात्र से ही तीनों लोकों को स्तम्भित करने वाली, बाँयें ऊपरी हाथ में अंकुश एवं नीचे वर, उसी के नीचे अक्षसूत्र एवं कमल धारण करने वाली, दाहिने हाथ में क्रमश: पाश, अभय, अक्षसूत्र एवं कमल धारण करने वाली, केयूर-अंगद एवं कुण्डल से अलंकृत, बाल चन्द्रमा को मुकुट में धारण की हुई, तरुण सूर्य के समान दीप्तिमान, नितम्ब पर कौशेय वस्त्र धारण करने वाली, नवयौवना, कल्पवृक्ष के नीचे स्वर्णशिला पर प्रसन्नतापूर्वक पाँच प्रेतों के साथ आरूढ़, भक्तों के लिये नानाविध कामलीला में तत्पर बगला का मन में ध्यान करना चाहिये।

काञ्चन कुण्डलों के कम्पन होने से सुशोभित कपोलों वाली, स्वर्णप्रिया एवं चम्पापुष्प (या स्वर्ण द्वारा निर्मित लगने वाले चम्पापुष्प) की द्युति से कान्तिमान, चन्द्रबिम्ब-सदृश मुख वाली, अपनी गदा से शत्रु को आहत करने वाली, शत्रु की चञ्चल जिह्वा को नष्ट करने वाली तथा उसकी वाणी, मन एवं मुख को नष्ट करने वाली भगवती बगलामुखी का चिन्तन (स्मरण) करता हूँ। अमृत-पयोनिधि के मध्य रक्तारविन्दों के मण्डप में मनोज्ञ सिंहासन पर समासीन, शत्रुओं के शिरों को गिराने वाली, प्रेतासन पर आसीन, स्वर्ग की आभा से युक्त, शत्रु की जिह्वा को पीड़ित करने वाली, गदा को घुमाती हुई भगवती पीताम्बरा बगलामुखी का ध्यान करने-मात्र से समस्त आपत्तियों का क्षणमात्र में ध्वंस हो जाता है। मैं ऐसी पीताम्बरा का ध्यान करता हूँ।

हे अम्बे! आपकी आत्मशक्ति से शत्रुओं का दलन हो जाता है। आपका स्तोत्र अत्यधिक शुचि है, वादी-समूह को नियन्त्रित करने वाला है और विचित्र त्रैलोक्य को जीतने वाला है। हे भगवति! आपका यह अत्यन्त सुन्दर बगलामुखी नाम जिस भी प्राणी के मुख में निवास करता है या जो प्राणी आपका तथा आपके इस मन्त्र का ध्यान करता है, उसके शत्रुओं के मुख का अवश्य ही स्तम्भन हो जाता है। हे देवि! जो लोग भक्ति के साथ आपके श्रीचरणों की अर्चा करने में पीतपुष्पों की अञ्जलि समर्पित करते हैं और स्पष्टाक्षरों से मन्त्र का ध्यान करते हैं तथा कुम्भकपूर्वक आपके बीजमन्त्रों का चिन्तन करते हैं, उन लोगों को शत्रुजन्य वाणी-मन-हृदयगत समस्त पीड़ायें तत्क्षण नष्ट हो जाती हैं।

हे भगवति! आपकी यन्त्रणा से यन्त्रित शत्रु की वाणी मूक हो जाती है, राजा भी रङ्क हो जाता है, प्रज्वलित वैश्वानर शीतल हो जाता है, क्रोधी का क्रोध शान्त हो जाता है, दुर्जन सज्जन बन जाता है, वेगवान पङ्गु हो जाता है, अभिमानी का गर्व भङ्ग हो जाता है और सर्वज्ञ शत्रु भी जड़ हो जाता है। हे कल्याणि! हे लक्ष्मि! हे नित्यसत्ते बगलामुखि! मैं आपका अभिवादन करता हूँ।

हे जननि! दुष्टों को स्तम्भित करने वाला, दुर्निवार्य प्रत्यूहों को नष्ट करने वाला, दारिद्र्य को दूर करने वाला, नृपतियों के भय को विनष्ट करने वाला, सौभाग्य के एकमात्र निवासस्वरूप, सम दृष्टि से सबको देखने वाला, करुणा से भरा अमृत-स्वरूप मृत्यु का नाशक आपका शरीर सामने प्रकट हो।

हे माते! मेरे शत्रु के मुख को तोड़ डालिये, उसकी जिह्वा को कीलित कर दीजिये, उसकी समस्त बुद्धि के विकास को नष्ट कर डालिये तथा उसकी वाणी एवं तीव्र गति का शीघ्र स्तम्भन कीजिये। हे देवि बगले! आप अपने कठोर गदा-प्रहार से शत्रुओं को चूर्ण कर डालिये। हे कारुण्यपूर्ण नयनों वाली भगवती बगलामुखि! आप मुझ प्रणत एवं अभिवादनपरायण भक्त के विघ्न-समूह का ध्वंस कीजिये।

भयानक कष्ट उपस्थित होने पर, चोरों द्वारा आक्रान्त होने पर, अपने ऊपर प्रहारकाल में, बन्धन की स्थिति में, जलभय होने पर, शास्त्रसम्बन्धी विवाद में, किसी से विवाद की स्थिति में, राजा के कुपित होने पर, दिव्य समय में, रात्रि में, वश्य अथवा स्तम्भन में, शत्रुवध के समय, निर्जन स्थान में अथवा युद्ध में, जाते हुये अथवा बैठे हुये तीनों कालों में जो कोई यदि इसका पाठ करता है तो वह कल्याण को प्राप्त करता है।

हे माते! हे भैरवि! हे भद्रकालि! हे विजये! हे वाराहि! हे विश्वाश्रये! हे लक्ष्मी! हे श्रि! हे विद्ये! हे समये! हे महेशि! हे बगले! हे कामेशि! हे रमे! हे रामे! मातङ्गि! हे त्रिपुरसुन्दरि! हे परात्परपरे! हे स्वर्गापवर्गप्रदे! हे विश्वेश्वरि! मैं आपका दास हूँ और आपके शरणागत हूँ। देवि! आप अपनी करुणा से मेरी रक्षा कीजिये।

हे जननि! तुम परमा विद्या हो, तुम तीनों लोकों की माता हो, तुम विघ्नसमूह की विनाशिनी हो, तुम कोषाकर्षण की सूत्रधार हो, तुम लोकत्रय में आनन्द का संवर्धन करने वाली हो, तुम दुष्टों का उच्चाटन करने वाली हो और तुम जनमन को सम्मोहित करने वाली हो। शत्रुओं की जिह्वा को कीलित करने वाली हे देवि बगले! जिस प्रकार ब्रह्मा आदि त्रिदेवों का मन्त्र सदैव विजय प्रदान करता है, उसी प्रकार आपका मन्त्र भी सभी क्षेत्रों में विजय प्राप्त करता है अर्थात् साधकों को विजय प्राप्त कराता है।

जो व्यक्ति नित्यप्रति इस पवित्र स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करता है, इस यन्त्र तथा मन्त्र को अपनी भुजा एवं कण्ठ में धारण करता है, उसके समक्ष राजा, शत्रु, मतवाला हस्ती, सर्प एवं सिंह सभी वशीभूत हो जाते हैं। उसके शत्रु स्वयं मोहित हो उठते हैं। उसकी लक्ष्मी एवं सिद्धियाँ भी स्थिर हो जाती हैं।

प्रतिदिन जो साधक माता बगला के इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसकी देवता लोग भी पूजा करते हैं। उसके देखने मात्र से ही लोक के सारे कार्य सम्पन्न होते हैं एवं लोकमाता भी सिद्धि को प्राप्त होती है। हे माते! आपकी कृपा से इस पृथ्वीलोक पर लोगों ने विद्या, लक्ष्मी, सौभाग्य, आयु, पुत्र, सम्पत्ति, राजा, अभीष्टसिद्धि, सर्ववश्यत्वसिद्धि एवं कल्याण प्राप्त किया है। हे देवि! आपके मन्त्रजप के साथ जो मैंने आपकी स्तुति की है, उसे शत्रु के स्तम्भनार्थ आप ग्रहण करें। यह विख्यात ब्रह्मास्त्र नामक स्तोत्र तीनों लोकों में परम दुर्लभ है। यह गुरुभक्त को ही प्रदान करने योग्य है, अन्य किसी को देने योग्य नहीं है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में त्रयोविंश श्वास पूर्ण हुआ

●

अथ चतुर्विंशः श्वासः

कालीमन्त्रप्रकरणम्

अथ कालीप्रकरणं, तत्र भैरवतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महाविद्याः कालिकायाः सुदुर्लभाः। यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१॥
नात्र चित्तादिशुद्धिः स्यान्नारिमित्रादिलक्षणम्। न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ॥२॥
न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च। य एनां चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकार्यसमृद्धिदाम् ॥३॥
तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः। गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥४॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः। राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः ॥५॥
दिवारात्रिव्यत्ययं च वशीकर्तुं क्षमो भवेत्। अन्ते च भजते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः ॥६॥ इति।

काली प्रकरण—भैरवतन्त्र में भगवान् भैरव ने कहा है कि अब सुदुर्लभ कालिका महाविद्या को कहता हूँ, जिसे जानने-मात्र से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है। यहाँ पर चित्त आदि की शुद्धि करणीय नहीं है और अरि-मित्र आदि के लक्षण जानने की भी जरूरत नहीं है; समय-असमय आदि प्रयासबाहुल्य भी नहीं है। इसमें न अधिक धन की आवश्यकता है और न ही शरीर के लिये क्लेशकर है। जो इसका चिन्तन करता है, उसके सभी कार्य सम्पन्न होते हैं और समृद्धि मिलती है। उसके हाथ में सभी सिद्धियाँ सर्वदा विराजमान रहती हैं और सभा में उसकी वाणी गद्य-पद्यमयी होती है। उसे देखते ही वादी निष्प्रभ हो जाते हैं। राजा भी उसके दास हो जाते हैं तब दूसरों की तो बात ही क्या है। दिन-रात को भी वह वश कर सकता है। देहान्त होने पर देवी का दुर्लभ गणत्व उसे प्राप्त होता है।

श्यामामन्त्रः

अथ श्यामामन्त्रः। तत्र कालीतन्त्रे—

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिबिन्दुसमन्वितम्। कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम् ॥१॥
दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्। अन्ते वह्निवधूं दद्याद्विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ॥२॥

मन्वर्थमाह, रुद्रयामले—

ककाराज्जलरूपत्वात् केवलं मोक्षदायिनी। ज्वलनार्थसमायोगात् सर्वतेजोमयी शुभा ॥१॥
मायाबीजत्रयेणैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। बिन्दूनां निष्कलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी ॥२॥
बीजत्रयाणां युक्तया सा केवलं ज्ञानचित्फला। शब्दबीजद्वयेनैव (शब्दराशिप्रबोधिनी ॥३॥
लज्जाबीजद्वयेनैव) सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। संबोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी ॥४॥
स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रदाहिनी। इति।

एवं वीरतन्त्रे—

अथातः संप्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां शुभाम्। कामाक्षरं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ॥१॥
बिन्दूनादसमायुक्तं बीजमेतत्त्रयं लिखेत्। कूर्चयुग्मं ततो देवि लज्जायुग्ममनन्तरम् ॥२॥
दक्षिणे कालिके चेति संबोधनपदान्वितम्। सप्तबीजं पुनः प्रोच्य स्वाहान्तं मनुमुद्धरेत् ॥३॥

श्यामा मन्त्र—कालीतन्त्र के मूलोक्त श्लोकों का उद्धार करने पर श्यामा अर्थात् दक्षिणकाली का बाईस अक्षरों का मन्त्र निम्न प्रकार का बनता है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

इस मन्त्र का अर्थ रुद्रयामल के अनुसार इस प्रकार है—ककार जलरूप होने के कारण केवल मोक्षदायिनी है। ज्वलनार्थ के समायोग से सर्वतेजोमयी शुभा है। तीन मायाबीज ह्रीं सृष्टि-स्थिति-अन्तकारिणी है। बिन्दु निष्कल होने से कैवल्यदायक है। तीन बीजों से युक्त वह केवल ज्ञान चित् कला है। दो शब्दबीज होने से शब्दराशि-प्रबोधिनी है। दो लज्जा बीज के कारण सृष्टि स्थिति-अन्तकारिणी है। सम्बोधन पद से देवी सदा सन्निधिकारिणी है। स्वाहा से जगन्माता और सर्व पापप्रणाशिनी है। वीरतन्त्र में कहा गया है कि दक्षिणकालिका के कल्याणदायक मन्त्र इस प्रकार होते हैं—तीन क्रीं बीज, दो हूं, दो ह्रीं; तदनन्तर दक्षिणे कालिके यह सम्बोधन पद और पुनः पूर्वोक्त सात बीज। उसके बाद अन्त में स्वाहा। इस प्रकार मन्त्र होता है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

पूजाप्रयोगः

अथास्य पूजाप्रयोगः—तत्राचमनं भैरवतन्त्रे—

कालिकाभिस्त्रिभिः पीत्वा काल्यादिभिरुपस्पृशेत्। द्वाभ्यामोष्ठौ द्विरुन्मृज्य चैकेन क्षालयेत्करौ ॥१॥
मुखघोणेक्षणश्रोत्रनाभ्युरःकं भुजौ क्रमात्। आचम्यैवं भवेत्काली वत्सराणां(त्तां) प्रपश्यति ॥२॥

आद्यबीजत्रयेण द्विराचमेत्। ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः, इति ओष्ठौ द्विरुन्मृजेत्। ॐ कुल्लायै नमः, इति करं क्षालयेत्। ॐ कुरुकुल्लायै नमः, इति मुखे। ॐ विरोधिन्यै नमः, इति दक्षिणनासायां। ॐ विप्रचित्तायै नमः, इति वामनासायां। ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः, इति नेत्रयोः। ॐ दीप्तायै नमः, ॐ नीलायै नमः, इति श्रोत्रयोः। ॐ घणायै नमः नाभौ। ॐ बलाकायै नमः, इति वक्षसि। मात्रायै नमः शिरसि। मुद्रायै नमः, मितायै नमः इत्यंसयोः, इति मन्त्राचमनम्। ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते भूतशुद्ध्यन्तं कर्म विधाय, मायाबीजेन यथाविधि प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। तद्यथा—अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिणकालिका देवता, ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, क्लीं कीलकं पुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। शिरसि भैरवऋषये नमः। मुखे उष्णिक्छन्दसे नमः। हृदि दक्षिणकालिकादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः। तथाच कालीतन्त्रे—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम्। देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजं तु बीजकम् ॥१॥
शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती। कवित्वार्थे विनियोगः स्यादेवं ऋषिकल्पना ॥२॥

कालीक्रमे—'कीलकं चाद्यवर्णं स्याच्चतुर्वर्गार्थसिद्धये।' कवित्वार्थ इत्युपलक्षणं, तन्त्रान्तरे फलान्तर-श्रवणाच्च। कुलचूडामणौ—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम्। दक्षिणा कालिका देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१॥ इति।

पूजा प्रयोग—आचमन का विवेचन करते हुये भैरवतन्त्र में कहा गया है कि तीन बीज से दो बार आचमन करे। ॐ काल्यै नमः, ॐ कपलिन्यै नमः से दोनों ओठों को मार्जित करे। ॐ कुल्लायै नमः से हाथों को धोये। ॐ कुरुकुल्लायै नमः से मुखशोधन करे। ॐ विरोधिन्यै नमः से दक्षिण नासा का स्वच्छ करे। ॐ विप्रचित्तायै नमः से वाम नासा का शोधन करे। ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः से नेत्रों को स्वच्छ करे, ॐ दीप्तायै नमः। ॐ नीलायै नमः से कानों का शोधन करे। ॐ घणायै नमः से नाभि का शोधन करे। ॐ बलाकायै नमः से वक्ष का शोधन करे। ॐ मात्रायै नमः से शिर का शोधन करे। ॐ मुद्रायै नमः, ॐ मितायै नमः से कन्धों का शोधन करे। यह मन्त्र आचमन होता है। एक वर्ष तक ऐसा करने से काली अपना दर्शन देती है।

तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से लेकर योगपीठ न्यास करके भूतशुद्धि करे। मायाबीज से यथाविधि तीन प्राणायाम करे। तब ऋष्यादि न्यास करे। भैरव तन्त्र के अनुसार इसके ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक्, देवता दक्षिणकालिका, बीज ह्रीं, शक्ति हूँ एवं कीलक क्लीं है। पुरुषार्थ सिद्धि-हेतु इसका विनियोग किया जाता है। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि भैरवऋषये नमः, मुखे उष्णिक् छन्दसे नमः, हृदि दक्षिणकालिकादेवतायै नमः, गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वांगे क्रीं

कीलकाय नम:। कालीतन्त्र में कहा गया है कि इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक्, देवता दक्षिण कालिका, बीज ह्रीं एवं शक्ति हूँ है। कवित्व के लिये इसका विनियोग किया जाता है। कालीक्रम में कहा गया है कि आद्य वर्ण कीलक होता है और चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। कुलचूड़ामणि के अनुसार इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं, छन्द उष्णिक् है, देवता दक्षिणा कालिका हैं एवं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

अथ कराङ्गन्यासौ, यथा कालीतन्त्रे—

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते। षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्॥१॥ इति।

वीरतन्त्रे—दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।' तद्यथा—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, इत्यादि। एवं ॐ ह्रां हृदयाय नम:, इत्यादि। ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:, इत्यादिना वा। ततो वर्णन्यास:—अंआंइंईंउंऊंऋंॠंऌंॡं नम:, इति हृदये। एंऐंओंऔंअंअ:कंखंगंघं नम:, इति दक्षबाहौ। ङंचंछंजंझंञंटंठंडंढं नम: इति वामबाहौ। णंतंथंदंधंनंपंफंबंमं नम:, इति दक्षपादे। मंयंरंलंवंशंषंसंहंळंक्षं नम:, इति वामपादे। विरूपाक्षमते तु सबिन्दुरेष न्यास:, तन्त्रे पुनर्निर्बिन्दु:। यथा वीरतन्त्रे—'अंआंइंईंउंऊंऋंॠंऌंॡं वै हृदये न्यसेत्'। इत्यादि। कालीतन्त्रेऽपि—'अआइईउऊऋॠऌॡ वै हृदये न्यसेत्' इत्यादि।

कर-अंगन्यास—कालीतन्त्र में कहा गया है कि छ: दीर्घ स्वरयुक्त बीजों के पूर्व ॐ लगाकर अङ्गन्यास एवं करन्यास करना चाहिये। वीरतन्त्र में भी इसी का समर्थन किया गया है; जैसे—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। इसी प्रकार ह्रां हृदयाय नम: अथवा इत्यादि क्रां अंगुष्ठाभ्या नम: इत्यादि। तब वर्णन्यास करे। जैसे—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नम: हृदये। एं ऐं ओं औं अं अ: कं खं गं घं नम: दक्षबाहौ। ङं चं छं जं झं जं ञं टं ठं डं ढं नम: वामबाहौ। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नम: दक्षपादे। मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नम: वामपादे। विरूपाक्षमत से बिन्दुसहित ही न्यास करना चाहिये। जैसे कि वीरतन्त्र में कहा है कि अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं का न्यास हृदय में करे। लेकिन तन्त्र में बिन्दुरहित न्यास कहा गया है जैसे कि कालीतन्त्र में कहा गया है कि अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ का न्यास हृदय में करे।

अथ षोढान्यास:, तदुक्तं वीरतन्त्रे—

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम्। मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तम:॥१॥
श्रीबीजपुटितां तां तु मातृकापुटितं तु तत्। कामेन पुटितां देवीं (तत्पुटं काममेव च॥२॥
शक्त्या च पुटितां देवी) शक्तिञ्च तत्पुटां न्यसेत्। ह्रींद्वन्द्वं च पुनर्न्यस्य ऋॠऌॡ च पूर्ववत्॥३॥
मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च। अनुलोमविलोमेन न्यस्य मन्त्रं यथाविधि॥४॥
मूलेनाष्टशतं कुर्याद् व्यापकं तदनन्तरम्।

यथा—ॐअंॐ, अंॐअं, श्रींअंश्रीं, अंश्रींअं, एवं तथैव मातृकापुटितम्। एवं कामपुटितां तां तत्पुटितं कामम्। एवं शक्तिपुटितां तां तत्पुटितां शक्तिं न्यसेत्। तथा ह्रींद्वन्द्वपुटितां तां तु मातृकापुटितं द्वयम्। तथा ऋंॠंऌंॡं च पूर्ववत्। एवं मन्त्रपुटितां मातृकां मातृकापुटितं मनुं, पुनरनुलोमविलोमेन मन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य मूलेनाष्टोत्तरशतेन व्यापकं कुर्यात्। एतन्न्यासस्ताराया अपि बोद्धव्य:। 'इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोढा प्रकीर्तिता। ताराया: कालिकायाश्च तन्मुख्याश्च तथापरा। कृतेऽस्मिन् न्यासवर्ये च सर्वपापं प्रणश्यति'। ततस्तत्त्वन्यास:—मनुं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, पादादिनाभिपर्यन्तम्। द्वितीयान्ते ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, नाभ्यादिहृदयान्तम्। तृतीयखण्डान्ते ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा, हृदयादिशिर:पर्यन्तम्। तदुक्तं स्वतन्त्रे—

मूलविद्यात्रिखण्डान्ते प्रणवाद्यैर्यथाविधि। आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैर्न्यासं तत्र समाचरेत्॥१॥ इति।

षोढ़ा न्यास—वीरतन्त्र के अनुसार ॐ अं ॐ, अं ॐ अं, श्रीं अं श्रीं, अं श्रीं अं—इस प्रकार न्यास करे। इसी

प्रकार मातृकापुटित न्यास करे। इसी प्रकार कामपुटित मातृका और मातृकापुटित काम से न्यास करे। इसी प्रकार शक्तिपुटित मातृका और मातृकापुटित शक्ति का न्यास करे। तब दो ह्रीं से पुटित मातृका और दो मातृका से पुटित ह्रीं का न्यास करे। ऋं ॠं लृं ॡं से पूर्ववत् न्यास करे। इसी प्रकार मन्त्रपुटित मातृका और मातृकापुटित मन्त्र; पुन: अनुलोम-विलोम मन्त्र का न्यास मातृका स्थान में करे। मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार व्यापक न्यास करे। इसी प्रकार का न्यास तारा का भी होता है। इसे ही दुर्गा का षोढ़ा अंगन्यास कहते हैं। तारा और कालिका का न्यास मुख्य है। अन्य का न्यास भी इसी प्रकार से होता है। इस न्यास को करने से सभी पाप नष्ट होते हैं।

तत्त्व न्यास—स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र को तीन खण्ड में करके प्रथम खण्ड के बाद ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा से पैर से नाभि तक स्पर्श करे। द्वितीय खण्ड के बाद ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा से नाभि से हृदय तक का स्पर्श करे। तृतीय खण्ड के बाद ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा कहकर हृदय से शिर तक का स्पर्श करे।

अथ बीजन्यास:। तदुक्तं कुमारीकल्पे—

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके। गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्न्यसेत्॥

तद्यथा—आद्यबीजं ब्रह्मरन्ध्रे। द्वितीयं बीजं भ्रूमध्ये। तृतीयं बीजं ललाटे। चतुर्थं बीजं नाभौ। पञ्चमं बीजं गुह्ये। षष्ठबीजं सर्वाङ्गे। एतत् त्रयं काम्यम्। मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यथाविधि मुद्रां प्रदर्शयेत्। तदुक्तं भैरवीतन्त्रे—'पञ्चधा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा।' स्वतन्त्रेऽपि—'मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेद् बुध:'। ततो देवीं ध्यायेत्। तद्यथा कालीतन्त्रे—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥१॥
सद्यश्छिन्नशिर:खड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्॥२॥
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥३॥
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्॥४॥
शवानां करसंघातै: कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्॥५॥
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्)॥६॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥७॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्॥८॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्॥९॥

शिवयुग्मेति, घोरकर्णावतंसेति, प्रेतकर्णपूरेति च, 'शकुन्तपक्षसंयुक्तबाणकर्णविभूषणाम्' इति। 'विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीमिति' पठनादुभयमेव पाठ:। ध्यानान्तरं स्वतन्त्रे—

अञ्जनाद्रिप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्॥१॥
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शवै: सह॥२॥
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्॥३॥
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्॥४॥
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रसक्तिकाम्। वह्न्यर्कशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम्॥५॥
विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥६॥
श्मशानावह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम्। सद्यश्छिन्नशिर:खड्गवराभीतिकराम्बुजाम्॥७॥

इति ध्यात्वा, मानसोपचारै: संपूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात्। यथा—स्ववामे भूमौ 'हुमिति' अर्घ्यस्थापनीयगर्भं त्रिकोणं विलिख्य, तत्रार्घ्यपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिना शंखादिपात्रमापूर्य 'ॐ ह्रां हृदयाय नम:' इत्या-

दिषडङ्गमन्त्रैरग्नीशासुरवायुषु, अग्रे औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ह्रः अस्त्राय फट्, इत्यभ्यर्च्य, तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य, तदुपरि मूलमन्त्रं दशधा जप्त्वा धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, अस्त्रेण संरक्ष्य भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिन्निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं स्वपूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत्।

बीज न्यास—कुमारीकल्प के अनुसार क्रीं से ब्रह्मरन्ध्र में, क्रीं से भ्रूमध्य में, क्रीं से ललाट में, ह्रीं से नाभि में, ह्रीं से गुह्य में, हुं से मुख में, हुं से सर्वांग में न्यास करे। मूल मन्त्र से सात बार व्यापक न्यास करके यथाविधि मुद्रा प्रदर्शित करे। भैरवी तन्त्र के अनुसार व्यापक न्यास पाँच बार अथवा नव बार तथा मूल मन्त्र से सात बार करे। स्वतन्त्र तन्त्र में भी कहा गया है कि मूल मन्त्र से नव बार व्यापक न्यास करे। तब देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्।।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्)।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्।।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्।।

स्वतन्त्र तन्त्र के अनुसार ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—

अञ्जनाद्रिप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्।।
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शवैः सह।।
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्।।
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्।।
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रसक्तिकाम्। वह्न्यर्कशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम्।।
विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।।
श्मशानावह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम्। सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवराभीतिकराम्बुजाम्।।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के ध्यानों में से कोई एक ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करके अर्घ्य का स्थापन करे। जैसे—भूमि पर त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में हुं लिखे। उस पर अर्घ्यपात्र स्थापित करके मूल मन्त्र से जलादि से शंखादि पात्र को भरे। ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि षडङ्ग मन्त्र से अग्नि-ईशान-नैर्ऋत्य-वायव्य में; आगे 'औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्' से चारों दिशाओं में एवं 'ह्रः अस्त्राय फट्' से अर्चन करे। उसे मत्स्य मुद्रा से आच्छादित करे। मूल मन्त्र का दश बार जप करे। धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे। भूतिनी-योनि मुद्रा दिखावे। उस जल में से कुछ प्रोक्षणी पात्र में लेकर अपना और पूजाद्रव्यों का अभ्युक्षण करके पीठपूजा करे।

पूजायन्त्रपीठपूजादि

अस्याः पूजायन्त्रम्—आदौ बिन्दुं स्वबीजं भुवनेश्वरीं च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्बाह्ये त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं यन्त्रमारभेत्। ततः पीठपूजा, कुमारीकल्पे—

पीठपूजां ततः पश्चादाधारशक्तिपूर्वकम्। प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च।।१।।
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा। श्मशानं पारिजातं च तन्मूले रत्नवेदिकाम्।।२।।
तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत्साधकसत्तमः। चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्च शवमुण्डकान्।।३।।

प्रकार मातृकापुटित न्यास करे। इसी प्रकार कामपुटित मातृका और मातृकापुटित काम से न्यास करे। इसी प्रकार शक्तिपुटित मातृका और मातृकापुटित शक्ति का न्यास करे। तब दो ह्रीं से पुटित मातृका और दो मातृका से पुटित ह्रीं का न्यास करे। ॠं ॠं लृं लॄं से पूर्ववत् न्यास करे। इसी प्रकार मन्त्रपुटित मातृका और मातृकापुटित मन्त्र; पुनः अनुलोम-विलोम मन्त्र का न्यास मातृका स्थान में करे। मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार व्यापक न्यास करे। इसी प्रकार का न्यास तारा का भी होता है। इसे ही दुर्गा का षोढ़ा अंगन्यास कहते हैं। तारा और कालिका का न्यास मुख्य है। अन्य का न्यास भी इसी प्रकार से होता है। इस न्यास को करने से सभी पाप नष्ट होते हैं।

तत्त्व न्यास—स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र को तीन खण्ड में करके प्रथम खण्ड के बाद ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा से पैर से नाभि तक स्पर्श करे। द्वितीय खण्ड के बाद ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा से नाभि से हृदय तक का स्पर्श करे। तृतीय खण्ड के बाद ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा कहकर हृदय से शिर तक का स्पर्श करे।

अथ बीजन्यासः। तदुक्तं कुमारीकल्पे—

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके। गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्न्यसेत्॥

तद्यथा—आद्यबीजं ब्रह्मरन्ध्रे। द्वितीयं बीजं भ्रूमध्ये। तृतीयं बीजं ललाटे। चतुर्थं बीजं नाभौ। पञ्चमं बीजं गुह्ये। षष्ठबीजं सर्वाङ्गे। एतत् त्रयं काम्यम्। मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यथाविधि मुद्रां प्रदर्शयेत्। तदुक्तं भैरवीतन्त्रे—'पञ्चधा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा।' स्वतन्त्रेऽपि—'मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेद् बुधः'। ततो देवीं ध्यायेत्। तद्यथा कालीतन्त्रे—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥१॥
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्॥२॥
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥३॥
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्॥४॥
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्॥५॥
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्)॥६॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥७॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्॥८॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्॥९॥

शिवयुग्मेति, घोरकर्णावतंसेति, प्रेतकर्णपूरेति च, 'शकुन्तपक्षसंयुक्तबाणकर्णविभूषणाम्' इति। 'विगता-सुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीमिति' पठनादुभयमेव पाठः। ध्यानान्तरं स्वतन्त्रे—

अञ्जनाद्रिप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्॥१॥
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शवैः सह॥२॥
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्॥३॥
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्॥४॥
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रसक्तिकाम्। वह्न्यर्कशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम्॥५॥
विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥६॥
श्मशानावह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम्। सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवराभीतिकराम्बुजाम्॥७॥

इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः संपूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात्। यथा—स्ववामे भूमौ 'हुमिति' अर्घ्यस्थापनीयगर्भं त्रिकोणं विलिख्य, तत्रार्घ्यपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिना शंखादिपात्रमापूर्य 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः' इत्या-

दिषडङ्गमन्त्रैरग्नीशासुरवायुषु, अग्रे औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ह्रः अस्त्राय फट्, इत्यभ्यर्च्य, तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य, तदुपरि मूलमन्त्रं दशधा जप्त्वा धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, अस्त्रेण संरक्ष्य भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिन्निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं स्वपूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत्।

बीज न्यास—कुमारीकल्प के अनुसार क्रीं से ब्रह्मरन्ध्र में, क्रीं से भ्रूमध्य में, क्रीं से ललाट में, ह्रीं से नाभि में, ह्रीं से गुह्य में, हुं से मुख में, हुं से सर्वांग में न्यास करे। मूल मन्त्र से सात बार व्यापक न्यास करके यथाविधि मुद्रा प्रदर्शित करे। भैरवी तन्त्र के अनुसार व्यापक न्यास पाँच बार अथवा नव बार तथा मूल मन्त्र से सात बार करे। स्वतन्त्र तन्त्र में भी कहा गया है कि मूल मन्त्र से नव बार व्यापक न्यास करे। तब देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्।।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्)।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्।।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्।।

स्वतन्त्र तन्त्र के अनुसार ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—

अञ्जनाद्रिप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्।।
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शवैः सह।।
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्।।
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्।।
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रसक्तिकाम्। वह्न्यर्कशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम्।।
विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।।
श्मशानावह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम्। सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवराभीतिकराम्बुजाम्।।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के ध्यानों में से कोई एक ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करके अर्घ्य का स्थापन करे। जैसे—भूमि पर त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में हुं लिखे। उस पर अर्घ्यपात्र स्थापित करके मूल मन्त्र से जलादि से शंखादि पात्र को भरे। ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि षडङ्ग मन्त्र से अग्नि-ईशान-नैर्ऋत्य-वायव्य में; आगे 'औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्' से चारों दिशाओं में एवं 'ह्रः अस्त्राय फट्' से अर्चन करे। उसे मत्स्य मुद्रा से आच्छादित करे। मूल मन्त्र का दश बार जप करे। धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे। भूतिनी-योनि मुद्रा दिखावे। उस जल में से कुछ प्रोक्षणी पात्र में लेकर अपना और पूजाद्रव्यों का अभ्युक्षण करके पीठपूजा करे।

पूजायन्त्रपीठपूजादि

अस्याः पूजायन्त्रम्—आदौ बिन्दुं स्वबीजं भुवनेश्वरीं च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्बाह्ये त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं यन्त्रमारभेत्। ततः पीठपूजा, कुमारीकल्पे—

पीठपूजां ततः पश्चादाधारशक्तिपूर्वकम्। प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च।।१।।
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा। श्मशानं पारिजातं च तन्मूले रत्नवेदिकाम्।।२।।
तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत्साधकसत्तमः। चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्च शवमुण्डकान्।।३।।

'धर्माधर्मादींश्चे'त्यादि। ततः पीठन्यासोक्ताधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं संपूज्य, केसरेषु पूर्वादितः 'इच्छाज्ञानक्रियाश्चैव कामिनी कामदायिनी। रती रतिप्रियानन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी'। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। तदुपरि 'ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' पीठस्योत्तरे गुरुपूजा। पुनर्ध्यात्वा पुष्पाञ्जलावानीय मूल-मन्त्रकल्पितमूर्तौ आवाहयेत्। 'देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव'। ततो मूलमुच्चार्य 'अमुके देवि इहावह २ इह तिष्ठ २ इह सन्निधेहि २ इह संनिरुध्यस्व २'। ततो हुमित्यवगुण्ठ्य अङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य, भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय मूलेन पाद्यादिभिः पूजयेत्। मूलमुच्चार्य अमुकदेवतायै एतत्पाद्यं नमः। इदमर्घ्यं स्वाहा। इदमाचमनीयं स्वधा। स्नानीयं निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मूलमुच्चार्य एष दीपो नमः। ततो घण्टां संपूजयेत्—'ॐ जगद्ध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा' इति घण्टां संपूज्य वादयन् धूपं दत्त्वा दीपं दृष्टिपर्यन्तं दद्यात्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा यथोपपन्नं नैवेद्यं दद्यात्।

पूजा यन्त्र—पहले 'ह्रीं' लिखे। उसके बाहर चार त्रिकोण, वृत्त और अष्टदल बनावे। फिर वृत्त बनाकर उसके बाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्र भूपुर बनावे। तदनन्तर पीठ पूजा करे। कुमारीकल्प में कहा गया है कि पीठन्यासोक्त आधारशक्ति आदि का पूजन 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' से करे। केसर में पूर्वादि क्रम से इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, नन्दा का पूजन आठी दिशाओं में करने के बाद बीच में मनोन्मनी की पूजा करे। सर्वत्र नाम के आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर पूजा करे। उसके ऊपर 'ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' से पूजा करे। पीठ के उत्तर में गुरुपूजन करे। फिर ध्यान करके पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र से कल्पित मूर्ति का आवाहन करे। जैसे—

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव।।

तब मूल मन्त्र कहकर 'अमुके देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निरुध्यस्व' कहकर आवाहन करे। तब हुं से अवगुंठन करे। अंगमन्त्र से सकलीकरण करे। धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। परमीकरण मुद्रा से परमीकरण करे। भूतिनी-योनि मुद्रा दिखाकर प्राणप्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र से पाद्यादि से पूजा करे। जैसे—मूल मन्त्र कहकर अमुकदेवतायै एतत्पाद्यं नमः। इदमर्घ्यं स्वाहा। इदमाचमीयं स्वधा। स्नानीयं निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। तब मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर मूल मन्त्र कहकर एष दीपो नमः कहकर ॐ जगद्ध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा कहकर घण्टा का पूजन करके उसे बजाकर धूप-दीप दिखावे। तब मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देकर यथाप्राप्त नैवेद्य निवेदित करे।

ततः आवरणपूजामारभेत्। ततः 'अमुके देवि आवरणं ते पूजयामि' इत्याज्ञां गृहीत्वा, केसरेषु अग्निकोणे ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ईशाने ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्ये ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। वायौ ॐ ह्रैं कवचाय हुं। आग्नेये ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। ततो बहिः षट्कोणे ॐ काल्यै नमः, एवं कपालिन्यै०, कुल्लायै०, कुरुकुल्लायै०, विरोधिन्यै०, विप्रचित्तायै नमः उग्रायै०, उग्रप्रभायै० दीप्तायै०, (इत्यन्तत्र्यस्रे। नीलायै०, घनायै०, बलाकायै०, इति द्वितीयत्र्यस्रे। मात्रायै०, मुद्रायै०) मितायै नमः इति तृतीयत्र्यस्रे। 'सर्वाः श्यामा असि-करा मुण्डमालाविभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः सुचिस्मिताः। दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्वभर्तृसमन्विताः।' इति ध्यात्वार्चयेत्। ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ब्राह्म्यै नमः, एवं नारायण्यै०, माहेश्वर्यै०, चामुण्डायै०, कौमार्यै०, अपराजितायै०, वाराह्यै०, नारसिंह्यै०। एता गन्धादिभिः संपूज्य, पत्राग्रे असिताङ्गादिभैरवान् पूजयेत्। ततो मूलने पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। ततः पाद्यादिना देव्या दक्षिणे भागे महाकालं पूजयेत्। कुमारीकल्पे—'देव्याश्च दक्षिणे भागे महाकालं प्रपूजयेत्'। 'हूंक्षौयांरांलांवांहांक्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय २ ह्रींश्रींफट्स्वाहा'। अनेन पाद्यादिभिराराध्य त्रिस्तर्पयित्वा मूलेन देवीं पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तथाच कालीतन्त्रे—'महाकालं यजेद्यत्नात् पश्चाद् देवीं प्रपूजयेत्'। ततो देवीं ध्यायेत्। ततो यथाशक्ति जपित्वा गुह्येत्यादिना जपं देव्या वामहस्ते समर्पयेत्। ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्ग

प्रणामं कुर्यात्। श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं पठेत्। ततस्तत्तेजः पुष्पेण सार्धं हृदि आरोपयेत्। (ततो निवेद्यं निवेदयित्वा) तन्नैवेद्यं किञ्चित् 'उच्छिष्टचण्डालिन्यै नमः' इत्यैशान्यां दिशि दत्त्वा शेषं शिष्टेभ्यो दद्यात्। किञ्चित् स्वीकृत्य पादोदकं किञ्चित् पीत्वा, निर्माल्यं धृत्वा यथेच्छं विहरेदिति। ततो मूलेनाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं 'पुष्पं च चन्दनं धृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्। सर्वसिद्धियुतो भूत्वा भैरवो वत्सराद्भवेत्' इति। अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः। तत्क्रमस्तु कालीतन्त्रे—

लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः। रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ॥१॥ इति।

व्यवस्थामाह स्वतन्त्रतन्त्रे—

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः। ततस्तस्य दशांशेन हविषाग्नौ समर्पयेत् ॥१॥ इति।

अत्राङ्गस्य कालान्तरमाह, नीलसारस्वततन्त्रे—'लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः। अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च। दशांशं होमयेन्मन्त्री दशांशमभिषेचयेत्' इति सांप्रदायिकाः। वस्तुतस्तु कुमारीकल्पे—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः। रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ॥१॥
एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित्। अयुत् होमयेद् देवि दिवारात्रिप्रभेदतः ॥२॥

इति दर्शनाद् दिवा लक्षं जप्त्वा तद् दशांशहोमं कुर्यात्। रात्रौ लक्षं जपित्वा रात्रावेव तद्दशांशहोमं कुर्यात्, इति रहस्यार्थः।

आवरण पूजन—'अमुके देवि आवरणं ते पूजयामि' कहकर आज्ञा लेने के बाद केसर में आवरण-पूजन करे। जैसे उसके अग्निकोण में ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ईशान में ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्य में ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, वायव्य में ॐ ह्रैं कवचाय हुं, आग्नेय में ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चारों दिशाओं में ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। तदनन्तर बाहर षट्कोण में ॐ काल्यै नमः, कपालिन्यै नमः, कुल्लायै नमः, कुरुकल्लायै नमः, विरोधिन्यै नमः, विप्रचित्तायै नमः, उग्रायै नमः, उग्रप्रभायै नमः, दीप्तायै नमः से प्रथम त्रिकोण में; तब दूसरे त्रिकोण में नीलायै नमः, घनायै नमः, बलाकायै नमः से एवं तीसरे त्रिकोण में मात्रायै नमः, मुद्रायै नमः, मितायै नमः से पूजन करे। सभी का इस प्रकार ध्यान करें—

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः सुचिस्मिताः।।
दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्वभर्तृसमन्विताः।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि क्रम से ॐ ब्राह्म्यै नमः, नारायण्यै नमः, माहेश्वर्यै नमः, चामुण्डायै नमः, कौमार्यै नमः, अपराजितायै नमः, वाराह्यै नमः, नारसिंह्यै नमः कहते हुये इनका पूजन गन्धादि से करे। दलों के अग्रभाग में असितांगादि भैरवों की पूजा करे। तब मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। तब देवी के दाँयें भाग में महाकाल का पूजन पाद्यादि से करे।

कुमारीकल्प में कहा भी गया है कि देवी के दक्षिण भाग में महाकाल की पूजा करनी चाहिये। 'हूं क्षौं यां रां लां वां हां क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से पाद्यादि से महाकाल की पूजा करके तीन बार तर्पण करे। मूल मन्त्र से देवी का पूजन पञ्चोपचार से करे। कालीतन्त्र में भी कहा है कि महाकाल का पूजन करके देवी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देवी का ध्यान करके यथाशक्ति जप करके गुह्यादि से जप को देवी के वाम हस्त में समर्पित करे। तब स्तुति करके प्रदक्षिणा करे और अष्टाङ्ग प्रणाम करे। श्रीजगन्मङ्गल नामक कवच का पाठ करे। तब देवी के तेज को पुष्प के साथ हृदय में ले आये। तब निवेदित नैवेद्य में से कुछ लेकर 'उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः' से ईशान दिशा में उच्छिष्ट चाण्डालिनी को निवेदित करे। बचे हुए नैवेद्य में से कुछ स्वयं खाकर पादोदक का पान करे। निर्माल्य धारण करके इच्छानुसार विहार करे। तब मूल मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित पुष्प, चन्दन धारण करके साधक तीनों लोकों को वश में कर सकता है एवं एक साल में सर्वसिद्धियुक्त भैरव हो जाता है। इस मन्त्र का पुरश्चरण दो लाख जप से होता है। पुरश्चरण का क्रम कालीतन्त्र में कहा गया है कि हविष्याशी होकर दिन में एक लाख जप करे एवं रात में मुख में पान खाकर शय्या पर जाकर एक लाख जप करे। स्वतन्त्र तन्त्र में कहा गया है कि दिन में हविष्य का भक्षण कर पवित्र रहकर एक लाख जप

करे और उसका दशांश हवन करे। समय-व्यवस्था प्रदर्शित करते हुये। नीलसारस्वत तन्त्र में कहा गया है कि दिन में सदाचार का पालन करते हुये हविष्य-भक्षण कर एक लाख जप करे एवं रात्रि में अपवित्र रहते हुये भी एक लाख जप करे। उसके दशांश होम करे और उसका दशांश अभिषेक करे। कुमारी कल्प में कहा गया है कि दिन में हविष्याशी रहकर पवित्र रहकर एक लाख जप करे। रात में मुख में पान दबाकर शय्या पर जाकर एक लाख जप करे। इस प्रकार दो लाख जप कर मन्त्रवित् साधक उसके दशांश रूप में दस हजार दिन में और दस हजार रात में हवन करे। इससे स्पष्ट है कि दिन में एक लाख जप और दश हजार हवन करे तथा पुनः रात में एक लाख जप कर दश हजार हवन करे।

मन्त्रान्तरतत्पूजाप्रकाराः

अत्र मन्त्रभेदाः—

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम्। एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ॥
त्रिगुणस्तु विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधकः ।

पूजादिकं तु—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं कर्म विधाय पूर्वोक्ता ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य वर्णन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा—ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यामित्यादि। एवं क्रां हृदयायेत्यादि कल्पयेत्। एवं—'षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि देशिकः'। अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। अनयोः पुरश्चरणं लक्षजपः। तथा च सिद्धेश्वरीतन्त्रे—

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः। तद्दशांशं विधानेन होमयेत्साधकोत्तमः ॥१॥
मायाद्वयं कूर्चयुग्मं ऐन्द्रान्तं मादनत्रयम्। मायाबिन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ॥२॥
संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत्। एकविंशाक्षरो मन्त्रस्ताराद्यः कालिकामनुः ॥३॥

इन्द्रस्य समीपे ऐन्द्रं रेफमित्यर्थः। तेन प्रणवं मायाद्वयं कूर्चयुग्मं निजबीजद्वयं दक्षिणेकालिके निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयमित्येकविंशत्यक्षरः। अस्य पूजादिकं दक्षिणावत्। पुरश्चरणं तु लक्षजपः। होमस्तु तद्दशांशतः।

स्वाहान्तश्च त्रयोविंशाक्षरोऽयं मनुराजकः। स्वाहां विनैकविंशत्यक्षरः कामप्रदो मनुः ॥४॥
विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता। ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥५॥

स्वतन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्। रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमं भगान्वितम् ॥१॥
ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता।

रतिबीजं निजबीजम्। तथाच चामुण्डातन्त्रे—'रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षररूपिणी' इति कवचे प्रतिपादितम्। तेन प्रणवो माया निजबीजं पपञ्चममेकारयुक्तं वह्निवल्लभा।

अस्य पूजा—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, विराट् छन्दः, सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा त्रिभुवनेश्वरी देवता, निजबीजं बीजं, लज्जा शक्तिः। वर्णन्यासकराङ्गन्यासौ च दक्षिणावत्। ध्यानं तु—

खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा
सव्ये पाणौ कपालाद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा
पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा ॥

एवं ध्यात्वा पूजादिकं दक्षिणावत् कुर्यात्। पुरश्चरणं त्वेकविंशतिसहस्रजपः। तदुक्तं कालीतन्त्रे—

जपेद्विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेन संयुतम्। होमयेत् तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ॥१॥ इति।

प्रकारान्तरं विश्वसारे—

मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम्। महाविद्या महाकाल्या महाकालेन भाषिता ॥१॥
वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम्। एतत्त्रयं क्रमेणैव तदन्ते वह्निवल्लभा ॥२॥

निजबीजत्रयं फट् वह्निवल्लभा (३) निजबीजत्रयं कूर्चबीजं लज्जा पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा (४)। वाग्भवं नमः मूलबीजं पुनस्तदेव कालिकायै वह्निवल्लभा (५)।

अस्य पूजाप्रयोगः—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्, अस्यैकादशाक्षरस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पङ्क्तिः छन्दः, कालिका देवता, शिरोमुखहृदयेषु ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य ध्यायेत्। तथा—

चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता। खड्गं च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम् ॥१॥
कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमाद्वामे सुबिभ्रती। द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रती शिरसा द्वयीम् ॥२॥
मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामपि चापराम्। वक्षसा नागहारं च बिभ्रती रक्तलोचना ॥३॥
कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता। वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ॥४॥
विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवद्वयम्। साट्टहासा महाघोररावयुक्ता सुभीषणा ॥५॥ इति।

एवं ध्यानम्। अन्यत्सर्वं दक्षिणावत्। पूर्वोक्तानां मन्त्राणां च सर्वं दक्षिणावद्बोद्धव्यम्। अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः। अन्यासां मन्त्रवर्णसंख्यलक्षजपः। तदुक्तं तत्रैव—

लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि। अन्यासां वर्णलक्षं तु कथितं पद्मयोनिना ॥१॥ इति।

मन्त्रभेद—एकाक्षर मन्त्र 'क्रीं' सर्व कामफल-प्रदायक महामन्त्र है। 'क्रीं क्रीं क्रीं' विशेषत: सर्वशास्त्रप्रबोधक है।

प्रयोग—प्रात:कृत्य से प्राणायाम तक के कर्म करने के बाद पूर्वोक्त ऋषि छन्द देवता का न्यास करके वर्ण न्यास करे। कर न्यास, अंग न्यास करे। जैसे 'क्रां अंगुष्ठाभ्यां नम: क्रां हृदयाय नम:' इत्यादि। षडङ्ग न्यास करके अन्य सभी विधि पूर्ववत् सम्पन्न करे। एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। जैसा कि सिद्धेश्वरीतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार ध्यान के बाद विधिपूर्वक एक लाख मन्त्रजप करे। उसका दशांश हवन विधिपूर्वक करे।

अन्य इक्कीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं ह्रीं हुं हुं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं। इसकी पूजा भी पूर्व मन्त्र के समान ही है। एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है और उसका दशांश हवन किया जाता है।

उपर्युक्त इक्कीस अक्षर के मन्त्र में 'स्वाहा' जोड़ने से ही तेईस अक्षरों का एक अन्य मन्त्र हो जाता है। यह मन्त्रराज है। स्वाहा के बिना इक्कीस अक्षरों का मन्त्र कामप्रद है। स्वाहा एवं प्रणव के बिना बीस अक्षर का मन्त्र महाविद्या है। दक्षिण कालिका मन्त्र के समान ही इन सबका ध्यान-पूजन आदि होता है।

स्वतन्त्र तन्त्रोक्त श्लोक के उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा। इसे विद्याराज्ञी कहते हैं।

इसकी पूजा का क्रम यह है कि प्रात:कृत्यादि से प्राणायाम तक की क्रिया के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द विराट्, देवता ब्रह्मस्वरूपा सिद्धिकाली त्रिभुवनेश्वरी, बीज क्रीं एवं शक्ति ह्रीं है। मन्त्रवर्ण न्यास, करन्यास एवं अङ्गन्यास दक्षिणकालिका के समान ही हैं। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा सव्ये पाणौ कपालाद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा।।

इस प्रकार ध्यान के बाद इसकी पूजा आदि दक्षिण कालिका के समान करे। इक्कीस हजार जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। जैसा कि कालीतन्त्र में कहा भी है—इक्कीस हजार जप करे एवं उसका दशांश हवन कोमल पुष्प से करे।

विश्वसार तन्त्र में इसके तीन मन्त्र बताये गये हैं—१. क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा, २. क्रीं क्रीं क्रीं हुं स्त्रीं स्वाहा, ३. ऐं नम: क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

पूजाप्रयोग—प्रात:कृत्यादि से प्राणायाम तक की क्रिया के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इस एकादशाक्षर मन्त्र के दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, पंक्ति छन्द एवं कालिका हैं; इनका न्यास क्रमशः शिर, मुख एवं हृदय में करने के बाद निम्नवत् ध्यान करे—

खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा सव्ये पाणौ कपालाद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा।।

ध्यान के बाद अन्य सभी कर्म दक्षिणा कालिका के समान करे। पूर्वोक्त सभी मन्त्रों की समस्त विधियाँ दक्षिण कालिका के समान ही हैं। इसका पुरश्चरण दो लाख जप से होता है। अन्य मन्त्रों में वर्णलक्ष जप होता है; जैसा कि कहा भी है—पुरश्चरण में दो लाख जप करे। अन्य मन्त्रों का जप वर्णलक्ष होता है—यह ब्रह्मा ने कहा है।

भेदास्तु—(१) निजबीजं कूर्चबीजं माया दक्षिणेकालिके वह्निवल्लभा। (२) निजबीजं कूर्चं लज्जा दक्षिणेकालिके फट्। (३) मूलबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं दक्षिणेकालिके पूर्वषड्बीजानि वह्निवल्लभा। (४) निजबीजं वह्निवल्लभा। (५) निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं वह्निवल्लभा। (६) मूलबीजं कूर्चं लज्जा वह्निसुन्दरी। (७) मूलबीजं दक्षिणेकालिके वह्निवल्लभा। (८) निजबीजं कूर्चं माया पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा। (९) मूलद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा। (१०) मूलत्रयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा। (११) हृदयं वाग्भवं मूलद्वयं कालिकायै ठद्वयं। (१२) हृदयं पाशद्वयं अङ्कुशद्वयमस्त्रं वह्निजाया कालि कालिके दीर्घतनुच्छदं भुवनेशी कूर्चमस्त्रम् (१३) लज्जाबीजं क्रोधमस्त्रम्। एतासां पूजादिकं सर्वं दक्षिणावत्। एषां पूजा—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। एषां दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः दक्षिणाकाली देवता, अन्यत् सर्वं दक्षिणावद्बोद्धव्यम्। अस्यास्तु पुरश्चरणं लक्षजपः।

मन्द के भेद—१. क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।
२. क्रीं हूं स्त्रीं दक्षिणे कालिके फट्।
३. क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।
४. क्रीं स्वाहा।
५. क्रीं क्रीं हुं हुं ऐं ऐं स्वाहा।
६. क्रीं हुं ऐं स्वाहा।
७. क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।
८. क्रीं हुं ह्रीं स्वाहा।
९. क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।
१०. क्रीं क्रीं हुं हुं ऐं ऐं स्वाहा।
११. नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।
१२. नमः आं आं क्रों क्रों स्वाहा क्रीं क्रीं हुं ह्रीं हुं फट्।
१३. ऐं हुं फट्।

इन सबों की पूजनादि समस्त प्रक्रियायें दक्षिण कालिका के समान होती हैं। प्रात:कृत्यादि से लेकर प्राणायाम तक की क्रिया के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इन मन्त्रों के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता दक्षिणा काली हैं। अन्य समस्त विधियाँ दक्षिणा कालिका के समान ही होती हैं। इनका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है।

एतासां पूजायन्त्रं कालीतन्त्रे—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्। ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥१॥
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः। वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककम् ॥२॥ इति।
कुमारीकल्पे—'मध्ये तु बैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्' इति। यन्त्रनिर्माणपात्रं मुण्डमालातन्त्रे—

ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशानकाष्ठनिर्मिते। शनिभौमदिने वापि शरीरे मृतसंभवे॥
स्वर्णरूप्येऽथवा लोहे चक्रं कार्यं विधानतः। इति।

इनका पूजा यन्त्र कालीतन्त्र के अनुसार इस प्रकार का होता है—पहले त्रिकोण बनावे। उसके बाहर पुन: त्रिकोण बनाये। उसके बाहर भी त्रिकोण बनाये। इस प्रकार तीन त्रिकोण बनाने के बाद उनके बाहर वृत्त बनाकर अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर वृत्त बनावे। सबके बाहर एक भूपुर बनावे। कुमारीकल्प के अनुसार इसके मध्य में वैन्दव चक्र को ह्रीं से विभूषित करके बनावे।

यन्त्रनिर्माण पात्र—मुण्डमाला तन्त्र में कहा गया है कि इस यन्त्र को ताम्रपत्र पर या कपाल पर या श्मशानकाष्ठ से निर्मित पटरे पर अथवा शनिवार या भौमवार को मृत मनुष्य के शरीर पर बनावे। सोना-चाँदी अथवा लोहे के पत्र पर यन्त्र बनावे।

एतासां प्रमाणं विश्वसारतन्त्रे—
अथ पञ्चाक्षरी विद्यां शृणुष्व कमलानने। प्रजापतिं समुद्धृत्य वह्न्यारूढं प्रजापतिम्॥१॥
चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्। द्विगुणं च ततः कृत्वा ङेन्तं च कालिकापदम्॥२॥
स्वाहान्ता कथिता विद्या प्रिय एकादशाक्षरी। ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम्॥३॥
परात्परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता। एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा॥४॥
लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि। अन्यासां वर्णलक्षं स्यात्कथितं पद्मयोगिना॥५॥ इति।
अन्यासां पञ्चाक्षरीप्रभृतीनाम्। अस्या ध्यानम्—'चतुर्भुजा कृष्णवर्णा' इत्यादि।

इन मन्त्रों का प्रमाण विश्वसार तन्त्र के अनुसार इस प्रकार है—एकादशाक्षर मन्त्र है—कं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता परात्परा शक्ति कालिका हैं। कालिका की यह एकादशाक्षरी विद्या अत्यन्त दुर्लभ है। पुरश्चरण में इसका दो लाख जप होता है। अन्य पञ्चाक्षरी आदि मन्त्रों के लिये ब्रह्मा ने वर्णलक्ष जप कहा है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता। खड्गं च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम्॥
कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमाद्वामे सुबिभ्रती। द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रती शिरसा द्वयीम्॥
मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामपि चापराम्। वक्षसा नागहारं च विभ्रती रक्तलोचना॥
कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता। वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्॥
विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवद्वयम्। साट्टहासा महाघोररावयुक्ता सुभीषणा॥

मूलबीजं ततो मायां लज्जाबीजं ततः परम्। दक्षिणे कालिके चेति अस्त्रान्ता समुदीरिता॥६॥
अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णकाम्। यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद्भूमिपुरन्दरः॥७॥
मूलबीजद्वयं दद्यात् ततः कूर्चद्वयं वदेत्। लज्जायुग्मं समुद्धृत्य संबुद्ध्यन्तं पदद्वयम्॥८॥
पूर्ववत्षट् तथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरी। ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम्॥९॥
देवता कथिता सद्भिः काली दक्षिणपूर्विका। अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम्॥१०॥
निजबीजं समुद्धृत्य तदन्ते वह्निसुन्दरीम्। भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो नानातन्त्रसमन्वितः॥११॥
अष्टाक्षरी तु या प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता। निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः॥१२॥
स्वाहान्ता कथिता विद्या (सर्वकामफलप्रदा। निजं कूर्चं तथा लज्जा तदन्ते वह्निसुन्दरी॥१३॥
पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्त्र ऋषिः स्मृतः। नवाक्षरीं महाविद्यां शृणुष्व कमलानने॥१४॥
निजबीजत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः। स्वाहान्ता कथिता विद्या) सर्वसंपत्करी मता॥१५॥
अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां तां च नवाक्षरीम्। मूलबीजं समुद्धृत्य संबुद्ध्यन्तं पदद्वयम्॥१६॥

स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वशत्रुक्षयङ्करी। अथवाष्टाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने ॥१७॥
निजबीजं ततः कूर्चं ततो मायां समुद्धरेत्। पुनस्तान्येव उच्चार्य स्वाहान्ता मोक्षदायिनी ॥१८॥
अथापरां प्रवक्ष्यामि दशतत्त्वसमन्विताम्। मूलद्वयं कूर्चयुगं तथा लज्जाद्वयं तथा ॥१९॥
पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी। चतुर्दशाक्षरी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥२०॥
ब्रह्मत्रयं समुद्धृत्य रतिवह्निसमन्वितम्। नादबिन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्चद्वयं ततः ॥२१॥
पुनः क्रमेण चोद्धृत्य वह्निजायावधिर्मनुः। षोडशीयं समाख्याता विद्या कल्पद्रुमोपमा ॥२२॥ इति।

मायातन्त्रे—

हृदयं वाग्भवं देवि निजबीजयुगं ततः। कालिकायै पदं चोक्त्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥१॥

तन्त्रान्तरे—

नमः पाशाङ्कुशौ द्वेधा फट्स्वाहाकालिकालिके। दीर्घतनुच्छदं कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ॥१॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। तथाच—

लक्षसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये। एतासां पूजनं चैव दक्षिणावत् सुरेश्वरि ॥२॥

मत्स्यसूक्ते—'लज्जाबीजं ततः क्रोधं फडन्ता त्र्यक्षरीं भवेत्'। इति कालीमन्त्राः।

दशाक्षरी विद्या—क्रीं ह्रीं ऐं दक्षिणे कालिके फट्।

विंशाक्षरी विद्या—साधक को पृथ्वी पर इन्द्रसदृश प्रतिष्ठित करने वाला बीस अक्षरों का अन्य मन्त्र है—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता दक्षिण कालिका हैं।

त्र्यक्षरी विद्या—क्रीं स्वाहा। इसके ऋषि भैरव हैं।

अष्टाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह मन्त्र सर्वकाम-फलप्रद है।

पञ्चाक्षरी विद्या—क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा। इसके ऋषि पञ्चवक्त्र हैं।

नवाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह समस्त सम्पत्तियों को देने वाली है।

अन्य नवाक्षरी विद्या—क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा। यह समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाली है।

अन्य अष्टाक्षरी विद्या—क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा। यह मोक्षदायिनी है।

चतुर्दशाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। दश तत्त्वसमन्वित यह विद्या धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देने वाली है।

षोडशाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा। यह षोडशी विद्या कल्पवृक्ष के समान फलदायिनी है।

एकादशाक्षरी विद्या—माया तन्त्र के अनुसार एकादशाक्षरी विद्या है—ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

अन्य पञ्चदशाक्षरी विद्या—तन्त्रान्तरों में पञ्चदशाक्षरी विद्या इस प्रकार कही गई है—नमः नमः आं आं क्रों क्रों फट् स्वाहा कालिके हूँ। इसके ऋष्यादि चतुर्दशाक्षर मन्त्र के समान ही हैं। एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। पूजन विधि दक्षिणकालिका के समान है।

मत्स्यसूक्त के अनुसार त्र्यक्षरी विद्या इस प्रकार है—ह्रीं हूं फट्।

गुह्यकालीमन्त्रभेदाः

अथ गुह्यकाली विश्वसारे—

अथ वक्ष्ये महेशानि विद्यां सर्वफलप्रदाम्। चतुर्वर्गप्रदां साक्षान्महापातकनाशिनीम् ॥१॥

सर्वसिद्धिप्रदां विद्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्। गुह्यकालीमहाविद्यां त्रैलोक्ये चातिदुर्लभाम्॥२॥
इन्द्रादिरूढं वर्गाद्यं रतिबिन्दुसमन्वितम्। त्रिगुणं च तथा कृत्वा ईशानं च समुद्धरेत्॥३॥
षष्ठस्वरसमायुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम्। द्विगुणं च ततः कृत्वा ईशानद्वयमुद्धरेत्॥४॥
वामाक्षिवह्निसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्। तद्गुह्ये कालिके प्रोक्त्वा अथवा दक्षिणे वदेत्॥५॥
सप्तबीजं पुनः पूर्वक्रमेण योजयेत्ततः। वह्निजायाविधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी॥६॥

अथवेति गुह्येकालिके दक्षिणेकालिके वा मन्त्रः।

कामबीजं तथा कूर्चं तदन्ते भुवनेश्वरी। गुह्ये च कालिके वापि तथा बीजद्वयं भवेत्॥७॥
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता। एषा तु षोडशी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा॥८॥

अस्यार्थः—आदौ निजबीजं कूर्चं मायां ततः संबोधनपदद्वयं ततो निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निवल्लभा। 'कामबीजद्वयं हित्वा भवेद्विद्या चतुर्दशी'। अस्य मन्त्रस्येति शेषः।

सप्तबीजं पुरा प्रोक्तं गुह्ये च कालिके पुनः। स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥९॥

एषापि चतुर्दशाक्षरी। तथा—

दक्षिणे पदमाभाष्य भवेत् पञ्चदशाक्षरी। कामबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तं पदद्वयम्॥१०॥
पुनः कामं तदन्ते च दद्याद्वह्नेश्च सुन्दरीम्। एषा नवाक्षरी विद्या गुह्यकाल्याः समीरिता॥११॥
दक्षिणे पदमाभाष्य भवेद्विद्या दक्षाक्षरी। कामबीजं परित्यज्य अथवा षोडशाक्षरी॥१२॥

तेन षोडशाक्षरविद्यायाः कामबीजाभावे पञ्चदशी भवती। एतासां पूजनं तु—

पूर्ववन्न्यासवर्गैस्तु पूर्ववत् पूजयेच्छिवाम्। पूर्ववच्च जपेद्विद्यां सर्वं पूर्ववदेव हि॥१३॥
बलिदानं तथा मन्त्रं पूर्ववत् परिकल्पयेत्।

बलिमन्त्रस्तु—ॐह्रींएह्येहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण २ मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु ॐहूंह्रीं फट् ॐकालिकायै नमः फट् स्वाहा। यद्वा गुह्यकाल्या अयं बलिमन्त्रः, हूंनमो एहि २ गुह्यकालिके गृह्ण ३ मम शत्रून् नाशय २ खादय २ तुरु २ छिन्दि २ सिद्धिं देहि २ हुं २ स्वाहा। तथायमासनमन्त्रः— ॐहूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः, गुह्यकाल्यै हूं नमः।

गुह्य काली मन्त्र—विश्वसार तन्त्र के अनुसार गुह्यकाली विद्या समस्त फलों को देने वाली, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रदायिनी, महान् पापों का नाश करने वाली, समस्त सिद्धियों को देने वाली एवं भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाली है। यह महाविद्या तीनों लोकों में अति दुर्लभ है।

इक्कीस अक्षरों की यह विद्या इस प्रकार है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह त्रैलोक्य का मोहन करने वाली है। इसके अतिरिक्त षोडशाक्षरी गुह्यकाली विद्या इस प्रकार है—क्रीं हूं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप फल को देने वाली है। एक अन्य चतुर्दशाक्षरी विद्या है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके स्वाहा। यह सभी तन्त्रों में गुप्त है। गुह्यकाली का पञ्चदशाक्षरी मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा। उपर्युक्त में गुह्ये के बदले दक्षिणे लगाने से यह मन्त्र बना है। नवाक्षरी विद्या है—क्रीं गुह्ये कालिके क्रीं स्वाहा। इस मन्त्र में गुह्ये के स्थान पर 'दक्षिणे' लगाने से यही दशाक्षर हो जाता है। इसी प्रकार षोडशाक्षरी विद्या में से 'क्रीं' हटा देने पर पञ्चदशाक्षरी विद्या सम्पन्न होती है।

पूजन—श्यामा मन्त्र के समान ही न्यास करके तत्सदृश ही देवी का पूजन करे। पूर्ववत् विद्या का जप करे। इसकी समस्त विधियाँ श्यामा मन्त्र के समान ही हैं। बलिदान तथा यन्त्र की कल्पना भी पूर्ववत् ही की जाती है। बलिमन्त्र इस प्रकार है।

कालि का बलि मन्त्र—ॐ ह्रीं एह्येहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु ॐ हूं ह्रीं फट् कालिकायै नम: फट् स्वाहा।

गुह्यकाली का बलि मन्त्र—हूं नमो एहि एहि गुह्यकालिके गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय तुरु तुरु छिन्दि छिन्दि सिद्धिं देहि देहि हुं हुं स्वाहा।

आसन मन्त्र इस प्रकार है—ॐ हूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नम:, गुह्यकाल्यै हूं नम:।

भद्रकाली विद्या

भद्रकाल्यादयो विद्या: कथ्यन्ते सुरसुन्दरि। कामबीजादिकं बीजं सप्त पूर्वापरे यजेत् ॥१४॥
भद्रकालीं तथा ङेन्तां बीजमध्ये नियोजयेत्। स्वाहान्ता कथिता विद्या विंशद्वर्णात्मिका परा ॥१५॥
चतुर्वर्गप्रदा विद्या भद्रकाली शुभावहा।

भद्रकाली विद्या—भद्रकाली की विंशाक्षरी विद्या इस प्रकार है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं भद्रकाल्यै क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह कल्याणदायिनी भद्रकाली विद्या धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाली है।

श्मशानकालीविद्या

सप्तबीजं समुद्धृत्य श्मशानकालिके तथा ॥१६॥
पुनर्बीजं क्रमेणैव स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा। विंशत्येकाक्षरी विद्या श्मशानकालिका मता ॥१७॥

श्मशान काली—श्मशान काली की एकविंशाक्षरी विद्या है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं श्मशानकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह विद्या समस्त सिद्धियों को देने वाली है।

महाकालीविद्या

बीजानि चोच्चरेत्पूर्वं महाकालिपदं तत:। तदन्ते सप्तबीजानि स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा ॥१८॥
विंशत्यर्णा महाविद्या महाकाल्या: प्रकीर्तिता।

एतासां जपपूजनं दक्षिणावत्। विशेषस्तु—भूपुरे इन्द्रादिवज्रादीन् पूजयेत्। गृहस्य पूर्वादिद्वारेषु विष्णुं शिवं सूर्यं गणेशं पूजयेत्। तत्रैव—

भूपुरे लोकपालांश्च तदस्त्राणि ततो बहि:। भूपुरेषु चतुष्कोणे पूजयेत्क्रमत: सुधी: ॥१९॥
विष्णुं शिवं तथा सूर्यं गणेशं पूजयेत् तत:।

महाकाली विद्या—महाकाली की विंशाक्षरी विद्या है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं महाकालि क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। महाकाली की यह विंशाक्षरी महाविद्या सर्वसिद्धिदा कही जाती है। इन सभी का जप-पूजन दक्षिण कालिका के समान होता है। विशेष यह है कि भूपुर में इन्द्रादि के वज्रादि आयुधों की पूजा होती है एवं घर के पूर्वादि द्वारों में विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश की पूजा करनी चाहिये। जैसा कि कहा भी है—भूपुर में लोकपालों की तथा बाहर उनके आयुधों की पूजा करे। भूपुर के चारो कोणों में विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश की पूजा करे।

पूजायन्त्रम्

अथास्या: पूजायन्त्रम्—

त्रिकोणं चैव षट्कोणं नवकोणं मनोहरम्। त्रिवृत्तं चाष्टपत्रं च सुकिञ्जल्कसमन्वितम् ॥२०॥
भूपुरत्रितयारूढं योनिमण्डलमण्डितम्। त्रिपञ्चारमिदं चक्रं सर्वतन्त्रेषु कीर्तितम् ॥२१॥

त्रिकोणं त्रिकोणाकारमित्यर्थ:। ध्यानं तु—

महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायिनीम्। ललज्जिह्वां घोरदंष्ट्रां घोररावां हसन्मुखीम् ॥२१॥

नागहारलतोपेतां चन्द्रार्धकृतशेखराम् । द्यां लिखन्तीं जटामेकां (लेलिहानासवं स्वयम् ॥२२॥
नागयज्ञोपवीताङ्गीं) नागशय्यानिषेदुषीम् । पञ्चाशन्मुण्डसंयुक्तनरमालां महोदरीम् ॥२३॥
सहस्रफणसंयुक्तमनन्तं शिरसोपरि । चतुर्दिक्षु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम् ॥२४॥
तक्षकसर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम् । अनन्तनागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम् ॥२५॥
नागेन्द्ररशनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम् । द्विभुजां चिन्तयेद्देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२६॥
नरदेहसमारब्धकुण्डलश्रुतिमण्डिताम् । प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम् ॥२७॥
नारदाद्यैर्मुनिगणै: सेवितां शिवगे(मो)हिनीम् । अट्टहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम् ॥२८॥

जटामेकां धारयन्तीमिति शेष:। अनन्तं शिरसोपरि दधतीमिति शेष:। गुह्येत्युपलक्षणम्। पूजादिकं तु दक्षिणावत् कार्यम्, इति कालीमन्त्रा:।

पूजन यन्त्र—पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण, नवकोण, तीन वृत्त, अष्टदल कमल और तीन भूपुर बनाकर उसके ऊपर योनिमण्डल बनावे। यह त्रिपंचार नामक चक्र सभी तन्त्रों में बताया गया है। पूजन के पश्चात् भद्रकाली आदि का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायिनीम्। ललज्जिह्वां घोरदंष्ट्रां घोररावां हसन्मुखीम्।।
नागहारलतोपेतां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। द्यां लिखन्तीं जटामेकां (लेलिहानासवं स्वयम्।।
नागयज्ञोपवीताङ्गीं) नागशय्यानिषेदुषीम्। पञ्चाशन्मुण्डसंयुक्तनरमालां महोदरीम्।।
सहस्रफणसंयुक्तमनन्तं शिरसोपरि। चतुर्दिक्षु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम्।।
तक्षकसर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम्। अनन्तनागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम्।।
नागेन्द्ररशनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम्। द्विभुजां चिन्तयेद्देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्।।
नरदेहसमारब्धकुण्डलश्रुतिमण्डिताम्। प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम्।।
नारदाद्यैर्मुनिगणै: सेवितां शिवगे(मो)हिनीम्। अट्टहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम्।।

शेष समस्त पूजा-विधान दक्षिणकालिका के समान ही होता है।

ताराप्रकरणम्

अथ ताराप्रकरणम्—

अथ भेदान् प्रवक्ष्यामि तारिण्या: सर्वसिद्धिदान् । येषां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधक: ॥१॥
कवितां लभते शुद्धामनर्गलविजृम्भिणीम् । पाण्डित्यं सर्वशास्त्रेषु धनधान्यपतिर्भवेत् ॥२॥
राजद्वारे सभायां च विवादे व्यवहारके । सर्वत्र जयमाप्नोति बृहस्पतिरिवापर: ॥३॥ इति।

तारा—समस्त सिद्धियों को देने वाली तारा के मन्त्रभेदों को जानने-मात्र से ही साधक जीवन्मुक्त हो जाता है; उसे शुद्ध कविता करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और उस कविता में अनर्गल कुछ नहीं रहता। उसे सभी शास्त्रों में पाण्डित्य प्राप्त होता है, धन-धान्य का स्वामित्व प्राप्त होता है, राजद्वार, सभा में, विवाद-व्यवहार में सर्वत्र विजय जीत होती है एवं वह दूसरे बृहस्पति के समान हो जाता है।

ताराविद्याभेदा:

तथाच मत्स्यसूक्ते—

मायाबीजं समुद्धृत्य तारकं वह्निसंयुतम् । मायाबिन्दुस्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धृतम् ॥१॥
कूर्चबीजं तृतीयं च फट्कारं तदनन्तरम् । संपूर्णं सिद्धमन्त्रं तु रश्मिपञ्चकसंयुतम् ॥२॥

रश्मिपञ्चकं वर्णपञ्चकमित्यर्थ: (एकजटापक्षे रश्मिपञ्चकं वर्णपञ्चकं, नीलसरस्वतीपक्षे प्रणवमित्यर्थ:)।

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती। तारकत्वात्सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी ॥३॥
उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता। इति।

तारार्णवे—
वसिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः। अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ॥१॥
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित्।

तारामन्त्र—मत्स्यसूक्त के अनुसार 'ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' तारा की यह पञ्चाक्षरी विद्या पूर्णरूपेण सिद्ध विद्या है। लीलापूर्वक वाक्प्रदा होने के कारण इसे ही नीलसरस्वती कहते हैं। तारकत्व की शक्ति होने से तारा सुख-मोक्षदायिनी है। यह कठिन विपत्तियों से बचाती है; इसीलिये इसे उग्रतारा कहते हैं।

तारार्णव में कहा गया है कि वसिष्ठ द्वारा आराधित यह विद्या शीघ्र फल प्रदान करने वाली न होने के कारण मुनि के दारुण शाप से शापित है; फलस्वरूप यह विद्या कभी भी फलदात्री नहीं होती।

शापोद्धारविद्या वधूबीजोद्धारश्च

शापोद्धारमाह—
चन्द्रबीजं त्रपान्तत्रं बीजोपरि नियोजितम्। ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी ॥१॥
फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकाङ्क्षिणाम्। विषक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी ॥२॥
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते।

एकवीराकल्पेऽपि—
लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजं तथाच फट्। एषा पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ॥१॥

तथा च तत्रैव—
षोडशव्यञ्जनं वह्निवामाक्षिबिन्दुसंयुतम्। चन्द्रबीजसमारूढं वधूबीजमिदं स्मृतम् ॥१॥

वधूबीजं स्त्रींकारम्। तथा च विश्वसारे—'स्वबीजं च महेशानि वधूबीजं प्रकीर्तितम्' इति। नीलतन्त्रे—
तारायाः पञ्चवर्णेयं श्रीमन्नीलसरस्वती। सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ॥१॥ इति।

तारार्णवेऽपि—
अनुत्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरमतः परम्। पपञ्चमसमायुक्तं पञ्चरश्मि प्रकीर्तितम् ॥१॥
जीवनी मध्यमा पश्चादेकाक्षी तदनन्तरम्। उग्रदर्पं ततो दद्यादस्त्रं देवि प्रकाशितम् ॥२॥

एकाक्षी स्त्रीं, एतेन सर्वत्र शापोद्धारः। पञ्चाक्षरीमधिकृत्य तन्त्रे—
श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी। एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा ॥१॥
वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी। वितारैकजटा वैषा महामुक्तिकरी मता ॥२॥
तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती। कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥३॥
एषा क्रमगता प्राप्ता मतभेदादनेकधा।

एषा पञ्चाक्षरी। तदेवाह—'पञ्चाक्षरी एकजटा ताराभावे महेश्वरि। ताराद्या तु भवेद्देवि श्रीमन्नीलसरस्वती। उग्रतारा त्र्यक्षरी च महानीलसरस्वती' कुल्लुका च। अन्यासां विद्यानामेकटजैव देवता प्रकृतित्वात्।

शापोद्धार—सभी बीजों पर ऐं ह्रीं नियोजित करने से यह विद्या वधू के समान यशस्विनी होती है। सभी विद्याओं का फल देने वाली, जय चाहने वालों को जय देने वाली, विष का नाश करने वाली, अमृतत्व प्रदान करने वाली यह विद्या है। इस मन्त्र के ज्ञानमात्र से ही साधक संसार में विजयी होता है। एकवीराकल्प के अनुसार पञ्चाक्षर मन्त्र इस प्रकार है— ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्। 'स्त्रीं' वधूबीज है। नीलतन्त्र में कहा गया है कि तारा की यह पञ्चाक्षरी विद्या नीलसरस्वती है। यह

सर्वभाषामयी है, पूर्णत: शुद्ध है और सभी आम्नायों द्वारा नमस्कृत है। तारार्णव में कहा गया है कि 'ॐ ह्रीं स्त्री हूं फट्' यह पञ्चाक्षरी मन्त्र है। पञ्चाक्षरी के सम्बन्ध में तन्त्र में कहा गया है कि—

१. श्रीं ह्रीं श्री हूं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या सर्वतोमुखी है।

२. ह्रीं ह्रीं श्रीं हूं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या सकलेष्टदा है।

३. ऐं ह्रीं श्रीं हूं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या वागीशत्व-प्रदायिनी है।

४. बिना प्रणव के एकजटा विद्या महान् मुक्ति देने वाली है।

५. अस्त्ररहित तारा त्रिवर्णा नीलसरस्वती है; यही सभी तन्त्रों में गुप्त रूप से स्थित कुल्लुका है। ये सब क्रम में प्राप्त होते हैं और इनके अनेक भेद होते हैं।

एतासां विद्यानां साधनस्थानम्

एतासां साधनस्थानं नीलतन्त्रे—

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे। (शवस्योपरि मुण्डे वा जले वाकण्ठपूरिते ॥१॥
संग्रामभूमौ योनौ वा स्थले वा विजने वने।) तत्रस्थः साधयेद्योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥२॥ इति।

तत्रैव—

पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते। तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा ॥१॥ इति।

अन्यत्रापि—

उज्जटे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे। देवागारे च शून्ये च निर्जनैकान्तवेश्मनि ॥१॥ इति।

वीरतन्त्रेऽपि—

शून्यागारे श्मशाने यदि जपति जडस्त्वेकलिङ्गे तडागे
गङ्गागर्भे गिरौ वा शुचिविमलमतिः सर्वदा भक्तियुक्तः।
विद्यां श्रीनीलवाण्या भुवनजनपतिः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता
देहान्ते योगिमुख्यः परमसुखपदं ब्रह्म निर्वाणमेति ॥१॥ इति।

ताराचमनं भैरवतन्त्रे—

ताराभेदैस्त्रिभिः पीत्वा मायया क्षालयेत्करम्। स्त्रीं हूं ओष्ठौ द्विरुन्मृज्य फट्कारैः क्षालयेत्करम् ॥१॥
आस्यनासेक्षणश्रोत्रनाभिवक्षःशिरोभुजान् । वैरोचनादिभिः स्पृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
आचम्य भैरवो भूत्वा वत्सरात्तां प्रपश्यति।

ताराभेदैरिति—उग्रतारा एकजटा नीलसरस्वती च। वैरोचनादयस्तु—वैरोचनशंखपाण्डुरपद्मनाभ(असिताङ्ग)मामकनामकतारकपाण्डुरपद्मान्तकयमान्तकविघ्नान्तकनरकान्तकाः सचतुर्थीप्रणवादिनमोन्तकाः इति।

साधन स्थान—नीलतन्त्र में कहा गया है कि तारामन्त्र की साधना एकलिङ्ग के समीप, श्मशान में, शून्य गृह में, चौराहे पर, शव के ऊपर, शव के मुण्ड पर या कण्ठ तक जल में की जाती है। युद्धभूमि में, योनि में या सूने जंगल में बैठकर योगी को त्रिभुवनेश्वरी विद्या की साधना करनी चाहिये।

नीलतन्त्र में ही यह भी कहा गया है कि पाँच कोश के अन्दर दूसरा लिङ्ग न दिखाई देने पर द्रष्टव्य एकमात्र लिङ्ग ही एकलिंग होता है। उसके समीप साधना करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। अन्यत्र भी कहा गया है कि है—उज्जट स्थान में, पर्वत पर, निर्जन स्थान में, चौराहे पर, मन्दिर में या शून्य स्थान में अथवा निर्जन एकान्त घर में साधना करनी चाहिये। वीरतन्त्र में भी कहा गया है कि शून्यागार, श्मशान, एकलिङ्ग, तालाब, गंगा के बीच में, पहाड़ पर पवित्रतापूर्वक एकाग्र मन से सदा भक्तियुक्त होकर नीलसरस्वती का जो जप करता है, उसे लोकों एवं लोगों का स्वामित्व एवं समस्त शास्त्रों का अर्थ-ज्ञातृत्व प्राप्त होता है एवं देहान्त होने पर निर्वाण का सुख प्राप्त होता है।

तारा का आचमन—भैरव तन्त्र में कहा गया है कि तारा के तीन भेदों से जलपान करे। ह्रीं से हाथ धोये। स्त्रीं हूं से दोनों ओठों का मार्जन करे। फट् से हाथ धोये। मुख, नाक, आँख, कान, नाभि, वक्ष, शिर, हाथ, गला के स्पर्श करने से साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है और आचमन करके वह साक्षात् भैरवस्वरूप हो जाता है एवं एक वर्ष में तारा का दर्शन प्राप्त करता है। तारा के भेद उग्रतारा, एकजटा एवं नीलसरस्वती हैं।

तत्पूजाप्रयोग:

अथ पूजा—प्रात:कृत्यादिस्नानान्तं कर्म विधाय यागस्थानं गत्वा 'ॐवज्रोदके हुंफट् स्वाहा' इति मन्त्रेण जलमधिष्ठाय एतज्जलं पूजार्थं विधाय तत्र किञ्चिदन्यजले निक्षिप्य तेनैव वारिणा 'ॐ ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुंफट् स्वाहा' इति हस्तपादौ प्रक्षाल्य कुलकुशान् सुवर्णरजतरूपान् यथासंख्येन हस्ते दत्त्वा 'ॐह्रींस्वाहा' इत्याचम्य पीठं विचिन्तयेत्। कुलकुशास्तु—

सुवर्णं रजतं चैव जपपूजादिकर्मसु। कुशकार्यकरं प्रोक्तं न तु वन्या: कुशा: कुशा: ॥३॥ इति।

तत:—

जलशङ्खं करे कृत्वा तिष्ठेद् द्वारि महेश्वरि। क्षालयेद्धस्तपादौ च वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ॥१॥ इति।

मत्स्यसूक्ते—'तारं वज्रोदके हुंफट् स्वाहा जलमधिष्ठितम्।' तथाच—

(तारं) लज्जा विशुद्धान्ते सर्वपापानि चैव हि। शमयान्ते त्वशेषान्ते विकल्पपदमुच्चरेत् ॥१॥
अपनयान्ते वर्म फट् स्वाहा पादविशुद्धये। ॐ माया वह्निजाया च तथा चाचमने मनु: ॥२॥ इति।

तथा—

श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्। तन्मूले मणिपीठं च नानामणिविभूषितम् ॥१॥
नानालङ्कारभूषाढ्यं मुनिदेवैश्च शोभितम्। शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्वितम् ॥२॥
चतुर्दिक्षु शिवामुण्डचिताङ्गारास्थिभूषितम्। तन्मध्ये भावयेद्देवीं यथोक्तध्यानयोगत: ॥३॥

इति ध्यात्वा 'ॐमणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे हुंफट् स्वाहा' इति शिखाबन्धनं कुर्यात। सामान्यार्घ्यं विधाय, फट् इति त्रिवारं संप्रोक्ष्य गां गणेशाय नम:। एवं वां वटुकाय०, क्षां क्षेत्रपालाय०, यां योगिनीभ्यो नम:। इति द्वारं संपूज्य वास्तुपुरुषं पूजयेत्। शिखाबन्धनानन्तरं मत्स्यसूक्ते सामान्यार्घ्यमाह—

फडित्युक्त्वा हृदापूर्य तारेण दश मन्त्रयेत्। फटा द्वारं प्रोक्षयेच्च बीजेनाभ्यर्चयेत्सुरान् ॥१॥
गांवांक्षांयां च बीजानि तान्युक्तानि महेश्वरि। गणेशं वटुकं क्षेत्रपालं च योगिनीर्यजेत् ॥२॥
ङेन्तानेतांश्च सर्वान्ते हृन्मन्त्रं विलिखेत्तत:। पूजयित्वा ततो गेहं प्रविशेद् गृहमध्यत: ॥३॥
ब्रह्माणं वास्तुदेवं च तारादिहृदयान्तकम्। इति।

ॐरक्षरक्षहूंफट् स्वाहा इति जलसेकाद् भूमिं शोधयेत्। 'ॐसर्वविघ्नानुत्सारय हूंफट् स्वाहा' इति नाराचमुद्रया अक्षतप्रक्षेपेण वामपार्ष्णिघातत्रयेण (भौमानूर्ध्वतालत्रयेणान्तरिक्षगान् दिव्यदृष्ट्या दिव्यानिति) त्रिविधविघ्नान् दिव्यान्तरिक्षभौमानुत्सारयेत्। 'ॐपवित्रवज्रभूमे हुंफट् स्वाहा' इति भूमिमभिमन्त्र्य तत्र कोमलकम्बलविष्टराद्यासनानि यथाप्राप्तान्यास्तीर्य 'ॐ आ: सुरेखे वज्ररेखे हुंफट् स्वाहा' इति रक्तचन्दनगन्धपुष्पादिना समभ्यर्च्य स्वस्तिकादिक्रमेण तत्रोपविशेत्। तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

मृदुकोमलमासीनो ह्यन्येषु कम्बलेषु च। विष्टरेषु समासीन: साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥१॥
(संग्रामे पतितं बालं संपादितमचूडकम्। षण्मासनि:सृतं प्राप्य चितायां वा तदन्तिके ॥२॥) इति।

तन्त्रचूडामणौ—

**(तत्र मृद्वासनं देवीपीठमन्त्रेण पूजयेत् । तारं प्रेंकामपीठाय हृदयान्तोऽयमीरितः ॥१॥
तत्र बद्धासनं वीरः स्वात्मानं शोधयेत्ततः ।) इति।**

पूजा—प्रातःकृत्य से आरम्भ कर स्नान तक करने के बाद पूजास्थान में जाकर 'ॐ' वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से जल लेकर इस जल को पूजा के लिये रखे। उसमें से थोड़ा जल दूसरे जल में मिलाकर उसी जल से 'ॐ ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' कहकर हाथ-पैर धोये। सोना-चाँदीरूपा कुलकुश यथासंख्य हाथों में लेकर 'ॐ ह्रीं स्वाहा' कहकर आचमन करके पीठ का चिन्तन करे।

कुलकुश—सोना और चाँदी जप-पूजा आदि कर्म में कुश का काम करते हैं; न कि जंगली कुश। इसीलिये इन्हें कुलकुश कहते हैं।

तदनन्तर जलपूर्ण शंख को हाथों में लेकर द्वार पर बैठकर यथाविधि हाथ-पैर का प्रक्षालन करे। 'ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' पादविशुद्धि के लिये कहे। 'ॐ ह्रीं स्वाहा' से आचमन करे। वहाँ पर श्मशान का चिन्तन करे। उसमें कल्पद्रुम का स्मरण करे। उसकी जड़ में नाना मणियों से सुशोभित मणिपीठ का चिन्तन करे एवं ऐसी कल्पना करे कि वह मणिपीठ नाना अलंकार-भूषा से अलंकृत एवं मुनि-देवताओं से शोभित है। वहाँ मांस-अस्थि ली हुई गीदड़ियाँ प्रसन्नता से विचर रही हैं। चारो दिशायें गीदड़ियों के मुण्ड, चिता के अंगार एवं हड्डी से सुशोभित हैं। उसके बीच में यथोक्त ध्यान योग से देवी के स्थित होने की भावना करे।

इस प्रकार ध्यान करके ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से शिखा-बन्धन करे। सामान्यार्घ्य स्थापित करके 'फट्' से तीन बार प्रोक्षण करे। गां गणेशाय नमः, वां वटुकाय नमः, क्षां क्षेत्रपालाय नमः, यां योगिनीभ्यो नमः से द्वारो का पूजन करके वास्तुपुरुष की पूजा करे। शिखा-बन्धन के बाद मत्स्य सूक्त में सामान्यार्घ्य का विधान इस प्रकार बताया गया है—'फट्' मन्त्र से पात्र में जल भरे, दश 'ॐ' के जप से उसे मन्त्रित करे। फट् से द्वार का प्रोक्षण करे। बीज से देवताओं की पूजा करे। गां वां क्षां यां बीजों से गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल और योगिनियों की पूजा करे। सभी नामों को चतुर्थ्यन्त करके नमः लगावे। पूजन करके यागमण्डप में जाकर मध्य में ब्रह्मा और वास्तुदेवता का पूजन उनके नाम के पहले ॐ और बाद में नमः लगाकर करे।

'ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा' से जल छींटकर भूमि का शोधन करे। 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हूं फट् स्वाहा' मन्त्र कहकर नाराच मुद्रा से अक्षत फेंककर बाँयीं ऐड़ी से तीन घात करके भूमि में स्थित विघ्नों का, तीन ताली बजाकर अन्तरिक्ष के विघ्नों का और दिव्य दृष्टि से दिव्य विघ्नों का—इस प्रकार तीनों प्रकार के विघ्नों का उत्सारण करे। 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' से भूमि को मन्त्रित करे। उस पर कोमल कम्बल-कुश आदि का आसन बिछाये। ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' से लाल चन्दन, गन्ध, पुष्पादि से उसकी अर्चन करके स्वस्तिकादि क्रम से आसन पर बैठे। मत्स्य सूक्त में कहा गया है कि मृदु कोमल आसन पर या कम्बल पर या कुशा पर बैठकर उत्तम सिद्धि की साधना करे। युद्ध में मृत बालक, जिसका चूड़ाकरण न हुआ हो, छः माह बाद निकालकर उसके समीप अथवा चिता के समीप बैठकर यह साधना करनी चाहिये।

तन्त्रचूड़ामणि में कहा गया है कि उस कोमल आसन की देवी के पीठमन्त्र से पूजा करे। यह मन्त्र है—ॐ प्रेंकामपीठाय नमः। तदनन्तर साधक वीरासन में बैठकर अपना शोधन करे।

कोमलासनलक्षणम्

कोमलादिलक्षणमाह श्रीक्रमे—

**(वीरासनाद्यभावे तु मृतासनं शृणु प्रिये)। पञ्चवर्षोत्तरं यावन्मृतं बालमचूडकम् ॥१॥
षण्मासाभ्यन्तरं चैव दशमासाच्च पूर्वकम्। गर्भच्युतमृतं बालं गर्भाष्टमात्पुरःसरम् ॥२॥
एतत्कोमलमित्याहुर्विष्टरेषु कुशेषु वा। इति।**

तथाच तन्त्रे—

अवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः पुमान्। यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं बिदुः ॥३॥

पञ्चमे वर्षे पञ्चमवर्षे पूर्णे।

कोमल आसन का लक्षण—श्रीक्रम में कहा गया है कि वीरासनादि के अभाव में मृतासन सुनो। पाँच वर्ष से अधिक उम्र के मृत बालक, जिसका चूड़ाकरण न हुआ हो, जिसकी उम्र पाँच वर्ष छः माह और दश माह के बीच में हो, उसका कोमलासन बनावे। गर्भच्युत मृत बालक, जिसकी मृत्यु आठवें माह में हुई हो, उससे कोमलासन बनावे। या कुश के विष्टर पर बैठे। जिसका चूड़ाकरण और उपनयन न हुआ हो, ऐसे पाँच वर्ष के मृत बालक के शव से कोमलासन बनावे।

आसनपरिमाणम्

आसनपरिमाणमाह—

एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरस्रे समन्ततः। विशुद्धे आसने कुर्यात्संस्कारं पूजनं बुधः ॥४॥

कृष्णसारव्याघ्रचर्माद्यपि आसनम्। 'कृष्णसारद्वीपिचर्म अचूडं कम्बलं तथा। पीतं च श्वेतवर्णं वा आसनाय प्रकल्पयेत्। प्रोतं च विस्तेरणाथ ह्यथवा कुण्डलीकृतम्।' इत्यादि। विष्टरेष्वित्यादि कुशपत्रशतकेन वटुकं निर्माय तत्र शवप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। तत्रैव—

ॐकारं आःसुरेखे च वज्ररेखे ततः परम्। हुंफट्स्वाहा च कुर्यात्तु मण्डलं च शवासने ॥५॥

वीरासनेनोपविश्य संपूज्यासनमेव च। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥६॥ इति।

'ॐमणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा' इति वस्त्राञ्चले रक्षाग्रन्थिं बन्धयेत्। 'ॐआःहुंफट् स्वाहा' इति व्यापकतया कायवाक्चित्तं शोधयेत्। 'ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक्संबन्धाय ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते पुष्पचयावकीर्णे हूं फट् स्वाहा' इति च पुष्पादि मन्त्रमयं कृत्वा स्वर्णादिपीठे गोरोचनकुङ्कुमादिलिप्ते 'ॐआः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेणाधोमुखत्रिकोणगर्भाष्टदलपद्मं वृत्तं चतुरस्रं चतुर्द्वारयुक्तं यन्त्रमुद्धरेत्। पद्मस्य पूर्वादिदलेषु मन्त्राक्षराणि लिखेत्। तथाच कुलचूडामणौ—

ततः कुलरसेनैव पीठं निर्माय यत्नतः। आः सुरेखे वज्ररेखे हुंफट् स्वाहा समन्वितम् ॥१॥

मन्त्रेणानेन संलिख्य वसुपत्रं मनोहरम्। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥२॥

कुलरसेन स्वयंभूरसेन। वर्णलिखनप्रकारमाह फेत्कारीये—

सयोनिं चन्दनेनाष्टपत्रं वृत्तं लिखेत्ततः। मृद्वासनं समासाद्य मायां पूर्वदले लिखेत् ॥१॥

मध्यबीजं द्वितीये फमुत्तरे पश्चिमे तु टम्। मध्ये बीजं लिखेत्तारं भूतशुद्धिमथाचरेत् ॥२॥

तदुक्तं गन्धर्वे—

षट्कोणान्तर्गतं पद्मं भूबिम्बद्वितयं पुनः। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं वा यत्नमालिखेत् ॥३॥

(तन्मध्ये विलिखेन्मन्त्री ताराप्रणवमेव च।)

बीजलेखनं तु पूर्ववत्।

आसन परिमाण—एक हाथ या दो हाथ लम्बा-चौड़ा चतुरस्र विशुद्ध आसन पर बैठकर पूजन संस्कार करना चाहिये।

काले हरिण या बाघ के चमड़े का आसन भी उपयुक्त होता है। काला मृग, हाथी का चमड़ा, अचूड़ बालक, कम्बल, पीला या उजला वस्त्र का आसन भी उपयुक्त होता है। एक सौ कुशों से वटुक बनाकर उस शव में प्राणप्रतिष्ठा करके उसका आसन बनावे।

'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' से मण्डल बनाकर शव रखकर वीरासन में बैठकर आसन की भी पूजा करे।

चतुरस्र चार द्वारयुक्त मण्डल लिखे। ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से वस्त्र के छोर पर रक्षाबन्धन करे। 'ॐ आ: हुं फट् स्वाहा' से व्यापक रूप से काया-वाणी और चित्त का शोधन करे। 'ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे, सुपुष्पे, पुष्पभूषिते, पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' से पुष्पादि को मन्त्रमय बनाकर। स्वर्णादि पीठ पर गोरोचन, कुङ्कुमादि के लेप से 'ॐ आ: सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से अधोमुख त्रिकोण के भीतर अष्टदल पद्म, वृत्त, चतुरस्र चार द्वारयुक्त यन्त्र बनावे। कमल के पूर्वादि दलों में मन्त्र का अक्षर लिखे। जैसा कि कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि तदनन्तर कुलरस अर्थात् स्वयम्भू रस से यत्नपूर्वक पीठ की रचना करे। 'ॐ आ: सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र का जप करते हुए यन्त्र बनावे। इसी मन्त्र से अष्टपत्र बनाकर उसके बाहर द्वारों से युक्त चतुरस्र मण्डल बनावे।

फेत्कारिणी तन्त्र के अनुसार यन्त्र में वर्णलेखन का क्रम इस प्रकार है—चन्दन से पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर अष्टपत्र और वृत्त बनावे। उस पर कोमलासन बिछाकर पूर्वदल में ह्रीं लिखे। मध्य बीज द्वितीय दल में लिखे। उत्तर में 'फं' लिखे। पश्चिम में 'टं' लिखे। मध्य में बीज और ॐ लिखे। तब भूतशुद्धि करे। गन्धर्व तन्त्र में कहा है कि षट्कोण में कमल बनावे। उसके बाहर दो भूपुर चतुरस्र चार द्वारों से युक्त बनावे। यह यन्त्र का रूप है। उसके मध्य में साधक तारा और प्रणव लिखे। इसमें बीजलेखन पूर्ववत् किया जाता है।

सारस्वतविशेषयन्त्रान्तरम्

नीलतन्त्रेऽपि सारस्वतार्थिनां तु विशेषेण यन्त्रान्तरमुक्तम्।
व्योमेन्द्वौरसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरं वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम्।
ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद्दिक्कोणसंशोभितं यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्॥
(बिन्दुस्त्रिकोणं च षडस्रयुक्तं वृत्तं तथाष्टारमलं त्रिवृत्तम्।
सभूपुरं चैकजटाविलासगेहं मया यन्त्रमिदं प्रदष्टिम्॥) इति।

(एवमेतेषामन्यतमं विरच्य पुरतो निधायार्चयेत्) पीठस्य पूर्वद्वारे ॐह्रींगां गणपतये नमः। पीठस्य दक्षिणे ॐह्रींवां वटुकाय नमः। पीठस्य पश्चिमोत्तरयोः ॐह्रींक्षां क्षेत्रपालाय नमः। ॐह्रींयां योगिनीभ्यो नमः। ततो मध्ये श्मशानाय नमः। कल्पवृक्षाय नमः। तन्मूले मणिपीठाय नमः। नानालंकारेभ्यो नमः, मुनिभ्यः०, देवेभ्यः०, बहुमांसास्थिमोदमानाभ्यः शिवाभ्यो नमः। चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गास्थिभ्यो नमः। इति सर्वत्र नमोऽन्तेन पूजयेत्। अष्टदलेषु अग्न्यादि ॐलक्ष्म्यै नमः। ॐसरस्वत्यै०। ॐरत्यै०। ॐप्रीत्यै०। ॐकीर्त्यै०। ॐकान्त्यै०। ॐतुष्ट्यै०। ॐपुष्ट्यै नमः। एवमुत्तरोत्तरमभ्यर्च्य तस्य मध्ये ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः। तदुक्तं सिद्धसारस्वते—

लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च। कीर्तिः कान्तिश्च तुष्टिश्च पुष्टिश्चेत्यष्ट शक्तयः॥१॥
देव्या नीलसरस्वत्याः पीठशक्तय ईरिताः। इति।

वीरतन्त्रे—'तन्मध्ये पूजयेद् देव्या वाहनं शवमेव च' इति, ततो भूतशुद्धिं कुर्यात्। यथा—स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हंस इति मन्त्रेण कुण्डलिनीं जीवात्मानं वैलोम्येन चतुर्विंशतितत्त्वानि सुषुम्णावर्त्मना परमतेजसि संयोज्य, कुम्भकेन ह्रींकारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यात्वा तदुद्भूताग्निना लिङ्गशरीरं संदह्य, स्त्रींकारं पीतवर्णं हृदि विचिन्त्य (तदुद्भूतवायुना तद्भस्म प्रोत्सारयेत्। ततो रेचकेन हूंकारं श्वेतवर्णं शिरसि विचिन्त्य) तदुद्भूतेनामृताम्बुना तदस्थि प्लावितं कृत्वा समस्तमपगतव्यथं विश्वमयं शरीरमाप्लावयेत्। तथाच श्रुतिः—

षट्त्रिंशत् तत्त्वानि शरीरमिति। तत आत्मानमपगतव्यथं निर्मलं देवताधिया ध्यायेत्। तस्मिन् विश्वव्यापक अमृतवारिणि आःकारे रक्तपङ्कजं ध्यात्वा तदुपरि टांकारात् श्वेतपङ्कजं विचिन्त्य, तदुपरि नीलसन्निभं हूंकारं ध्यात्वा तदुपरि हुंबीजभूषितां कर्त्रिकां ध्यायेत्। तदुपरि देवतां 'आंह्रींक्रों स्वाहा' इति एकादशवारं जपन् प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ध्यायेदिति। तदुक्तं फेत्कारीये—

मायां नाभौ रक्तवर्णां ध्यात्वा तज्जातवह्निना। शुष्कं कर्मार्थकं देहं दग्धं संचिन्तयेत्ततः ॥१॥
स्त्रींकारं हृदि पीताभं तदुद्भूतेन वायुना। भस्म प्रोत्सारितं कृत्वा ललाटे चिन्तयेत्ततः ॥२॥
कूर्चं तुषारवर्णाभं तदुद्भूतामृतेन च। तदस्थि प्लावितं कृत्वा तारात्मानं विचिन्तयेत् ॥३॥
सर्वव्यथा विनिर्मुक्तं निर्मलं देवतामयम्। भूतशुद्धिं विधायेत्थं शून्यं विश्वं विचिन्तयेत् ॥४॥
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम्। अन्तरिक्षे ततो ध्यायेदाःकाराद्रक्तपङ्कजम् ॥५॥
(भूयस्तस्योपरि ध्यायेट्टांकारात् श्वेतपङ्कजम्। तस्योपरि पुनर्ध्यायेद् हुंकारं नीलसंनिभम् ॥६॥
ततो हूंकारबीजात्तु कर्त्रिकां बीजभूषिताम्।) भूयस्तस्योपरि ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ॥७॥ इति।

ततो ध्यानम्—

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्। खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ॥८॥
नवयौवनसंपन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्। चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ॥९॥
खड्गकर्त्रिसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम्। कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ॥१०॥
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्। बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ॥११॥ इति।

नीलतन्त्र में भी विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से यन्त्रान्तर का वर्णन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि बिन्दु त्रिकोण के बाहर षट्कोण वृत्त अष्टपत्र तीन वृत्त भूपुर से बना यन्त्र एकजटा का विलासगृह है। इस प्रकार का यन्त्र बनाकर अपने सामने रखकर उसकी पूजा करे। पीठ के पूर्व द्वार पर ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः, पीठ के दक्षिण में ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः, पीठ के पश्चिम में ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, उत्तर में ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः, मध्य में श्मशानाय नमः से पूजा करे। कल्पवृक्षाय नमः एवं उसके मूल में मणिपीठाय नमः, नानालंकारेभ्यो नमः, मुनिभ्यो नमः, देवेभ्यो नमः एवं बहुमांस-अस्थिमोदमानाभ्यः शिवाभ्यो नमः से पूजा करे। चारो दिशाओं में 'शवमुण्डचितांगास्थिभ्यो नमः' से पूजा करे।

अष्टदल में अग्निकोण से आरम्भ करके ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ कीर्त्यै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ तुष्ट्यै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः से पूजा करे इस प्रकार उत्तरोत्तर पूजा के बाद उसके मध्य में ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः से पूजन करे। सिद्धसारस्वत में देवी नीलसरस्वती के पीठ की शक्तियों के नाम इस प्रकार बताये गये हैं—लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि और पुष्टि।

वीरतन्त्र में कहा है कि उसके मध्य में देवी के वाहन और शव की पूजा करे। तब भूतशुद्धि करे। जैसे—अपनी गोद में हाथों को उत्तान करके 'हंस' मन्त्र से कुण्डलिनी और आत्मा को विलोम क्रम से चौबीस तत्त्वों को सुषुम्णा मार्ग से परम तेज से जोड़े। कुम्भक से 'ह्रीं' का ध्यान नाभि में लाल वर्ण का करे। उससे उत्पन्न अग्नि में लिङ्गशरीर को भस्म करे। 'स्त्रीं' का चिन्तन हृदय में पीले वर्ण का करे। इससे उत्पन्न वायु से भस्म को उड़ा दे। तब रेचक से श्वेत वर्ण के हुंकार का चिन्तन शिर में करे। उससे उत्पन्न अमृत जल से अस्थि का प्लावन करे। तब विश्वमय शरीर को प्लावित करे। श्रुति भी कहती है कि छत्तीस तत्त्वों से यह शरीर निर्मित है। तब स्वयं को व्यथारहित निर्मल देवता बुद्धि से ध्यान करे। उसमें विश्व व्यापक अमृत जल आः कार में लाल कमल का ध्यान करे। उसके ऊपर टांकार से श्वेत कमल का ध्यान करे। उसके ऊपर नीलसदृश हूंकार का ध्यान करे। उसके ऊपर हुं बीजभूषित देवता का ध्यान करे। उसके ऊपर 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' के ग्यारह जप से देवता में प्राण-प्रतिष्ठा कर उसका ध्यान करे। जैसा कि फेत्कारी तन्त्र में कहा भी है—नाभि में 'ह्रीं' का ध्यान लाल वर्ण का करे। उससे उत्पन्न अग्नि से कर्मार्थक देह के दग्ध होने का चिन्तन करे। हृदय में 'स्त्री'कार का ध्यान पीले रंग का करे। उससे उत्पन्न वायु से भस्म को उड़ा दे। ललाट में बर्फ के रंग के 'हुं'कार का चिन्तन करे। उससे उत्पन्न अमृत से अस्थियों को प्लावित करे। आत्मा का चिन्तन ॐकार के रूप में करे। इससे सभी व्यथाओं से मुक्त साधक निर्मल देवतामय बन जाता है। इस प्रकार की भूतशुद्धि के बाद साधक विश्व का चिन्तन शून्य रूप में करे। निर्लेप निर्गुण शुद्ध आत्मा के देवतामय होने की भावना करे। तब अन्तरिक्ष में 'आः' का ध्यान लाल कमल के रूप में करे। उसके ऊपर 'टं'कार का ध्यान श्वेत कमल के रूप में

करे। फिर उसके ऊपर नीलसदृश हुंकार का ध्यान करे। तब हुंकार बीज से कर्त्रिका के भूषित होने की भावना करे। उसके ऊपर अपनी आत्मा को तारा रूप में देखे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्। खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ।।
नवयौवनसंपन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्। चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्।।
खड्गकर्त्रिसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् । कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ।।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्। बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम्।।

पञ्चमुद्राविभूषितामिति, ललाटे श्वेतास्थिपट्टिकाचतुष्टयान्वितकपालपञ्चकान्वितामित्यर्थः। श्रीशङ्कराचार्येणाप्युक्तं—'विचित्रास्थिमालां ललाटे करालां कपालं च पञ्चान्वितं धारयन्ती'मिति। ततः प्राणायामः, वामनासापुटेन मूलं चतुर्वारं जप्त्वा वायुं पूरयेत्। तदनु नासापुटौ धृत्वा षोडशवारजपेन वायुं कुम्भयेत्। तदनु दक्षिणनासापुटेन वाराष्टकावर्तनेन रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनापूर्य वामेन रेचयेत्। पुनर्वामेनापूर्य दक्षिणेन रेचयेत्, इति प्राणायामत्रयं भवति। तत ऋष्यादिन्यासः। तद्यथा—शिरसि अक्षोभ्यऋषये नमः। मुखे बृहतीछन्दसे नमः। हृदि श्रीमदेकजटादिदेवताभ्यो नमः। मूलाधारे हूंबीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः। शेषाण्यक्षराण्युच्चार्य सर्वाङ्गे स्त्रींकीलकाय नमः। तदुक्तं वीरतन्त्रे—

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहती छन्द ईरितम्। नीलासरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता ।।१।।
हूंबीजमस्त्रं शक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा। इति।

इस प्रकार ध्यान करने के बाद प्राणायाम करे। मूल मन्त्र के चार जप से पूरक वाम नासा से करे। दोनों नासापुटों को बन्द करके मूल मन्त्र के सोलह जप से कुम्भक करे। तब दाँयें नासापुट से रेचक मूल मन्त्र के आठ जप से करे। फिर दक्षिण नासा से पूरक करके वाम नासा से रेचक करे। फिर वाम से पूरक करके दक्षिण से रेचक करे। यह तीन प्राणायाम होता है। तब ऋष्यादि न्यास करे। जैसे—शिरसि अक्षोभ्यऋषये नमः। मुखे बृहतीछन्दसे नमः। हृदि श्रीमदेकजटादिदेवताभ्यो नमः। मूलाधारे हूं बीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः। शेष अक्षरों को कहकर सर्वांग में स्त्रीं कीलकाय नमः से न्यास करे। वीरतन्त्र में कहा भी है—इसके ऋषि अक्षोभ्य, छन्द बृहती एवं तीनों लोकों में गुप्त नीला सरस्वती देवता हैं। हूँ बीज हैं और फट् शक्ति है। यह देवी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रदान करने वाली है।

ततः कालीतन्त्रोक्तमातृकान्यासः। तथा चोक्तम्—'यथा काली तथा नीला तत्क्रमान्मातृका न्यसेत्'। तद्यथा—अंआंइंईंउंऊंऋंॠंऌंॡं नमो हृदि। एंऐंओंऔंअंअः कंखंगंघं नमो दक्षभुजे। ङंचंछंजंझंञंटंठंडंढं नमो वामभुजे। णंतंथंदंधंनंपंफंबंभं नमो दक्षिणजङ्घायां। मंयंरंलंवंशंषंसंहंक्षं नमो वामजङ्घायां। ततः कराङ्गन्यासौ—ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां नमः। ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां नमः। ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां नमः। ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः। ह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा। ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्। ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं। ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्। अङ्गुलिनिर्णय उक्तः। अयं तु नीलसरस्वतीपक्षे। तथाच तारामधिकृत्य सिद्धसारस्वते—

अखिलवाग्रूपिणीं प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत्। अखण्डवाग्रूपिणीति शिरसे वह्निवल्लभा ।।१।।
ब्रह्मवाग्रूपिणीत्युक्त्वा शिखायै वषडित्यथ। विष्णुवाग्रूपिणीं प्रोच्य कवचाय हुमादिशेत् ।।२।।
रुद्रवाग्रूपिणीत्युक्त्वा नेत्राभ्यां वौषडित्यपि। सर्ववाग्रूपिणीमुक्त्वा अस्त्राय फडिति स्मरेत् ।।३।।
षड्दीर्घमायया चैव बीजान्ते तानि योजयेत्। इति।

ह्रां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुं। ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु न्यसेत्।

काली तन्त्रोक्त मातृका न्यास में कहा गया है कि जैसी काली हैं, वैसी ही नीला हैं; इसलिये क्रमश: मातृका न्यास करना चाहिये; जैसे—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमो हृदि। एं ऐं ओं औं अं अ: कं खं गं घं नमो दक्षभुजे। ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वामभुजे। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षिणजंघायाम्। मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमो वामजंघायां। तब करांग न्यास करे।

करन्यास—ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अंगुष्ठाभ्यां नम:। ह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां नम:। ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां नम: ह्रैं। विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां नम:। ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां नम:। ह्र: सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नम:।

हृदयादि न्यास—ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नम:। ह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा। ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्। ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं। ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्र: सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्। यह नील सरस्वती के पक्ष में है। सिद्धसारस्वत के अनुसार तारा का न्यास इस प्रकार किया जाता है—अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नम:। अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा। ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्। विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुम्। रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्राभ्यां वौषट्। सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्। इनके पहले षडदीर्घ ह्रीं अर्थात् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्र: जोड़े। जैसे—ह्रां एकजटायै अंगुष्ठाभ्यां नम:। ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुं। ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्र: पिंगोग्रैकजटे करपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार हृदयादि में न्यास करे।

तथाच एकजटामधिकृत्य नीलतन्त्रे—

बीजान्ते एकजटायै हृदयं परिकीर्तितम्। तारिण्यै शिरसे तद्वद्वज्रोदके शिखा तत: ॥१॥
उग्रजटे च कवचं महाप्रतिसरे तथा। पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रास्त्रे परिकीर्तयेत् ॥२॥
षड्दीर्घया मायया च बीजान्ते नाम वाचयेत्।

अत्र वर्णन्यासपीठन्यासौ न लिखितौ, अनुक्तत्वात्। तथाच फेत्कारीये—'अत्रोक्तमाचरेत् सम्यग् नान्योक्तमाचरेद् बुध:'। कालीषोढा वा कर्तव्या। ततो मूलमुच्चार्य शिर आदिपादपर्यन्तं पादादिशिरोन्तं हृदयादिमुखपर्यन्तमिति व्यापकत्रयं न्यसेत्। ततोऽर्घ्यस्थापनं तद्यथा—स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा, तत्र साधारं पात्रं निधाय मूलविद्यया जलादिनापूर्य रक्तचन्दनबिल्वपत्राणि अक्षतादीन्निक्षिप्य, अर्घ्ययाग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च—ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नम:, इत्यादि। ह्रां एकजटायै हृदयाय नम:, इत्यादि वा षडङ्गानि विन्यस्य, अर्घ्यपात्रं मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य मूलमन्त्रं दशधा जपेत्। तथाच—'दशकृत्वो जपेद्विद्यां देवताभावसिद्धये' इति। ततोऽस्त्रेण संरक्ष्य धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तेजोमयं तज्जलं विभाव्य किञ्चित् प्रोक्षणीयपात्रे निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पूजामारभेत्। भूतशुद्ध्यनन्तरं वा। तथाच फेत्कारीये—

भूतशुद्धिं विधायेत्थमर्घ्यादिस्थापनं चरेत्। प्राणायामं तत: कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥१॥ इति।

तत: पुष्पाञ्जलिं विरच्य आत्माभेदेन देवीं ध्यायेत्। तद्यथा—

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परधरा हूंकारबीजोद्भवा।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥

एवं विभाव्य, करकलितदूर्वाक्षतरक्तचन्दन(वज्रपुष्पादि)मिलितदिनकरकिरणारुणकुसुमाञ्जलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयान्मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यमयीं षट्चक्रभेदेन शिर:स्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राम्य तदमृतलोलीभूतां चैतन्यानन्दमयीं तां प्रवहन्नासापुटादानीय मूलेन कल्पितमूर्तावावाहयेत्।

एकजटा के सम्बन्ध में नीलतन्त्र में कहा है कि—स्त्रीं एकजटायै हृदये। तारिण्यै शिरसे। वज्रोदके शिखायां। उग्रजटे

कवचे। महाप्रतिसरे नेत्रे। पिंगोग्रैकजटे अस्त्राय फट्—इस प्रकार न्यास करे। इन सबके पहले षड्दीर्घ ह्रीं लगाये।

अकथित होने के कारण यहाँ वर्ण न्यास-पीठ न्यास लिखित नहीं है। फेत्कारी तन्त्र में कहा गया है कि उक्त के अनुसार ही आचरण करे; अनुक्त का आचरण न करे। अथवा काली षोढ़ा न्यास करे। तब मूल मन्त्र कहकर शिर से लेकर पैरों तक हृदय से मुख तक तीन बार व्यापक न्यास करे। तब अर्घ्य इस प्रकार स्थापन करे—अपने वाम भाग में त्रिकोण वृत्त चतुरस्र मण्डल बनावे। उस पर आधार रखकर पात्र रखे। मूल मन्त्र से उसमें जल, रक्त चन्दन, बेलपत्र, अक्षत डाले। अर्घ्य के अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्य तथा दिशाओं में ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नम: अथवा ह्रां एकजटायै हृदयाय नम: इत्यादि से षडङ्ग न्यास करे। अर्घ्यपात्र को मत्स्य मुद्रा से ढके। मूल मन्त्र दश बार जप करे। कहा भी है कि देवताभाव की सिद्धि के लिये विद्या का दश बार जप करना चाहिये। तब अस्त्र से उसका संरक्षण करे। धेनु-योनि मुद्रा दिखाकर उसे तेजोमय जल में से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में लेकर उस जल से अपना और पूजोपकरणों का अभ्युक्षण करके पूजा प्रारम्भ करें अथवा भूतशुद्धि के पश्चात् पूजा प्रारम्भ करे; जैसा कि फेत्कारी तन्त्र में कहा भी है—भूतशुद्धि करके अर्घ्य स्थापन करे। तत्पश्चात् प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। तब पुष्पाञ्जलि लेकर अपने और देवी में अभेद मानकर इस प्रकार ध्यान करे—

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परधरा हूंकारबीजोद्भवा।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्।।

तब हाथों में दूब, अक्षत, लाल चन्दन, वज्रपुष्पादि लेकर सूर्यकिरण के समान लाल कुसुमाञ्जलि में मातृका यन्त्र का ध्यान करे। शुद्ध ज्ञान-चैतन्यमयी, तेजोमयी मूल मन्त्र को हृदय से षट्चक्र-भेदन करते हुए शिर:स्थित सहस्रदल कमलकर्णिका में परम शिव से मिला दे। उनके मिलन से क्षरित अमृत अम्बुधि में विश्राम करके उस अमृत से लोलीभूत चैतन्यानन्दमयी को प्रवहन्नासापुट से लाकर मूल मन्त्र से कल्पित मूर्ति में आवाहित करे।

तन्त्रान्तरे—

देवीं सुषुम्णामार्गेण चानीय ब्रह्मरन्ध्रकम्। वहन्नासापुटे ध्यायेन्निर्यान्तीं स्वाञ्जलिस्थिते ।।१।।
पुष्पे आरोप्य तत्पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत्। देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।।२।।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव।

तत: पूर्वोक्तक्रमेणावाहनादिकं कृत्वा योन्यादिपञ्चमुद्रा: प्रदर्शयेत्। 'आवाहनादिमुद्राभि: पञ्चमुद्रा: प्रदर्शये'दिति भैरवीयात्। तास्तु मुद्राप्रकरणेऽनुसन्धेया:। 'आंह्रींक्रों स्वाहा' इति प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। तत: 'ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं हूंफट् स्वाहा' इत्यनेन षोडशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत्। 'ताराद्यमग्निजायान्तमुदीर्य यजनं चरेत्'। तार: कूर्चस्तदादि हूंफडित्यर्थ:। स च वह्निजायान्त इति। (ॐ भगवत्येकजटे ह्रींविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हूंफट् स्वाहा। पाद्यं नम:। तारिणि ह्रामिदमाचनीयं स्वधा। ह्रीं मणिधरि वज्रिणि) महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा। ह्रींकपालिनि मधुपर्कं स्वधा। श्रीमदेकटजे इदमाचमनीयं सुगन्धिजलं नम:। गन्धपुष्पयोर्विशेषस्त्वयम्— 'परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि।' श्रीमदेकजटे एष गन्धो नम:। 'तुरीयवनसंभूतं नानागुणमनोहरम्। आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि।' इयं वचोरचना विद्याधराचार्यसंमता। महातन्त्रे तारिणीनिर्णये— 'प्रणवं भगवत्येकजटे माया तत: परम्। (विशुद्धधर्मगात्रित: सर्वपापानि तत्परम्। शमय सर्वविकल्पानपनय हुंफट् शिर:। अयं पाद्यमनुर्देवि आचमनीयमनुं शृणु। तारं वज्रिणि मायेति तारो माया तत: परम्।) मणिधरि वज्रिणीति महाप्रतिसरे मनु:। माया कपालिनि मन्त्रो मधुपर्के सुरेश्वरि।' ततो योनिमुद्रां प्रदर्श्य, देवि आज्ञापय भगवत्या: परिवारान् पूजयामि, इति प्रार्थ्य आवरणान् पूजयेत्। तथा केसरेषु अग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च षडङ्गानि पूजयेत्। आग्नेय्यां ह्रां एकजटे हृदयाय नम:। ऐशान्यां ह्रीं तारिणी शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्यां हूं वज्रोदके शिखायै वषट्। वायव्यां ह्रैं कपालिनि कवचाय हुं। मध्ये ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ह्र: पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्।

नीलसरस्वतीपक्षे तु—ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः, इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत्। ततो देव्या मौलौ 'अक्षोभ्यवज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहा' इति संपूजयेत्। तदुक्तं भैरवीये—

वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हूंफट् स्वाहेति मन्त्रतः। एतन्मन्त्रे नाममात्रं भिन्नं चैवं न संशयः॥
अनेन मनुना सर्वान् परिवारान् समर्चयेत्।

सर्वत्र प्रणवः। तदुक्तं तत्रैव—प्रणवं वह्निजायान्तं वज्रपुष्पं विनिक्षिपेत्।'

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि देवी को सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर प्रवहमान नासापुट से अपनी अञ्जलि में स्थित पुष्पों में आने की भावना करे। उस फूल को प्रतिमादि पर रखे और इस प्रकार कहे—

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव।।

तदनन्तर पूर्वोक्त क्रम से आवाहनादि करके भैरवीवचन के अनुसार योनि आदि पाँच मुद्रा दिखाये। 'आं ह्रीं क्रों' से प्राणप्रतिष्ठा करके 'ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से षोडशोपचार या पञ्चोपचार से पूजा करे। जैसे—ॐ भगवति एकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा पाद्यं नमः। तारिणी ह्रां इदम् आचमनीयं स्वधा। ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा। ह्रीं कपालिनि मधुपर्कं स्वधा। श्रीमदेकजटे इदम् आचमनीयं सुगन्धिजलं नमः। गन्ध इस मन्त्र से निवेदित करे—परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि। श्रीमदेकजटे एष गन्धो नमः। इसी प्रकार इस मन्त्र से पुष्प निवेदित करे—तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम्। आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि। गन्ध-पुष्प निवेदन के ये मन्त्र विद्याधराचार्य-सम्मत हैं।

तारिणीनिर्णय के अनुसार ॐ भगवति एकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हूं फट् शिरः' यह पाद्य मन्त्र है। आचमनीय मन्त्र है—ॐ वज्रिणि ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे। ह्रीं कपालिनि' मधुपर्क का मन्त्र है। तब योनिमुद्रा दिखाये। 'देवि आज्ञापय, भगवत्याः परिवारान् पूजयामि' इस प्रकार प्रार्थना करके आज्ञा लेकर आवरणपूजा करे। केसर में आग्नेयादि कोणों, मध्य में एवं दिशाओं में षडङ्गों की पूजा करे।

अग्नि कोण में ह्रां एकजटे हृदयाय नमः। ईशान में ह्रीं तारिणि शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्य में ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्। वायव्य में ह्रैं कपालिनि कवचाय हुं। मध्य में ह्रौं प्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। चारों दिशाओं में ह्रः पिंगोग्रैकजटे अस्त्राय फट्। नीलसरस्वती के पक्ष में 'ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः' इत्यादि से षडङ्ग पूजा करे। तब देवी के शिर पर 'अक्षोभ्यवज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहा' से पुष्प अर्पण करे। इन मन्त्रों में नाममात्र की ही भिन्नता है। इन मन्त्रों से सभी परिवारों का अर्चन करना चाहिये।

तारागुरुपंक्तित्रयम्

ततः पीठस्योत्तरे वायव्यादीशानपर्यन्तं गुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। तथाच ताराचूडामणौ—

अथ तारागुरून् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान्। ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः ॥१॥
दिव्यौघाः सिद्धिदा देवि सिद्धौघाञ्छृणु तत्त्वतः। वशिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः ॥२॥
हरिनाथो मानवौघानथ वक्ष्यामि तद्गुरून्। तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी ॥३॥
सुखानन्दः परानन्दः पारिजातः कुलेश्वरः। विरूपाक्षः फेरवी च कथितं तारिणीकुलम् ॥४॥

अशक्तश्चेदक्षोभ्यमात्रं पूजयेत्। ततः पूर्वादिदलमूले—

महाकाल्यथ रुद्राणी भया भीमा तथैव च। घोरा च भ्रामरी चैव महारात्री च सप्तमी ॥५॥
अष्टमी भैरवी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत्।

ततः पूर्वादिचतुर्दलेषु वामावर्तेन, ह्रां वैरोचनशंखपाण्डुरपद्मनाभासिताङ्गान् पूजयेत्। ततः वह्न्यादिचतुर्दलेषु दक्षिणावर्तेन मामकनामकपाण्डुरतारकान् पूजयेत्। ततः पूर्वादिद्वारेषु पद्मान्तकयमान्तकविघ्नान्तकनरकान्तकान्

पूजयेत्। तथाच सिद्धसारस्वते—

तथा वैरोचनं शङ्खपाण्डुरं पद्मनाभकम्। असिताङ्गं यजेन्मन्त्री दिक्ष्विन्द्रादिचतुर्दले ॥१॥
नामकं मामकं चैव पाण्डुरं तारकं तथा। वह्न्यादिकचतुष्कोणे मन्त्रैः स्वैः स्वैः क्रमाद्यजेत् ॥२॥
द्वारपूर्वादितस्तद्वत् पद्मान्तकयमान्तकौ। विघ्नान्तकं समभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकम् ॥३॥ इति।

नीलतन्त्रे—'वामवर्तक्रमेणैव पूजयेदङ्गदेवता:' इति। ततो बलिं दद्यात्। 'पूजान्ते भोजनादौ च बलिं मन्त्रेण दापयेत्'। तत्र क्रम:—स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा पुष्पैस्तमभ्यर्च्य, तत्र विहितबलिद्रव्यभरितं साधारं पात्रं निधाय तद्वामाङ्गुष्ठानामाभ्यां स्पृष्ट्वा 'ॐह्रींएकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतबलिं गृह्ण २ गृह्णापय २ मम सर्वशान्तिं कुरु २ परविद्यामाकृष्य २ त्रुट २ छिन्धि २ सर्वजगद्वशमानय ह्रींस्वाहा' इति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात्।

तदनन्तर पीठ के उत्तर भाग में वायव्य से ईशान तक गुरुपंक्ति की पूजा करे। उनका कथन ताराचूड़ामणि में इस प्रकार किया गया है—ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ, वृषध्वज—ये चार दिव्यौघ सिद्धिप्रदायक हैं। वसिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, महेश्वर, हरिनाथ—ये सिद्धौघ हैं। मानवौघ गुरुओं में तारावती, भानुमती, जया विद्या मोहदरी, सुखानन्द, परानन्द, परिजात, कुलेश्वर, विरूपाक्ष और फेरवी हैं। यही तारिणीकुल है। ये सभी तारागुरु दृष्ट एवं अदृष्ट फलों को प्रदान करने वाले हैं। इन सभी के पूजन में अशक्त होने पर केवल अक्षोभ्य की पूजा करे। तदनन्तर पूर्वादि दलों में वामावर्त क्रम से महाकाली, रुद्राणी, भया, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्री, सप्तमी, अष्टमी भैरवी की पूजा करे। चतुर्दल में पूर्वादि वामावर्त क्रम से वैरोचन, शङ्ख, पाण्डुर, पद्मनाभ, असितांग की पूजा करे। तब अग्निकोणादि चार दलों में दक्षिणावर्त क्रम से मामक, नामक, पाण्डुर, तारक की पूजा करे। पूर्वादि द्वारों में पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक, नरकान्तक की पूजा करे। जैसा कि सिद्धसारस्वत में कहा गया है—पूर्वादि चार दलों में वैरोचन, शङ्ख, पाण्डुर, पद्मनाभ, असितांग की पूजा करे। अग्न्यादि चारों कोनों में उनके मन्त्रों से नामक, मामक, पाण्डुर और तारक की पूजा करे। पूर्वादि द्वारों में पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक और नरकान्तक की पूजा करे। नीलतन्त्र में कहा गया है कि वामावर्त क्रम से ही अंगदेवता का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर बलि प्रदान करे। पूजा के अन्त में भोजन के आरम्भ में मन्त्रपूर्वक बलि प्रदान करना चाहिये। उसका क्रम यह है कि अपने वामभाग में त्रिकोण वृत्त चतुरस्र मण्डल बनाकर पुष्प से उसकी पूजा करके बलिद्रव्य से पूर्ण विहित पात्र आधार पर रखे। उसे बाँयें अंगूठे और अनामा से स्पर्श करके ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीत बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा—इस मन्त्र को तीन बार पढ़कर बलि प्रदान करे।

बलिमन्त्र:

तथाच सिद्धसारस्वते बलिमन्त्र:—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य हृल्लेखां च ततः परम्। एकजटे पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् ॥१॥
यक्षाधिपदमाभाष्य पतये पदतो मया। उपनीतपदं चोक्त्वा बलिं गृह्णेति च द्विधा ॥२॥
गृह्णापय द्विधा प्रोक्त्वा मम सर्वपदं तथा। शान्तिं कुरु द्विधा चैव परविद्यामनन्तरम् ॥३॥
द्विधाकृष्येति च ब्रूयात्त्रुट छिन्धीति च द्विधा। सर्वजगत्पदं चोक्त्वा वशमानय इत्यनु ॥४॥
माया स्वाहेति मन्त्रोऽयं बल्यादौ विहितः स्मृतः। इति।

ततो रहस्यमालया निगदेनोपांशुना मानसेन वाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जपेत्। तथाच—

अष्टोत्तरशतं जाप्यं याव(द्विंश)ज्जीवतिसंख्यया। सहस्रं वा जपेद् देवि नित्यपूजाविधौ पुनः ॥१॥

अशक्तश्चेद्विंशत्यन्तं नूनं जपेत्। तथाच नीलतन्त्रे—'सहस्रं शतं विंशतिं वा जपेद्रहस्यमालया।' तत्र जपरहस्यं यथा—मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकेषु यथासंख्यं बीजत्रयव्याप्तिं तडित्कोटिभास्वरां परस्परानुस्यूतां विभाव्य सर्वतेजोमयं फट्कारं विश्रान्तिरूपं ध्यात्वा उच्चारयेत्।

बलि मन्त्र—सिद्धसारस्वत में बलिमन्त्र इस प्रकार बताया गया है—ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि सर्वजगत् वशमानय ह्रीं स्वाहा। यही मन्त्र बलि आदि के लिये कहा गया है।

बलिदान के पश्चात् रहस्यमाला से वैखरी, उपांशु या मानसिक जप एक हजार आठ या एक सौ आठ बार करे। जैसाकि कहा गया है कि नित्य पूजा में मनकों की संख्या के बराबर एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ जप करना चाहिये। अशक्त होने पर बीस जप अवश्य करना चाहिये। नीलतन्त्र एक हजार में कहा गया है कि एक सौ या बीस बार रहस्यमाला पर जप करे। जप के सन्दर्भ में कहा गया है कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूर में अमित तेजःस्वरूप तीनों बीजों को अनुस्यूत मानकर पूर्ण तेजः समन्वित 'फट्' को विश्रान्तिरूप समझते हुये मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

मन्त्रध्यान-विद्याहोमौ

तथाच नीलतन्त्रे—

मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि जपात्सार्वज्ञदायकम्। मन्त्रध्यानान्महेशानि शुद्ध्यते ब्रह्महा यतः ॥१॥
मूलरन्ध्रे तु हृल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम्। स्वाधिष्ठाने पीतवर्णं द्वितीयं तु विभावयेत् ॥२॥
नाभौ जीमूतसंकाशं कूर्चबीजं महाप्रभम्। अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत्कालाग्निसदृशप्रभम् ॥३॥
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वां विद्यां विभावयेत्। सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्विकाम् ॥४॥

इत्येवं यथाशक्ति जपित्वा समर्प्य नित्यहोमादिकं चरेत्। तदुक्तं सोमसिद्धान्ते—

नाजप्तः सिध्यते मन्त्रो नाहुतश्च फलप्रदः। नानिष्टो यच्छते कामान् तस्मात्त्रितयमाचरेत् ॥१॥
पूजया लभते पूजां जपात्सिद्धिर्न संशयः। विभूतिं चाग्निकार्येण सर्वसिद्धिं च विन्दति ॥२॥ इति।

नीलतन्त्रेऽपि—

विद्याहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वां सिद्धिं च विन्दति। सपर्यासर्वमापाद्य बलिपूर्वं चरेद्विधिम् ॥१॥
ततो जपं तर्पणं च चरेत् साधकसत्तमः। बलिवश्यादिकं चैव ब्राह्मणः समुपाचरेत् ॥२॥
विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नमस्तदा। मूलमन्त्रं समुच्चार्य कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥३॥
भूमौ वा संस्तरेदग्निं व्याहृतित्रितयेन तु। स्वाहान्तेन त्रिधा कृत्वा षडङ्गत्रितयं ततः ॥४॥
ततो देवीं समावाह्य मूलेन षोडशाहुतीः। हुत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा विसृजेद्बिन्दुमण्डले ॥५॥

ततो विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। तद् दशांशो होमः। तथाच—
एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षमनन्यधीः। रहस्यमालामादाय लक्षमेकं सदा जपेत् ॥६॥

रहस्यमाला यथा—
अकस्मात्रिहिता सिद्धिर्महाशङ्खाक्षमालया। पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा ॥७॥

महाशङ्खाभावेऽपि स्फाटिकी माला कर्तव्या। तथाच—'महाशङ्खेऽप्यशक्तश्चेत् स्फाटिकीमालया जपेत्'।

नीलतन्त्र में कहा गया है कि अब सर्वज्ञतादायक मन्त्रध्यान को कहता हूँ। हे महेशानि! इस मन्त्रध्यान से ब्रह्महत्या का पाप भी नष्ट हो जाता है। मूलाधार में करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त ह्रीं और स्वाधिष्ठान में पीले रंग के महाप्रभ त्रीं की भावना करे। नाभि के मणिपूर में जीमूत वर्ण के महाप्रभ कूर्चबीज हूं का ध्यान करे। कालाग्नि के समान प्रकाशित अस्त्र बीज फट् का ध्यान हृदय में करे। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक सम्पूर्ण विद्या की भावना करे। यह विद्या करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित और योगियों द्वारा पूर्व में प्रत्यक्ष की गई है। इसका यथाशक्ति जप कर जप-समर्पण करके नित्य हवनादि करे। जैसा कि सोमसिद्धान्त में कहा भी है—केवल जप से मन्त्र सिद्ध नहीं होता और न ही आहुति फलप्रद होती है। साथ ही अनिष्ट कामना भी पूरी नहीं होती। इसलिये जप, होम और इष्ट का ध्यान करना चाहिये। पवित्रता से पूजा और जप करने पर सिद्धि मिलती

है, हवन से वैभव और सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। नीलतन्त्र में भी कहा गया है कि विद्या होम को कहता हूँ, जिससे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। समस्त पूजन करने के पश्चात् विधिवत् बलि प्रदान करे। तदनन्तर जप एवं तर्पण करके ब्राह्मण विधिवत् बलिवैश्वदेवादि करे। विधिवत् अग्नि लाकर क्रव्याद आदि को नमस्कार करे। मूल मन्त्र का उच्चारण कर कुण्ड में स्थण्डिल में या भूमि पर अग्नि का संस्तरण तीन व्याहृतियों से स्वाहा के साथ तीन बार करके तीन बार षडङ्ग करे। तब देवी को आवाहित कर मूल मन्त्र से सोलह आहुति से हवन करके स्तुति-प्रणाम करे तब उसे चन्द्रमण्डल में विसर्जित करे। तत्पश्चात् विजर्सनान्त कर्म समाप्त करे। इसका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है और उसका दशांश हवन होता है। कहा भी है कि इस प्रकार की क्रिया के बाद हविष्याणी एकाग्र होकर एक लाख जप करे। रहस्यमाला लेकर एक लाख जप सदैव करे। रहस्यमाला के सम्बन्ध में कहा गया है कि महाशङ्ख की माला से अकस्मात् सिद्धि मिलती है। पचास मणियों की माला सर्वसिद्धिदा होती है। महाशङ्ख की माला के अभाव में स्फटिक की माला से जप करना चाहिये। कहा है कि महाशङ्ख की माला के अभाव में स्फटिक की माला से जप करना चाहिये।

कुल्लुकाज्ञानावश्यकता

तारामन्त्रे तु कुल्लुकाया ज्ञानमावश्यकम्। तथाच मत्स्यसूक्ते—

कुल्लुकां च न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः। पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत्॥७॥ इति।

मायातन्त्रे—

कुल्लुकां धारयेच्छीर्षे लिखित्वा भुर्जपत्रके। राजद्वारे सभायां च विजयी भवति ध्रुवम्॥१॥
एवमुक्तेन जप्त्वा तु तद्दशांशस्य होमतः। तद्दशांशं तर्पणं तद्दशांशं ब्राह्मभोजनम्॥२॥
तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते।

ततो गुरुदक्षिणामाचरेत्। तथाच सिद्धसारस्वते—

एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः। आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्पणम्॥१॥
कालागरुद्रवोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः। तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते॥२॥
जले चावाह्य विधिवत्पाद्याद्यैरुपचारकैः। संतर्प्य विधिवद्देवीं परिवारान् सकृत्सकृत्॥३॥ इति।

अभिषेको यथा—

देवीबुद्ध्यात्मनात्मानं संपूज्य साधकोत्तमः। तारिणीं सिञ्चयामीति जलं मूर्ध्नि विनिक्षिपेत्॥४॥ इति।

तारामन्त्र में कुल्लुका का ज्ञान आवश्यक है; जैसाकि मत्स्य सूक्त में कहा है—जो मनुष्य कुल्लुका को जाने बिना महामन्त्र जपता है, वह या तो मृत्यु को प्राप्त होता है अथवा पागल हो जाता है। मायातन्त्र में कहा भी है कि भोजपत्र पर लिखित कुल्लुका को शिर पर धारण करे। कुल्लुका को इस प्रकार धारण करके राजद्वार में अथवा सभा में निश्चित ही साधक विजयी होता है। इस उक्ति के अनुसार जप करने बाद दशांश हवन करे, दशांश तर्पण करे और दशांश ब्राह्मणभोजन कराये। दशांश तर्पण परादेवी का करे। तदनन्तर गुरु को दक्षिणा प्रदान करे। सिद्धसारस्वत में भी कहा है कि इस प्रकार जप के बाद दशांश हवन श्वेत कमल में घी लगाकर करे, हवन का दशांश तर्पण करे। काला अगर द्रव जल में मिलाकर विमल गन्धित जल से परादेवी का तर्पण इस प्रकार करे—जल में देवी और उनके परिवार का आवाहन करके पाद्यादि उपचारों से पूजन करके विधिवत् तर्पण करे। तर्पण के बाद इस प्रकार अभिषेक करे—अपने को देवी मानकर साधक आत्मपूजा करे और 'तारिणी सिंचयामि' कहकर जल को अपने शिर पर छींटकर मार्जन करे।

रहस्यपुरश्चरणम्

अथ रहस्यपुरश्चरणम्। यथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्॥१॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः कानने वने॥२॥

तत्र तद् दिवसे रात्रौ सहस्त्रं परिमाणतः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत्कल्पपादपः ॥३॥
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥४॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥५॥ इति।

मुण्डमालातन्त्रे—
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः ॥१॥
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम्। जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ॥२॥
अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत्। कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाष्टमी भवेत् ॥३॥
सहस्रसंख्ये जप्ते तु पुरश्चरणमिष्यते। कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे ॥४॥
अष्टमीं नवमीं रात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः। दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्यमांसादिभिर्युतम् ॥५॥
षट्सहस्त्रं जपेन्मन्त्रं नित्यं भक्तिपरायणः। चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ॥६॥
तावज्जप्त्वा महेशानि पुरश्चरणमिष्यते। केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ॥७॥
इत्यादिकं वीरसाधनाद्याचारादि प्रागुक्तं बोद्धव्यम्।

रहस्य पुरश्चरण—अथवा दूसरे प्रकार का पुरश्चरण कहता हूँ। मंगल या शनिवार को एक नरमुण्ड ले आये। पञ्चगव्य में चन्दनादि मिलाकर उसमें उसे डुबो दे। जंगल की भूमि में एक वित्ता गहरा खोदकर उसे गाड़ दे। मंगल और शनिवार की रात में अकेले उस पर बैठकर एक सहस्र जप निर्जन अन्धकार में करे। इससे साधक कल्पवृक्ष के समान हो जाता है।

अथवा दूसरे प्रकार का पुरश्चरण करे। दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरातंक जप करे तो जापक सभी सिद्धियों का स्वामी होता है।

मुण्डमाला तन्त्र में दूसरे प्रकार का पुरश्चरण इस प्रकार कहा गया है—शरत् काल में विशेष रूप से चतुर्थी से नवमी तक भक्तिसहित देवी की पूजा करके रात में अकेले निर्जन अन्धकार में एक हजार जप करे। अष्टमी-नवमी में उपवास करे। कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके अगली कृष्णाष्टमी तक तीस दिनों में प्रतिदिन एक हजार जप करे। इससे पुरश्चरण पूर्ण होता है। तदनन्तर कृष्ण चतुर्दशी से नवमी तक महोत्सव करे। तदनन्तर अष्टमी-नवमी में की रात्रि विशेष पूजा करे। दशमी में पारण मांस-मछली के साथ करे। नित्य भक्तिपरायण होकर चतुर्दशी से चतुर्दशी तक छः हजार जप करे तो पुरश्चरण पूर्ण होता है। केवल जप करने से ही मन्त्र सिद्ध होता है।

ताराभेदाः

अथ श्यामातारयोर्मन्त्राणां लघूद्धारक्रमस्तु तन्त्रान्तरे—
ताराभेदा अथोच्यन्ते शीघ्रसिद्धिप्रदायिनः। वह्निवामाक्षिबिन्द्वाढ्या कामिका भुवनेश्वरी ॥१॥
भुवनेशी वर्मरुद्धा फडन्ता प्रणवादिका। सप्ताक्षरी महाविद्या विरिञ्चिसमुपासिता ॥२॥

'ॐत्रींह्रींहुंह्रींहुं फट्' इति स्वरूपम्। तथा—
वाक्शक्तिः कमला कामो हंसोऽनुग्रहसर्गवान्। वर्मोग्रतारे वर्मास्त्रं विष्णवर्च्या द्वादशाक्षरी ॥३॥

'ऐंह्रींश्रींक्लींसौःहुं उग्रतारे हुं फट्' इति स्वरूपम्। तथा—
तारं वर्म शिवा कामो मनुसर्गयुतो भृगुः। वर्मास्त्रमेषा सप्तार्णा सिद्धिदा विष्णुसेविता ॥४॥
'ॐहुंह्रींक्लींसौः हुं फट्' इति स्वरूपम्।

एतयोः पञ्चमे बीजे सकारो हादिरन्तिमः। तदा विद्याद्वयं प्रोक्तं चतुर्मुखसमर्चितम् ॥५॥
'ऐंह्रींश्रींक्लींह्सौः हुं उग्रतारे हुं फट्। ॐहुंह्रींक्लींह्सौः हुं फट्' इति स्वरूपद्वयम्। 'तारो माया वर्ममाया

वर्मास्त्रं च रसाक्षरी।' 'ॐह्रींहुंह्रींहुं फट्' इति स्वरूपम्।

श्यामा एवं तारा के मन्त्रों के लघु उद्धार क्रम तन्त्रान्तर में इस प्रकार कहा गया है—शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले तारा के मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. ॐ त्रीं ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। यह सप्ताक्षरी मन्त्र ब्रह्मा द्वारा उपासित है।

२. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हुं उग्रतारे हुं फट्। यह द्वादशाक्षरी मन्त्र विष्णु द्वारा उपासित है।

३. ॐ हुं ह्रीं क्लीं सौः हुं फट्। यह विष्णु द्वारा उपासित सप्ताक्षरी मन्त्र है।

४. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः हु उग्रतारे हुं फट्।

५. ॐ हुं ह्रीं क्लीं ह्सौः हुं फट्। यह दोनों मन्त्र ब्रह्मा द्वारा उपासित हैं।

६. ॐ ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। यह षडक्षर मन्त्र है।

एकजटाविद्याभेदः

तथा—

हरिरग्नित्रिमूर्तीन्दुयुग्वर्मपुटिताद्रिजा । अस्त्रान्ता पञ्चवर्णेयं प्रोक्ता एकजटाह्वया ॥६॥

'त्रींहुंह्रींहुं फट्' इति स्वरूपम्। तथा—

रेफशान्तीन्दुयुग् णान्तो वर्मास्त्रं कामवाग्भवे । नारायणोपासितेयं पञ्चार्णा सर्वसिद्धिदा ॥७॥

'त्रींहुंफट्क्लींऐं' इति स्वरूपम्।

अमूषामष्टविद्यानामृषिः शक्तिर्वशिष्ठजः । गायत्रीतारके छन्दोदेवते परिकीर्तिते ॥८॥

न्यासं तु पूर्ववत् कृत्वा ध्यायेत्तारां हृदम्बुजे ।

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम् ।

कर्त्रीकपालाञ्चितपाणिपद्मां तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलर्द्ध्यै ॥९॥

जपपूजादिकं सर्वमासां पूर्ववदाचरेत् । मधुयुक्परमान्नेन होमाद् विद्यानिधिर्भवेत् ॥१०॥

रक्तां वशे स्वर्णवर्णां स्तम्भने मारणेऽसिताम् । उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां स्मरेदिमाम् ॥११॥

भूरिणा किमिहोक्तेन विद्या एताः प्रसाधिताः । पूरयन्त्यखिलं नृणां मनोरथमिह ध्रुवम् ॥१२॥ इति।

तथा—

मायाहृद्भगवत्येकजटे मम जलं स्थिरा । वह्न्यासनगता पुष्पं प्रतीच्छानलवल्लभा ॥१३॥

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रस्तारादि पूर्वसिद्धिदः ।

'ॐह्रींनमो भगवत्येकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इति स्वरूपम्।

ऋषिः पतञ्जलिश्छन्दो गायत्र्येकजटा पुनः । देवता दीर्घषट्काद्यमायया स्यात् षडङ्गकम् ॥२१॥

ध्यानार्चनप्रयोगांस्तु कुर्यात् पूर्वोक्तमन्त्रवत् । इति।

एकजटा मन्त्र के भेद इस प्रकार हैं—

१. त्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। यह पञ्चाक्षर मन्त्र है।

२. त्रीं हुं फट् क्लीं ऐं। यह पञ्चाक्षरी मन्त्र नारायण द्वारा उपासित है।

उपर्युक्त आठो विद्याओं के ऋषि वसिष्ठपुत्र शक्ति हैं, छन्द गायत्री है और देवता तारा हैं। पूर्ववत् न्यास करके हृदय कमल में तारा का इस प्रकार ध्यान करे—

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम्। कर्त्रीकपालाञ्चितपाणिपद्मां तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलर्द्ध्यै।।

इनके जप-पूजादि पूर्ववत् ही किये जाते हैं। मधुयुक्त परमान्न से हवन करने पर साधक विद्या का खजाना हो जाता

है। देवी का ध्यान वश्य कर्म में लाल वर्ण का, स्तम्भन में स्वर्ण वर्ण का, मारण में काले वर्ण का, उच्चाटन में धूम्र वर्ण का एवं शान्ति में श्वेत वर्ण का करना चाहिये। बहुत क्या कहा जाय, इस विद्या के साधन से निश्चित रूप से मनुष्य के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

ॐ ह्रीं नमो भगवति एकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा। यह बाईस अक्षरों का एकजटा का मन्त्र पूर्ण सिद्धि प्रदान करने वाला है।

इसके ऋषि पतञ्जलि, छन्द गायत्री और देवता एकजटा हैं। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही इसके ध्यान, पूजन एवं प्रयोग होते हैं।

नीलसरस्वतीविद्याभेदविधिः

तथा—

रमा माया हसौ व्यापिन्यारूढौ सर्गसंयुतौ। वर्मास्त्रं नीलभृगुरस्वत्यै ठद्वयमीरितः ॥२२॥
प्रणवाद्यो मनुः सर्वसिद्धिदो मनुवर्णकः।

'ॐश्रींह्रींह्सौः हुंफट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा' इति स्वरूपम्।

ऋष्याद्या ब्रह्म गायत्री तथा नीलसरस्वती। नेत्रचन्द्रेन्दुनेत्राङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पना ॥२३॥
मन्त्रोत्थितैरथो ध्यायेद् देवीं सर्वेष्टसिद्धिदाम्।
घण्टां शिरः शूलमसिं कराग्रैः संबिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम्।
प्रमर्षतीं पादतले पशुं तां भजे मुदा नीलसरस्वतीं त्वाम् ॥२४॥
जपपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदीरितम्। विशेषाज्जयदा वादे विद्येयं साधिता नृणाम् ॥२५॥ इति।

तथा—

माया सैवानन्तयुक्ता वर्महृत्ङेयुता पुनः। तारा महापदाद्या सा भृगुब्रह्मानलान्तिमाः ॥२६॥
दुस्तरं तारयद्वन्द्वं तरयुग्मं च ठद्वयम्। द्वात्रिंशदर्णा ताराद्या मुनिभिः पूर्ववन्मता ॥२७॥

'ॐह्रींह्रांहुं नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरं तारय २ तर २ स्वाहा' इति स्वरूपम्। तथा—

विद्याराज्ञीमथो वक्ष्ये सुरेन्द्रस्यापि दुर्लभाम्। लब्ध्वा यां मानवाः स्वेष्टान् साधयन्त्यर्चने रताः ॥१॥
वाङ्माया श्रीर्मनोजन्मा हंसोऽनुग्रहबिन्दुयुक्। कामः शक्तिश्च वाग्बीजं फान्तो लार्घीशबिन्दुयुक् ॥२॥
स्त्रीबीजं नीलतारे स्यात् सम्बुध्यन्ता सरस्वती। अत्री सरेफौ क्रमतः शेषवामाक्षिसंयुतौ ॥३॥
सानुस्वारौ कामबीजं फान्तो मांसाग्निबिन्दुकः। सर्गी भृगुर्वाग्हृल्लेखा रमा कामश्च सौद्वयम् ॥४॥
सर्गान्तं भुवनेशानी स्वाहा द्वात्रिंशदक्षरा। महाविद्या समाख्याता सेविता भोगमोक्षदा ॥५॥

'ऐंह्रींश्रींक्लींसौंक्लींह्रीऐंब्लूंस्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रांद्रींक्लींब्लूंसः ऐंह्रींश्रींक्लींसौः सौः ह्रीं स्वाहा' इति स्वरूपम्।

तथा—

ब्रह्मानुष्टुप् सरस्वत्योर्मुन्याद्या अङ्गकल्पना। पञ्चपञ्चाष्टपञ्चेषुयुगार्णैर्मन्त्रसंभवैः ॥६॥
नौकासनां सर्पविभूषणाढ्यां कर्त्रीं कपालं चषकं त्रिशूलम्।
करैर्दधानां नममुण्डमालां त्र्यक्षीं भजे नीलसरस्वतीं ताम् ॥७॥

१. ॐ श्रीं ह्रीं ह्सौः हुं फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा। चौदह अक्षरों का यह मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता नीलसरस्वती हैं। मन्त्र के २,१,१,२,६,२ अक्षरों से षडङ्ग न्यास किया जाता है। तदनन्तर समस्त मनोरथों को देने वाली देवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

घण्टां शिरः शूलमसिं कराग्रैः संबिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम्। प्रमर्षतीं पादतले पशुं तां भजे मुदा नीलसरस्वतीं त्वाम्।।

इसके जप-पूजादि सब कुछ पूर्ववत् ही होते हैं। इस विद्या की साधना से विशेष रूप से वाद-विवाद में जप प्राप्त होता है।

मुनियों द्वारा स्वीकृत तारा का बत्तीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरं तारय तारय तर तर स्वाहा।

इन्द्र को भी दुर्लभ विद्याराज्ञी विद्या है, जिसे प्राप्त करके उसके अर्चन में रत होकर मनुष्य अपने समस्त मनोरथ को पूर्ण करता है। विद्याराज्ञी विद्या इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौ: क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौ: सौ: ह्रीं स्वाहा। बत्तीस अक्षरों की इस महाविद्या के साधना से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् और देवता सरस्वती हैं। मन्त्र के ५, ५, ८, ५, २, २ वर्णों से षडङ्ग न्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

नौकासनां सर्पविभूषणाढ्यां कर्त्रीं कपालं चषकं त्रिशूलम्। करैर्दधानां नममुण्डमालां त्र्यक्षीं भजे नीलसरस्वतीं ताम्।।

चतुर्लक्षं जपेद्विद्यां किंशुकैर्मधुरान्वितै:। दशांशं जुहुयाद्वह्नौ श्रद्धापूर्वमतन्द्रित: ॥८॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना। आदौ त्रिकोणं षट्कोणमष्टषोडशपत्रके ॥९॥
द्वात्रिंशत्पत्रमब्जं स्याच्चतु:षष्टिदलं तत:। त्रिरेखाढ्यधरागेहं चतुरस्रमत: परम् ॥१०॥
एवं यन्त्रं समालिख्य बाह्यत: पूजनं चरेत्। चतुरस्राग्निकोणेषु विघ्नेशं परिपूजयेत् ॥११॥
वायुकोणे क्षेत्रपालमीशाने भैरवं तथा। नैर्ऋते योगिनीस्त्वर्च्या वामभागे गुरुं यजेत् ॥१२॥
भूगृहस्याद्यरेखायामणिमा लघिमा तथा। महिमा चेशिता पूज्या वशिता कामपूरणी ॥१३॥
गरिमा प्राप्तिरित्येता: पूज्या: पूर्वादिदिक्क्रमात्। धरागृहस्य रेखायां द्वितीयायां तु भैरवान् ॥१४॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्ड: क्रोधोन्मत्तकपालिन:। भीषणश्चाथ संहार एतेऽष्टौ भैरवा: स्मृता: ॥१५॥
भूमिगेहतृतीयायां रेखायां मातर: पुन:। ब्राह्मी माहेश्वरी चाथ कौमारी वैष्वणी तथा ॥१६॥
वाराहीन्द्राणिका चैव चामुण्डा सप्तमी स्मृता। महालक्ष्मीर्दलेष्वर्च्या: पूर्वादिषु यथाक्रमम् ॥१७॥
इत्थमाद्यावृत्तिं चेष्ट्वा योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्। चतु:षष्टिदले पद्मे शक्तीरर्चेच्च तावती: ॥१८॥
कुलेशी कुलनन्दा च वागीशी भैरवी तथा। उमा श्री: शान्तपा चण्डा धूम्रा काली कपालिनी ॥१९॥
महालक्ष्मीश्च कङ्काली रुद्रकाली सरस्वती। वाग्वादिनी च नकुली भद्रकाली शशिप्रभा ॥२०॥
प्रत्यङ्गिरा सिद्धलक्ष्मीरमृतेशी च चण्डिका। खेचरी भूचरी सिद्धा कामाख्या हिङ्गुला धरा ॥२१॥
जया च विजया चाथ जिता नित्यापराजिता। विलासिनी तथा घोरा चित्रा मुग्धा धनेश्वरी ॥२२॥
सोमेश्वरी महाचन्द्रा विद्या हंसी विनायका। वेदगर्भा तथा भीमा उग्रा वैद्या च सद्गति: ॥२३॥
उग्रेश्वरी चन्द्रगर्भा ज्योत्स्ना सत्या यशोवती। कुलिका कामिनी कामा ज्ञानवत्यथ डाकिनी ॥२४॥
राकिणी लाकिनी चाथ काकिनी शाकिनीत्यपि। हाकिनीति चतु:षष्टिशक्तय: सिद्धिदायिका: ॥२५॥
दर्शयेत् खेचरीमुद्रां द्वितीयावरणेऽर्चिते। द्वात्रिंशत्पत्रमध्ये तु पूज्या एतास्तु शक्तय: ॥२६॥
किराता योगिनी वीरा वेताला यक्षिणी हरा। ऊर्ध्वकेशी च मातङ्गी मोहिनी वंशवर्द्धिनी ॥२७॥
मालिनी ललिता दूती मनोज्ञा पद्मिनी धरा। बर्बरी छत्रहस्ता च रक्तनेत्री विचर्चिका ॥२८॥
मातृका दूरदर्शा च क्षेत्रेशी रङ्गिनी नदी। शान्तिर्दीप्ता वज्रहस्ता धूम्रा श्वेता सुमङ्गला ॥२९॥
इच्छा तृतीयावरणं बीजमुद्रां प्रदर्शयेत्। तत: षोडशपत्रेषु पूज्या: षोडशशक्तय: ॥३०॥
मुग्धा श्री: कुरुकुल्ला च त्रिपुरा तोतला क्रिया। रति: प्रीतिस्तथा बाला सुमुखी श्यामलाविला ॥३१॥
पिशाची च विदारी च शीतला वज्रयोगिनी। सर्वेश्वरीति संपूज्य सृणिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥३२॥
अष्टपत्रे स्वस्वमन्त्रैर्यजेदष्ट सरस्वती:। इति।

पुरश्चरण के लिये इस विद्या का जप चार लाख करे। श्रद्धापूर्वक निरालस होकर उसका दशांश हवन मधुरान्वित पलाश के फूलों से करे। विहित मार्ग से पूर्वोक्त पीठ पर पूजा करे। पूजन यन्त्र हेतु पहले त्रिकोण बनावे। उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टदल पद्म, उसके बाहर षोडशदल पद्म, उसके बाहर बत्तीस दल पद्म, उसके बाहर चौंसठ दल पद्म और उसके बाहर तीन भूपुर बनाये। इस प्रकार के यन्त्र को बनाकर सामने स्थापित करके पूजा करे।

चतुरस्र के अग्नि कोण में गणेश की पूजा करे। वायव्य में क्षेत्रपाल की, ईशान में भैरव की और नैर्ऋत्य में योगिनियों की पूजा करे। वाम भाग में गुरुओं की पूजा करे। बाहर से भूपुर की पहली रेखा में अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, कामपूरणी, गरिमा एवं प्राप्ति की पूजा पूर्वादि क्रम से करे। भूपुर की दूसरी रेखा में आठ भैरवों की पूजा करे; वे हैं—असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण, संहार। भूपुर की तृतीय रेखा में अष्टमातृकाओं की पूजा करे; वे हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी। इनकी पूजा भी पूर्वादि क्रम से **प्रथमावरण** में करे और योनिमुद्रा दिखावे।

चौंसठ दल में चौंसठ शक्तियों की पूजा करे; वे हैं—कुलेशी, कुलनन्दा, वागीशी, भैरवी, उमा, श्री, शान्ता, चण्डा, धूम्रा, काली, कपालिनी, महालक्ष्मी, कंकाली, रुद्रकाली, सरस्वती, वाग्वादिनी, नकुली, भद्रकाली, शशिप्रभा, प्रत्यंगिरा, सिद्धलक्ष्मी, अमृतेशी, चण्डिका, खेचरी, भूचरी, सिद्धा, कामाख्या, हिंगुला, धरा, जया, विजया, जिता, नित्या, अपराजिता, विलासिनी, घोरा, चित्रा, मुग्धा, धनेश्वरी, सोमेश्वरी, महाचन्द्रा, विद्या, हंसी, विनायका, वेदगर्भा, भीमा, उग्रा, वैद्या, सद्गति, उग्रेश्वरी, चन्द्रगर्भा, ज्योत्स्ना, सत्या, यशोवती, कुलिका, कामिनी, कामा, ज्ञानवती, डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी। ये चौंसठ शक्तियाँ सिद्धिदायिनी हैं। इन्हें खेचरी मुद्रा दिखाये। यह **द्वितीयावरण** का पूजन होता है।

बत्तीस पत्रों में पूज्या शक्तियों के नाम ये हैं—किराता, योगिनी, वीरा, वेताला, यक्षिणी, हरा, ऊर्ध्वकेशी, मातंगी, मोहिनी, वंशवर्द्धिनी, मालिनी, ललिता, दूती, मनोज्ञा, पद्मिनी, धरा, बर्बरी, छत्रहस्ता, रक्तनेत्री, विचर्चिका, मातृका, दूरदर्शाका, क्षेत्रेशी, रंगिनी, नदी, शान्ति, दीप्ता, वज्रहस्ता, धूम्रा, श्वेता, सुमंगला, इच्छा। **तृतीयावरण** में इनका पूजन कर बीजमुद्रा दिखावे।

चतुर्थ आवरण में षोडश दल में पूज्या सोलह शक्तियाँ ये हैं—मुग्धा, श्रीः, कुरुकुल्ला, त्रिपुरा, तोतला, क्रिया, रति, प्रीति, बाला, सुमुखी, श्यामलाविला, पिशाची, विदारी, शीतला, वज्रयोगिनी एवं सर्वेश्वरी। इन्हें पूजकर सृणिमुद्रा दिखावे। **पञ्चम आवरण** अष्टदल कमल में अपने-अपने मन्त्रों से आठ सरस्वती की पूजा करे।

वागीश्वरीमन्त्रः

ता यथा—

तारो हृल्लोहितः सत्यो वैकुण्ठानन्तसंयुतः। भृगुर्नेशब्दरूपे वाग् माया कामो वद द्वयम्॥१॥
वाग्वादिन्यग्निकान्तान्तो मन्त्रो वेदाक्षिवर्णवान्। अनेन मनुना पूर्वपत्रे वागीश्वरीं यजेत्॥२॥
'ॐनमः पद्मासनं शब्दरूपे ऐंह्रींक्लीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा' इति वागीश्वरीमन्त्रः॥१॥

वागीश्वरी मन्त्र—ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा'। इस मन्त्र से पूर्व पत्र में वागीश्वरी की पूजन करे।

चित्रेश्वरीमन्त्रः

वराहहंसचक्रेन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी। वदयुग्मं च चित्रेश्वरि वाग्बीजानलप्रिया॥
द्वादशार्णेन मनुना वह्नौ चित्रेश्वरीं यजेत्।
'हसकलह्रीं वदवद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा' इति चित्रेश्वरीमन्त्रः॥२॥

चित्रेश्वरी मन्त्र—अग्निकोण में चित्रेश्वरी की पूजा करे। इनका द्वादशाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—हसकलह्रीं वदवद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा।

कुलजामन्त्रः

तथा—

वाग्बीजं कुलजे वाक्च सरस्वत्यनलाङ्गना। एकादशार्णमनुना कुलजां दक्षिणे यजेत्॥४॥

'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा' इति कुलजामन्त्रः॥३॥

कुलजा मन्त्र—दक्षिण पत्र में कुलजा का पूजन उनके एकादश वर्ण वाले इस मन्त्र से करे—ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा।

कीर्तीश्वरीमन्त्रः

वाङ्माया श्रीर्वदद्वन्द्वं कीर्तीश्वरि वसुप्रिया। त्रयोदशार्णेन यजेन्नैर्ऋत्ये कीर्तिनायिकाम्॥५॥

'ऐंह्रींश्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहा' इति कीर्तीश्वरीमन्त्रः॥४॥

कीर्तीश्वरी मन्त्र—नैर्ऋत्य पत्र में कीर्ति नायिका की पूजा त्रयोदश वर्ण वाले इस मन्त्र से करे—ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तिश्वरि स्वाहा।

अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रः

वाङ्माया चान्तरिक्षान्ते सरस्वति च ठद्वयम्। रव्यर्णेन यजेत् प्रत्यगन्तरिक्षसरस्वतीम्॥६॥

'ऐंह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा' इति अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रः॥५॥

अन्तरिक्ष सरस्वती मन्त्र—पश्चिम पत्र में अन्तरिक्ष सरस्वती की पूजा उनके इस द्वादशाक्षरी मन्त्र से करे—ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा।

घटसरस्वतीमन्त्रः

वराहहंसचण्डीशजनार्दनकृशानुयुक्। सेन्दुर्योनिश्च नकुलिभृगुरर्धेन्दुयुग्मनुः॥७॥

अरुणाभृगुशिख्यग्निसंयुता शान्तिरिन्दुयुक्। वाङ्मायाश्रीषुबीजानि घ्नीं घटान्ते सरस्वति॥८॥

घटे वदतरद्वन्द्वं रुद्राज्ञया युता मम। अभिलाषं कुरुद्वन्द्वं प्रेयसी कृष्णवर्त्मनः॥९॥

गुणवेदार्णेन यजेद्वायौ घटसरस्वतीम्।

'हसखफ्रें हसौं हसफ्रीं ऐंह्रींश्रीं द्रांद्रींक्लींब्लूंसःघ्नीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा' इति घटसरस्वतीमन्त्रः॥६॥

घटसरस्वती मन्त्र—वायव्य पत्र में घटसरस्वती की पूजा उनके तैंतालीस अक्षरों वाले इस मन्त्र से करे—ह्स्ख्फ्रें ह्सौः ह्स्फ्रीं ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्नीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा।

नीलामन्त्रः

भूधरेन्द्रयुतोऽर्घीशो ब्रिन्द्वाढ्यो वें वदद्वयम्। त्रींहुंफट् नववर्णेन नीलामर्चेदुदग्दिशि॥१०॥

'ब्लूंवें वद वद त्रींहुंफट्' इति नीलामन्त्रः॥७॥

नीला मन्त्र—उत्तर दिशा के पत्र में नीला की पूजा इस नवाक्षरी मन्त्र से करे—ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फट्।

किणिसरस्वतीमन्त्रः

वाग्बीजमधराक्रान्तो नकुली बिन्दुमान् पुनः। शान्तिचन्द्राढ्यमाकाशं किणिद्वन्द्वं सदृग्जलम्॥११॥

कूर्मद्वन्द्वं भगाक्रान्तं नवार्णेनामुना यजेत्। मन्त्रेणेशानदिग्भागे किणिसंज्ञां सरस्वतीम्॥१२॥

'ऐंह्रौंह्रीं किणि किणि विच्चे' इति किणिसरस्वतीमन्त्रः॥८॥

किणि सरस्वती मन्त्र—ईशान कोण के पत्र में किणि सरस्वती की पूजा इस नवार्ण मन्त्र से करे—ऐं ह्रौं ह्रीं किणि किणि विच्चे। इस प्रकार पञ्चम आवरण की पूजा करके क्षोभमुद्रा दिखावे।

पञ्चमावृतिमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् । डाकिन्याद्याः पूर्वमुक्ताः षट्कोणे षट् प्रपूजयेत् ॥१३॥
दर्शयेद् द्राविणीमुद्रां षष्ठावरणपूजने । परा बाला भैरवीति पूजनीयास्त्रिकोणके ॥१४॥
सप्तमावृतिपूजायां मुद्रां कुर्याच्च कर्षिणीम् ।

षष्ठ आवरण—पूर्वोक्त डाकिनी आदि की पूजा षट्कोण में करे। षष्ठावरण की पूजा में द्राविणी मुद्रा दिखावे।

सप्तम आवरण—त्रिकोण में परा बाला भैरवी की पूजा करे। सप्तम आवरण की पूजा में आकर्षिणी मुद्रा दिखावे।

ताराबलिद्रव्यम्

इत्थं संपूज्य तारेशीं मनोऽभीष्टमवाप्नुयात् ॥१५॥
गणेशाय क्षेत्रपालयोगिन्यै भैरवाय च । तारायै चापि वितरेद्बलिं नित्यं चतुष्पथे ॥१६॥
मांसमाषान्नशाकाज्यपायसापूपकादिकम् । बलिद्रव्यं समाख्यातं तेनेष्टं सा प्रयच्छति ॥१७॥

तारेशी की इस प्रकार की पूजा से मनोरथ पूरा होता है। गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी, भैरव, तारा की बलि नित्य चौराहे पर देवे। मांस, माष, अन्न, शाक, आज्य, पायस, पूआ आदि बलि द्रव्य कहे गये हैं। इनकी बलि देने से अभीष्ट की सिद्धि होती हैं।

गुणभेदेन त्रिधा ध्यानम्

तस्या ध्यानं त्रिधा वच्मि सत्त्वादिगुणभेदतः । श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम् ॥१८॥
चर्तुवक्त्रामष्टभुजैर्दधानां कुण्डिकाम्बुजे । वराभये पाशशक्ती अक्षस्त्रक्पुष्पमालिके ॥१९॥
शब्दपाथोनिधौ ध्यायेत्सृष्टिध्यानं समीरितम् । रक्ताम्बरां रक्तसिंहासनस्थां हेमभूषिताम् ॥२०॥
एकवक्त्रां वेदसंख्यैर्भुजैः संबिभ्रतीं क्रमात् । अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम् ॥२१॥
श्वेतद्वीपस्थितां ध्यायेत्स्थितिध्यानं समीरितम् । कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणसंयुताम् ॥२२॥
नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम् । अभयं परशुं दर्वीं खड्गं पाशुपतं हलम् ॥२३॥
भिण्डिं शूलं च मुशलं कर्त्रीं शक्तिं त्रिशीर्षकम् । संहारास्त्रं वज्रपाशौ खट्वांगं गदया सह ॥२४॥
रक्ताम्भोधौ स्थितां ध्यायेत्संहारध्यानमीदृशम् । कर्मसु क्रूरसौम्येषु ध्यायेन्मन्त्री यथातथा ॥२५॥

सत्त्वादि गुणभेद से उसके तीन प्रकार के ध्यान निम्नवत् हैं—

१. सृष्टि ध्यान—शब्दपाथोनिधि में स्थित देवी का सृष्टिध्यान इस प्रकार किया जाता है—

श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम्। चर्तुवक्त्रामष्टभुजैर्दधानां कुण्डिकाम्बुजे।
वराभये पाशशक्ती अक्षस्त्रक्पुष्पमालिके।

२. स्थिति ध्यान—श्वेत द्वीपस्थित देवी का ध्यान स्थितिध्यान कहलाता है, जो इस प्रकार है—

रक्ताम्बरां रक्तसिंहासनस्थां हेमभूषिताम्। एकवक्त्रां वेदसंख्यैर्भुजैः संबिभ्रतीं क्रमात्।
अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम्।

३. संहार ध्यान—रक्त सागर में स्थित देवी का ध्यान संहारध्यान कहलाता है, जो इस प्रकार है—

कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणसंयुताम्। नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम्।।

क्रूर-सौम्य कर्मों के अनुसार साधक ध्यान करे।

एवं सिद्धो मनौ मन्त्री गिरा वाचस्पतिर्भवेत् । दूर्वोत्थया च लेखिन्या रोचनारसयुक्तया ॥२६॥
बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम् । संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात् ॥२७॥
अयुतमन्त्रसंजप्तां वचां बालककण्ठतः । बध्नीयात् पूर्वसंप्रोक्तं बलिं दद्याद्विधानतः ॥२८॥

द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कवित्वकृत्। ज्योतिष्मतीभवं तैलं कर्षमात्रं तु मन्त्रितम्।।२९।।
उपरागे जलस्थो यो जग्ध्वा वाचस्पतिर्भवेत्। चतुष्पथे श्मशाने वा हित्वा लज्जां भयं तथा।।३०।।
जपेच्छवं समारुह्य विद्यां तत्परमानसः। शृणोत्यसावमुं शब्दं निशीथे जपतत्परः।।३१।।
पारगो भव विद्यानां सर्वसिद्धिमवाप्नुहि।

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर साधक वाणी से वाचस्पति हो जाता है। दूब की लेखनी से गोरोचन की स्याही से नाल न कटे हुये बालक के जीभ पर मन्त्र लिखे। इससे बालक आठ वर्ष की उम्र में सभी शास्त्रों का जानकार हो जाता है। दश हजार मन्त्रजप से मन्त्रित वच बालक के गले में बाँधकर विधिपूर्वक पूर्वोक्त बलि प्रदान करे। बारह वर्ष की उम्र में उसे खाकर बालक कविता करने लगता है। सोलह ग्राम ज्योतिष्मती के तेल को मन्त्रित करके ग्रहणकाल में जल में खड़े होकर जो खाता है, वह वाचस्पति हो जाता है। चौराहे में या श्मशान में लज्जा-भय छोड़कर शव पर चढ़कर जो तत्पर मन से विद्या का जप करता है, वह रात में यह शब्द सुनता है—विद्याओं में पारंगत हो जाओ एवं सभी सिद्धियों को प्राप्त करो।

विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम्।।३२।।
उपवेश्य तयोर्मूर्ध्नि करौ दद्याज्जपेन्मनुम्। वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि।।३३।।
यः कौतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम्। विधाय वेदिकां रम्यां विजने कदलीवने।।३४।।
तत्रासीनो जपेद्विद्यामेकलक्षं विधानतः। दासीचालितदोलायामारूढां सुस्मिताननाम्।।३५।।
पुंनागचंपकाशोकधरां विपिनसंस्थिताम्। एवं ध्यायन् भगवतीं बलिं दद्याज्जपान्ततः।।३६।।
एवं कुर्वन्नरः सर्वमभीष्टं लभतेऽचिरात्। निर्वासाः विशिखः प्रेतभूमिस्थो यो जपेन्मनुम्।।३७।।
अयुतं कृष्णभूताहे स वाक्सिद्धिमवाप्नुयात्। विद्यां सौख्यं धनं पुष्टिमायुः कीर्तिबलं स्त्रियः।।३८।।
रूपं कामयमानेन तारा सेव्या निरन्तरम्। इति।

विद्वानों के कुल में उत्पन्न आठ वर्ष के दो लड़कों को बैठाकर उनके माथे पर हाथ रखकर मन्त्र जप करे। इससे दोनों बालक वेदान्त एवं न्याययुक्त वाणी बोलने लगते हैं। जो कौतुकी हों, वे इस विद्या का आश्चर्य अवश्य देखें। निर्जन केले के जंगल में सुन्दर वेदी बनावे। उस पर बैठकर विधान से एक लाख जप करे एवं इस प्रकार देवी का ध्यान करे—

दासीचालितदोलायामारूढां सुस्मिताननाम्। पुंनागचंपकाशोकधरां विपिनसंस्थिताम्।।

इस प्रकार का ध्यान करके देवी को जप के अन्त में बलि प्रदान करे। ऐसा करने से साधक अल्प काल में ही सभी अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। श्मशान में जो साधक निर्वस्त्र खुली शिखा होकर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी भौमवार में दश हजार जप करता है, उसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। विद्या, सौख्य, धन, पुष्टि, आयु, कीर्ति, बल, स्त्री, रूप की लालसा वाले को निरन्तर तारा की पूजा करनी चाहिये।

मन्त्रान्तरोद्धारः

एकवीराकल्पे—

लिखेत् खं कूर्चसंयुक्तं रौद्रं त्रैगुण्यमेव च। विधिविष्णुमहेशानां स्वशक्त्या क्रमयोगतः।।१।।
एषा मता महाविद्या सर्वसिद्धिप्रदा सदा।

अस्यार्थः, खं स्वरूपं, रौद्रं, प्रासादं, त्रैगुण्यं प्रणवं, विधिशक्तिर्वाग्भवं, विष्णुशक्तिः रमाबीजं, महेशशक्तिर्भुवनेश्वरीबीजम्। 'खंहूंहसौः ॐऐंश्रींह्रीं।' ध्यानार्चनप्रयोगश्च पूर्ववद्भवेत्। प्रणवं भुवनेश्वरीं ह्रां कूर्चबीजं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय प्रणवयुग्मं वह्निजाया। तथा च नीलतन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हल्लेखाबीजमुद्धरेत्। गगनं शेषसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम्।।१।।
कूर्चबीजं च हृदयं तारायै च समुद्धरेत्। सकलदुस्तरं तारय तारयेति तथा पुनः।।२।।

तारयुग्मं वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत् ॥३॥

'ॐह्रींहांहूं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐॐ स्वाहा।' अस्याः पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः। तदुक्तं तत्रैव—'चतुर्लक्षजपेनास्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति च।' मायातन्त्रे—

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नीला सरस्वती। कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृताः ॥१॥
उष्णवर्णगतो जीवो निगमस्वरसंयुतः। नादबिन्दुसमाक्रान्तस्तत्त्वरश्मिसमन्वितः ॥२॥
कपिलं वामकर्णस्थं नादाढ्यबिन्दुशेखरम्। पार्श्वान्त्यं च तथा त्रान्त्यं शवान्तं परिकीर्तितम् ॥३॥
मध्यादिमायाकूर्चान्तं द्वितीयं मन्त्रमुद्धृतम्। विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं कूर्चाद्यं च तुरीयकम् ॥४॥
मायादिकं च कूर्चान्तं पञ्चमं परिकीर्तितम्। मायामध्यगतं षष्ठं द्वितीयान्तं च सप्तमम् ॥५॥
अष्टमं कूर्चमध्यं स्यादेवं भेदाष्टकं भवेत्।

उष्णवर्णो रेफः। जीवो हकारः। निगमस्वरः ईकारः। तत्त्वरश्मिर्वधूबीजम्। कपिलो हकारः। शवान्तं फडन्तम्। तेन पञ्चाक्षर उद्धृतः। फडन्तश्चैका विद्या। तेन पञ्चाक्षरश्च प्रकृतिः। मध्यादिति, तेन वधूर्माया कूर्चं फट्। विपरीतमिति, तेन कूर्चवधूमायाफट्। कूर्चेति कूर्चमायावधूफट्। मायावधूकूर्चं फट्। वधूमायाकूर्चं फट्। मायाकूर्चवधूफट्। अष्टममिति वधूकूर्चमायाफट्। स्पष्टं यथा—ह्रींस्त्रींहूँ फट्॥१॥ स्त्रींह्रींहूं फट्॥२॥ हूँस्त्रींह्रीं फट्॥३॥ हूंह्रींस्त्रीं फट्॥४॥ ह्रींस्त्रींहूं फट्॥५॥ स्त्रींह्रींहूं फट् ॥६॥ ह्रींहूंस्त्रीं फट्॥७॥ स्त्रींहूंह्रीं फट्॥८॥ इति,

ऋषिः स्यादष्टकश्छन्दोऽनुष्टप्च देवता तथा। शम्भुपत्नी महेशानि चतुर्वर्गेषु योजयेत् ॥६॥
त्र्यक्षरस्यैव भेदोऽयं फटौ यत्र न तत्र वै। जाप्ये तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं न्यासे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥७॥
काललक्षं जपेन्मन्त्रमेवमुक्तेन वर्त्मना। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत् ॥८॥ इति।

'प्रणवं तारे तुतारे तत्ता स्वाहा।' तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारे तुतारे च तथा। तत्ता स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदाहृतः ॥१॥ इति।

अस्या ध्यानं स्वतन्त्रतन्त्रे—

श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां रक्तपङ्कजे। बिभ्राणां बहुरूपाभिर्बहुवर्णाभिरावृताम् ॥१॥
शक्तिभिः स्मेरवदनां स्मेरमौक्तिकभूषणाम्। रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत् ॥२॥

अस्याः पूजादिकं सर्वं पूर्ववत्। पुरश्चरणं तु दशलक्षजपः। तदुक्तं तत्रैव—

वर्णलक्षं जपेद्धीमान् नियमेन यथाविधि। दशांशं जुहुयान्मन्त्री घृताक्तै रक्तपुष्पकैः ॥१॥

'वाग्भवं भुवनेश्वरी प्रणवं वाग्भवं भुवनेश्वरी फट् स्वाहा।' तदुक्तं मातृकार्णवे—

वाग्भवं कुलदेवी च तारकं वाग्भवं तथा। हल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः ॥१॥
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो वेदमातुरनुत्तमः। पञ्चाङ्गान्यस्य मन्त्रस्य पञ्चबीजैः प्रकल्पयेत् ॥२॥
अस्त्रं शेषाक्षरैर्न्यस्य कृतकृत्यो भवेन्नरः। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् ॥३॥ इति।

एकवीरा कल्पोक्त श्लोक के उद्धार करने पर मन्त्र होता है—खं हूं ह्सौः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं। यह महाविद्या सदैव सर्वसिद्धि देने वाली होती है। इसके ध्यान-अर्चन-प्रयोग पूर्ववत होते हैं।

नीलतन्त्र के मूलोक्त श्लोकों के उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ ह्रीं हां हूं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐ ॐ स्वाहा। इसके ध्यान-पूजादि पूर्ववत् होते हैं। चार लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है।

मायातन्त्र में कहा गया है कि तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी और भद्रकाली—ये आठ तारा के स्वरूप हैं। इनके मन्त्र इस प्रकार के हैं—१. ह्रीं स्त्रीं हूं फट्। २. स्त्रीं ह्रीं ह्रीं फट्। ३. हूं स्त्रीं हूं फट्। ४. हूं ह्रीं स्त्रीं फट्।

५. ह्रीं स्त्रीं हूं फट्। ६. स्त्रीं ह्रीं हूं फट्। ७. ह्रीं हूं स्त्रीं फट्। ८. स्त्रीं हूं ह्रीं फट्।

इनके ऋषि अष्टक, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता शम्भुपत्नी हैं। चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये इनका विनियोग किया जाता है। जिनमें 'फट्' नहीं होते। वे त्र्यक्षर मन्त्र के ही भेद हैं। त्र्यक्षर का जप होता है और न्यास में फट् सहित का प्रयोग होता है। पूर्वोक्त विधान से तीन लाख मन्त्रजप से इसका पुरश्चरण होता है। ध्यान-पूजादि सभी पूर्ववत् होते हैं।

गन्धर्वतन्त्र के मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर दशाक्षर मन्त्र होता है ॐ तारे तुतारे तत्ता स्वाहा। स्वतन्त्र तन्त्र के अनुसार इसका ध्यान श्लोक १-२ है। इसके पूजादि सभी पूर्ववत् होते हैं। इसका पुरश्चरण दश लाख जप से होता है; जैसा कि वहाँ पर कहा भी है—नियम से विधिवत् वर्ण लक्ष जप करे। दशांश हवन घृताक्त लाल फूलों से करे।

मातृकार्णव के मूलोक्त श्लोक १ के उद्धार करने पर अष्टाक्षर मन्त्र होता है—ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा। इस अष्टाक्षर मन्त्र को उत्तम वेद माता कहा जाता है। पाँच बीजों—ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं से पञ्चाङ्ग न्यास करे। फट् स्वाहा से न्यास करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है। ध्यान-पूजादि सब कुछ पूर्ववत् किया जाता है।

पद्मावतीमन्त्रोद्धार:

मत्स्यसूक्ते—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पद्मेयुग्मं तथैव च। महापद्मेपदं ब्रूयात् पद्मावति पदं तत: ॥१॥
माये स्वाहेति मन्त्रोऽयं प्रोक्त: सप्तदशाक्षर:। पूजा पूर्ववदुद्दिष्टा अर्धरात्रे चतुष्पथे ॥२॥
जपमस्याचरेद्यस्तु स स्याद् द्रुतकविस्तथा। हंसश्च प्रणवं माया वधू: कूर्चश्च हंसक: ॥३॥
अष्टाक्षरी महाविद्या हंसाद्यन्ता सुदुर्लभा।

हंस: प्रणवं माया वधूबीजं कूर्चं हंस:। तदुक्तं स्वच्छन्दसंग्रहे—

शिवबीजं महेशानि शक्तिबीजं तत: परम्। बिन्दुसर्गसमायुक्तं वेदाद्यं तदध: क्रमात्॥
मायास्त्रीवर्मबीजान्तं हंसबीजमुदाहृतम्। एषा त्वष्टाक्षरी विद्या कथिता भुवि दुर्लभा॥
पञ्चाक्षरी च या विद्या हंसाद्यन्ता महोदया। केवलं त्वत्प्रयत्नेन तव स्नेहात् प्रकीर्तिता॥
अनयोर्जपपूजादीन् पञ्चाक्षरीवदाचरेत्।

अथ श्यामातारयोर्लघुपूजानुक्रमणिकाप्रसिद्धमन्त्राणामुद्धारक्रम: प्रदर्श्यते। तत्रादौ श्यामाया उत्तरतन्त्रे—

वर्गाद्याद्यं वह्नियुतं रतिबिन्दुसमन्वितम्। त्रिगुणं च तत: कूर्चयुग्मं लज्जायुगं तत: ॥१॥
दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववच्च तत: पुन:। ठद्वयेन समायुक्तं मन्त्रमेनं विदुर्बुधा: ॥२॥ इति।

'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं दक्षिणेकालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा'—अयं मन्त्रराज:। कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरा प्रचोदयात्—इति कालीगायत्री। 'क्रींहूंस्त्रींह्रींफट्'—इति कालिकाया: कुल्लिका। 'ऐंह्रींश्रींऐं परायै अपरायै परापरायै विरूपायै हसौ: सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम:'—इति कालिकाया: पीठमन्त्र:। 'सिंहव्याघ्रमुखी मृगमेषमुखी गजवाजिमुखी बिडालमुखी क्रोष्टुमुखी ह्रस्वदीर्घमुखी लम्बोदरमुखी ह्रस्वजङ्घा काकजङ्घा लम्बोष्ठी प्रलम्बोष्ठी'—एता: कालिकाया द्वारपालिका:। 'ॐहूं महाकाल प्रसीद २ ह्रीं २ स्वाहा'—इति महाकालमन्त्र:। 'ॐवज्रोदके हुं फट् स्वाहा'—इति जलग्रहणमन्त्र:। 'ॐह्रींस्वाहा, ॐह्रींसुविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापनिशामयाशेषविकल्पानपनय हूं स्वाहा'—इति मन्त्रद्वयं पादप्रक्षालने। 'ॐमणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववंशकरिणि महाप्रतिसरे हूं फट् स्वाहा'—इति शिखाबन्धनमन्त्र:। 'ॐरक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा'—इति भूमिसेचनमन्त्र:। 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा'—इति विघ्नोत्सारणमन्त्र:। 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं फट् स्वाहा'—इति भूम्यभिमन्त्रणमन्त्र:। 'आ: सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा'—इति आसनपूजामन्त्र:। 'ॐह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम:'—इत्यासनमन्त्र:। 'ॐशताभिषेके शताभिषेके हूं फट् स्वाहा'—इति पुष्पाधिष्ठानमन्त्र:। 'ॐपुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् समृद्धाय,

पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसंभवे पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा'—इति पुष्पाभिमन्त्रणमन्त्रः। 'ॐआंहूं फट् स्वाहा'—इति कायवाक्चित्तशोधनमन्त्रः। 'रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा'—इत्यात्मरक्षामन्त्रः। 'प्रह्लादानन्दनाथाख्यः सनकानन्द एव च। कुमारानन्दनाथश्च वशिष्ठानन्द एव च॥ क्रोधानन्दः शुकानन्दो ध्यानानन्दस्त्वतः परम्। बोधानन्दस्ततश्चैव कुलाख्याः गुरवः स्मृताः'—इति कुलगुरवः। 'श्रीगुरुः परमगुरुः परापरगुरुः परमेष्ठिगुरुः'—एते सामान्यगुरवः। 'महादेवी महादेवस्तथा त्रिपुरभैरवः'—इति दिव्यौघाः। 'ब्रह्मानन्दः पूर्णदेवश्चलचित्तश्चलाचलः। कुमारः बोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः। माया मायावती चैव सिद्धौघाः संप्रकीर्तिताः'—एते सिद्धौघाः। 'विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुकाकरः। मीनो गोरक्षकश्चैव भौमदेवः प्रजापतिः। मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ। सन्तोषः समयानन्दो मानवौघाः प्रकीर्तिताः'—एते संप्रदायगुरवः। 'इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी। रती रतिप्रियानन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी'—इति कालिकायाः पीठशक्तयः।

मत्स्य सूक्त के मूलोक्त श्लोकों का उद्धार करने पर पद्मावती का मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति ह्रीं स्वाहा। इसकी पूजा पूर्ववत् करके आधी रात में चौराहे पर जो इसका जप करता है, वह तुरन्त कवि हो जाता है। दूसरा मन्त्र है—हंसः ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं हंसः। यह अष्टाक्षरी महाविद्या दुर्लभ है।

स्वच्छन्दसंग्रह के मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर मन्त्र होता है—हं ह्रीं ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं हंसः। यह अष्टाक्षरी विद्या पृथ्वी पर दुर्लभ है। पञ्चाक्षरी विद्या हंसः ह्रीं हंसः को मैंने तुम्हारे स्नेहवश प्रकाशित किया है। इनका पूजनादि पञ्चाक्षरी के समान करना चाहिये।

श्यामा मन्त्र का उद्धारक्रम उत्तरतन्त्र में इस प्रकार बताया गया है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा'—यह मन्त्रराज है। 'कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरा प्रचोदयात्—यह काली गायत्री है। क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्—यह काली कुल्लुका है। कालिका का पीठमन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं परायै अपरायै परापरायै विरूपायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। सिंहव्याघ्रमुखी, मृगमेषमुखी, गजवाजिमुखी, बिडालमुखी, क्रोष्टुमुखी, ह्रस्वदीर्घमुखी, लम्बोदरमुखी, ह्रस्वजंघा, काकजंघा, लम्बोष्ठी एवं प्रलम्बोष्ठी—ये कालिका की द्वारपालिका हैं।

महाकालमन्त्र है—ॐ हूं महाकाल प्रसीद प्रसीद ह्रीं ह्रीं स्वाहा। जलग्रहण मन्त्र है—ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा। पादप्रक्षालन के दो मन्त्र हैं—१. ॐ ह्रीं स्वाहा एवं २. ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापनिशामयाशेषविकल्पानपनय हूं स्वाहा। शिखाबन्धन का मन्त्र है—ॐ मणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववंशकरिणि महाप्रतिसरे हुं फट् स्वाहा। भूमिसेचन मन्त्र है—ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा। विघ्नोत्सारण मन्त्र है—ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा। भूमि अभिमन्त्रण मन्त्र है—ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं फट् स्वाहा। आसन-पूजा मन्त्र है—आः सुरेखे वज्ररेखे हूं फट् स्वाहा। आसन मन्त्र है—ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः। पुष्पाधिष्ठान मन्त्र है—ॐ शतोभिषेकेशताभिषेके हूं फट् स्वाहा। पुष्प अभिमन्त्रण मन्त्र—ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् समृद्धाय पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा। काय, वाणी एवं चित्त का शोधन मन्त्र है—ॐ आं हूं फट् स्वाहा। आत्मरक्षा मन्त्र है—रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

कुलगुरु इस प्रकार हैं—प्रह्लादानन्दनाथ, सनकानन्दनाथ, कुमारानन्दनाथ, वशिष्ठानन्दनाथ, क्रोधानन्दनाथ, शुकानन्दनाथ, ध्यानानन्दनाथ, बोधानन्दनाथ। सामान्य गुरु हैं—श्रीगुरु, परमगुरु, परापरगुरु और परमेष्ठिगुरु। दिव्यौघ है—महादेवी, महादेव और त्रिपुरभैरव। सिद्धौघ हैं—ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, चलचित्त, चलाचल, कुमार, बोधन, वरद, स्मरदीपन, माया और मायावती। सम्प्रदाय गुरु हैं—विमल, कुशल, भीमसेन, सुकाकर, मीननाथ, गोरख, भीमदेव, प्रजापति, मूलदेव, रन्तिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, सन्तोष, समयानन्द। इन्हें मानवौघ कहते हैं। कलिका की पीठशक्तियाँ हैं—इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, आनन्दा और मनोन्मनी।

श्यामामन्त्राणां प्रसिद्धोद्धारक्रमः

अथ मन्त्रभेदाः—'क्रीं इत्येकाक्षरः। 'क्रींक्रींक्रीं' इति त्र्यक्षरमन्त्रः। 'क्रींहूंह्रीं' इत्यपि त्र्यक्षरः। 'क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं'

इति षडक्षर:। 'ऐंहूंह्रींहूंहूं फट् स्वाहा' इत्यष्टाक्षर:। 'क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा' इति दशाक्षर:। 'हूंह्रींक्रीं दक्षिणे हूंह्रीं स्वाहा' इत्यन्यो दशाक्षर:। 'ॐ ह्रींक्रीं स्वाहा' इति कालीहृदयम्। 'क्रींहूंह्रीं दक्षिणेकालिके क्रींहूंह्रीं स्वाहा' इति चतुर्दशाक्षरी। 'ॐ ह्रींह्रींहूंहूंक्रींक्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति एकविंशाक्षरी। 'ॐह्रींह्रींहूंहूंक्रींक्रींक्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति त्रयोविंशाक्षरी। 'ह्रींह्रींहूंहूंक्रींक्रींक्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं' इति विंशत्यक्षरी। 'ॐह्रींक्रीं मे स्वाहा' इति षडक्षरी। 'क्रींह्रींह्रीं' इति त्र्यक्षरी। 'क्रींक्रींक्रीं स्वाहा' इति पञ्चाक्षरी। 'क्रींहूंह्रींक्रींहूंह्रीं स्वाहा' इति अष्टाक्षरी। 'ऐं नम: क्रींक्रींकालिकायै स्वाहा' इति एकादशाक्षरी। 'क्रींहूंह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' इत्यप्येकाशदशाक्षरी। 'क्रींहूंह्रीं दक्षिणे कालिके फट्' इति दक्षाक्षरी।' क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति विंशाक्षरी। 'क्रीं स्वाहा' इति त्र्यक्षरी। 'क्रींक्रीं कालिकायै स्वाहा' इत्यष्टाक्षरी। 'क्रींहूंह्रीं स्वाहा' इति पञ्चाक्षरी। 'क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' इति नवाक्षरी। 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींक्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति षोडशाक्षरी। 'नम: ऐंक्रींक्रीं कालिकायै स्वाहा' इत्येकादशाक्षरी। 'नम: ओंओंक्रोंक्रोंफट् स्वाहा' इति नवाक्षरी। 'काकिकालिके हूंह्रींहूंफट्' इत्यपि नवाक्षरी। क्रींक्रींक्रींफट् स्वाहा' इति षडक्षरी। क्रींक्रींक्रींक्रींक्रींक्रीं स्वाहा' इत्यष्टाक्षरी। 'क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति चतुर्दशाक्षरी। 'क्रींहूंह्रीं दक्षिणेकालिके फट्' इति दशाक्षरी। 'क्रींहूंह्रींक्रींहूंह्रीं स्वाहा' इति अष्टाक्षरी। 'क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींक्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' विंशाक्षरी। 'नम: आंक्रोंआंक्रों फट् स्वाहा कालिकालिके हूं' इति पञ्चदशाक्षरी। 'ह्रींहूं फट्' इति त्र्यक्षरी। अथ वश्ये प्रागुक्तद्वाविंशद्वर्णान्ते—'हूंह्रींह्रींक्रींक्रीं' इति पञ्चबीजानि संयोजयेत्॥२७॥ अथाकर्षे 'हूंह्रींक्रीं मूलं हूंह्रींक्रीं'॥२८॥ 'हूंह्रींक्रीं दक्षिणेकालिके स्वाहा हूंह्रींक्रीं' इत्यप्याकर्षे केचिद्वदन्ति॥१४॥ 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं गुह्येकालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा'॥२१॥ 'क्रींहूंह्रीं गुह्येकालिके क्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति षोडशाक्षरी। 'क्रींहूंह्रीं गुह्येकालिके हूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति चतुर्दशाक्षरी। क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींदक्षिणेकालिके स्वाहा' इति पञ्चादशाक्षरी। 'क्रींगुह्येकालिकेक्रीं स्वाहा' इति नवाक्षरी। 'क्रीं दक्षिणेकालिके क्रीं स्वाहा' दशाक्षरी। 'हूंहूंह्रींह्रीं दक्षिणे कालिके हूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति षोडशाक्षरी। इति गुह्यकाली।

बलिमन्त्रस्तु—ऐंह्रींएह्येहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण २ मम बलिं सिद्धिं देहि २ शत्रुक्षयं कुरु २ ॐहूंह्रींफट् ॐकालिकायै नम: फट स्वाहा' अयं दक्षिणकालिकाया: बलिमन्त्र:। 'हूंनम: एह्येहि गुह्यकाल्यै गृह्ण २ मम शत्रून् नाशय २ खादय २ तुरु २ छिन्धि २ सिद्धिं देहि २ हूं २ स्वाहा' अयं गुह्यकाल्या: बलिमन्त्र:। 'ॐहूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नम: गुह्यकाल्यै हूं नम:' इति गुह्यकाल्यासनमन्त्र:। 'हौं कालि महाकालि किणि २ फट् स्वाहा'॥१४॥ इयं भद्रकाली। 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं भद्रकाल्यै क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा'॥२०॥ इयमपि भद्रकाली। 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं श्मशानकालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा'॥२२॥ इयं श्मशानकालिका। 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं महाकालि क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' इति महाकालीमन्त्र:। 'ॐक्षेंक्षेंक्रेंक्रें पशुं गृहाणहुं फट् स्वाहा' इति महाकालीमन्त्र:। 'गृध्रकर्णि २ विरूपाक्षि २ लम्बस्तनि २ महोदरि २ उत्पादय २ हुंफट् स्वाहा' अयमपि महाकालीमन्त्र:। ऐंह्रींश्रींक्लीं कालिके क्लींश्रींह्रींऐं' इति श्मशानकालीमन्त्र:।

श्यामा के अन्य मन्त्र—श्यामा के प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. एकाक्षर—क्रीं।

२. त्र्यक्षर—क्रीं क्रीं क्रीं।

३. क्रीं हूं ह्रीं—त्र्यक्षर।

४. क्रीं क्रीं हूं हूं हूं ह्रीं—षडक्षर।

५. ऐं हूं ह्रीं हूं हूं फट् स्वाहा—अष्टाक्षर।

६. क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा—दशाक्षर।

७. हूं ह्रीं क्रीं दक्षिणे हूं ह्रीं स्वाहा—दशाक्षर।

८. ॐ ह्रीं क्रीं स्वाहा—काली हृदय।

९. क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा—चतुर्दशाक्षर।

१०. ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—एकविंशाक्षर।

११. ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—त्रयोविंशाक्षर।

१२. ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं—विंशाक्षर।

१३. ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा—षडक्षर।

१४. क्रीं ह्रीं ह्रीं—त्र्यक्षर।

१५. क्रीं क्रीं स्वाहा—पञ्चाक्षर।

१६. क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा—अष्टाक्षर।

१७. ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा—एकादशाक्षर।

१८. क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा—एकादशाक्षर।

१९. क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके फट्—दशाक्षर।

२०. क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—विंशाक्षर।

२१. क्रीं स्वाहा—त्र्यक्षर।

२२. क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा—अष्टाक्षर।

२३. क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा—पञ्चाक्षर।

२४. क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा—नवाक्षर।

२५. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—षोडशाक्षर।

२६. नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा—एकादशाक्षर।

२७. नमः ओं ओं क्रों क्रों फट् स्वाहा—नवाक्षर।

२८. काकि कालिके हूं ह्रीं हूं फट्—नवाक्षर।

२९. क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा—षडक्षर।

३०. क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा—अष्टाक्षर।

३१. क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—चतुर्दशाक्षर।

३२. क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके फट्—दशाक्षर।

३३. क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा—अष्टाक्षर।

३४. क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं हं हं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—विंशाक्षर।

३५. नमः आं क्रों आं क्रों फट् स्वाहा कालिकालिके हूं—पञ्चदशाक्षर।

३६. ह्रीं हूं फट्—त्र्यक्षर।

वश्य में पूर्वोक्त बाईस वर्णों वाले मन्त्र के अन्त में हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं—इन पाँच बीजों को जोड़ने से सत्ताईस अक्षरों का मन्त्र बनता है। आकर्षण में पूर्वोक्त द्वाविंशाक्षर में हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं क्रीं—इस प्रकार अट्ठाईस अक्षरों का मन्त्र बनता है। कुछ के मत से आकर्षण में हूं ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा हूं ह्रीं क्रीं—यह चतुर्दशाक्षर मन्त्र होता है।

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—एकविंशाक्षर।

२. क्रीं हूं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—षोडशाक्षर।

३. क्रीं हूं ह्रीं गुह्ये कालिके हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—चतुर्दशाक्षर।

४. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा—पञ्चदशाक्षर।

५. क्रीं गुह्ये कालिके क्रीं स्वाहा—नवाक्षर।

६. क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा—दशाक्षर।

७. हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—षोड़शाक्षर। ये सभी गुहाकाली के मन्त्र हैं।

दक्षिणकालिका का बलिमन्त्र है—ऐं ह्रीं एह्येहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु ॐ हूं ह्रीं फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा। गुह्य काली का बलि मन्त्र है—हूं नमः एह्येहि गुह्यकाल्यै गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय तुरु तुरु छिन्धि छिन्धि सिद्धिं देहि देहि हूं हूं स्वाहा। गुह्य काली का आसन मन्त्र है—ॐ हूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः गुह्यकाल्यै हूं नमः।

भद्रकाली का मन्त्र है—हौं कालि महाकालि किणि किणि फट् स्वाहा। यह चतुर्दशाक्षर है। भद्रकाली का अन्य विंशाक्षर मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं भद्रकाल्यै क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। श्मशान कालिका का मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं श्मशानकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा—२२ अक्षर। महाकाली का मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं महाकालि क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। महाकाली का अन्य मन्त्र है—ॐ क्ष्रें क्ष्रें क्रें क्रें पशुं गृहाण हुं फट् स्वाहा। महाकाली का अन्य मन्त्र है—गृध्रकर्णी गृध्रकर्णि विरूपाक्षि विरूपाक्षि लम्बस्तनि लम्बस्तनि महोदरि महोदरि उत्पादय उत्पादय हुं फट् स्वाहा। ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिके क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं—यह श्मशान काली का मन्त्र है।

तारामन्त्रोद्धारक्रमः

अथ तारामन्त्राः—'ॐह्रींस्त्रींहूंफट्' ५। पीठमन्त्रः प्राग्वत्। द्वारपालाः प्राग्वत्। पीठशक्तयस्तु—

लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च। कीर्तिः शान्तिश्च पुष्टिश्च तुष्टिरित्यष्ट शक्तयः॥

सारसंग्रहे—

रतिः प्रीतिः प्रिया कान्तिः कामिनी काममालिनी। कन्दर्पदलनी दुर्गा भाविनी नव शक्तयः॥

अन्यत्र—

मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः। विश्वेश्वरीति संप्रोक्ताः पीठस्य नव शक्तयः॥ इति।

तन्त्रान्तरे—

महाकाली च रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च। घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिस्तथैव च॥
भैरवी च तथा प्रोक्ता पीठस्य वसुशक्तयः। इति।

प्रागुक्ता एव दशमन्त्राः कुलगुरवश्च। संप्रदायगुरवस्तु—

ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः। आनन्दनाथशब्दान्ता दिव्यौघाः कथिताः प्रिये॥
वशिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः। हरिनाथश्च सिद्धौघाः कथिता वीरवन्दिते॥
तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी। सुखः परः पारिजातस्ततश्चैव कुलेश्वरः॥
विरूपाक्षः फेरवी च मानवौघाः प्रकीर्तिताः। इति।

अथ मन्त्रभेदाः—'ॐत्रींह्रींहुंह्रींहुं फट्'।७। 'ऐंह्रींश्रींक्लींसौःहुं उग्रतारे हुंफट्'।१२। 'ॐहुंह्रींक्लींसौः हुंफट्'।७। ॐहुंह्रींक्लींह्सौः हुंफट्'।७। 'ॐह्रींहुंह्रींहुं फट्'।६। 'त्रींहुंह्रींहुं फट्'।५।, त्रींहूंफट्क्लींऐं'।५। 'ऐंह्रींश्रींक्लींह्रींऐंब्लूंस्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रांद्रींक्लींब्लूंसःऐंह्रींश्रींक्लींसौःसौःह्रीं स्वाहा'॥३२॥ 'ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐंह्रींक्लीं वदवद वाग्वादिनि स्वाहा'—इति वागीश्वरीमन्त्रः। 'हसकलह्रीं वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा'—इति चित्रेश्वरी। 'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा'—इति कुलजा। 'ऐंह्रींश्रीं वदवद कीर्तीश्वरि स्वाहा'— इति कीर्तीश्वरी। 'ऐंह्रीं अन्तरिक्षसरस्वत्यै स्वाहा'—इत्यन्तरिक्षसरस्वती। 'हसखफ्रीं ह्सौं हसफ्रीं ऐंह्रींश्रींद्रांद्रींक्लींब्लूंसःघ्नीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु २ स्वाहा' इति घटसरस्वती। 'ब्लूँवें वदवद त्रींहुं फट्'—इति नीलामन्त्रः। 'ऐंहोंहीं किणि किणि विच्चे'—इति किणिसरस्वती। 'खेंहौंॐऐंश्रींह्रीं'—इति महाविद्या। 'ऐंह्रींह्रांहूं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐॐस्वाहा'॥२५॥

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नीला सरस्वती। कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृताः ॥

तारा प्रागुक्तादौ। 'स्त्रींह्रींहूंफट्'—इत्युग्रा। 'हूंस्त्रींह्रीं फट्'—इति महोग्रा। 'हूंह्रींस्त्रीं फट्'—इति वज्रा। 'ह्रींस्त्रीं फट् हूं'—इति नीला। 'स्त्रींह्रीं फट् हूं'—इति सरस्वती। 'ह्रींहूं फट् स्त्रीं'—इति कामेश्वरी। 'ह्रींहूंस्त्रीं फट्'—इति भद्रकालीतारा। 'ॐतारे तुतारे तत्ता स्वाहा'।१०। 'ऐंह्रींॐऐंह्रीं फट् स्वाहा'।८। 'ॐपद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति ह्रींह्रीं स्वाहा'।१७। 'हंसः ॐह्रींस्त्रींहूं हंसः'।८। 'स्त्रींह्रींहूं नीलसरस्वती'।९। 'हंसः ॐह्रींस्त्रींहूं फट् हंसः'।९। 'ॐह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण २ स्वाहा'—इति बलिमन्त्रः। 'खेंहौंॐऐंश्रींह्रीं'।६।

तारामन्त्र है—ॐ ह्रीं स्त्रीं हं फट्—पञ्चाक्षर। इसके पीठमन्त्र एवं द्वारपाल पूर्ववत् ही हैं। पीठशक्तियाँ हैं—लक्ष्मी सरस्वती रति प्रीति कीर्ति शान्ति पुष्टि तथा तुष्टि। सारसंग्रह में नव शक्तियाँ कही गई हैं; वे है—रति, प्रीति, प्रिया, कान्ति, कामिनी, काममालिनी, कदर्पदलनी, दुर्गा और भाविनी। अन्यत्र मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि और विश्वेश्वरी—नव पीठशक्तियाँ कथित हैं। तन्त्रान्तरों महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी—ये आठ शक्तियाँ कथित हैं। इनके दश मन्त्र और कुलगुरु पूर्ववत् ही हैं। सम्प्रदायगुरु हैं—ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ और वृषध्वज। आनन्दनाथ शब्दान्त दिव्यौघ है। सिद्धौघ हैं—वसिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, महेश्वर और हरिनाथ। मानवौघ गुरु हैं—तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, सुख, पर, पारिजात, कुलेश्वर, विरूपाक्ष और फेरवी।

तारा के मन्त्र हैं—१. ॐत्रींह्रींहुंह्रींहुं फट्—सात अक्षर। २. ऐंह्रींश्रींक्लींसौःहुं उग्रतारे हुंफट्—बारह अक्षर। ३. ॐ हुंह्रींक्लींसौः हुंफट्—सात अक्षर। ४. ॐहुंह्रींक्लींहसौः हुंफट्—सात अक्षर। ५. ॐह्रींहुंह्रींहुं फट्—षडक्षर। ६. त्रींहुंह्रींहुं फट्—पञ्चाक्षर। ७. त्रींहूंफट्क्लीऐं—पञ्चाक्षर। ८. ऐंह्रींश्रींक्लींह्रींऐंब्लूंस्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रांद्रींक्लींब्लूंसःऐंह्रींश्रींक्लींसौःसौःह्रीं स्वाहा—द्वात्रिंशाक्षर। ९. ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐंह्रींक्लीं वदवद वाग्वादिनि स्वाहा—चतुर्विंशाक्षर। यह वागीश्वरी मन्त्र है। १०. हसकलह्रीं वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा—यह चित्रेश्वरी मन्त्र है। ११. ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा—यह कुलजा का मन्त्र है। १२. ऐंह्रींश्रीं वदवद कीर्तीश्वरि स्वाहा—यह कीर्तीश्वरी का मन्त्र है। १३. ऐंह्रीं अन्तरिक्षसरस्वत्यै स्वाहा—यह अन्तरिक्ष सरस्वती का मन्त्र है। १४. हसखफ्रीं ह्सौं हसफ्रीं ऐंह्रींश्रींद्रांद्रींक्लींब्लूंसःघ्नीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा—यह घटसरस्वती का मन्त्र है। १५. ब्लूँवें वद वद त्रींहुं फट्—यह नीला का मन्त्र है। १६. ऐंहोंह्रीं किणि किणि विच्चे—यह किणि सरस्वती का मन्त्र है। १७. खेंहौंॐऐंश्रींह्रीं—यह महाविद्या है। १८. ऐंह्रींह्रांहूं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐॐस्वाहा—यह पञ्चविंशाक्षर तारामन्त्र है।

तारिणी के आठ रूप हैं—तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी और भद्रकाली। तारा का मन्त्र पूर्व में कथित है। उग्रा का मन्त्र है—स्त्रीं ह्रीं हूं फट्। महोग्रा का मन्त्र है—हूंस्त्रींह्रीं फट्। वज्रा का मन्त्र है—हूंह्रींस्त्रीं फट्। नीला का मन्त्र है—ह्रींस्त्रीं फट् हूं। सरस्वती मन्त्र है—स्त्रींह्रीं फट् हूं। कामेश्वरी मन्त्र है—ह्रींहूं फट् स्त्रीं। भद्रकाली तारा का मन्त्र है—'ह्रींहूंस्त्रीं फट्। तारा का अन्य मन्त्र है—ॐतारे तुतारे तत्ता स्वाहा—दशाक्षर; ऐंह्रींॐऐंह्रीं फट् स्वाहा—अष्टाक्षर। ॐपद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति ह्रींह्रीं स्वाहा—सप्तदशाक्षर। हंसः ॐह्रींस्त्रींहूं हंसः—अष्टाक्षर। स्त्रींह्रींहूं नीलसरस्वती—नवाक्षर। हंसः ॐह्रींस्त्रींहूं फट् हंसः—नवाक्षर। ॐह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा—यह बलिमन्त्र है। खेंहौंॐऐंश्रींह्रीं—षडक्षर।

पञ्चदशीभेदाः

अथ महाविद्या षोडशी। तत्रादौ पञ्चदशी—'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इति कामराजविद्या। 'हसकहह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इति लोपामुद्रोपासिता। 'कहएईलह्रीं हकएईलह्रीं सकएईलह्रीं' इयं मनूपासिता। 'सहकएईलह्रीं सहकहएईलह्रीं हसकएईलह्रीं' इति चन्द्रोपासिता। 'हसकएईलह्रीं हसकएईलह्रीं सहकएईलह्रीं' इयं कुबेरोपासिता। 'कएईलह्रीं हसकईलह्रीं सहसकलह्रीं' इयमगस्त्योपासिता। 'सहईलह्रीं सहकलह्रीं सकलह्रीं' इयं नन्द्युपासिता। 'हसकलह्रीं सहकलह्रीं सकहलह्रीं' इयं सूर्योपासिता। 'हसकलह्रीं हसकलह्रीं सकलह्रीं हसकलहसकलसकलह्रीं' इयं शिवोपासिता। 'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सहसकलह्रीं सएईलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं'

इयं विष्णूपासिता। 'हसकलह्रीं सकहसकलह्रीं सहकहलह्रीं' इयं स्कन्दोपासिता। 'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इयमिन्द्रोपासिता। 'कएईलहरीहरी हसकहलहरीहरी सकलहरीहरी' इयं दुर्वासोपासिता। 'कएईलह्रीं हकहलह्रीं हसकलह्रीं' इयमुन्मनी। 'कएईलह्रीं हकहलह्रीं सहकलह्रीं' इयं वरुणोपासिता। 'कएईलह्रीं हकहह्रीं सहकलह्रीं' इयं धर्मराजोपासिता। 'कसकलह्रीं हसलकलह्रीं सकलरलह्रीं' इयं वह्न्युपासिता। 'हसकलह्रीं हसककहलह्रीं सकलरलह्रीं' इयं नागराजोपासिता। 'कहरलरह्रीं हकलरहलह्रीं सरकलरह्रीं' इयं वायूपासिता। 'कएईरलह्रीं हकहलरह्रीं सहकरह्रीं' इयं बुधोपासिता। 'कहलह्रीं हकहललरह्रीं सकलह्रीं' इयमीशानोपासिता। 'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इयं रत्युपासिता। 'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं कएईलह्रीं' नारायणोपासितेयम्। 'कएईलह्रीं हकहसरह्रीं हसकलह्रीं' ब्रह्मोपासितोयम्। 'हसकलह्रीं हकहसरह्रीं हसकलह्रीं' जीवोपासितेतयम्। एते शुद्धाः।२५। अशुद्धाः।२५। शुद्धाशुद्धाः।२५। शबलाः।२५। एवं शतं भेदाः।

पञ्चदशी के भेद—कामराज विद्या है—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं। लोपामुद्रोपासिता विद्या है—हसकहह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं। मनूपासिता विद्या है—कहएईलह्रीं हकएईलह्रीं सकएईलह्रीं। चन्द्रोपासिता विद्या है—सहकएईलह्रीं सहकहएईलह्रीं हसकएईलह्रीं। कुबेरोपासिता विद्या है—हसकएईलह्रीं हसकएईलह्रीं सहकएईलह्रीं। अगस्त्योपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हसकईलह्रीं सहसकलह्रीं। नन्द्युपासिता विद्या है—सहईलह्रीं सहकलह्रीं सकलह्रीं। सूर्योपासिता विद्या है—हसकलह्रीं सहकलह्रीं सकहलह्रीं। शिवोपासिता विद्या है—हसकलह्रीं हसकलह्रीं सकलह्रीं हसकलहसकलसकलह्रीं। विष्णूपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सहसकलह्रीं सएईलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं। स्कन्दोपासिता विद्या है—हसकलह्रीं सकहसकलह्रीं सहकहलह्रीं। इन्द्रोपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं। दुर्वासोपासिता विद्या है—कएईलहरीहरी हसकहलहरीहरी सकलहरीहरी। उन्मनी विद्या है—कएईलह्रीं हकहलह्रीं हसकलह्रीं। वरुणोपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हकहलह्रीं सहकलह्रीं। धर्मराजोपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हकहह्रीं सहकलह्रीं। वह्न्युपासिता विद्या है—कसकलह्रीं हसलकलह्रीं सकलरलह्रीं। नागराजोपासिता विद्या है—हसकलह्रीं हसककहलह्रीं सकलरलह्रीं। वायूपासिता विद्या है—कहर-लरह्रीं हकलरहलह्रीं सरकलरह्रीं। बुधोपासिता विद्या है—कएईरलह्रीं हकहलरह्रीं सहकरह्रीं। ईशानोपासिता विद्या है—कहलह्रीं हकहललरह्रीं सकलह्रीं। रत्युपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं। नारायणोपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हसक-हलह्रीं सकलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं कएईलह्रीं। ब्रह्मोपासिता विद्या है—कएईलह्रीं हकहसरह्रीं हसकलह्रीं। जीवोपासिता विद्या है—हसकलह्रीं हकहसरह्रीं हसकलह्रीं। इस प्रकार ये पच्चीस शुद्ध विद्यायें हैं। इसी प्रकार अशुद्ध पच्चीस, शुद्धाशुद्ध पच्चीस एवं शबल के भी पच्चीस भेद होते हैं। कुल मिलाकर एक सौ भेद होते हैं।

पञ्चमीभेदाः

अथ पञ्चमीभेदाः—(१) 'कएईलह्रीं हसकलह्रीं हकहलह्रीं कहयलह्रीं हसकलह्रीं' (२)। कएईलह्रीं हसकलह्रीं हकहलह्रीं कहयलह्रीं सहकलह्रीं'। (३) सकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हकलसह्रीं'। (४) सकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ईएकलह्रीं'। (५) 'कएकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं'। (६) ईएकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हकलसह्रीं'। (७) 'एईकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं'। (८) 'एईकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हकलसह्रीं'। (९) कएईलह्रीं हसकलह्रीं हसकहलह्रीं हकहलह्रीं सकलह्रीं'। (१०) 'कएईलह्रीं हसकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलसह्रीं सकलह्रीं'। (११) 'कएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलहह्रीं सहकलह्रीं सकलह्रीं'। (१२) कएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं'। 'कहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं हसकलह्रीं हकलसह्रीं'। एषा प्राग्वदष्टधा। अन्या चतुर्धा १२॥ 'कहसलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं हसकलह्रीं सकलह्रीं' एषा पूर्ववदष्टधा। अन्या चतुर्धा। एवं षट्त्रिंशद् ३६ भेदाः पञ्चम्याः। एतासां पञ्चमीविद्यानां श्रींह्रींहं इति बीजत्रयं संपुटत्वेनाद्यन्तयोः संयोज्य, मध्यस्थकामराजकूटत्रयादौ कामराजबीजं संयोज्य जपो विधेयः।

पञ्चमी के भेद—१. कएईलह्रीं हसकलह्रीं हकहलह्रीं कहयलह्रीं हसकलह्रीं। २. कएईलह्रीं हसकलह्रीं हकहलह्रीं

कहयलह्रीं सहकलह्रीं। ३. सकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हकलसह्रीं। ४. सकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ईएकलह्रीं। ५. कएकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं। ६. ईएकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हकलसह्रीं। ७. एईकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं। ८. एईकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हकलसह्रीं। ९. कएईलह्रीं हसकलह्रीं हसकहलह्रीं हकहलह्रीं सकलह्रीं। १०. कएईलह्रीं हसकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलसह्रीं सकलह्रीं। ११. कएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलहह्रीं सहकलह्रीं सकलह्रीं। १२. कएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं। कहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं हंसकलह्रीं हकलसह्रीं—यह पूर्ववत् आठ प्रकार का है। अन्य चार मिलाकर बारह भेद होते हैं। कहसलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं हसकलह्रीं सकलह्रीं—यह पूर्ववत् आठ प्रकार का है। अन्य चार मिलाकर इसके भी बारह भेद होते हैं। इस प्रकार पञ्चमी के कुल छत्तीस भेद होते हैं। इन पञ्चमी विद्याओं को 'श्रींह्रींहं' इन तीन बीजों से सम्पुटित करके आदि और अन्त से जोड़कर मध्यस्थ कामराज कूटत्रय के आरम्भ में कामराज बीज को जोड़कर जप करना चाहिये।

सुन्दरीभेदाः

अथ सुन्दरीभेदाः—'ईएकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इति प्रथमसुन्दरी १। एईकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' २। 'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इत्यनन्तसुन्दरी ३। 'सहकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इति पश्चिमाम्नायसुन्दरी ४। हससकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इत्युत्तराम्नायसुन्दरी ५। 'हसह्रीं कहह्रीं सहह्रीं' इयं रुद्रयोगिनी पूर्वाम्नायसुन्दरी ६। 'कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं' इति दक्षिणाम्नायसुन्दरी ७। 'कहक्षमलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इत्यूर्ध्वाम्नाये शिवसुन्दरी ८। 'सहक्षमलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं' इत्यूर्ध्वाम्नाये शक्तिसुन्दरी ९। 'हक्षमलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' इति सर्वसुन्दरी १०। सहकलह्रीं हकहलह्रीं कहकलह्रीं' इति सौभाग्या ११। 'हकलसह्रीं कहलसह्रीं कलसहह्रीं' इयं भाषा १२। 'हसकलह्रीं हलकहसह्रीं सकलह्रीं' इयं सृष्टिः १३। 'हलकसह्रीं कसहलसह्रीं कहसलह्रीं' इति स्थितिः १४। 'हलकसह्रीं हसकलह्रीं हहसलह्रीं' इति संहृतिः १५। 'लकसह्रीं सहकलह्रीं हससहकह्रीं' निराख्या १६। 'कहकलसह्रीं हससहकह्रीं सहकहह्रीं' निराख्या १६। 'हकलसह्रीं हकहलह्रीं हसकलह्रीं' स्वप्नावती १७। 'कहलसह्रीं कहयलह्रीं कससलह्रीं' इयं मधुमती १८। 'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं हकहलह्रीं कहकलह्रीं' ततः पञ्चम्याः पञ्चकूटम्। इयमेकादशकूटा। एवं षट्त्रिंशत्पञ्चमीनां पञ्चपञ्चकूटयोजनेनैकादशकूटा। एवं शुद्धाशुद्धादिभेदैः सह त्रिचतुष्पञ्चषट्सप्ताष्टनवकूटयोजनेन सुन्दरीभेदा बहवः सन्ति। जपे तु सर्वासां सुन्दरीविद्यानामाद्यन्तेषु प्रागुक्तबीजत्रयसंपुटीकरणमावश्यकम्।

सुन्दरी के भेद—१. ईएकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं (प्रथमसुन्दरी)। २. एईकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं। ३. कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं (अनन्तसुन्दरी)। ४.सहकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं (पश्चिमाम्नायसुन्दरी)। ५. हससकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं (उत्तराम्नायसुन्दरी)। ६. हसह्रीं कहह्रीं सहह्रीं (रुद्रयोगिनी पूर्वाम्नायसुन्दरी)। ७. कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं (दक्षिणाम्नायसुन्दरी)। ८. कहक्षमलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं (ऊर्ध्वाम्नाय में शिवसुन्दरी)। ९. सहक्षमलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं (इत्यूर्ध्वाम्नाय में शक्तिसुन्दरी)। १०. हक्षमलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं (सर्वसुन्दरी)। ११. सहकलह्रीं हकहलह्रीं कहकलह्रीं (सौभाग्या)। १२. हकलसह्रीं कहलसह्रीं कलसहह्रीं (भाषा)। १३. हसकलह्रीं हलकहसह्रीं सकलह्रीं (सृष्टि)। १४. हलकसह्रीं कसहलसह्रीं कहसलह्रीं (स्थिति)। १५. हलकसह्रीं हसकलह्रीं हहसलह्रीं (संहृति)। १६. लकसह्रीं सहकलह्रीं हससहकह्रीं, कहकलसह्रीं हससहकह्रीं सहकहह्रीं (निराख्या)। १७. हकलसह्रीं हकहलह्रीं हसकलह्रीं (स्वप्नावती)। १८. कहलसह्रीं कहयलह्रीं कससलह्रीं (मधुमती)। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सहकलह्रीं हकहलह्रीं कहकलह्रीं के पश्चात् पञ्चमी के पाँच कूट। ये ग्यारह कूट होते हैं। इस प्रकार छत्तीस पञ्चमी के पाँच पाँच कूटों को जोड़ने से ग्यारह कूट होते हैं। इस प्रकार शुद्धाशुद्धादि भेद के साथ तीन, चार पाँच, छः, सात, आठ, नव कूटों को जोड़ने से सुन्दरी के असंख्य भेद होते हैं। जप के समय समस्त सुन्दरी विद्याओं के आदि और अन्त में पूर्वोक्त बीजत्रय से सम्पुटीकरण आवश्यक होता है।

श्रीविद्यापद्धति:

अथ दशविद्यान्तर्गतत्वेन संक्षेपत: श्रीविद्याया: पद्धति:। तद्यथा—तत्र प्रात:कृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्य श्रीत्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषि:, पङ्क्तिश्छन्द:, त्रिपुरसुन्दरी देवता, वाग्भवं बीजं, कामराजं कीलकं, तार्तीयं शक्ति:, पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोग:। शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नम:। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नम:। हृदि त्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नम:। गुह्ये वाग्भवबीजाय नम:। पादयो: तार्तीयशक्तये नम:। सर्वाङ्गे कामराजकीलकाय नम: इति। तथा समयार्के—

त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तये तथा। ऋषये नम: शिरसि पङ्क्तये छन्दसे नम: ॥१॥
मुखे त्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमो हृदि।

तथाच वाग्भवादिस्वरूपं दक्षिणामूर्तौ—

नि:सरन्ति महामन्त्रा महाग्नेश्च स्फुलिङ्गवत्। तथैव मातृका वर्णा नि:सृता वाग्भवात् प्रिये ॥१॥
अत एव तदेव स्याद्वाग्भवं बीजमुच्यते। योषित्पुरुषरूपेण स्फुरन्ती विश्वमातृका ॥२॥
महामोहेन देवेशि कीलयन्ती जगत्त्रयम्। अतस्तत्कीलकं देवि तेन सौभाग्यगर्विता ॥३॥
पालयन्ती जगत् सर्वं तेनेयं शक्तिरुच्यते। इति।

ज्ञानार्णवे—

बीजं तु वाग्भवं शक्तिस्तार्तीयं कीलकं तत:। कामराजं महेशानि बीजन्यासस्तत: परम्॥ इति।

अथ वशिन्यादिन्यास:—यथा, अं१६ँ ब्लूँ वशिनीवाग्देवतायै नम: ब्रह्मरन्ध्रे। कं ५ँ कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नम: ललाटे। चं ५ँ नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नम: भ्रूमध्ये। टं ५ँ य्लूं विमलावाग्दे- वतायै नम: कर्णयो:। तं ५ँ जमरीं अरुणावाग्देवतायै नम: हृदये। पं ५ँ हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नम: नाभौ। यं ४ँ झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नम: आधारे। शं ५ँ क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नम: सर्वाङ्गे। तथाच ज्ञानार्णवे—

अवर्गान्ते लिखेद्बीजं रेफान्ते बक्षमान्वितम्। वामकर्णविशोभाढ्यं बिन्दुनादाङ्कितं प्रिये ॥१॥
वशिनीं पूजयेद्वाचां देवतां देवि सुव्रते। कवर्गान्ते महेशानि कलह्रीं बीजमुत्तमम् ॥२॥
कामेश्वरीं समुच्चार्य वाग्देवीं पूजयेत्तत:। चवर्गान्ते धान्तलान्तक्षमातुर्यस्वरान्वितम् ॥३॥
मोदिनीं पूजयेद्वाचं नादबिन्दुविभूषिताम्। टवर्गान्ते वायुबीजं भूमिपूर्वं महेश्वरि ॥४॥
वामकर्णेन्दुबिन्द्वाढ्यं विमलां वागधीश्वरीम्। तवर्गान्ते जमयान्तं वामनेत्रविभूषितम् ॥५॥
बिन्दुनादाङ्कितं बीजं वाग्देवीमरुणां यजेत्। पवर्गान्ते व्योमचन्द्रक्ष्मातोयानिलसंयुतम् ॥६॥
ऊकारस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम्। जयिनीं पूजयेद्वाचां देवतां वीरवन्दिते ॥७॥
यवर्गान्ते जान्तकालरेफवायुसमन्वितम्। वामकर्णेन्दुशोभाढ्यं सर्वेशीं परिपूजयेत् ॥८॥
क्षमवह्निगतं तुर्यस्वरेण परिवेष्टितम्। बिन्दुनादकलाक्रान्तं कौलिनीं वाचमर्चयेत् ॥९॥
शवर्गान्ते महेशानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये। शिरोललाटभ्रूमध्यकर्णहृन्नाभिगोचरे ॥१०॥
आधारे व्यूहके यावत् न्यसेद् देवि परां प्रिये। इति।

अथ करन्यास:—अं मध्यमाभ्यां नम:। आं अनामिकाभ्यां नम:। सौ: कनिष्ठिकाभ्यां नम:। अं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। आं तर्जनीभ्यां नम:। सौ: करतलकरपृष्ठाभ्यां नम:।

अथाङ्गन्यास:—ऐं हृदयाय नम:। क्लीं शिरसे स्वाहा। सौ: शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुं। क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। सौ: अस्त्राय फट्। ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेत्। यथा—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥

इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः संपूज्य आनन्दोऽहमिति विभाव्य शङ्खस्थापनं कुर्यात्। यथा—श्रीचक्रपुरतः स्ववामे षट्कोणमध्ये त्रिकोणं विलिख्य, तत्र त्रिपादिकां संस्थाप्य मूलेन षट्कोणं पूजयेत्। फट् इति शङ्खं प्रक्षाल्य तत्र गन्धपुष्पादिकं निक्षिप्य, मूलेन जलेनापूर्य मण्डलादिकं पूजयेत्। मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इति त्रिपादिकायाम्। अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शंखे। उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले। ततः 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादिना तीर्थमावाह्य, हुं इत्यवगुण्ठ्य षडङ्गेन संपूज्य, धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमष्टधा जप्त्वा तज्जलं किंचित् प्रोक्षणीतोये निक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्षेत्। तद्दक्षिणे पाद्यादिपात्रं संस्थाप्यासनपूजामारभेत्। यथा उपर्युपरि यन्त्रस्य—ॐ आधारशक्तये नमः। एवं प्रकृतये०, कूर्माय०, अनन्ताय०, पृथिव्यै०, रसाम्बुधये०, रत्नद्वीपाय०, नन्दनोद्यानाय०, रत्नमण्डपाय०, कल्पवृक्षाय०, रत्नवेदिकायै०, रत्नसिंहासनाय नमः। पीठोपरि बैन्दवचक्रे—ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। बैन्दवे—हसरैं हसकलरीं हसरौः इति मन्त्रेण मूर्तिं संकल्प्य त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा पूर्ववद् ध्यात्वा, प्रवहन्नासापुटेन तेजोमयं पुष्पाञ्जलावानीय ॐ महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि॥' इति मूर्तौ संस्थाप्यावाहनादि यथाशक्त्युपचारेण पूजां विधाय षडङ्गानि पूजयेत्। अग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च, वाग्भवकूटमुच्चार्य हृदयाय नमः। कामराजमुच्चार्य शिरसे स्वाहा। शक्तिकूटमुच्चार्य शिखायै वषट्। पुनर्वाग्भवकूटमुच्चार्य कवचाय हुं। कामराजमुच्चार्य नेत्रत्रयाय वौषट्। शक्तिकूटमुच्चार्य अस्त्राय फट्। ततो मध्यप्राक्त्र्यस्त्रमध्येषु गुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। ऐंह्रींश्रींगुरुपङ्क्तिभ्यो नमः। ३ँ गुरुपादुकाभ्यो नमः। एवं परमगुरुं तत्पादुकां, परापरगुरुं तत्पादुकां, आचार्यं तत्पादुकां च पूजयेत्।

संक्षेपतः श्रीविद्या-पद्धति—प्रातःकृत्यादि से आरम्भ कर प्राणायाम-न्यास आदि के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इस त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द पंक्ति, देवता त्रिपुरसुन्दरी, बीज वाग्भव, कीलक कामराज और शक्ति तार्तीय है। पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि दक्षिणा मूर्तिऋषये नमः। मुखे पंक्तिछन्दसे नमः। हृदि त्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः। गुह्ये वाग्भवबीजाय नमः। पादयोः तार्तीयशक्तये नमः। सर्वांगे कामराजकीलकाय नमः। इसी को समयार्क में भी बताया गया है। दक्षिणामूर्ति के अनुसार वाग्भव आदि का स्वरूप इस प्रकार है—महा अग्नि की चिनगारी के समान महामन्त्र निकलते हैं, उसी प्रकार मातृका वर्ण भी वाग्भव से निकलते हैं; इसीलिये इसे वाग्भव बीज कहते हैं। स्त्री-पुरुष रूप से विश्वमातृका का स्फुरण होता है। ये तीनों लोकों को महामोह से कीलित करती हैं, इसीलिये इसे कीलक कहा जाता है। यह सौभाग्यगर्विता सारे संसार का पालन करती है, इसीलिये इसे शक्ति कहा जाता है। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि वाग्भव बीज है, शक्ति तार्तीय है और कीलक, कामराज है। तदनन्तर बीजन्यास का स्थान है।

वशिन्यादि न्यास इस प्रकार किया जाता है—अं१६ँ ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे। कं ५ँ कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः ललाटे। चं ५ँ नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये। टं ५ँ य्लूं विमलावाग्देवतायै नमः कर्णयोः। तं ५ँ जमरीं अरुणावाग्देवतायै नमः हृदये। पं ५ँ हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नमः नाभौ। यं ४ँ झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः आधारे। शं ५ँ क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः सर्वाङ्गे।

ज्ञानार्णव के मूलोक्त श्लोकों का उद्धार करने पर निम्न स्वरूप का न्यास होता है—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे। कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः ललाटे। चं छं जं झं ञं नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये। टं ठं ढं डं णं य्लूं विमलावाग्देवतायै नमः कर्णयोः। तं थं दं धं नं जमरीं अरुणा वाग्देवतायै नमः हृदये। पं फं बं भं मं हसलवयूं जपिनीवाग्देवतायै नमः नाभौ। यं रं लं वं झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः आधारे। शं षं सं हं क्षं क्ष्मरीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः सर्वांगे।

करन्यास—अं मध्यमाभ्यां नमः। आं अनामिकाभ्यां नमः। सौः कनिष्ठाकाभ्यां नमः। अं अंगुष्ठाभ्यां नमः। आं तर्जनीभ्यां नमः। सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अंगन्यास—ऐं हृदयाय नम:। क्लीं शिरसे स्वाहा। सौ: शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हूं। क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। सौ: अस्त्राय फट्। अङ्गन्यास के पश्चात् मूल मन्त्र व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पांशांकुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे।।

ध्यान के बाद मानसोपचारों से पूजा करके 'आनन्दोऽहम्' की भावना कर इस प्रकार शङ्खस्थापन करे—अपने वाम भाग में श्रीचक्र के आगे षट्कोण में त्रिकोण बनाकर उस पर त्रिपादिका स्थापित करे। मूल मन्त्र से षट्कोण में पूजा करे। फट् से शङ्ख को धोये। उसमें गन्ध, पुष्पादि छोड़े। मूल मन्त्र से जल भरे। मण्डलादि की पूजा करे। मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम: से त्रिपादिका में पूजा करे। अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम: से शंख में पूजा करे। उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम: से जल में पूजा करे। तदनन्तर गंगे च यमुने चैव' इत्यादि से तीर्थों का आवाहन करके हुं से अवगुण्ठन करके षडङ्ग पूजा करे। धेनुमुद्रा दिखावे। मूल मन्त्र को आठ बार जप कर उसमें से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में लेकर उससे अपना और पूजा उपकरणों का अभ्युक्षण करे। उसके दाँयें भाग में पाद्यादि पात्रों को स्थापित करके आसनपूजा आरम्भ करे। जैसे कि यन्त्र के ऊपर-ऊपर ॐ आधारशक्तये नम:, प्रकृतये नम:, कूर्माय नम:, अनन्ताय नम:, पृथिव्यै नम:, रसाम्बुधये नम:, रत्नद्वीपाय नम:, नन्दनोद्यानाय नम:, रत्नमण्डपाय नम:, कल्पवृक्षाय नम:, रत्नवेदिकायै नम:, रत्नसिंहासनाय नम:। पीठ के ऊपर वैन्दव चक्र में हसौ: सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम:। बिन्दु में हसरैं हसकलरीं हसरौ: मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा बाँधकर पूर्ववत् ध्यान करके प्रवहमान नासापुट से तेजोमय पुष्पाञ्जलि में लाकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

ॐ महापद्मवनान्त:स्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।

इसी के साथ मूर्ति स्थापित करके आवाहनादि यथाशक्ति उपचारों से पूजा करके षडङ्ग पूजा करे। आग्नेयादि कोणों, मध्य एवं दिशाओं में वाग्भव कूट से हृदयाय नम:, हसकहलह्रीं शिरसे स्वाहा, सकलह्रीं शिखायै वषट्। कएईलह्रीं कवचाय हुं, हसकहलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, सकलह्रीं अस्त्राय फट्। तब त्रिकोण में गुरुपंक्ति की पूजा करे—ऐं ह्रीं श्रीं गुरुपंक्तिभ्यो नम:, ऐं ह्रीं श्रीं गुरुपादुकाभ्यो नम:, ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुपादुकाभ्यो नम:। ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुपादुकाभ्यो नम:, ऐं ह्रीं श्रीं आचार्यपादुकाभ्यो नम:।

अथावरणपूजा—तत्र चतुरस्रस्य प्रथमरेखायां—३ँ अणिमाद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं मध्यरेखायां—३ँ ब्राह्म्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तरेखायां—३ँ सर्वसंक्षोभिण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सर्वत्रावरणपूजायां श्रीपादुकापदप्रयोगः। तथाच तन्त्रान्तरे—

श्रीपदं पूर्वमुच्चार्य पादुकापदमुद्धरेत्। पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः ।।१।। इति।

चक्राग्रे ३ँ त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एतां अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्। त्रिपुरापदव्युत्पत्तिस्तु वाराहीये—

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदशैरर्चिता पुरा। त्रिपुरेति तदा नाम कथितं देवतैस्तव ।।१।। इति।

तर्पणं तु वामहस्तेन। तथाच स्वतन्त्रतन्त्रे—

अङ्गुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तेन पार्वति। तर्पयेत् सुन्दरीं दिव्यां समुद्रां च सवाहनाम् ।।१।।

ततः षोडशदले—अं १६ ऐंह्रींश्रींकामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ँ त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वाशापरिपूरके षोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामाकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्राः इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततोऽष्टदले—३ँ अनङ्गकुसुमादिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ँ त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसंक्षोभकरे अष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततश्चतुर्दशारचक्रे— ३ँ सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे— ३ँ त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षोभिण्यादयः संप्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततो बहिर्दशारचक्रे— ३ँ सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे— ३ँ त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे, त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदाद्या दशदेव्यः कुलकौलिन्यादियोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततोऽन्तर्दशारचक्रे— ३ँ सर्वज्ञादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे— ३ँ त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरक्षाकरे अन्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञादिदशदेव्यो निगर्भयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततोऽष्टारचक्रे— ३ँ वशिन्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरोगहराष्टारचक्रे त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या रहस्योगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

अत्रान्तरालत्र्यस्रे मूलविद्यया षडङ्गानि पूजयेत्। ततोऽग्रकोणे ३ँ कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। दक्षिणकोणे ३ँ वज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। वामकोणे ३ँ भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूज-यामि नमः। चक्राग्रे ३ँ त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसिद्धिप्रदे त्र्यस्रचक्रे बाणपाशाङ्कुशविभूषितान्तराले त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता कामेश्वर्याद्या रहस्यातिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततो बिन्दुमध्ये— ३ँ श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इत्यादि वारत्रयं पूजयेत्। वामे ३ँ योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे— ३ँ त्रिपुरभैरवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वानन्दमये परब्रह्मस्वरूपिणि बैन्दवचक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सवाहनाः सपरिवाराः सायुधाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इति मूलदेव्यै समर्पयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्याः पुरश्चरणं लक्षजपः। तथाच वामकेश्वरतन्त्रे—

तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद् देवीस्वरूपदृक्। किंशुकैर्हवनं कुर्याद्दशांशं च वरानने ॥१॥
कुसुम्भकुसुमैर्वापि मधुरत्रयमिश्रितैः। इति।

आवरण पूजा—चतुरस्र की प्रथम रेखा में ऐं ह्रीं श्रीं अणिमाद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः; मध्य रेखा में ऐं ह्रीं श्रीं ब्राह्म्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तिम रेखा में ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सभी आवरण पूजा में 'श्रीपादुकां पूजयामि' का प्रयोग होता है। तन्त्रान्तर में भी कहा गया है कि पहले 'श्री' पद कहकर तब पादुकां पूजयामि नमः, कहकर पूजा करनी चाहिये।

चक्र के आगे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। 'अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' कहकर अर्घ्यजल मूल देवी को समर्पित करे। वाराही तन्त्र के अनुसार त्रिपुरा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि तीन देवता से पहले अर्चित होने के कारण देवता तुम्हें त्रिपुरा नाम से पुकारते हैं। बायाँ हाथ से तर्पण करे; जैसा कि स्वतन्त्र तन्त्र में कहा भी है—बाँयें हाथ की अनामा-अंगुष्ठ को मिलाकर मुद्रा एवं वाहन सहित दिव्य सुन्दरी का तर्पण करे।

तदनन्तर षोडश दल में—अं १६ ऐं ह्रीं श्रीं कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे—३ त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वाशापरिपूरके षोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता कामाकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु कहकर अर्घ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

अष्टदल में—ऐं ह्रीं श्रीं अनंगकुसुमादिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। चक्र के आगे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वसंक्षोभणचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: अनंकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्य: समुद्रा: इत्यादि से अर्घ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

चतुर्दशार चक्र में—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। चक्र के आगे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुर-वासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वसौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसंक्षोभिण्यादय: समुद्रा इत्यादि से अर्घ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

बहिर्दशारचक्र में—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। चक्र के आगे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वार्थसाधके चक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसिद्धिप्रदाद्या दशदेव्य: कुलकौलिन्यादियोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से अर्घ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

अन्तर्दशार चक्र में—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। चक्र के आगे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरमालिनी-चक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वरक्षाकरे अन्तर्दशार चक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वज्ञादिदशदेव्यो निगर्भयोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को अर्घ्यजल समर्पित करे।

अष्टारचक्र में—ऐं ह्रीं श्रीं वशिन्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। चक्र के आगे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वरोगहराष्टारचक्रे त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिका धिष्ठिते एता: वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को अर्घ्यजल समर्पित करे।

त्रिकोण के अन्तराल में मूल विद्या से षडङ्ग पूजन करे। अग्र कोण में ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नम:। दक्षिणकोण में—ऐं ह्रीं श्रीं वज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नम:। वाम कोण में—ऐं ह्रीं श्रीं भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वसिद्धिप्रदे त्र्यस्रचक्रे बाणपाशांकुशविभूषितान्तराले त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता कामेश्वर्यादिरहस्यातिरहस्य-योगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को अर्घ्यजल समर्पित करे।

बिन्दु चक्र में—ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नम:। बाँयें भाग में ऐं ह्रीं श्रीं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नम:। चक्र के आगे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरभैरवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अत्र सर्वानन्दमये चक्रे परब्रह्मस्वरूपिणि वैन्दवचक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्य: समुद्रा: सवाहना: सपरिवारा: सायुधा पूजिता: तर्पिता: सन्तु नम:—कहकर मूल देवी को अर्घ्यजल समर्पित करे। तब धूप-दीपादि विसर्जनान्त कर्म करके पूजा समाप्त करे। इसका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है। जैसा कि वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि पूजा स्थान में बैठकर अपने को देवीस्वरूप समझते हुये एक लाख जप करे। दशांश हवन पलाश के फूलों से अथवा मधुरत्रय-मिश्रित कुसुम्भ के फूलों से करे।

श्रीविद्याविशेषपद्धति:

अथ श्रीविद्याविशेषपद्धति:; यथा—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय रात्रिवास: परित्यज्य, गुरुं यथोक्तरूपं ध्यात्वा, 'ऐंह्रींश्रींहसखफ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौ: स्हौ: अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम:' अमुकशक्तयम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम:, इति स्मृत्वा मानसैर्गन्धादिभि: पूजयेत्। यथा—ऐंह्रींश्रींलंपृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नम:, कनिष्ठाभ्यां। ऐंह्रींश्रींहं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नम:, अङ्गुष्ठाभ्यां। ३ँ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नम:, तर्जनीभ्यां। ३ँ रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नम:, मध्यमाभ्यां। ३ँ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नम:, अनामिकाभ्यां। ३ँ ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नम:, अञ्जलिना। यथा विशुद्धेश्वरे—

एवं ध्यात्वा पुनश्चैवं पञ्चभूतात्मकैर्यजेत्। गन्धतत्त्वं पार्थिवं तु कनिष्ठाङ्गुलियोगत: ॥१॥
पुष्पमाकाशात्मकं च अङ्गुष्ठाभ्यां समर्पयेत्। वाय्वात्मकं महाधूपं तर्जनीभ्यां समर्पयेत् ॥२॥

तेजोमयं महादीपं मध्यमाद्वययोगतः। अमृतात्मकनैवेद्यमनामिकायुगेन च ॥३॥
नमस्कारेणाञ्जलिना ताम्बूलं च समर्पयेत्। स्मृतं तु स्वस्वबीजान्ते सर्वान्ते तु नमस्क्रिया ॥४॥

ततो योन्यञ्जलिमुद्रे प्रदर्श्य नमस्कृत्य स्तुतिं कुर्यात्। 'अखण्डमण्डलाकार'मित्यादि। शेषं सामान्यपद्धत्युक्त-क्रमेण कुर्यात्।

श्रीविद्या विशेष पद्धति—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर रात में पहने वस्त्र को बदलकर यथोक्त रूप में गुरु का ध्यान करके 'ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः, अमुकशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः' ऐसा ध्यान करके मानिसक; गन्धादि से पूजन करे; जैसे—ऐं ह्रीं श्रीं लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः कनिष्ठाभ्यां ऐं ह्रीं श्रीं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः अंगुष्ठाभ्यां, ऐं ह्रीं श्रीं यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः तर्जनीभ्यां, ऐं ह्रीं श्रीं रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः मध्यमाभ्या। ऐं ह्रीं श्रीं वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः अनामिकाभ्यां, अञ्जलि से ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नमः। जैसा कि विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा भी गया है—इस प्रकार फिर से ध्यान करके पञ्चभूतात्मक पूजा करे। पार्थिव गन्ध तत्त्व को कनिष्ठा अंगुलि के योग से समर्पित करे। आकाशात्मक पुष्प को दोनों अंगूठे से समर्पित करे। वाय्वात्मक महाधूप को दोनों तर्जनी के योग से समर्पित करे। तेजोमय महादीप को दोनों मध्यमा अंगुलियों के योग से प्रदान करे। अमृतात्मक नैवेद्य को दोनों अनामिकाओं से समर्पित करे। नमस्काररूप अञ्जलि से ताम्बूल प्रदान करे। सबों में उनके-उनके बीज के साथ नमः जोड़े। तदनन्तर योनिमुद्रा दिखाकर 'अखण्डमण्डलाकारं' इत्यादि से स्तुति करें। शेष क्रिया सामान्य पद्धति में उक्त क्रम से सम्पन्न करे।

श्रीविद्याविशेषस्नानम्

अथ श्रीविद्याया विशेषस्नानम्। वैदिकस्नानं विधायाचमनं कृत्वा षडङ्गानि विधाय, क्रों इत्यङ्कुशमुद्रया सवितुर्मण्डलात् तीर्थमावाह्य, मूलविद्यायाः शक्तिमुच्चार्य योनिमुद्रां तज्जले निक्षिप्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य मूलवाग्भवबीजेन दशवारमभिमन्त्र्य, आनन्दामृतवारिमध्यस्थां देवीं विचिन्त्य मूलविद्यया सप्तवारमभिमन्त्र्य तन्मुखारबिन्दविनिर्गतामृत-धाराबुद्ध्या मूलेन सप्तवारमात्मानमभिषिच्य, पुनरेकविंशतिवारं मूलविद्यामुच्चरन् तज्जले देवीपादारबिन्दाधोगलदमृत-धारया त्रिवारं निमज्ज्योत्थाय, पुनर्योनिमुद्रया सप्तवारं त्रिवारं वा शिरस्यभिषेकं विधाय तत्रैवाचामेत्। यामले तु—

बालाबीजत्रयैः पीत्वा द्वाभ्यामोष्ठौ प्रमार्जयेत्। दुर्गाभ्यां च त्रिकं मृज्य मायया क्षालयेत्करम् ॥१॥
श्रीमायावाक्पराकामत्रिपुटायोनिवर्तुलैः। कामकलाङ्कुशाभ्यां च मुखनासाक्षिकर्णकान् ॥२॥
नाभ्युरस्कं भुजौ स्पृष्ट्वाप्यधिकारी जपार्चने। आचम्यैवं यजेद् दुर्गां जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥३॥

दशावृतः। यथा—ऐंक्लींसौः इति पिबेत्। ह्रींश्रीं इति ओष्ठौ द्विः प्रमार्जयेत्। दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा इति मार्जयित्वा। ह्रीं इति करक्षालनम्। श्रीं मुखे, ह्रींऐं नसोः, सौः क्लीं चक्षुषोः, ह्रींश्रींक्लीं कर्णयोः। ऐं नाभौ, ह्रीं वक्षसि, ईं दक्षांसे, क्रों वामांसे, इति स्पृष्ट्वा, तीरमागत्यानुपहते वाससी परिधाय मूलमन्त्राभिमन्त्रि-तशुद्धयज्ञभस्मना त्रिपुण्ड्रं त्रिरेखात्मकमर्धचन्द्राकृतिं विधायाघमर्षणान्तं कृत्वा तर्पणं कुर्यात्। तथाच—

षडङ्गान्यपि विन्यस्य तीर्थमङ्कुशमुद्रया। क्रोंमन्त्रेण समाकृष्य ततः सवितृमण्डलात् ॥१॥
शक्तिबीजं समुच्चार्य निक्षिपेद्योनिमुद्रया। धेनुमुद्रयोनिमुद्रे ततस्तत्र प्रदर्शयेत् ॥२॥
मूलवाग्भवबीजेन मन्त्रयित्वाथ देवताम्। आनन्दामृतवारीणां मध्यस्थां परिचिन्तयेत् ॥३॥
देवीमुखारबिन्दाच्च निर्गतामृतधारया। सप्तकृत्वो जपेद्विद्यामाभिषिञ्चेत्स्वकां तनुम् ॥४॥
एकविंशतिवाराणि जपेद्विद्यामनन्तरम्। देवीपादारबिन्दाधोगलदमृतधारया ॥५॥
वारत्रयं ततः पश्चात् निमज्ज्योत्तीर्य साधकः। योनिना च तथा देवी मूर्ध्नि सेकं समाचरेत् ॥६॥
त्रिसप्त वा तथा वारान् सेचयेत्साधकाग्रणीः। ततस्तीरं समासाद्य कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥७॥
उचिते वाससी पश्चात्परिदध्यादनन्तरम्। आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥८॥

धृत्वा भालतले भस्म पूर्ववच्छ्रीगुरुं स्मरेत्। सूर्यमण्डलासिन्यै देवतायै ततः परम्॥९॥
अर्घ्यमञ्जलिनादाय गायत्र्या च त्रिरुत्क्षिपेत्। यथाशक्ति जपेद् देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम्॥१०॥
तर्पणार्थं समाचम्य प्राणानायम्य साधकः। वसून् रुद्रांस्तथादित्यांस्तथैवाङ्गिरसं ततः॥११॥
देवान् गाश्च ततो ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रहानपि। लोपामुद्रामहल्यां चानुसूयामृषितीर्थके॥१२॥
नक्षत्रराशियोगांश्च करणानि यथाक्रमम्। चतुर्थीवह्निजायान्तं देवतीर्थेन तर्पयेत्॥१३॥
मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं क्रतुमेव च। वसिष्ठं च भरद्वाजं गौतमागस्त्यनामकौ॥१४॥
अग्निष्वात्तान् बर्हिषदः पितॄंश्च स्वपितृक्रमम्। त्रिधा ङेन्तं हृदन्तं च पितृतीर्थेन तर्पयेत्॥१५॥
भैरवान् क्षेत्रपालांश्च कुमारीर्योगिनीस्तथा। भूतानि सर्वसत्त्वानि तृप्यन्त्वन्तानि तर्पयेत्॥१६॥

ततो देवीं तर्पयेत्। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—'तर्पणं च ततः कुर्याद् देवर्षिपितृपूर्वकम्'। ततस्तस्मिञ्जले त्रिकोणवृत्तचतुरस्रं विभाव्य, गणेशवटुकौ चक्रवामदक्षिणतः संतर्प्य, त्रिकोणवृत्तचतुरस्रान्तराले ईशानादिवायव्यान्तां वक्ष्यमाणगुरुपङ्क्तिं सन्तर्प्य, त्रिकोणमध्ये साध्यसिद्धासनमन्त्रैर्वक्ष्यमाणैः संतर्प्य, जले भगवतीमावाह्य परमामृतधारया त्रिवारं पूर्वोक्तक्रमेण संतर्प्य, त्रिकोणेषु कामेश्वर्यादिदेवीत्रयं वक्ष्यमाणसमयविद्यया संतर्प्य, चतुरस्रकोणेष्वङ्ग-देवतास्तर्पयेत्। तत आवरणदेवतानां तर्पणम्। ततः सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा 'हंसः सोह'मित्युपस्थाय सवितृमण्डले तीर्थं निधाय यतवचनो यागस्थानमागच्छेत्।

श्रीविद्या का विशेष स्नान—वैदिक स्नान करके आचमन करके षडङ्ग न्यास करे। 'क्रो' इस अंकुशमुद्रा से सूर्य मण्डल से तीर्थों का आवाहन करे। मूल विद्या के साथ ह्रीं कहकर उस जल में योनिमुद्रा बनावे। धेनु-योनि मुद्रा दिखावे। मूल मन्त्रसहित वाग्भव बीज से दश बार उसे अभिमन्त्रित करे। आनन्दामृत जल के मध्य में स्थित देवी का चिन्तन करे। मूल विद्या के सात जप से मन्त्रित करे। उनके मुख से निकली अमृतधारा बुद्धि से मूल मन्त्र द्वारा सात बार अपना अभिषेचन करे। पुनः इक्कीस बार मूल विद्या कहकर उस जल में देवी के पादाराबिन्दों से निकली अमृत धारा से तीन बार आप्लावित होकर फिर योनिमुद्रा से सात बार या तीन बार अपना अभिषेचन करे और वहीं पर आचमन करे। रुद्रयामल में कहा गया है कि तीनों बालाबीजों—ऐं क्लीं सौः से जल पीकर दोनों ओठों का मार्जन ह्रीं श्रीं से करे। दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा से हाथों को मले। ह्रीं से हाथों को धोये। श्रीं से मुख, ह्रीं ऐं से नासापुटों सौ को, क्लीं से आखों को, ह्रीं श्रीं क्लीं से कानों को, ऐं से नाभि को, ह्रीं से वक्ष को, ईं से दक्षांस को और क्रीं से वामांस को स्पर्श करे। तट पर आकर वस्त्र बदले। मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित शुद्ध यज्ञभस्म से त्रिरेखात्मक अर्द्धचन्द्राकार त्रिपुण्ड कार अघमर्षण करके तर्पण करे। कहा भी है—

षडङ्ग न्यास करके अंकुश मुद्रा क्रों मन्त्र से सूर्यमण्डल से तीर्थों को आकर्षित करे। ह्रीं का उच्चारण करके योनिमुद्रा निक्षिप्त करे। धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा दिखावे। मूल वाग्भव बीज से मन्त्रित करे। देवता का चिन्तन अमृत जल के मध्य में करे। देवी के मुखाराबिन्द से निकली अमृताधारा से सात विद्या का जप करके अपने शरीर का सेचन करे। इसके बाद विद्या का जप इक्कीस बार करे। देवी के पादारबिन्द के नीचे से निकली अमृतधारा में तीन डुबकी लगावे। इसके बाद नहाकर योनिमुद्रा से देवी की मूर्धा पर अभिषेक करे। ऐसा तीन बार या सात बार करे। तब जल से बाहर निकलकर तट पर यथेप्सित कर्म करे। उचित वस्त्र पहनकर आचमन करे। पूर्वमुख बैठकर मूल मन्त्र से मन्त्रित भस्म से ललाट में तिलक करे। श्री गुरु का स्मरण करे। तब सूर्यमण्डलवासिनी देवता को गायत्री मन्त्र से तीन अर्घ्याञ्जलि प्रदान करे। परमाक्षरी देवी का यथाशक्ति जप करे। तर्पण के लिये आचमन करके प्राणयाम करे। वसुओं, रुद्र, आदित्य, अंगिरा, देवों, गायों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ग्रह, लोपामुद्रा, अहल्या, अनुसूया, ऋषि, तीर्थ, नक्षत्र, राशि, योग, करण को यथाक्रम नाम में चतुर्थी के साथ स्वाहा जोड़कर देवतीर्थ से तर्पण कर मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, अगस्त्य, अग्निष्वात्त, बर्हिषद, पितरों एवं अपने पितृक्रम से तीन बार चतुर्थी के बाद नमः जोड़कर पितृतीर्थ से तर्पण करे। भैरव, क्षेत्रपाल, कुमारी, योगिनी, भूत सभी सत्त्वों का 'तृप्यन्तानि' कहकर तर्पण करे। तब देवी का तर्पण करे। दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा भी है कि तदनन्तर देव,

ऋषि, पितृतर्पण करे। तब उस जल में त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्र कल्पित करके गणेश, वटुक का चक्र के वाम, दक्षिण में तर्पण करे। त्रिकोण वृत्त चतुरस्र के अन्तराल में ईशान से वायव्य तक विहित गुरुपंक्ति का तर्पण करे। त्रिकोण के मध्य में साध्य सिद्धासन मन्त्र से विहित तर्पण करे। जल में भगवती का आवाहन करके परमामृत धारा से तीन बार पूर्वोक्त क्रम से तर्पण करे। त्रिकोण में कामेश्वरी आदि तीन देवियों का विहित समय विद्या से तर्पण करे। चतुरस्र के कोणों में अंगदेवताओं का तर्पण करे। तब आवरण देवताओं का तर्पण करे। तब सूर्य को अर्घ्य देकर 'हंस: सोहं' कहकर उपस्थान करके सूर्यमण्डल में तीर्थों को स्थापित करके यागस्थान में आये।

यागस्थानं तु कालीकुलसद्भावे—

अरण्यं स्वल्पकामानां सिद्ध्यर्थं पूजनं हितम्। निष्कामानां मुमुक्षूणां गृहे शस्तं सदार्चनम्॥१॥
ऋषीणां मुनिमुख्यानां दीक्षितानां द्विजन्मनाम्। गृहेऽपि यजनं शस्तं रसैर्वा चेक्षुसंभवैः॥२॥ इति।

कुलार्णवेऽपि—

एकान्ते निर्जने रम्ये देशे बाधाविवर्जिते। सुखासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः॥१॥ इति।

तत्रादौ सूर्यपूजा। तदुक्तं रुद्रयामले—

आदित्यं पूजयेदादौ प्रत्यक्षं लोकसाक्षिणम्। अन्यथा नैव सिद्धिः स्यात्कल्पकोटिशतैरपि॥१॥ इति।

वृहत्स्तवराजेऽपि—

मूलेन(स्नानं तु) विधिवत्सन्ध्यां तर्पणं सूर्यपूजनम्। पूजालये तथागत्य पञ्चमीपूजनं चरेत्॥१॥ इति।

ततः पूजामण्डपमागत्य, ॐआत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐविद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा, इत्यनेनाचम्य सामान्यार्घ्यं विधाय द्वारपूजां कुर्यात्। तद्यथा—बालाया द्वारमभ्युक्ष्य दक्षिणवामपार्श्वयोरुपर्यधः ऐंह्रींश्रींगं गणपतये नमः। ३ँ दुं दुर्गायै नमः ३ँ वां वटुकाय नमः। ३ँ क्षां क्षेत्रपालाय नमः। ३ँ द्वारश्रियै नमः। ३ँ देहल्यै नमः। ततो वामपादपुरस्सरं गृहं प्रविश्य, अग्न्यादिकोणेषु ३ँ गणपतये नमः। ३ँ दुं दुर्गायै नमः। ३ँ वां वटुकाय नमः। ३ँ क्षां क्षेत्रपालाय नमः। मध्ये ३ रत्नमण्डपाय नमः। दिक्षु ३ँ कामदेवाय रत्यै नमः। ३ँ वसन्ताय प्रीत्यै नमः। ३ँ गां गणपतये नमः। ३ँ सां सरस्वत्यै नमः। ३ँ श्रीं श्रियै नमः इति। सोमभुजगावल्याम्—'सरस्वतीं श्रियं मायां दुर्गां च तदनन्तरम्। भद्रकालीं ततः स्वस्तिं स्वाहां चैव शुभङ्करीम्। गौरीं च लोकधात्रीं च तथा वागीश्वरीमपि।' इति। एताः पूजयेत्। ततः ऐंह्रींश्रीं रक्तवर्णद्वादशशक्तिसहिताय दीपनाथाय नमः, इति पुष्पाञ्जलित्रयं मुञ्चेत्। विश्वसारे—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥१॥

इति प्रसाद्य। 'पृथ्वि त्वया धृता लोकाः' इति निवेद्य, ततोऽस्त्रेण वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् विघ्नानुत्सार्य, अस्त्रेण जलेनान्तरिक्षगान्, श्रीबालान्यस्ततिग्मदृष्ट्यवलोकनेन दिव्यविघ्नानुत्सार्य, सिद्धार्थाक्षतकुसुमान्यादाय '३ँ अपसर्पन्तु ते भूताः' इत्यादिना क्षिप्त्वा विघ्नानुत्सार्य, सिद्धार्थाक्षतकुसुमान्यादाय रक्षेत्। ततो नैर्ऋत्यां ३ँ ब्रह्मणे नमः, ३ँ वास्त्वधिपतये नमः, ३ँ आधारशक्तिकमलासनाय नमः, इत्यासनं संपूज्य तत्रोपविश्य, भूतशुद्धिमातृकान्यासादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। कल्पसूत्रे यद्यपि वाय्वग्निसलिलात्मकप्राणायामैः शोषणदाहनप्लावनरूपां भूतशुद्धिं विधाय त्रिः प्राणानायम्य मातृकान्यासं कुर्यात्, इति नियमः, तथापि मातृकान्यासानन्तरं प्राणायामो बोद्धव्यः। तथाच तन्त्रान्तरे—

भूतशुद्धिं विधायेत्थं मातृकान्यासमाचरेत्। प्राणायामत्रयं कृत्वा न्यासानन्यान् समाचरेत्॥१॥ इति।

यथा—शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदि श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये वाग्भवबीजाय नमः। पादयोः शक्तिकूटशक्तये नमः। सर्वाङ्गे कामराजकीलकाय नमः। तथाच तन्त्रान्तरे—

ऋषिं न्यस्येन्मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे । देवतां हृदये चैव बीजं तु गुह्यदेशके ॥१॥
शक्तिं च पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ।

यागस्थान—कालीकुलसद्भाव में कहा गया है कि छोटी कामनाओं के लिये जंगल में पूजा करनी चाहिये। निष्काम मुमुक्षुओं के लिये अपने घर में ही पूजन प्रशस्त होता है। ऋषियों, मुनियों, दीक्षितों, द्विजों को घर में पूजन ईख के रस से करना प्रशस्त होता है।

कुलार्णव में भी कहा गया है कि एकान्त निर्जन रम्य बाधारहित देश में सुखासन पर पूर्व मुख या उत्तरमुख बैठकर साधना करनी चाहिये। रुद्रयामल के अनुसार पहले लोकसाक्षी सूर्य का पूजन करना चाहिये; अन्यथा सौ करोड़ कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती। बृहत्स्तवराज में भी कहा गया है कि मूल मन्त्र से विधिवत् सन्ध्या, तर्पण और सूर्यपूजन करने के बाद पूजागृह में आकर पञ्चमी का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर पूजागृह में आकर ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शक्तितत्त्वाय स्वाहा कहकर तीन आचमन करके सामान्यार्घ्य स्थापित करके द्वारपूजा करे। जैसे—बाला मन्त्र से द्वार का अभ्युक्षण करके दाँयें-बाँयें तथा ऊपर-नीचे ऐं ह्रीं श्रीं गं गणपतये नम:, ऐं ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नम:, ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नम:, ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नम:, ऐं ह्रीं श्रीं द्वारश्रियै नम:, ऐं ह्रीं श्रीं देहल्यै नम: कहकर पूजन करे। तब बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर गृह में प्रवेश करे। अग्न्यादि कोणों में ऐं ह्रीं श्रीं गणपतये नम:, ऐं ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नम:, ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नम:, ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नम:, मध्य में ऐं ह्रीं श्रीं रत्नमण्डपाय नम:; दिशाओं में—ऐं ह्रीं श्रीं कामदेवाय रत्यै नम:, ऐं ह्रीं श्रीं वसन्ताय प्रीत्यै नम:, ऐं ह्रीं श्रीं गां गणपतये नम:, ऐं ह्रीं श्रीं सां सरस्वत्यै नम:, ऐं ह्रीं श्रीं श्री श्रियै नम: से पूजा करे। सोमभुजगाबलि में कहा गया है कि क्रमश: सरस्वती, लक्ष्मी, माया, दुर्गा, भद्रकाली, स्वस्ति, स्वाहा, शुभंकरी, गौरी, लोकधात्री तथा वागीश्वरी की पूजा करे। तब ऐं ह्रीं श्रीं रक्तवर्णद्वादशशक्तिसहिताय दीपनाथाय नम: कहकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। विश्वसार तथा के अनुसार 'समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपलि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमत्व मे' कहकर भूमि को प्रणाम करे। 'पृथ्वि त्वया धृता लोका' से निवेदन करे। तब अस्त्र मन्त्र से बाँयीं एँड़ी को तीन बार पटक कर पृथ्वी के विघ्नों का उत्सारण करे। अस्त्र मन्त्र फट् कहकर अन्तरिक्ष में जल छींटकर अन्तरिक्ष के विघ्नों का उत्सारण करके बाला का ध्यान करते हुये तिरछी दृष्टि से दिव्य विघ्नों का उत्सारण करके सरसों अक्षत फूल लेकर 'ऐं ह्रीं श्रीं अपसर्पन्तु ते भूता' से उन्हें छींटकर विघ्नों का उत्सारन करे। सिद्धार्थ अक्षत फूल लेकर रक्षा करे। तब नैर्ऋत्य में ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्मणे नम:, ऐं ह्रीं श्रीं वास्त्वधिपतये नम:, ऐं ह्रीं श्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम: से आसन की पूजा करके उस पर बैठे। भूतशुद्धि, मातृका न्यासादि प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। कल्पसूत्र के अनुसार वायु, अग्नि, सलिलात्मक प्राणायाम से शोषण दाहन, प्लावनरूपा भूतशुद्धि करके तीन प्राणायाम करके मातृका न्यास करने का यद्यपि नियम है, तथापि मातृका न्यास के बाद प्राणायाम करना चाहिये। तन्त्रान्तर में भी कहा गया है कि भूत शुद्धि करके प्राणायाम करे, तब मातृका न्यास करे। तीन प्राणायाम करके अन्य न्यासों को सम्पन्न करे। जैसे—शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नम:। मुखे पंक्तिछन्दसे नम:। हृदि श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नम:। गुह्ये वाग्भवबीजाय नम:। पादयो: शक्तिकूटशक्तये नम:। सर्वांगे कामराजकीलकाय नम:। जैसा कि कहा भी है—ऋषि का न्यास मूर्धा में, छन्द का मुख में देवता का हृदय में, बीज का गुह्य देश में, शक्ति का पैरों में और कीलक का न्यास सर्वांग में करना चाहिये।

तत: करन्यास:। यथा—अं मध्यमाभ्यां नम:। आं अनामिकाभ्यां नम:। सौ: कनिष्ठिकाभ्यां नम:। अं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। आं तर्जनीभ्यां नम:। सौ: करतलपृष्ठाभ्यां नम:। तथाच नवरत्नेश्वरे—

एतद्बीजद्विरावृत्त्या मध्यमाद्यङ्गुलीषु च । शुद्धिं करस्य कुर्वीत तलयो: पृष्ठयोरपि ॥१॥
चतुर्थीनतिसंयुक्तनाममन्त्रै: पृथक् पृथक् । बालाबीजत्रयं पूर्वं तथा त्रिपुरसुन्दरि ॥२॥
आत्मानं रक्ष रक्षेति कुर्याद्रक्षां हृदि स्पृशन् । तथैवास्त्रेण मुद्रया कुर्याद् दिग्बन्धनं तत: ॥३॥

ततो बालान्ते अमृतार्णवासनाय नम: पादयो:। बालान्ते त्रिपुरसुन्दरीपोताम्बुजासनाय नम: जानुद्वये। ह्रींक्लींसौ: त्रिपुरसुन्दरीदेव्यात्मासनाय नम: ऊरुद्वये। यामलतन्त्रे—

अमृतार्णवशब्दान्ते आसनाय ततो नमः। पादयोर्विन्यसेत्पश्चाद्बालान्ते त्रिपुरेश्वरी ॥१॥
पोताम्बुजासनायान्ते नमो जानुनि विन्यसेत्। ह्रींक्लींसौः त्रिपुरेत्युक्त्वा सुन्दरीति पदं ततः ॥२॥
ङेन्तं देव्यासनं चान्ते नम ऊरुद्वये न्यसेत्।

हैंहक्लींह्सौ त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः, स्फिग्द्वये। हसैं हसक्लीं हसौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमो गुह्ये। ह्रींक्लींब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमो नाभिदेशे। हसरैं हसकलरीं हसरौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमो, वक्षसि। ततो मूलविद्यान्ते श्रीमहात्रिपुरभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमो ब्रह्मरन्ध्रे। तथाच चामले—

हैंह्क्लींह्सौरन्ते च त्रिपुरावासिनीति च। चक्रासनायेत्यमुना स्फिग्द्वये परिविन्यसेत् ॥१॥
हसैंहसक्लींह्सौश्चेति त्रिपुराश्रीपदं ततः। सर्वमन्त्रासनायान्ते नमो गुह्ये प्रविन्यसेत् ॥२॥
ह्रींक्लींब्लेंत्रिपुरमालिन्यन्ते साध्यसिद्धपदं वदेत्। आसनाय नम इति नाभिदेशे प्रविन्यसेत् ॥३॥
हस्रैं हसकलरीं ह्स्रौरन्ते त्रिपुराम्बापदं ततः। पर्यङ्कपीठासनं ङेन्तं नमो वक्षसि विन्यसेत् ॥४॥
त्रिकूटविद्याबीजान्ते महात्रिपुरभैरवी। सदाशिवमहाप्रेतपदात् पद्मासनाय च ॥५॥
नम इत्यमुना ब्रह्मरन्ध्रस्थाने प्रविन्यसेत्।

करन्यास—अं मध्यमाभ्यां नमः। आं अनामिकाभ्यां नमः। सौः कनिष्ठकाभ्यां नमः। अं अंगुष्ठाभ्यां नमः। आं तर्जनीभ्यां नमः। सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। जैसा कि नव रत्नेश्वर में कहा भी है—इन बीजों की मध्यमा आदि अंगुलियों में दो आवृत्ति से हाथ की, हस्ततल की एवं हस्तपृष्ठ की शुद्धि करे। चतुर्थी और नमः लगाकर पृथक्-पृथक् नाममन्त्रों से करे। बाला बीजत्रय के बाद त्रिपुरसुन्दरि कहकर 'आत्मानं रक्ष रक्ष' कहकर हृदय का स्पर्श करे। अस्त्रमुद्रा से दिग्बन्ध करे। तब ऐं क्लीं सौं अमृतार्णवासनाय नमः से पैरों में, ऐं क्लीं सौं त्रिपुरसुन्दरीपोताम्बुजासनाय नमः से जानुओं में, ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुर सुन्दरीदेव्यात्मासनाय नमः से दोनों उरुओं में न्यास करे। जैसा कि यामलतन्त्र में अमृतार्णवासनाय नमः से पैरों में न्यास करे। ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरीपोताम्बुजासनाय नमः से जानुओं में न्यास करे। ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यासनाय नमः से दोनों उरुओं से न्यास करे। हैं हक्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः से दोनों स्फिगों में, हसैं हसक्लीं हसौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः से गुह्य में ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः से नाभि में, हसरैं हसकलरीं हसरौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमः से में और तब मूल विद्या के अन्त में श्रीमहात्रिपुरभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः, ब्रह्मरन्ध में न्यास करे। कहकर जैसा कि यामल में कहा भी है—हक्लीं हसौः त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः से नितम्बों में न्यास करे; हसैं हसक्लीं हसौं त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः से गुह्य में न्यास करे, ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः से नाभि में न्यास करे, हसरैं हस्कलरीं हसरौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमः से वक्ष में न्यास करे और ऐं ह्रीं श्रीं महत्रिपुरभैरवीसदाशिव महाप्रेतासनाय नमः से ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करे।

अथ षडङ्गन्यासः—ऐं सर्वज्ञताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः। क्लीं नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहा- त्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौः अनादिबोधशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्। ऐं स्वतन्त्रशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। क्लीं नित्यमलुप्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। तथाच नवरत्नेश्वरे—

सर्वज्ञता नित्यसुतृप्तता च अनादिबोधश्च स्वतन्त्रता च।
अलुप्तशक्तित्वमनन्तता च षडाहुरङ्गानि बुधाः शिवायाः ॥१॥ इति।

तथाच—'बीजान्ते नाम संयोज्य जातियुक्तं षडङ्गकम्'। ततो वशिन्यादिन्यासः। स च संक्षेपप्रयोगे उक्तः। ततो नवयोन्यात्मकन्यासः। तथाच—'बालाया त्रिपुरेशान्या नवयोन्यात्मकं न्यसेत्'। प्रयोगस्तु भैरवीप्रकरणे उक्तः। पुनर्बालां समुच्चार्य गोलकत्वेन चिन्तयेत्। पुनर्बालां समुच्चार्य चतुरस्रं विचिन्तयेत्।

षडङ्ग न्यास—ऐं सर्वज्ञताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः, क्लीं नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे

स्वाहा, सौ: अनादिबोधशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्, ऐं स्वतन्त्रशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं, क्लीं नित्यमलुप्तशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्, सौ: अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। जैसा कि नवरत्नेश्वर में कहा भी है—सर्वज्ञता, नित्यसुतृप्तता, अनादिबोध, स्वतन्त्र, अलुप्तशक्ति और अनन्तता—इन छ: से देवी के षडङ्ग का न्यास करे।

वशिन्यादि न्यास—इसे पूर्व में संक्षिप्त प्रयोग में कह दिया गया है।

नवयोन्यात्मक न्यास—बाला त्रिपुरेशानी का नवयोन्यात्मक न्यास करे। इसका प्रयोग भैरवी प्रकरण में कहा गया है। फिर बाला कहकर गोलकत्व के रूप में चिन्तन करे। फिर बाला कहकर चतुरस्र का चिन्तन करे।

अथ पीठन्यास:। यथा मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्मशक्तिश्रीकामेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नम:, आधारे। द्वितीयकूटमुच्चार्य, सूयचक्रे पूर्णगिरिपीठे षष्ठेशनाथात्मके विष्ण्वात्मशक्तिश्रीवज्रेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नमो हृदि। तृतीयकूटमुच्चार्य सोमचक्रे जालन्धरपीठे उड्डीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीभगमालिनीदेवीश्रीपादुकायै नम: ललाटे। त्रिकूटमुच्चार्य परब्रह्मचक्रे उड्डियानपीठे श्रीचर्यानाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीश्रीपादुकायै नमो ब्रह्मरन्ध्रे।

अथ तत्त्वन्यास:—वाग्भवमुच्चार्य, आत्मतत्त्वव्यापिकायै श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्यै नमो आधारे। कामराजमुच्चार्य, विद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमो हृदये। तृतीयकूटमुच्चार्य, शिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमो ललाटे। त्रिकूटमुच्चार्य, सर्वतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नम: ब्रह्मरन्ध्रे।

तत: पञ्चदशीन्यास:—यथा मूले हृदि चक्षुषो: कर्णयो: नसोर्मुखे भुजयुगपृष्ठजानुयुगलनाभिषु प्रत्येकं नमोऽन्तं मूलवर्णं न्यसेत्।

पीठ न्यास—कएईलह्रीं अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्मशक्तिश्रीकामेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नम:—आधार पर, हसकहलह्रीं सूर्यचक्रे पूर्णगिरिपीठे षष्ठेशनाथात्मके विष्ण्वात्मशक्तिश्रीवज्रेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नम:—हृदय में। सकलह्रीं सोमचक्रे जालन्धरपीठे उड्डीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीभगमालिनीदेवीश्रीपादुकायै नम:—ललाट में। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं परब्रह्मचक्रे उड्डियानपीठे श्रीचर्यानाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीश्रीपादुकायै नम:—ब्रह्मरन्ध्र में।

तत्त्व न्यास—कएईलह्रीं आत्मतत्त्वव्यापिकायै श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्यै नम:—आधार में। हसकहलह्रीं विद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नम:—हृदय में। सकलह्रीं शिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नम:—ललाट में। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सर्वतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नम:—ब्रह्मरन्ध्र में।

पञ्चदशी न्यास—मूलाधार, हृदय, नेत्रों, कानों, नासा छिद्रों, मुख, दोनों भुजाओं, पीठ, जानुओं और नाभि में प्रत्येक वर्ण का न्यास नम: लगाकर करने से पञ्चदशी न्यास सम्पन्न होता है। जैसे, कं नम:, एं नम: इत्यादि।

अथ षोडशीन्यास:—

ब्रह्मरन्ध्रे च संपूर्णां विद्यां रक्तां विचिन्तयेत्। सौभाग्यदण्डिनीं मुद्रां वामांसे भावयेत्सुधी: ॥१॥
रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां वामपादतले न्यसेत्। व्यापकान्ते योनिमुद्रां मुखे क्षिप्त्वाभिवन्द्य च ॥२॥

पुनर्ब्रह्मरन्ध्रे मणिबन्धे ललाटे मालिकायां षोडशार्णान् न्यसेत्। तत:—

पादयोर्जङ्घयोर्जान्वो: कट्यामन्धुनि पृष्ठके। नाभौ पार्श्वद्वये चापि स्तनयोरंसयोस्तथा ॥३॥
करयोर्ब्रह्मरन्ध्रे च वदने भुवि पार्वति। कर्णप्रदेशे च तथा करवेष्टनयो: क्रमात् ॥४॥

इति संहारन्यास:।

अथ स्थितिक्रम:—करयोरङ्गलीषु पञ्च। ब्रह्मरन्ध्रे मुखे हृदि त्रयम्। नाभ्यादिपादपर्यन्तमेकम्। कण्ठान्नाभिपर्यन्तमपरम्। ब्रह्मरन्ध्रात् कण्ठपर्यन्तमकम्। पादयो: पञ्चाङ्गलीषु पञ्च।

अथ सृष्टिन्यासः—ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे नेत्रे श्रवणे घ्राणे ओष्ठे दन्ताध ऊर्ध्वे जिह्वायां चिबुके पृष्ठे सर्वाङ्गे हृदि स्तनयोः कुक्षौ लिङ्गे च षोडशार्णान् विन्यसेत्।

षोडशी न्यास—ब्रह्मरन्ध्र में सम्पूर्ण विद्या का चिन्तन लाल रंग में करे। बाँयें कन्धे पर सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा की भावना करे। वाम पादतल में रिपुजिह्वा ग्रहा मुद्रा का न्यास करे। व्यापक न्यास करके मुख में योनि मुद्रा लगाकर स्तुति करे।

फिर ब्रह्मरन्ध्र, मणिबन्ध, ललाट, मालिका में सोलह वर्णों का न्यास करे। तब पैरों, जंघाओं, जानुओं, कमर, पीठ, नाभि, दोनों पार्श्वों, स्तनों, कन्धों, हाथों, ब्रह्मरन्ध, मुख, भवों, कानों, करवेष्टनों में क्रम से न्यास करे। यही संहार न्यास कहलाता है।

स्थिति न्यास—हाथ की पाँचों अंगुलियों, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हृदय, नाभि से पैरों तक, कण्ठ से नाभि तक, ब्रह्मरन्ध से कण्ठ तक और पैरों की पाँचों अंगुलियों में स्थिति न्यास करे।

सृष्टिन्यास—ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, नेत्र, कान, नाक, ऊपर-नीचे के ओष्ठ जीभ, चिबुक, पीठ, सर्वांग, हृदय, स्तन, कुक्ष, लिङ्ग में सोलह वर्णों का न्यास करे।

अथ षोढान्यासः—ऐंह्रींश्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः शिरसि। ३ँ विघ्नराजह्रीभ्यां नमो मुखवृत्ते। ३ँ इं विनायकपुष्टिभ्यां नमो दक्षचक्षुषि। ३ँ ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमो वामचक्षुषि। ३ँ उं विघ्नहृत्तुष्टिभ्यां नमो दक्षकर्णे। ३ँ ऊं विघ्नकर्तृसरस्वतीभ्यां नमो वामकर्णे। ३ँ ऋं विघ्नराजरतिभ्यां नमो दक्षनसि। ३ँ ॠं गणनायकमेधाभ्यां नमो वामनसि। ३ँ ऌं एकदन्तकान्तिभ्यां नमो दक्षगण्डे। ३ँ ॡं द्विदन्तकामिनीभ्यां नमो वामगण्डे। ३ँ एं गजवक्त्रमोहिनीभ्यां नमः ओष्ठे। ३ँ ऐं निरञ्जनजटाभ्यां नमः अधरे। ३ँ ओं कपर्दितीव्राभ्यां नमो ऊर्ध्वदन्ते। ३ँ औं दीर्घमुखज्वालामुखीभ्यां नमः अधोदन्ते। ३ँ अं शङ्कुकर्णनन्दाभ्यां नमो ब्रह्मरन्ध्रे। ३ँ अः वृषध्वजस्वरसाभ्यां नमो मुखे। ३ँ कं गणनाथकामरूपिणीभ्यां नमो दक्षस्कन्धे। ३ँ खं गजेन्द्रशुभ्राभ्यां नमो दक्षकूर्परे। ३ँ गं शूर्पकर्णजयिनीभ्यां नमो मणिबन्धे। ३ँ घं त्रिनेत्रसतीभ्यां नमो अङ्गुलिमूले। ३ँ ङं लम्बोदरविघ्नेशाभ्यां नमो अङ्गुल्यग्रे। ३ँ चं महामो(ना)दस्वरूपिणीभ्यां नमो वामस्कन्धे। ३ँ छं चतुर्मुखकामदाभ्यां नमः कूर्परे। ३ँ जं सदाशिवमदविह्वलाभ्यां नमः वाममणिबन्धे। ३ँ झं आमोदविकटाभ्यां नमो वामाङ्गुलिमूले। ३ँ ञं दुर्मुखधूम्राभ्यां नमो वामाङ्गुल्यग्रे। ३ँ टं सुमुखभूतिभ्यां नमो दक्षिणकट्यधः। ३ँ ठं प्रमोदभूतिभ्यां नमो जानुनि। ३ँ डं एकपादसतीभ्यां नमो गुल्फे। ३ँ ढं द्विजिह्वरमाभ्यां नम अङ्गुल्याधः। ३ँ णं शूरमानुषीभ्यां नम अङ्गुल्यग्रे। ३ँ तं वीरमकरध्वजाभ्यां नमो वामकट्यधः। ३ँ थं षणमुखविकर्णाभ्यां नमो जानुनि। ३ँ दं वरदभ्रुकुटीभ्यां नमो गुल्फे। ३ँ धं वामदेवलज्जाभ्यां नमो अङ्गुल्यधः। ३ँ नं वक्रतुण्डदीर्घघोणाभ्यां नम अङ्गुल्यग्रे। ३ँ पं द्विरदधनुर्धराभ्यां नमो दक्षपार्श्वे। ३ँ फं सेनानीयामिनीभ्यां नमः वामपार्श्वे। ३ँ वं ग्रामिणीरात्रिभ्यां नमः पृष्ठे। ३ँ भं मत्तचण्डिकाभ्यां नमः नाभौ। ३ँ मं विमलशशिप्रभाभ्यां नमः उदरे। ३ँ यं मत्तवाहनलोलाक्षीभ्यां नमः हृदि। ३ँ रं जटिलचपलाक्षीभ्यां नमः दक्षस्कन्धे। ३ँ लं मुण्डिऋद्धिभ्यां नमः ककुदि। ३ँ वं खड्गिदुर्भगाभ्यां नमः वामस्कन्धे। ३ँ शं वरेण्यसुभगाभ्यां नमः हृदयादिदक्षहस्ते। ३ँ षं वृषकेतुशिवाभ्यां नमः हृदयादिवामहस्ते। ३ँ सं भक्ष्यप्रियदुर्गाभ्यां नमः हृदयादिदक्षपादे। ३ँ हं गणेशगुहप्रियाभ्यां नमः हृदयादिवामपादे। ३ँ ळं मेघनादकामिनीभ्यां नमः हृदयाद्युदरे। ३ँ क्षं गणेश्वरकालजिह्वाभ्यां नमः मुखे। एतान् नमोऽन्तान् विन्यसेत्।

षोढ़ा न्यास—ऐं ह्रीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः—शिर में। ऐं ह्रीं श्रीं आं विघ्नराजह्रीभ्यां नमः—मुख में मध्य में। ऐं ह्रीं श्रीं इं विनायकपुष्टिभ्यां नमः—दाँयाँ नेत्र। ऐं ह्रीं श्रीं ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमः—बाँयाँ नेत्र। ऐं ह्रीं श्रीं उं विघ्नहृत्तुष्टिभ्यां नमः—दाँयाँ कान। ऐं ह्रीं श्रीं ऊं विघ्नकर्तृसरस्वतीभ्यां नमः—बाँयाँ कान। ऐं ह्रीं श्रीं ऋं विघ्नराजरतिभ्यां नमः—दाँयाँ नास्य छिद्र। ऐं ह्रीं श्रीं ॠं गणनायकमेधाभ्यां नमः—बाँयाँ नासाछिद्र। ऐं ह्रीं श्रीं ऌं एकदन्तकान्तिभ्यां नमः—दाँयाँ गाल। ऐं ह्रीं श्रीं ॡ द्विदन्तकामिनीभ्यां नमः—बाँयाँ गाल। ऐं ह्रीं श्रीं एं गजवक्त्रमोहिनीभ्यां नमः—ओठ। ऐं ह्रीं श्रीं ऐं निरंजनजटाभ्यां नमः—अधर। ऐं ह्रीं श्रीं ओं कपर्दितीव्राभ्यां नमः—ऊर्ध्वदन्त। औं दीर्घमुखज्वालामुखीभ्यां नमः—अधोदन्त। ऐं ह्रीं श्रीं ऐं शंकुकर्णनन्दाभ्यां

नम:—ब्रह्मरन्ध्र। ऐं ह्रीं श्रीं अ: वृषध्वजस्वरसाभ्यां नम:—मुख। ऐं ह्रीं श्रीं कं गणनाथकामरूपिणीभ्यां नम:—दक्षस्कन्ध। ऐं ह्रीं श्रीं खं गजेन्द्रशुभ्राभ्यां नम:—दक्षकूर्पर। ऐं ह्रीं श्रीं गं शूर्पकर्णजयिनीभ्यां नम:—मणिबन्ध। ऐं ह्रीं श्रीं घं त्रिनेत्रसतीभ्यां नम:—अङ्गुलिमूल। ऐं ह्रीं श्रीं ङं लम्बोदरविघ्नेशाभ्यां नम: अङ्गुल्यग्र। ऐं ह्रीं श्रीं चं महामो(ना)दस्वरूपिणीभ्यां नम:—वामस्कन्ध। ऐं ह्रीं श्रीं छं चतुर्मुखकामदाभ्यां नम:—कूर्पर। ऐं ह्रीं श्रीं जं सदाशिवमदविह्वलाभ्यां नम:—वाममणिबन्ध। ऐं ह्रीं श्रीं झं आमोदविकटाभ्यां नम:—वामाङ्गुलिमूल। ऐं ह्रीं श्रीं ञं दुर्मुखधूम्राभ्यां नम:—वामाङ्गुल्यग्र। ऐं ह्रीं श्रीं टं सुमुखभूतिभ्यां नम:—कमर के दाँयें। ऐं ह्रीं श्रीं ठं प्रमोदभूतिभ्यां नम:—जानुओं में। ऐं ह्रीं श्रीं डं एकपादसतीभ्यां नम:—गुल्फ में। ऐं ह्रीं श्रीं ढँ द्विजिह्वरमाभ्यां नम:—अङ्गुलि के नीचे। ऐं ह्रीं श्री णं शूरमानुषीभ्यां नम:—अङ्गुलि के आगे। ऐं ह्रीं श्रीं तं वीरम-करध्वजाभ्यां नम:—कमर के बाँयें। ऐं ह्रीं श्रीं थं षणमुखविकर्णाभ्यां नम:—जानु। ऐं ह्रीं श्रीं दं वरदभ्रुकुटीभ्यां नम: गुल्फ। ऐं ह्रीं श्रीं धं वामदेवलज्जाभ्यां नम:—अङ्गुलि के नीचे। ऐं ह्रीं श्रीं नं वक्रतुण्डदीर्घघोणाभ्यां नम:—अङ्गुल्यग्र। ऐं ह्रीं श्रीं पं द्विरदधनुर्धराभ्यां नम:—दक्षपार्श्व। ऐं ह्रीं श्रीं फं सेनानीयामिनीभ्यां नम:—वामपार्श्व। ३ँ वं ग्रामिणीरात्रिभ्यां नम:—पृष्ठ। ऐं ह्रीं श्रीं भं मत्तचण्डिकाभ्यां नम:—नाभि। ऐं ह्रीं श्रीं मं विमलशशिप्रभाभ्यां नम:—उदर। ऐं ह्रीं श्रीं यं मत्तवाहनलोलाक्षीभ्यां नम:—हृदय। ऐं ह्रीं श्रीं रं जटिलचपलाक्षीभ्यां नम:—दक्षस्कन्ध। ऐं ह्रीं श्रीं लं मुण्डिऋद्धिभ्यां नम:—ककुद। ऐं ह्रीं श्रीं वं खड्गिदुर्भगाभ्यां नम:—वामस्कन्ध। ऐं ह्रीं श्रीं शं वरेण्यसुभगाभ्यां नम:—हृदयादि दक्षहस्त। ऐं ह्रीं श्रीं षं वृषकेतुशिवाभ्यां नम:—हृदयादि वामहस्त। ऐं ह्रीं श्रीं सं भक्ष्यप्रियदुर्गाभ्यां नम:—हृदयादि दक्षपाद। ऐं ह्रीं श्रीं हं गणेशगुहप्रियाभ्यां नम:—हृदयादि वामपाद। ऐं ह्रीं श्रीं ळं मेघनादकामिनीभ्यां नम:—हृदयादि उदरान्त। ऐं ह्रीं श्रीं क्षं गणेश्वरकालजिह्वाभ्यां नम:—मुख।

अथ ग्रहन्यास:—३ँ अं १६ आं आदित्यरुचिभ्यां नमो हृदये। ३ँ यं ४ सों सोममेधाभ्यां नमो भ्रूमध्ये। ३ँ कं ५ अं अङ्गारकरक्ताभ्यां नमो नेत्रत्रये। ३ँ चं ५ बुधज्ञानरूपाभ्यां नमो हृदयोपरि। ३ँ टं ५ बृं वृहस्पतियशस्विनीभ्यां नम: कण्ठे। ३ँ तं ५ शुं शुक्राह्लादिनीभ्यां नमो हृदये। ३ँ पं ५ शं शनैश्चरशक्तिभ्यां नमो नाभौ। ३ँ शं ४ रां राहुकृष्णाभ्यां नमो वक्षसि। ३ँ ळंक्षं कें केतुवायवीभ्यां नमो गुह्ये। तथाच ज्ञानार्णवे—'सुरैरर्कं हृदि न्यसेत् यवर्गेण शशी तत:। भ्रूयुगे' इत्यादि।

ग्रहन्यास—३ँ अं १६ आं आदित्यरुचिभ्यां नम:—हृदय में। ३ँ यं ४ सों सोममेधाभ्यां नम:—भ्रूमध्य में। ३ँ कं ५ अं अङ्गारकरक्ताभ्यां नम:—नेत्रत्रय में। ३ँ चं ५ बुधज्ञानरूपाभ्यां नम:—हृदय के ऊपर। ३ँ टं ५ बृं वृहस्पतियशस्विनीभ्यां नम:—कण्ठ में। ३ँ तं ५ शुं शुक्राह्लादिनीभ्यां नम:—हृदय में। ३ँ पं ५ शं शनैश्चरशक्तिभ्यां नम:—नाभि में। ३ँ शं ४ रां राहुकृष्णाभ्यां नम:—वक्ष पर। ३ँ ळंक्षं कें केतुवायवीभ्यां नम:—गुह्य में।

अथ नक्षत्रन्यास:—३ँ अंआं अश्विन्यै नमो ललाटे। ३ँ इं भरण्यै नमो दक्षनेत्रे। ३ँ ईंउंऊं कृत्तिकायै नमो वामनेत्रे। ३ँ ऋंॠंऌंॡं रोहिण्यै नमो दक्षकर्णे। ३ँ एं मृगशीर्षायै नमो वामकर्णे। ३ँ ऐं आर्द्रायै नमो दक्षनासिकायां। ३ँ ओंऔं पुनर्वसवे नमो वामनासिकायां। ३ँ कं पुष्यायै नमो कण्ठे। ३ँ खंगं अश्लेषायै नमो दक्षस्कन्धे। ३ँ घंङं मघायै नमो वामस्कन्धे। ३ँ चं पूर्वाफाल्गुन्यै नमो दक्षकूर्परे। ३ँ छंजं उत्तराफाल्गुन्यै नमो वामकूर्परे। ३ँ झंञं हस्तायै नमो दक्षमणिबन्धे। ३ँ टंठं चित्रायै नमो वाममणिबन्धे। ३ँ डं स्वात्यै नमो दक्षहस्ततले। ३ँ ढंणं विशाखायै नमो वामहस्ततले। ३ँ तंथंदं अनुराधायै नमो नाभौ। ३ँ धं ज्येष्ठायै नमो दक्षकटौ। ३ँ नंपंफं मूलायै नामे वामकटौ। ३ँ बं पूर्वाषाढायै नमो दक्षोरौ। ३ँ भं उत्तराषाढायै नमो वामोरौ। ३ँ मं श्रवणाय नमो दक्षजानुनि। ३ँ यंरं धनिष्ठायै नमो वामजानुनि। ३ँ लं शतभिषायै नमो दक्षगुल्फे। ३ँ वंशं पूर्वाभाद्रपदायै नमो वामगुल्फे। ३ँ षंसंहं उत्तराभाद्रपदायै नमो दक्षपादतले। ३ँ ळंक्षं रेवत्यै नमो वामपादतले।

नक्षत्रन्यास—३ँ अंआं अश्विन्यै नम:—ललाट में। ३ँ इं भरण्यै नम:—दक्ष नेत्र में। ३ँ ईंउंऊं कृत्तिकायै नम:—वाम नेत्र में। ३ँ ऋंॠंऌंॡं रोहिण्यै नम:—दक्ष कर्ण में। ३ँ एं मृगशीर्षायै नम:—वाम कर्ण में। ३ँ ऐं आर्द्रायै नम:— दक्ष नासिका में। ३ँ ओंऔं पुनर्वसवे नम:—वाम नासिका में। ३ँ कं पुष्यायै नम:—कण्ठ में। ३ँ खंगं अश्लेषायै नम:—दक्ष स्कन्ध में। ३ँ घंङं मघायै नम:—वाम स्कन्ध में। ३ँ चं पूर्वाफाल्गुन्यै नम:—दक्ष कूर्पर में। ३ँ छंजं उत्तराफाल्गुन्यै नम:—वाम कूर्पर

में। ३ँ झंजं हस्तायै नमः—दक्ष मणिबन्ध में। ३ँ टंठं चित्रायै नमः—वाम मणिबन्ध में। ३ँ डं स्वात्यै नमः—दक्ष हस्ततल में। ३ँ ढंणं विशाखायै नमः—वाम हस्ततल में। ३ँ तंथंदं अनुराधायै नमः—नाभि में। ३ँ धं ज्येष्ठायै नमः—दक्ष कटि में। ३ँ नंपंफं मूलायै नमः—वाम कटि में। ३ँ बं पूर्वाषाढायै नमः—दक्ष ऊरु में। ३ँ भं उत्तराषाढायै नमः—वाम ऊरु में। ३ँ मं श्रवणाय नमः—दक्ष जानु में। ३ँ यंरं धनिष्ठायै नमः—वाम जानु में। ३ँ लं शतभिषायै नमः—दक्ष गुल्फ में। ३ँ वंशं पूर्वाभाद्रपदायै नमः—वाम गुल्फ में। ३ँ षंसंहं उत्तराभाद्रपदायै नमः—दक्ष पादतल में। ३ँ ळंक्षं रेवत्यै नमः—वाम पादतल में।

अथ योगिनीन्यासः—३ँ अं १६ डमलवरयूं डाकिन्यै मां रक्ष २ त्वगात्मने नमः कण्ठे। ३ँ कं ५ चं५ टंठं रांरींरूंरमलवरयूं राकिण्यै मां रक्ष २ असृगात्मने नमो हृदये। ३ँ डंढंणंतं ५ पंफं लां लांलींलूंलमलवरयूं लाकिन्यै मां रक्ष २ मांसात्मने नमः नाभौ। ३ँ बंभंमंयंरंलं कांकींकूंकमलवरयूं काकिन्यै मां रक्ष २ मेदात्मने नमः स्वाधिष्ठाने। ३ँ वंशंषंसं सांसासूंसमलवरयूं साकिन्यै मां रक्ष २ मज्जात्मने नमो मूलाधारे। ३ँ हंळंक्षं हांहींहूंहमलवरयूं हाकिन्यै मां रक्ष २ अस्थ्यात्मने नमो भ्रूमध्ये। एवमसृक्मांसमेदमज्जास्थीनि राकिण्यादिषु योज्यानि।

योगिनीन्यास—३ँ अं १६ डमलवरयूं डाकिन्यै मां रक्ष रक्ष त्वगात्मने नमः—कण्ठ में। ३ँ कं ५ चं५ टंठं रांरींरूंर-मलवरयूं राकिण्यै मां रक्ष रक्ष असृगात्मने नमः—हृदय में। ३ँ डंढंणंतं ५ पंफं लां लांलींलूंलमलवरयूं लाकिन्यै मां रक्ष रक्ष मांसात्मने नमः—नाभि में। ३ँ बंभंमंयंरंलं कांकींकूंकनलवरयूं काकिन्यै मां रक्ष रक्ष मेदात्मने नमः—स्वाधिष्ठान में। ३ँ वंशंषंसं सांसासूंसमलवरयूं साकिन्यै मां रक्ष रक्ष मज्जात्मने नमः—मूलाधार में। ३ँ हंळंक्षं हांहींहूंहमलवरयूं हाकिन्यै मां रक्ष रक्ष अस्थ्या-त्मने नमः—भ्रूमध्य में। इसी प्रकार असृक् मांस मेद मज्जा अस्थियों को राकिणी आदि के साथ जोड़ना चाहिए।

अथ राशिन्यासः—३ँ अंआंइंईं मेषराशये नमो दक्षपादे। ३ँ उंऊं वृषराशये नमो दक्षवृषणे। ३ँ ऋंॠंऌंॡं मिथुनराशये नमो दक्षकुक्षौ। ३ँ एंऐं कर्कटराशये नमो दक्षोरसि। ३ँ ओंऔं सिंहराशये नमो दक्ष-बाहुमूले। ३ँ अंअः शं ६ कन्याराशये नमो दक्षमस्तके। ३ँ कं ५ तुलाराशये नमो वाममस्तके। ३ँ चं ५ वृश्चिकराशये नमो वामबाहुमूले। ३ँ टं ५ धनूराशये नमो वामहृदये। ३ँ तं ५ मकरराशये नमो वामकुक्षौ। ३ँ पं ५ँ कुम्भराशये नमो वामवृषणे। ३ँ यं ४ मीनराशये नमो वामपादे।

राशिन्यास—३ँ अंआंइंईं मेषराशये नमः—दक्षपाद में। ३ँ उंऊं वृषराशये नमः—दक्ष वृषण में। ३ँ ऋंॠंऌंॡं मिथुनराशये नमः—दक्ष कुक्षि में। ३ँ एंऐं कर्कटराशये नमः—दक्ष ऊरु में। ३ँ ओंऔं सिंहराशये नमः—दक्ष बाहुमूल में। ३ँ अंअः शं ६ कन्याराशये नमः—दक्ष मस्तक में। ३ँ कं ५ तुलाराशये नमः—वाम मस्तक में। ३ँ चं ५ वृश्चिकराशये नमः—वाम बाहुमूल में। ३ँ टं ५ धनूराशये नमः—वाम हृदय में। ३ँ तं ५ मकरराशये नमः—वाम कुक्षि में। ३ँ पं ५ँ कुम्भराशये नमः—वाम वृषण में। ३ँ यं ४ मीनराशये नमः—वाम पाद में।

अथ पीठन्यासः—३ँ अं वाराणसीपीठाय नमः। ३ँ आं कामरूपपीठाय नमः। ३ँ इं नेपालपीठाय नमः। ३ँ ईं पौण्ड्रवर्धनपीठाय नमः। ३ँ उं पुरस्थिरपीठाय नमः। ३ँ ऊं कान्यकुब्जपीठाय नमः। ३ँ ऋं पूर्णशैलपीठाय नमः। ३ँ ॠं अर्बुधपीठाय नमः। ३ँ ऌं आम्रातकेश्वरपीठाय नमः। ३ँ ॡं एकाम्रपीठाय नमः। ३ँ एं तिस्रोतःपीठाय नमः। ३ँ ऐं कामकोटिपीठाय नमः। ३ँ ओं भृगुनगरपीठाय नमः। ३ँ औं केदारपीठाय नमः। ३ँ अं चन्द्रपुरपीठाय नमः। ३ँ अः श्रीपुरपीठाय नमः। ३ँ कं ओंकारपीठाय नमः। ३ँ खं जालन्धरपीठाय नमः। ३ँ गं मालवपीठाय नमः। ३ँ घं भद्रपीठाय नमः। ३ँ ङं देवीकोटपीठाय नमः। ३ँ चं गोकर्णपीठाय नमः। ३ँ छं मारुतेश्वरपीठाय नमः। ३ँ जं मङ्गलकोटपीठाय नमः। ३ँ झं अट्टहासपीठाय नमः। ३ँ ञं सवीरजपीठाय नमः। ३ँ टं राजगृहपीठाय नमः। ३ँ ठं महापथपीठाय नमः। ३ँ डं कोलागिरिपीठाय नमः। ३ँ ढं ऐलापुरपीठाय नमः। ३ँ णं वाणीश्वरपीठाय नमः। ३ँ तं जयन्तीपीठाय नमः। ३ँ थं उज्जयिनीपीठाय नमः। ३ँ दं चरित्रापीठाय नमः। ३ँ धं क्षीरिकापीठाय नमः। ३ँ नं हस्तिनापुरपीठाय नमः। ३ँ पं उड्डीशपीठाय नमः। ३ँ फं प्रयागपीठाय नमः। ३ँ बं षष्ठीपुरपीठाय नमः। ३ँ भं मायापुरपीठाय नमः। ३ँ मं जलेश्वरपीठाय नमः। ३ँ यं मलयगिरिपीठाय नमः। ३ँ रं श्रीशैलपीठाय

नमः। ३ँ लं महामेरुपीठाय नमः। ३ँ वं गिरिपीठाय नमः। ३ँ शं महेन्द्रपीठाय नमः। ३ँ षं वामनपीठाय नमः। ३ँ सं हिरण्यपीठाय नमः। ३ँ हं महालक्ष्मीपुरपीठाय नमः। ३ँ ळं उड्डीयानपुरपीठाय नमः। ३ँ क्षं छायाच्छत्रपीठाय नमः। एतानि नमोन्तानि मातृकास्थानेषु कर्तव्यानीति षोढान्यासः। अयं षोढान्यासो मातृकान्यासानन्तरं कर्तव्य इति।

पीठन्यास—३ँ अं वाराणसीपीठाय नमः, ३ँ आं कामरूपपीठाय नमः। ३ँ इं नेपालपीठाय नमः, ३ँ ईं पौण्ड्रवर्धनपीठाय नमः, ३ँ उं पुरस्थिरपीठाय नमः, ३ँ ऊं कान्यकुब्जपीठाय नमः, ३ँ ऋं पूर्णशैलपीठाय नमः, ३ँ ॠं अर्बुधपीठाय नमः, ३ँ ऌं आम्रातकेश्वरपीठाय नमः, ३ँ ॡं एकाम्रपीठाय नमः, ३ँ एं तिस्रोतःपीठाय नमः, ३ँ ऐं कामकोटिपीठाय नमः, ३ँ ओं भृगुनगरपीठाय नमः, ३ँ औं केदारपीठाय नमः, ३ँ अं चन्द्रपुरपीठाय नमः, ३ँ अः श्रीपुरपीठाय नमः, ३ँ कं ओंकारपीठाय नमः, ३ँ खं जालन्धरपीठाय नमः, ३ँ गं मालवपीठाय नमः, ३ँ घं भद्रपीठाय नमः, ३ँ ङं देवीकोटपीठाय नमः, ३ँ चं गोकर्णपीठाय नमः, ३ँ छं मारुतेश्वरपीठाय नमः, ३ँ जं मङ्गलकोटपीठाय नमः, ३ँ झं अट्टहासपीठाय नमः, ३ँ ञं सवीरजपीठाय नमः, ३ँ टं राजगृहपीठाय नमः, ३ँ ठं महापथपीठाय नमः, ३ँ डं कोलागिरिपीठाय नमः, ३ँ ढं ऐलापुरपीठाय नमः, ३ँ णं वाणीश्वरपीठाय नमः, ३ँ तं जयन्तीपीठाय नमः, ३ँ थं उज्जयिनीपीठाय नमः, ३ँ दं चरित्रापीठाय नमः, ३ँ धं क्षीरिकापीठाय नमः, ३ँ नं हस्तिनापुरपीठाय नमः, ३ँ पं उड्डीशपीठाय नमः, ३ँ फं प्रयागपीठाय नमः, ३ँ बं षष्ठीपुरपीठाय नमः, ३ँ भं मायापुरपीठाय नमः, ३ँ मं जलेश्वरपीठाय नमः, ३ँ यं मलयगिरिपीठाय नमः, ३ँ रं श्रीशैलपीठाय नमः, ३ँ लं महामेरुपीठाय नमः, ३ँ वं गिरिपीठाय नमः, ३ँ शं महेन्द्रपीठाय नमः, ३ँ षं वामनपीठाय नमः, ३ँ सं हिरण्यपीठाय नमः, ३ँ हं महालक्ष्मीपुरपीठाय नमः, ३ँ ळं उड्डीयानपुरपीठाय नमः, ३ँ क्षं छायाच्छत्रपीठाय नमः—यह षोढ़ा न्यास मातृका स्थानों में करना चाहिए। साथ ही इसे मातृका न्यास के बाद करना चाहिए।

अथ त्रिपुरान्यासः—तथाच तन्त्रान्तरे 'त्रिपुरान्यासं ततः कुर्यात् सर्वकामार्थसिद्धये। आसां तु न्यासमात्रेण सदाशिवो भवेन्नरः'। ३ँ अं कामिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ आं मालिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ इं मदनात्रिपुरायै नमः। ३ँ ईं उन्मादिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ उं द्राविणीत्रिपुरायै नमः। ३ँ ऊं खेचरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ ऋं घण्टिकात्रिपुरायै नमः। ३ँ ॠं कलावतीत्रिपुरायै नमः। ३ँ ऌं क्लेदिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ ॡं शिवदूतीत्रिपुरायै नमः। ३ँ एं सुभगात्रिपुरायै नमः। ३ँ ऐं भगावहात्रिपुरायै नमः। ३ँ ओं विद्येश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ औं सिद्धीश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ अं उग्रात्रिपुरायै नमः। ३ँ अः महोग्रात्रिपुरायै नमः। ३ँ कं कपालिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ खं व्यापिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ गं सुभगात्रिपुरायै नमः। ३ँ घं वागीश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ ङं कालिकात्रिपुरायै नमः। ३ँ चं पिङ्गलात्रिपुरायै नमः। ३ँ छं भगसर्पिणीत्रिपुरायै नमः। ३ँ जं सुन्दरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ झं नीलपताकात्रिपुरायै नमः। ३ँ ञं महासिद्धेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ टं अमोघात्रिपुरायै नमः। ३ँ ठं रत्नमालात्रिपुरायै नमः। ३ँ डं मङ्गलात्रिपुरायै नमः। ३ँ ढं विजयात्रिपुरायै नमः। ३ँ णं भगमालिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ तं रौद्रीत्रिपुरायै नमः। ३ँ थं योगेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ दं अम्बिकात्रिपुरायै नमः। ३ँ धं अट्टहासात्रिपुरायै नमः। ३ँ नं व्योमव्यापिनीत्रिपुरायै नमः। ३ँ पं वज्रेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ फं क्षोभिणीत्रिपुरायै नमः। ३ँ बं शाम्भवीत्रिपुरायै नमः। ३ँ भं अनङ्गात्रिपुरायै नमः। ३ँ मं लोकेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ३ँ यं रक्तात्रिपुरायै नमः। ३ँ रं सुस्थात्रिपुरायै नमः। ३ँ लं शुक्लात्रिपुरायै नमः। ३ँ वं अपराजितात्रिपुरायै नमः। ३ँ शं संवर्तात्रिपुरायै नमः। ३ँ षं विमलात्रिपुरायै नमः। ३ँ सं अघोरात्रिपुरायै नमः। ३ँ हं भैरवीत्रिपुरायै नमः। ३ँ ळं अमोघात्रिपुरायै नमः। ३ँ क्षं सर्वाकर्षिणीत्रिपुरायै नमः। एता नमोऽन्तेन मातृकास्थानेषु विन्यसेत्।

त्रिपुरान्यास—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि समस्त काम एवं अर्थ की सिद्धि के लिये त्रिपुरान्यास करना चाहिये। इस न्यास को करने मात्र से ही साधक साक्षात् सदाशिव के समान हो जाता है। मातृका स्थानों में यह न्यास इस प्रकार होता है—३ँ अं कामिनीत्रिपुरायै नमः, ३ँ आं मालिनीत्रिपुरायै नमः, ३ँ इं मदनात्रिपुरायै नमः, ३ँ ईं उन्मादिनीत्रिपुरायै नमः, ३ँ उं द्राविणीत्रिपुरायै नमः, ३ँ ऊं खेचरीत्रिपुरायै नमः, ३ँ ऋं घण्टिकात्रिपुरायै नमः, ३ँ ॠं कलावतीत्रिपुरायै नमः, ३ँ ऌं क्लेदिनीत्रिपुरायै नमः, ३ँ ॡं शिवदूतीत्रिपुरायै नमः, ३ँ एं सुभगात्रिपुरायै नमः, ३ँ ऐं भगावहात्रिपुरायै नमः, ३ँ ओं विद्येश्वरीत्रिपुरायै नमः, ३ँ औं सिद्धीश्वरीत्रिपुरायै नमः, ३ँ अं उग्रात्रिपुरायै नमः, ३ँ अः महोग्रात्रिपुरायै नमः, ३ँ कं कपालिनीत्रिपुरायै नमः, ३ँ खं

व्यापिनीत्रिपुरायै नमः, इँ गं सुभगात्रिपुरायै नमः, इँ घं वागीश्वरीत्रिपुरायै नमः, इँ ङं कालिकात्रिपुरायै नमः, इँ चं पिङ्गलात्रिपुरायै नमः, इँ छं भगसर्पिणीत्रिपुरायै नमः, इँ जं सुन्दरीत्रिपुरायै नमः, इँ झं नीलपताकात्रिपुरायै नमः, इँ ञं महासिद्धेश्वरीत्रिपुरायै नमः, इँ टं अमोघात्रिपुरायै नमः, इँ ठं रत्नमालात्रिपुरायै नमः, इँ डं मङ्गलात्रिपुरायै नमः, इँ ढं विजयात्रिपुरायै नमः, इँ णं भगमालिनीत्रिपुरायै नमः, इँ तं रौद्रीत्रिपुरायै नमः, इँ थं योगेश्वरीत्रिपुरायै नमः, इँ दं अम्बिकात्रिपुरायै नमः, इँ धं अट्टहासात्रिपुरायै नमः, इँ नं व्योमव्यापिनीत्रिपुरायै नमः, इँ पं वज्रेश्वरीत्रिपुरायै नमः, इँ फं क्षोभिणीत्रिपुरायै नमः, इँ बं शाम्भवीत्रिपुरायै नमः, इँ भं अनङ्गात्रिपुरायै नमः, इँ मं लोकेश्वरीत्रिपुरायै नमः, इँ यं रक्तात्रिपुरायै नमः, इँ रं सुस्थात्रिपुरायै नमः, इँ लं शुक्लात्रिपुरायै नमः, इँ वं अपराजितात्रिपुरायै नमः, इँ शं संवर्तात्रिपुरायै नमः, इँ षं विमलात्रिपुरायै नमः, इँ सं अघोरात्रिपुरायै नमः, इँ हं भैरवीत्रिपुरायै नमः, इँ ळं अमोघात्रिपुरायै नमः, इँ क्षं सर्वाकर्षिणीत्रिपुरायै नमः।

अथ कामरतिन्यासः। यथा—ऐंह्रींश्रींक्लीं अं कामरतिभ्यां नमः। ४ँ आं कामदप्रीतिभ्यां नमः। ४ँ इं कान्तकामिनीभ्यां नमः। ४ँ ईं भ्रान्तिमोहिनीभ्यां नमः। ४ँ उं काममधुकरकलाभ्यां नमः। ४ँ ऊं कामाचारविलासिनीभ्यां नमः। ४ँ ऋं कामिकल्पलताभ्यां नमः। ४ँ ॠं कोमलश्यामलाभ्यां नमः। ४ँ ऌं कामवर्द्धकशुचिस्मिताभ्यां नमः। ४ँ ॡं कामविजयाभ्यां नमः। ४ँ एं रमणविशालाक्षीभ्यां नमः। ४ँ ऐं भ्रमणलेलिहानाभ्यां नमः। ४ँ ओं रतिनाथदिगम्बराभ्यां नमः। ४ँ औं रतिप्रियरमाभ्यां नमः। ४ँ अं रात्रिनाथकुब्जिकाभ्यां नमः। ४ँ अः स्मरसेनकान्ताभ्यां नमः। ४ँ कं रमणनित्याभ्यां नमः। ४ँ खं निशाचरकल्याणीभ्यां नमः। ४ँ गं नन्दकमोहिनीभ्यां नमः। ४ँ घं नन्दनकामदाभ्यां नमः। ४ँ ङं मदनसुलोचनाभ्यां नमः। ४ँ चं नन्दयितृसुलापिनीभ्यां नमः। ४ँ छं निशाचरमर्दिनीभ्यां नमः। ४ँ जं रतिसखकलहप्रियाभ्यां नमः। ४ँ झं पुष्पधन्ववराक्षीभ्यां नमः। ४ँ ञं महाधनुःसुमुखीभ्यां नमः। ४ँ टं भ्रामणीनलिनीभ्यां नमः। ४ँ ठं भ्रमणजटिनीभ्यां नमः। ४ँ डं भ्रममाणपालिनीभ्यां नमः। ४ँ ढं भ्रमशिखिनीभ्यां नमः। ४ँ झं भ्रान्तमुग्धाभ्यां नमः। ४ँ तं भ्रामकरमाभ्यां नमः। ४ँ थं भृङ्गभ्रमाभ्यां नमः। ४ँ दं भ्रान्तचारलोलाभ्यां नमः। ४ँ धं भ्रमावहसुचञ्चलाभ्यां नमः। ४ँ न मोहनदीर्घजिह्वाभ्यां नमः। ४ँ पं मेचकमद्रिभ्यां नमः। ४ँ फं मुग्धलोलाक्षीभ्यां नमः। ४ँ बं मोहवर्धनभृङ्गिनीभ्यां। ४ँ भं मोहकपाटलाभ्यां नमः। ४ँ मं मन्मथमदनाभ्यां नमः। ४ँ यं मतङ्गमालिनीभ्यां नमः। ४ँ रं भृङ्गनायक-हंसिनीभ्यां नमः। ४ँ लं गायकविश्वतोमुखीभ्या नमः। ४ँ वं गीतजगदानन्दिनीभ्यां नमः। ४ँ शं नर्तकरञ्जिनीभ्यां नमः। ४ँ षं लोककान्तिभ्यां नमः। ४ँ सं उन्मत्तकलकण्ठीभ्यां नमः। ४ँ हं मत्तकवृकोदरीभ्यां नमः। ४ँ ळं विलासिमेघश्यामाभ्यां नमः। ४ँ क्षं कामवर्धनसोन्मत्ताभ्यां नमः। एता नमोऽन्ता मातृकास्थानेषु विन्यसेत्।

कामरतिन्यास—कामरति न्यास मातृका स्थानों में इस प्रकार किया जाता है—ऐंह्रींश्रींक्लीं अं कामरतिभ्यां नमः, ४ँ आं कामदप्रीतिभ्यां नमः, ४ँ इं कान्तकामिनीभ्यां नमः, ४ँ ईं भ्रान्तिमोहिनीभ्यां नमः, ४ँ उं काममधुकरकलाभ्यां नमः, ४ँ ऊं कामाचारविलासिनीभ्यां नमः, ४ँ ऋं कामिकल्पलताभ्यां नमः, ४ँ ॠं कोमलश्यामलाभ्यां नमः, ४ँ ऌं कामवर्द्धकशुचिस्मिताभ्यां नमः, ४ँ ॡं कामविजयाभ्यां नमः, ४ँ एं रमणविशालाक्षीभ्यां नमः, ४ँ ऐं भ्रमणलेलिहानाभ्यां नमः, ४ँ ओं रतिनाथदिगम्बराभ्यां नमः, ४ँ औं रतिप्रियरमाभ्यां नमः, ४ँ अं रात्रिनाथकुब्जिकाभ्यां नमः, ४ँ अः स्मरसेनकान्ताभ्यां नमः, ४ँ कं रमणनित्याभ्यां नमः, ४ँ खं निशाचरकल्याणीभ्यां नमः, ४ँ गं नन्दकमोहिनीभ्यां नमः, ४ँ घं नन्दनकामदाभ्यां नमः, ४ँ ङं मदनसुलोचनाभ्यां नमः, ४ँ चं नन्दयितृसुलापिनीभ्यां नमः, ४ँ छं निशाचरमर्दिनीभ्यां नमः, ४ँ जं रतिसखकलहप्रियाभ्यां नमः, ४ँ झं पुष्पधन्ववराक्षीभ्यां नमः, ४ँ ञं महाधनुःसुमुखीभ्यां नमः, ४ँ टं भ्रामणीनलिनीभ्यां नमः, ४ँ ठं भ्रमणजटिनीभ्यां नमः, ४ँ डं भ्रममाणपालिनीभ्यां नमः, ४ँ ढं भ्रमशिखिनीभ्यां नमः, ४ँ झं भ्रान्तमुग्धाभ्यां नमः, ४ँ तं भ्रामकरमाभ्यां नमः, ४ँ थं भृङ्गभ्रमाभ्यां नमः, ४ँ दं भ्रान्तचारलोलाभ्यां नमः, ४ँ धं भ्रमावहसुचञ्चलाभ्यां नमः, ४ँ न मोहनदीर्घजिह्वाभ्यां नमः, ४ँ पं मेचकमद्रिभ्यां नमः, ४ँ फं मुग्धलोलाक्षीभ्यां नमः, ४ँ बं मोहवर्धनभृङ्गिनीभ्यां, ४ँ भं मोहकपाटलाभ्यां नमः, ४ँ मं मन्मथमदनाभ्यां नमः, ४ँ यं मतङ्गमालिनीभ्यां नमः, ४ँ रं भृङ्गनायकहंसिनीभ्यां नमः, ४ँ लं गायकविश्वतोमुखीभ्या नमः, ४ँ वं गीतजगदानन्दिनीभ्यां नमः, ४ँ शं नर्तकरञ्जिनीभ्यां नमः, ४ँ षं लोककान्तिभ्यां नमः, ४ँ सं उन्मत्तकलकण्ठीभ्यां नमः, ४ँ हं मत्तकवृकोदरीभ्यां नमः, ४ँ ळं विलासिमेघश्यामाभ्यां नमः, ४ँ क्षं कामवर्धनसोन्मत्ताभ्यां नमः।

अथ षोडशनित्यान्यास:। षोडशनित्या यथा ज्ञानार्णवे—

प्रथमा सुन्दरी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी। कामेश्वरी समाख्याता तथैव भगमालिनी ॥१॥
नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा तथैव वह्निवासिनी। वज्रेश्वरी च दूती च त्वरिता कुलसुन्दरी ॥२॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला। ज्वालामालिनिचित्रान्ता: पञ्चदश: प्रकीर्तिता: ॥३॥ इति।

एतासां मन्त्रास्तु ज्ञानार्णवे—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्यामण्डलमुत्तमम्। (१) बालां तारं च हृत्प्रान्ते कामेश्वरिपदं वदेत् ॥१॥
इच्छाकामफलस्यान्ते प्रदे सर्वपदं तत:। तत: सत्त्ववशं भूय: करि सर्वजगत्पदम् ॥२॥
क्षोभणान्ते करि ब्रूयाद्धुंकारत्रयमालिखेत्। पञ्चबाणान् समालिख्य संहारेण कुमारिकाम् ॥३॥
एषा कामेश्वरी नित्या प्रसङ्गात्कथिता शिवे। (२) वाग्भवं भगशब्दान्ते भुजे भगिनि चालिखेत् ॥४॥
भगोदरि भगाङ्गे च भगमाले भगावहे। भगगुह्ये भगप्रान्ते तथायोनि भगान्तिके ॥५॥
निपातिनि च सर्वान्ते ततो भगवशङ्करि। भगरूपे ततो लेख्यं नीरजायतलोचने ॥६॥
नित्याक्लिन्ने भगप्रान्ते स्वरूपे सर्व चालिखेत्। भगानि भे ह्यानयान्ते वदरेऽथ समालिखेत् ॥७॥
रेते सुरेते च भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे तत:। क्लेदय द्रावय चाथ सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ॥८॥
अमोघे भगविच्चे च क्षुभ क्षोभय सर्व च। सत्त्वान् भगेश्वरि ब्रूयाद्वाग्भवं ब्लूंजमादिकम् ॥९॥
भेंब्लूंमोंब्लूं च हेंब्लूंहें च क्लिन्ने तत: परम्। सर्वाणि च भगान्यन्ते मे वशमानयेति च ॥१०॥
स्त्रींबीजं च हरप्रान्ते बलेमात्मकमक्षरम्। भुवनेशीं समालिख्य विद्येयं भगमालिनी ॥११॥
(३) पराबीजं समुच्चार्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे। अग्निजायान्वितो मन्त्रो नित्यक्लिन्नेयमीरिता ॥१२॥
(४) प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तथाङ्कुशयुगं वदेत्। तन्मध्ये विलिखेद् देवि हरोमात्मकमक्षरम् ॥१३॥
चवर्गमन्त्यहीनं च विलिखेद्वह्निसंस्थितम्। चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादाङ्कितं पृथक् ॥१४॥
वह्निजायान्विता विद्या भेरुण्डा देवता भवेत्। (५) परां विलिख्य वह्न्यनुवासिन्यै नम इत्यपि ॥१५॥
अष्टार्णेयं महेशानि देवता वह्निवासिनी। (६) नित्यक्लिन्नां समालिख्य मुखे तारं समालिखेत् ॥१६॥
हल्लेखान्ते फरेमान्ते चन्द्रबीजं विसर्गवत्। चतुर्दशाक्षरी विद्या देवी वज्रेश्वरी भवेत् ॥१७॥
(७) पराबीजं समुच्चार्य शिवदूती च ङेयुता। हृदन्तोऽयं मनुर्देवि दूती(त्या:) सर्वसमृद्धिद: ॥१८॥
(८) ॐकारबीजमुच्चार्य परां कवचमालिखेत्। खे च छे क्ष: समालिख्य स्त्रींबीजं च समालिखेत् ॥१९॥
हुंकारं क्षे परां चास्त्रं विद्येयं त्वरिता भवेत्। (९) सर्वसिंहासनमयी बालैव कुलसुन्दरी ॥२०॥
(१०) बालया पुटितं कुर्यात्तथा वै नित्यभैरवीम्। पञ्चबाणांश्च देवेशि नित्या शक्राक्षरी भवेत् ॥२१॥
पञ्चाक्षरी बाणबीजैर्नित्येयमपरा भवेत्। (११) प्रणवं भुवनेशानीं फरेमात्मकमक्षरम् ॥२२॥
ब्लूमात्मकं द्वितीयं च भुवनेश्यङ्कुशं तत:। नित्यशब्दं समुद्धृत्य संबोध्या च मदद्रवा ॥२३॥
कवचं चाङ्कुशं माया नित्या नीलपताकिनी। (१२) बान्तं कालसमायुक्तं रेफं शक्रस्वरान्वितम् ॥२४॥
बिन्दुनादाङ्कितं देवी विद्येयं विजया भवेत्।

यद्वा—

बान्तं कालाग्निवायुश्च शक्रस्वरविभूषित:। नादबिन्दुकलायुक्तो विद्येयं विजया भवेत् ॥२५॥
(१३) चन्द्रं वारुणसंयुक्तं तारबीजं समालिखेत्। चतुर्थ्यन्तां ततो देवि विलिखेत्सर्वमङ्गलाम् ॥२६॥
हृदन्तोऽयं मनुर्देवि विद्येयं सर्वमङ्गला। (१४) तारं हृद्भगवत्यन्ते ज्वालामालिनि देवि च ॥२७॥
द्विरुच्चार्य च सर्वान्ते भूतसंहारकारिके। जातवेदसि संलिख्य ज्वलन्तिपदयुग्मकम् ॥२८॥
ज्वलेति प्रज्वलद्वन्द्वं हुंकारत्रयमालिखेत्। वह्निबीजत्रयं हुं च अस्त्रस्वाहान्तिवो मनु: ॥२९॥

इयं नित्या महादेवि ज्वालामालिनिका परा। (१५) कवर्गान्तं स्वरान्तं च शक्रस्वरविभूषितम् ॥३०॥
बिन्दुनादकलाक्रान्तं विचित्रा परमेश्वरि। अकारादिषु सर्वेषु स्वरेषु क्रमतो यजेत् ॥३१॥
(१६) अःस्वरे परमेशानि श्रीविद्यां विश्वविग्रहाम्। स्वरवद्विन्यसेद्विद्यां नीरजायतलोचने ॥३२॥
एतेन ताः षोडशसु स्वरस्थानेषु विन्यसेत्।

यथा—(१) ॐऐंह्रींश्रींअंऐंक्लींसौः ॐनमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वजगत्क्षोभणकरि हुंहुंहुंद्रांद्रींक्लींब्लूंसःसौःक्लींऐं (४६) कामेश्वरीनित्याकलायै नमः। (२) ४ँ आं ऐं भगभुजे भगिनि भगोदरि भगाङ्गे भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐंब्लूंजंब्लूंभेंब्लूंमोंब्लूंहेंब्लूंहें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रींहरब्लेंह्रीं (१४५) भगमालिनीनित्याकलायै नमः। (३) ४ँ इं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा (११) नित्यक्लिन्नाकलायै नमः। (४) ४ँ ईँ ॐँ क्रोँ ह्रौँ क्रोँ च्रौँ छ्रौँ ज्रौँ झ्रौँ स्वाहा (१०) भेरुण्डानित्याकलायै नमः। (५) ४ँ उं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः (८) वह्निवासिनीनित्याकलायै नमः। (६) ४ँ ॐ ॐ ह्रीं फ्रेंसः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा (१४) वज्रेश्वरीनित्याकलायै नमः। (७) ४ँ ॠं ह्रीं शिवदूत्यै नमः (७) शिवदूतीनित्याकलायै नमः। (८) ४ँ ॠं ॐह्रींहुंखेचछेक्षःस्त्रींहुंक्षेह्रीं फट् (१२) त्वरितानित्याकलायै नमः। (९) ४ँ ऌं ऐंक्लींसौः कुलसुन्दरीनित्याकलायै नमः। (१०) ४ँ ॡं ऐंक्लींसौः हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः द्रांद्रींक्लींब्लूंसः सौःक्लींऐं नित्यानित्याकलायै नमः। अथवा ऐंह्रींश्रींॡं द्रांद्रींक्लींब्लूंसः नित्येत्यादि। (११) ४ँ एं ॐह्रींफ्रेंब्लूंह्रींक्रों नित्यमदद्रवे हुंक्रोंह्रीं नीलपताकानित्याकलायै नमः। (१२) ४ँ ऐं भमरौं विजयानित्याकलायै नमः। अथवा ४ँ ऐं भमरयौं विजयेत्यादि। (१३) ४ँ ओं स्वों सर्वमङ्गलायै नमः सर्वमङ्गलानित्याकलायै नमः। (१४) ४ँ औं ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवि २ सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति २ ज्वल २ प्रज्वल २ हुंहुंहुं रंरंरं हुंफट् स्वाहा ज्वालामालिनीनित्यकलायै नमः। (१५) ४ँ अं चकौँ विचित्रानित्याकलायै नमः। (१६) ४ँ अः मूलविद्यामुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीनित्याकलायै नमः। यद्वा—४ँ अः कामेश्वरीनित्याकलायै नमः। इति षोडशविद्यान्यासः। अस्मिन् काले वा सृष्टिस्थितिन्यासः कार्यः।

षोडश नित्या न्यास—ज्ञानार्णव में षोडश नित्यायें इस प्रकार कही गई हैं—प्रथम स्थान पर त्रिपुरसुन्दरी हैं। शेष भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, वज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्यानित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनी और चित्रा—ये पन्द्रह नित्यायें हैं।

ज्ञानार्णव के अनुसार इनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. ॐऐंह्रींश्रींअंऐंक्लींसौः ॐनमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वजगत्क्षोभणकरि हुंहुंहुंद्रांद्रींक्लींब्लूंसः-सौःक्लींऐं (४६) कामेश्वरीनित्याकलायै नमः।

२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आं ऐं भगभुजे भगिनि भगोदरि भगाङ्गे भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभग-वशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐंब्लूंजंब्लूंभेंब्लूंमोंब्लूंहेंब्लूंहें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं-हरब्लेंह्रीं (१४५) भगमालिनीनित्याकलायै नमः।

३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा (११) नित्यक्लिन्नाकलायै नमः।

४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईँ ॐँ क्रोँ ह्रौँ क्रोँ च्रौँ छ्रौँ ज्रौँ झ्रौँ स्वाहा (१०) भेरुण्डानित्याकलायै नमः।

५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः (८) वह्निवासिनीनित्याकलायै नमः।

६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ ॐ ह्रीं फ्रेंसः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा (१४) वज्रेश्वरीनित्याकलायै नमः।

७. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॠं ह्रीं शिवदूत्यै नमः (७) शिवदूतीनित्याकलायै नमः।

८. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॠं ॐह्रींहुंखेचछेक्षःस्त्रींहुंक्षेह्रीं फट् (१२) त्वरितानित्याकलायै नमः।

९. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लं ऐंक्लींसौः कुलसुन्दरीनित्याकलायै नमः।

१०. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लूं ऐंक्लींसौः हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः द्रांद्रींक्लींब्लूंसः सौःक्लींऐं नित्यानित्याकलायै नमः। अथवा ऐंह्रींश्रींलूं द्रांद्रींक्लींब्लूंसः नित्येत्यादि।

११. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एं ॐह्रींफ्रेंब्लूंह्रींक्रों नित्यमदद्रवे हुंक्रोंह्रीं नीलपताकानित्याकलायै नमः।

१२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं भमरौं विजयानित्याकलायै नमः। अथवा ४ँ ऐं भमरयौं विजयेत्यादि ।

१३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ओं स्वों सर्वमङ्गलायै नमः सर्वमङ्गलानित्याकलायै नमः।

१४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं औं ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवि २ सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति २ ज्वल २ प्रज्वल २ हुंहुंहुं रंरंरं हुंफट् स्वाहा ज्वालामालिनीनित्यकलायै नमः।

१५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं चकौँ विचित्रानित्याकलायै नमः।

१६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अः मूलविद्यामुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीनित्याकलायै नमः। यद्वा—४ँ अः कामेश्वरीनित्याकलायै नमः।

अथ प्रकटयोगिनीन्यासः—मूलाधारे, ऐंह्रींश्रीं प्रकटयोगिनीभ्यो नमः। स्वाधिष्ठाने, ३ँ गुप्तयोगिनीभ्यो नमः। नाभौ, ३ँ गुप्ततरयोगिनीभ्यो नमः। हृदि, ३ँ संप्रदायरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। कण्ठे, ३ँ कुलकौलिनीयोगिनीभ्यो नमः। भ्रूमध्ये, ३ँ निगर्भयोगिनीभ्यो नमः। नादे, ३ँ रहस्ययोगिनीभ्यो नमः। नादान्ते, ३ँ अतिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ३ँ परमातिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः।

प्रकट योगिनी न्यास—मूलाधार में—ऐंह्रींश्रीं प्रकटयोगिनीभ्यो नमः। स्वाधिष्ठान में—ऐं ह्रीं श्रीं गुप्तयोगिनीभ्यो नमः। नाभि में—ऐं ह्रीं श्रीं गुप्ततरयोगिनीभ्यो नमः। हृदय में—ऐं ह्रीं श्रीं संप्रदायरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। कण्ठ में—ऐं ह्रीं श्रीं कुलकौलिनीयोगिनीभ्यो नमः। भ्रूमध्य में—ऐं ह्रीं श्रीं निगर्भयोगिनीभ्यो नमः। नाद में—ऐं ह्रीं श्रीं रहस्ययोगिनीभ्यो नमः। नादान्त में—ऐं ह्रीं श्रीं अतिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। ब्रह्मरन्ध्र में—ऐं ह्रीं श्रीं परमातिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः।

अथायुधन्यासः—द्रांद्रीक्लींब्लूंसः यांरांलांवांशांधं संमोहनाय कामेश्वरधनुषे नमः। यां ५ द्रां ५ थं संमोहनाय कामेश्वरीधनुषे नमः। एतद् द्वयं वामाधोहस्ते। द्रां ५ यां ५ जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः। यां ५ द्रां ५ जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः दक्षिणाधःकरे। द्रां ५ यां ५ आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः। यां ५ द्रां ५ ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः वामोर्ध्वे। द्रां ५ यां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नमः यां ५ द्रां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नमो दक्षिणोर्ध्वे।

आयुध न्यास—बाँयें हाथ में नीचे—द्रांद्रीक्लींब्लूंसः यांरांलांवांशांधं संमोहनाय कामेश्वरधनुषे नमः, यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः थं संमोहनाय कामेश्वरीधनुषे नमः। दाँयें हाथ में नीचे—द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः, यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः, बाँयें हाथ में ऊपर—द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः, यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः। दाहिने हाथ में ऊपर—द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नमः, यां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नमः।

ततो वक्ष्यमाणक्रमेण कामकलां ध्यात्वा न्यसेत्।

एवं कामकलारूपं देवतामयमात्मनः। वपुर्विचिन्त्य शिवयोरायुधध्यानमाचरेत् ॥१॥
द्रांद्रींक्लींब्लूंसः इत्येते कामबाणाः प्रकीर्तिताः। यांरांलांवांशामिदं कामेशीबाणपञ्चकम् ॥२॥
द्रादीनि पश्चाद्यादीनि धंसंमोहनशब्दतः। ङेन्तं कामेश्वरधनुर्ङेनमोऽन्तं समुद्धरेत् ॥३॥
अनेन च स्ववामाधोहस्ते संधारयेद्धनुः। यादिद्रादीनि थं ङेन्तं संमोहनपदोपरि ॥४॥
कामेश्वरीधनुर्ङेन्तं नमोन्तमित्यधःकरे। वामे देव्यास्तथा मन्त्री धारयेदैक्षवं धनुः ॥५॥
द्रादियादीनि जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरं पदम्। बाणेभ्यो नम इत्येवं दक्षिणाधःकरे निजे ॥६॥

शैवान् प्रविन्यसेद्बाणान् पौष्यान् साधकसत्तमः । यादिद्रादीनि जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीपदम् ॥७॥
बाणेभ्यो नम इत्येवं दक्षिणाधःकरे निजे । देव्याः प्रविन्यसेद्बाणान् पौष्यानपि च साधकः ॥८॥
द्रादियादीनि भूयोऽपि मुखवृत्तं सबिन्दुकम् । स्याद्वशीकरणायेति कामेश्वरपदं ततः ॥९॥
पाशाय नम इत्यन्तं वामोर्ध्वे विन्यसेत्करे । यादिद्रादीनि गगनं वह्निवामाक्षिबिन्दुमत् ॥१०॥
स्याद्वशीकरणायेति ततः कामेश्वरीपदम् । पाशाय नम इत्येवं वामोर्ध्वे विन्यसेत्करे ॥११॥
द्रादियादीनि क्रों सर्वस्तम्भनाय पदं ततः । कामेश्वरपदात्पश्चादङ्कुशाय नमो लिखेत् ॥१२॥ इति।
दक्षिणोर्ध्वकरे चैवं विन्यसेदङ्कुशं ततः । यादिद्रादीनि क्रों सर्वस्तम्भनाय ततः परम् ॥१३॥
कामेश्वरीपदादूर्ध्वमङ्कुशाय नमो लिखेत् । दक्षिणोर्ध्वकरे देव्या विन्यसेदङ्कुशं ततः ॥१४॥

ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा नवमुद्राः प्रदर्शयेत् । यथा—द्रां सर्वसंक्षोभिणीं, द्रीं सर्वविद्राविणीं, क्लीं आकर्षिणीं, ब्लूं सर्ववेशिनीं, सः सर्वोन्मादिनीं, क्रों महाङ्कुशां, ह्सखफ्रें खेचरीं, ह्सौः बीजमुद्रां, ऐं योनिमुद्राम्।

कामकला न्यास—अपने आत्मा और शरीर को कामकलारूप देवता मानकर शिव के आयुधों का ध्यान करे। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः—ये कामबाण हैं। यां रां लां वां शां—ये कामेशी के बाणपञ्चक हैं। द्रां द्रीं थं धं सर्वसम्मोहनाय कामेश्वरधनुषाय नमः से अपने निचले बाँयें हाथ में धनुष धारण करे। यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सम्मोहनाय कामेश्वरी धनुषाय नमः से निचले दाँयें हाथ में देवी का इक्षुधनुष धारण करे। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः से अपने निचले दक्षिण हाथ में पौष्य बाणों को धारण करे। या रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः से दाँयें निचले हाथ में पौष्प बाणों को धारण करे। साधक देवी के पुष्पबाणों का न्यास करे। द्रां द्रीं ब्लूं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः से ऊपरी बाँयें हाथ में न्यास करे। यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं आं वशीकरणय कामेश्वरीपाशाय नमः से बाँयें ऊपरी हाथ में न्यास करे। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरांकुशाय नमः से दाँयें ऊपरी हाथ में न्यास करे। यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं शः क्रों सर्वस्तम्भनाभ्य कामेश्वर्यंकुशाय नमः से दाँयें ऊपरी हाथ में न्यास करे। तब मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके नव मुद्रा दिखावे। द्रां से सर्वसंक्षोभिणी, द्रीं से सर्वविद्राविणी, क्लीं से आकर्षिणी, ब्लूं से सर्ववेशिनी, सः से सर्वोन्मादिनी, क्रों से महांकुशा, हसखफ्रें से खेचरी, हसौः से बीज मुद्रा एवं ऐं से योनिमुद्रा दिखावे।

न्यासकालस्तु योगिनीहृदये—
प्रातःकालेऽथवा पूजासमये होमकर्मणि । जपकाले वापि तासां विनियोगः पृथक्पृथक् ॥१॥
पूजाकाले समस्तं वा कुर्यात् साधकसत्तमः । इति।

ततो ध्यानं यथा—
ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणोज्ज्वलाम् । जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ॥१॥
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमारुणसन्निभाम् । स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ॥२॥
कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् । प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ॥३॥
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् । पिनाकिधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम् ॥४॥
आनन्दमुदितोल्लासलीलान्दोलितलोचनाम् । स्फुरन्मयूखिसङ्काशविलसद्धेमकुण्डलाम् ॥५॥
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् । विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ॥६॥
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तौष्ठीममृतोपमाम् । स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ॥७॥
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् । कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालललितैर्भुजैः ॥८॥
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् । कराम्बुजनखज्योतिर्वितानितनभःस्थलाम् ॥९॥
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् । त्रिवलीवलयायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥१०॥
लावण्यसरिदावर्ताकारनाभिविभूषिताम् । अनर्घ्यरत्नघटितकाञ्चीयुतनिम्बिनीम् ॥११॥

नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् । कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ॥१२॥
लावण्यकुसुमाकारजानुमण्डलबन्धुराम् । लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ॥१३॥
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् । तनुदीर्घाङ्गुलीस्वच्छनखराजिविराजिताम् ॥१४॥
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजाम् । शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥१५॥
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम् । रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ॥१६॥
रक्तपद्मनिविष्टां तु रक्ताभरणभूषिताम् । चतुर्भुजां त्रिनेत्रां तु पञ्चबाणधनुर्धराम् ॥१७॥
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् । महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ॥१८॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् । जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ॥१९॥
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् । सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ॥२०॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं शिवाम् । एवं ध्यायेत्परेशानीं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥२१॥ इति।

एवं रूपमात्मानं ध्यात्वा मानसैः पूजयेत् । तद्यथा—हृत्पद्ममध्ये देवीं विभाव्य कुण्डलिनीपात्रस्थेन सहस्रारामृतेन पाद्यं देव्याश्चरणयोर्दद्यात्। ततो मनश्चार्घ्यं दत्त्वा सहस्रदलपद्मभृङ्गारगलितपरमामृतजलेनाचमनीयं मुखे। चतुर्विंशतितत्त्वेन, गन्धं च अहिंसां विज्ञानं क्षमां दयां चालोभमहोममात्सर्यममायामनहङ्कारमरागमद्वेषमिन्द्रियाणि दशैतानि पुष्पाणि च प्रदापयेत्। वायुरूपं धूपं, तेजोरूपं च दीपम्, अम्बरं चामरं, सूर्यं दर्पणं, चन्द्रं छत्रं, पद्मं च मेखलां, आनन्दहारसूत्रमुज्ज्वलं, अनाहतध्वनिमयीं घण्टां निवेदयेत्। ततः सुधारसाम्बुधिं मांसपर्वतं ब्रह्माण्डपूरितं पायसं च दत्त्वा, 'मनोनर्तकसंतालैः शृङ्गारादिरसोद्भवैः। नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम्।' एवं संपूज्याभेदेन जपः कार्यः। ततो बहिः पूजामारभेत्। तत्रार्घ्यस्थापनम्। प्रथमं सामान्यार्घ्यम्। तत्र क्रमः—आदौ स्ववामे जलेन चतुरस्रं विधाय तदन्तर्वृत्तमालिखेत्। ॐमण्डलाय नमः इति पुष्पैरभ्यर्च्य, तत्र साधारं पात्रं स्थापयित्वा बालया तमभ्यर्च्य शुद्धजलेन तमापूर्य 'ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः, इत्यादिक्रमेण षडङ्गानि संपूज्य तदुपरि मूलमष्टधा जपेत्।

न्यासकाल—योगिनी हृदय के अनुसार प्रातःकाल अथवा पूजा के समय, हवन कर्म के समय और जप के समय उनके विनियोग अलग-अलग करे। अथवा पूजा के समय सबों का न्यास करे। तब महात्रिपुरसुन्दरी का मूलोक्त ध्यान करे।

अपना ध्यान इस रूप में करके मानसिक पूजा करे। हृदय कमल में देवी की भावना करके कुण्डलिनी पात्र में स्थित सहस्र अमृत से देवी के चरण में पाद्य अर्पण करे। मानसिक अर्घ्य देकर सहस्र दल पद्म के केसरों से स्रवित परमामृत जल से मुख में आचमनीय देवे। चौबीस तत्त्वों से गन्ध, अहिंसा, विज्ञान, क्षमा, दया, लोभ, मोह, मात्सर्य अमाया, अनहंकार राग, द्वेष, इन्द्रियाँ—इन दशों को फूल चढ़ावे। वायुरूप धूप, तेजोरूप दीपक, अम्बररूप, चामर, सूर्यरूप, दर्पण, चन्द्ररूप, छत्र, पद्मरूप, मेखला, आनन्दा हाररूप उज्ज्वल सूत्र, अनाहत ध्वनिमयी घण्टा निवेदित करे। तब अमृतमय जल मांसरूप पर्वत, ब्रह्माण्डपूरित पायस अर्पण करे। तब मनोहर नृत्य, गीत, वाद्यादि से परमेश्वरी को सन्तुष्ट करे। इस प्रकार पूजा करके अभेद भावना से मन्त्रजप करे। तब बाह्य पूजा प्रारम्भ करे। पहले सामान्य अर्घ्य-स्थापन करे। अपने बाँयें भाग में जल से चतुरस्र बनाकर उसमें वृत्त बनावे। 'ॐ मण्डलाय नमः' से फूलों से अर्चन करे। उस पर आधार और पात्र रखे। ऐं ह्रीं सौः से उसकी पूजा करे। उसमें शुद्ध जल भरे। ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः इत्यादि से क्रम से षडङ्गों की पूजा करे। उसके ऊपर मूल मन्त्र का आठ बार जप करे।

ततो विशेषार्घ्यस्थापनम्। तत्पात्रं तु तन्त्रान्तरे—

पात्रं काञ्चनकाचरूप्यजनितं मुक्ताकपालोद्भवं विश्वामित्रमयं च कामदमिदं हैमं श्रिये स्फाटिकम्।
ताम्रं प्रीतिदमिष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं कापालं स्फुटमत्र सिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम् ॥१॥ इति।

नवरत्नेश्वरे—

नरपात्रं महेशानि विज्ञेयं चोत्तमोत्तमम् । नारिकेलोद्भवं पात्रं ज्ञेयं चोत्तमकल्पकम् ॥१॥

रत्नपात्रं च सुश्रोणि ज्ञेयं चोत्तममध्यमम् । मध्यमोत्तमगं बैल्वं ब्रह्मवृक्षजमेव च ॥२॥
कल्पं च मध्यमं प्रोक्तं मृण्मयं कल्पमध्यमम् । वश्याकर्षणकर्माणि हेमपात्रेषु शोभने ॥३॥
शान्तिके पौष्टिके वापि राजतं कारयेत्प्रिये । लोहपात्रं विजानीयान्मारणोच्चाटने तथा ॥४॥
स्तम्भकार्येषु पाषाणं विद्वेषे लोहमृण्मयम् । सर्वकार्येषु कर्तव्यं विश्वामित्रं च सुव्रते ॥५॥
कुलोत्सादनकार्येषु काचपात्रं विशिष्यते । काष्ठपात्रं विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि ॥६॥
नरपात्रं तु गृह्णीयाद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । दृष्ट्वार्घ्यपात्रं देवेशि ब्रह्माद्या देवताः सदा ॥७॥
नृत्यन्ति सर्वयोगिन्यः प्रीताः सिद्धिं ददत्यपि । इति।

विशेषार्घ्य स्थापन—विशेषार्घ्य हेतु तन्त्रान्तर के अनुसार सोना, चाँदी, मोती, कपाल का पात्र विश्वामित्रमय होता है। सोने का पात्र कामदायक होता है। स्फटिक का पात्र श्रीप्रद होता है। ताम्बे का पात्र प्रीतिदायक होता है। नारियल का पात्र इष्टसिद्धि देने वाला होता है। कपाल पात्र सिद्धि देने वाला एवं मोती का पात्र मुक्तिप्रद होता है।

नवरत्नेश्वर के अनुसार मनुष्य के कपाल का अर्घ्यपात्र उत्तमोत्तम पात्र होता है। नारियल का पात्र उत्तम जानना चाहिये। रत्नपात्र उत्तम मध्यम माना जाता है। बिल्व और ब्रह्मवृक्ष की लकड़ी से निर्मित पात्र मध्यमोत्तम होता है। कल्पपात्र मध्यम होता है और मृत्तिका-निर्मित पात्र सामान्य रूप से मध्यम होता है। वश्य एवं आकर्षण कर्म में सोने का पात्र एवं अच्छा होता है। शान्ति एवं पौष्टिक कर्म में चाँदी का पात्र प्रशस्त होता है। मारण एवं उच्चाटन में लोहे का पात्र ग्राह्य है। स्तम्भन कार्य में पत्थर का पात्र एवं विद्वेषण में लोहा और मिट्टी का पात्र ग्राह्य है। सभी कार्यों के लिये विश्वामित्र का पात्र उत्तम होता है। कुलोत्सादन कर्म से काच का पात्र विशेष रूप से ग्राह्य होता है। मन्त्राराधन कर्म में काष्ठपात्र लेना चाहिये। नरपात्र भोग और मोक्ष देने वाला होता है। अर्घ्यपात्र को देखकर ब्रह्मादि देवता खुशी से नाचने लगते हैं एवं सभी योगिनियाँ प्रसन्न होकर सिद्धि प्रदान करती हैं।

सामान्यविशेषार्घ्ययोरावश्यकत्वम्

सामान्यविशेषार्घ्ययोरावश्यकत्वमाह तत्रैव—
एकपात्रं न कुर्वीत यदि साक्षान्महेश्वरः । मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदश्च पदे पदे ॥१॥
इह लोके दरिद्रः स्यान्मृते च पशुतां व्रजेत् ।

इत्यादि पात्रलक्षणं ज्ञेयम्। तत आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये सामान्यार्घ्यजलेन त्रिकोणवृत्तषट्कोणचतुरस्रमण्डलं कृत्वा त्रिकोणमध्ये मूलविद्यया मध्यं संपूज्य, त्रिकोणे प्रत्येकं कूटं पूजयेत्। अग्न्यादिकोणक्रमेण षट्कोणे मूलविद्यया द्विरावृत्त्या षडङ्गानि पूजयेत्। तत्र त्रिपादिकां संस्थाप्य, ऐंह्रींश्रीं मं अग्निमण्डलाय दशकलात्मनेऽर्घ्यपात्राधाराय नमः, इत्याधारं संपूज्य तत्र वृत्ताकारेण वह्नेर्दश कलाः पूजयेत्। यथा—ऐंह्रींश्रीं यं धूम्रायै नमः। ३ँ रं नीलवर्णायै नमः। ३ँ लं कपिलायै नमः। ३ँ वं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। ३ँ शं ज्वालिन्यै नमः। ३ँ षं हेम(तेजो)वत्यै नमः। ३ँ सं हव्यवाहनायै नमः। ३ँ हं कव्यवाहनायै नमः। ३ँ ळं रौद्र्यै नमः। ३ँ क्षं संकर्षिण्यै नमः। इति संपूज्य, तदुपरि पात्रं संस्थाप्य, पूर्ववत् तत्र मन्त्रमालिख्य संपूज्य च, ऐंह्रींश्रीं क्लीं अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मनेऽर्घ्यपात्राय नमः, इति संपूज्य वृत्ताकारेण सूर्यस्य द्वादशकलाः पूजयेत्। यथा—ऐंह्रींरीं कंभं तपिन्यै नमः। ३ँ खंबं तापिन्यै नमः। ३ँ गंफं धूम्रायै नमः। ३ँ घंपं विबुधायै नमः। ३ँ ङंनं बोधिन्यै नमः। ३ँ चंधं कालिन्यै नमः। ३ँ छंदं शोषिण्यै नमः। ३ँ जंथं वरेण्यायै नमः। ३ँ झंतं आकर्षिण्यै नमः। ३ँ ञंणं मायायै नमः। ३ँ टंढं विवस्वत्यै नमः। ३ँ ठंडं हेमप्रभायै नमः इति संपूज्य, ऐंह्रींश्रीं सौः सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, इत्यनेन मूलेन च जलादिनापूर्य, पूर्ववन्मन्त्रमालिख्य त्रिकोणे अकथादित्रिरेखं हक्षौ च मध्ये चिन्तयेत्। ततः पूर्ववत् संपूज्य, ४ँ उं सोममण्डलाय षोडशकलाव्याप्त्यात्मनेऽर्घ्यामृताय नमः, इति संपूज्य वृत्ताकारेण सोमकलाः पूजयेत्। यथा—ऐंह्रींश्रीं अं अमृतायै नमः। एवं ३ँ आं मानदायै नमः। ३ँ इं तुष्ट्यै नमः। ३ँ ईं पुष्ट्यै नमः। ३ँ उं प्रीत्यै नमः। ३ँ ऊं रत्यै नमः। ३ँ ॠं श्रियै

नमः। ३ँ ॠं क्रियायै नमः। ३ँ ऌं स्वधायै नमः। ३ँ ॡं रात्र्यै नमः। ३ँ एं ज्योत्स्नायै नमः। ३ँ ऐं हैमवत्यै नमः। ३ँ ओं छायायै नमः। ३ँ औं पूर्णायै नमः। ३ँ अं विद्यायै नमः। ३ँ अः अमावास्यायै नमः। इति संपूज्य, मध्ये—हंसः आत्मने नमः। ततो हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट्, हसक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वौषट्, इति संपूज्य, मत्स्यमुद्रया तज्जलमाच्छाद्य मूलविद्यामष्टधा जपेत्। धूपदीपादीन् निवेद्य नव मुद्राः प्रदर्श्य, ब्रह्ममयं तज्जलं किञ्चित् पात्रान्तरे निःक्षिप्य, मूलेन तज्जलेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य सर्वं ब्रह्ममयं कुर्यात्। 'पूजासमाप्तिर्यावत् स्यात् तावदर्घ्यं न चालयेत्' इति समयाङ्के।

सामान्य और विशेषार्घ्य पात्र का आवश्यकत्व—नवरत्नेश्वर में ही कहा गया है कि यदि साक्षात् महेश्वर भी कर्ता हों तो भी एक पात्र नहीं लेना चाहिये। इससे मन्त्र पराङ्मुख होते हैं और पग-पग पर आपत्तियाँ आती हैं। साथ ही कर्ता इस संसार में दरिद्र होता है और देहान्त के बाद पशु योनि को प्राप्त होता है।

तदनन्तर अपने और श्रीचक्र के बीच में सामान्यार्घ्य जल से त्रिकोण वृत्त षट्कोण मण्डल बनाकर त्रिकोणमध्य में मूल विद्या से अर्घ्य देकर तीनों कोनों में प्रत्येक कूट की पूजा करे। अग्न्यादि कोण के क्रम से षट्कोण में मूल विद्या की दो आवृत्ति से षडङ्गों की पूजा करे। उस पर त्रिपादिका रखकर 'ऐं ह्रीं श्रीं मं अग्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्राधाराय नमः' से आधार की पूजा करे। वृत्ताकार में वह्नि के दश कलाओं की पूजा करे, जैसे—ऐं ह्रीं श्रीं यं धूम्रायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं रं नीलवर्णायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं लं कपिलायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं वं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं शं ज्वालिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं षं हेमवत्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं सं हव्यवाहनायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं हं कव्यवाहनायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ळं रौद्र्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं क्षं संकर्षिण्यै नमः। इस प्रकार पूजा करके उसके ऊपर पात्र-स्थापन करे। पूर्ववत् वहाँ मन्त्र लिखकर पूजा करे। 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्यपात्राय नमः' से अर्घ्य की पूजा कर वृत्ताकार मण्डल में सूर्य के बारह कलाओं की पूजा इस प्रकार करे—ऐं ह्रीं श्रीं कं भं तपिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं खं बं तापिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं गं फं धूम्रायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं घं पं विबुधायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ङं नं बोधिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं चं धं कालिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं छं दं शोषिण्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं जं थं वरेण्यायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं झं तं आकर्षिण्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ञं णं मायायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं टं ढं विवस्वत्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ठं डं हेमप्रभायै नमः। तदनन्तर ऐं ह्रीं श्रीं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः एवं मूल मन्त्र से पात्र में जल भरे। पूर्ववत् यन्त्र लिखकर त्रिकोण में अकथादि रेखा के मध्य में ह-क्षौं का चिन्तन करे। तब पूर्ववत् पूजा करके 'ऐं ह्रीं श्रीं सौः उं सोममण्डलाय षोडशकलाव्याप्त्यात्मने अर्घ्यामृताय नमः' से पूजा करके वृत्ताकार में सोमकला की पूजा करे; जैसे—ऐं ह्रीं श्रीं अं अमृतायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं आं मानदायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं इं तुष्ट्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ईं पुष्ट्यै नमः। ऐ ह्रीं श्रीं उं प्रीत्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ऊँ रत्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ऋं श्रियै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ॠं क्रियायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ऌं स्वधायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ॡं रात्र्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं एं ज्योत्स्नायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ऐं हैमवत्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ओं छायायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं औं पूर्णायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं अं विघायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं अः अमावस्यायै नमः। इस प्रकार पूजा करके मध्य में हंसः आत्मने नमः से पूजा करे। तदनन्तर हसक्षमलरयूं आनन्दभैरवाय वषट्, सहक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वौषट् से पूजन करके मत्स्य मुद्रा से उस जल का आच्छादन कर मूल विद्या का आठ बार जप करे। तत्पश्चात् धूप-दीपादि निवेदित करके नव मुद्रा दिखाये। ब्रह्ममय उस जल में से कुछ जल दूसरे पात्र में लेकर मूल मन्त्र से उस जल से अपना और पूजोपकरणों का अभ्युक्षण करके सबों को ब्रह्ममय बना दे। जब तक पूजा समाप्त न हो तब तक अर्घ्यजल को न छूये—ऐसा समयाङ्क में कहा गया है।

सुन्दरीविद्यया अङ्गदेवतापूजा तु अर्घ्यस्थापनानन्तरम्। तथाच—

आत्मानं यागवस्तूनि प्रोक्षयित्वा यथाक्रमम्। चिन्मयं तत् सदा भक्त्या चिन्तयेन्मन्त्रवित्तमः॥

तस्माच्चक्रचतुर्दिशि क्रमवशान्निर्माय चक्रं शुभं सूर्यं हस्तिमुखं परं स्मरहरं गोपालमेवं तथा।
ध्यात्वावाह्य च तांस्ततो बहुविधैः पुष्पैश्च पाद्यादिभिर्नानाद्रव्यसुगन्धिमोदकफलैरुद्वासयेत् स्वे हृदि॥ इति।

ततो महाचक्रे—ॐ अमृताम्भोनिधये नमः। एवं रत्नद्वीपाय नमः, नानावृक्षमहोद्यानाय नमः, कल्पवृक्ष-

वाटिकायै नमः, संतानवाटिकायै नमः, हरिचन्दनवाटिकायै नमः, मन्दारवाटिकायै नमः, पारिजातवाटिकायै नमः, कदम्बतरुवाटिकायै नमः, हेमप्राकाराय नमः, पुष्परागरत्नप्राकाराय नमः, पद्मरागरत्नप्राकाराय नमः, गोमेद-रत्नप्राकाराय नमः इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय नमः, वज्ररत्नप्राकाराय नमः, वैडूर्यरत्नप्राकाराय नमः, मुक्तारत्नप्राकाराय नमः, विद्रुमरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यमण्डपाय नमः, सहस्रस्तम्भमण्डपाय नमः, अमृतवापिकायै नमः, आनन्दवापिकायै नमः, विमर्शवापिकायै नमः, बालातपोद्गाराय नमः, चन्द्रिकोद्गाराय नमः, महाशृङ्गारपरिखायै नमः, महापद्माटव्यै नमः, चिन्तामणिगृहराजाय नमः, पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय नमः, दक्षिणाम्नायदक्षिणद्वाराय नमः, पश्चिमाम्नायपश्चिमद्वाराय नमः, उत्तराम्नायउत्तरद्वाराय नमः, रत्नद्वीपवलयाय नमः, महासिंहासनाय नमः, ब्रह्ममयैकमञ्चपादाय नमः, विष्णुमयैकमञ्चपादाय नमः, रुद्रमयैकमञ्चपादाय नमः, ईश्वरमयैकमञ्चपादाय नमः, सदाशिवमयमञ्चफलकाय नमः, हंसतूलमहोपधानाय नमः, कौसुम्भास्तरणाय नमः, महावितानिकायै नमः, महाजवनिकायै नमः। तदुपरि हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। ततः पुनर्ध्यात्वा, त्रिखण्डामुद्रां तदुपरि शिखरे मातृकायन्त्रे समानीय 'ऐंह्रींश्रीं सौः त्रिपुरसुन्दरीमूर्तिं कल्पयामि' इति बिन्दौ कल्पितमूर्तावावाहयेत् 'हसरैं हसकलरीं हसरौं' इत्युच्चार्य—

महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येति परमेश्वरि॥ इति।

बैन्दवचक्रे परचितिमावाह्य, आवाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्तं कर्म समाप्य बाणकोदण्डपाशाङ्कुशादिमुद्राः प्रदर्शयेत्। ततो यथोपचारैः संपूज्य त्रिधा सन्तर्पयेत्। तत्रायं क्रमः—सव्यहस्ताङ्गुष्ठानामानखाग्रेण धृतश्रीपात्रार्घ्यबिन्दुना अन्यहस्तक्षिप्तपुष्पाक्षतैः 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामि' इति त्रिस्तर्पयेत्। तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—

**अङ्गुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य पार्वति। तर्पयेत्सुन्दरीं देवीं समुद्रां च सवाहनाम्॥
तर्पणानि ततो देव्यास्त्रिवारं मूलविद्यया। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु नखैर्निर्दिष्टमुद्धृतम्॥
श्रीपात्रस्थोदकं बिन्दुं तर्पयेत्कुलनायिकाम्। अङ्गुष्ठो भैरवो देवि अनामा चण्डिका प्रिये॥
सव्येन हस्तयोगेन तर्पयेद्वा कुलेश्वरीम्। इति।**

विशेषस्तु—

**अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु वश्यकर्मणि तर्पयेत्। अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां तु शान्तिकर्मणि तर्पयेत्॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेदभिचारके। कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्तम्भने तर्पयेत् प्रिये॥**

अर्घ्य-स्थापन के बाद सुन्दरी विद्या से अंगदेवता की पूजा यथाक्रम करके अपना और यागवस्तुओं के प्रोक्षण के बाद मन्त्रवित् उसका चिन्तन सदैव चिन्मय रूप में करे।

चक्र के चारों ओर क्रमशः शुभ चक्र बनाकर सूर्य-गणेश-शिव-गोपाल का ध्यान करते हुये उनका आवाहन करके बहुत प्रकार के फूलों, पाद्यादि नाना द्रव्यों तथा सुगन्धित मोदक फलों से अपने हृदय में उद्वासित करे।

तब महाचक्र में इस प्रकार पूजन करे—ॐ अमृताम्भोनिधये नमः, रत्नद्वीपाय नमः, नानावृक्षमहोद्यानाय नमः, कल्पवृक्षवाटिकायै नमः, सन्तानवाटिकायै नमः, हरिचन्दनवाटिकायै नमः, मन्दारवाटिकायै नमः, पारिजातवाटिकायै नमः, कदम्ब-तरुवाटिकायै नमः, हेमप्राकाराय नमः, पुष्परागप्राकाराय नमः, पद्मरागप्राकाराय नमः, गोमेदरत्नप्राकाराय नमः, इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय नमः, वज्ररत्नप्राकाराय नमः, वैडूर्यरत्नप्राकाराय नमः, मुक्तारत्नप्राकाराय नमः, विद्रुमरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यमण्डपाय नमः, सहस्रस्तम्भमण्डपाय नमः, अमृतवापिकायै नमः, आनन्दवापिकायै नमः, विमर्शवापिकायै नमः, बालात-पोद्गाराय नमः, चन्द्रिकोद्गाराय नमः, महाशृङ्गारपरिखायै नमः, महापद्माटव्यै नमः। चिन्तामणिगृहराजाय नमः, पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय नमः, दक्षिणाम्नायदक्षिणद्वाराय नमः, पश्चिमाम्नायपश्चिमद्वाराय नमः, उत्तराम्नाय उत्तरद्वाराय नमः, रत्नद्वीपवलायाय, महासिंहासनाय नमः, ब्रह्ममयैकमंचपादाय नमः, विष्णुमयैकमंचपादाय नमः, रुद्रमयैकमंचपादाय नमः, ईश्वरमयैकमंचपादाय नमः, सदाशिवमय-

मंचफलकाय नम:, हंसतूलमहोपधानाय नम:, कौसुम्भास्तरणाय नम:, महावितानिकायै नम:, महाजवनिकायै नम: से पूजन करे। उसके ऊपर सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम: से पूजा करे। तब फिर ध्यान करके त्रिखण्डा मुद्रा बाँधकर उसके शिखर पर मातृकायन्त्र लाकर 'ऐं ह्रीं श्रीं सौ: त्रिपुरसुन्दरीमूर्तिं कल्पयामि' से बिन्दु में कल्पित मूर्ति का आवाहन करे। 'हसरैं कलकलरीं हसरौं' का उच्चारण करके इस प्रकार कहे—

महापद्म वनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।

वैन्दव चक्र में परचित का आवाहन करके आवाहनादि से प्राण-प्रतिष्ठा तक के कर्म समाप्त करके बाण, कोदण्ड, पाश और अंकुश मुद्रा दिखावे। तदनन्तर यथोपचारों से पूजा करके तीन बार तर्पण करे। उसका क्रम इस प्रकार है।—बाँयें हाथ की अंगुष्ठ एवं अनामा के नखाग्र से श्रीपात्रार्घ्य बिन्दु लेकर दाँयें हाथ में पुष्पाक्षत लेकर श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी तर्पयामि' कहकर तीन बार तर्पण करे। जैसा कि स्वतन्त्र तन्त्र में कहा भी है—बाँयें हाथ के अंगूठे और अनामिका से सुन्दरी देवी का तर्पण समुद्रा सवाहना तीन बार करे। तब मूल विद्या से देवी का तर्पण तीन बार करे। अंगूठा-अनामिका के नखों से निर्दिष्ट लेकर तर्पण करे। कुलनायिका का तर्पण श्रीपात्र के जलबिन्दु से करे। अंगूठा को भैरव और अनामिका को चण्डिका कहा गया है। बाँयें हाथ के योग से कुलेश्वरी का तर्पण करे।

वशीकरण में अंगूठे और अनामिका से तर्पण करे। शान्ति कर्म में अंगूठे और मध्यमा से तर्पण करे। अभिचार कर्म में तर्जनी और अंगूठे के योग से तर्पण करे। स्तम्भन में कनिष्ठा और अंगुष्ठ के योग से तर्पण करे।

ततो देव्या अङ्गे षडङ्गानि पूजयेत्। यथा—ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नम:। क्लीं नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौः अनादिबोधशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्। ऐं स्वतन्त्र-शक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। क्लीं नित्यमलुप्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अनन्तशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। ततः स्वशरीरे कामकलां भावयेत्। तथाच—

बिन्दुं संकल्प्य वक्त्रं तु तदधश्च कुचद्वयम् । तदधः सपरार्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्॥ इति।

ततस्तिथिनित्या अर्चेत्। महात्र्यस्रे वामावर्तेन अकारादिपञ्च, ऊकारादिपञ्च, एकारादिपञ्च विभाव्य मध्ये विसर्गं, तेषु वामावर्तेन शुक्लपक्षे कामेश्वर्यादिविचित्रान्तं, कृष्णपक्षे विचित्रादिकामेश्वर्यन्तं पूजयेत्। तद्यथा—प्रतिपदि अकारे ऐंह्रींश्रीं तत्तन्मन्त्रं चोच्चार्य कामेश्वरीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नम:। एवं आकारे द्वितीयायां भगमालिनीं, इकारे तृतीयायां नित्यक्लिन्नां, ईकारे चतुर्थ्यां भेरुण्डां, उकारे पञ्चम्यां वह्निवासिनीं, ऊकारे षष्ठ्यां महावज्रेश्वरीं, ऋकारे सप्तम्यां शिवदूतीं, ॠकारे अष्टम्यां त्वरितां, लृकारे नवम्यां कुलसुन्दरीं, लॄकारे दशम्यां नित्यां, एकारे एकादश्यां नीलपताकां, ऐकारे द्वादश्यां विजयां, ओकारे त्रयोदश्यां सर्वमङ्गलां, औकारे चतुर्दश्यां ज्वालामालिनीं, अंकारे पौर्णमास्यां विचित्रां, विसर्गे त्रिपुरसुन्दरीं पूजयेत्। कृष्णपक्षे एवं विचित्रादिकामेश्वर्यन्तं पूजयेत्। पूजामन्त्रस्तु तन्त्रान्तरे—

श्रीपदं पूर्वमुच्चार्य पादुकांपदमुद्धरेत्। पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः॥ इति।

तदनन्तर देवी के अंग में षडङ्ग पूजा करे। जैसे हृदय में ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नम:। क्लीं नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौ: अनादिबोधशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्। ऐं स्वतन्त्रशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। क्लीं नित्यमलुप्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौ: अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। तब अपने शरीर में कामकला की भावना करे। कहा भी है—बिन्दु को मुख मानकर उसके नीचे दो बिन्दुओं को स्तन माने, उसके नीचे सपरार्ध अधोमुख चिन्तन करे। तदनन्तर तिथिनित्या का अर्चन महात्रिकोण की रेखाओं में वामावर्त क्रम से अकारादि पाँच ऊकारादि पाँच और एकारादि पाँच की भावना करके मध्य में अ: की भावना करे। उनमें शुक्ल पक्ष में वामावर्त क्रम से कामेश्वरी से विचित्रा तक और कृष्ण पक्ष में विचित्रा से कामेश्वरी तक की पूजा करे। जैसे—प्रतिपदा को अकार में ऐं ह्रीं श्रीं के बाद उस मन्त्र को कहकर कामेश्वरी नित्या कला श्री पादुकां पूजयामि नम:। इसी प्रकार आकार में द्वितीया में भगमालिनी, इकार

में तृतीया में नित्य क्लिन्ना, ईकार में चतुर्थी में भेरुण्डा, उकार में पञ्चमी में वह्निवासिनी, ऊकार में षष्ठी में महावज्रेश्वरी, ऋकार में सप्तमी में शिवदूती, ॠकार में अष्टमी में त्वरिता, ऌकार में नवमी में कुल-सुन्दरी, ॡकार में दशमी में नित्या, एकार में एकादशी में नीलपताका, ऐकार में द्वादशी में विजया, ओकार में त्रयोदशी में सर्वमंगला, औकार में चतुर्दशी में ज्वालामालिनी, अंकार में पूर्णमासी में विचित्रा और अःकार में त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करे। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में विचित्रा से कामेश्वरी तक की पूजा करे। तन्त्रान्तर में पूजामन्त्र इस प्रकार कहा गया है—श्रीपद के पश्चात् 'पादुकां' पद कहकर पूजयामि नमः कहे। तब अंगदेवता की पूजा करे।

ततो मध्ये प्राक्त्र्यस्रमध्येषु गुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। तथा—

आनन्दनाथशब्दान्ता विज्ञेयाः परमेश्वरि। अम्बान्ता गुरवः प्रोक्ताः स्त्रीलिङ्गा वीरवन्दिते॥ इति।

तद्यथा—ऐंह्रींश्रीं परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं परशिवं०, परशक्त्यम्बां०। एवं कौलेश्वरीं०, शुक्लदेवीं०, कुलेश्वरं०, कामेश्वर्यम्बिकां, एते दिव्यौघाः। भोगं, क्लिन्नं०, समयं०, वेदं, सहजं०, एते सिद्धौघाः। गगनं०, विश्वं०, विमलं०, मदनं०, भुवनं०, नीलं०, एते मानवौघाः। ततो गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुं केवलं गुरुं वा। एते कामराजविद्यायास्तद्घटितायाश्च गुरवः। लोपायास्तद्घटितायाश्च परमशिवं, कामेश्वर्यम्बिकां, दिव्यौघं, महौघं, सर्वानन्दं, प्रज्ञादेवीं, प्रकाशं (७) एते दिव्यौघाः। दिव्यं, चित्रं, कैवल्यं, दिव्याम्बां, महोदयं (५) एते सिद्धौघाः। चिद्विश्वशक्तिः, रमानन्दः, कमलः, परानन्दो, मनोहरः, स्वात्मानन्दः, प्रतिभा। एते मानवौघाः। ततः पूर्ववद् गुरुत्रयमेकं वा पूजयेत्।

अथ सामान्यगुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। ऐंह्रींश्रीं गुरुभ्यो नमः। एवं ३ँ गुरुपादुकाभ्यो नमः। ३ँ परमगुरुभ्यो नमः। ३ँ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ३ँ परापरगुरुभ्यो नमः। ३ँ परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः। ३ँ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। ३ँ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः। आचार्येभ्यो नमः। आचार्यपादुकाभ्यो नमः। सर्वत्रादौ त्रितारी द्वितारी वा योज्या। तथाच ज्ञानार्णवे—

मायालक्ष्मीमयं बीजयुग्मं पूर्वक्रमेण हि। कथितं योजयेद् देवि तत्त्रयं वा परेश्वरि॥ इति।

कल्पसूत्रे सर्वेषां मन्त्राणामादौ त्रितारी—'वाङ्माया कमला चेति'। ततस्त्रैलोक्यमोहनादिसृष्टिचक्रे, ४ँ हसरीं सह्रीं श्रीं कलह्रीं पूर्वाम्नायउन्मनीदेवीश्रीपादुकांपू०। स्थितिचक्रे, ऐंक्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले हसौः दक्षिणाम्नायभोगिनीदेवीश्रीपादुकां०। ततः सर्वसौभाग्यादिसंहारात्मकत्रिचक्रे, ४ँ हसखफ्रें हसौः ओं नमो, भगवति हस(ख)फ्रें कुब्जिके ह्स्रां ह्स्रूं अघोरे घोरे (अ)घोरमुखि छ्रांछ्री किणि किणि विच्चे, विलोमतः पूर्वोक्तानि बीजानि च पश्चिमाम्नायकुब्जिकादेवीश्रीपादुकांपू०। सर्वचक्रे, ४ँ हसखफ्रें महाचण्डयोगेश्वरि उत्तराम्नायकालिकादेवीश्रीपादुकांपू०। ततो बैन्दवे, शैवदर्शनाय नमः। तत्परितः शाक्तदर्शनाय नमः। भूबिम्बे ब्रह्मदर्शनाय नमः। शिवस्य वामतो वैष्णवदर्शनाय नमः। सृष्टिचक्रे सूर्यदर्शनाय नमः। स्थितिचक्रे बौद्धदर्शनाय नमः। ततोऽग्नीशासुरवायव्यमध्ये (दिक्षु च) मूलेन षडङ्गानि पूजयेत्। तथाच ज्ञानार्णवे—

अथाङ्गावरणं कुर्यात् श्रीविद्यामनुसंभवम्। अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम्॥

तब मध्य में त्रिकोण और पूर्व के मध्य में गुरुपंक्ति की पूजा करे। पुरुष गुरुओं में आनन्दनाथ लगाकर एवं स्त्री गुरुओं में अम्बा लगाकर पूजा करे। जैसे—ऐंह्रींश्रीं परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इसी प्रकार परशिव, परशक्त्यम्बा, कौलेश्वरी, शुक्लदेवी, कुलेश्वर, कामेश्वर्यम्बिका—ये सभी दिव्यौघ हैं। भोग, क्लिन्न, समय, वेद, सहज—ये सभी सिद्धौघ हैं। गगन, विश्व, विमल, मदन, भुवन, नील—ये सभी मानवौघ हैं। तदनन्तर गुरु परमगुरु परापरगुरु परमेष्ठिगुरु अथवा केवल गुरु—ये सभी कामराजविद्या के गुरु हैं। लोपा विद्या के दिव्यौघ परमशिव, कामेश्वर्यम्बिका, दिव्यौघ, महौघ, सर्वानन्द, प्रज्ञादेवी, प्रकाश हैं। दिव्य, चित्र, कैवल्य, दिव्याम्बा, महोदय सिद्धौघ हैं। चिद्विश्वशक्ति, रमानन्द, कमल, परानन्द, मनोहर, स्वात्मानन्द,

प्रतिभा—ये मानवौघ हैं। तदनन्तर पूर्ववत् गुरुत्रय अथवा एक गुरु का पूजन करे।

तब सामान्य गुरुपंक्ति की पूजा करे। जैसे—ऐंह्रींश्रीं गुरुभ्यो नमः। एवं ३ँ गुरुपादुकाभ्यो नमः। ३ँ परमगुरुभ्यो नमः। ३ँ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ३ँ परापरगुरुभ्यो नमः। ३ँ परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः। ३ँ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। ३ँ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः। आचार्येभ्यो नमः। आचार्यपादुकाभ्यो नमः। सर्वत्रादौ त्रितारी द्वितारी वा ज्ञानार्णव में कहा भी है कि ह्रीं श्रीं—यह बीजयुग्म पूर्वक्रम से जोड़े अथवा तीनों को जोड़े। कल्पसूत्र के अनुसार सभी मन्त्रों के पहले त्रितारी ऐं ह्रीं श्रीं लगाना चाहिये। तदनन्तर त्रैलोक्यमोहनादि सृष्टि चक्र में—४ हसरीं सह्रीं श्रीं कलह्रीं पूर्वाम्नाय उन्मनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। स्थितिचक्र में ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले हसौः दक्षिणाम्नायभोगिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। तदनन्तर सर्वसौभाग्यादि संहरात्मक त्रिचक्र में ४ हसखफ्रें हसौः ॐ नमो भगवति हसखफ्रें कुब्जिके ह्स्रां ह्स्रूं अघोरे घोरे अघोर-मुखि छ्रां छ्रीं किणि किणि विच्चे के बाद विलोम क्रम से पूर्वोक्त बीजों को कहकर पश्चिमाम्नायकुब्जिकादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सर्वचक्र में ४ हसखफ्रें महाचण्डयोगेश्वरि उत्तराम्नायकालिकादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। वैन्दव चक्र में शैवदर्शनाय नमः, उसके चारो ओर शाक्तदर्शनाय नमः, भूपुर में ब्रह्मदर्शनाय नमः, शिव के बाँयें भाग में वैष्णवदर्शनाय नमः, सृष्टि चक्र में सूर्यदर्शनाय नमः, स्थितिचक्र में बौद्धदर्शनाय नमः कहकर पूजन करे। तब आग्नेयादि कोणों, मध्य एवं दिशाओं में मूल मन्त्र से षडङ्ग पूजा करे। जैसा कि ज्ञानार्णव में कहा भी है—विद्या मन्त्रसम्भूत अंगावरण पूजा आग्नेयादि कोण, मध्य एवं दिशाओं में करे।

ततो बाह्यचतुरस्रे पश्चिमादिद्वारचतुष्टयेषु अणिमादिसिद्धीः पूजयेत्। पश्चिमादिनियमस्तु गुप्तार्णवे—

यदाशाभिमुखो मन्त्री त्रिपुरां परिपूजयेत्। देवीपश्चात्ततः प्राची प्रतीची त्रिपुराग्रतः॥

३ँ अणिमासिद्धिश्रीपा०। ३ँ लघिमासिद्धिश्रीपा०। ३ँ महिमासिद्धिश्रीपा०। ३ँ ईशित्वसिद्धिश्रीपा०। वायव्यादिकोणचतुष्टयेषु, ३ँ वशित्वसिद्धिश्रीपा०। ३ँ प्राकाम्यासिद्धिश्रीपा०। ३ँ भक्तिसिद्धिश्रीपा०। ३ँ इच्छासिद्धिश्रीपादुकां०। अधः ३ँ प्राप्तिसिद्धिश्रीपा०। ऊर्ध्वे ३ँ सर्वज्ञासिद्धिश्रीपा०। मध्यचतुरस्रस्य पश्चिमादिद्वारचतुरष्टयेषु, ३ँ आं ब्रह्माणीश्रीपा०। ३ँ ईं माहेश्वरीश्रीपा०। ३ँ ऊं कौमारीश्रीपा०। ३ँ ॠं वैष्णवीश्रीपा०। वाय्वादिचतुष्कोणेषु, ३ँ ॡं वाराहीश्रीपा०। ३ँ ऐं इन्द्राणीश्रीपा०। ३ँ औं चामुण्डाश्रीपा०। ३ँ अः महालक्ष्मीश्रीपा०। आभ्यन्तरचतुरस्रस्य पश्चिमादिद्वारचतुष्टयेषु, ३ँ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राश्रीपा०। ३ँ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपा०। ३ँ क्लीं सर्वाक-र्षिणीमुद्राश्रीपा०। ३ँ ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपा०। वाय्वादिकोणचतुष्टयेषु, ३ँ स; सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपा०। ३ँ क्रों महाङ्कुशामुद्राश्रीपा०। ३ँ हसखफ्रें खेचरीमुद्राश्रीपा०। ३ँ हसौः सर्वबीजमुद्राश्रीपा०। अधः ३ँ ऐं योनिमुद्राश्रीपा०। ऊर्ध्वे ३ँ ऐंक्लींसौः त्रिखण्डामुद्राश्रीपा०। चक्राग्रे संपूर्णचक्रे ३ँ त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्राय नमः। अंआंसौः त्रिपुराश्रीपादुकां पूज०। एतस्या दक्षिणे ३ँ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राश्रीपा०। वामे ३ँ अं अणिमासिद्धिश्रीपा०। ३ँ चार्वाकदर्शनाय नमः। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सवाहनाः ससिद्धयः सायुधाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्। द्रां इति सर्वसंक्षोभिणीं मुद्रां प्रदर्शयेत्। ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा, इति त्रिवारमर्घ्योदकेन तर्पयेत्।

ततः षोडशदलेषु पश्चिमदलादारभ्य वामावर्तेन, ३ँ अं कामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। एवं सर्वत्र कलापदप्रयोगः। तथाच नवरत्नेश्वरे—'विलोमेन यजेदेताः क्रमान्नित्याकलाः पुनः'। ३ँ आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ इं अहङ्काराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ईं शब्दाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ उं स्पर्शाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ऊं रूपाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ऋं रसाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ॠं गन्धाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ऌं चित्ताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ॡं धैर्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ एं स्मृत्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ऐं नामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ ओं बीजाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ँ औं आत्माकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०।

ॐ अं अमृताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ॐ अः शरीराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। चक्राग्रे सर्वाशापरिपूरकषोडश-कलाचक्राय नमः। ॐ ऐंक्लींसौः त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपा०। वामे लघिमासिद्धिश्रीपा०। ॐ बौद्धदर्शनाय नमः। अत्र सर्वाशापरिपूरकषोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामाकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। द्रीं इति सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति पूर्ववत्।

अष्टदलचक्रे पूर्वादिचतुर्दलेषु, वामावर्तेन, ॐ कं ५ अनङ्गकुसुमादेवीश्रीपा०। ॐ चं अनङ्गमेखलादेवी-श्रीपा०। ॐ टं ५ अनङ्गमदनादेवीश्रीपा०। ॐ तं ५ अनङ्गमदनातुरादेवीश्रीपा०। आग्नेयादिचतुर्दलेषु, ॐ पं ५ अनङ्गरेखादेवीश्रीपा०। ॐ यं ४ अनङ्गवेगिनीदेवीश्रीपा०। ॐ शं ४ अनङ्गाङ्कुशादेवीश्रीपा०। ॐ ळं क्षं अनङ्ग-मालिनीदेवीश्रीपा०। चक्राग्रे ॐ सर्वसंक्षोभणाष्टदलचक्राय नमः। ॐ ऐंक्लींसौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ॐ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपा०। वामे ॐ महिमासिद्धिश्रीपा०। जिनेन्द्रदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसंक्षोभणाष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। क्लीं इति सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

चतुर्दशारचक्राग्राच्च समारभ्य वामावर्तेन पश्चिमादि दक्षिणं यावत्, ॐ सर्वसंक्षोभिणीशक्तिश्रीपा०। एवं ॐ सर्वविद्राविणीश्रीपा०। ॐ सर्वाकर्षिणीश्रीपा०। ॐ सर्वाह्लादिनीश्रीपा०। ॐ सर्वसंमोहिनीश्रीपा०। ॐ सर्वस्तम्भिनीश्रीपा०, ॐ सर्वजृम्भिणीश्रीपा०, ॐ सर्वसत्त्ववशङ्करीश्रीपा०, ॐ सर्वरञ्जनीश्रीपा०, ॐ सर्वोन्मादिनीश्रीपा०, ॐ सर्वार्थसाधिनी-श्रीपा०, ॐ सर्वसंपत्तिपूरणीश्रीपा०, ॐ सर्वमन्त्रमयीश्रीपा०, ॐ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिश्रीपा०। इति सर्वत्र। चक्राग्रे सर्वसौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्राय नमः। ॐ हैं हक्लीं हसौः त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपा०। वामे ॐ ईशित्वसिद्धिश्रीपा०। ॐ सांख्यमीमांसान्यायदर्शनेभ्यो नमः। अत्र सौभाग्यदायक-चतुर्दशारचके त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षोभिण्याद्याः शक्तयः संप्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, इति समानम्।

बहिर्दशारचक्राग्रं समारभ्य वामावर्तेन पश्चिमाद्दक्षिणान्तम्, ॐ सर्वसिद्धिप्रदाश्रीपा०, ॐ सर्वसंपत्प्रदा०, ॐ सर्वप्रियङ्करी, ॐ सर्वमङ्गलकारिणी, ॐ सर्वकामप्रदा०, ॐ सर्वदुःखविमोचिनी०, ॐ सर्वमृत्युप्रशमनी०, ॐ सर्वविघ्ननिवारिणी०, ॐ सर्वाङ्गसुन्दरी०, ॐ सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीश्रीपा०। इति सर्वत्र। चक्राग्रे सर्वार्थसाधक-बहिर्दशारचक्राय नमः। ॐ हसैं हसक्लीं हसौः त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ॐ सः सर्वोन्मा-दिनीमुद्राश्रीपा०। वामे वशित्वसिद्धिश्रीपा०। ॐ ब्राह्मवैदिकदर्शनाय नमः। अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदाद्याः देव्यः कुलकौलिनीयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। सः सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। इति समानम्।

अन्तर्दशारचक्राच्च समारभ्य पश्चिमाद् दक्षिणान्तं, ॐ सर्वज्ञादेवीश्रीपा०, ॐ सर्वशक्तिमयी०, ॐ सर्वैश्व-र्यदायिनी०, ॐ सर्वज्ञानमयी०, ॐ सर्वव्याधिविनाशिनी०, ॐ सर्वाधारस्वरूपिणी०, ॐ सर्वपापहरा०, ॐ सर्वानन्दमयी०, ॐ सर्वरक्षास्वरूपिणी०, ॐ सर्वेप्सितफलप्रदादेवीश्रीपा०। एवं सर्वत्र। चक्राग्रे—ॐ सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्राय नमः। ह्रींक्लींब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दणिणे क्रों महाङ्कुशमुद्राश्रीपा०। वामे ॐ प्राकाम्यसिद्धिश्रीपा०। ॐ सौरदर्शनाय नमः। अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञाद्या देव्यो निगर्भयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। क्रों महाङ्कुशां मुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

ततोऽष्टारचक्राच्च समारभ्य पश्चिमादि दक्षिणान्तं यावत्, ॐ अं १६ रबलूं वशिनीवाग्देवताश्रीपा०। ॐ कं ५ कलह्रीं कामेश्वरीश्रीपा०। ॐ चं ५ नवलीं मोदिनीवाग्देवताश्रीपा०। ॐ टं ५ यलूं विमलावाग्देवताश्रीपा०। ॐ

तं ५ जमरीं अरुणावाग्देवताश्रीपा०। ३ँ पं ५ हसलवयूँ जयिनीवाग्देवताश्रीपा०। ३ँ यं ४ झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवताश्रीपा०। ३ँ शं ४ क्षमरीं कौलिनीवाग्देवताश्रीपा०। चक्राग्रे ३ँ सर्वरोगहराष्टारचक्राय नमः। ह्रींश्रींसौः त्रिपुरासिद्धानित्याश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे हसखफ्रें खेचरीमुद्राश्रीपा०। वामे ३ँ भुक्तिसिद्धिश्रीपा०। ३ँ वैष्णवदर्शनाय नमः। अत्र सर्वरोगहराष्टारचक्रे त्रिपुरासिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या योगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। हसखफ्रें खेचरीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

त्रिकोणबाह्येऽग्रतो वामावर्तेन पश्चिमादि दक्षिणान्तं यावत्, ३ँ द्रांद्रींक्लींब्लूंसः यांरांलांवांशां कामेश्वर-कामेश्वरीजृम्भणबाणेभ्यो नमः। ३ँ द्रां ५ यां ५ थं थं सर्वसंमोहनाय कामेश्वरकामेश्वरीधनुषे नमः। ३ँ द्रां ५ यां ५ आंह्रींवशीकरणाय कामेश्वरकामेश्वरीपाशाय नमः। ३ँ द्रां ५ यां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरकामेश्वर्यङ्कुशाय नमः।

ततस्त्रिकोणाग्रदक्षिणोत्तरकोणेषु, मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्म-शक्तिकामेश्वरीश्रीपा०। कामराजमुच्चार्य सूर्यचक्रे पूर्णगिरिपीठे षष्ठीशनाथात्मके विष्ण्वात्मशक्तिवज्रेश्वरीदेवीश्रीपा०। शक्तिकूटमुच्चार्य सोमचक्रे जालन्धरपीठे उड्डीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिभगमालिनीदेवीश्रीपा०। चक्राग्रे सर्वसिद्धि-प्रदाद्यचक्राय नमः। हसरैं हसकलरीं हसकलरौं त्रिपुराम्बाशक्तिनित्याकलाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे हसौः बीजमुद्राश्रीपा०। वामे इच्छाशक्तिश्रीपा०। ३ँ शाक्तदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसिद्धिप्रदाद्यचक्रे बाणचापपाशाङ्कुशभूषितान्तराले त्रिपुराम्बा-चक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। हसौः बीजमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

ततो बैन्दवचक्रे, मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्री० इति त्रिः संपूज्य, चक्राग्रे ३ँ सर्वानन्दमयबैन्दवचक्राय नमः। मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ऐं योनिमुद्राश्रीपा०। वामे ३ँ प्राप्तिसिद्धिश्री०। ३ँ मोक्षसिद्धिश्रीपा०। ३ँ शैवदर्शनाय नमः। कुलोड्डीशे यथा—

ततो मूलं समुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीम्। पूजयेद् देवतारूपां बिन्दौ चक्रेश्वरीं पुनः॥

यथा नवरत्नेश्वरे—

बौद्धं ब्राह्मं तथा सौरं शैवं वैष्णवमेव च। शाक्तं षष्ठं तु विज्ञेयं चक्रं षड्दर्शनात्मकम्॥

रुद्रयामलेऽपि—

चतुरस्रं बौद्धभेदं ब्राह्मं वै षोडशच्छम्। वैष्णवं शैवभेदं च मन्वस्रं सौरमुच्यते॥
अष्टास्रं द्विदशारस्तु मध्यं शाक्तं समीरितम्।

तदनन्तर चतुरस्र के बाहर पश्चिमादि चार द्वारों में अणिमादि सिद्धियों की पूजा करे। गुप्तार्णव के अनुसार पश्चिमादि साधन के नियम इस प्रकार हैं—जिधर मुख करके मन्त्री त्रिपुरा की पूजा करता है, देवी त्रिपुरा के पीछे प्राची और आगे प्रवीची (पश्चिम) दिशा होती है। तदनन्तर आवरण पूजन इस प्रकार करे—

३ँ अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ महिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ईशित्व-सिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। वायव्यादि चार कोणों में—३ँ वशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ प्राकाम्यासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ भक्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ इच्छासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। नीचे—३ँ प्राप्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ऊपर—३ँ सर्व-ज्ञासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। मध्य चतुरस्र के पश्चिमादि चार द्वारों में—३ँ आं ब्रह्माणीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ईं माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ऊं कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ॠं वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि। वायव्यादि चार कोणों में—३ँ ॡं वाराही-श्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ऐं इन्द्राणीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ औं चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ अः महालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि। चतुरस्र के भीतर पश्चिमादि चार द्वारों में—३ँ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। वायव्यादि चार कोण में—

इँ स: सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। इँ क्रों महाङ्कुशामुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। इँ हसखफ्रें खेचरीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। इँ हसौ: सर्वबीजमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। अध: इँ ऐं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ऊपर— इँ ऐंक्लींसौ: त्रिखण्डामुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे से सम्पूर्ण चक्र में— इँ त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्राय नम:। अंआंसौ: त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में— इँ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें— इँ अं अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। इँ चार्वाकदर्शनाय नम:। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्या: प्रकटयोगिन्य: समुद्रा: सवाहना: ससिद्धय: सायुधा: सपरिवारा: सर्वोपचारै: पूजितास्तर्पिता: सन्तु—इस प्रकार अर्घ्य जल मूल देवी को समर्पित करे। द्रां से सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा दिखाये। ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, सौ: शिवतत्त्वाय स्वाहा—तीन बार अर्घ्य जल से तर्पण करे।

तदनन्तर षोडश दल में पश्चिम दल से आरम्भ करके वामावर्त से— इँ अं कामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ इं अहङ्काराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ईं शब्दाकर्षिणी-नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ उं स्पर्शाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ऊं रूपाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूज-यामि। इँ ऋं रसाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ॠं गन्धाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ऌं चित्ताकर्षिणीनित्या-कलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ॡं धैर्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ एं स्मृत्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ऐं नामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ओं बीजाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ औं आत्माकर्षिणीनित्याकला-श्रीपादुकां पूजयामि। इँ अं अमृताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इँ अ: शरीराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—सर्वाशापरिपूरकषोडशकलाचक्राय नम:। इँ ऐंक्लींसौ: त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में—द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें—लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। इँ बौद्धदर्शनाय नम:। अत्र सर्वाशापरिपूरकषोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: कामाकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। द्रीं से सर्वविद्रा-विणी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

अष्टदल चक्र में पूर्वादि चार दलों में वामावर्त क्रम से— इँ कं ५ अनङ्गकुसुमादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ चं अनङ्ग-मेखलादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ टं ५ अनङ्गमदनादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ तं ५ अनङ्गमदनातुरादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। आग्नेयादि चार दलों में—पं ५ अनङ्गरेखादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ यं ४ अनङ्गवेगिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ शं ४ अनङ्गाङ्कुशादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ ळं क्षं अनङ्गमालिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे— इँ सर्वसंक्षोभणाष्टदलचक्राय नम:। इँ ऐंक्लींसौ: त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के दक्षिण में— इँ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपादुकां पूज-यामि। चक्र के बाँयें— इँ महिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। जिनेन्द्रदर्शनाय नम:। अत्र सर्वसंक्षोभणाष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। क्लीं से सर्वाकर्षिणी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

चतुर्दशार चक्र के आगे से बाँयीं तरफ से— इँ सर्वसंक्षोभिणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। एवं इँ सर्वविद्राविणीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ सर्वाकर्षिणीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ सर्वाह्लादिनीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ सर्वसंमोहिनीश्रीपादुकां पूजयामि। इँ सर्वस्त-म्भिनीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वजृम्भिणीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वसत्त्ववशङ्करीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वरञ्जनीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वोन्मादिनीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वार्थसाधिनीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वसंपत्तिपूरणीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वमन्त्रमयीश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—सर्वसौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्राय नम: से पूजन करे। इँ हैं हक्लीं हसौ: त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें— इँ ईशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। इँ सांख्यमीमांसान्यायदर्शनेभ्यो नम: से पूजन करे। अत्र सौभाग्यदायकचतुर्दशारचके त्रिपुरवासिनी-चक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसंक्षोभिण्याद्या: शक्तय: संप्रदाययोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। ब्लूं से सर्व-वशङ्करी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

बहिर्दशार चक्र में आगे से आरम्भ करके वामावर्त क्रम से— इँ सर्वसिद्धिप्रदाश्रीपादुकां पूजयामि, इँ सर्वसंपत्प्रदाश्रीपादुकां

पूजयामि, ३ँ सर्वप्रियङ्करीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वमङ्गलकारिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वकामप्रदाश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वदु:खविमोचिनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वमृत्युप्रशमनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वविघ्ननिवारिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वाङ्गसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—सर्वार्थसाधकबहिर्दशारचक्राय नम: से पूजन करे। ३ँ हसैं: हसक्लीं हसौ: त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में—३ँ स: सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें—वशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ ब्राह्मवैदिकदर्शनाय नम: से पूजन करे। अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसिद्धिप्रदाद्या: देव्य: कुलकौलिनीयोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। स: से सर्वोन्मादिनी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

अन्तर्दशारचक्र में आगे से आरम्भ करके वामावर्त क्रम से—३ँ सर्वज्ञादेवीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वशक्तिमयीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वैश्वर्यदायिनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वज्ञानमयीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वव्याधिविनाशिनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वाधारस्वरूपिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वपापहराश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वानन्दमयीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वरक्षा-स्वरूपिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ँ सर्वेप्सितफलप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—३ँ सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्राय नम: से पूजन करे। ह्रींक्लींब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दणिण में—क्रों महाङ्कुशमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें—३ँ प्राकाम्यसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ सौरदर्शनाय नम:। अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वज्ञाद्या देव्यो निगर्भयोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। क्रों महाङ्कुशां मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

तदनन्तर अष्टार चक्र में आरम्भ से वामावर्त क्रम से—३ँ अं १६ रबलूं वशिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ कं ५ कलह्रीं कामेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ चं ५ नवलीं मोदिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ टं ५ यलूं विमलावाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ तं ५ जमरीं अरुणावाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ पं ५ हसलवयूँ जयिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ यं ४ झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ शं ४ क्षमरीं कौलिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—३ँ सर्वरोगहराष्टारचक्राय नम:। ह्रींश्रींसौ: त्रिपुरासिद्धानित्याश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में—हसखफ्रें खेचरीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें—३ँ भुक्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ वैष्णवदर्शनाय नम:। अत्र सर्वरोगहराष्टारचक्रे त्रिपुरासिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या योगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। हसखफ्रें से खेचरी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

त्रिकोण के बाहर आगे से वामावर्त क्रम से पश्चिम से दक्षिण की ओर—३ँ द्रांद्रींक्लींब्लूंस: यांरांलांवांशां कामेश्वर-कामेश्वरीजृम्भणबाणेभ्यो नम:, ३ँ द्रां ५ यां ५ धं थं सर्वसंमोहनाय कामेश्वरकामेश्वरीधनुषे नम:, ३ँ द्रां ५ यां ५ आंह्रींवशीकरणाय कामेश्वरकामेश्वरीपाशाय नम:, ३ँ द्रां ५ यां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरकामेश्वर्यङ्कुशाय नम: से पूजन करे।

तदनन्तर त्रिकोण के आगे से दक्षिण उत्तर कोणों में—मूल मन्त्र एवं वाग्भव कूट का उच्चारण कर अग्निचक्र में कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्मशक्तिकामेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। कामराज कूट का उच्चारण कर सूर्यचक्र में पूर्णगिरिपीठे षष्ठीशनाथात्मके विष्णवात्मशक्तिवज्रेश्वरीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। शक्तिकूट का उच्चारण कर सोमचक्र में जालन्धरपीठे उड्डीश-नाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिभगमालिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे सर्वसिद्धिप्रदाद्यचक्राय नम: से पूजन करे। हसरैं हसकलरीं हसकलरौं त्रिपुराम्बाशक्तिनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में हसौ: बीजमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें इच्छाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ शाक्तदर्शनाय नम:। अत्र सर्वसिद्धिप्रदाद्यचक्रे बाणचापपाशाङ्कुशभूषितान्तराले त्रिपुराम्बाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्य: समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करे। हसौ: से बीज मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

तदनन्तर बैन्दव चक्र में मूल विद्या का उच्चारण कर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि से तीन बार पूजन कर चक्र के आगे ३ँ सर्वानन्दमयबैन्दवचक्राय नम:, मूल का उच्चारण कर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

इसके दक्षिण में ऐं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें ३ँ प्राप्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ मोक्षसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ँ शैवदर्शनाय नमः। कुलोड्डीश तन्त्र में कहा भी है कि तदनन्तर मूल मन्त्र कहकर महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा बिन्दु में चक्रेश्वरी के रूप में करे।

नवरत्नेश्वर में कहा गया है कि बौद्ध, ब्राह्म, सौर, शैव, वैष्णव, शाक्त—षड्दर्शनात्मक श्रीचक्र होता है। रुद्रयामल में भी कहा है कि चतुरस्र में बौद्ध, षोडशदल में ब्राह्म, अष्टार में वैष्णव, बहिर्दशार में शैव एवं अन्तर्दशार में सौर दर्शन है। मध्य में शाक्त हैं। इन स्थानों में इन दर्शनों की पूजा होती है।

इत्युक्तस्थाने तत्तद्दर्शनपूजा। अत्र सर्वानन्दमये वैन्दवे चक्रे परब्रह्मस्वरूपिणीपरापरशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी-समस्तचक्रनायिकासंवित्तिरूपाचक्रनायिकाधिष्ठिते त्रैलोक्यमोहन-सर्वाशापरिपूरक-सर्वसंक्षोभकारक-सर्वसौभाग्यदायक-सर्वार्थसाधक-सर्वरक्षाकर-सर्वरोगहर-सर्वसिद्धिप्रद-सर्वानन्दमयश्रीचक्रसमुन्मीलित-समस्तप्रकट-गुप्तगुप्ततरसंप्रदाय-कुलकौलिनी-निगर्भरहस्यातिरहस्य-परापररहस्य-समस्तयोगिनीपरिवृत्त-श्रीत्रिपुरा-त्रिपुरेशी-त्रिपुरसुन्दरी-त्रिपुरवासिनी-त्रिपुराश्री-त्रिपुरमालिनी-त्रिपुरसिद्धा-त्रिपुराम्बा-तत्तच्चक्रनायिकावन्दित-चरणकमला श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नित्यादेवी सर्वचक्रेश्वरी-सर्वमन्त्रेश्वरी-सर्वविद्येश्वरी-सर्वपीठेश्वरी-सर्वकामेश्वरी-सर्ववीरेश्वरी-त्रैलोक्यमोहिनी-जगदुत्पत्तिमातृका-सर्वचक्रमयी-तत्तच्चक्रनायिकासहिता समुद्रा ससिद्धिः सायुधा सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी परापरया सपर्यया पूजिता तर्पिताऽस्तु, इति विशेषार्घ्योदका-क्षतकुसुमैः प्रधानदेव्या वामहस्ते समर्पयेत्।

ततो नवमुद्राः प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा, इति त्रिरर्घ्योदकेन तर्पयेत्। ततो गन्धपुष्पदूर्वाक्षतमाल्यादीनि दत्त्वा, ऐं इत्युक्त्वा घण्टां वादयन् मूलमुच्चार्य—

ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति धूपं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य—

स्वप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति दीपं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नैवेद्यं कल्पयामि नमः। इति दद्यात्।

सर्वानन्दमय वैन्दव चक्र में परब्रह्मस्वरूपिणी परापर शक्ति महात्रिपुरसुन्दरी समस्त चक्रनायिका संवित्तिरूपा चक्रनायिकाधिष्ठित त्रैलोक्यमोहन, सर्वाशा परिपूरक, सर्वसंक्षोभकारक, सर्वसौभाग्यदायक, सर्वार्थसाधक, सर्वरक्षाकर, सर्वरोगहर, सर्वसिद्धिप्रद, सर्वानन्दमय श्रीचक्र-समुन्मीलित समस्त प्रकट गुप्त-गुप्ततर सम्प्रदाय, कुल-कौलिनी, निगर्भ रहस्यातिरहस्य, परापर रहस्य, समस्त योगिनी परिवृत्त श्री त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा, तत्तत् चक्रनायिका-वन्दित चरणकमला श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नित्यादेवी सर्वचक्रेश्वरी, सर्वमन्त्रेश्वरी, सर्वविद्येश्वरी, सर्वपीठेश्वरी, सर्वकामेश्वरी, सर्ववीरेश्वरी, त्रैलोक्यमोहिनी, जगदुत्पत्तिमातृका, सर्वचक्रमयी, तत्तत् क्रनायिकासहित मुद्रासहित सिद्धिसहित आयुधसहित वाहनसहित परिवारसहित श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की समस्त उपचारों द्वारा परापर सपर्या से पूजन करे। इस प्रकार विशेष अर्घ्य जल-अक्षत-फूल को प्रधान देवी के बाँयें हाथ में समर्पित करे। तब नव मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा एवं सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा से तीन बार अर्घ्य जल से तर्पण करे। तब गन्ध, पुष्प, धूप, अक्षत, माला आदि देकर 'ऐं' कहकर घण्टावादन करके। मूल मन्त्र कहकर निम्न मन्त्र के साथ धूप प्रदान करे—

ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

तदनन्तर मूल मन्त्र कहकर निम्न श्लोक पढ़ कर दीपक दिखावे—

स्वप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

तदनन्तर मूल मन्त्र कहकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नैवेद्यं कल्पयामि नमः से नैवेद्य समर्पित करे।

ततो नित्यहोमं कुर्यात्। तद्यथा—परिषिच्य भूमौ मूलमुच्चार्य प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, षडङ्गेनाहुतिषट्कं। ततः स्ववामे त्रिकोणं वृत्तं चतुरस्रं कृत्वा, ऐंह्रींश्रीं व्यापकमण्डलाय नमः इति संपूज्य—

अर्धान्नं पूर्णसलिलं स्थापयेत्तत्र भाजनम्। त्रिधा पठन् कलावर्णमनुं दद्याद्बलिं ततः ॥

ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं स्वाहा, इति सामान्यार्घ्योदकेन दत्त्वा मुद्रां प्रदर्शयेत्। ततो वटुकादिभ्यो बलिं दद्यात्। ईशानवायुनिर्ऋतिवह्निकोणेषु त्रिकोणवृत्तमण्डलानि कृत्वा, तेषु वां वटुकाय नमः। यां योगिनीभ्यो नमः। गां गणपतये नमः। क्षां क्षेत्रपालाय नमः। इति पाद्यादिभिः संपूज्य तेषु द्रव्यभरितपात्रणि निक्षिप्य बलिं दद्यात्। 'एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय २ सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा' इत्यनेन मन्त्रेण वटुकाय बलिं दत्त्वा वामाङ्गुष्ठानामिकायोगेन मुद्रां प्रदर्शयेत्।

ऊर्ध्वं ब्रह्माणडतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा
पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिमांसैः
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥

'यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा' इत्यनेन बलिं दद्यात्। वामहस्ताङ्गुष्ठतर्जनीमध्य-मानामाभिर्योन्याकारेण मुद्रां प्रदर्शयेत्। 'क्षांक्षींक्षूंक्षैंक्षौंक्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इत्यनेन क्षेत्रपालबलिं हरेत्। वाममुष्टेस्तर्जनीं सरलां कृत्वा मुद्रां दर्शयेत्। 'गांगींगूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इत्यनेन गणपतये बलिं हरेत्। वामामुष्टेर्मध्यमाङ्गुलिं दण्डवत् कृत्वा मुद्रां प्रदर्शयेत्। भैरवीविद्यया चैतद्बलिचतुष्टयं कर्तव्यम्। सर्वान्ते भूतबलिर्वा। तन्त्रे बलिमधिकृत्य—

अदत्त्वा वटुकादीनां यः पूजयति चण्डिकाम्। पूजा च विफला तस्य देवीशापश्च जायते ॥

तदनन्तर नित्य हवन करे। एतदर्थ भूमि का परिसंचन करके मूल मन्त्र कहकर प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, षडङ्ग मन्त्र से छः आहुति प्रदान करे। तब अपने वाम भाग में त्रिकोण वृत्त चतुरस्र बनाकर ऐं ह्रीं श्रीं व्यापकमण्डलाय नमः से पूजा करके आधा अन्न और जल से पूर्ण पात्र स्थापित करे। कलावर्ण का तीन पाठ करके बलि प्रदान करे। बलिप्रदान मन्त्र है और ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं स्वाहा। सामान्य अर्घ्य जल देकर मुद्रा दिखावे। तब वटुकादि का बलि दान करे। ईशान, वायु, नैर्ऋत्य, अग्निकोनों में त्रिकोण वृत्त मण्डल बनाकर उनमें वां वटुकाय नमः, यां योगिनिभ्यो नमः, गां गणपतये नमः, क्षां क्षेत्रपालाय नमः, से पाद्य आदि से पूजकर उन्हें द्रव्यपूर्ण पात्र देकर बलि प्रदान करे। एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस मन्त्र से वटुक को बलि देकर वामांगुष्ठ-अनामिका के योग से मुद्रा प्रदर्शित करे।

ऊर्ध्वं ब्रह्माणडतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिमांसैः प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः।।

कहते हुये यां योगिनीभ्याः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा मन्त्र कहकर योगिनियों को बलि देवे। बाँयें हाथ के अंगूठे तर्जनी मध्यमा अनामा से योन्याकार मुद्रा दिखावे। 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' से क्षेत्रपाल को बलि अर्पित करे। बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को सीधा रखकर मुद्रा दिखावे। 'गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' मन्त्र से गणपति को बलि प्रदान करे। बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर मध्यमा को सीधा रखकर मुद्रा दिखावे। भैरवी विद्या से चार बलि देना चाहिये। सबके बाद भूतबलि प्रदान करे। बलि के सम्बन्ध में तन्त्र में कहा

गया है कि वटुकादि को बलि दिये बिना जो चण्डिका की पूजा करता है, उसकी पूजा विफल होती है और देवी उसे शाप देता है।

ततो मूलदेव्यै आचमनीयादिकं दत्त्वा सुवासितं ताम्बूलं तद्यात्। तत आरात्रिकं दद्यात्। तद्यथा—सुवर्ण-कांस्यादिभाजने कुङ्कुमादिना बालायाश्चक्रं विलिख्य, तत्र कर्पूरगर्भिण्या वर्त्या घृतपूरितानष्टयोनिष्वष्ट प्रदीपान् निधाय, मध्ये पिष्टकादिरचितमस्तकोपरि महादीपं संस्थापयेत्। 'श्रींह्रींग्लूँस्लूँम्लूँप्लूँन्लूँह्रींश्री इति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य तत्पात्रं मस्तकान्तं समुद्धृत्य नववारं नीराजयेत्। तथाच ज्ञानार्णवे—

आरात्रिकमतः कुर्यात् सर्वकामार्थसिद्धये। सौवर्णे राजते कांस्ये स्थालके परमेश्वरि॥
कुङ्कुमेन लिखेद्यन्त्रं नवकोणं मनोहरम्। चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा तन्मध्ये मस्तके शिवे॥
दीपमेकं विनिक्षिप्य वसुकोणेऽष्ट दीपकान्। यवगोधूममुद्गादिरचितान् शर्करायुतान्॥
चणकाहितशोभाभिः शोभितान् घृतपूरितान्। अभिमन्त्र्य महेशानि रत्नेश्वर्या ततः परम्॥ इति।

ततो मूलमुच्चार्य—

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके। आरात्रिकमिदं भद्रे गृहाण मम सिद्धये॥ इति।

ततश्चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत्। ततो विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। इति संक्षेपश्रीविद्यापद्धतिः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे चतुर्विंशः श्वासः॥२४॥

●

तदनन्तर मूल देवी को आचमनीय आदि देकर सुवासित ताम्बूल प्रदान करके आरती करे। एतदर्थ सोना-कांस्यादि के पात्र में कुङ्कुमादि से बालाचक्र बनाकर उसमें कर्पूरगर्भिणी बत्ती और घृतपूर्ण आठ दीपकों को आठ त्रिकोणों में रखकर मध्य में पिष्टकादि से निर्मित महादीपक रखे। 'श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं' के साथ मूल मन्त्र से पूजा करके उस पात्र को मस्तक तक ले जाकर नव बार आरती दिखावे। जैसा कि ज्ञानार्णव में कहा है कि सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये आरती करे। सोना, चाँदी या कांसे की थाली में कुङ्कुम से नव कोण यन्त्र बनावे। उसमें चन्द्ररूप चरु रखकर दीपक रखे। आठ कोनों में आठ दीपक रखे। यव-गेहूँ-मुद्गादि रचित शर्करायुक्त चणकादि शोभा से शोभित घृतपूर्ण दीपकों को रत्नेश्वरी से मन्त्रित आरती करे। तब करके मूल मन्त्र कहकर—

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके। आरात्रिकमिदं भद्रे गृहाण मम सिद्धये॥

कहकर आरती समर्पित करते हुये चक्रमुद्रा दिखावे और तब विसर्जनान्त कर्म करके पूजा का समापन करे।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में चतुर्विंश श्वास पूर्ण हुआ

●

पुस्तक परिचय

'श्रीविद्या' शब्द श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र एवं उसके अधिष्ठात्री देवता–इन दोनों का बोधक है। सामान्यतया 'श्री' शब्द 'लक्ष्मी' अर्थ में प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित आख्यायिकाओं के अनुसार 'श्री' शब्द का मुख्य अर्थ 'महात्रिपुरसुन्दरी' ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल-पर्यन्त आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें एक वरदान 'श्री' की आख्या से लोक में ख्याति प्राप्त करने का भी है। अस्तु; 'श्री' शब्द का 'महालक्ष्मी' अर्थ तो गौण ही है; मुख्य अर्थ है–'श्री' अर्थात महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या–मन्त्र = 'श्रीविद्या'। वाच्य एवं वाचक का अभेद मानकर इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' ही सिद्ध होती है। इस श्रीविद्या के उपासकों को लौकिक फल तो प्राप्त होते ही है; आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाला शोकोत्तीर्णतारूप फल भी श्रीविद्यापासकों को निश्चित रूप से प्राप्त होता है; साथ ही यही फल ब्रह्मविद्या से भी प्राप्त होता है; अतः फलैक्य होने के कारण श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है–यह निर्विवाद सत्य प्रतिष्ठापित होता है।

'श्रीविद्या' का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्तद् यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक बृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तारार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। अंग-उपांगसहित श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप मे विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को भी स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपास्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वही इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्ययति-प्रणीत 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है।

अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, बिना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरूह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के तात्पर्य से अवगत ने हो पाने के कारण वे बार-बार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनहृद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। सर्वजनसुलभ इस हिन्दी भाष्य द्वारा श्री नारायण ने कूटाक्षर में निबद्ध मन्त्र-यन्त्रों को भी स्पष्ट करके साधकों का महनीय उपकार किया है।

पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी बृहद् कलेवर को प्राप्त हो गयाः फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों (पूर्वार्द्ध–दो भाग एवं उत्तरार्द्ध–तीन भाग) में प्रकाशित किया जा रहा है। वृहत्तन्त्रसार, देवीरहस्य आदि मूल ग्रन्थों को सर्वजनसंवेद्य भाषा भाष्य से विभूषित कर सर्वजन सुलभ बनाने वाले विद्धान् भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविध समर्थ होगा–इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नही है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी